देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला

मआसिरुल उमरा

मुगल दरबार के सरदार

भाग २

मूललेखक :

नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज खाँ शहीद खवाफी औरंगाबादी

प्रवर्धनकर्ता :

अब्दुल हई

भूमिका लेखक :

मीर गुलाम अली आजाद

अनुवादक :

ब्रजरत्नदास बी. ए. एल-एल. बी.

नागरीप्रचारिणी सभा

वाराणसी • नई दिल्ली

प्रकाशक :
नागरीप्रचारिणी सभा,
वाराणसी • नई दिल्ली
नवीन संस्करण
११०० प्रतियाँ
सं० २०५४ वि०

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार के शिक्षा विभाग
से प्राप्त अनुदान (आंशिक वित्तीय
सहायता) से प्रकाशित। राजाज्ञा सं०
५-६७/९३-डी०-१ (भा०)
दिनांक २६-२-९७

मूल्य रु० ९८-०० मात्र

मुद्रक .
श्रीनारायण
नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी सभा
वाराणसी के लिये सेवाश्रम
प्रिंटिंग प्रेस, गोपालगंज
बाड़ा, वाराणसी द्वारा
मुद्रित।

माला का परिचय

जोधपुर के स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ इतिहास और विशेषत: मुसलिम काल के भारतीय इतिहास के बहुत बड़े ज्ञाता और प्रेमी थे तथा राजकीय सेवा के कामों से वे जितना समय बचाते थे, वह सब इतिहास का अध्ययन और खोज करने अथवा ऐतिहासिक ग्रंथ लिखने में ही लगाते थे। हिंदी में उन्होंने अनेक उपयोगी ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे हैं जिनका हिंदी संसार ने अच्छा आदर किया है।

श्रीयुक्त मुंशी देवीप्रसादजी की बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि हिंदी में ऐतिहासिक पुस्तकों के प्रकाशन की विशेष रूप से व्यवस्था की जाय। इस कार्य के लिये उन्होंने ता० २१ जून १९१८ को ३५०० रु० अंकित मूल्य और १०५०० मूल्य के बंबई बंक लि० के सात हिस्से सभा को प्रदान किये थे और आदेश किया था कि इनकी आय से उनके नाम से सभा एक ऐतिहासिक पुस्तकमाला प्रकाशित करे। उसी के अनुसार सभा यह 'देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला' प्रकाशित कर रही है। पीछे से जब बंबई बंक अन्यान्य दोनों प्रेसिडेंसी बंकों के साथ सम्मिलित होकर इम्पीरियल बंक के रूप में परिणत हो गया, तब सभा ने बंबई बंक के सात हिस्सो के बदले मे इम्पीरियल बंक के चौदह हिस्से, जिनके मूल्य का एक निश्चित अंश चुका दिया गया है, और खरीद लिये और अब यह पुस्तकमाला उन्हीं से होनेवाली तथा स्वयं अपनी पुस्तकों की बिक्री से होनेवाली आय से चल रही है। मुंशी देवी प्रसादजी का वह दानपत्र काशी नागरीप्रचारिणी सभा के २६वें वार्षिक विवरण मे प्रकाशित हुआ है।

इस ग्रंथमाला मे अबतक 'अंधकार युगीन भारत का इतिहास, जहांगीरनामा, प्राचीन मुद्रा, बादशाह खान, भारत एक है, पुरानी राजस्थानी, यात्रा विवरण, मौर्यकालीन भारत का इतिहास, हुमायूंनामा, उत्तर प्रदेश : सोलहवीं शताब्दी' इत्यादि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

मआसिरुल उमरा (मुगल दरबार) [illegible] (सन् १९३१ ई०) में पाँच भागों में हुआ था। [illegible] की विशिष्ट विधायक सरदारों की जीवनियाँ [illegible] लेखकों द्वारा लिखी गईं। इस ग्रंथ के लेखक नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज खाँ शहीद खवाफी औरंगाबादी थे। वे अपने युग के विशिष्ट [illegible] जिनके भाग्य का नक्षत्र कभी दीप्त और कभी लुप्त होता रहा। [illegible] ग्रंथ भी अव्यवस्थित और विलुप्त होता रहा। उनके पुत्र [illegible] और [illegible] बिलग्रामी के यत्न स्वरूप यह पुनः संकलित और एकत्र [illegible] हुआ। इसमें कुल ७३१ लोगों की जीवनियाँ है जिनमे हिंदू और मुसलमान दोनो है। [illegible] ये मुगलसाम्राज्य के ये नियामक और विधायक पुरुष थे। इनका पहले पाँच भागों में प्रकाशन किया गया था, अब दो भागो में प्रकाशित किया जा रहा है। मूलतः मुगल साम्राज्य के इतिहास लेखन के लिए आकर और आधार ग्रंथ के रूप में इसका उपयोग इतिहास के शोधार्थी और दिग्गज विद्वानो ने किया है और एक अप्रतिम साधन सामग्री से युक्त इसे माना है।

इतिहास के क्षेत्र मे नागरीप्रचारिणी सभा का अवदान सदा से ऐतिहासिक महत्व का रहा है और यह ग्रंथ रत्न उस श्रृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। इसका अनुवाद मूल फारसी से व्रजरत्न दास ने किया था जो उन्हीं के द्वारा संपादित भी है। इस ग्रंथ की विशिष्टता इसे अंग्रेजी संस्करण से भी अधिक प्रामाणिक बनाने मे सहायक रही है। बहुत दिनो से यह ग्रंथ अनुपलब्ध था [illegible] इतिहास के सुधी और शोधी विद्वान इसकी आवश्यकता [illegible] निरंतर करते रहे हैं। ऐसे ग्रंथो के प्रकाशन मे अर्थ की अपेक्षा ज्ञानदान की भावना [illegible] रहती है। इस उद्देश्य की पूर्ति में भारत सरकार की [illegible] हमारी [illegible] है। उनने इसके प्रकाशन के लिये इसकी गरिमा के कारण [illegible] दिया।

मुगल इतिहास भारत के विकास की कहानी का एक ऐसा अध्याय है जिसका ज्ञान भारत के प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिए। साथ ही देश के सभी भूभाग के तत्कालीन राजपुरुषो और उस युग के सत्ता और उससे संबंधित समीक्षको के विधायक चरितो का यह संकलन उनके लिए भी उपयोगी है जो मुगलो के उत्थान पतन का बोध करना चाहते हैं और इतिहास की पुस्तकों से, तत्व चिंतन करते हैं। उनके विषय में जनसामान्य को भी इसमे जानकारी मिलती है। उस युग में तलवार और कलम दोनो के धनी बहुत थोड़े से लोग थे जिनमें कुछ विद्या और ज्ञान के क्षेत्र में अन्यतम महत्व के रहे हैं। ऐसे लोगो के कर्तृत्व का भी आख्यान इस ग्रंथ मे है। जनसामान्य और विद्वानो के साथ ही इस मुगलकालीन राजनेता का यह अवदान सारस्वत-समाज पर सनातन ऋण है।

हमें विश्वास है कि अपने गुण धर्म के कारण यह कृति सारस्वत जगत में और विशेष करके इतिहास के क्षेत्र में अनन्य रत्न के रूप मे प्रतिष्ठित होगी और इसकी उपयोगिता सदा अपने क्षेत्र मे आकर ग्रंथ के रूप मे बनी रहेगी।

रामनवमी
सं० २०५४ वि०
१६ अप्रैल, १९९७

सुधाकर पाण्डेय
प्रधान मंत्री
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

विषय-सूची

मीरजुमला खानखानाँ

मुकर्रम खाँ सफवी

खानजमाँ शेख निज़ाम

फ़ज़लुल्लाह खाँ

दुर्ग शाहजहानाबाद

बाज़बहादुर तथा रूपमती

महाबतखाँ खानखानाँ

मआसिरुल् उमरा

मुगल दरबार के सरदार

(मुगलकालीन ३७१ सरदारों की जीवनियाँ)

मआसिरुल् उमरा

—अब्दुल हई

भाग–२

३६१. तैयबख्वाजा जुयेबारी

यह कलाँ ख्वाजा के पुत्र अब्दुर्रहीम ख्वाजा के बडे भाई हसन ख्वाजा का पुत्र था, जिससे दीनमहम्मद खाँ की बहिन और नजर महम्मद खाँ की बूआ व्याही थी। अब्दुर्रहीम ख्वाजा जहाँगीर के राज्य-काल मे इमामकुली खाँ की ओर से दूत होकर हिंदुस्तान आया और इसकी प्रतिष्ठा यहाँ तक बढी कि यह जहाँगीर के दरबार में बैठता था। शाहजहाँ के राज्य के प्रथम वर्ष मे इसकी मृत्यु हुई। अफ़ज़ल खाँ शाही आज्ञा के अनुसार उक्त ख्वाजा के पुत्र सिद्दीक ख्वाजा के पास शोक मनाने गया और उसे दरबार मे लिवा लाया। उसका पिता हसन ख्वाजा उस महामारी में मर गया, जो बल्ख की चढाई के पहिले वहाँ फैली हुई थी। उसका दूसरा चाचा यूसुफ ख्वाजा अपने देश मे पूर्वजो का स्थानापन्न हुआ। तैयब ख्वाजा की अब्दुर्रहीम ख्वाजा की लडकी से शादी हुई थी। शाहजहाँ के राज्य के २० वे वर्ष में बल्ख के विजय के बाद यह दरबार आया। जब यह पास पहुँचा तब काजी महम्मद असलम और ख्वाजा अबुल् खैर मीर अदल इसका स्वागत कर इसे बादशाह की सेवा मे लिवा लाए। इसने अठारह घोडे और पन्दरह ऊँट भेंट किए। इस को खिलअत और एक हजार मुहर पुरस्कार मे मिला। बाद को एक जडाऊ खंजर पाकर यह सम्मानित हुआ। इसके अनन्तर इसे पाँच सौ दहन, जो डेढ सौ अशर्फी होता है, मिला। दहन वह सिक्का था, जो सोने के मेल का होता था और अकबर बादशाह के समय मे चलता था। २१ वें वर्ष मे एक घोडा और पाँच सहस्र रुपया पाकर यह सम्मानित हुआ। जब इसी वर्ष बादशाह काबुल से हिंदुस्तान लौटे तब यह आज्ञा के अनुसार अपने पुत्रो के पहुँचने तक, जिन्हे बल्ख से बुलवाया था, काबुल मे ठहरा रहा। इसके अनन्तर अपने पुत्रो ख्वाजा मूसा और ख्वाजा ईसा के साथ जो अब्दुर्रहीम ख्वाजा के नाती थे, सेवा मे उपस्थित हुआ। २२वें वर्ष मे सोनहले जीन सहित एक घोड़ा इसको और दो घोड़े इसके दोनों पुत्रो को मिले। कुछ दिन बाद पुत्रो सहित इसको पाँच हजार रुपया पुरस्कार मिला। २६वे वर्ष मे एक हजार अशर्फी इसे तुलादान के धन में से प्रदान की गई। इसके बाद जब इसका बड़ा भाई यूसुफ ख्वाजा, जो बडो का स्थानापन्न था, मर गया और इसके सिवा कोई दूसरा उत्तराधिकारी नही रह गया तब यह उसी वर्ष विदा होकर अपने देश चला गया। बादशाहनामा के भाग दो के अन्त मे लिखा हुआ है कि इसका मनसब चार हजारी ४०० सवार का था।

३६२. तोलक ख़ाँ कूची

यह बाबर का एक सरदार था और उसके बाद हुमायूँ की सेवा मे आया। जब हुमायूँ ने ईरान से लौट कर काबुल पर अधिकार कर लिया और मिर्जा कामराँ सेवा करने के बहाने कपट से काबुल के पास पहुँचा और झगड़ालू सरदारगण उसके पास चले गए तब उसने निरुपाय होकर जुहाक और बामियान की ओर लौटने का विचार किया, जिस प्रांत मे अधिकतर लोग स्वामिभक्त थे। हुमायूँ ने तोलक खाँ को कुछ अन्य लोगो के साथ काबुल की रक्षा के लिए उधर भेजा था पर सिवा इसके और कोई नहीं लौटा। इसकी सेवा बादशाह को बहुत पसन्द आई और इसको कोरबेगी की पदवी दी। हिंदुस्तान की चढाई मे भी यह बादशाह के साथ था और इसने अच्छी सेवा की थी। हुमायूँ की मृत्यु पर जब शाह अबुल् मआली कुराह चलने लगा तब अकबरी राज्य के हितैषियो ने उसे कैद करने के विचार से एक दिन भोज के बहाने उसे बुलवाया। उसने जब हाथ धोने को बढाए तब तोलक खाँ ने, जो फुर्ती के लिये प्रसिद्ध था, पीछे से आकर उसके दोनो हाथ पकड लिए। दूसरों ने भी सहायता कर इस काम को पूरा कर दिया। इसके अनन्तर यह बहुत दिनो तक काबुल मे नियत रहा। अकबर के जलूस के ८वें वर्ष मे मुनइम बेग खानखानाँ का पुत्र गनी खाँ, जो काबुल में कुल कार्यों की देखभाल करता था और जिसके स्वभाव मे ओछापन और हठ अधिक था, यौवन तथा प्रभुत्व की उन्मत्तता में एक दिन बिना किसी विचार के तोलक खाँ को, जो बादशाह का परिचित और विश्वासपात्र था, उसके कुछ सम्बन्धियो के साथ कैद कर दिया। यह कुछ भले आदमियो के प्रयत्न से छुटकारा पा गया। इसके अनन्तर यह बाबा खातून मौजे मे, जो इसे जागीर मे मिला था, चला गया और और बदला लेने का अवसर ढूंढता रहा। एक दिन गनी खाँ बल्ख के काफिले को दमन करने को काबुल से बाहर निकला और ख्वाजा सियारा स्थान मे, जो आकर्षक जगह है, शराबखोरी की मजलिस् जमाई। तोलक खाँ ने अपने कुछ सम्बन्धियो और नौकरो के साथ उस पर पहुँच कर उसको बेहोशी की हालत मे कराचः के पुत्र शगुन के साथ कैद कर लिया और उसको कड़ी बातें कह कर अपने दुखी हृदय का क्रोध प्रगट कर दिया। इसके अनन्तर काबुल लेने के विचार से वहाँ के प्रभावशाली आदमियो से मित्रता कर ख्वाजा अबाश मौजा मे, जो उक्त नगर से दो कोस पर है, पड़ाव डाला। जब मुनइम खाँ का भाई फजील बेग और उसका पुत्र अबुल्फतह युद्ध को तैयार हुए तब इसने कुछ महालो पर अधिकार करने की सन्धि कर गनी खाँ को छोड़ दिया। वह छूटते ही सेना एकत्र कर तोलक खाँ पर रवाना हुआ। तोलक खाँ वहाँ अपना ठहरना अनुचित समझ कर हिंदुस्तान की ओर चल दिया। गोरबन्द नदी के पास काबुल की सेना इस पर आ पहुँची और युद्ध होने लगा। बाबा कूचीं और इसके कुछ

अन्य नौकर मारे गए। यह अपने पुत्र असफन्दियार और संवन्धियों तथा सेवकों के साथ वहादुरी से निकल कर उसी वर्ष में वादशाह अकवर की सेवा मे पहुँच गया। मालवा प्रांत में जागीर पाकर आराम से वहीं रहने लगा। २८वें वर्ष में जव मालवा की सेना मिर्जा खाँ खानखानाँ की सहायता को नियत हुई तव यह भी वहाँ पहुँच कर खानखानाँ के आदेश से सैयद दौलत पर भेजा गया, जो खम्भात मे विद्रोह कर रहा था। उसको दण्ड देकर यह विजयी होकर लौट आया। इसके अनन्तर वादशाही सेना में मिल कर सुलतान मुजफ्फर गुजराती के युद्ध मे दाएँ भाग में नियुक्त होकर लड़ाइयो मे प्रयत्न करता रहा। इसके वाद कुलीज खाँ के साथ भड़ोच विजय करने लगा। ३०वे वर्ष मे जव मालवा की सेना दक्षिण विजय करने मे खान आजम की सहायता पर नियत हुई तव यह भी उस प्रांत में गया। खान आजम और शहावुद्दीन अहमद खाँ के वैमनस्य काल में इधर उधर की वात करने के कारण दोषी होकर यह कैद हो गया। यह छूटने के अनन्तर वंगाल और विहार के सहायकों में नियत हुआ और ३७ वें वर्ष में कतलू के पुत्रों के युद्ध में राजा मानसिंह के साथ सेना के वाएँ भाग मे नियत था। यह ४१ वें वर्ष के आरम्भ में सन् १००४ हि० (सन् १५९६) मे मर गया।

•

३६३. दरबार खाँ

इसका नाम इनाअत था और यह तकलू खाँ[1] कहानी कहने वाले का पुत्र था, जो शाह तहमास्प सफवी की सेवा मे कहानी कहने पर नियत था तथा शाही कृपा का पात्र था। जब इसका पुत्र हिन्दुस्तान में आया तव अपने पैतृक कार्य पर अकवर के यहाँ नौकर हो गया और उसका दरवारी वन गया। इसे ७०० का मनसव तथा दरवार खाँ चिहरः शादकामी[2] की पदवी मिली। १४ वें वर्ष में रणथंभौर के विजय के अनन्तर जव वादशाह अजमेर मे मुईनुद्दीन चिश्ती के रौजा के दर्शन को गए, तव यह बीमारी की अधिकता के कारण छुट्टी लेकर राजधानी आगरा लौट आया और यहाँ पहुँचने पर इस असार संसार को छोड़कर चल दिया[3]। अकवर को जो उस

---

१. आईन अकवरी तथा उसके ब्लॉकमैन कृत अनुवाद मे तकलतू खाँ है।

२. प्रसन्न मुखवाला।

३. इलि० डाउ० जि० ५ पृ० ३३२ पर लिखा है कि अकवर इसकी शोक की जेवनार में गया था।

पर अधिक ध्यान रखते थे, इसकी मृत्यु से दुःख हुआ। दरबार खाँ ने स्वामि-भक्ति तथा श्रद्धा के कारण मृत्यु के समय यह वसीयत किया था कि वह बादशाही कुत्ते के पाव के पास,जिसके ऊपर पहिले ही गुंबद बना हुआ था,गाड़ा जाय। पहिले एक कुत्ता अपनी स्वामिभक्ति के कारण अकबर के पास रहता था। बादशाह भी कभी-कभी उसका हाल-चाल पूछा करते थे। जब वह कुत्ता मर गया तब बादशाह ने उसके लिये शोक किया। दरबार खाँ ने उसके शव पर इमारत बनवा कर उस कुत्ते को उस गुंबद में गाड़ा[1] और आप भी अपनी इच्छानुसार उसी मे गाड़ा गया।

ईश्वर की इच्छा! सांसारिकता का कैसा ऊंचा पद है? इसमे कितने प्रकार के प्रयत्न और चापलूसी हैं? जिस समय ईश्वर के ध्यान मे लिप्त होना और उसका स्मरण करना चाहिए था उस समय बादशाही कुत्ते के और सांसारिकता विचार मे पड़ा हुआ था! अगर ऐसा बाहरी दिखावट मात्र था तो शोक कि प्रलय के दिन उसका कुत्ते का साथ हुआ और यदि सच्चे हृदय से ऐसा किया तो ईश्वर ही रक्षा करे! इसे हम यहीं समाप्त करते हैं: ईश्वर की दया बहुत बड़ी है।

यद्यपि अकबर पढे लिखे नही थे पर शेर कहते थे और इतिहास भी जानते थे। विशेषतः इन्हे हिन्दुस्तान का इतिहास बहुत मालूम था। अमीर हमजा का किस्सा भी उन्हे बहुत पसन्द था, जिसमे तीन सौ साठ दास्तान थे। यहाँ तक कि स्वय महल मे उसे सुनाते थे और उसकी घटनाओ तथा वर्णनो के आरभ से अत तक के चित्र खिचवा कर १२ जिल्दो मे बँधवाए थे। हर जिल्द मे १०० पृष्ठ थे और प्रत्येक पृष्ठ एक हाथ लम्बा था हर एक पृष्ठ मे दो चित्र रहते थे और प्रत्येक के ऊपर उन चित्रो के सम्बन्ध की घटनाओ का वर्णन ख्वाजा अताउल्ला कजवीनी द्वारा अच्छी लिपि में लिखा गया था। ये चित्र ५० कुशल चित्रकारो द्वारा पहिले नादिरुलमुल्क हुमायूंशाही मीर सय्यद अली खिदामी[2] तबरेजी के और बाद मे ख्वाजा अब्दुस्समद शीराजी की तत्वावधानता मे बनाए गए थे। वास्तव मे पुस्तक अकबर के कामो का नमूना है, जिसके समान किसी वस्तु को किसी ने न देखा होगा और जिसका जोड किसी राजा के सामान मे न मिलेगा। इस समय यह बादशाही पुस्तकालय मे है।

---

१. इससे ज्ञात होता है कि दरबार खाँ ने इसे स्वयं बनवाया था।

२. इसका पाठांतर जुदाई ठीक है।

३६४. दरिया खाँ रुहेला

यह दाऊदजई खेल का था। यह पहिले मुर्तजा खाँ शेख फरीद का नौकर था। शाहजहाँ की शाहजादगी के समय सेवा मे आकर इसने प्रतिष्ठा पाई। सुलतान शहरयार के नौकर शरीफुल्मुल्क के साथ धौलपुर के युद्ध मे बड़ी वीरता दिखलाकर यह अधिक विश्वासपात्र हुआ। बंगाल के सूबेदार इब्राहिम खाँ फ़तेहजंग ने शाहजादा का सामना किया पर अकबर नगर (राजमहल) से एक कोस पर वह अपने पुत्र के मकबरा में घिर गया। परन्तु सब नावो का वेड़ा इसी के पास था और गंगा नदी बिना नाव के पार नहीं की जा सकती थी। दरिया खाँ ५०० अफगान सैनिक लेकर वेलिया राजा के दिखलाए उतार से दरिया उतरने लगा। अभी केवल दस बारह सवार पार हो पाए थे कि इब्राहीम की सेना आ पहुँची। दरिया खाँ दृढ़ता से युद्ध करने लगा। अब्दुल्ला खाँ उसी राह से पार उतरना चाहता था, पर यह हाल देखकर दूसरे स्थान से उतरने का विचार कर हट गया। इब्राहीम खाँ ने अहमद बेग खाँ को सेना की और आदमी देकर अपनी सहायता को भेजा। शाहजादा ने यह वृत्तांत सुनकर राजा भीम को भेजा कि अब्दुल्ला खाँ को साथ लेकर दरिया खाँ की सहायता को जाय पर इसके पहुँचने के पहिले दरिया खाँ ने दो बार प्रयत्न कर शत्रु को परास्त कर दिया पर पैदल होने के कारण पीछा नहीं कर सका।

इब्राहीम खाँ ने जब अहमद बेग खाँ के परास्त होने और अब्दुल्ला खाँ तथा राजा भीम के पहुँचने का समाचार सुना तब कुल सेना तैयार कर युद्ध के लिये आ पहुँचा। पर जब उसकी सेना वीर शत्रुओ के आक्रमण से घबडा कर भागी तब वह कुछ सेना के साथ मारा गया। शाहजादा ने दरिया खाँ को पुरस्कार मे एक लाख रुपया और कई हाथी बंगाल की लूट से दिए। जब बगाल से आगे बढकर विहार पर भी शाहजादे का अधिकार हो गया तब अब्दुल्ला खाँ दरिया खाँ के साथ आगे इलाहाबाद गया। पहिले सेना सजाकर दुर्ग लेने का प्रबन्ध किया पर बाद को मानिकपुर में गंगा के किनारे पडाव डाला। अब्दुल्ला खाँ ने दरिया खाँ को सहायता के लिये बुलाया पर उसने ढिलाई की। दोनो ओर से मनमुटाव हो गया। इसी बीच महाबत खाँ और सुलतान पर्वेज गंगा के किनारे आ पहुँचे। दरिया खाँ ने नाव का बेड़ा और तोपखाना अब्दुल्ला खाँ से मांगा कि उतारो को दृढ कर शाही सेना को उतरने न दें। अब्दुल्ला खाँ ने भी अब बहाने किए और इस आपस के वैमनस्य मे दोनों ने स्वामी का काम बिगाड़ा। दरिया खाँ ने पहले के विजयो तथा स्वभावतः घमंड के कारण युद्धनीति और बुद्धिमानी के नियमों का उल्लंघन कर उतारों का उचित प्रबन्ध नही किया। महाबत खाँ नाव एकत्र कर दूसरे उतार से पार उतर आया तब लाचार होकर दरिया खाँ अब्दुल्ला खाँ और राजा भीम से जो, जौनपुर में

इकट्ठे हुए थे,जा मिला और वहाँ से सब बनारस मे शाहजादे के पास पहुँचे। यह ठीक हुआ कि कंकोरा[1] मे, जो दृढ़ता से खाली न था, टोंस[2] नाला को आगे रख कर युद्ध की तैयारी की जाय। जब युद्ध मे बादशाही सेना के विजय के लक्षण दिखलाई पडने लगे तब दरिया खाँ के नए सैनिक, जो उसके व्यवहार से दुःखित थे, बिना लड़े ही भाग गए। दरिया खाँ हरावल के दाहिने भाग का सर्दार था पर सेना के भागने पर वह स्वयं भी हट गया। वह जुनेर मे शाहजादा की नौकरी छोड़ कर दक्षिण के सूबेदार खानजहाँ लोदी के यहाँ चला गया। इस स्वामिद्रोह से सन्तुष्ट न होकर इसी सिलसिले मे इसके मन मे और भी कुविचार उठे। जुलूस के समय दर्बार मे क्षमायाचना के साथ उपस्थित होकर इसने चार हजारी ३००० सवार का मंसब पाया और इसे बंगाल प्रान्त मे जागीर मिली। प्रांताध्यक्ष कासिम खाँ के साथ यह वहीं नियत हुआ। इसके बाद इसे खानदेश प्रांत के अन्तर्गत बनादर आदि पर-गने जागिर मे मिले और यह दक्षिण में नियुक्त हुआ।

जब खानदेश का सूबेदार खानजमाँ सय्यद कमाल निजामशाही के अधीनस्थ दुर्ग बीड़ को लेने चला गया था तब निजाम शाह के संकेत से साहू भोसला खानदेश के आसपास उपद्रव मचाने लगा। यह सुन कर दरिया खाँ ने अपनी जागीर से बिजली के समान पहुँच कर साहू को परास्त कर दिया और उसे उस प्रात से निकाल दिया। जब तीसरे वर्ष खानजहाँ लोदी को दंड देने के लिए शाहजहाँ बुर्हानपुर मे आकर ठहरा तब दरिया खाँ भी जागीर से आकर दरबार मे उपस्थित हुआ। उसी झगड़े मे मैत्री तथा स्वजाति का होने के कारण भाग कर यह खानजहाँ के पास जा पहुँचा।[3] जब खानजहाँ दक्खिन के सूबेदार आजम खाँ से परास्त होकर दौलताबाद से भागा तब दरिया खाँ ने चालीस गाँव घाटी से खानदेश मे पहुँच कर वहाँ लूट-पाट मचा दी। अब्दुल्ला खाँ के इसको दण्ड देने पर नियत होने पर यह दौलताबाद लौट आया। उसी समय खानजहाँ के साथ विद्रोह की इच्छा से यह हिन्दुस्तान की ओर खानदेश होता हुआ मालवा मे पहुँचा। बादशाही सेना के पीछा करने से यह ठहरने का साहस न कर सका और जब आगे बढ कर बुन्देलो के राज्य मे पहुँचा तब जुझारसिंह के पुत्र राजा विक्रमाजीत ने दरिया खाँ तक स्वयं पहुँच कर, जो चन्दावल मे था, धावा कर दिया। इसकी मृत्यु आ पहुँची थी, इसलिये बिना समझे युद्ध करने लगा। लड़ाई मे एक तीर लगने से इसकी मृत्यु हो गई। इसका एक पुत्र चार सौ अफगानों के साथ मारा गया। सन् १०४० हि० चौथे वर्ष मे इसका सिर बुर्हानपुर मे बादशाह के पास भेजा गया।

---

१. 'सरजमीन कंकोरा' लिखा है पर वास्तव मे यह कन्तित है, जो मिर्जापुर जिले मे है।

२. टोंस नाला से उस टोंस नदी का तात्पर्य है, जो गंगा की सहायिका है। यमुना की सहायिका टोंस या तमसा दूसरी नदी है।

३. इसी भाग में खानजहाँ लोदी की जीवनी देखिए।

३६५. दस्तम खाँ

दस्तम खाँ रुस्तम तुर्किस्तानी का पुत्र था और अकवर के समय तीन हजारी मंसवदार था। माहम अनगः के सम्बन्ध की वीवी वखिया वेगी इसकी माँ थी जिससे यह शाही महल मे जाता आता था। अकवर की सेवा मे यह पालित हुआ और नवें वर्ष मे यह मीर मुइज्जुल्मुल्क के साथ अब्दुल्ला खाँ उजवेक का पीछा करने पर नियत हुआ। १७वें वर्ष मे खान आजम कोका की अधीनता में गुजरात मे नियत होकर मिर्जा मुहम्मद हुसेन के साथ के युद्ध में बहुत प्रयत्न करके इसने प्रसिद्धि पाई। इसके अनन्तर वहाँ से आज्ञानुसार स्थान आजम के साथ बादशाह की सेवा मे आकर इसने सम्मान पाया। २२ वे वर्ष मे सरकार रणथम्भौर इसे जागीर मे मिला और यह अजमेर प्रान्त का अध्यक्ष नियत हुआ। थोड़े दिनो के वाद इसने विद्रोहियों का दमन कर और अधीनों पर दया दिखला कर अपने शासन-कार्य मे सफलता प्राप्त की। २५वें वर्ष में वलभद्र का पुत्र अचला तथा भारामल के भ्रातृ-पुत्र मोहन, सूरदास और तिलोक-सी राजा की आज्ञा के विना पंजाव से कस्बः लूनी में, जो उनका देश था, पहुँच कर उपद्रव मचाने लगे। दस्तम खाँ ने कछवाहों की मैत्री के कारण उनके चाल-चलन की पूछताछ की और उन विरोधियो को सीधे चाल से रहने को लिखा। इस नम्रता से उन उपद्रवियो का विद्रोह और भी बढ़ गया। इसी समय वादशाही आज्ञापत्र आया कि उन दुष्टों को भय या आशा से शान्त करो नही तो दण्ड दो। खाँ युद्ध नीति के नियमो को भूल कर विना सेना के एकत्र हुए उन पर चढाई करने चला गया। तीनो भतीजे मारे गए पर अचला, जो विद्रोहियों का सर्दार था, ज्वार के खेत मे छिप कर अवसर देखता रहा। दस्तम खाँ युद्ध से लौट कर आया था कि उसने निकल कर उसे वर्छे से घायल कर दिया। पर ऐसा चोट खाने पर भी इसने तलवार से उसे मार डाला। यह वेहोश हो जमीन पर गिर पडा पर आदमियो के सहारे घोड़े पर सवार होकर सैनिकों को उत्साह देता रहा। अन्त मे शत्रु भाग गए और उनके गृह लूट लिए गए। दूसरे दिन ९८८ हि० (सन् १५८० ई०) मे इसकी मृत्यु हो गई। इसके कार्य, इसकी निस्पृहता आदि गुणो के कारण अकवर को इसकी मृत्यु पर वडा दुःख हुआ। उसने इसकी माँ को सान्त्वना देते समय कहा था कि वह अपने सारे जीवन मे केवल हमसे तीन वर्ष अलग रहा पर तुमसे वह वहुत दिनों तक अलग रहा, इससे उसकी जुदाई हमारे लिए अधिक कठोर है।'

३६६. दाऊद खाँ कुरेशी

यह भीखन खाँ का पुत्र था, जो हिसार फीरोजः के शेखजादों में से था। यह खानजहाँ लोदी का विश्वासपात्र तथा अच्छा सेवक था और धौलपुर के युद्ध में, जिसमें उक्त खाँ को बादशाही सेना से युद्ध करना पड़ा, इसने वीरता और पौरुष दिखला कर प्राण छोड़ा। शेख दाऊद ने शाहजादः दारा शिकोह का नौकर होकर अपनी वीरता, शील और सचाई के कारण उन्नति की। ३०वें वर्ष में मथुरा, महावन, जलेसर तथा अन्य महालों का फौजदार नियत हुआ, जो सादुल्ला की मृत्यु पर शाहजादः के जागीर में मिल गया था। यह दो सहस्र सवारों के साथ आगरा और दिल्ली के बीच के मार्ग का रक्षक भी नियत हुआ। उसी वर्ष शाहजादा की प्रार्थना से इसे खाँ की पदवी मिली। दारा शिकोह के प्रथम युद्ध में यह राय शत्रु-साल हाडा के साथ हरावल में नियत था। इसका भाई शेख जान मुहम्मद युद्ध में मारा गया। इसके अनन्तर जब दारा औरंगजेब के सामने से भागा तब इसको सतलज के उस पार तलवन उतार पर छोड़ा, जो उस नदी का मुख्य उतार था। इसके बाद इसने व्यास नदी के दूसरे किनारे को जाकर दृढ किया, जिसमें पीछा करने वालों को रोका जाय पर अन्त में दारा साहस छोड़ कर लाहौर से मुलतान भागा। दाऊद खाँ ने आज्ञानुसार नावों को जला कर डुबो दिया तथा स्वयं उसके पास पहुँचा। सर्वत्र दारा का साथ देते हुए भी यह भक्कर के पास से अलग हो जैसलमेर होता अपने देश हिसार फीरोजा चला गया। इसकी योग्यता और स्वामि-भक्ति प्रसिद्ध थी इसलिए इसी समय औरंगजेब के यहाँ से इसे खिलअत मिला। बादशाही सेना के मुलतान से राजधानी की ओर लौटने पर यह दरबार में गया और अपने कामों के कारण इसने चार हजारी ३००० सवार का मन्सब पाया। शुजाअ के साथ के युद्ध में औरंगजेब की सेना के दाहिनी भाग का यह अध्यक्ष नियत हुआ। शुजाअ के परास्त होने पर मुअज्जम खाँ मीर जुमला के साथ बंगाल की ओर उसका पीछा करने गया। पटना पहुँचने पर शाही फरमान के अनुसार यह वहाँ का सूबःदार नियत होकर वहीं ठहर गया और इसके मन्सब में एक सहस्र सवार दो अस्पा सेह अस्पा बढ़ाए गए। जब मुअज्जम खाँ शुजाअ के पीछे मखसूसाबाद (मुर्शिदाबाद) से अकबरनगर (राजमहल) गया, तब इसे भी आज्ञा मिली कि अपनी तथा प्रान्त की सेना के साथ गंगा उतर टाँडा पहुँचे और शत्रु को दमन करे क्योंकि वह शत्रुओं का निवास-स्थान था और जिसमें वे दोनों ओर से घिर जायँ। दाऊद खाँ अपने भतीजे को अपना प्रतिनिधित्स्वरूप पटने में छोड़कर कुल सेना के साथ स्वयं वहाँ गया और मुअज्जम खाँ की सेना से मिल कर उस कार्य को पूरा किया। शुजाअ के बादशाही राज्य से निकल जाने पर दाऊद खाँ लौट कर पटना चला आया और यहाँ के विद्रोहियों को दंड देने पर कमर बाँधा। पलाऊँ

(पलागूं) पटना से ४० कोस दक्षिण स्थित है और जिसकी सीमा से नगर २५ कोस पर है, वहाँ का जमीदार वरावर ही विद्रोही रहा। वह उस प्रांत के दुर्भेद्य दुर्गों, दुर्गम मार्गों तथा घने जगलो और पहाड़ो के कारण अहंकार से विद्रोह करता रहा। इन सव कठिनाइयो पर विश्वास कर वह इसी समय नये सिरे से वलवा कर कर देने मे वहाना करने लगा। दाउद खाँ ने शाही आज्ञानुसार उस पर चढाई की। पहिले इसने सीमा पर स्थित दुर्गो को, जिन पर विश्वास कर वे वादशाही सीमा के भीतर पहुँच कर सरकारी महालो को लूटते थे, वड़े प्रयत्न से विजय किया। उस प्रान्त के शासक ने परास्त होने पर वहुत कुछ प्रार्थना की कि राजकर निश्चित कर दिया जाय तथा उसका अपराध क्षमा हो, पर दाऊद ने उसकी वात कुछ नही सुनी। ४थे वर्ष सुसज्जित सेना लेकर यह उस प्रान्त पर गया। दुर्ग पलाऊँ के पास मोर्चे लगाए गए और घोर युद्ध होने लगा। उसे स्वधर्म छोड कर मुसलमान वन जाने की शर्त पर क्षमा करने और उस प्रान्त का राज्य दिए जाने की आज्ञा वादशाह ने भेज दी पर उसने इस वात को अर्थात् सनातन धर्म को छोड कर म्लेच्छ धर्म ग्रहण करना नही माना। दाऊद खाँ वरावर युद्ध करता हुआ दुर्ग की दीवाल तक पहुँच गया तथा वड़े धैर्य के साथ युद्ध होता रहा। रहस्यमय सहायता हुई और वहुत से वीर घुड़सवार भी दुर्ग की दीवाल के पास पहुँच कर लड़ने लगे और दुर्ग वाले वहुत तङ्ग हुए, जिससे रात्रि मे जमीदार भाग गया। इस विजय के अनन्तर दाऊद खाँ उस प्रान्त के प्रवन्ध, दुर्ग आदि की रक्षा और अन्य विद्रोहियो के दमन करने के लिए कुछ दिन वही ठहरा रहा। वह मकली खाँ को, जिसे वादशाह ने पलाऊँ की फौजदारी पर नियत किया था, वहाँ छोड कर पटने लौट गया[1]। वहाँ से वादशाह के पास गया और मिर्जा राजा जयसिंह के साथ शिवाजी भोसला को परास्त करने पर नियुक्त हुआ। इसका मन्सव वढ़ कर पाँच हजारी चार हजार सवार तीन हजार सवार दो अस्पः सेह अस्पः का हो गया। उसी समय यह खानदेश का प्राताध्यक्ष नियत हुआ और इसे आज्ञा हुई कि वह अपना प्रतिनिधि कुछ सेना के साथ वुर्हानपुर मे छोडकर स्वयं युद्ध मे जाय। दुर्ग रूरमाल के विजय के उपरात दुर्ग पुरन्धर क घेरे के समय सात सहस्र घुडसवारो के साथ यह वीर खाँ शिवाजी के राज्य को लूटने के लिये मिर्जा राजा से आदेश पाकर उधर गया तथा राजगढ और कोंडाना के आसपास के ग्रामो को लूटपाट नष्ट कर विजयी सेना सहित लौट आया। मिर्जा राजा की सेना के दाएँ भाग का अध्यक्ष होकर इसने वीजापुर राज्य का लूटा और आदिलशाही सेनाओ के साथ कई युद्ध किए। ८वें वर्ष मे खानदेश की सूवेदारी से

---

१. पलामूँ की चढाई का पूरा विवरण आलमगीर नामा, मुआसिरे-आलमगीरी, खफी खाँ आदि मे दिया है। २३ अप्रैल सन् १६६० ई० को चढाई हुई और इसी वर्ष के अन्त मे पलामूँ पर अधिकार हुआ।

बदले जाने पर यह दरबार लौट गया। १०वें वर्ष मे यह बरार का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। वहाँ से फिर बुर्हानपुर मे नियत हुआ। १४वें वर्ष मे बादशाह के यहाँ पहुँच कर इलाहाबाद का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। इसकी मृत्यु का समय नहीं ज्ञात हुआ। इसके पुत्र हमीद खाँ ने वीरता के लिए नाम कमाया और बराबर शाही काम करता रहा। २५वें वर्ष आलमगीरी मे इसकी मृत्यु हुई।

३६७. दाऊद खाँ पन्नी

दाऊद खाँ, बहादुर खाँ और सुलेमान खाँ खिज्र खाँ पन्नी के पुत्र थे। खिज्र खाँ पहिले व्यापार से कालयापन करता था। इसके पश्चात् यह बीजापुर की एक सर्कार मे नौकर हुआ और बहलोल खाँ अब्दुल् करीम मिआनः के प्रयत्न से सर्दार हो गया। खवास खाँ हब्शी के पकडने मे इसने बहलोल खाँ का साथ दिया था। फिर यहाँ से पूर्वोक्त खाँ ने इसको प्रकट मे शेख मिनहाज की सहायता को भेजा, जो दक्खिनियो के साथ शिवाजी को दंड देने गया था, पर वास्तव मे यह उस शेख को मारने के लिये नियत किया गया था। खिज्र खाँ ने उससे मिलने के अनन्तर एक दिन शेख को निमंत्रण देकर अपने यहाँ बुलाया। जब पूर्वोक्त शेख सेना के पास पहुँचा तब खिज्र खाँ स्वागत को बाहर आया। शेख उसके भेद को जानता था, इसलिये पहिले ही फुर्ती से उसकाकाम तमाम कर वह स्वयं अपनी सेना मे जा पहुँचा। बहलोल खाँ इस समाचार को सुनकर सेना के साथ दक्खिनियो पर चढ आया और घोर युद्ध किया। अन्त मे दक्खिनियो ने हैदराबाद के सुलतान से संधि कर लिया और उस ओर चले गए। दाऊद खाँ उस समय नल- दुर्ग मे था। दक्खिन के नाजिम खानजहाँ कोका ने इसके साथ शोक मना कर औरंग- जेब के जुलूसी १८ वें वर्ष मे इसे शाही नौकरी मे ले लिया और इसे चार हजारी मंसब तथा खाँ की पदवी दिला दी। इसके भाइयो और सम्बन्धियो को भी उचितमंसब मिले और नलदुर्ग के साम्राज्य मे ले लिए जाने पर इसको बरार प्रांत मे जफर नगर रहने के लिये मिला।

२६ वर्ष मे बादशाह के दक्खिन आने पर यह अपने भाई सुलेमान खाँ और चाचा रणमस्त खाँ के साथ, जिसका नाम अली था और जो औरंगजेब के सातवे वर्ष मे शाही नौकरी तथा डेढ हजारी मंसब तक पहुँचा था तथा जिसे रणमस्त खाँ की पदवी मिली और वह रुहुल्ला खाँ के साथ दुर्ग वाकीनकीरः के घेरे पर नियत हुआ। ३४वें वर्ष में मोर्चाल में दुर्ग से आई हुई बन्दूक की गोली लगने से यह मर गया। इसका पुत्र उमर खाँ अंत मे रणमस्त खाँ पदवी पाकर प्रसिद्ध हुआ। यह औरंगाबाद के

रणमस्तपुरा मे रहता था, जिसकी मृत्यु के समय इसके कई पुत्र थे पर लिखने के समय कोई नहीं बचे।

दाऊद खाँ ने जुल्फिकार खाँ के साथ नियत होने पर ख्याति पाई। दुर्ग जिंजी (चिंचि) लेने और शत्रु से युद्ध करने मे इसने बहुत प्रयत्न किया। ४३वें वर्ष मे जुल्फिकार खाँ के प्रतिनिधिस्वरूप यह कर्णाटक हैदराबाद में नायब फौजदार नियत हुआ। ४५ वें वर्ष में उस पद के साथ कर्णाटकबीजापुर की फौजदारी भी इसको मिली। ४८वें वर्ष में हैदराबाद के सूबेदार सुलतान मुहम्मद कामबख्श का यह वहाँ नायब नियुक्त हुआ। ४९वें वर्ष में जब बादशाह स्वयं दुर्ग वाकिनकीरा पर आया तब इसने बुलाए जाने पर जिंजी से आकर दुर्ग लेने में अच्छा काम किया और साहस दिखला कर प्रतिष्ठा पाई। औरंगजेब की मृत्यु पर कामबख्श के विरुद्ध युद्ध मे जुल्फिकार खाँ के साथ रहकर इसने बड़ी वीरता दिखलाई। बहादुर शाह के ३रे जुलूमी वर्ष मे उक्त खाँ का प्रतिनिधि होकर यह खानदेश, बरार तथा पाईंघाट छोड़कर समग्र दक्षिण का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। खानखाना की मृत्यु पर यह बुर्हानपुर और बरार पाईंघाट का सूबेदार भी नियत हुआ। बुर्हानपुर मे इसका भांजा बायजीद खाँ नायब था और हीरामन बकसरिया प्रबंध करता था। बरार मे इसका दूसरा भांजा अलावल खाँ नायबी पर नियत था।

जब फर्रुखसियर बादशाह हुआ तब १ले वर्ष में दाऊद खाँ गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। जब दक्खिन की सूबेदारी हुसेन अली खाँ अमीरुल्उमरा को मिली तब वह उस प्रांत को जाने को तैयार हुआ। इसी समय दाऊद खाँ शाही आज्ञा से गुजरात से बुर्हानपुर पहुँचा। नर्मदा पार करने पर अमीरुल्उमरा ने इसको बहुत समझाया पर कुछ भी फल न निकला। बुर्हानपुर के बाहर तीसरे वर्ष में थोड़ी सेना के साथ दाऊद खाँ ने उसका सामना किया और रुस्तम के समान साहस दिखला कर तथा अपना हाथी दौड़ाकर शत्रु-सेना का व्यूह तोड़ डाला। इसी युद्ध मे सन् ११२७ हि० (१७१५ ई०) मे जम्बूरक की गोली लगने से यह मारा गया। इसे पुत्र न थे। बहादुर खाँ और सुलेमान खाँ इसके सगे भाई भी बड़े भाई के साथ शाही कार्यों में लगे हुए थे। दूसरे भाई ने ५१वें वर्ष मे दो हजारी मंसब पाकर औरंगजेब की मृत्यु पर मुहम्मद आजम शाह का साथ दिया। इसके अनन्तर जब बहादुर शाह गद्दी पर बैठा तब पहिले वर्ष मे यह बुर्हानपुर का सूबेदार नियत हुआ। दूसरे वर्ष बादशाह के वहाँ पहुँचने पर जब प्रजा ने इसके अत्याचार की फर्याद की तब यह उस पद से हटा दिया गया। बहादुरशाह की मृत्यु पर इसने अजीमुश्शान का साथ दिया तथा दूसरे शाहजादों के साथ के युद्ध मे सन् ११२३ हि० (सन् १७११ ई०) मे यह मारा गया। इसको दौहित्रों के सिवा पुत्र नहीं थे। इनमे सबसे बड़े का नाम इब्राहीम खाँ था और अपने मामा की मृत्यु पर इसने बहादुर ख़ाँ की पदवी पाई। इसने ४९ वें वर्ष मे अच्छा मंसब और डंका पाया। जब औरंगजेब के राज्यकाल मे दाऊद खाँ

दक्खिन का नायव सूबेदार हुआ तब यह हैदराबाद का नायव था। फर्रुखसियर के समय जब हैदर अली खाँ दक्खिन का दीवान हुआ तब इसको कमर नगर (कर्नोल) की फौजदारी मिली। मुहम्मदशाह के राज्य के आरम्भिक काल मे आज्ञानुसार मुबारिज खाँ के साथ आकर यह सन् ११३६ हि० (सन् १७७४ ई०) मे निजामुल्मुल्क आसफजाह से युद्ध कर मारा गया। इसके पुत्र अलिफ खाँ और रणदूल्ह खाँ थे। पहिला कमर नगर की फौजदारी पर नियत हुआ और दूसरा जागीर पाकर आसफजाह के साथ रहा। दोनो के मरने पर कर्नोल की फौजदारी अलिफ खाँ के पुत्र बहादुर खाँ को मिली। यह वहाँ वहुत दिनो तक रहा। जब शहीद नासिरजंग की सेना पर फुलझरो (पौंडीचेरी) के टोपीवालो ने रात को छापा मारा और सेना का व्यूह टूट गया तब उक्त शहीद इसको अपना समझ कर इसकी सेना की ओर, जो बायाँ भाग था, आया। बहादुर खाँ शत्रु से लगाव रखता था इसलिये इसने जानबूझकर सन् ११६४ हि० (सन् १७५० ई०) मे उसको गोली से मार डाला। इसके बाद हिदायत मुहीउद्दीन खाँ (आसफजाह का दौहित्र मुजफ्फरजंग) से मेल करके विजयी के समान उससे सलूक किया। यद्यपि सर्दार ने उस समय दूरदर्शिता से कुछ नही कहा पर सेना के कडप्पा के पास रायचूर पहुँचने पर उसका धैर्य छूट गया और झगडा हो गया। अन्त में युद्ध हुआ, जिसमे सर्दार तीर से घायल हुआ और बहादुर खाँ गोली से मारा गया। शैर का अर्थ—

ससार में जो कोई काम मिलता है, वह जब नीचे को जाता है तो खराब होता है। कोई भी अभिलाषा सदा पूर्णता को नही पहुँचती, जैसे पृष्ठ पूरा होने पर उलट दिया जाता है।

लिखने के समय बहादुर खाँ का सौतेला भाई रणमस्त खाँ उर्फ मुनौअर खाँ कर्नोल की फौजदारी से कालयापन करता था और ग्रन्थकर्ता से उसकी मैत्री थी।

०

३६८. दानिश मन्द खाँ

यह यज्द का मुल्ला शाफेई था। बहुत दिनो तक ईरान मे यह विद्याध्ययन करता रहा। अनेक विज्ञान तथा प्रचलित गुण आदि सीखने के बाद प्रतिष्ठा के साथ जीविका की खोज मे ईरानी सौदागरो से कुछ ऋण लेकर हिन्दुस्तान आया, जो आशा रखनेवाले तथा करनेवाले के लिये लाभ का घर है। थोड़े दिनो तक यह शाही कंप मे रहा और आगरा राजधानी से लाहौर होता हुआ काबुल तक साथ गया। वहाँ से बादशाह के लौटने पर यह घर लौटने की इच्छा से सूरत गया। पर इसके ग्रह अब जाग चुके थे और इसका भाग्य अब खुलने को था,

इसलिये इसकी विद्वता और गुण शाहजहाँ को मालूम हुए। दरवार से उस वन्दर के अध्यक्ष को आज्ञा भेजी गई कि इसको दरवार भेज दो। भाग्य के मार्ग-प्रदर्शन से इसने शाही तख्त की यात्रा की और सूरत से २४वे वर्ष में ९ जीहिज्जः (सन् १६५० ई०) को वादशाह के सामने पहुँचा।

जव इसकी योग्यता और गुणों को शाहजहाँ ने पहिचाना तव उस गुणग्राहक वादशाह ने इस पर कृपा-दृष्टि कर इसे एक हजारी १०० सवारो का मंसव दिया तथा आज्ञा दी कि रविवार की भेंट इसे एक वर्ष तक मिलती रहे। इसके वाद इसका मंसव वढ़ाया गया और २९वें वर्ष मे लश्कर खाँ के स्थान पर यह द्वितीय वख्शी हुआ। साथ ही इसको दानिशमंद खाँ की पदवी मिली तथा इसका मंसव वढकर ढाई हजारी ६०० सवार का हो गया। ३१ वें वर्ष मे इसका मंसव तीन हजारी ८०० सवार का हो गया और एतकाद खाँ के स्थान पर यह वख्शी नियत हुआ। इसी वर्ष यह नौकरी से त्याग-पत्र देकर राजधानी शाहजहानावाद मे एकान्तवास करने लगा। आलमगीरी जलूस के दूसरे वर्ष मे फिर से इस पर शाही कृपा हुई और इसने चार हजारी २००० सवार का मंसव पाया। ७वे वर्ष के आरम्भ मे पाँच हजारी का ऊँचा मंसव मिला। ८वे वर्ष मे दुर्ग शाहजहानावाद का सूवेदार तथा अध्यक्ष नियत हुआ। १०वे वर्ष में मुहम्मद अमीन खाँ के स्थान पर मीर वख्शी नियत होने पर इसे जडाऊ कलमदान मिला। जव १२वे वर्ष मे औरंगजेव आगरा गया तव इसे राजधानी दिल्ली की अध्यक्षता तथा वख्शीगिरी दोनो मिली। १३वें वर्ष मे १० रवीउल् अव्वल सन् १०८१ हि० (१८ जुलाई सन् १६७० ई०) को इसकी मृत्यु हुई।

यह अमीर उस समय के अच्छे विद्वानो मे से था तथा सच्चरित्रता और दूरदर्शिता के लिए प्रसिद्ध था। इसके वाद प्रायः अव तक ऐसा उच्चपदस्थ अमीर, जिसमे विद्वत्ता तथा अमीरी दोनो हो, नहीं हुआ। कहते हैं कि जव इसे शाही नौकरी मिली तव इसको मुल्ला अब्दुल्हकीम सिआलकोटी से, जो वुद्धि और विद्या मे वहुत वढ़ा हुआ था और जिससे वढ कर हिंदुस्तान में कोई दूसरा विद्वान नहीं था, जैसा कि अच्छे ग्रंथों पर की उसकी टीकाओं को मनन करने से ज्ञात होता है, तर्क और शास्त्रार्थ करने के लिये आज्ञा हुई थी। दोनों विद्वानों में इस सूत्र के (मैं तेरी ही पूजा करता हूँ और तुझी से सहायता मांगता हूँ) सम्वन्धवाचक भाव के वारे मे वहुत समय तक तर्क होता रहा। अल्लामी सादुल्ला खाँ, जो विद्या का झण्डा था, निर्णायक हुआ। दोनों ही अन्त मे वरावर रहे। उस दिन से इस पर शाही कृपा हुई और इसका सम्मान वढा। यह भी कहते हैं कि उक्त खाँ अवस्था वढने पर फिरंगी विद्या की ओर भी आकर्षित हुआ और वहुधा उनके तर्को का उल्लेख करता[1] परन्तु इसकी विद्या और वुद्धि देख कर यह ठीक नहीं ज्ञात होता।

१. वर्नियर ने अपने यात्रा-विवरण में इसका उल्लेख किया है।

३६१. दाराब खाँ, मिर्जा

यह मिर्जा अब्दुल् रहीम खानखानाँ का द्वितीय पुत्र था। इसने पिता के साथ बराबर युद्ध और चढाइयो मे रह कर प्रसिद्धि पाई थी। खिरकी युद्ध मे, जो संसार प्रसिद्ध है, अपने बड़े भाई शाहनवाज खाँ के साथ इसने बहुत प्रयत्न किया था, जिससे उसका मन्सब बढा था। जब १४वें वर्ष जहाँगीरी मे शाहनवाज खाँ मरा तब यह पाँच हजारी ५००० सवार का मन्सब पाकर अपने भाई के स्थान पर बरार और अहमदनगर का सूबेदार नियुक्त हुआ। १५वें वर्ष मे जब मलिक अम्बर हब्शी ने अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर शत्रुता आरम्भ की और बादशाह के दूरस्थ काश्मीर पर अधिकार करने जाने को अच्छा अवसर समझ कर शाही सीमा पर चढ़ाई कर दी तब बहुत से स्थानो के सर्दारगण दाराब खाँ के पास आकर एकत्र हो गए। अहमदनगर का अध्यक्ष खंजर खाँ दुर्ग मे जा बैठा। दाराब खाँ अपनी सेना तैयार कर बालाघाट की ओर गया। अम्बर के बर्गी घुड़सवार इससे कुछ दूर हटे हुए प्रति दिन चारो ओर घूमते रहते। युद्ध बराबर होता और हर बार वे परास्त होकर भागते तथा मारे जाते। एक दिन दाराब खाँ अच्छे घुड़सवारो को साथ लेकर युद्ध को गया और घोर युद्ध पर विजयी हो बहुत सा लूट लेकर लौटा पर शत्रु ने कम्प का मार्ग इसके बाद ऐसा बन्द कर दिया, जिससे गल्ला नहीं आने पाता था और महँगी तथा कमी से बहुत कष्ट होने लगा। अन्त मे लाचार होकर इसने रोहनखीरा से कम्प उठा दिया और बालापुर मे आ जमाया। जब दक्खिनी लुटेरे यहाँ भी पहुँचे और यहाँ तक उनका साहस बढा कि नर्मदा उतर कर वे मालवा मे लूट पाट मचाने लगे तब शाहजहाँ दक्खिन की सूबेदारी पर पुनः नियुक्त होकर १६वें वर्ष मे बुर्हानपुर आया। प्रबल सेना ने गोदावरी नदी तक निजामशाही राज्य को खूब लूटा और खिरकी को, अम्बर के रहने का स्थान तथा जहाँ से वह सेना पहुँचने के एक दिन पहले ही दुर्ग दौलताबाद मे चला गया था, उजाड़ कर दिया। तब अंबर ने नम्रता से बादशाही साम्राज्य की सीमा के पास के इलाको के लिये १४ करोड़ दाम और ५० लाख रुपया सिक्का वार्षिक कर देकर सन्धि कर ली। १७ वें वर्ष मे पिता की आज्ञा से शाहजहाँ कन्धार की चढाई के लिये खानखानाँ और दाराब खाँ के साथ दक्खिन से रवाना हुआ।

पर भविष्य मे कुछ और ही लिखा था, जिससे बादशाह और शाहजादा मे यहाँ तक वैमनस्य हो गया कि युद्ध की तैयारी हुई। शाहजादा कर्तव्यज्ञान के कारण शाही सेना का सामना न कर हट गया पर राजा विक्रमाजीत को, जो अच्छा शाही सर्दार था, दाराब खाँ के साथ बादशाही सेना का सामना करने को नियत किया। दैवात् युद्ध मे किसी ओर की बंदूक की गोली लगने से राजा मारा गया, जिससे सेना का प्रबन्ध बिगड़ गया और दाराब खाँ शाहजादे के पास भाग गया।

जब शाहजहाँ ने बुर्हानपुर से खानखानाँ को महाब्त खाँ के पास बाध्य होकर सन्धि के लिए भेजा और उस वृद्ध पुरुष ने स्वामि-भक्ति तथा मैत्री को भूल कर शत्रु का साथ दिया तब दाराब खाँ खानखानाँ के अन्य पुत्र पौत्रादि के साथ कैद कर दिया गया। जब शाहजहाँ ने बंगाल पर अधिकार कर विहार को लेने का विचार किया तब दाराब खाँ पर कृपा कर उसे बंगाल का शासक बनाया पर उसकी स्त्री, एक पुत्र, एक पुत्री और एक भतीजे को जमानत में अपने पास रख लिया। जब शाहजादा बनारस के पास टोंस युद्ध मे परास्त होकर उसी मार्ग से दक्षिण को चला तब उसने दाराब खाँ को लिखा कि जल्दी से गढ़ी तक, जो बंगाल का फाटक है, पहुँच कर वहाँ उपस्थित हो। इसने झुठाई से दूसरा हाल देख कर उत्तर मे लिखा कि विद्रोही जमींदारो ने मिलकर उसे घेर लिया है, वह उपस्थित नहीं हो सकता। यद्यपि विद्रोह की बात ठीक थी पर तब भी साथ छोड़ कर उसने मित्रता नहीं निवाही और स्वामि-द्रोह किया। शाहजादा ने समय देख कर उससे अपनी रक्षा का हाथ उठा लिया और क्रोध से उसके युवा पुत्र तथा भतीजे को अब्दुल्ला खाँ को सुपुर्द कर दिया। दीवाने को संकेत बहुत है और इससे उसके द्वारा वे दोनो निर्दोष मारे गए। सुलतान पर्वेज और महाबत खाँ को जब यह बात मालूम हो गई तब उन्होने जमींदारो को लिख भेजा कि लूट से हाथ खींच लें और उसे इधर भेज दें। जब १९वें वर्ष के अन्त मे दाराब खाँ सुलतान पर्वेज के पास पहुँचा, तभी जहाँगीर की आज्ञा महाबत खाँ को मिली कि उस अभागे को जीवित रखने मे कुछ लाभ नहीं है इसलिए जल्द उसका सिर दरबार में भेज दो। महाबत खाँ ने आज्ञा के अनुसार सिर कटवा कर भेजवा दिया। यह सन् १०३४ हि० (सन् १६२५ ई०) मे हुआ, जैसा 'शहीद पाक शुद दाराब मिस्कीन' (गरीब दाराब पवित्र शहीद हुआ) तारीख से निकलता है। महाबत ने पहिले उस सर को एक बर्तन मे छिपा कर तर्बूज के नाम से खानखानाँ के पास भेजा, जो उसके कैद मे था। खानखानाँ ने देख कर कहा कि 'तर्बूज शहीदी' है। दाराब गुणों से युक्त एक युवक वीर तथा योग्य सैनिक था। इसके समान दक्षिण में किसी ने साहस नहीं दिखलाया था—पर उसकी जन्म कुण्डली भाग्यहीन थी। शाहजहाँ का पक्ष छोड़ने पर तथा बादशाही पक्ष से निकाले जाने पर इसका अंत बुरा हुआ।

३७०. दाराब खाँ

यह सब्जवार के मुख्तार खाँ का पुत्र था और शम्सुद्दीन मुख्तार खाँ का छोटा भाई था। जब शाहजादा औरंगजेब राज्य लेने और दारा को परास्त करने के लिये, जिसने शाहजहाँ के बीमार हो जाने से राज्य का कुछ प्रबन्ध-कार्य अपने अधीन कर लिया था, दक्षिण से आगरे की ओर चला तब दाराब खाँ दक्षिण के सहायकों में नियत किया जाकर लौटा दिया गया। जब शाहजादा विजयी हुआ, तब पहिले

ही जलूस मे यह खाँ की पदवी पाकर अहमदनगर दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। दूसरे वर्ष के अन्त मे बदले जाने पर यह बादशाह के पास आया। ९वें वर्ष मे फैजुल्ला खाँ के पद पर करावल बेगी का दारोगा हुआ और इसके बाद बन्दूक खाना खास का अध्यक्ष हुआ। १६वें वर्ष मे अब्दुल्ला खाँ के स्थान पर गुस्लखाना का दारोगा हुआ और फिर रुहुल्ला खाँ के स्थान पर आम्ताबेगी का दारोगा हुआ। इसके अनन्तर अजमेर का शासक नियत हुआ। १९वें वर्ष मे वहाँ से दरबार आया और मुलत्फात खाँ की जगह पर मीर आतिश हुआ तथा मीर तुजुक प्रथम का भी काम योग्यता से किया। २२वें वर्ष मे सज्जित सेना सहित यह खडील्ला के राजपूतो को दमन करने और वहाँ मन्दिर तोडने गया। उक्त खाँ ने, जब बादशाह अजमेर मे, विद्रोहियो के उस निवासस्थान पर चढाई कर खडीला, स्रानोला आदि के मन्दिरो को खोद कर नष्ट कर दिया। तीन सौ के ऊपर राजपूत दृढता से लड कर मारे गए। उसी वर्ष २५ जमादिउल् अव्वल सन् १०९० हि० (२४ जून सन् १६९७ ई०) को यह मर गया। इसे तीन पुत्र और एक पुत्री थी। बडे मुहम्मद खलील ने तरबियत खाँ की पदवी पाई, जिसका वृत्तात अलग दिया है।' दूसरा मुहम्मद तकी खाँ है, जिसका बहरःमंद खाँ बख्शी की पुत्री से विवाह हुआ। इसका पुत्र मुबी पिता की मृत्यु पर मुहम्मद तकी खा की पदवी से प्रसिद्ध हुआ। ४८वें वर्ष मे शायस्ता खाँ अमीरुल् उमरा के पुत्र शायस्ता खाँ की पुत्री से इसका विवाह हुआ। औरंगजेब इसे मित्र समझता था। बहादुरशाह के समय इसे माँ की ओर से नाना की बहरःमन्द खाँ की पदवी मिली। जहाँदार शाह के समय जब जुल्फिकार खाँ अमीरुल् उमरा वजीर हुआ और राज्य का अधिकार तथा प्रबन्ध भी इसी को मिला तब उक्त खाँ सम्बन्ध के कारण पाँच हजारी मन्सबदार हो गया और वजीर का भी कुछ काम करता था। ईश्वर के इच्छानुसार जब जहाँदरशाह के साम्राज्य रूपी दूकान का अन्त हो गया और दूसरे प्रकार की वस्तुएँ काम आने लगी तब उक्त खाँ का धन, मान, मन्सब तथा जागीर सब छिन गई। अमीरुल् उमरा हुसेन अली खाँ की सहायता मे वह कष्ट के इन लहरो से बच कर दक्षिण के सुरक्षित तट पर पहुँचा। औरंगाबाद मे अम्बरी तालाब के पास सुलतान महमूद की हवेली मे, जिसे औरंगजेब ने मृत बहरःमंद खाँ को दिया था, बहुत दिनो तक रहा।

जब दक्खिन मे आसफजाह का राज्य हुआ तब इस वंश का सम्मान सुन कर इस पर कृपा दिखलाई और दुर्ग अरक का अध्यक्ष नियत किया, जिसमे सिवाय एकान्तवास करने के आय कुछ नही। पन्द्रह या सोलह वर्ष यहाँ इसने बिताए। इसका एक पुत्र इस समय उस दुर्ग मे रहता है, जो प्रायः उजाड हो रहा है। उक्त खाँ ऐसी अवस्था मे खूब भोजन करता था। तीसरा पुत्र कामयाब खाँ था, जो मतलब खाँ की पुत्री से व्याहा था। इसे एक पुत्री थी, जिसका फर्रुखसियर के समय हुसेन अली खां से निकाह हुआ था। परन्तु दाराब खाँ की पुत्री का निकाह मीर

लश्करी से हुआ था, जो मीर हैदर सफवी के पौत्रों मे से था। उसका बड़ा पुत्र असकर अली खॉ बहुत दिनों तक दक्षिण मे धरप का दुर्गाध्यक्ष रहा, जो अपनी दृढ़ता तथा दुर्भेद्यता के कारण द्वितीय दौलतावाद कहा जाता है। आसफजाह ने इसके वंश का विचार कर अपने पास ही रख कर इसे जागीर का मुत्सद्दी और अपना दीवान बनाया। इस समय यह कुछ सरकारी कार्य करता है। यह वृद्ध हो गया है। ईश्वर कृपा रखे।

३७१. दियानत खाँ हकीम जमाला काशी[1]

शाहजहाँ के जलूस के प्रथम वर्ष मे यह मुमताजुलमानी की सर्कार का दीवान नियत हुआ। चौथे वर्ष मे इसका मंसव वढ कर एक हजारी २५० सवार का हो गया और यह मीर अब्दुल् करीम के स्थान पर पंजाव प्रांत का दीवान नियत हुआ। जव उसके कार्य मे सचाई और सफाई मालूम हुई तव पाँचवें वर्ष मे इसको दियानत खाँ की पदवी मिली, मंसव मे १५० सवार वढाए गए और सर्कार सरहिंद की दीवानी, अमीनी तथा फौजदारी राय काशीदास के स्थान पर इसे मिली। ९वे वर्ष मे २०० सवार और वढ़े। ११वें वर्ष मे दुर्ग कंधार के वादशाही अधिकार मे चले आने पर और यह सुन कर कि शाह सफी ईरानी उस पर चढाई करने वाला है, जव शाहजादा शुजाअ कावुल में उसकी सीमा पर नियुक्त हुआ, तव यह उसकी सेना की दीवानी के पद पर नियत हुआ। १२वे वर्ष मे आकिल खाँ इनायतुल्ला के स्थान पर मंसवदारों के 'दाग व तसदीक' का काम इसको मिला। १४वें वर्ष मे खिलअत और घोड़ा मिला तथा औरंगावाद, वरार का वालाघाट और तेलिंगाना का, जिस पर अधिकार हो चुका था, दीवान नियत हुआ। १७वे वर्ष मे पाँच सदी जात मंसव में वढा, जो मंसव १८वे वर्ष मे दो हजार ७०० सवार का हो गया। २१वें वर्ष में जव उक्त प्रांतों पर रायरायान दीवान नियत हुआ तव यह दर्वार लौट गया पर इसके वाद जव शाहजादा मुराद ने रायरायान के सम्वन्ध में अपनी अप्रसन्नता प्रकट की तव २२वे वर्ष में उसके स्थान पर चारों सूवों की दीवानी पर यह नियत हुआ। २७वे वर्ष में वहाँ से वादशाह के यहाँ आया और शाहजादा मुराद के सर्कार के दीवानी पद पर यह नियत हुआ। जव औरंगजेव के भला चाहने वालो की इच्छा पूर्ति का समय आया तव वह नौकरी मे पहुच कर शाही काम मे जैसे दाग के दरोगा

---

१. काशी से वनारस से तात्पर्य नही है। यह काश का रहने वाला था, जिससे काशी शब्द वना है।

के पद पर नियत हुआ। ८वें वर्ष आलमगीरी में वयूतात का दीवान नियत हुआ और ९वें वर्ष मे उस कार्य से हटाया गया। १६वे वर्ष सन् १०८३ हि० (सन् १६७२ ई०) में यह मर गया। इसके पुत्र देव अफगन, शेर-अफगन और रुस्तम को शोक के खिलअत मिले। २४वे वर्ष मे पहला 'दाग और तसदीक' का दरोगा हुआ और उसे मोतमिद खाँ की पदवी मिली। दूसरे दोनो को भी योग्य मंसव मिले।

०

३७२. दियानत खाँ

इसका नाम मुहम्मद हुसेन दश्तवयाजी[1] था। कोहिस्तान प्रांत के नो भागों में से एक दश्तवयाज है। उस देश का एक सरदार था। इतिहास-ज्ञान मे यह अपने समय का एक ही था। सौभाग्य से जुनेर मे पहुँच कर शाहजहाँ की नौकरी मे नियत हो विश्वास तथा मुसाहिबी में इसने प्रतिष्ठा पाई। शाहजहाँ की गद्दी के दिन दो हजारी ८०० सवार का मंसव और ८००० रुपए पुरस्कार मे मिले। जव दक्खिन के सूवेदार खानजहाँ लोदी ने जहाँगीर की मृत्यु पर ऐसा काम किया, जो शाहजहाँ के प्रति स्वामि-भक्त तथा हिताकांक्षा के विरुद्ध था, तव भी शाहजहाँ ने समय देखकर उसे उसकी सूवेदारी, मंसव और जागीर के वहाली का फर्मान भेज दिया पर साथ ही उसके कार्यों की जाँच भी की। खानजहाँ ने मालवा उसके अध्यक्ष मुजफ्फर खाँ से लेकर उसपर अधिकार कर लिया था, दक्षिण मे नियुक्त कुल सरदारो और अफसरो को उसने अपने पक्ष मे मिला लिया था तथा निजामशाह को वालाघाट सौंप कर उसे भी अपना साथी वना लिया था। विद्रोह की आशंका से शाहजहाँ ने पहिले वर्ष जुलूसी मे दियानत खाँ को, जो वुद्धिमानी और दूरदर्शिता के लिये विख्यात था दक्षिण के वाकेआनवीसी पद पर नियत कर गुप्त आज्ञा दी कि खानजहाँ के भेदो और उसके षड्यंत्र के रहस्य को समझ कर वृत्तांत लिख भेजे। यह आज्ञा पाकर खाँ ने वडी वुद्धिमानी और समझदारी से वुर्हानपुर पहुँचने के वाद खानजहाँ की चाल और वात से वास्तविक भेद का पता लगाकर वादशाह को लिखा कि केवल शका के कारण उस मनुष्य मे विद्रोह और उपद्रव की इच्छा छिपी हुई है। वास्तव मे उसका मन भय से फिरा हुआ है। विद्रोह का षड्यंत्र वह नही कर सकता। निश्शंक होकर आप उसे वुला लीजिए क्योकि अभी तक इस प्रात मे कुछ भी गड़वड नहीं है। शाहजहाँ ने यह पत्र पाकर शंका मिटते ही खान जहाँ को दक्खिन की सूवेदारी से हटाकर

---

१. दश्तवयाज का निवासी। यह खुरासान के पार्वत्य प्रांत में एक जिला है जिसका अर्थ श्वेत जंगल है।

मालवा का उसे प्रांताध्यक्ष वनाया और दियानत खाँ को अहमदनगर का दुर्गाध्यक्ष नियत खाँ को अहमदनगर का दुर्गाध्यक्ष नियत किया। दूसरे वर्ष के आरम्भ में ५०० जात ७०० सवार मंसव मे वढाए गए। जव तीसरे वर्ष मे बुर्हानपुर मे वादशाह रहने लगे तव खाँ का मंसव ढाई हजारी २००० सवार का हो गया। पर उसी वर्ष सन् १०४० हि० (सन् १६३०—१ ई०) मे यह अहमदनगर में मर गया।

•

३७३. दियानत खाँ

इसका नाम मीर अब्दुल् कादिर था और अमानत खाँ खवाफी का वड़ा पुत्र था। यह उच्चमनस्क और गंभीर पुरुष था, सत्यवादी तथा सच्चा और युद्ध एवं प्रवंध में कुशल था। अपने पिताजी के जीवन मे औरंगजेव के राजत्व मे शाही नौकरी मे इसने ख्याति पाई और अच्छे काम करने तथा योग्यता दिखलाने से इसने नाम कमाया। जिस समय इसका पिता दक्षिण की दीवानी के कार्यों के संपादन मे लगा हुआ था, उस समय यह भी उसके साथ नगर औरंगावाद में वहाँ की इमारत का अध्यक्ष होकर रहता था। जव आलमगीर वहाँ आया तव उसने नगर-दीवाल की, जो एक सहस्र गज अर्थात् दो शाही कोस लंवा है, मरम्मत करने की आज्ञा दी। विजयी सेना के कोतवाल इहतमाम खाँ के निरीक्षण में यह कार्य पहिले होने लगा पर जव वादशाह इस काम की जल्दी करने लगे तव दियानत खाँ ने चार महीने में इसे पूर्ण करने का वचन दिया और इसे तीन लाख रुपये व्यय कर उतने समय ही में वनवा दिया। इसके पिता की मृत्यु पर, जिस सत्यनिष्ठ की अच्छी सेवा वादशाह के ध्यान पर चढ़ी हुई थी और उस गुणग्राही वादशाह ने उस मृत के हर एक साथी सम्वन्धी का विचार रखा था तथा दियानत खाँ उसका सवसे वड़ा व योग्य पुत्र था इसलिये उस पर विशेष कृपा हुई और इसकी वृत्ति वढाई गई। इसके छोटे भाई मीर हुसेन को, जिस पर इससे भी वढ़कर शाही कृपा थी, पिता की पदवी मिली और इसे दियानत खाँ की पदवी मिली। २४ वें वर्ष मे इसे मूसवी खाँ द्वितीय मुइज्ज की मृत्यु पर दक्खिन प्रांत की दीवानी मिली।

जव ४३ वें वर्ष मे इसके भाई अमानत खाँ द्वितीय की, जो सूरत वदर का मुत्सद्दी था, मृत्यु हुई, तव यह उसी वंदर मे उक्त पद पर नियत हुआ। इसका मंसव ५०० वढकर दो हजारी हो गया। उस वन्दर का कार्य अच्छी तरह न कर सकने पर वाद-शाह ने इसको दरवार में वुला लिया। इसके अनन्तर दक्खिन की दीवानी पर नियत

होकर यह फिर लौटा। औरंगजेब की मृत्यु के अनन्तर मुहम्मद आजमशाह ने उसको इसी काम पर अपनी ओर से औरंगाबाद मे छोड़ा।

उस समय के दीवानों के अधिकार और विश्वास का क्या कहना था। वे ११ सहस्र दाम तक अपने हस्ताक्षर से वेतन दे सकते थे। उन कारण जिसे वे अधिक देना चाहते थे, उसको कई बार करके इससे भी अधिक धन दे सकते थे। बादशाह या नाजिम कुल् अर्थात् प्रधान मंत्री के हस्ताक्षर विना किसी जागीर की स्वीकृति नही मिल सकती थी और सिवा खाँ फीरोज जंग के जो बरार मे रहता था, अन्य कोई इनसे उच्चतर अमीर दक्खिन मे नही था इसलिये आवश्यकता होने पर वेतनों की सूची स्वीकृति के लिये इसी के पास आती और यह उच्चपदस्थ सर्दार उस पर यह लिख कर कि यह एकाएक उपस्थित की गई है, हस्ताक्षर कर देता था। इसके बाद जब वहादुर शाह गाजी बादशाह होकर दक्षिण आया तब यहाँ की दीवानी मुर्शिद कुली खाँ के नाम हुई और उसके बंगाल से यहाँ पहुँचने तक मूसवी खाँ मिर्जा महदी उसका प्रतिनिधि नियत हुआ। जब दियानत खाँ बादशाह के पास आया तब उस पर कृपा हुई। जब वहादुरशाह कामबख्श को दमन करने के लिये हैदराबाद आया तब उक्त खाँ को दुर्जय दुर्ग बीदर मे उन महाल के कैदी असामियों की रक्षा के लिये छोड़ा और उसका अधिकार भी दिया। जब वहादुरशाह उस ओर से हिन्दुस्तान लौटा तब दियानत खाँ को, जिसने औरंगाबाद को अपना घर बना लिया था, दुर्ग औरंगाबाद की अध्यक्षता मिली। वहाँ यह आराम से कालयापन करने लगा। जब मुर्शिद कुली खाँ बंगाल से दरबार मे पहुँचा और इस कारण कि उसका मन उसी प्रांत में लगा था, वह यह काम लेना (दक्षिण की दीवानी) नही चाहता था तब उसने पुराने एहसानों के विचार से उक्त खाँ के लिये बहुत प्रयत्न किया और इससे दियानत खाँ को दूसरी बार दक्खिन की दीवानी की नियुक्ति प्राप्त हुई।

जब मुहम्मद फर्रुखसियर बादशाह हुआ तब दक्खिन की दीवानी हैदर अली खाँ खुरासानी को मिली। उसके पहुँचने के पहिले ही दियानत खाँ की मृत्यु हो गई। यह विद्वत्ता तथा कई गुणो मे निपुण था। इसके दरबार में मौलाना रूमी कृत मसनवी हकीकी आदि पुस्तकें अर्थ सहित पढी जाती थीं। इसका पुत्र दियानत खाँ दूसरा है, जिसका वृत्तांत अलग लिखा गया है। दौहित्रो मे बड़ी पुत्री के लड़के सय्यद अमानत खाँ प्रसिद्ध नाम अर्जुमंद खाँ पर इसका अत्यधिक स्नेह था। उसका पिता सय्यद अताई था, जिसका पिता मीर अहमद तूरान से आया था। वह बड़ा साहसी तथा बुद्धिमान और कविता प्रेमी था। थोड़े दिनों इसने नाना की नायबी की जिसके बाद हैदर अली खाँ के साथ उसका परिचय हुआ और यह बीड का फौजदार नियत हुआ। गुजरात मे उक्त खाँ की ओर से यह पीतलद में नियुक्त था। थोड़े दिन पहले आसफजाह के प्रस्ताव पर अंदौर का आमिल नियुक्त हुआ, जो बीदर प्रांत मे एक प्रसिद्ध

महाल है। इसी वर्ष अभाग्य से और आँखो के रोग से इसको घर वैठ रहना पड़ा, जिसमे विना चश्मे के कुछ दिखाई पड़ना कठिन है। इसी वेकारी मे इसको कीमियागरी का शौक हुआ और अच्छी किताबो से इस विज्ञान को सीखा। पर इसकी सफलता गुप्त कोष है, जो अत्तार की दूकान पर नहीं मिलती। यह केवल आशा मात्र है। जिस पर ईश्वर की कृपा होती है, उसे ही वह इसके लिये चुनता है।

•

३७४. दियानत खाँ

इसका नाम मीर अली नकी था और अर्जुमंद खाँ मीर अब्दुल् कादिर दियानत खाँ का योग्य पुत्र था। सचाई तथा ईमानदारी मे यह पिता के समान था। वादशाही सर्कार के प्रवन्ध मे यह कभी न झूठ वोला और न कभी आलस्य किया। यौवन के आरम्भ ही में अपने पूज्य पिता की नायवी में, जो दक्खिन की दीवानी पर नियत हो शाही छावनी में रहता था, इसको औरङ्गावाद की दीवानी मिली। नगर की वयूताती अर्थात् सर्कारी इमारतो के निरीक्षक का भी पद इसे मिला। इसने जवानी में वुद्धिमानी और अनुभव से ईश्वर पर भक्ति वढ़ाई। सौभाग्य से खुदाई वातो के ज्ञाता तथा पहुँचे हुए साधु मियाँ शाह नूर का शिष्य हुआ, जो फकीरी के सामान आदि न रखता, एकांतवास करता और ध्यान मे दिन व्यतीत करता। यह उसका सच्चा अनुवर्ती था। उसी अल्पावस्था मे उस वुजुर्ग के सत्संग के फल से अपने को कुमार्ग मे जाने से वचाया और इस सम्प्रदाय के पवित्र आचारों को अपनाया। जव यह पहुँचा हुआ पीर मर गया तव दियानत खाँ ने उसका मकवरा मरम्मत कराने तथा वनवाने मे वहुत धन व्यय किया और कुछ जमीन उसके लिए वक्फ भी कर दिया, जिससे उसकी शोभा वढ़ गई। वर्तमान समय में जव शहर उजड़ा हुआ है तव भी, ऐसा कोई दूसरा मजार आस-पास चारो ओर उस नगर मे नही है, जहाँ इतने लोग दर्शन को जाते हो। इसके तथा इसके उत्तराधिकारियो के उर्स के सिवाय दूसरे दिनो मे भी, जैसे सफर महीना के अन्तिम वुधवार को वहुत भीड़ छोटे वड़ो की होती है। जव दरिद्र मनुष्य सेवा पूजा को आते थे तव वे हम्माम मे स्नान कर आने के लिए दो पैसा पाते थे और इसी कारण यह शाह नूर हम्मामी कहे जाने लगे। कहते हैं कि इस फकीर ने अपने सम्वन्धी, जाति तथा देश आदि का कुछ भी उल्लेख नही किया पर उसके शब्दों पर ध्यान करने से अनुमान किया गया है कि वह एक अमीर का लड़का था और पूर्व ओर के देश का निवासी था। उसके वहुत से शिष्य कहते हैं कि उसने साधारण से वहुत अधिक अवस्था पाई थी। अधिक आश्चर्य यह है कि उसने अपनी गुरु-

परम्परा को नहीं प्रकट की, प्रत्युत् गुरु और शिष्य का शब्द भी कभी मुंह पर नहीं लाया। उसने मित्रों और अनुयायियों को उपदेश किया। उसकी मृत्यु पर उसकी शिष्य-परम्परा चली। खाँ ने सत्यता की मूर्ति सय्यद शहाबुद्दीन को, जो विहार प्रांत का था और वहुत दिनों से उस सिद्ध की सेवा शुश्रूषा करता था, उसका उत्तराधिकारी नियत किया। इसके अनन्तर उसका भांजा सय्यद सादुल्ला सिद्धासन पर बैठा। इस समय उसका पुत्र सय्यद कुतुबुद्दीन प्रसिद्ध मियाँ मँझले साहव मजार का मालिक है। जवानी ही मे वह विरक्त है और न विवाह करने को तैयार है। विद्या तथा गुणो से पूर्ण, शिष्यो के लाभ का इच्छुक तथा प्रसन्नचित्त रहता है। प्रधानतः यह नम्रता तथा अन्य गुणो से सुशोभित है।

औरंगजेव के राज्यकाल में उक्त खाँ पहिले बीदर की दीवानी और फिर बुर्हानपुर की दीवानी पर नियत हो मंसव वढ़ने और खाँ की पदवी पाने से सम्मानित हुआ। इसी समय जव वहादुरशाह विजयी सेना के साथ शान्ति-स्थापन करने दक्खिन आया तव यह वादशाही दर्वार मे उपस्थित होकर विशेष कृपापात्र हुआ। यह युवा तथा सशक्त पुरुष था, शीलवान तथा तीव्र वुद्धि के कारण अत्यन्त गुणवान और हर कार्यों में कुछ न कुछ नई वात ढूंढ़ निकालने वाला था जिस कारण हर समय उसको साथ रहने की नौकरी पर नियत करने का प्रयत्न किया गया। ऐसी सेवा से उन्नति की विशेष आशा रहती है पर उक्त खाँ देश-प्रेम के कारण उस पद का लोभ छोड़कर वादशाह के साथ नहीं गया। कुछ अदूरदर्शियो तथा अविश्वासियो ने इस पर कीमिया वनाने का दोष लगाया। यहाँ तक कि यह वात वादशाह से कह भी दी गई। वास्तव मे वात यह थी कि इसके मस्तिष्क को पारा या गन्धक का धुंआ नहीं लगा था और न गन्धक या सीसा का गन्ध उसके नाक तक पहुँचा था पर कभी कभी खिलवाड़ से हाथ की सफाई दिखला कर कागज की चीर मे रुपया डाल कर दूसरी ओर दिखलाता और रुपया निकल आता, जिससे सवको वडा आश्चर्य होता। यह वात क्रमशः प्रसिद्ध हो गई और यह उसके पकड़े जाने का कारण हुआ। वहादुरशाह दक्खिन से लौटते समय उसको वलात् उज्जैन तक लिवा गया। ईश्वरेच्छा से उसी समय मुर्शद कुली खाँ मिर्जा हादी, जो वंगाल से आकर दक्खिन की दीवानी पर नियुक्त हुआ था पर जिसका मन उसी प्रांत मे लगा हुआ, इस पद से त्याग-पत्र देकर अपने इच्छानुकूल पद पाने का प्रयास करने लगा। जुल्फिकार खाँ, अमीरुल्उमरा ने अत्यन्त कृपा से उस देश-प्रेमी के शरीर मे नवीन प्राण फूंकते हुए दक्षिण की दीवानी को उक्त खाँ के पिता के नाम कर दिया, जो दुर्ग औरंगावाद का अध्यक्ष था और खानखानां के वाधा देने पर भी, जिसके कारण ही उस पर दूसरे की नियुक्त हो गई थी, इसको पिता की नायवी पर नियुक्ति कर दिया, जिससे वह दर्वार से छुट्टी पाकर अपनी जन्मभूमि को लौट गया। फर्रुखसियर के राज्यारम्भ मे यह दरवार मे उपस्थित हुआ। हैदर अली खाँ खुरासानी,

जो दक्खिन का दीवान नियत हुआ था और प्रभुत्व में अपना जोड़ नही रखता था, आगरे मे इससे भेंट होने पर बादशाह के आज्ञानुसार इसको अपने साथ लिवा ले गया। इसके प्रति उसने अयोग्य शंका की थी। इसी समय इसका पिता मर गया। उस प्रांत के अध्यक्ष नवाब निजामुल्मुल्क फतेहजंग ने दुर्ग अरक (औरंगाबाद) की अध्यक्षता पर उक्त खाँ को नियत करने के लिये बादशाह को लिखा, जिसकी स्वीकृति आने पर वह काम इसको दे दिया। इसके अनन्तर जब अमीरुलउमरा हुसेन अली खाँ ने बुर्हानपुर को अपनी छावनी बनाया तब अपने बडे भाई सय्यद अब्दुल्ला खाँ की सम्मति से दक्खिन की दीवानी पर उक्त खाँ को नियत कर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने की कृपा दिखलाई तथा उसे दियानत खाँ की पदवी दी।

जब उस उच्चपदस्थ सर्दार ने हिंदुस्तान जाने की इच्छा की तब इसको भी, जो अपने पद से हटाया जा चुका था, बलात् अपने साथ ले गया। फर्रुखसियर के नष्ट होने के बाद इसे खिलअत, खालसा की दीवानी तथा चार हजारी मंसब दिलवाया। दियानत खाँ लडकपन से औरंगाबाद मे रहता आया था, जिसके बादशाही छावनी के अधिक पास होने के कारण कोई उच्चपदस्थ सर्दार वहाँ नहीं रहता था और इस कारण कि इसका पिता दरबार में रहता था, इसके साथ भी अच्छा सलूक किया जाता था, इसलिये आरम्भ ही से यह स्वतन्त्रता तथा स्वच्छंदता से दिन व्यतीत करता आया था और इसीमे इसमे नम्रता का व्यवहार और दूसरों की प्रसन्नता का विचार कम रहता था। यहाँ इसे उस सर्दार को, जिसके हाथ मे प्रभुत्व था, प्रसन्न रखने को बाध्य होना पड़ा पर वह उसमें सफल न हो सका। राजा रतनचन्द, जो साम्राज्य के दोनों स्तंभों (सैयद-भ्राताओ) का विश्वास-पात्र था, हृदय से इससे बिगड़ गया और इसके काम में उसने दोष निकाला। अन्त मे उसके कारण ये दोनों सर्दार भी इससे बिगड़ गए। इसी बीच नवाब फतेहजंग निजामुल्मुल्क आलम अली खाँ का कार्य समाप्त कर जब अमीरुल्उमरा के दल का सामना करने की तैयारी करने लगा तब उसने धन बटोरना और सेना एकत्र करना आरम्भ किया। इस काम के लिये उसने नगर के धनिको से बलात् धन लेना चाहा। कुछ भला करने चाहनेवाले मुसाहबों ने प्रजा को इस प्रकार कष्ट देने से यह कहकर रोका कि जन-साधारण को लाभ पहुँचाने के लिये कुछ विशिष्ट प्रजा को लूटना नीतियुक्त नहीं है और इसके बदले यह प्रस्ताव किया कि दियानत खाँ की संपत्ति जब्त की जाय जिसके गृह मे जन साधारण को बहुत दिनों से शंका है कि बहुत कोष और गडा हुआ धन संचित है। समय आ पड़ने पर उसका बड़ा पुत्र नजरबन्द किया गया और तलाशी के दरवाजे खोले गए। कुछ पता न चलने पर झूठे शत्रुओं ने खाली कुओं को खोदवाये, जिससे केवल लज्जा की धूल उन सबके सिर पर पडी। उसके घर के तथा उसके निजी संबंधियों के सोने चाँदी के गहनों और बर्तनों के सिवा, जो कुल ७० हजार रुपए के मूल्य के थे, कुछ नहीं मिला। केवल चुगलखोरों को बदनामी और लज्जा मिली। उस पर आश्चर्य

यह कि जब अमीरुल्उमरा को यह ज्ञात हुआ तब अपने क्रोध के कारण इस कार्य को उसने फतेहजग और दिनायत खाँ का षड्यन्त्र समझा।

उक्त खाँ स्वयं कहता था कि जिस दिन आलम खाँ के मारे जाने का समाचार आया, उस दिन मुझ से भी राय पूछी गई कि अब क्या करना चाहिए। मैंने अपनी सम्मति दी कि जब हाथ पत्थर के नीचे दबा हो तो धीरे से खींच लेना चाहिये। यहाँ स्वयं नवाब साहब का सिर दबा हुआ है अर्थात् उनकी सुख्याति दबी हुई है। अब पहिले दक्खिन की सूबेदारी का आज्ञापत्र निजामुल्मुल्क के नाम तुरन्त भेजना चाहिए और बदला लेने का विचार अवसर मिलने तक छोड़ना चाहिए। नवाब सय्यद हुसेन अली राजा रतनचन्द की ओर एक बार देखकर क्रोध से हँसा और कहा कि धन मैने पूरब भेजा है। यहाँ से दक्खिन तक सेना पर सेना की शृङ्खला रहेगी। केवल मशालची ही बारह हजार रहेगे। थोड़ी देर के लिये भी मैं कहीं बीच मे न ठहरूँगा और रात-दिन मे कुछ भी भेद न समझूँगा। उक्त खाँ ने कहा कि नवाब की शक्ति इससे भी बढ़कर है पर ऐसे 'धावे में कितनी सेना साथ पहुँच सकेगी तथा थोड़े और सैनिको मे कितनी शक्ति बची रह जायेगी ? उसने भी सिकोड़ कर कहा कि सैनिको का सर्वोत्तम गुण मरना है। जब सर्दार इतने साहस तथा दृढता से ऐसी बुद्धिहीनता के शब्द कहता है, तब वह काम आशा रहित हो जाता है। ऐसा समझ कर उक्त खाँ ने उत्तर दिया कि जब आपने दृढ़ इच्छा कर ली है तब खुदा पर भरोसा कीजिये।

सय्यदों की शक्ति टूटने पर एतमादुद्दौला (मुहम्मद अमीन खाँ) की कृपा से अपनी पैतृक दीवानी पद पर नियत होकर यह दक्खिन गया। फतेहजंग की नौकरी पाने पर इस पर उस उच्चपदस्थ सर्दार की बहुत कृपा हुई। जब वह बड़ा अमीर (निजामुल्क) मन्त्रित्व पद पर नियत होकर बादशाह के पास चला तब इसको अपनी जागीर के प्रबन्ध का भार दिया। इस पर आगे से अधिक विश्वास कर इसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। जब्त किया हुआ धन लौटा करके इसको प्रसन्न किया तथा जो कुछ हो चुका था उसके लिये क्षमा तक माँगी। खाँ ने प्रार्थना की कि यह अवसर धन्यवाद देने का है, शिकायत करने का नही है। क्योकि इस घटना से बहुत वर्षों से उस पर धन इकट्ठा कर रखने की जो शंका थी वह मिट गई, नही तो खुदा जानता है कि न मालूम किस अत्याचारी से काम पडता और वह कहाँ तक अत्याचार करता। इसके अनन्तर स्वतन्त्र तथा हठी स्वभाव के कारण इसने अजदुद्दौला एवज खाँ के साथ, जो दक्खिन का सहकारी प्रांताध्यक्ष था, व्यवहार नही रखा अर्थात् वही लोकोक्ति चरितार्थ हुई कि 'टेढे रखो पर गिरे नही।'

जब नवाब फतेहजंग हिंदुस्तान से लौटे तब मुबारिज खाँ से युद्ध करना निश्चय हुआ। उक्त खाँ ने जो सच्ची और ठीक बात कहने मे कभी रुकने वाला नही था

और सासारिक मक्कारी की बातों से दूर था, एकदम अपने पक्ष पर कपट और झूठ का दोष लगाया तथा दूसरे पक्ष के स्वत्व का समर्थन किया। इस प्रकार के कपट और झूठ के दोषारोपण से इसकी शत्रु के साथ मित्रता पाई गई वह विशेष कष्ट पाने वाला था पर दण्ड मे उदारता और देर करने के स्वभाव के कारण विजय के बाद इसकी केवल जागीर और नौकरी छिन गई और यह वेकार एक मुद्दत तक घर में एकांतवास करता रहा। दूसरी बार आसफजाह ने इस पर कृपा और दया करना चाहा कि इसे जागीर और नौकरी पर वहाल कर दें पर अजदुद्दौला ने पुरानी शत्रुता के कारण इसमे टाँग अड़ाई और इस पर कृपा नही करने दिया। यद्यपि इसने वेपरवाही और स्वच्छन्दता के कारण किसी की चापलूसी नहीं की और न किसी से अपना दुखड़ा रोया पर वेकारी की चिंता से अन्त में माँदा हो गया। सन् ११४१ हि० के रज्जव महीने (फरवरी सन् १७२९ ई०) मे यह मर गया। यह कठोरता और तीव्र स्वभाव के लिये प्रसिद्ध था और शाही कामों मे इसने कभी मित्रों पर भी कृपा नहीं दिखलाई और उदारता का द्वार साधारण मनुष्यों के लिए केवल प्रशंसा पाने को नही खोला पर सचाई तथा ईमानदारी के लिये यह अपने समय मे एक ही था। अमीरों के लिये सम्मान या सुव्यवहार का ध्यान नहीं रखता था पर निराश्रयो तथा दरिद्रों को गुप्त दान देता था। यह प्रचलित ग्रंथों को कम जानता था पर कुरान के शरह आदि और विशेष कर सूफी आदि की उन पर टीकाएँ वहुत देखने से उन्हें खूब समझता था। निषेध की हुई वस्तुओं से सदा दूर रहा। आडम्बर की बातों से यह सदा बचता था और कट्टर शेखों से विशेष सत्संग नही रखता था। यह प्रसिद्ध था कि यह बहुत खाता था पर इसका भोजन इतना अधिक नही था। मेवे और फल यह बहुत खाता था। शरीर का भारी और बलवान था। गोली और तीर चलाने मे यह एक ही था। इसे अहेर, सैर, तीर चलाने और और चौगान का बहुत शौक था। नगर से तीन कोस पर मौजा कन्धेली मे जैनुल्-आवदीन खाँ खवाफी का एक बाग प्रसिद्ध था उसे क्रय कर इसने उसमे सुव्यवस्थित बाग लगाया और नारियल के पेड़ जमाए। समय ने इसकी सहायता नही की नही तो यह उस पर खूब धन खर्च करना चाहता था। इस समय उसमे खूब नारियल होता है।

इसका बडा पुत्र मीरक मुहम्मद तकी खाँ छोटे हृदय का आदमी था और मित्रता के व्यवहार मे सभी से कोई शिष्टाचार नही रखता था। बहुत दिनो तक औरंगाबाद नगर की वयूताती पद पर नियत रहा। पिता की मृत्यु पर नवाब आसफजाह की कृपा से दक्खिन की दीवानी, वजारत खाँ की पदवी और दो हजार का मंसब पाने से इसकी प्रतिष्ठा बढ गई। १६वें वर्ष मुहम्मद शाही मे एक रात एक अर्द्ध पागल मंसब-दार ने, जो दरिद्र होने से दुर्बल होकर पागल हो गया था, इस पर एक तलवार मारा,

जिससे इसकी नाक पर चोट आई परंतु घाव जल्दी अच्छा हो गया और उस दिन से इसके स्वभाव मे तीव्रता तथा क्रोध का समावेश हो गया। इसने दुष्ट सैनिको को रखा और मन मे अनेक प्रकार के कुविचार लाया, जिससे यह शीघ्र ही नष्ट हो गया।

यह बहुत बुद्धिमान और समझदार था, इस कारण इसको ऐसा अविवेकी नहीं होना चाहिये था पर भाग्य से किसका वस चला! स्वयं सेना की सर्दारी करता था। नवाव निजामुद्दौला बहादुर नासिरजंग का सेनापति नियत होकर धारवर और धारा-सेन को गया। इसने सुरक्षा के मार्ग से पांव आगे बढाया और स्वातंत्र्य, शक्ति तथा प्रावल्य के साधनो के न होते भी हर दुष्ट आदमी से मिल जाता और उन सब की नीचता को नही समझता था। इसी समय रेनापुर (जैबापुर) मे इसने उक्त नवाव की नौकरी की, जो हैदराबाद का अधिकारी होना चाहता था। १६ जीहिज्जा सन् ११५१ हि० (१६मार्च सन् १७३९ ई०)को,जव नादिरशाह ने दिल्ली आकर कत्ले आम किया था, तव दैव के मारे एक सैनिक ने काल आने से कडी वाते कहकर अपनी तलवार खीच ली पर इसके एक दरवारी ने फुर्ती कर उसी को मार डाला। इस पर थोड़े सैनिक, जो उसकी जाति के और सम्वन्धी थे, लडने को तैयार हो गए। इनमें से थोड़े लुच्चे इसके खेमे मे घुस आये और एक पल मे १०० तलवारों ने इसके टुकड़े टुकड़े कर दिए। यह असावधान था और इसे इसकी तनिक भी शंका नही थी, जिससे हाथ तक न उठाया और मारा गया। इसके दो पोष्य पुत्र भी उसी उपद्रव मे लडकर मारे गए। उसके मित्रो, सम्बन्धियो और नौकरो ने इसकी कुछ भी सहायता नहीं की। मुखियों और सर्दारो ने भी, जो सेना मे इकट्ठे थे, सहायता नही की। ऐसा ज्ञात होता था कि वे सभी यह चाहते थे और उनके इच्छानुसार ही हुआ था। यह कहा जाता है कि इसकी मृत्यु के समय इसके मित्रो के मन से एक साथ ही इसके सग साथ के आराम का ध्यान निकल गया। इसको (दियानत खाँ मीर अली नकी, पिता) संतान वहुत थी। दूसरा पुत्र मृत मीर मुहम्मद मेहदी खा था, जो शुद्ध मन का, भला चाहनेवाला, सच्चा और ईश्वर से डरनेवाला था। यह कार्य-कुशल तथा दानी था। जव दक्खिन की दीवानी इसके सगे भाई शहीद वजारत खां को मिली थी तव इसको नगर की इमारतो की रक्षा सौंपी गई। मुहम्मद शाही जलूस के १५ वें वर्ष मे ३७ वर्ष की अवस्था मे यह मर गया, जिससे इसके मित्रो को वड़ा दुख हुआ। लिखते समय कोई दूसरा पुत्र मीर मुहम्मद हुसेन खा आसफजाह का कृपा-पात्र था और पैतृक दीवानी तथा उस हाकिम के सर्कार की दीवानी पर नियत था। सच्चाई को, जो इसे रिक्थक्रम मे मिली थी, इसने पूरी तरह निवाहा।

३७५. दियानत खाँ

इसका नाम कासिम बेग था और जहांगीर के समय एक सर्दार था। यह अपने कौशल तथा अध्यवसाय के कारण बादशाह का कृपा-पात्र हो गया था। एतमादुद्दौला की उन्नति के बाद दियानत खा ने बादशाह के सामने एक दिन उसके विषय मे कुछ अनुचित बातें कही, जिस पर यह ग्वालियर दुर्ग मे कैद किए जाने के लिये आसफ खां अबुल् हसन को सौंपा गया। कुछ समय बाद एतमादुद्दौला के कहने से वह छोड़ दिया गया। ८ वें वर्ष[1] मे यह दरख्वास्तो को दुहराने के काम पर नियत किया गया। ११ वें वर्ष में इस काम से हटाया जाकर सुलतान खुर्रम के साथ दक्षिण भेजा गया। उसके बारे में और कुछ नहीं ज्ञात हुआ।

•

३७६. दिलावर खाँ काकिर

इसका नाम इब्राहीम था। पहिले यह मिर्जा युसूफ खां रिजवी के साथ साथ व्यापार करता था। सौभाग्य से अखैराज और अभैराज के उपद्रव मे जहांगीर के सामने कठघरा खास और आम मे प्रयत्न करने में घायल हो गया[2]। इस कार्य से इसकी उन्नति होती गई और इसने मंसब पाया। जहागीर के जुलूस के आरम्भ में यह लाहौर के सूबेदारी मे भेजा गया। पानीपत कस्बः तक यह पहुँचा था कि खुसरू के विद्रोह का समाचार आया। अपने परिवार आदि को जमुना नदी के किनारे पर छोड़ कर यह स्वयं बड़ी फुर्ती से लाहौर चला और खुसरू के पहिले वहां पहुँच कर दुर्ग के बुर्जों का प्रबंध कर दिया। जब खुसरू उस नगर के पास पहुँचा तब फाटकों को बंद पाया। तब दुर्ग को उसने घेर लिया और सेना बटोरने लगा। बाहर भीतर दोनों ओर लड़ाई भिड़ाई होने लगी। शाही सेना पीछा कर ही रही थी और दुर्ग पर अधिकार होना कठिन हो गया, तब उसने घेरा उठा दिया। इस अच्छे काम और स्वामि-भक्ति के कारण दिलावर खां पर बादशाह प्रसन्न हुए। ८ वें वर्ष में यह शाहजहा के साथ राणा की चढ़ाई पर नियत हुआ। १३ वे वर्ष १०२७ हि० (सन् १६१८ ई०) में अहमद बेग काबुली के स्थान पर यह काश्मीर का सूबेदार नियत हुआ और शहर कश्मीर (श्री नगर) से साठ कोस की दूरी पर दक्षिण की ओर स्थित किश्तवार प्रात के लेने मे बड़ी बहादुरी दिखलाई।

---

१. तुजुके जहांगीरी से ज्ञात होता है कि १० वें वर्ष यह छूटा और इस कार्य पर नियत हुआ।

२. यह घटना सन् १६०५ ई० मे घटित हुई। इसका विवरण तुजुके जहांगीरी में दिया है और किश्तवार का वृत्तांत भी उक्त ग्रंथ से लिया गया है।

इसका विवरण यो है कि १४ वे वर्ष मे इसने दस सहस्र सवार और पैदल सेना के साथ उस देश को विजय करने का साहस किया। दर्रे तथा घाटिया वहुत दुर्गम और घोड़ो के जाने के योग्य नहीं थी इसलिये सैनिको के घोड़े कश्मीर लौटा दिए पर आवश्यकता पड जाने क विचार से कुछ घोडो को साथ रखा। सैनिक पैदल ही पहाड़ पर चढते हुए युद्ध करते धीरे-धीरे आगे वढे। वहुत से ऊँचे और नीचे स्थानो तथा दुर्गम पहाडो को पार करने पर नदी के किनारे युद्ध हुआ। उस प्रांत के शासक अली चक के मारे जाने पर, जो कश्मीर पर अपना स्वत्व दिखलाकर उसकी शरण में रहते हुए युद्ध करने की इच्छा रखता था, भागा और पुल से पार होकर भद्र कोट मे, जो नदी के उस ओर था, ठहरा। वहादुरो ने वहुत प्रयत्न किए कि वे भी पुल पार कर ले पर शत्रु के कारण वैसा नहीं कर सके। कुछ दिन वीतने पर राजा ने धोखा देने को वहाने से संधि के लिए प्रस्ताव किया पर दिलावर खा ने उस पर ध्यान नही दिया और नदी पार करने का प्रवन्ध करने लगा। अंत मे एक दिन इसके वड़े पुत्र जमाल खां ने सैनिको को साथ लेकर उस वढी हुई नदी को पार करके शत्रु से युद्ध आरम्भ कर दिया। शत्रु पुल तोड़ कर भाग गए पर दिलावर खां ने फिर पुल ठीक कर सेना उतारी और भद्रकोट मे पड़ाव डाला। इस नदी से चिनाव नदी दो तीर दूरी पर है, जो उन शत्रुओ का दृढ आड़ है और जिसके किनारे पर एक ऊँचा पहाड़ है, जिसको पार करना वड़ा ही कठिन है। पैदल आने जाने के लिए तीन तह रस्से लिए जाते थे। दो रस्सियो के वीच-वीच एक-एक हाथ की लकड़िया एक के वाद एक दृढता से वांध दी जाती थी और इसका एक सिरा पहाड की चोटी पर तथा दूसरा सिरा नदी के इस पार खूव मजवूती से वाध दिए जाते थे। दूसरे दो रस्से इससे एक गज ऊंचे दोनो ओर दृढता से वाध दिए जाते थे, जिससे उन लकडियो पर पेर रखकर तथा दोनों हाथ से ऊपर के रस्सो को पकड़कर—ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर आते जाते थे और नदी पार करते थे। उस प्रात के पहाड़ी लोग इसे सीढी (जेवा, झंप झूला) कहते हैं। उन सवने उन-उन स्थानो पर, जहा ऐसी सीढिया वाधी जा सकती थी, धनुर्धारियो तथा वन्दूकचियो को नियत कर सुरक्षित कर रखा था।

दिलावर खाँ ने तख्तो को वाँध कर उन पर से सेना को पार उतारना चाहा पर धारा वहुत प्रवल थी, इससे साठ आदमी डूब मरे। चार महीना दस दिन तक वरावर वहुत से उपाय पार उतरने के लिये किए गए पर कुछ भी सफलता नही मिली।

एक रात दिलावर खाँ का पुत्र जमाल खाँ उसी स्थान के एक जमीदार के वह मार्ग दिखलाने पर, जिस पर शत्रु का ध्यान नहीं था, सकुशल पार होकर राजा पर जा पहुँचा और विजय का डंका वजवाया। वहुत से तो मारे गए और वचे हुए भाग गए। एक सैनिक ने राजा तक पहुँच कर चाहा कि तलवार से उसे मार डाले

परन्तु उसके कहने पर कि वह राजा है, वह पकड लिया। दिलावर खा नदी पार कर उस देश की राजधानी मन्दिल में पहुँचा, जो वहा से तीन कोस पर है। राजा को साथ लेकर १५वे वर्ष मे यह बादशाह के सामने बारहमूला पहुँचा, जो कश्मीर का द्वार कहलाता है। इस पर बड़ी कृपा हुई और चार हजारी ३५००सवार भा मंसब मिला तथा एक साल की विजित प्रांत की आय पुरस्कार मे इसे मिली।

किश्तवार में खेती से कर लेने की प्रथा नही है। घर पीछे छ 'सस्ती' वार्षिक कर लिया जाता था। यह सस्ती कश्मीर के शासकों का सिक्का है और डेढ़ सस्ती एक रुपये के बराबर होता है। बादशाही दफ्तरों के हिसाब में १५ सस्ती अर्थात् १०,रु० का एक शाही मुहर माना जाता था। यहां का केशर कश्मीर से अच्छा होता है और एक मनी सेर पर, जो जहागीरी दो सेर होता है, चार रुपया क्रेताओं से लेते हैं। राजा की मुख्य आय दण्ड से होती थी, जो हर छोटे अपराध पर लगाया जाता था। प्रायः कुल आय एक लाख रुपये थी, जो एक हजारी मंसबदारों के वेतन के बराबर थी। वहां का राजा मर्यादायुक्त था इस कारण आज्ञा हुई कि वह अपने लड़को को, जो युद्ध-काल मे वहां के जमीदारो की रक्षा मे थे, बुलवा ले, जिससे कैद से छुट्टी पाकर वह आराम से रहने लगे। राजा के अधीनता स्वीकार करने पर उस पर कृपा हुई।

इसके कुछ समय बाद दिलावर खां मर गया। इसका बड़ा पुत्र जमाल खां के साथ दौलताबाद के घेरे पर नियत हुआ। एक दिन सम्मति करते समय आपस में कठोर शब्दों का प्रयोग होने लगा, जिस पर महाबत खा ने कहा कि जो शाही काम में ढिलाई करेगा, वह जूती खायेगा। इस पर जमाल खां ने झट तलवार खीच कर उसके सिर पर चला दिया। मिर्जा जाफर नज्मसानी ने, जो उसके पीछे बैठा था, कूद कर उसको बगल से पकड़ लिया। जमाल खा के लडके ने, जो छोटा था, एक जमधर से मिर्जा का काम तमाम कर दिया। खानखानां ने फुर्ती कर जमाल खा को एक वार से और दूसरी चोट से उसके पुत्र को मार डाला। कहते हैं कि महाबत खा बैठा ही रहा पर इतना कहा कि दोनो लड़कों[1] ने अच्छा काम किया। दिलावर खां का दूसरा पुत्र जमाल खा था, जिसका विवरण अलग दिया गया है।

०

३७७. दिलावर खां बहादुर

इसका नाम मुहम्मद नईम था। यह मौलाना कमाल नैशापुरी के पुत्र मीर अब्दुल् रहीम के पुत्र मीर अब्दुल् हकीम के पुत्र दिलावर खाँ अब्दुल अजीज का तृतीय पुत्र था। कमाल का भाई मौलाना जमाल इनायतुल्ला खाँ का दादा था। ऐसा हुआ कि मौलाना कमाल अपनी जन्मभूमि छोड कर लाहौर आ वसा और यहीं सन् १०११ हि० (सन् १६०२--३ ई०) में मरा, जिसकी कब्र उस नगर के वाहर हाजी सियाह की सराय में है। आरंभ में अब्दुल्अजीज दाराशिकोह का नौकर था पर जव यह औरंगजेव के वादशाह होने पर उसका नौकर हुआ तव अपना नाम शेख अब्दुल अजीज प्रकट किया। १७वें वर्ष मे दिलावर खाँ की पदवी पाकर और दो हजारी मंसब तक पहुँच कर मर गया। पूर्वोक्त इनायतुल्ला खाँ से विवाह द्वारा सम्बन्ध हो जाने से पिता की पदवी पाक़र यह (मुहम्मद नईम) फर्रुखसियर के राज्यारम्भ मे दक्षिण के शासक निजामुल्मुल्क आसफजाह के साथ उस प्रान्त मे गया। हुसेन अली खाँ अमीरुल्उमरा ने इसे रायचूर का फौजदार नियत किया। इसके वाद मुवारिज खाँ के साथ, जो इनका साढ़ू था, इसने आसफजाह के साथ युद्ध करने पर कमर बाँधी। उसके मारे जाने पर यह वकड़ा गया और आसफजाह ने मैत्री का विचार कर इसे क्षमा करके काम दिया। इसको पाँच हजारी मंसव मिला और सन् ११३८ हि० (सन् १६२६-२७ ई०) मे इसकी मृत्यु हुई। यह सहृदय कवि तथा वुद्धिमान था। इसका उपनाम 'नसरत' था। शैर उसी का है, जिसका यह अर्थ है—

'प्रेमपात्री की पलकें वन्द नहीं हैं और उसके मुख पर नकाव नहीं पड़ा है। सूर्य के गृह मे कैसे कोई सो सकता है ?"

इसका पुत्र मुहम्मद दिलावर खा मुजफ्फरुद्दौला वहादुर इंतजामजंग आसफजाह के राज्य मे सिरा का फौजदार नियत हुआ। कुछ वर्षो वाद जव उक्त ताल्लुकः मराठों के अधिकार मे चला गया तब आसफजाह के पास उपस्थित होकर यह दक्खिन प्रात का वख्शी नियत हुआ। यह ग्रंथकर्ता से मैत्री रखता था। इसका दूसरा पुत्र दिलदिलावर खॉ सिरा के अंतर्गत बिसवापत्तन का फौजदार था, जो बाद को आसफजाह के सामने उपस्थित होने पर दक्खिन का मीर आतिश नियत हुआ। यह भी सन् ११६६ हि० (१७५३ ई०) मे मर गया। इन दोनो को सतानें थीं।

३७८. दिलेर खां अब्दुर्रऊफ मियानः

यह वहलोल खाँ मियानः का प्रपौत्र था, जिसे जहाँगीर के समय अच्छे कार्य करने के कारण ढाई हजारी १००० सवार का मंसव मिला। शाहजहाँ के दूसरे वर्ष जलूसी मे जब खानजहाँ लोदी वलवा कर भागा तव इसने भी निजामुल्मुल्क दक्खिनी के यहाँ पहुँच कर उसकी नौकरी कर ली। कुछ दिनों तक यह वादशाही सेना से युद्ध करता रहा पर वाद को आदिल खाँ वीजापुरी की सेवा मे चला गया। सातवे वर्ष मे दौलतावाद के घेरा मे इसने वीरता दिखलाई। इसकी मृत्यु के अनन्तर इसका पुत्र अब्दुर्रहीम पिता के स्थान पर नियत हुआ, जिसकी मृत्यु पर उसके पुत्र अब्दुलकरीम को सर्दारी और वहलोल खाँ की पदवी मिली। वीजापुर का सुलतान अल्प वयस्क था, जिससे राज्य का कुल प्रवंध दूसरों के हाथ मे था। इसने भी अपने जातिवालों को एकत्र किया और अपनी धाक जमा ली। औरंगजेव के जलूस के ९वें वर्ष मे जव मिर्जा राजा जयसिंह वीजापुर विजय करने पर नियत हुए तव उनसे युद्ध करने वाली सेना का यह भी एक सर्दार था और कई युद्धो में योग भी दिया था। १७वें वर्ष में जव दक्षिण का प्रान्ताध्यक्ष खानजहाँ वहादुर कोका था और खवास खा हब्शी सिकन्दर आदिल खाँ का प्रधान था तव यह उसके साथ मिल कर भीमा के किनारे आया। इस ओर से वहादुर खाँ कोकलताश ने जाकर भेंट की। खवास खाँ की पुत्री के साथ कोकलताश के पुत्र नसीरी खाँ का निकाह पक्का हुआ और दोनो पक्ष अपने-अपने स्थान पर लौट गए। वहलोल खाँ ने खवास खाँ से क्रुद्ध होकर उसे मार्ग ही मे पकड़ना चाहा, पर यह वात जानकर रातो-रात वीजापुर को चला गया। इसके वाद जव वहलोल खाँ नगर के पास पहुँचा तव वह वड़प्पन की चाल न छोडकर आगे अगवानी को आया पर इसने उसे कैद कर लिया। इसके अनन्तर इसका प्रभाव आरम्भ हुआ। दक्खिनियो और अफगानो मे वैमनस्य होकर मारकाट आरम्भ हो गई। दक्खिनियो में वहुतों ने वादशाही और वहुतों ने हैदरावाद के सुलतान के यहाँ नौकरी कर ली। खवास खाँ के कैद होने का समाचार सुन कर औरंगजेव के आज्ञानुसार वहादुर खाँ कोकलताश सेना इकट्ठी कर वीजापुर के पास पहुँचा। इसके और वहलोल खाँ अब्दुल्करीम के वीच मे कई युद्ध हुए और होते रहे। २० वें वर्ष मे जव कोकल्ताश दरवार लौट गया और दक्षिण का प्रवन्ध दिलेर खाँ को मिला तव दोनो मे एक जाति के होने के कारण आपस मे पत्र-व्यवहार हुआ और दोनो ने मिल कर हैदरावाद पर चढ़ाई की। दक्खिनियो के साथ, जो सुलतान हैदरावाद की ओर से आए थे, कई भारी युद्ध हुए। इसी समय वहलोल खाँ वीमार होकर मर गया। इसका पुत्र अब्दुर्रऊफ सर्दार हुआ। २९वें वर्ष मे औरंगजेव ने वीजा-पुर को जाकर घेर लिया तव सिकन्दर आदिल शाह ने लाचार होकर नगर सौंप उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। अब्दुर्रऊफ ने भी वादशाही नौकरी कर छः हजारी

छः हजार सवार का मंसव और दिलेर खाँ की पदवी पाई। वहुत दिनों तक खाँ फीरोजजंग के साथ वादशाही काम किया। ४८ वें वर्ष मे इसका मंसव सात हजारी ७००० सवार का हो गया। औरंगजेव की मृत्यु पर प्रकट मे कामवख्श का पक्ष ग्रहण कर अपनी फौजदारी सानवर और वंकापुर मे, जो वीजापुर प्रान्त मे एक सर्कार है, धीरे से चला गया। इसकी मृत्यु पर इसका भाई अव्दुल्गफ्फार खाँ उस सरकार की फौजदारी व जागीरदारी पर नियत हुआ और उसके वाद उसका पुत्र अव्दुल्मजीद खाँ नासिरजंग शहीद की सूवेदारी के समय सतूतजंग की पदवी से उस पैतृक ताल्लुकः का जागीरदार नियत हुआ। जब दक्षिण मे मराठो का अधिकार हुआ तव उस ताल्लुके के कुछ परगने चौथ रूप में ले लिए गए और थोडा ही वच गया। इसका पुत्र अव्दुल्हकीम खाँ इस ग्रन्थ के लिखते समय उसी मे कालयापन करता था। अव्दुर्रहीम खाँ मीआनः का दूसरा पुत्र अव्दुन्नवी खाँ है, जिसे हैदरावाद प्रान्त मे कड़प्पा आदि महाल जागीर और फौजदारी मे मिले थे। इसकी मृत्यु पर पुत्र अव्दुन्नवी खाँ अन्धा उस पर नियत हुआ। इसके वाद इसका भाई अव्दुल्मुहसिन खाँ उर्फ मूछामियाँ, जिसे अन्त मे पैतृक पदवी मिली, उसी पर नियत होकर कई वर्ष काम करता रहा। अव्दुन्नवी खाँ अंधा के पुत्र अव्दुलमजीद खाँ ने उसको कैद कर लिया और स्वयं मालिक वन वैठा। यह मराठों से युद्ध कर मारा गया। इसका पुत्र अव्दुल्हलीम खाँ पिता के स्थान पर नियत हुआ परंतु विजयी मराठो ने आधा भाग चौथ के वदले छीन लिया। लिखते समय सन् ११९३ हि० (१७७९ ई०) में हैदर अली खाँ ने वहाँ जाकर इसको कैद कर लिया और इसके कुल ताल्लुकः और इसकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। वहलोल खाँ वड़े के पुत्र अव्दुल्कादिर का पुत्र इखलास खाँ अवुल् मुहम्मद वहलोल खाँ अव्दुल्करीम का चचेरा भाई था। औरंगजेव के जलूसी सातवें वर्ष मे इसने वादशाही सेना की नौकरी कर ली तथा पाँच हजारी मंसव और इखलास खाँ की पदवी पाई। ११वें वर्ष मे जब दाउद खाँ कुरेशी ने शिवाजी का पीछा करने का साहस किया तव यह हरावली मे नियत हो शत्रु से युद्ध करने पहुँचा और घायल हो भूमि पर गिर पडा। मआसिरे-अलमगीरी से ज्ञात होता है कि यह २१ वें वर्ष तक जीवित था।[1]

०

---

१. मआसिरे-आलमगीरी से ज्ञात होता है कि २२वें वर्ष मे यह अवध का फौजदार नियत हुआ था और १६वें वर्ष मे भी इसका उल्लेख है।

३७९. दिलेर खां दाऊदजई

इसका नाम जलाल खाँ था और यह बहादुर खाँ रुहेला का छोटा भाई था। २१वें वर्ष मे बहादुर खाँ के बल्ख और बदख्शाँ की चढ़ाई मे किए हुए अच्छे कामों तथा सफलताओं पर भी जब शाहजहाँ इस कारण उससे असंतुष्ट हो गया कि उसने नज्र मुहम्मद खां का पीछा करने में बहुत ढिलाई की और उजबेगों के साथ सईद खां के सात दिन की लडाई मे उसकी कुछ भी सहायता नहीं की, तब उसने इसकी जागीर में से कन्नौज तथा काल्पी सरकारो को, जो बराबर साल भर उपजाऊ रहते हैं, ले लिया। शाहजहाँ ने इन दोनो सरकारो को बाकी सरकारी हिसाब के बदले मे ले लिया जो लगभग ३० लाख रुपये के था और इनकी फौजदारी जलाल खाँ को दी। इसका मंसब एक हजारी १००० सवार का था और इसको दिलेर खाँ की पदवी तथा एक हाथी पुरस्कार मिला था। यह क्रमशः उन्नति करता रहा और ३०वें वर्ष में मुअज्जम खाँ मीर जुमला के साथ दक्षिण मे नियत हुआ, कि औरंगजेब की अधीनता में रह कर आदिल शाही राज्य को लूटे।

कल्याण दुर्ग के घेरे के समय एक दिन शाहजादा ने सेना ठीक कर शत्रु से युद्ध करने के लिए कूच किया। शत्रु सेना के हरावल मे नियुक्त बहलोल खाँ मियानः के लड़को ने शाही हरावल से युद्ध आरम्भ कर दिया। दिलेर खाँ शाही हरावल का सेनानायक था और युद्ध में यद्यपि उसने तलवार के कई चोट खाए पर जिरह बख्तर पहिरे रहने के कारण वह घायल नहीं हुआ। इसके अनंतर जब दारा के संकेत पर शाहजहाँ ने सेना को बुलवाया तब यह भी दरबार में उपस्थित हुआ और ३१वें वर्ष मे उसने डंका पाया। यह सुलेमान शिकोह के साथ शाहजादा मुहम्मद शुजाअ का सामना करने भेजा गया, जिसने मूर्खतावश अपने पिता के विरुद्ध हो बंगाल से कूच कर बादशाही राज्य के कुछ अंशों पर अधिकार कर लिया था। जब दोनों सेनाएँ बनारस के पास आमने-सामने पहुँची तब शुजाअ, जो विषयासक्त असावधान अदूर-दर्शी और रणनीति से अनभिज्ञ था, डरकर भागा। बिना युद्ध किए ही वह बच्चो के समान नाव पर बैठ कर पटने की ओर चला गया। सुलेमान शिकोह ने उसका पीछा किया और दिलेर खाँ को इस विजय के उपलक्ष में एक हजारी १०००सवार की वृद्धि हुई, जिससे मंसब तीन हजारी ३००० सवार का हो गया। इसके बाद जब सुलेमान शिकोह अपने पिता तथा पितामह की आज्ञा से यथाशक्ति शीघ्रता कर पटने से लौटा तब उसे कड़ा मे समाचार मिला कि दाराशिकोह परास्त होकर लाहौर चला गया। इससे वह घबड़ा गया और मिर्जाराजा जयसिंह जो उसका अभिभावक और सेना का प्रबंधक था, इससे अलग हो गया। सुलेमान शिकोह ने इस कष्ट मे दिलेर खाँ को बुला कर इससे सम्मति माँगी। इसने इस शर्त पर

शाहजहाँपुर तक साथ देने का निश्चय किया, जिस प्रांत को उसके बड़े भाई ने शांत कर रखा था और जो अफगानों का निवास स्थान था, कि वहाँ पहुँचने पर अफगानों तथा अन्य सैनिकों को एकत्र करने पर जैसा उचित समझा जायगा किया जायगा। सुलेमान शिकोह ने इसे स्वीकार कर लिया। जब राजा जयसिंह ने यह वृत्तांत सुना और समझ लिया कि दिलेर खाँ अदूरदर्शिता तथा नासमझी से अपनी हानि-लाभ का विचार न कर उचित कार्य नहीं कर रहा है तब मित्रता और स्नेह के कारण इसको अच्छी सम्मति देकर इसे अनुचित विचार से दूर रखा, जिसमे उसकी तथा उसके जाति वालों की हानि ही थी। उसने इसको औरंगजेब का साथ देने की सलाह देकर दूसरे दिन सुलेमान शिकोह ने पूर्व निश्चयानुसार इलाहाबाद चलने की तैयारी की तब दिलेर खाँ ने बहाने किए और राजा जयसिंह के साथ रह गया। इस पर बादशाही सेना ने भी सुलेमान शिकोह का साथ छोड़ दिया। दिलेर खाँ मिर्जा राजा से भी तीन चार दिन पहिले औरंगजेब सलीमपुर और मथुरा के बीच में जा मिला और एक हजारी १००० सवार की उन्नति होने पर इसका मंसब पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया। इससे ज्ञात होता है कि शुजाअ के पराजय के अनंतर, जब इसका मंसब तीन हजारी था, इसने एक हजारी मंसब और भी पाया होगा।

दिलेर खाँ शेख मीर के साथ सुलतान से दाराशिकोह का पीछा करने के लिए भेजा गया। अजमेर युद्ध मे जब दाराशिकोह ने घाटी मे एक ओर से दूसरी ओर तक दीवाल खिचवाई और उनके आगे दृढ़ चबूतरे बनवा कर उन पर तोपें रखवाईं तब औरंगजेब की सेना उस मोर्चे पर कुछ भी सफलता न प्राप्त कर सकी पर एक गुप्त ओर से सफलता ने दर्शन दिया। दाराशिकोह ने राजा राजरूप के सैनिकों को हटाने के लिये कुछ सेना कोकिला पहाड़ी की ओर भेजी। इस सेना ने मोर्चे के बाहर निकल कर शत्रु से युद्ध ठाना, जिस पर दिलेर खाँ ने सवार होकर सेना तोपखाना लेकर दाहिनी ओर धावा किया। शेखमीर बाईं ओर से धावा कर उससे जा मिला और दोनो ने शाहनवाज खाँ के मोर्चे पर धावा कर दिया। खूब तलवारें चलीं। शेखमीर मारा गया। दिलेर खाँ ने बहुत प्रयत्न किए और गोली लगने से इसका हाथ घायल हो गया। इसी बीच और सेना आ गई, जिससे साहस छोड़ कर दारा भागा। इसके अनंतर दिलेर खाँ, मुअज्जम खाँ मीर जुमला के सहायतार्थ बंगाल मे शुजाअ को निकाल बाहर करने के लिए नियत हुआ। इस युद्ध में, जो वीरता का परीक्षा-स्थल था, दिलेर खाँ ने ऐसे कार्य दिखलाए कि लोग रुस्तम तथा अस्फंदियार के नाम भूल गए।

दूसरे वर्ष के शाबान में (सन् १६५९ ई० के अप्रैल मे) मुअज्जम खाँ अपनी सेना महमूदाबाद से नदी के किनारे लाया कि उस महानदी को पार करे, जो वहाँ से दो कोस पर थी। पर यहाँ उसे ज्ञात हुआ कि यहाँ से नीचे बागला घाट पर

अच्छा उतार है। शत्रु ने उस पार तोपखाने लगा रखे थे और अब वे गोले भी बरसाने लगे। पहिले दिलेर खाँ अन्य सर्दारो के साथ हाथी पर सवार हो नदी में घुसा पर वहाँ भी गोले आने लगे। अतः कुछ मारे गए और कुछ घायल हुए। कुछ प्राणों के लोभ से भाग भी आए। उतार के दोनो ओर पानी गहरा था, इसलिये दोनों ओर बल्ले गाड़े गए थे पर सेना के उतरने के कारण पानी में बहुत हलचल हुआ, जिससे बलुई तह फैल गई और कितने मनुष्य गहरे पानी मे चले गए। बल्ले भी अपने स्थान पर नहीं रह गए, जिससे कितने पैदल तथा सवार डूब गए। इन्हीं में दिलेर खाँ का एक लड़का फत्‌ह खाँ भी था। खाँ ने पार उतर कर शत्रु को मार भगाया और तोपों पर अधिकार कर लिया। शुजाअ के निकाल दिए जाने पर आसाम की चढ़ाई में दिलेर खाँ ने मुअज्जम खाँ के हरावल में रह कर अयोग्य आसामियो को दण्ड देने में बहुत बहादुरी दिखलाई। विजय में वह बराबर साथ रहा। उस प्रांत की प्रसिद्ध नदी ब्रह्मपुत्र के पार करने पर शामलगढ़ पहुँचे। यह दृढ और बहुत ऊँचा दुर्ग है, जिसको घेर लेना उच्च विचार वालो की शक्ति के भी बाहर था। उसके निवासी दुःखरूपी पत्थरों के फेंके जाने तथा आकाश के तोपो से सुरक्षित थे। दुर्ग के दोनों ओर चौड़ी तथा ऊँची दीवालें हैं। दक्षिण की ओर यह चार कोस तक चलकर एक पहाड़ पर समाप्त होती है, जो आकाशगामी ऊँचा है। उत्तर की ओर दीवाल तीन कोस जाकर उक्त प्रबल वेग वाली नदी तक पहुँचती है। दोनों दीवालों के भीतरी ओर बुर्ज आदि बने हुए हैं और बाहरी ओर गहरी खाई है। सर्वत्र तोप बन्दूकें लगी हुई थीं। इस भारी घेरे में तीन लाख आदमी युद्धार्थ तैयार थे। कुल दुर्ग को घेर लेना असंभव था, इसलिये दिलेर खाँ ने सेनापति की आज्ञा से सबसे बड़े बुर्ज के सामने मोर्चे बांध कर तोपें लगवाईं और बाहर भीतर युद्ध होने लगा। जो गोला दीवाल तक पहुँचता था, वह उस दुर्ग की दृढ़ता के कारण केवल कुछ धूल उड़ाने के सिवा दीवाल टूटने या बुर्ज के गिरने का कोई चिह्न न छोड़ता था। यह देश भी पहाड़ी तथा भयानक था, क्योंकि प्राचीन काल मे भी जो हिंदुस्तानी सेनायें इसे विजय करने आईं वे इस जाति के धोखे मे पड़ कर नष्ट-भ्रष्ट हो गईं तथा उनमें से एक भी इस भँवर मे बच कर न निकल सकीं। सेनापति ने इस पर भी एक दीवाल पर धावा करने की आज्ञा दी और इस कार्य के लिये दिलेर खाँ चुनी सेना के साथ नियत हुआ।

दैवयोग से उस जाति का एक आदमी बहुत दिनो से शाही राज्य में रहता था और पड़ाव मे एक अहदी था। उसने धूर्तता से स्वामिभक्ति का बहाना कर कहा कि मैं यहाँ का सब हाल जानता हूँ। यदि हमारे मार्ग-प्रदर्शन पर चला जाय तो मैं ऐसी जगह पहुँचा दूँ जहाँ से धावा करना सुगम हो जायगा। उसी समय उसने यह समाचार दुर्ग-वासियो को भेज दिया कि वे अमुक स्थल पर एकत्र हों, जो सबमे अधिक दुर्जय था। रात्रि में उस दुष्ट के दिखलाए मार्ग से दिलेर खाँ रवाना हुआ।

सवेरे वह एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ की खाई बहुत गहरी तथा दुर्गम थी और बहुत से शत्रु एकत्र थे। सहस्रो बन्दूकों से गोली बरसने लगी और बारूद के हुक्के फेंके जाने लगे। दिलेर खाँ ने वीरता-पूर्ण साहस से लौटने का विचार छोड़ अपना हाथी खाई मे हुँकवा दिया और उसके सैनिक यह देख कर अपने सेनाध्यक्ष का अनुगमन करने लगे। घोर युद्ध हुआ, बहुत से मुसलमान मारे गए और बहुत से घायल हुए। दिलेर खाँ को पाँच गोलियाँ लगीं पर कवच के कारण उसे चोट नहीं पहुँची। बहुत सी गोलियाँ हाथी तथा हौदे मे लगी। वीर खाँ और कुछ दूसरे सैनिक दीवाल तक पहुँच गए और उस पर चढ़ कर शत्रु से लड़ने लगे। इसके अनंतर उसके आदमी फाटक से भीतर पहुँच गए और विजय का झंडा फहराया। काफिर लोग परास्त होकर भागे।

मीर जुमला के मरने पर खाँ दरबार आया। १७वें वर्ष मे यह मिर्जाराजा जयसिंह के साथ शिवाजी भोसला को नष्ट करने के लिये भेजा गया, जिसने दक्षिण मे अपना प्रभुत्व जमाकर डाकूपन से उपद्रव मचा रखा था। जब ८वें वर्ष मे राजा ने शिवाजी के दुर्गों को लेने का निश्चय किया और पूना से पुरंधर तथा रूरमाल (रुद्रमाल) दुर्गों को लेने चला तब दिलेर खाँ, जो हारावल मे था, सानवर दर्रा पार कर उन स्थानों के पास ठहरना चाहता था कि शत्रु की सेना आ पहुँची और युद्ध होने लगा। शत्रु शाही सेना के वीरतापूर्ण आक्रमणो को न सँभाल सके और उस पहाड़ पर भाग गए, जिस पर दोनो दुर्ग थे। दिलेर खाँ भी लड़ता हुआ पहाड़ तक आया और बहुतो को मारते हुए पहाड की नीचे की बस्ती माची को आग लगाकर फूंक दिया तथा दुर्ग को घेरने का प्रबंध किया।

दोनो दुर्ग से गोले गोलियाँ बरसने लगीं पर खाँ लौटा नहीं और साहस के साथ दुर्ग पुरंधर के पास पहुँचकर फुर्ती से तोपखाना तथा मोर्चा लगवाया। जब इन दुर्गों को घेरे हुए कुछ समय बीत गया और रुद्रमाल का एक बुर्ज गोलों से टूट कर गिर गया तब दिलेर खाँ ने अपने सैनिकों को उत्साह दिला कर उस बुर्ज पर अधिकार कर लिया। दुर्गवालों ने रक्षा चाही और शिवाजी ने भी यह देखकर कि घेरनेवाले शीघ्र पुरंधर ले लेंगे, जिसमे उसके बहुत से संबंधी तथा अफसर हैं, राजा से परिचय कर भेंट की और कर रूप मे इस दुर्ग को अन्य दुर्गों के साथ दे दिया। दिलेर खाँ दुर्ग के नीचे उपस्थित था, इसलिये राजा ने शिवाजी को उसके पास भेज दिया, जिसने भेंट होने पर सुनहले साज सहित दो सौ घोड़े और अठारह थान रेशमी कपड़ा उपहार मे दिया। इस कार्य के निपट जाने पर दिलेर खाँ ने राजा के हरावल में रहकर बीजापुर राज्य मे खूब लूट मचाया और इस प्रकार आदिल शाह को दंड दिया। वह कार्य समाप्त होने पर यह तथा अन्यान्य सर्दारगण दर्बार बुला लिए गए क्योंकि उसी समय शाह अब्बास द्वितीय भारतीय सीमा पर सेना भेजने का विचार कर रहा था। खाँ शीघ्रता से लौट रहा था और नर्मदा पार कर चुका था कि दैवयोग

से फारस का शाह मर गया और यह उपद्रव शांत हो गया। दिलेर खाँ आज्ञा पाने पर कुछ अफसरो के साथ चाँदा और देवगढ़ गया। चाँदा के जमींदार मांजी मल्हार ने नम्रतापूर्वक उपस्थित होकर एक करोड़ नगद तथा सामान दंडस्वरूप देने की प्रतिज्ञा की और पाँच लाख दिलेर खाँ को भेंट किया। उसने कर रूप में दो लाख रुपये प्रतिवर्ष देना स्वीकार किया और मानिक दुर्ग को, जो उस प्रांत का एक दृढ़ गढ है, तोड़ने का वचन दिया। दो महीने मे जब सतहत्तर लाख रुपये मिल गए तथा दो महीने में आठ लाख और आ गया तथा तीन वर्ष में बीस लाख रुपये कुल बाकी देने का प्रण किया तब उस जमींदार को, जो बीमार तथा दुर्वल था और जिसका राज्य अस्त व्यस्त हो रहा था, अपने छोटे पुत्र तथा उत्तराधिकारी रामसिंह के साथ जाने की छुट्टी मिली।

देवगढ़ के जमींदार कौकबसिंह के यहाँ भी पंदरह लाख रुपए बाकी निकले पर उसके अधीनता स्वीकार करने पर तीन लाख दंड लगाया गया और एक लाख वार्षिक कर निश्चय हुआ। इसी समय दिलेर खाँ को आज्ञा मिली कि बीजापुर राज्य को पुनः लूटने का निश्चय हुआ है, इसलिये वह वहाँ से लौटकर औरंगाबाद जाय और शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम की आज्ञा में वहाँ ठहरे कि जब संकेत हो तभी वह इस कार्य के लिये सन्नद्ध हो जाय। दक्षिण के इसके कार्य छोटे बड़े सबके मुख पर थे। बीजापुर की सेना से भीमरा के उस पार खानजहाँ कोकलताश का जो युद्ध हुआ था उसके हरावल में स्थित दिलेर खाँ ने जो बहादुरी दिखलाई, उसकी शत्रु-मित्र दोनों ने प्रशंसा की थी।

कहते हैं कि उस समय जब युद्ध हो रहा था, तब कई कोस तक हाथी के सूंड़ और मनुष्य के सिर वीरों के बल्ले और गेंद हो रहे थे। शैर का अर्थ—हाथी के सूंड़ और लड़ाकों के सिर से कुल मैदान चौगान और गेंदों से भरा था।

इसके अनंतर जब बादशाही सेना परास्त हुई तब निरुपाय हो साहस और बुद्धि ठीक रखकर धीरे-धीरे लौटे पर जिस दूरी को चार पाँच दिन में हाथी घोड़ों पर सवार होकर बीजापुरियो से युद्ध करने के लिये तै किया था, उसे तीन सप्ताह में 'कहकरी' की चाल से पूरा किया। जब बगलाना के अंतर्गत साल्हेर दुर्ग शत्रु के हाथ में पड़ गया तब यह वहाँ गया और उसके लेने में प्रयत्न किया पर कुछ फल नहीं निकला। उस युद्ध में ऋतु की कठिनाई से बहुत से मनुष्य मर गए। दर्बार से आज्ञा मिलने पर यह अपनी इच्छा पूरी न कर सका और १८वें वर्ष में दरबार में उपस्थित हुआ। यहाँ आने पर यह आबिद खाँ के स्थान पर मुलतान का सूबेदार हुआ। १९वें वर्ष में जब उस प्रांत पर मुहम्मद आजमशाह नियत हुआ तब दरबार में उपस्थित होने पर दिलेर खाँ दक्षिण की चढ़ाई पर भेजा गया। २०वें वर्ष में जब दक्षिण का प्रांताध्यक्ष खानजहाँ बहादुर पदच्युत किया गया तब नये सूबेदार के नियत होने तक वहाँ का प्रबंध दिलेर खाँ को सौंपा गया। २१वें वर्ष में हैदराबाद

की सेना से घोर युद्ध हुआ। एक सेवक जो हाथी पर इसके पीछे बैठा हुआ था, बान से घायल होकर मर गया। उसकी अग्नि दिलेर खाँ के कपड़ो मे गिरी, जो मशक के पानी से बुझा दी गई। दोनो ओर के बहुत से आदमी मारे गए। २३वें वर्ष में दिलेर खाँ ने बड़े परिश्रम से दुर्ग मंगल सिर्फ शिवाजी से ले लिया। २६वें वर्ष मे जब औरंगजेब औरंगाबाद आया तब इसको दूसरे सर्दारो के साथ बीजापुर विजय करने पर नियत किया पर यह मुहम्मद आजमशाह के पहुँचने तक दरबार ही में उपस्थित रहा। इसी समय यह अधिक बीमार होकर २७वें वर्ष मे सन् १०९४ हि० (सन् १६८३ ई०) मे मर गया।

यद्यपि यह प्रसिद्ध है कि औरंगजेब ने स्वतंत्रता तथा विद्रोह का कुछ चिह्न इसमे देखकर इसे विष दिला दिया, पर जांच करने पर यह बात ठीक नहीं उतरी। कुछ लोग कहते हैं कि इसके भतीजे ने अफीम के बदले मे दूसरी गोली रखकर इसका काम पूरा किया था। औरंगजेब इसके साहस तथा वीरता को इसकी रणकुशलता से अधिक समझता था। कहते हैं जब वह शाह आलम के साथ दक्षिण मे था तब शाहजादा ने चाहा था कि इसको मिलाकर विद्रोह करे पर दिलेरखाँ ने इसे स्वीकार नहीं किया, तब इससे दोनो पक्ष में वैमनस्य बढ़ा। दिलेर खाँ बादशाह के पास शीघ्रतापूर्वक कूच करता हुआ चला और शाहजादा ने उसका पीछा किया। दिलेर खाँ के प्रार्थना-पत्र को बादशाह ने देखा जिसका आशय था कि शाहजादा के विचार ठीक नहीं हैं और इसीसे उसका मैं साथ छोड़कर दर्बार मे उपस्थित हुआ हूँ। इसीके साथ शाहजादा का पत्र भी आ पहुँचा कि यह अफगान विद्रोही है तथा उपद्रव मचाना चाहता है, इसलिये सेना सहित मैंने इसका पीछा किया है। बादशाह इन प्रार्थनापत्रों को पाकर घबड़ाया और दो बार टट्टी गया। हिम्मत खाँ जन्म भर सेवा मे रहने के कारण बादशाह का मुँह लगा हो रहा था, अतः उसने व्यंग्यपूर्वक बादशाह से कहा कि यह सब कुछ नही है, हजरत के घबड़ाने की क्या आवश्यकता है ? बादशाह ने क्रोधित होकर कहा कि मुझको शाहआलम की चिंता नहीं है, पर कठिनाई यह है कि वे दोनो कहीं मिले न हों। यदि दिलेर खाँ के सेनापतित्व मे सेना हो तो उसका सामना करने के लिये सिवाय हमारे कोई दूसरा समर्थ नहीं है। इसलिये जब मुझको उससे युद्ध करना पड़ेगा तब वह युद्ध दो सिर का होगा।

खाँ बड़ा बलवान और भयानक शरीरवाला था। उसकी शक्ति की कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। अपनी जातिवालो पर उसका बहुत बड़ा प्रभाव था और वह सर्वदा विजयी रहता था। समय के सुयोग तथा अपने ग्रहों के सुसंस्थान से आरंभ अवस्था से अंत तक यह सौभाग्य में बढ़ता गया। इसकी कभी मानहानि या अनादर नहीं हुआ। इसके पुत्र कमालुद्दीन और फतह मामूर थे। द्वितीय बीजापुर युद्ध मे खाई मे काम आया।

३८०. दिलेर खाँ बारहा

यह जहाँगीर के समय का एक अफसर था और वड़ौदा का फौजदार था। १८ वें वर्ष मे जव पिता-पुत्र मे युद्ध हुआ और शाहजहाँ ने अब्दुल्ला खाँ को गुजरात का शासक नियत किया तथा उसका खोजा अहमदावाद नगर में पहुँचा तव सैफ खाँ उपनाम सफी खाँ ने, जिसे उस नगर के शासन मे कुछ अधिकार था, साहस दिखला कर खोजे को निकाल दिया और नगर को अपने अधिकार मे ले लिया तथा दिलेर खाँ को वादशाह का पक्ष ग्रहण करने को वाध्य किया। जहाँगीर की मृत्यु पर जव शाहजहाँ ने जुनेर से कूच कर नर्मदा नदी पार किया तव यह प्रांत के कुल अधीनस्थ अफसरों से पहिले आकर सेवा मे उपस्थित हुआ। यह वादशाह के साथ राजधानी आया और जलूस के पहिले वर्ष मे इसने चार हजारी २५०० सवार का मंसव, खिलअत, जड़ाऊ खंजर, डंका, निशान तथा हाथी पाया। इसे अपने तालुक़ा पर जाने की आज्ञा हुई। ३रे वर्ष में जव वादशाह दक्षिण आये तव यह गुजरात से दर्वार आया और इसके मंसव मे ५०० सवारों की वृद्धि हुई। यह ख्वाजा अबुल् हसन तुरवती के साथ संगमनेर विजय करने भेजा गया। ४ थे वर्ष मे आजम खाँ की सेना में नियुक्त हुआ, जो परेंदा के पास थी। इसके वाद इसे पुराने ताल्लुके को जाने के लिये छुट्टी मिली। ६ ठे वर्ष सन् १०४२ हि० (सन् १६३२-३३ ई०) मे यह मर गया। इसका लडका सैयद हसन दरवार आया और उसको योग्य मंसव मिला तथा उस पर कृपाएँ हुईं। ३० वें वर्ष तक उसका मंसव १५०० सवारों का था। दूसरे पुत्र सय्यद खलील को पाँच सदी २०० सवार का मंसव मिला। दिलेर खाँ ही ने सफेद हाथी भेजा था, जो दूसरे वर्ष मे शाही हथसाल में रखा गया। ख्वाजा निजाम नामक सौदागर विश्वास योग्य और भारी व्यापारी था। इसके लिए पंद्रह सोलह वर्ष का एक हाथी लाए, जिसका दुर्वल तथा कम अवस्था का होने से रग नहीं खुला था। जव वह व्यापार के लिये वाहर जाने लगा तव इस हाथी को खाँ की जागीर में छोड़ गया क्योंकि दोनों मे मित्र भाव था। वारह वर्ष वाद जव वह हाथी मस्त हुआ तव उसका रंग श्वेत हो गया, जिसमे कुछ लाली भी थी। खाँ ने उसे वादशाह के पास भेज दिया, जिसने उसे पसंद कर उसका नाम गजपति रखा। तालिवकलीम[1] ने यह रुवाई उस पर वनाई :—"इस श्वेत हाथी को कोई हानि न पहुँचे। जो इसे देखता है, वह इस पर मोहित हो जाता है। जव संसार के स्वामी इस पर सवार होते हैं, तव कहो कि श्वेत उषा-काल से सूर्य निकल रहा है।"

---

१. अवू तालिव कलीम ईरान से भारत आया था। यह तालिव आमिली से भिन्न है, जो जहाँगीर का राजकवि था। अवू तालिव को शाहजहाँ ने मलिकुश्शोअरा की पदवी दी। इसने शाहजहाँ की बनवाई इमारतो आदि पर मनसवी लिखी है और कसीदे आदि। सन् १६४१ ई० मे कश्मीर मे यह मरा।

दिलेर खाँ की मृत्यु पर सैयद हसन ने दरबार आकर योग्य मंसब पाया। २८ वें वर्ष मे यह गुजरात अहमदाबाद में गोडरा सरकार का फौजदार तथा जागीरदार नियत हुआ। ३०वें वर्ष मे डेढ़ हजारी १५०० सवार का इसका मंसब हो गया। ३१ वे वर्ष के अन्त मे यह मुराद बख्श के साथ गया, जब वह औरंगजेब के कहने से अहमदाबाद से रवानः हुआ। मुराद बख्श के कैद होने पर सय्यद हुसन को खाँ की पदवी मिली और वह गुजरात भेजा गया। दूसरे पुत्र खलील को पाँच सदी २०० सवार का मंसव मिला था।

०

३८१. दीनदार खाँ बुखारी

इसका नाम सय्यद भोदः[1] था। यह मुर्तजा खाँ बुखारी का नातेदार था। १८ वें वर्ष जहाँगीरी मे यह दिल्ली का शासक नियत हुआ। इसके अनंतर जब महावत खाँ विद्रोही होकर दरबार शाही से भागा तब उस सेना में, जो उसका पीछा करने पर नियत हुई थी, यह भी नियुक्त हुआ। यह सेना अजमेर पहुँच कर वहीं ठहरी। उसी समय जहाँगीर स्वर्ग सिधारा और शाहजहाँ की सेना उस नगर में आ पहुँची। यह सेवा मे उपस्थित हुआ। प्रथम वर्ष जलूस में इसने दो हजारी १२०० सवार का मंसव, दीनदार खाँ की पदवी, खिलअत, जड़ाऊ खंजर, झंडा और घोड़ा पाया तथा मध्य दोआब का फौजदार नियत हुआ। ८वें वर्ष में जब बादशाह लाहौर से राजधानी आये तब इस्लाम खाँ मध्य दोआब के विद्रोहियो को दंड देने के लिये भेजा गया क्योंकि यहाँ उपद्रव आरंभ हो गया था। आज्ञानुसार दीनदार खाँ भी साथ गया। इसके अनन्तर उसी वर्ष मे शाहजादा मुहम्मद ओरंगज़ेब बहादुर के साथ नियत हुआ, जो सेना सहित जुझार सिंह बुंदेला से युद्ध करने भेजा गया था। कुछ दिन बाद यह सन् १०४५ हि० (सन् १६३५-३६ ई०) में मर गया।

०

---

१. इसे कई प्रकार से पढ सकते हैं, जैसे भोदः, भौदः, वहोदः आदि पर क्या ठीक है नहीं कहा जा सकता। एक अक्षर 'दाल' हटाने से बहवः होता है, जैसा तुजुक तथा मआसिर से ज्ञात होता है।

३८२. दौलत खाँ मई

इसका नाम खवास खाँ था। मई भट्टी जाति की एक शाखा है, जो पंजाब प्रांत में जमींदारी तथा डाकूपन से कालयापन करती थी। यह शेख फरीद मुर्तजा खाँ का 'रुमाल-वरदार' नौकर था। यौवन के कारण इसके मुख पर वहुत लावण्य था, इसलिये जब शेख के साथ यह जहाँगीर दरवार मे जाता तो वह इस पर वहुत कृपा करता था। शेख की मृत्यु के उपरात यह शाही नौकरी में योग्य मंसव पर नियुक्त हुआ। उसकी कुंडली अच्छी थी, इसलिये इसे वहुत जल्दी खवास खाँ की पदवी मिली और जिलौ के मंसवदारो का दारोगा नियत हुआ। ये सभी खानाजाद तथा विश्वस्त होते थे और यह कार्य किसी अविश्वसनीय को नहीं मिलता था। जब शाहजहाँ का राज्य हुआ तब जलूस के पहिले वर्ष मे इसे ढाई हजारी १५०० सवार का मंसव मिला। युद्ध कार्य और वीरता मे यह कम न था, इससे धौलपुर के युद्ध मे खानजहाँ लोदी के साथ वादशाही पक्ष के सर्दारो मे सवके आगे था, तथा वड़ी वीरता और शौर्य दिखला कर घायल हुआ। इसका उत्साह, वीरता आदि देखकर शाहजहाँ का उस पर विश्वास वढा। ६ ठे वर्ष मे इसे तीन हजारी २००० सवार का मंसव तथा दौलत खाँ की पदवी मिली। उसी वर्ष शाहजादा शुजाअ के साथ दुर्ग परिंदः के घेरे पर नियत हुआ। जब यह बुर्हानपुर के आगे वढा, तब महावत खाँ सिपहसालार की राय से ३००० सवार सहित अहमद नगर की ओर यह भेजा गया कि साहू भोसले को दण्ड दे और उसके देश चामरकुडा को लूटे।

८ वें वर्ष में मुहर्रम सन् १०४५ हि० (सन् १६३५ ई०) में यह युसुफ मुहम्मद खाँ ताशकंदी के स्थान पर ठट्टा का सूवेदार नियत हुआ। ९ वे वर्ष मे इसने जाली वायसनकर को कैद कर वादशाह के पास भेजा। यह एक साधारण मनुष्य था,जो झूठ ही अपने को वायसनकर वतला रहा था, क्योंकि वह युद्ध में शहरयार का सेनापति था और भागने पर तेलिंगाना के अंतर्गत कौलास दुर्ग पहुँच कर मर गया था। यह पहिले वल्ख गया, जहाँ का शासक नज्र मुहम्मद खाँ उसे संवंधी वनाना चाहता था, पर जब उसका कथन ठीक नहीं उतरा तव कुछ नहीं हो सका। यहाँ मे वह ईरान गया। शाह सफी ने उसे अपने सामने नही वुलाया था पर उस पर कुछ कृपा की थी। इसके वाद वगदाद और रूम में घूमता फिरता रहा। अंत में वहुत दिनो के वाद मृत्यु उसे ठट्टा खीच लाई, जहाँ दौलत खाँ ने उसे कैद कर दरवार भेज दिया। यहाँ वह मारा गया। दौलत खाँ वहुत दिनो तक इस स्थान पर शासन करता रहा। २० वें वर्ष मे इसका मंसव चार हजारी ४००० सवार का हो गया और सईद खाँ वहादुर के स्थान पर कंधार में नियत हुआ। उसी वर्ष के अंत मे पाँच हजारी जात और सवार पाकर सम्मानित हुआ। एकाएक अभाग्य ने पहुँच कर उससे शाही कृपा छीन ली।

२३वें वर्ष के जीउल् हिज्जा (दिसम्बर सन् १६४८ ई०) में ईरान के शाह अब्बास द्वितीय ने जाड़े में, जब वर्फ के मारे भारत से वहाँ तक जाने का मार्ग वंद हो जाता है, कंधार घेरने का साहस किया। दुर्गाध्यक्ष ने बहुत कुछ आय-व्यय तथा रक्षा आदि का प्रबंध किया था पर घबडाहट के कारण कुलीज खाँ के बनवाए बुर्जो के दृढ न करने से उससे कुछ लाभ नही हुआ। कुलीज खाँ ने अपने शासन के समय दूरदर्शिता से दुर्ग के रक्षार्थ चेहलजीने पहाड के ऊपर, जहाँ से गोले, तीर आदि दौलतावाद और मांडू[1] के दुर्गों तक पहुँचते थे, कई बुर्ज बनवाए थे। कजिलबाश बंदूकचियो ने उन बुर्जो पर अधिकार कर वहाँ से गोले-गोलियाँ चलाना आरंभ किया। एक दिन शाह ने स्वयं सवार होकर आक्रमण का प्रबंध किया। तीन प्रहर खूब युद्ध हुआ पर कुछ सफलता नही होने से लौट गया। कुछ कायरो ने द्रोह से स्वामिभक्ति छोड़ कर निर्लज्जता से कहा कि वर्फ के जम जाने के कारण सहायता जल्दी पहुँचने की कोई आशा नही है और कजिलबाशो के युद्ध से प्रकट होता है कि दुर्ग जल्दी टूट जायगा तब इसके अनंतर न उनके प्राण बचेंगे और न लड़को को कैद से छुटकारा मिलेगा। दौलत खाँ, जो इस आग को तलवार के पानी से नही बुझा सका, अयोग्यता तथा कायरता से इस शैर को भूल गया कि—

'जिस जगह पर घाव करना चाहिये।
गर रखे मरहम तो वह वेसूद है॥'

और उन्हे उपदेश देने तथा उत्साह दिलाने लगा पर इससे कुछ लाभ नहीं हुआ। शादी खाँ उजबेग ने स्वामिद्रोह करके पहिले ही शाह से बातचीत आरंभ कर दी। जब इसी बीच दुर्ग बुस्त को पुरदिल खाँ से लेकर उसको अप्रतिष्ठा के साथ कैद किया तब दौलत खाँ, जिसका साहस पहले ही से छूट रहा था, कंधार के दीवान अब्दुल्लतीफ को शरण-पत्र (अमान नामा) जो इसकी अप्रतिष्ठा का मुहर था, लाने को ईरान के सेनापति रुस्तम खाँ के भाई अली कुली खाँ के साथ भेजा, जो शाह की ओर से इस आशय का पत्र लाया था कि आपस में युद्ध आदि न हो, जिससे पराजय या अप्रतिष्ठा अपनी या दूसरो की भी न हो। दौलत खाँ ने स्वयं दिखलाने को पहाड़ी दुर्ग पर आदमी भेजा पर उस कार्य मे उसका मन नही था सब उससे कुछ लाभ नही हुआ।

यद्यपि लोग कहते हैं कि यदि वह कादर ईश्वरी मार्गप्रदर्शन और अपनी नैतिकता से कुछ दिन दृढ रहता तो क्या उसको और उसके साथी को सहायता न पहुँचती ? पर अच्छे न्यायप्रिय विचारक उसका तीन महीने तक दृढ़ता से डटे रहना,

---

१. शाहजहाँ ने कंधार दुर्ग को मिट्टी की दीवाल से घेर कर दृढ किया था और उसके पास छोटे-छोटे दुर्ग भी थे, जिनमे दो का इस प्रकार नामकरण किया गया होगा।

जब शाहजादा औरंगजेब अल्लामी फहामी सादुल्ला खाँ के साथ १२ जमादिउल् अव्वल को दुर्ग के नीचे पहुँचा था, असम्भव वतलाते हैं। तव भी जिन्हे मृत्यु से प्रतिष्ठा का ध्यान अधिक रहता है, क्योकि पुरुप पौरुप सिर मे रखते हैं और उसकी रक्षा मे प्राण और धन त्याग देते है, वे ऐसा न करते। इसने सदा के लिये स्वामिद्रोह और मान-हानि, जो धव्वा प्रलय तक नहीं छूटता,अपने लिये पसंद किया। ९ सफर सन् १०५९ हि० (१२ फरवरी १६४९ ई०) को सामान और साथियो सहित यह दुर्ग से निकल कर वाहर आया और अली कुली खाँ से कहा कि शाह के सामने न जाना हो तो अति उत्तम है और यदि ऐसा न हो सके तो छुट्टी मे देरी न की जाय। अली कुली खाँ दोनो मतलव साधने को गंज अली खाँ के वाग मे (गंज वाग) शाह के सामने उसे लिवा गया और उसी समय इसे हिंदुस्तान जाने की आज्ञा मिल गई। वड़ी निर्लज्जता और हानि के साथ यह हिंदुस्थान आया। इसके इस राजद्रोह के कारण क्षमा का मार्ग वन्द हो चुका था, इसलिये यह दिल छोटा करके एकातवास करता रहा, जिससे इसकी वची अवस्था वीत गई।

यह सत्य है कि इसकी अयोग्यता और कायरता मे किसी को शंका नहीं है, क्योंकि इसने ऐसे दृढ़ दुर्ग को, जिसके चारो ओर पाँच दीवालें थी और जिसमे ४००० तलवरिये और धनुर्धारी तथा ३००० योग्य वंदूकची थे और दो वर्प का सामान, कोप, रसद, वारूद इत्यादि भरा था, केवल दो महीने के घेरे के वाद छोड़ दिया। इसने यश से इस कादरता को विशेप माना और प्राण से मान को अधिक नहीं समझा। उसी समय वाहर से रात्रि के अंधेरे मे दुर्ग के नीचे से तीरो से समाचार मिल रहा था कि कजिलवाश सेना घास और गल्ला के कम होने से वहुत घवराई हुई है तथा इसी वीच हिंदुस्थान से सहायता पहुँच जायगी यदि यह एक मास दृढ़ रह कर ठहर जाता तो शत्रु असफल लौट जाते। उस विगड़ी हुई वुद्धि वाले का साहस ठीक न रहा। इसी अभाग्य से इसने अपने वचे हुए जीवन के कुछ वर्षो को नष्ट कर दिया।

•

३८३. दौलत खाँ लोदी

यह पहिले खानआजम मिर्जा अजीज कोका का नौकर था। वुद्धिमानी और अनुभव मे वहुत वढ़ा-चढ़ा था इसलिये जव मिर्जा कोका की वहिन का विवाह वैराम खाँ के पुत्र अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ के साथ हुआ तव खानआजम ने इसको मिर्जा के सुपुर्द कर दिया और कहा कि यदि पिता के पद और

प्रतिष्ठा तक पहुँचने का उत्साह हो तो इसको अपने मित्र के समान रखना। दौलत खाँ बहुत काल तक मिर्जा अब्दुल् रहीम मिर्जा खाँ के साथ रहा और अच्छा काम किया। गुजरात-विजय मे, जिसमें मिर्जा को खानखानाँ की उपाधि मिली थी, यह सम्मिलित था। ठट्टा की चढाई दक्षिण युद्धों मे बहुत प्रयत्न कर यह प्रसिद्ध हुआ और खानखानाँ की सेवा में रहते हुए इसने एक हजारी मंसब पाया। इसके अनन्तर शाहजादा दानियाल ने इसे अपने यहाँ नौकर रख कर दो हजारी मंसब दिया। जब शाहजादा अहमदनगर से असीरगढ़ की विजय पर बधाई देने को बादशाह के यहाँ गया तब दौलत खाँ को शाहरुख की सहायता को वहीं छोड़ा, जो उस प्रांत की रक्षा पर नियत था। यह सन् १००९ हि० मे ४५ वें वर्ष मे शूल की बीमारी से अहमदनगर मे मर गया। वह अपने समय के बहादुरों का सिरमौर था। अकबर इसकी वीरता और साहस से सर्वदा सशंकित रहता। जब इसकी मृत्यु का समाचार मिला तो उसने कहा कि 'आज शेर खाँ सूर संसार से उठ गया।' इसके कुछ विचित्र किस्से कहे जाते हैं।

सन् ९८६ हि० मे २४ वें वर्ष मे जब शहबाज खाँ कंबू राणा को दंड देने के लिए नियत हुआ तब इसने कूच का अच्छा प्रबंध किया था। स्वयं कुछ सैनिकों के साथ आगे-आगे जाता तथा कुल मंसबदार तथा नौकर पीछे-पीछे आते। यात्रा प्रबंधक लोग ऐसा कड़ा प्रबंध रखते थे कि घोड़ा दूसरे से एक कान भी आगे नहीं जाता था। एक दिन खानखानाँ जो सहायको मे से था, इसके साथ घोड़े पर जा रहा था। दौलत खाँ सेना से आगे निकल कर चल रहा था और यसावलों के रोकने पर भी नहीं मानता था। शहबाज खाँ के संकेत करने पर, जिसमें जल्दीपन अधिक था,उसके भाई अब्दुल खाँ ने घोड़े को कोड़ा मार के तेजकर दौलत खाँ के घोड़े के नाक पर डंडा मारा। इसने तलवार खींच कर उसके घोड़े को ऐसा मारा कि वह वहीं गिर गया। शहबाज खाँ ने सैनिको को इसे पकड़ने की आज्ञा दी पर वह हाथ की सफाई और वीरता से लड़कर सेना से निकल गया। अफगानों ने उपद्रव मचाकर इसकी सहायता की। खानखाना स्वयं अपनी निष्पक्षता प्रकट करने के लिये शहबाज खाँ के स्थान पर ठहरा रहा। इस पर शहबाज खाँ बाहर आकर उससे गले मिला तथा घर जाने की छुट्टी दी। दूसरे दिन खानखाना ने दौलत खाँ को लाकर क्षमा दिलाई और शहबाज खाँ ने घोड़ा तथा खिलअत आदि देकर कहा कि तुम सेना के इमाम होकर सदा आगे चला करो।

जब अबुल्फ़जल दक्षिण के कार्यों को निपटाने गया था तब एक दिन मजलिस में, जहाँ खानखानाँ भी बैठा था, शेख ने यह बात उठाई कि तलवार हिंदी किताबों में लिखी मिली है पर मैंने अभी तक नहीं देखा है। दौलत खाँ ने इसको आक्षेप समझ कर अपनी तलवार नंगी कर ली और कहा कि यह तलवार हिंदी है। यदि इसे तेरे सिर पर मारूं तो नीचे तक पहुँचे। खानखानाँ हाथ पकड़ कर उसको बाहर लिवा

लाया और शेख अन्यमनस्क हो गए। खानखानाँ उसे शेख के घर पर लिवा जाकर उसके लिए स्वयं क्षमा-प्रार्थी हुआ। शेख ने उससे गले मिल कर उसको हाथी और खिलअत आदि दिया तथा कहा कि वह आक्षेप नहीं था।

उनमे सबसे आश्चर्यजनक यह है, जो जखीरतुल्ख्वानीन में लिखा है कि जब शाहजादा दानियाल का खानखानाँ से मन फिर गया तब यौवन के अविवेक में आकर उसने अपने एक लुच्चे साथी को संकेत किया कि जब खानखानाँ आवे तब उसे ऐसा धक्का दो कि वह दुर्ग बुर्हानपुर से, जो ताप्ती पर है, नीचे गिर पड़े। जिस दिन ऐसा बर्ताव खानखानाँ के साथ किया गया उस दिन दैवयोग से ऐसा हुआ कि वह बिल्कुल दृढ़ रहा। उसकी केवल पगड़ी गिर पड़ी। शाहजादा ने स्वयं उठकर और हाथ पकड़ कर क्षमा मांगी कि यह मेरे नशे की अवस्था में हो गया। दौलत खाँ ने शाहजादा की पगड़ी उतार कर खानखानाँ के माथे पर रख दी और घर लिवा लाया। यह बात बुद्धि मे नहीं आती क्योंकि उस समय दौलत खाँ शाहजादा के साथ था, खानखानाँ के नहीं। इसलिए यह बुद्धिमानों द्वारा मान्य नहीं है। दौलत खाँ के पुत्रो मे महमूद दुःखी होकर पागल सा हो गया और औषधि से उसे कुछ लाभ नहीं हुआ। ४६ वें वर्ष में शिकार में इसका लोगों का साथ छूट गया और कस्बा पाल में कोलियों से लड़कर यह मारा गया। दूसरे पुत्र पीराई को खानजहाँ लोदी की पदवी मिली, जिसका वर्णन अलग दिया गया है।

०

३८४. नकीब खाँ मीर गियासुद्दीन अली

यह कजवीन के सैफी सैयदो में से है और ईरान मे सुन्नी मत का यह वंश प्रसिद्ध है। इसका पितामह मीर यहिया हसनी सैफी अनेक प्रकार की विद्याओं का पूर्ण ज्ञाता था। यात्रा विवरण तथा इतिहास मे अपने समय का अद्वितीय तथा सिरमौर विद्वान था। मिसरा—

किसी को इस तारीख मे उसके समान न देखा।

कहते हैं कि इसने इसलाम के आरम्भ से अपने समय तक के प्रतिवर्ष का वृत्तांत, जो लोग उससे पूछा करते थे, अर्थात् घटनावली और सुल्तानों, शेखों, विद्वानो तथा कवियो का विस्तार से तथा व्याख्यात्मक ठीक-ठीक हाल लिखा है और उनके जन्म तथा मरण की मितियाँ भी दी हैं। लुबुत्तवारीख इसकी एक रचना है। आरम्भ मे शाह तहमास्प सफवी की सेवा मे रहकर इसने सम्मान तथा विश्वास प्राप्त किया।

शाह उसको निर्दोष बच्चा यहिया कहता था। झगडालुओं ने शाह को उसकी ओर से यह कहकर रुष्ट कर दिया कि मीर यहिया और उसका पुत्र मीर अब्दुल्लतीफ सुन्नी मत और समूह के हैं तथा कजवीन के सुन्नियों के वे अग्रणी हैं। शाह ने आजरबईजान की सीमा पर से कोरची नियत किया कि मीर को सपरिवार सफाहान लाकर कैद में रखे। उस समय मीर का द्वितीय पुत्र, नफायमुल्मआसिर का रचयिता, मीर अलाउद्दौला उपनाम 'कामी' आजरबईजान ही मे था और उसने यह समाचार शीघ्र पिता के पास भेज दिया। मीर यहिया वार्द्धक्य के कारण भाग न सका और कोरची के साथ सफाहान जाकर एक वर्ष नौ महीने के बाद सन् ९६२ हि० में सतहत्तर वर्ष की अवस्था मे मर गया। परन्तु मीर अब्दुल्लतीफ यह भयानक समाचार पाते ही कैलानात को भागा। इसके अनन्तर हुमायूँ के बुलाने पर वह हिंदुस्तान की ओर चला आया। इसके पहुँचने से पहिले ही उस बादशाह पर अवश्यम्भावी घटना घटी। मीर अकबर के राज्य के आरम्भ मे सपरिवार हिंदुस्तान आया और बादशाही दरबार मे भर्ती हो गया। इस पर अनेक प्रकार की कृपा हुई और इसकी प्रतिष्ठा की गई। २रे वर्ष मे यह अकबर का शिक्षक नियत हुआ। वह ऐश्वर्यशाली बादशाह लिखना नही जानता था पर कुछ समय मनोग्राही गजलो को मीर से पढा। मीर स्वयं अनेक विद्याओ तथा गुणो मे और वाक्शक्ति तथा दृढता मे विशिष्ट योग्यता रखता था। यह उदारता तथा धर्मांधता के अभाव से एराक मे सुन्नी होने की प्रसिद्धि रखते हुए भी हिंदुस्तान मे शीआपन के लिए विख्यात हुआ। इस कारण मीर के शांतिगृह का नियामक होने से हर मत के लोग (धर्मांध मुसलमान) उस पर व्यंग्य कसते। कहते हैं कि आचार-विचार में अपने धर्मग्रन्थ के नियमो के अनुसार चलता और प्रतिद्वन्द्वियो की भी आवश्यकता पडने पर इच्छा पूरी करने का साहस रखता था। शील तथा सतर्कता उसका जीवन था।

जब अकबर बैराम खाँ से बिगड़ गया और वह आगरे से निकल कर आलौर की ओर चला तथा यह प्रकट किया कि युद्ध के लिए वह पंजाब जायगा तब अकबर दिल्ली से बाहर निकल मीर को, जिसे अपने पासवालो मे सबसे अधिक बुद्धिमान तथा विश्वसनीय समझता था, खानखानाँ के पास भेजा कि उसे जाकर समझावे और कुमार्ग से दूर रखे। मीर सन् ९८१ हि० (सन् १५७४ ई०) मे सीकरी कस्बे में मर गया। कासिम अर्सलाँ ने 'फख्रेआल यसा' मे इसकी तारीख कही।

मीर का बडा पुत्र मीर गियासुद्दीन अली अपनी हितैषिता, सुस्वभाव और निरंतर की सेवा के कारण अकबर का बराबर कृपापात्र रहा और बादशाह भी उस पर सदा स्नेह रखते रहे। २६ वे वर्ष मे नकीब खाँ की पदवी इसे मिली। ४०वें वर्ष तक यह केवल एक हजारी मंसब तक पहुँचा था पर संबंध बहुत दृढ बना लिया था। अकबर ने मिर्जा मुहम्मद हकीम की बहिन सकीना बानू बेगम का निकाह

इसके चचेरे भाई शाह गाजी खाँ से कर दिया था। इसका चाचा काजी ईसा बहुत समय तक ईरान में काजी का कार्य करने के बाद हिंदुस्तान आकर बादशाही सेवा मे भर्ती हो गया था। सन् ९८० हि० (सन् १५७४) मे वह मर गया। ३८ वें वर्ष मे नकीब खाँ ने प्रार्थना की कि काजिम ईसा ने अपनी पुत्री हुजूर को भेंट दी है और वह पर्देनशीन स्त्री उसी इच्छा से अपना कालयापन कर रही है। अकबर ने नकीब खाँ के गृह जाकर बड़ो की चाल पर उससे निकाह कर लिया। जहाँगीर के राज्य मे मंसब और विश्वास बढने से यह सम्मानित हुआ। ९वे वर्ष सन् १०२३ हि० मे जब जहाँगीर अजमेर मे था तब इसकी मृत्यु हुई। यह चिश्ती रौजा में संगमरमर के घेरे में अपनी स्त्री खानम के साथ गाड़ा गया, जो गृहिणी और बुद्धिमती थीं।

नकीब खाँ भी हदीस, सैर तथा पवित्र नामों की व्याख्या करने मे बड़ी योग्यता रखता था और इतिहास-ज्ञान मे भी एक था। कहते हैं कि रौजतुस्सफा के सातों भाग कंठाग्र थे और 'जफर' विद्या में, जिससे गैब की बाते जानी जाती हैं, बडी योग्यता रखता था। जहाँगीर ने अपने आत्मचरित मे लिखा है कि नकीब खाँ अनुमान और विचार करने मे अच्छी बुद्धि रखता था तथा अत्यंत दूरदर्शी था। एक कबूतर हवा मे उड़ रहा था, जिसे देखकर हमने कहा कि कई हैं पर जब गिना गया तब एक से अधिक न था। नकीब खाँ ने अवस्था अधिक पाई थी। कहते हैं कि एतमादुद्दौला और मीर जमालुद्दीन हुसेन आजू से मिला हुआ था। इसका पुत्र मीर अब्दुल्लतीफ भी, जिसे दादा का नाम मिला था, विद्वान और गुणी था। मिर्जा यूसुफ खाँ रिजवी की बहिन से इसकी शादी हुई थी। इसे अच्छा मंसब मिला था। अंत में दिमाग बिगडने से इसकी मृत्यु हो गई।

३८५. नजर बहादुर खेशगी

इसका देश और जन्म स्थान कसूर कस्बा है, जो बारी दोआबे मे राजधानी लाहौर से अठारह कोस पर है और खेशगियो का निवास स्थान है, जो अफगानों में एकता तथा बड़प्पन के लिए प्रसिद्ध हैं। नजर बहादुर शाहजादा पर्वेज का एक सर्दार नौकर था। जहाँगीर के नौकरो मे भर्ती होने पर इसे डेढ हजारी मंसब मिला। शाहजहां के राज्यकाल मे स्वामिभक्ति तथा विश्वास बढ़ने से २ रे वर्ष में सरकार संभल का फौजदार नियत हुआ और दौलताबाद के घेरे मे इसने वीरता तथा साहस दिखलाया। एक दिन, जब अंबरकोट बादशाही अधिकार मे आ गया, नीचे से तीर, गोली और बान की वर्षा दुर्गवाले टूटी हुई तथा छेदी हुई दीवाल पर जोर शोर से कर रहे थे तथा दुर्ग के भीतर घुसने को तैयार सेना मलबे की ओट में रुककर आगे नही बढ रही थी उस समय नसीरी खा खानदौराँ आगे बढ़कर नजर

बहादुर के साथ बड़े साहस से दाईं ओर से दुर्ग मे घुस गया। वहाँ घोर युद्ध होने लगा और बड़ी वीरता से इन लोगों ने दुर्गवालों को द्वितीय दुर्ग के खाई के भीतर जिसे महाकोट कहते हैं, हटा दिया। इसके उपलक्ष मे दरबार से इस पर कृपा हुई। इसके अनत८ किसी कारणवश यह दो वर्ष तक सेवा से हाथ खींच कर एकातवास करता रहा।

इसकी सचाई, अच्छा स्वभाव सभाचातुरी और सतर्क सेवा प्रसिद्ध थी इसलिए १४वे वर्ष मे पुनः बादशाही कृपा होने पर ढाई हजारी १५०० सवार का मंसवदार हुआ। १५वें वर्ष मे चगता कोचढ़ाई व दुर्ग मऊ तारागढ के लेने मे प्रयत्न कर यह प्रशंसित हुआ। १९वें वर्ष मे तीन हजारी २५०० सवार का मंसव हो गया और शाहजादा मुराद वख्श के साथ बलख बदख्शां गया। जब शाहजादा ने मुफ्त मे मिले हुए पैतृक देश को कुछ न समझ कर आराम करने की प्रकृति के कारण वहाँ से लौटना ही निश्चित किया तव यह उसके साथ देश प्रेम के कारण अन्य अच्छे राजाओ के साथ कार्य छोड़कर पेशावर चला आया। नजर बहादुर खेशगी को सादुल्ला खाँ के प्रधान मंत्रित्वकाल मे उसीके प्रस्ताव पर कुलीज खाँ के साथ बदख्शाँ की रक्षा का भार सौंपा गया था इस कारण जब अटक नदो पार करने की इसे आज्ञा नही मिली तब यह वही ठहर गया और शाहजादा मुहम्मद औरंगजेव के साथ पुनः उस प्रांत को गया। २३ वें वर्ष मे कंधार की चढाई पर रुस्तम खाँ दक्खिनी को हरावल में पे, जब तीस सहस्र लड़ाके कजिलवाशो से युद्ध हुआ था तब, उक्त खाँ ने दृढ़ता से वीरता दिखलाई और बहादुरी से खूब युद्ध किया। शत्रु जब धावो के कारण कुछ न कर सका तब उसने हट कर सेना के दूसरे भाग पर आक्रमण किया। इस विजय के अनन्तर इन प्रयत्नों के पुरस्कार मे एक हजारी १००० सवार बढने से इसका मंसव चार हजारी ४००० सवार का हो गया। २६ वें वर्ष सन् १०६२ हि० (सन् १६५२ ई०) में लाहौर मे यह मर गया। इसके बड़े पुत्र शम्सुद्दीन को उन्नति सहित डेढ हजारी १५०० सवार का मंसव और दूसरे पर कुतुबुद्दीन को डेढ़ हजारी १४०० सवार का मंसव मिला। इसे और भी पुत्र थे, एक का असदुल्ला नाम था। इसे भी यही मंसव मिला था। यह ईश्वर से डरने वाला और धार्मिक था। ऐश्वर्य के रहते भी इसकी प्रकृति उसके उपभोग की ओर नहीं जाती थी। फकीरी चाल रहता था। इसके नौकर संवन्धियो तथा सजातियों मे से थे जिनसे यह भाई चारे का वर्ताव रखता। एक समय यह सैनिको के साथ भोजन करता। यह ऐसा सत्यनिष्ठ था कि जागीर की कुल आय मे से सेना व निजी व्यय ठीक-ठीक जो होता था काट कर कागज पर जमाखर्च कर डालता और उसे शाहजहाँ के सामने पेश कर देता और उसमे से कुछ दवा नही रखता था।

३८६. नजाबत खाँ मिर्जा शुजाअ

यह बदख्शाँ के शासक मिर्जा शाहरुख का तृतीय पुत्र था। योग्यता तथा प्रसिद्धि मे अपने भाइयों मे सबसे बढकर था। जहाँगीर के राज्यकाल मे यह हिंदुस्तान मे पैदा हुआ। यद्यपि अपने बड़े भाई मिर्जा बदीउज्जमाँ को मार डालने के कारण, जो क्रोध तथा उपद्रव करने में बहुत उद्दंड था, यह अपने अन्य भाइयो के साथ दंडित तथा कैद हुआ पर उसके बाद बादशाही कृपा पाकर अच्छी सेवा तथा भलाई के कारण इसने उन्नति किया। शाहजहाँ के तीसरे वर्ष मे नजाबत खाँ की पदवी और दो हजारी मंसब पाकर यह सम्मानित हुआ तथा इसे कोल की फौजदारी मिली। ४ थे वर्ष मे इसका मंसब बढा तथा इसने डंका पाया और मुलतान प्रांत की फौजदारी पर यह नियत हुआ, जो यमीनुद्दौला की जागीर मे था। इसके अनंतर पहाड़ के नीचे कांगड़ा का फौजदार होकर इसने उस कार्य को अच्छी प्रकार सँभाला और तीन हजारी २००० सवार का मंसबदार हो गया। स्वामिभक्ति तथा कार्यशक्ति के कारण श्रीनगर का कार्य पूरा करने को यह प्रतिज्ञाबद्ध हुआ कि या तो उस प्रात पर अधिकार कर लूंगा या उसके अध्यक्ष से भारी भेंट लेकर सरकारी कोष में जमा करूँगा। इसे दरबार से दो सहस्र सवार सहायता को दिए गए।

कहते हैं कि जब सहारनपुर और मेरठ इसके अधीन था उसी समय श्रीनगर का राजा मर गया, जो एक बडा पहाड़ी राजा था और विस्तृत राज्य तथा सोने की खान रखता था। उसकी स्त्री ने दोस्त बेग मुगल के साथ, जो पहिले ही से राजा के समय से अधिकारी था, कुल अधिकार अपने हाथ मे ले लिया और जो उसकी सेवा से मुकरता उसकी नाक कटवा लेती, जिससे वह 'नक कट्टी' रानी के नाम से प्रसिद्ध हो गई। कुछ अदूरदर्शी दुष्टों ने नजाबत खाँ को बहकाया कि पुराना करोड़ी मिर्जा मुगल सदा चाहता था कि इस केलागढी को, जो उस राजा के अधीन था, बादशाही थाना बनावे और यदि ऐसा हो तो यह कुल प्रात अधिकार मे चला आवे। वह स्त्री क्या कर सकेगी यदि तुम अधिकार का पैर उस ओर बढ़ाओ। अनुभवहीन खाँ का साहस बढा और ९ वे वर्ष में यह उस प्रांत की ओर बढा। दृढ दुर्ग जैसे शेर गढ, जिसे श्रीनगर के राजा ने अपनी सीमा पर जमुना नदी के किनारे बनवाया था, और कानी दुर्ग को, जो पहिले सिरमौर के राजा के अधीन था, अधिकार में लाकर जमींदार को दे दिया। ननोर दुर्ग लेकर इसने हरिद्वार के पास से गंगा पार किया। यद्यपि वहाँ के शासक ने बहुत पैदल सेना एकत्र कर दर्रो तथा घाटियो को रोकने का प्रयत्न किया और नदी के उतारों को मिट्टी तथा पत्थर के रुकावटो से दृढ किया पर साहसी खाँ वीरता तथा बहादुरी से सबको पार करता गया। जब यह श्रीनगर से तीस कोस पर पहुँचा तब वहाँ वाले इस निरंतर के युद्ध से डर गए

और अधीनता स्वीकार करने के लिए प्रतिनिधि भेज कर दस लाख रुपया भेंट देना निश्चय किया और दो सप्ताह की अवधि प्रतिज्ञा पूरी करने को लिया। परंतु बहुत प्रयत्न करने पर डेढ महीने बाद कुल एक लाख रुपया मिला। यह अनुभवहीन सर्दार बरावर विजय प्राप्त करने के घमड मे उस कष्ट के समय को दूर करने का कोई उपाय नही कर सका, जब कि खानपान का सामान इतना घट गया कि मनुष्यो के प्राण ओठ तक आ गए पर रोटी ओठ तक न पहुँची। पहाडियो ने सब मार्ग बंद कर दिए थे इसलिए जो भी रसद लाने के लिए जाता था वह उनके द्वारा लूट लिया जाता था। जब काम प्राण तक और छुरी हड्डी तक पहुँची तथा उपद्रवियो ने भीड कर घेर लिया तब यह युवक ,खाँ असावधानी की नीद से जागा और सिवा लौट जाने के इसने कोई उपाय नहीं देखा। निरुपाय होकर यह लौटा। कुछ लज्जाशीलो ने इस-प्रकार लौटना पसंद न कर युद्ध मे प्राण दे दिए पर अधिकतर छुटकारे की आशा से पैदल ही लौट चले। इनका कोई प्रभाव नहीं पडा। नजावत खाँ पैदल ही जब्वाल घाटी से जहाँ पक्षियो का जाना कठिन था, गिरता पड़ता बीस दिन मे पेडो के पत्तों से भूख मिटाते हुए संभल के पास वाहर आया। इस असावधानी के कारण यह कुछ दिन मंसव तथा जागीर से हटाया जाकर दडित रहा।

इसके अनतर इसका मंसव बहाल हुआ और फिर कुलीज खाँ के स्थान पर मुलतान का सूबेदार नियत हुआ। जब १५ वे वर्ष मे जगत सिंह का राज्य मऊ, नूरपुर, तारागढ तथा पठानकोट विजय हुआ तब यह उस विजित प्रात पर नियत हुआ। २३ वें वर्ष मे कंधार की चढाई पर से लौटने पर इसे पाँच हजारी मंसव की उन्नति मिली और वहाँ पहुँच कर इसने अच्छे कार्य किए।

शाहजहाँ के राज्य के अंतिम समय मे यह शाहजादा के सहायकों मे नियत हुआ, जो बीजापुर की चढाई पर नियुक्त हुआ था। जिस समय शाहजहाँ के बीमार हो जाने से हर ओर उपद्रव उठ खड़ा हुआ और युवराज शाहजादा मुहम्मद दाराशिकोह के बुलाने से दक्षिण के सहायक दरबार को चल दिए उस समय इसके सिवा कोई अच्छा बादशाही मनुष्य शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब के पास नही रह गया। जब साम्राज्य के लिए लड़ने का दृढ निश्चय दिया तब यह सम्मति देने के सभी कार्यों में बढा रहा। इसे सात हजारी ७००० सवार का मंसव देकर प्रथम जमादिउल् अव्वल सन् १०६८ हि० को शाहजादा मुहम्मद सुलतान को अग्गल की चाल पर औरंगाबाद से आगे भेजा। महाराज जसवंतसिंह के युद्ध के बाद, जिसमे सुलतान मुहम्मद के हरा-वल मे वाएँ भाग का अध्यक्ष रहकर इसने वड़ी वीरता दिखलाई थी, यह एक लाख रुपया पुरस्कार और खानखानाँ बहादुर सिपहसालार की उच्च पदवी पाकर सम्मा-नित हुआ। इसके अनन्तर नजावत खाँ अपने ओछे तथा दुष्ट स्वभाव के कारण इस मित्रता से अहंकार मे भरकर अपने स्वामी से ऐंठने लगा और उच्चता से नीचता करने

लगा। राजाओं की प्रकृति मर्यादा भंग होने देना नहीं चाहती, विशेषकर औरंगजेब बादशाह जिसने अपने पिता तथा भाइयों से क्या बर्ताव किया और जो नहीं चाहता था कि संसार में किसी का सिर जीवित तथा रंग ठीक बना रहे, इसलिए वह इसकी चाल को न सह सका और राजगद्दी के बाद उसके पित्त को तोड़ने के लिए खट्टेपन की चाल से नीबू काम में लाया। जिस समय वह दाराशिकोह का पीछा करने को दिल्ली के पास सेना के साथ पहुँचा तब नजाबत खाँ छोटे कारणों से घर बैठ रहा क्योंकि वह स्वयं अपने बर्ताव से लज्जित था। औरंगजेब ने मीर अबुल्फज्ल मामूरी को, जो पुरानी सेवा के कारण कृपापात्र हो मामूर खाँ की पदवी पा चुका था और उक्त खाँ से भी मित्रता दृढ़ कर रखा था, उसके स्वभाव को ठीक करने तथा कुछ संदेश देकर भेजा। मीर ने बहुत समझाकर चाहा कि यह सुव्यवहार करे पर वह मालिन्य, जो इसके हृदय में इस बीच बढ़ गया था, नहीं मिटा और यह निर्भीकता से बेतहाशा अनुचित बातें बादशाह के लिए कहने लगा। मीर मर्यादा तथा स्वामि-भक्ति के विचार से उठकर चला ही था कि उस पागल ने, जिसका मस्तिष्क सहस्र पागलपन का बर्रे का छाता बन गया था, यह देखते ही कि यह जाकर स्यात् कुछ उपद्रव न करे मसनद पर रखे हुए नीमचे को उठाकर मामूर खाँ पर पीछे से ऐसा चोट किया कि उस सैयद के दो टुकड़े हो गए। ऐसा भारी दोष करने पर इसका मंसब, जागीर और ऊँची पदवी, जिसे बहुत परिश्रम से पाया था, सब छिन गई। मुलतान से लौटने पर जब बादशाह दिल्ली आए तब शेख मीर के भाई अमीर खाँ की मध्यस्थता में यह सेवा में उपस्थित हुआ। ३रे वर्ष के जशन में, कि अब तक बिना शस्त्र के दरबार में आता था, इसे तलवार मिली। ५वें वर्ष में पाँच हजारी ४०००सवार का मंसब और पहिले की पदवी दुबारा मिली। ६ठे वर्ष मालवा का सूबेदार जाफर खाँ वजीर नियुक्त किए जाने के लिए जब दरबार बुलाया गया तब नजाबत खाँ उस विस्तृत प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। वहीं ७वें वर्ष में यह मर गया।

यह साहस, वीरता तथा उदारता में अपने समय में अद्वितीय था। चुने हुए मनुष्य अपने साथ रखता। शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर साम्राज्य के लिए युद्ध करने जब हिंदुस्तान की ओर चला तब इससे बहुधा सम्मति लिया करता था। इसके पास अच्छी सेना थी और स्वयं वीर था इससे शाहजादा भी पूछताछ करते हुए बहुत अच्छा सलूक करता था। कहते हैं कि जब महाराज यशवंत सिंह के युद्ध के अनंतर औरंगजेब आगरे की ओर चला तब दाराशिकोह ने युद्ध की तैयारी करने का साहस किया। उस समय शाहजहाँ ने कहा था कि उत्तम तो यह है कि यदि मैं स्वयं बाहर निकलूँ तो स्यात् युद्ध ही न हो क्योंकि उसके साथ में अधिकतर बादशाही नौकर हैं जो ऐसी सूरत में उसकी अधीनता न करेंगे और तुम्हारे साथ जो बाद-शाही आदमी हैं वे हमारी उपस्थिति में अधिक प्रयत्नशील होंगे। जब यह समाचार आगरे के लेखों से शाहजादे को मिला तब वह उन पत्रों को लेकर घबड़ाहट के साथ

नजावत खाँ के यहाँ गया कि इस बात की सूचना दे। नजावत खाँ ने प्रार्थना की कि मेरे सोने का समय है, आप भी यही आराम करे। इस पर शाहजादा बैठा रहा। यह स्वय जाकर दोपहर भर सोया और उठ कर भाँग छानने पर जब नशा आया तथा दिमाग तर हुआ तब शाहजादा की सेवा मे पहुँचा। सब सुनकर इसने कहा कि हमने आपकी इच्छा जानकर यह कार्य किया है और अपने स्वामी का विरोधी हो गया हूँ। अब आपको अधिकार है। यदि अवसर पड़े तो मै एक बार स्वयं जहाँ-गीर पर तलवार चला दूँ। जो होना हो वह हो। शाहजादे का साहस बढा और उसने इसकी दृढ़ता की प्रशंसा की। इसे योग्य पुत्र थे और कई का इस ग्रंथ मे उल्लेख हुआ है।

•

३८७. नजीबुद्दौला नजीब खाँ

यह अफगान था और पहिले जमादारी करता था। जिस समय एमादुलमुल्क गाजीउद्दीन खाँ और अबुल्मंसूर खाँ मे युद्ध की नौबत आई तब इसने गाजीउद्दीन खाँ की नौकरी कर दरबार मे आने जाने से सभ्यता सीख ली और एमादुल्मुल्क के प्रस्ताव पर इसे सात हजारी मंसब और नजीबुद्दौला बहादुर साबितजंग की पदवी मिल गई। शाह दुर्रानी के आने पर सन् ११७० हि०, सन् १७१७ ई० मे दिल्ली मे उससे भेंट कर स्वजाति होने से उसका विश्वासपात्र हो गया तथा अच्छे पद पर पहुँचा। यहाँ तक कि अमीरुल्उमरा तथा एमादुल्मुल्क के समान हो गया।

जब एमादुल्मुल्क ने फर्रुखाबाद से लौटकर तथा रघुनाथ राव और मल्हार राव को दक्षिण से बुलाकर एक साथ दिल्ली को घेर लिया तब नजीबुद्दौला होलकर को मिलाकर अपने सामान व परिवार के साथ बाहर निकल कर जमुना के उस पार अपने ताल्लुके को चला गया। वहाँ दत्ता सीधिया ने शकरताल मे सन् ११७३ हि० सन् १७६० ई० मे इसको घेर कर इसकी खराब हालत कर दी थी पर शुजाउद्दौला की सहायता से इसे छुटकारा मिला। इसी समय दुर्रानी शाह के आने पर नजीबु-द्दौला ने उसकी हरावली मे नियत होकर सदाशिव राव भाऊ पर आक्रमण करने मे बहुत प्रयत्न किया। इसके बाद शाह आलम बहादुर दिल्ली के तख्त पर बैठा और दुर्रानी शाह अपने देश लौट गया तब यह स्थायी रूप से अमीरुल्उमरा हो गया।

सन् ११७९ हि०, सन् १७६५ ई० मे सूरजमल के पुत्र जवाहिर सिह जाट का इसने अच्छी प्रकार सामना किया, जो अपने पिता का बदला लेने को दिल्ली पर

चढ आया था। वादशाह शाह आलम के पुत्र जवाँ वख्त को शासन का अधिकार पत्र देकर यह दृढता से दिल्ली मे रहने लगा। दोआव का वहुत सा भाग इसने जागीर मे ले लिया था। सन् ११८५ हि०, सन् १७७१ ई० मे यह मर गया।

इसका पुत्र जावित खाँ अपने पिता की जागीर पर अधिकृत हुआ। जव शाह आलम वादशाह इलाहावाद प्रात से दिल्ली की ओर चले तव यह मजुद्दौला की मध्यस्थता मे, जो उस समय नायव वजीर था, उसके कहने पर दरवार मे पहुँचा। शाही सेन दिल्ली से वारह कोस पर वादली के पास थी कि मिर्जा नजफ खाँ वहादुर आगरे से वुलाए जाने पर सेवा मे उपस्थित हुआ। उसी समय वादशाही सरकार के माल के मुत्सद्दियों ने दिल्ली प्रांत के मध्य दोआव के महालों का, जावित खाँ के अधिकार में था, कुल रुपया उक्त खाँ से माँगा। यह मुत्सद्दीकुल शंका के कारण और उक्त वहादुर के वादशाही सेना में आ मिलने से तथा अपनी करनी से सशंकित होने से मजलिस (राजसभा) का दूसरा रंग देख कर रात्रि मे वादशाही सेना से भागा और गंगाजी के उस पार गौसगढ़ में जो वहुत दिनो से उसका निवास स्थान तथा रक्षागृह था, पहुँच कर वैठ रहा। इसके अनंतर वादशाह दिल्ली गए और मिर्जा नजफ ख ं के साथ सेना सहित उस पर चढाई कर युद्ध आरंभ कर दिया और उसके गढ को घेर लिया। यह तंग होकर दुर्ग से भागा तथा सिक्खों के यहाँ पहुँचा, जो पंजाव प्रांत में विद्रोह कर मुलतान से लाहौर तक और दिल्ली के कुछ महालों पर अधिकृत हो गए थे। वहुत दिनो तक उनकी सेना के साथ वादशाही महालों पर धावा करता रहा। मिर्जा नजफ खाँ ने उसे मिलाने का साहस कर अपने पास वुला लिया और वादशाह से उसे क्षमा करने की प्रार्थना की। इसके पुराने महालो में से कुछ अंश देकर इसे वहाँ का प्रवंध करने के लिए विदा कर दिया। लिखते समय तक वह जीवित था।

३८८. नजीबुद्दौला शेखअली खाँ बहादुर

यह सैयदुल्लतायफः शेख जुनेद वगदादी के वंश में था। इसका पिता शेख अली खाँ कलाँ (वड़ा) व चाचा वहलोल खाँ शेख मुहम्मद जुनेदी के पुत्र थे, जिसकी पुत्री का निकाह शेख मिनहाज वीजापुरी से हुआ था, जो वीजापुर का एक सर्दार था। औरंगजेव के राज्यकाल के १७ वें वर्ष मे वहलोल खाँ अब्दुल्करीम खवास खाँ को, जो सिकन्दर आदिलशाह के कार्यो का वकील था, कैद कर स्वयं प्रवन्धक वन वैठा। इसने दक्खिनी सर्दारों पर विश्वास न होने से शेख मिनहाज को सेना के साथ शिवाजी भोसला को दंड देने के लिए वहाने से भेजा और उसके पीछे खिज्र खाँ पन्नी को प्रगट

मे उसकी सहायता के लिए पर वास्तव मे उसे मारने के लिए भेजा। एक दिन खिज्र खाँ ने शेख को भोज के लिए बुलाया पर शेख ने बुद्धिमानी से इस भेद को समझकर फुर्ती से उक्त खाँ को मार डाला और अपने को अपनी सेना मे पहुँचा दिया। इस पर बहलोल खाँ ने स्वयं सेना के साथ पहुँचकर शेख से घोर युद्ध किया। शेख गुलबर्गा चला आया। १५वे वर्ष मे बादशाही आज्ञा से बहादुर खाँ कोका औरगाबाद मे बहलोल खाँ अब्दुलकरीम को दंड देने के लिए रवानः हुआ तब शेख भी आकर बादशाही सेना मे मिल गया। संधि होने पर बहादुर खाँ ने उक्त शेख को गुल्बर्गा भेज दिया। शेख ने लिखा कि यदि सेना भेजी जाय तो दुर्ग पर अधिकार करने का यह अच्छा अवसर है। उक्त खाँ ने वीदर के दुर्गाध्यक्ष कलंदर खाँ के पुत्र वजीरबेग को, जो बाद को जान निसार खाँ हो गया, सेना के साथ भेजा। शेख ने दुर्ग के भीतर जाकर वहाँ के रक्षको को कैद कर लिया और दुर्ग वजीरबेग को सौप दिया। जब दाऊद खाँ नरदुर्ग को छोडकर बादशाही सेना मे चला आया तब बहादुर खाँ ने उसके विचार से शेख मिनहाज को हैदराबाद के शासक के पास भेज दिया। हैदराबाद के विजय के बाद बादशाही सेवा मे चले आने से इनका विश्वास बढा। निश्चित समय पर इसकी मृत्यु हो गई।

शेख मुहम्मद जुनेदी बीजापुर के सुलतान की सेवा में दिन व्यतीत कर रहा था पर बीजापुर के विजय के अनन्तर बादशाही सेवा में चला आया। उसकी मृत्यु पर बहरोज खाँ को सर्दारी मिली और इसके मरने पर शेखअली खाँ को मिली। मुहम्मदशाह के राज्य के आरंभ में जब निजामुल्मुल्क आसफजाह ने बहुत प्रयत्न कर दक्षिण प्रांत को बारहा के सैयदो से खाली करा लिया तब उक्त प्रांत के छोटे बड़े सभी उसके गृह पर गए। इसे भी इस कारण ऐसा ही करना पडा। भेंट के पहिले दिन, जब यह सलाम करने के स्थान पर खडा हुआ, तभी फाजिल ने इसे मार दिया और इसी रोग से यह मर गया।

इसके अनन्तर इसका कार्य शेख अली खाँ बहादुर को मिला और यह बराबर निजामुल्मुल्क आसफजाह के साथ रहा। एक बार यह नानदेर का सूबेदार हुआ और अच्छे मसब तक पहुँचा। सलाबतजंग के शासनकाल में इसने नजीबुद्दौला की पदवी पाई। पर इस पदवी से यह प्रसन्न नहीं था कि कोई उसे इस नाम से याद करे। यह बड़े डील वाला था पर घुडसवारी का इसे पूरा अभ्यास था। सन् ११८२ हि०, सन् १७६८ मे मर गया। बडा पुत्र अब्दुल्कादिर था, जो बरार प्रात के अन्तर्गत पाथरी परगना के आश्ती आदि ग्राम की जागीरदारी पाकर प्रसन्न हुआ, जो सुलतानी फर्मानो के अनुसार जागीर में इसके पूर्वजो को तथा इसके जीवन भर के लिए मिला था। यह शीघ्र ही मर गया। दूसरे पुत्रो में किसी ने योग्यता न दिखलाई।

३८९. नजमुद्दीन अली खां बारहः, सैयद

यह अब्दुल्ला खाँ सैयद मियां का पुत्र था। यह साहस तथा वीरता के लिए प्रसिद्ध था, जो इसके वंश की पैतृक सम्पत्ति थी। जब इसके भाई कुतुबुल्मुल्क और अमीरुलउमरा महम्मद फर्रुखसियर बादशाह का पक्ष लेकर तथा बहुत प्रयत्न करने पर ऊँचे पदों पर पहुँचे, तब यह भी मनसब की उन्नति पाकर सम्मानित हुआ। इसके अनन्तर जब उक्त बादशाह का काम बिगड़ गया और कुतुबुल्मुल्क सुल्तान रफीउद्दौला के साथ राजा जयसिंह को दंड देने के विचार से राजधानी दिल्ली के बाहर निकला तब वहाँ की सूबेदारी नजमुद्दीन अली खाँ को मिली। महम्मदशाह के राज्य के २ रे वर्ष में जब अमीरुलउमरा मारा गया और कुतुबुल्मुल्क ने, जो दिल्ली प्रांत की ओर बिदा होकर अभी वहाँ पहुँचा भी नहीं था और अपने भाई के मारे जाने का समाचार सुन कर अपने आदमियों को सामान लाने को दिल्ली भेजा तथा नज्मुद्दीन अली को वहाँ की रक्षा करने के लिए लिखा तब इसने यह समाचार सुनते ही घबड़ा कर पहिले कुछ सवार और पैदल सेना कोतवाल के अधीन एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीन खाँ के मकान को घेरने के लिये भेज दिया पर अन्त में कुतुबुल्मुल्क के लिखने पर उस काम से हाथ हटा लिया। कहते हैं कि सेना बढ़ाने के विचार से इसने एक प्रकार से सर्वसाधारण को भोज दिया था, जिसमें छोटा टट्टू और पुराना लँगड़ा घोड़ा ताजी घोड़ों के साथ एक दर्जे का माना गया अर्थात् छोटे-बड़े सभी का समान स्वागत किया गया।

युद्ध के दिन हरावल की सेना का यह अध्यक्ष था और इसने बड़ी निर्भयता से साहस कर खूब लड़ाई लड़ा। युद्ध में यह बहुत घायल हो गया और इसकी एक आँख चोट लगने से काम की नहीं रह गई तथा यह पकड़ा जाकर कैदखाने में डाल दिया गया। इसकी ९-१० वर्ष की पुत्री को, जिसे उस भयंकर उपद्रव में महल से हटाकर एक वेश्या के घर में छिपा रक्खा था, पकड़कर बादशाह के सामने ले आए। बादशाही महलों के आदमियों ने चाहा कि इसका विवाह बादशाह से कर दिया जाय पर कुतुबुल्मुल्क के बहुत कहने-सुनने पर कि बारहा के सैयदों से कभी ऐसा संबंध नहीं हुआ है, यह रोक दिया गया। उक्त लड़की नजमुद्दीन अली के घर भेज दी गई। ७वें वर्ष मुबारिजुल्मुल्क सर बुलंद खाँ की प्रार्थना पर नजमुद्दीन अली को छुट्टी मिली और यह अजमेर का शासक नियत हुआ। जब गुजरात का सूबेदार सर बुलंद खाँ अहमदाबाद पहुँचकर मरहठों के उपद्रव से नगर को दृढ़ कर भीतर बैठ रहा, जो उस नगर को नष्ट कर देना चाहते थे, तब नजमुद्दीन अली ने बादशाह की आज्ञा से शीघ्र वहाँ जाकर शत्रु से युद्ध किया और उसे परास्त कर दिया। इसके बाद अपने देश लौटने पर कुछ दिन अनन्तर यह ग्वालियर का शासक नियत हुआ और वहाँ के प्रबंध को बड़ी दृढ़ता से पूरा किया। वहीं समय पर यह मर गया। कहते हैं कि जब इसकी एक आँख नष्ट हो गई तब बिल्लौर की आँख इस प्रकार बनवाई कि देखने में बनावटी नहीं मालूम होती थी।

३९०. नयाबत खां

इसका नाम अरब था और यह हाशिम खां नेशापुरी का लड़का था। जब खानखानां मुनइमबेग को अकबर ने पूर्वीय प्रांत को विजय करने के लिए भेजा तब हाशिम खां भी उसके अधीनस्थों मे नियुक्त हुआ और इसे उस ओर की घटनावली लिखने का कार्य सौंपा गया। जलूस के २०वें वर्ष में जन्नताबाद गौड़ की छावनी मे इसकी मृत्यु हो गई, जहाँ का जलवायु ऐसा खराब था कि बहुत से सर्दारगण वहीं मर गए। अरब जो पिता का प्रतिनिधि होकर दरबार मे उपस्थित था, पिता के प्रार्थनापत्रों को पेश करता था इससे १९वें वर्ष मे इसे नयाबत खां की पदवी मिली। इसके अनन्तर बिहार प्रांत के विजय हो जाने पर यह वहां जागीर पाकर खानखानां के साथ नियत हुआ, जो बंगाल विजय करने पर नियुक्त हुआ था, और वहां इसने बहुत काम किया। इसके कुछ दिन बाद खालसा महाल का प्रबंध इसे मिला और जब इसके जिम्मे आवार्जानवीसों ने बाकी निकाला तब इसने उसका ठीक हिसाब न देकर विद्रोह की जड़ डाली। कड़ा कस्बा को, जो इस्माइलकुली खां की जागीर मे था, इसने जाकर घेर लिया और उक्त खां के नौकर ल्पास खां लंगाह को युद्ध मे मार डाला। इस पर इस्माइल कुली खां कुछ बादशाही सेना के साथ दरबार मे भेजा गया। २५वें वर्ष मे वहां पहुँच कर इसने उसका सामना किया और नयाबत खां कुछ आदमी अपने कटाकर भागा। इसके बाद मासूम खां फरखूदी से जा मिला, जो विद्रोह करने के विचार मे था। शहबाज खां के साथ युद्ध मे यह मासूम खां का साथी था। जब मासूम खां विजय प्राप्त करके भी हार गया और अवध की ओर चला गया तब शहबाज खां ने सेना एकत्र कर उस पर चढ़ाई की। नयाबत खां उस समय उससे अलग हो गया। २६वें वर्ष मे अरब बहादुर आदि के साथ संभल मे इसने उपद्रव आरंभ किया। हकीम ऐनुल्मुल्क के बरेली दुर्ग को दृढ़ कर और जागीरदारों को एकत्र कर उस ओर आने पर यह कुछ जमींदारों के द्वारा अधीनता स्वीकार कर बादशाही सेना मे पहुँचा। मरियम मकानी हमीदा बानू बेगम के यहां प्रार्थनापत्र देकर तथा उस वृद्धा बेगम से क्षमा का पत्र पाकर २७वें वर्ष में दरबार आया। बादशाह ने अवसर देखकर उसका दोष क्षमा कर दिया। इसकी मृत्यु की तारीख का पता नहीं लगा।

३९१. नवाजिश खाँ मिर्जा अब्दुल् काफी

यह असालत खाँ[1] और खलीलुल्ला खाँ मीर बख्शी का सौतेला भाई था। इस वंश का हाल इसके पितामह मीर खलीलुल्ला यज्दी के वृत्तांत में विस्तार से दिया जा चुका है और उसका परिशिष्ट आवश्यक समझ कर भाइयों की जीवनियों में दिया गया है। उसीका कुछ बचा अंश उचित समझ कर यहाँ लिखा जाता है। जब मीर खलीलुल्ला यज्दी ईरान के शाह अब्बास प्रथम की कठोरता से अपने देश और निवास स्थान से मन हटाकर हिंदुस्तान चला आया तब जहाँगीर ने उसके दूर से आने को महत्व देकर उस पर बहुत कृपा की। कुछ दिन बाद उसका पुत्र मीर मीरान भी शाह के यहाँ से भाग कर गिरता पड़ता जहाँगीर की शरण में पहुँच कर संसार के कष्ट से छूटा। उस घबड़ाहट और उपद्रव में अपने अल्पवयस्क पुत्रों असालत खाँ और खलीलुल्ला खाँ को साथ न ला सका तथा वे ईरान में रह गए। इसकी प्रार्थना पर जहाँगीर ने इसके पुत्रों को भेज देने के लिए शाह के पास खान आलम के द्वारा, जो राजदूत होकर गया हुआ था, संदेश भेजा और शीलवान शाह ने भी बिना किसी अप्रसन्नता के उनको उक्त खाँ के पास भेज दिया। जब मीर मीरान ने हिंदुस्तान में रहना निश्चय किया और उसके वंश की उच्चता तथा भलाई सूर्य सी और प्रतिष्ठा तथा विश्वास चंद्र सा प्रकट था तब यमीनुद्दौला आसफ खाँ खानखानाँ की बड़ी पुत्री सालिहा बेगम इसे निकाह में दी गई। इसके गर्भ से मिर्जा अब्दुल् काफी और इसकी बहिन शाहजादा बेगम पैदा हुई, जिसका मिर्जा हसन सफवी के पुत्र सफशिकन से निकाह पढ़ाया गया। अब्दुल् काफी बराबर साहिब-किरान सानी शाहजहाँ की कृपादृष्टि में पालित हुआ। १९वें वर्ष में इसे नवाजिश खाँ की पदवी मिली और क्रमशः ढाई हजारी मंसब तक पहुँचा। ३१वें वर्ष में मिर्जा सुल्तान सफवी के स्थान पर कोरबेगी नियत हुआ। औरंगजेब के राज्यकाल में यह मांडू का फौजदार हुआ, जो मालवा प्रांत के बड़े दुर्गों में से है। ८वें वर्ष में वहीं इसकी मृत्यु हो गई।

०

---

१. मआसिरुल् उमरा हिंदी भा० २ पृ० ३४७—५१ देखिए।

२. मीर खलीलुल्ला यज्दी की जीवनी में उसीके साथ आना लिखा है।

३९२. नसीर खाँ, रुक्नुद्दौला सैयद लश्कर खाँ बहादुर

इसका नाम मीर इस्माइल था। इसके पूर्वज गण बल्ख के अंतर्गत सरपाल के निवासी थे। इसका वंश मीर सैयद अली दीवाना तक पहुँचता है, जिसका मकबरा पंजाब मौजे मे बना हुआ है और जो शाह नेअमतुल्ला वली से वंश मे से है। इसका चाचा सैयद हाशिम खाँ बादशाही सेवा मे विशेषता रखता था। मीर इस्माइल का पिता शीघ्र मर गया था इसलिए हाशिम खाँ ने इनका पालन किया था। उसने 'बिरादरी खास' के सेवको मे, जिससे मुगल सर्दारो से तात्पर्य है, भर्ती होकर मुसाफिर खाँ की पदवी पाई। मुहम्मद शाह के राज्य के १ म वर्ष मे आलमअली खाँ के युद्ध मे निजामुल्मुल्क आसफजाह के साथ रह कर इसने बहुत प्रयत्न किया और अपने सामने के शत्रु को परास्त कर दिया। इसके अनंतर जब उक्त बहादुर मुहम्मदशाह के बुलाने पर दर्बार मे उपस्थित हुआ तब उसने इसकी वीरता तथा साहस को बादशाह को बखूबी समझा दिया। इससे यह काबुल प्रांत के अटक की फौजदारी पर नियत कर दिया गया। इसके बाद यहाँ से त्यागपत्र देकर यह आसफ-अली के पास दक्षिण चला आया और सैयद लश्कर खाँ की पदवी के साथ कुल सरकार का बख्शी नियत हुआ। कुछ दिन औरंगाबाद के अंतर्गत राजबंदरी का प्रबंध ठीक करने पर नियत रहा और तब औरंगाबाद प्रात का शासक बहुत दिनो तक रहा। इसके अनन्तर आसफजाह के साथ हिंदुस्तान जाकर इसने नादिरशाह की घटना में अच्छा कार्य किया। जब दक्षिण मे राजा साहू की ओर से उसके सर्दार बाजीराव ने उपद्रव किया और नासिरजग शहीद से युद्ध हुआ तथा उक्त राव पूरा दड पाकर कुछ समय बाद मर गया तब उक्त खाँ आसफजाह की आज्ञा से दक्षिण आकर मृत के भाई तथा पुत्र के यहाँ शोक मनाने जाकर उससे व्यवहार बनाया। फिर हिन्दुस्तान सन् ११५३ हि० में दक्षिण आया। नसीरुद्दौला की मृत्यु पर यह औरंगाबाद की सूबेदारी का नायब हुआ, मसब बढकर चार हजारी २००० सवार का हो गया और झंडा तथा डका पाकर सम्मानित हुआ। नासिरजग शहीद के राज्य-काल मे इसे नसीरजंग की पदवी मिली। फूलचेरी के युद्ध के बाद यह औरगाबाद का फिर सूबेदार हुआ। मृत सलाबतजग के समय मे इसका मंसब बढकर छ हजारी ६०००सवार का हो गया और रुक्नुद्दौला की पदवी के साथ वकील मुतलक के पद पर नियत हुआ। इसके बाद इस पद से त्यागपत्र देने पर यह बरार प्रात का अध्यक्ष नियत हुआ। जब उक्त कार्य निजामुद्दौला आसफजाह को मिला तब यह औरंगाबाद का अध्यक्ष नियत हुआ। सन् ११७० हि० (सन् १७५७ ई०) मे यह मर गया। यह अपने सुव्यवहार और 'शरीअत' के रसम के मानने मे प्रसिद्ध था। यह विद्वानो तथा फकीरो की प्रतिष्ठा

करता तथा दान देता था। यह राजनैतिक कार्यों से प्रेम रखता था पर माली काम कम समझता था। इसको संतानें थी। इसके चचेरे भाई सैयद आरिफ खाँ और शरीफ खाँ लाहौर से इसके पास आए थे, जिनमे हर एक से अच्छा सलूक किया। अपनी एक पुत्री का निकाह इसने सैयद शरीफ खाँ के छोटे पुत्र मीर जुमला से कर दिया। लिखते समय इसका मंसब पाँच हजारी ५००० सवार का था और पदवी अजीमुद्दौला नसीरजंग बहादुर थी। उस समय यह औरंगाबाद के शासन के साथ नजामुद्दौला आसफजाह बहादुर की सरकार के महालो का, जो उक्त प्रात मे थे, मुत्सद्दी का कार्य भी करता था। यह उस सर्दार का कृपापात्र भी था। बडा भाई रफअतुद्दौला बहादुर जोरावर जंग की पदवी से बहुत दिनो तक उसी सरकार मे मुगलो के रिसाले का बख्शी रहा। उस समय यह नानदेर के शासक का प्रतिनिधि होकर कार्य करता था। इसका मंसब पांच हजारी था और यह निर्भीक तथा स्वच्छ हृदय का था।

३९३. नसीरुद्दौला सलाबतजंग

यह अब्दुर्रहीम खाँ के नाम से प्रसिद्ध था और मायंदरी खाँ फीरोजजंग का भाई था। औरंगजेब के समय इसे खाँ की पदवी मिली और बहादुरशाह के समय चीन कुलीज खाँ की पदवी तथा जौनपुर की फौजदारी मिली। इसके बाद निजामुलमुल्क आसफजाह बहादुर के साथ कालयापन करने लगा। जब आसफजाह मालवा से दक्षिण की ओर चला आया तब यह भी उसके साथ आकर सैयद दिलावर अली के युद्ध मे अग्गल रहा। आलमअली के साथ के युद्ध मे यह मध्य मे रहा। विजय होने तथा औरंगाबाद पहुँचने पर सन् ११३२ हि०, सन् १७२० ई० मे इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब और नसीरुद्दौला सलाबतजंग की पदवी मिली। दूसरे वर्ष मरहमत खाँ के स्थान पर बुर्हानपुर का सूबेदार नियत हुआ। जब आसफजाह बहादुर के दरबार पहुँचने पर वजीरी का खिलअत मिला और हैदर कुली खाँ को दड देने के लिए वह अहमदाबाद भेजा गया तब आसफजाह के बुलाने पर यह अपने ताल्लुका से शीघ्र आकर उससे मिल गया। वहाँ का कार्य निपट जाने पर अपने ताल्लुका को लौट गया। मुबारिज खाँ एमादुल्मुल्क के युद्ध मे यह सेना के बाएँ भाग का अध्यक्ष रहा। विजयोपरात इसका मसब बढकर सात हजारी ७००० सवार का हो गया। अजदुद्दौला की मृत्यु के अनतर आसफजाह के बुलाने पर जाकर यह औरंगाबाद का अध्यक्ष हुआ और बुर्हानपुर का प्रबंध हफीजुद्दीन खाँ को दिया गया।

जब दूसरी बार आसफजाह दरबार गया और नासिरजग शहीद को अपना प्रतिनिधि बनाकर औरगाबाद मे छोड़ा तब सन् ११४८ हि० मे बुर्हानपुर की सूबेदारी

फिर नसीरुद्दौला को मिली। नादिरशाह के आने व चले जाने के बाद बादशाह से विदा होकर जब आसफजाह दक्षिण लौटकर बुर्हानपुर के पास पहुँचा तब इसने स्वागत के लिये बाहर निकलकर भेंट किया। जब आसफजाह त्रिचिनापल्ली की ओर रवाना हुआ तब इसे बुर्हानपुर के शासन के साथ साथ औरंगाबाद का फिर अध्यक्ष नियत किया। उसी वर्ष सन् ११५६ हि०, सन् १७४३ ई० में इसकी मृत्यु हो गई।

यह बहुत मिलनसार और आतिथ्य प्रेमी था तथा सैर करने व घड़ी घड़ी पोशाक बदलने मे प्रसिद्ध था। बुर्हानपुर मे इसने मकान बनवाया था। औरंगाबाद के बाहर खिजरी तालाब पर का 'तमाशा मंजिल' नामक बँगला इसी का बनवाया है। इसके यहाँ मुगल जाति के अधिक नौकर थे। एक पुत्र मुजाहिद खाँ नाम का था, जिस पर आसफजाह का बहुत स्नेह था पर वह सादा आदमी था। अंत मे फकीर हो गया और बुर्हानपुर के पिता के बनवाए मकान का अमला बेच-बेच कर बहुत दिन खाता रहा। ज्ञात नही कि कहाँ गया।

३९४. नामदार खाँ

यह जुमलतुलमुल्क जाफर खाँ का बड़ा पुत्र था। इसकी माता फर्जानः बेगम मुमताजमहल की बहिन थी। शाहजहाँ के जलूस के १९ वे वर्ष में जब बादशाह काबुल गए और जाफर खाँ लाहौर का सूबेदार नियत हुआ तब इसे पाँच सदी १०० सवार का मंसब मिला। २३ वें वर्ष मे जब उक्त खाँ दिल्ली प्रांत का सूबेदार हुआ तब इसका मंसब बढ कर एक हजारी २०० सवार का हो गया। २४ वे वर्ष मे जब इसका पिता बिहार का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ तब इसके मंसब मे पाँच सदी ४०० सवार और बढ़ाए गए। २८ वें वर्ष मे इसका मंसब बढ कर दो हजारी १००० सवार का हो गया। २९ वे वर्ष मे इसे झंडा मिला। ३१ वें वर्ष मे हयात खाँ के स्थान पर दौलत खानः खास का दारोगा नियत हुआ और इसका मसब बढ कर ढाई हजारी १५०० सवार का हो गया। इसके अनतर जब सुलतान मुहम्मद औरंगजेब बहादुर ने दक्खिन से आकर समूगढ के पास दारा शिकोह से युद्ध किया और दारा शिकोह भाग कर लाहौर की ओर चला गया तथा बहुत से दरबार के आदमी आलमगीर की सेवा मे उपस्थित हुए तब यह भी सेवा मे पहुँचा और इसने खिल-अत पाई।

कुछ दिनों के अनंतर महाराज जसवंत सिंह की सहायता के लिए दक्षिण जाकर इसने बहुत प्रयत्न किया और ७ वे वर्ष मे यह आज्ञानुसार दरबार लौट आया। ९वें वर्ष मे कोष को जो पहिले आगरे से दिल्ली मँगवा लिया गया था और उक्त वर्ष उसे वही भेज देना बादशाह ने निश्चय किया, तब यह वहाँ उसे सुरक्षित पहुँचाने पर नियत हुआ। इसी वर्ष बादशाह और ईरान के शाह अब्बास द्वितीय के बीच मनोमालिन्य पैदा हो गया और सुलतान मुअज्जम ससैन्य अग्गल के तौर पर काबुल मे नियत हुआ तब यह भी खिलअत, घोड़ा और तरक्की सहित चार हजारी ३००० सवार का मंसब पाकर उक्त शाहजादे के साथ भेजा गया। १० वें वर्ष मे यह मुरादाबाद सरकार का फौजदार नियत हुआ और इसे खिलअत और सोने के साज सहित घोड़ा मिला। १३ वे वर्ष दरबार आकर यह सेवा मे उपस्थित हुआ। इसी वर्ष इसका पिता जाफर खाँ वजीर का काम करते हुए मर गया तथा सुलतान मुहम्मद आजम और मुहम्मद अकबर नामदार खाँ तथा कामगार खाँ के गृह पर शोक मनाने के लिए जाने को नियत हुए। इन दोनो के लिए खास खिलअत और उनकी माता के लिए योग्य 'तोरा' भेजा गया। सुलताद मुहम्मद अकबर दोनों को शोक से उठा कर दरबार लिवा गया। हर एक को जड़ाऊ जमधर मोती के झूमड़ के साथ देकर तथा अन्य कृपा कर सान्त्वना दी गई।[1] १४ वे वर्ष में यह आगरा प्रात का शासक नियत हुआ। १७ वे वर्ष मे दंडित होने पर इसका मसब छिन गया और चालीस सहस्र रुपया वार्षिक नियत होने पर यह ओवगढ मे एकांतवास करने लगा १८ वें वर्ष मे पुन कृपा पात्र होने पर चार हजारी २००० सवार का मसब बहाल हुआ और सादात खाँ के स्थान पर यह अवध का सूबेदार नियत हुआ। यहाँ मे बदल कर दरबार में रहने लगा, जहाँ इसकी मृत्यु हुई। इसका पुत्र मरहमत खाँ दीनदार था, जो २५ वे वर्ष आलमगीरी मे अजीमुश्शान के साथ अजमेर की ओर नियत हुआ। २८ वे वर्ष मे दक्खिन के अतर्गत गढ[2] नमूना का थानेदार नियत हुआ। २९ वे वर्ष मे कोष को बीजापुर पहुँचाने पर नियुक्त किया गया।[3]

---

१. मूल फारसी ग्रंथ में टिप्पणी मे मआसिरे आलमगीरी का उद्धरण जाफर खाँ की मृत्यु के विषय मे दिया गया है, जो उक्त विवरण से कुछ विस्तृत है। ऐसा ज्ञात होता है कि यह वृत्तांत मआसिरे आलमगीरी ही से लिया गया है।

२. मआसिरे आलमगीरी मे ' .' है।

३. " " ...ओकर: महीने मे ... हुआ और ... पहुँचाने पर नियत हुआ।

३९५. नासिर खाँ मुहम्मद अमान

यह हुसेन वेग खाँ का पुत्र था। यह औरंगजेब के राज्य में कावुल प्रांत में नियत हुआ और वहाँ उन्नति कर इसने नासिर खाँ की पदवी पाई। बहादुरशाह वादशाह के राज्यकाल के आरंभ मे, जब इब्राहीम खाँ कावुल का सूवेदार होकर पदानुकूल वहाँ का प्रवंध जैसा चाहिए न कर सौधरः मे, जो उसे पुरस्कार मे मिला था, जा बैठा तव वहाँ की सूवेदारी नासिर खाँ को मिली। फर्रुखसियर के राज्य-काल के अंतिम समय में स्यात् सन् ११२९ हि० (सन् १७१७ ई०) में यह मर गया। इसका पुत्र नसीरी खाँ अपने पिता के स्थान पर वहाँ का सूवेदार हुआ। इसकी माता अफगान जाति की थी इससे इसने उस प्रांत का प्रवंध अच्छी प्रकार किया और मुहम्मद शाह के राज्य के दूसरे वर्ष में जब निजामुल्मुल्क वजीर था इसे वह पद स्थायी रूप मे तथा पिता की पदवी मिल गई। जब नादिरशाह हिंदुस्तान जाने के लिए कावुल आया तव यह पेशावर मे था। जब नादिरशाही सेना सन् ११५१ हि०, सन् १७०९ ई० मे पेशावर पहुँची तव यह उससे युद्ध कर कैद हो गया और कुछ दिन तक कैद मे रहा। लाहौर पहुँचने पर नादिरशाह ने इसका दोप क्षमा कर पहिले की तरह कावुल का सूवेदार नियत कर दिया और दिल्ली से लौटने पर भी इसे उस पद पर बहाल रखा। इसने बहुत दिन वहीं व्यतीत किए। दुर्रानी शाह के उपद्रव के समय कावुल का शासन इसके हाथ से निकल गया। यह शाहनवाज खाँ मिर्जा फुल्मौरी के पास चला गया और वाद को दिल्ली आकर सन् ११६१ हि०, सन् १७४८ ई० मे एतमादद्दौला कमरुद्दीन के साथ दुर्रानी शाह से युद्ध करने गया। इसके वाद मुईनुल्मुल्क के साथ पंजाब जाकर कुछ महाल सुपुर्दी मे ले लिए। जब दोनों मे मनोमालिन्य हो गया तव यह फिर दिल्ली चला आया। इंतजामुद्दौला के मंत्रित्वकाल मे अहमद खाँ वंगश के यहाँ फर्रुखावाद गया और वहाँ स्वागत होने से यह वहीं कालयापन करने लगा। अंत मे वहीं इसकी मृत्यु हुई।

३९६. ख्वाजमा शेख निजाम

यह हैदरावाद का रहने वाला था। यह दक्षिण के सैनिक वृत्ति करने वाले शेखों मे से था। इसने उदारता तथा साहस के कारण उन्नति की। तिलिंगाना के हाकिम अवुल्हसन के राज्यकाल मे यह सरदारी पद तक पहुँच गया और सेनापतित्व, सरदारी तथा सैन्य-संचालन मे इसने अच्छा नाम कमाया। गोलकुंडा के घेरे मे कुतुवशाही सेना का अध्यक्ष होकर दुर्ग के वाहर वादशाही सेना के साथ युद्ध किया। एक दिन मोर्चे पर खाँ फीरोजजंग से जब इसका सामना हुआ तव घोर युद्ध हुआ

और दोनों ओर से खूब प्रयत्न हुए। बादशाही सेना के वीरो ने बहुत कुछ वीरता से चाहा कि अपनी ओर के सैनिकों की लाशे उठा ले जायें पर न कर सके और ये सब अपने आदमियो के शवों को उस ओर के कुछ लाशो के साथ उठा ले गए।

जब अबुल्हसन का सौभाग्य तथा प्रभाव बिगड़ने लगा और दुर्दशा तथा राज्य-भ्रष्टता प्रतिदिन बढती चली तब इसने उसका साथ और स्वामिभक्ति छोडकर विश्वसनीय मध्यस्थता द्वारा औरंगजेब की सेवा का प्रार्थी हुआ। अबुल्हसन के अच्छे-अच्छे सेवक लालच मे पडकर मंसब तथा शासन की आशा मे अपने-अपने कामो को छोड़कर बादशाही सेवा मे पहुँचे थे पर इस समय तक इसके सिवा कोई दूसरा सेना सहित नहीं आया था, इसलिए इसका हटना अबुल्हसन के काम बिगडने का कारण समझ कर बहुत से लोगो को उक्त खाँ के स्वागत के लिए नियत किया। इसके सेवा मे पहुँचने पर इसे छः हजारी ५००० सवार का मनसब, मोकर्रब खाँ की पदवी, झंडा व डंका, एक लाख रुपया नकद, अरबी एराकी घोड़े, भारी हाथी और दूसरी वस्तुएँ पुरस्कार मे देकर शाही कृपा दिखलाई। इसके पुत्रो तथा सम्बन्धियो को अच्छे-अच्छे मनसब दिए, जिनमे कुछ चार हजारी से कम नहीं थे और इन सबका मनसब मिलाकर पचीस हजारी २१०००सवार हो गया। हैदराबाद पर अधिकार करने के अनन्तर जबबादशाही सेना बीजापुर के पास द्वितीय बार पहुँची तब इसको,जो सैनिक शिक्षा तथा सेनापतित्व मे अद्वितीय था,परनाला दुर्ग घेरने को नियत किया। उक्त खाँ ने सतर्कता तथा होशियार से अपने जासूसो को शंभाजी का समाचार लाने को नियत किया, जो अपने पिता की मृत्यु पर दक्षिण का सरदार व राजाधिराज हो गया था। एकाएक समाचार मिला कि वह वैरागी जाति की शत्रुता के कारण, जिनसे कि वह दामादी का सम्बन्ध रखता था, राहिरी से खेलना दुर्ग पहुँच गया है और उस जाति से शान्ति स्थापित करने के अनन्तर आनन्द करने के विचार से दुर्ग से संगमनेर नामक स्थान में चला आया है, जहाँ उसके मंत्री कवि कलश ने बहुत से महल और बड़े-बडे बाग बनवा रखे थे तथा यहीं वह आनंद करने मे लगा हुआ है। शेख निजाम कोल्हापुर से, जो वहाँ से ४५ कोस पर था और जिसके बीच मे भयानक स्थान थे, स्वामिभक्ति के कारण प्राण का भय छोड़कर चुने हुए कुछ सिपाहियो के साथ धावा किया। शंभाजी के जासूसों ने कितना कहा कि मुगल सेना आ रही है, पर उस घमंड तथा मूर्खता में मस्त जीव ने उन सबो की गरदन मरवा दी और व्यंग्य बोलने लगा कि ये दीवाने बेखबर हो गए हैं। क्या मुगल सेना यहाँ पहुँच सकती है? यहाँ तक कि वह बहादुर खाँ बहुत सब्र के साथ परिश्रम उठाता हुआ और कितने स्थानों पर पैदल राह तै करता हुआ ३०० सवारो के साथ बिजली के समान फुर्ती से उसके सिर पर जा पहुँचा। वह नशे मे चूर चार-पाँच सहस्र दक्षिणी भालेवाले सवारो के साथ युद्ध को आया। एकाएक भाग्य से छुटी हुई एक तीर कवि कलश को लगी और थोड़े ही

मारकाट के अनंतर वह भागा और कवि कलश की हवेली मे जा बैठा। वह स्वयं, कवि कलश तथा उसके पचीस सरदारगण अपनी स्त्रियो तथा पुत्रियो के साथ, सिवा उसके छोटे भाई सवाई रामराजा के जो किसी दुर्ग मे था, कैद हुए। इन्ही मे इसका बड़ा पुत्र राजा साहू भी था, जो सात-आठ वर्ष का था। जब यह शुभ समाचार एकलीज मे बादशाह के पास पहुँचा तब उस स्थान का नाम साहनगर रखा गया। इसके अनंतर जब यह विजयी खाँ उस भयानक स्थान से अनेक उपायो द्वारा बाहर निकला तब उसके सैनिको तथा सहायको ने इसको रोकने का साहस न किया और यह बहादुरगढ के बादशाह के पास पहुँच गया। शंभा जी कैद मे डाल दिए गए। उस समय औरंगजेब तख्त से उतर कर और कालीन का एक कोना हटा कर खुदा का सिजदः बजा लाया। इस घटना की तारीख 'बाजनो फर्जन्द संभा असीर' से निकलती है। इस बड़ी सेवा के उपलक्ष मे उक्त खाँ का मंसब बढा कर सात हजारी ७००० सवार का कर दिया गया और इसे खानजमाँ फतहजंग की पदवी, पचास सहस्र रुपया नकद तथा दूसरे प्रकार की वस्तुएँ दी गईं। इसके पुत्रों तथा मित्रों का मनसब बढाया गया तथा पुरस्कार भी दिए गए। इसके अनंतर खानजमाँ बहुत दिनों तक शाहजादा महम्मद आजमशाह की सेना मे नियत रहा। ३७ वें वर्ष में शाहजादा पेट फूलने की बीमारी से बादशाह के पास चला आया और खानजमाँ भी सेवा में उपस्थित होकर तथा पुत्रों और संबंधियो के साथ अच्छी प्रकार पुरस्कृत होकर शाहजादा बेदारबख्त के साथ दुष्ट शत्रु को दंड देने पर नियत हुआ। ४० वे वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। इसे बहुत संतान थी। इसके पुत्रों में खान आलम और मुनीवर खाँ सुप्रसिद्ध हो गए हैं, जिनके वृत्तांत अलग दिए गए हैं। दूसरा पुत्र फरीद साहेब था, जो अपने भाइयो के साथ आजमशाह के युद्ध मे लड़ते हुए मारा गया। अमीन खाँ का वृत्तात भी अलग दिया गया है। एक अन्य पुत्र हुसेन मुनीवर खाँ था, जो हैदराबाद में रहने लगा था और आसफशाह के राज्य में मुर्तजा नगर का आमिल था। सन् ११५८ हि० में यह मर गया। इसके पुत्र गण सरकार के हिसाब के उत्तरदायी हैं। दूसरा निजामुद्दीन खाँ था जिसे ओरंगजेब ने उसके पिता की इच्छा के अनुसार कृपा कर अपने यहाँ पालन-पोपण कराया था और राजा साहू की बहिन के साथ निकाह पढवा दिया था, जो पसंद आ गई थी। उसकी चाल मुगलो के समान थी और पिता तथा भाइयों से उसकी कोई समानता न थी। यह औरगाबाद मे रहता था। यह प्रसिद्धि से खाली न था। यह कंजूसी के साथ दिन व्यतीत करता था। यह सन् ११५५ हि० मे मर गया। इसके पुत्रगण, जो आपस मे वैमनस्य रखते थे, पिता की संपत्ति के लिए बहुत दिनो तक आपस मे लड़ते रहे।

३९७. निजामुद्दीन अहमद, ख्वाजा

यह ख्वाजा मुकीम हरवी का पुत्र था, जो वावर वादशाह के सेवको मे भर्ती होकर उस राज्यकाल के अंत मे वयूतात का दीवान नियत हो चुका था। वावर की मृत्यु के अनंतर मिर्जा असकरी के पास पहुँच कर, जिसे हुमायूँ वादशाह ने गुजरात विजय करने के वाद अहमदावाद दे रखा था, यह मिर्जा का वजीर नियत हुआ। चौंसा के युद्ध मे शेर खाँ सूर के विजयी होने पर जव हुमायूँ कुछ सवारों के साथ आगरे की ओर भागा तव यह भी उन सवारो में से एक था। इसके अनंतर अकवर वादशाह की सेवा मे सम्मानित होकर रहा। ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद सचाई में अपने समय का अद्वितीय और योग्यता तथा समझदारी मे सवसे वड कर था। जखीरतुल्खवानीन मे जो कुछ लिखा गया है वह अन्यत्र नही दिखाई देता क्योंकि ख्वाजा निजामुद्दीन आरंभ मे अकवर वादशाह का दीवान हजूर था। २९ वें वर्ष जव एतमाद खाँ गुजराती गुजरात का शासक नियत हुआ। तव ख्वाजा उस प्रांत का वख्शी नियत हुआ। सुलतान मुज.फर गुजराती के विद्रोह के समय एतमाद खाँ ने अपने पुत्र को इसके पुत्र के साथ नगर की रक्षा के लिए छोडा और स्वय ख्वाजा के साथ शहावुद्दीन खाँ को लाने के लिए गढी कसवा गया, जो अहमदावाद से वीस कोस पर है। इसी वीच नगर उपद्रवियों के अधिकार मे चला गया और ख्वाजा का घर भी लुट गया। इसके अनंतर शहा-वुद्दीन अहमद खाँ तथा एतमाद खाँ के साथ ख्वाजा उस युद्ध में, जो विद्रोहियो के साथ हुआ था, थोड़ी सेना के साथ वहुत जोर मारा पर सफल न हुआ तव अंत में निराश होकर पर मित्रो का साथ न छोड़ कर उनके संग पत्तन चला गया। सुल-तान मुजफ्फर गुजराती को दमन करने के लिए वादशाह ने खानखानाँ को नियत किया था और उसने अहमदावाद से तीन कोस पर सरखेज मे शत्रु से युद्ध करने की तैयारी की। उसने ख्वाजा को कुछ सरदारो के साथ नियत किया कि शत्रु के पीछे पहुँच कर आक्रमण करने मे प्रयत्न करे। उस दिन वहुत परिश्रम कर मुजफ्फर का पीछा करने मे इसने कोई प्रयत्न उठा न रखा और कई युद्ध किए। यह उस प्रांत मे वहुत दिनों तक वख्शी का कार्य करता रहा।

जव सन् ९९८ हि० मे जलूस के ३४वें वर्ष मे गुजरात का शासन मालवा के सूवेदार खानआजम को मिला और खानखानाँ को गुजरात की जागीर के वदले जौनपुर दिया गया तव निजामुद्दीन अहमद भी दरवार वुला लिया गया। यह कुछ साँडनी सवारो के साथ छ सौ कोस का मार्ग वारह दिन मे धावे की तरह तै कर ३५ वें वर्ष के आरंभिक जशन मे लाहौर पहुँच कर सेवा मे उपस्थित हुआ। इसके पास कुछ विचित्र तमाशे थे, इसलिए आज्ञा हुई कि सव साँडनी सवारो को सामने ले आवे। इसके अनंतर ख्वाजा पर वादशाही कृपाएँ हुईं और इसका सम्मान

चढ़ा। ३७ वें वर्ष मे जब आसफ खाँ मिर्जा जाफर बख्शी जलाल रोशानी को दमन करने के नियत हुआ तब ख्वाजा बख्शीगीरी के उच्च पद पर नियत होकर प्रतिष्ठित हुआ। ३९ वें वर्ष मे सन् १००३ हि० के आरंभ मे जब अकबर बादशाह शिकार के लिए बाहर निकला तब शाहेमली के पास ज्वर बढने से ख्वाजा का हाल बिगड़ गया। उसके पुत्र छुट्टी लेकर उसे लाहौर ले आए। रावी नदी के तट पर पहुँचा था कि इसकी मृत्यु हो गई। तबकाते अकबरी इसकी लिखी हुई है। अकबर बादशाह के ३८ वें वर्ष सन् १००२ हि० तक का हिंदुस्तान का वृत्तांत इसमे लिखा गया है और लिखा है कि यदि अवस्था मिली तो अग्रलेख भी तैयार कर इस पुस्तक में जोड़ दूँगा और नहीं तो जो कोई चाहे कृपा कर उसे लिख सकता है। समाचारो को तैयार करने और उन्हे एकत्र करने मे इसने बहुत परिश्रम किया था और मीर मासूम मक्करी आदि से विद्वान् इसकी रचना मे सहायक रहे। इसलिए इस रचना पर पूरा विश्वास है। यह पहिला इतिहास है, जिसमे विशाल हिंदुस्तान के कुल मुसलमान सुलतानों का वृत्तांत दिया गया है, जिसे भौगोलिको ने पृथ्वी की चार दांग भूमि कहा है। फिरिश्ता इतिहास का लेखक और उसके परवर्ती लेखकगण इस रचना के प्रेमी हैं परंतु इस ग्रंथ की पंक्तियो से प्रगट हुआ कि स्थान-स्थान पर यह अबुल्फजल का विरोधी है। इनमें हरएक का रुतबा सभी पर प्रगट है।

इसके पुत्रों मे एक मिर्जा आबिद खाँ था, जो जहाँगीर के समय बादशाही कृपा का पात्र होकर सेवा मे भर्ती हो गया। गुजरात प्रात को बख्शीगिरी करते समय, जो इसे पैतृक स्वत्व के अनुसार मिली थी, वहाँ के प्राताध्यक्ष अब्दुल्ला खाँ फीरोज-जंग से इसकी बिगड़ गई। उक्त खाँ ने, जो निर्भय तथा निर्दय था, इससे घृणा कर इसे बेइज्जत कर डाला। यह अपना काम छोड कर कुछ मुगलों के साथ टोपी कफनी पहन कर जहाँगीर के दरबार मे उपस्थित हुआ, इस कारण इसका दोप क्षमा कर दिया गया परंतु इसके बाद युवराज शाहजादा शाहजहाँ की शरण में जाकर उसकी सेवा मे भर्ती हो गया। यह शाहजादा का दीवान नियत हुआ। अकबरनगर बंगाल में एक दिन जब शाहजादा ने इब्राहीम खाँ फतहजंग के पुत्र के मकबरे पर आक्रमण किया तब आबिद खाँ दीवान तथा शरीफ खाँ बख्शी कुछ अन्य लोगों के साथ युद्ध में मारे गए। आबिद खाँ को पुत्र न थे। इसका दामाद मुहम्मद शरीफ कुछ दिन शाहजहाँ के राज्यकाल मे दक्षिण के अनकी तनकी का दुर्गाध्यक्ष रहा। इसके अनंतर यह हैदराबाद का अध्यक्ष होकर वहीं मर गया।

●

३९८. निजामुद्दौला बहादुर नासिरजंग

यह एक सर्दार धर्म का पोषक, न्याय करने वाला, लज्जाशील, साहसी तथा युद्ध और आनंद में दृढ़ था। शरीअत की आज्ञाओं के प्रचार मे वहुत प्रयत्न-शील रहता था। लाचार तथा निराश्रय फरियादियों के न्याय करने में वहुत ध्यान देता था। वात करने मे शिष्टता तथा अनेक प्रकार के चुटकुले का प्रयोग करने में अद्वितीय था। उच्च आकांक्षा वाले सुल्तानो की जीवनी की घटनाओं का उल्लेख कर सुनने वालो के कानो को विचारों से भर देता था। अपनी वातचीत के अभ्यास को मिर्जा सायव के उद्धरणों से ऐसा पुष्ट कर देता था कि साहित्यिक समालोचकों तथा भाषा मर्मज्ञो की भी शक्ति न थी कि उसमें कुछ भी शिथिलता निकाल सकें। समझदारी की अवस्था प्राप्त होने की आरंभ ही से साहस तथा वीरता के उत्साह में इसने बड़े-बड़े देशों को विजय करने का ध्येय वना रखा था। सन् ११५० हि०, सन् १७३७ ई० में नवाव आसफजाह मुहम्मद शाह वादशाह के वुलाने पर दिल्ली चला गया और दक्षिण के प्रांतों का प्रवंध अपने इसी सुपुत्र को प्रतिनिधिरूप में सौंप गया। निजामुद्दौला राज्य का प्रवंध तथा नगरो की रक्षा करता रहा और प्रजा की शांति तथा सुख के लिए इसने अच्छे उपायों द्वारा प्रयत्न भी किया। राज्य से संवंध रखने वाले भले तथा सुशील लोगों को पुरस्कार, मंसव, पदवी तथा जागीर देकर अपना कृपापात्र वनाया। मराठों को, जिन्होंने दक्षिण में राज्य स्थापित कर मालवा पर अधिकार कर लिया था और दिल्ली के पास तक पहुँच गए थे, पूरा दंड दिया और दक्षिण को लूटमार से सुरक्षित किया। जव नवाव आसफजाह राजधानी दिल्ली से दक्षिण को लौटा तव नवाव निजामुद्दौला को दुष्टों ने युद्ध करने के लिए वाध्य किया और युद्ध भी हुआ, जिसका विवरण निजामुल्मुल्क की जीवनी मे दिया गया है। सन् ११५५ हि० मे नवाव आसफजाह ने पुत्र को क्षमा कर दिया। सन् ११५८ हि० मे इस पर हैदरावाद में कृपा की तथा औरंगावाद की सूवेदारी देकर वहाँ विदा किया। सन् ११५९ हि० मे नवाव आसफजाह ने हैदरावाद से धारवर पहुँच कर पुत्र को औरंगावाद से अपने पास वुलाया और नवाव निजा-मुद्दौला भी वहाँ पहुँच गया। पिता-पुत्र राज्य संवंधी वातचीत करने को वाकिन कीरा की ओर गए। वहाँ से नवाव आसफजाह ने पुत्र को मैसूर की ओर भेजा कि वहां के नरेश से भेंट ले आवे तथा स्वयं औरंगावाद गया। निजामुद्दौला श्रीरंगपत्तन पहुँच कर, जो मैसूर की राजधानी थी, भेंट वसूल कर पिता के पास औरंगावाद गया। प्रायः साथ ही पिता तथा पुत्र दोनों वुर्हानपुर की ओर चले। नवाव आसफ-जाह वुर्हानपुर गए और नवाव निजामुद्दौला दक्षिण के शासन की मसनद पर सुशो-भित हुआ तथा वुर्हानपुर से औरंगावाद को गया, जो दक्षिण के खिलाफत की राजधानी थी। वर्षा ऋतु वहीं व्यतीत किया।

इसी समय हिंदुस्तान के बादशाह अहमदशाह साम्राज्य के कामो को ठीक करने के लिए, जो दरबार के सर्दारो के झगड़ो के कारण बहुत अस्त-व्यस्त हो गया था, अपने हस्ताक्षर से आमंत्रण का पत्र लिखा। नवाव दक्षिण के उपद्रवियो के कारण तथा नवाब आसफजाह के दौहित्र हिदायत मुहीउद्दीन खाँ के विद्रोह की की आशंका मे, जो आसफजाह के राज्यकाल ही से रायचूर तथा अदोनी का शासक था, केवल वादशाही आज्ञा पूरी करने तथा कार्यो को ठीक करने के लिए भारी सेना तथा तोपखाना लेकर हिंदुस्तान की ओर चला तथा शीघ्रता से नर्मदा नदी तक पहुँचा। इसी समय वादशाह के खास हस्ताक्षर का पत्र दिल्ली न आने का पहुँचा। साथ ही हिदायत मुहीउद्दीन खाँ के विद्रोह और उपद्रव का समाचार बार-बार आया। इसलिए इसने औरंगावाद लौट कर वही वर्षा ऋतु व्यतीत किया। इसी अवसर मे अर्काट के नवायतो का एक सर्दार हुसेन दोस्त खाँ उर्फ चंदा ने पहुँच कर हिदायत मुहीउद्दीन खाँ को अर्काट ले लेने को उभाड़ा। हिदायत मुहीउद्दीन खाँ अर्काट को रवानः हुआ। वहाँ फूलचरी के वंदर के निवासी फिरंगी फरासीसियो की एक अच्छी सेना चंदा के द्वारा हिदायत मुहीउद्दीन खाँ की सेना मे आकर मिल गई। सव ने मिलकर अनवरुद्दीन खाँ पर चढाई की, जो नवाव आसफजाह के समय से अर्काट का शासक था और नासिरजंग के समय मे जिसे शहामतजंग की पदवी मिली थी। १६ शावान सन् ११६२ हि० को युद्ध हुआ, जिसमे शहामतजंग मारा गया।

प्रकट था कि इस समय तक फरासीसी तथा अंग्रेज ईसाई वंदरो ही मे रहते थे और अपनी सीमा से पैर वाहर नहीं निकालते थे। हिदायत मुहीउद्दीन खाँ ने ही इन सवको अपना साथी वनाकर वढाया। नवाव निजामुद्दौला का मारा जाना भी, जिसका वर्णन अभी आता है, फरासीसियो की सहायता से हुआ। इसके वाद ईसाइयो का घमंड तथ साहस वहुत वढ गया और फरासीसियो का साहस देखकर अग्रेज भी उभडने लगे। अर्काट प्रात का कुछ अंश फरासीसियो ने और कुछ अग्रेजो ने ले लिया अंग्रेजो ने वंगाल के नाजिम से युद्ध किया और लड़ कर वंगाल पर अधिकार कर लिया और सूरत वंदर तथा खंभात भी ले लिया। इस प्रकार ईसाइयो के राज्य की जड आरंभ करने वाला हिदायत मुहीउद्दीन खाँ ही है।

शहामतजंग के मारे जाने का समाचार पाते ही नवाव निजामुद्दौला अपने अध्यक्ष की सहायता को दक्षिण की सेनाओ तथा प्रसिद्ध सरदारो को तथा युद्धीय समान को एकत्र कर सत्तर हजार सवार, अगणित तोपखाना तथा एक लाख पैदल सेना लेकर विद्रोहियो को दंड देने के लिए उस ओर चला और फुर्ती से कूच करते हुए फूलचरी वंदर पहुँचकर, जो औरंगावाद से पांच सौ कोस पर है, युद्ध की तैयारी की। २६ रवीउल् आखिर सन् ११६३ हि० (सन् १७५० ई०) को पूरे तीन प्रहर तक फिरंगी तोपखाना आग उगलता रहा। अंत मे २७ तारीख को फिरंगी मुसलमानो के प्रभाव

तथा भय से भाग गए और हिदायत मुहीउद्दीन खाँ पकड़ा गया। नवाब ने हिदायत मुहीउद्दीन खाँ को कैद में रखा और उसके मुसाहिबो तथा सैनिकों को जान व माल क्षमा कर दिया। यद्यपि नवाब के हितैपियों ने इसको बहुत से अकाट्य तर्कों से समझाया कि हिदायत मुहीउद्दीन खाँ का जीवन विशेष उपद्रव का कारण होगा और इसलिए उसे मार डालना चाहिए पर नवाब ने दया करके उसे मारना अस्वीकार कर दिया तथा उसे सुरक्षित रखकर उसकी सेवा के लिए आदमी नियत कर दिए। अन्यायियों ने इस अच्छी कृपा को नहीं पहिचाना और इस प्राणरक्षा की भलाई को भुलाकर गुप्त रूप से बुराई करने पर कमर बाँधी। फिरंगी भी ऐसी कड़ी पराजय पाकर उपद्रव तथा विद्रोह करने के अनेक उपाय सोचते रहे। अनेक उपद्रव से दुर्ग की देख-रेख के लिए ठहरना आवश्यक समझकर नवाब अर्काट को चला और उनको दमन करने के लिए सेना नियुक्त किया। दुर्भाग्य से इस्लाम की सेना को पराजय मिली और दुर्ग जिंजी नसरतगढ, जो कर्णाटक की राजधानी थी, फरासीसियों के अधिकार में चली आई। नवाब ने लज्जा के कारण तथा अपने मत की सहायता को और राजनैतिक कारणो से, क्योंकि हर एक कार्य का तुरन्त उपाय करना चाहिए जिससे विद्रोहियो को उपदेश मिले, और वर्षा ऋतु की कठिनाई, घोर आँधियो, नदी पार करने का कष्ट तथा अन्न की कमी होते हुए भी स्वयं दण्ड देने को उस ओर रवाना हो गया। ११ शव्वाल सन् ११६३ हि० (सन् १७५० ई०) को इसने अर्काट से कूच किया और उक्त महीने की १७वीं को एक फकीर के कहने से निषिद्ध बातों छोड़ दिया तथा उसके बाद मृत्यु तक तौबा रखा।

खिलाड़ी आकाश समय के हर पृष्ठ मे नया चित्र खींचता रहता है इसी तरह कर्णाटक के अफगान सर्दार, जो इस चढाई मे साथ थे, इतनी कृपाओ, रिआयतों तथा पालन के स्वत्वो के होते भी स्वामिभक्ति का तनिक भी विचार न कर तथा दैवी बदला लेनेवाले के कोप और दण्ड की आशका न कर धन तथा धरती के लोभ मे हृदय से अधर्मी फिरंगियों से मिल गए। साथ ही उन्होने कुछ अन्य स्वामिद्रोहियों को अपनी ओर मिला लिया और अपने जासूसों को भेजकर फिरंगियों को, जो जिंजी दुर्ग के नीचे इकट्ठे थे रात्रि-आक्रमण करने के लिए बुलाया। १८ मुहर्रम सन् ११६४ हि० (सन् १७५१ ई०) को रात्रि के अन्त मे एकाएक युद्ध आरम्भ कर दिया। यदि अफगान फिरंगियो की शक्ति न साथ लेते तो थोड़े होने के कारण सेना पर वे आक्रमण करने का साहस न कर सकते। यद्यपि कुछ हितैपियो ने इसके पहिले नवाब से बहुत कुछ कहा कि अफगान विद्रोह करने पर तैयार हैं पर अपने स्वच्छ हृदय के कारण नवाब ने इस बात पर विश्वास नही किया क्योंकि वह समझता था कि हमने इनके साथ क्या बुराई की है, जो वे ऐसा करेंगे। यहाँ तक कि युद्ध के समय वह अपना हाथी अफगानों की ओर ले गया कि उनसे मिलकर फिरंगियो को परास्त करे। जब नवाब का हाथी अफगान सर्दार हिम्मत खाँ के हाथी के पास पहुँचा तब

नवाब ने उसके अभिवादन करने के पहिले स्वागतार्थ अपना हाथ सिर से लगाया पर उसकी ओर से कोई प्रत्युत्तर न मिला। प्रातःकाल अच्छी प्रकार नहीं हुआ था इससे नवाब ने यह समझकर कि मुझे पहिचाना नही है अमारी मे अपने को कुछ ऊँचा किया। इस अवसर को पाकर हिम्मत खाँ तथा उस मनुष्य ने, जो खवासी मे बैठा था, बंदूकें चला दीं। दोनो तीर व गोली नवाब की छाती मे लगी और उसका काम समाप्त हो गया। अफगानो ने नवाब का सिर काटकर भाले की नोक पर रखा और जो व्यवहार मुहर्रम मे अनुयायियो ने इमाम हसन व हुसेन के साथ किया था, वही नवाब के नौकरो ने नवाब के साथ किया। सैनिकों ने दिन बीतने पर मुंड को रुंड से मिलाकर ताबूत को औरंगाबाद भेज दिया, जहाँ शाह बुर्हानुद्दीन गरीब की कब्र के नीचे नवाब आसफजाह के पास यह गाड़ा गया। फुलचेरी से बीस कोस पर जिंजी दुर्ग के पास यह घटना घटी। मीर गुलाम अली आजाद कहता है—किता, अर्थ—

न्याय करनेवाला आली जनाब नवाब गया।
तलवार ने अवसर न दिया, घटना जल्द घट गई॥
मुहर्रम महीने की १७ वीं को मारा गया।
तारीख कहा रोने वाले ने कि सूर्य गया॥

(गरे आ॰ताब)

उस रात्रि, जिसका सवेरा प्रलय का था, नवाब ने पगडी के समय दर्पण माँगा और पगड़ी बाँधने लगा। उस समय दो बार अपनी प्रतिच्छाया से कहा कि ए मीर अहमद, खुदा तेरा रक्षक है। इसका वास्तविक नाम मीर अहमद था। सवार होने के समय वजू (अर्द्धस्नान) कर चुकने पर भी फिर से वजू किया तथा दुबारा निमाज पढा। इसके बाद तसबीह (माला) फेरता तथा दुआ पढता हुआ हाथी पर सवार हुआ। नवाब का यह नियम था कि युद्धो मे सिर से पैर तक लोहा पहिरता था पर उस रात्रि जामे के सिवा नीचे कुछ न पहिरा। इसी हालत मे यह मारा गया। नवाब बुद्धिमान और दूरदर्शी था। थोड़े समय मे इसने बहुत-सी अच्छी कविता कर गजलें बनाई। कुछ शैर, जो याद थे, ये हैं—

अर्थ—

बाग के किस फूल ने नकाब के कोने को तोड़ दिया।
कि ओस के आईने को सूर्य के मुख पर तोड़ दिया॥

और

ऐ हृदय, प्रिय के केशकलाप से सहायता ले सकता है।
अमर अवस्था से इच्छाएँ ले सकता है॥
यदि बेहोशी मदिराघर से यात्रा का शकुन निकालती है।
तो प्रिय की मस्त आँख से भी यात्री ले सकता है॥

और

ऐ चंचल प्रेयसी कटाक्ष रूपी तीर मत फेंक।
यह निर्दय तीर हृदय पर असर करती है॥

और भी

ए प्रिय, प्रेयसी की खातिर से मैं सुकुमार प्रकृति रखता हूँ।
तू यदि सौंदर्य से घमंड करता है तो मैं तेरे प्रेम का घमंडी हूँ॥

और भी

पगड़ी का कोना फूल से आप ही आप काँपता है।
उसका कद ताजे पेड सा है यह मैं जानता हूँ॥

नवाव निजामुद्दौला के मारे जाने पर अफगानो तथा ईसाइयों ने हिदायत मुहीउद्दीन खाँ को सर्दार वनाया और इसके पुरस्कार मे अफगानो ने वहुत से दुर्ग तथा देश हिदायत मुहीउद्दीन खाँ से अपने नाम लिखवा लिए। हिदायत मुहीउद्दीन खाँ अफगानो के साथ फूलचरी आया और कप्तान अर्थात् शासक से भेंट किया। इसके अनंतर ईसाई सेना को साथ लेकर हैदरावाद की ओर चला। अर्काट की सीमा लाँघ कर वह अफगानो के देश मे पहुँचा। दैवयोग से नवाव निजमुद्दौला के वदले का सामान तैयार हो रहा था। हिदायत मुहीउद्दीन खाँ और अफगानो के वीच मनोमालिन्य आ गया और एक दिन, जव सेना लकरैत पल्ली मे पड़ाव डाले थी, यह वैमनम्य स्पष्ट हो गया तथा युद्ध होने लगा। एक ओर हिदायत मुहीउद्दीन खाँ तथा ईसाई और दूसरी ओर अफगान सेना सजा कर लड़ने लगे। हिम्मत खाँ तथा अन्य अफगान सर्दार मारे गए और हिदायत मुहीउद्दीन खाँ का काम भी तीर की चोट से, जो आँख की पुतली मे घुस गया था, समाप्त हो गया। सेना के सर्दारो ने नवाव आसफजाह के पुत्र नवावसलावतजग को निजाम वनाया तथा हिम्मत खाँ और अन्य अफगान सर्दारो के सिर भाले की नोक पर रख कर खुशी के वाजे वजाते पड़ाव में गए। यह घटना १७ रवीउल् अव्वल सन् ११६४ हि० (सन् १७५१ ई०) को घटी। नवाव निजामुद्दौला के खून ने अच्छा रंग पकड़ा और जिन लोगो ने उसके साथ दगा किया सव दंड को पहुँचे। साठ दिन वाद ये सव घातक ईश्वरीय कोप से मारे गए। शैर—

देखा तूने दीपक के पर्वाना को नाहक के खून को।
कुछ दिन भी शरण न दिया कि रात्रि का सवेरा तो हो॥

एक योग ऐसा भी पड़ा कि जिस दिन यह युद्ध हुआ अर्थात् १७ रवीउल् अव्वल को इन मारे गए लोगो को गाड़ने का अवसर न मिला। १८ को युद्धस्थल मे हटा कर घोर जंगल मे, जो जंगलियो तथा हिंसक पशुओं का घर था, गाडे गए। उसी दिन अर्थात् १८ तारीख को निजामुद्दौला का तावूत पवित्र रौजे मे पहुँचा और संध्या के वाद खुदा के फकीरो के पास गाड़ा गया। ईश्वर की कृपा कि नवाव पहिले

घातको को मिट्टी के नीचे भेज कर तब स्वयं भूमि मे आराम करने लगा। तावूत ले जाते समय जहाँ-जहाँ उसे उतारा था लोगो ने गृह बनवाए और वे उनकी जियारत करते तथा दान देते हैं।

उन अफगान सर्दारों मे से, जिन्होंने नवाब निजामुद्दौला से कपट किया था, एक अब्दुल्मजीद खाँ था, जिसका दादा अब्दुल्करीम मियानः बीजापुर के सुलतानों का एक बड़ा सर्दार था और जिसके वंशज अब तक कर्णाटक के अतर्गत वंकापुर आदि के अध्यक्ष हैं। अब्दुल्मजीद खाँ ने अपने पुत्र बहलोल खाँ को नसीबयावर खाँ की अभिभावकता मे निजामुद्दौला की सेवा मे भेजा था। पर गुप्त रूप से वह अपने पुत्र तथा अफगान सर्दारो को विद्रोह के लिए उभाड़ता रहता तथा इच्छारूपी कपट के शतरंज की छिपी चाल चलता रहता।

हिम्मत खाँ, जिसने नवाब निजामुद्दौला को मारा था, अलिफ खाँ का पुत्र था, जो खिज्र खाँ पन्नी के लडके इब्राहीम खाँ का पुत्र था। खिज्र खाँ उक्त अब्दुल्करीम मियानः का सम्मतिदाता था। दाऊद खाँ पन्नी जिसने अमीरुल्उमरा हसन अली खाँ से कृतघ्नता की थी और युद्ध कर मारा गया था, इसी खिज्र खाँ का पुत्र था। जब शाहआलम के राज्यकाल मे दक्षिण की सूबेदारी पर असद खाँ वजीर का पुत्र जुल्फिकार खाँ नियत हुआ तब दाऊद खाँ पन्नी इसका नायब बनाया गया। इसने अपने भाई इब्राहीम खाँ को हैदराबाद मे अपना प्रतिनिधि नियत किया। जब फर्रुखसियर के राज्यकाल के आरंभ मे हैदर कुली खाँ दक्षिण का दीवान नियत हुआ तब उसने इब्राहीम खाँ को कर्नूल को फौजदारी दी। उस समय से कर्नूल उसके वशजो के पास है। बदले के युद्ध मे हिम्मत खाँ और उसका दीवान अमानतुल्लाह खाँ जो इस सब उपद्रव का बीज बोने वाला था, बहलोल खाँ, नसीबयावर खाँ तथा दूसरे उपद्रवी दोनो ओर के सब मारे गए। जब सेना कर्नूल पहुँची तब उसने उस नगर को लूट लिया और हिम्मत खाँ का कुल परिवार कैद हुआ। उस अयोग्य से जो दुष्टता हुई उसके फलस्वरूप उसका धन, प्राण, सम्मान सभी नष्ट हो गए। इस लोक मे यह हालत हुई, परलोक मे न जाने क्या हुआ होगा। हुसेन दोस्त खाँ उर्फ चंदा भी बदले की तलवार से काटा गया और सिर भाले की नोक पर रखा गया।

इस बात का विवरण यह है कि अनवरुद्दीन खाँ गोपामुई के मारे जाने के बाद उसके पुत्र मुहम्मद अली खाँ ने त्रिचिनापल्ली दुर्ग को दृढ किया। जब नवाब निजामुद्दौला की सेना अर्काट मे पहुँची तब मुहम्मद अली खाँ आकर सेवा में उपस्थित हुआ और उसने पिता की पदवी पाई। निजामुद्दौला के मारे जाने के बाद इसने त्रिचिनापल्ली दुर्ग मे शरण ली। इसी समय अर्काट की रियासत चंदा को मिली, जो फूलचरी मे बैठा हुआ था। उन्हीं फरासीसी ईसाईओ की सेना लेकर, जिन्होने नवाब निजामुद्दौला पर रात्रि मे आक्रमण किया था, दूसरी सेना के साथ उसने त्रिचिनापल्ली पर चढ़ाई की। अनवरुद्दीन खाँ अपनी सेना के साथ तथा अंग्रेज

फिरंगियो को मिला कर, जो देवान.नपत्तन मे रहते थे,युद्ध को आया और कुछ समय तक खूब आग बरसती रही। अंत में अनवरुद्दीन खाँ विजयी हुआ और चंदा जीवित पकड़ा गया। १म शाबान सन् ११६५ हि०, सन् १७५२ ई० को मार डाला गया तथा उसका सिर भाले पर रख कर प्रदर्शित किया गया। फरासीसी अहम्मन्य सर्दारों मे से सफेद चमड़े वाले खास विलायत के पैदा ग्यारह सौ आदमी सिवा काली फिर्के के जीवित पकड़े गए। नवाब निजामुद्दौला के मारे जाने के बाद उनमें जिन्होने रात्रि मे आक्रमण किया था, कोई आराम न पा सका और उस कार्य का फल इस प्रकार का हुआ।[1]

३११. निजामुल्मुल्क आसफजाह

इसका मातामह सादुल्ला खाँ शाहजहाँ बादशाह का प्रधान मंत्री था। इसके पितामह आबिद खाँ का पिता आलम शेख समरकंद का एक बड़ा सर्दार और शेख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी का वंशज था। आबिद खाँ शाहजहाँ के समय मे हिंदुस्तान आया और बादशाह से परिचय तथा शाहजादा औरंगजेब की सेवा मे भर्ती होने से संमानित हुआ। जब औरंगजेब को भाइयो से युद्ध करना पड़ा तब यह उन युद्धों मे बराबर साथ रहा। उसकी राजगद्दी होने के बाद इसे चार हजारी मंसब मिला। ४थे वर्ष जलूसी मे सदर कुल नियत हुआ और इसके बाद पाँच हजारी मंसब तथा कुलीज खाँ की पदवी मिली। सदर पद से हटाए जाने पर १६जमादिउल् आखिर सन् १०९२ हि० को दूसरी बार इसे सदर का खिलअत मिला। गोलकुंडा दुर्ग के घेरे मे २४ रबीउल् अव्वल सन् १०९८ हि० को तोप का गोला लगने मे मारा गया।

आबिद खाँ का पुत्र मीर शहाबुद्दोन गाजीउद्दीन खाँ ऊँचे पद तक पहुँचा और उसकी जीवनी 'गैन' (ग) अक्षर मे दी जा चुकी है। नवाब गाजीउद्दीन खाँ का पुत्र नवाब निजामुल्मुल्क आसफजाह था। इसका वास्तविक नाम मीर कमरुद्दीन था, जिसका जन्म सन् १०८२ हि० में हुआ था। यौवन मे औरंगजेब का कृपापात्र था और इसे चार हजारी मंसब तथा चीन कुलीज खाँ की पदवी मिली। वाकिन-

---

१. हैदराबाद के निजामो का वृत्तांत ग्रंथकार ने चापलूसी से भरा हुआ लिखा है और तथ्य को छिपाने के लिए वास्तविक घटनाओ को घटा बढा कर लिखा है या छोड़ दिया है। इसका कारण केवल यही है कि वह उस वंश का सेवक था।

कीरा दुर्ग के घेरे मे बहुत प्रयत्न करने के कारण एक हजारी बढने से इसका मंसब पाँच हजारी हो गया। औरंगजेब की मृत्यु पर शाहजादों की लड़ाई मे इसने दूरदर्शिता से किसी का पक्ष नहीं लिया और जब शाह आलम बादशाह हुआ तब इसे खानदौराँ बहादुर की पदवी और अवध की सूबेदारी लखनऊ की फौजदारी के साथ मिली क्योंकि उस समय तक वहाँ का फौजदार दरबार से अलग नियत होता था। मृत अल्लामः मीर अब्दुल्‌जलील बिलग्रामी ने पदवी की तारीख इसी 'खानदौराँ बहादुर' मे निकाली। निजामुल्‌मुल्क थोड़े ही समय बाद वहाँ गए सर्दारो के प्रभाव तथा पुराने अमीरों की कमी मे नौकरी से त्यागपत्र देकर राजधानी दिल्ली चला आया और फकीरी कपडे पहिर घर बैठ रहा। शाह आलम के मरने पर जब कुछ दिन की बादशाहत मुहम्मद मुइज्जुद्दीन को मिली तब इसे भी पहिले का मंसब तथा पुरानी पदवी मिली। जब फर्रुखसियर गद्दी पर बैठा तब यह निजामुल्मुल्क बहादुर फतहजंग की पदवी और सात हजारी मंसब पाकर समानित हुआ तथा दक्षिण का शासक नियत हुआ। जब दक्षिण की अध्यक्षता अमीरुल्‌उमरा सैयदहुसेन अली खाँ को मिली और नवाब राजधानी लौट आया तब इसे मुरादाबाद का शासन मिला। जब अमीरुल्‌उमरा दक्षिण से लौट आया तथा मुहम्मद फर्रुखसियर को गद्दी से हटा कर नए बादशाह को उस पर बैठाया तब निजामुल्मुल्क को मालवा प्रात का शासन मिला। नवाब निजामुल्मुल्क मालव आया और यहाँ के सर्दारो से विरोध होने पर यह मुहम्मदशाही २रे वर्ष सन् ११३२ हि० में दक्षिण चला। प्रथम रजब को नर्मदा नदी पार कर आसीरगढ़ को तालिब खाँ से और बुर्हानपुर नगर मुहम्मद अनवर खाँ बुर्हानपुरी से शाति से ले लिया। अमीरुल्‌उमरा ने भारी सेना सैयद दिलावर खाँ की अधीनता मे पीछा करने को भेजा। नवाब भी उसने सामना करने को शीघ्रता से चला। सरकार हंडिया के मौजा हसनपुर मे उक्त वर्ष के १३ शाबान महीने को युद्ध हुआ और दिलावर खाँ मारा गया। नवाब विजयी होकर बुर्हानपुर मे आकर ठहरा। अभी घायलो के घाव नहीं भरे थे कि दक्षिण का नायब आलम अली खाँ, जो अमीरुल्‌उमरा का भतीजा था, युद्ध की तैयारी करने लगा और औरंगाबाद से बुर्हानपुर को फुर्ती से रवाना हुआ। उसी वर्ष के ६ शव्वाल को बरार प्रान के अतर्गत बालापुर के पास घोर युद्ध हुआ। आलम अली खाँ साहस से वीरता दिखलाते हुए मारा गया और नवाब विजयी होकर औरगाबाद पहुँचा। बारहा के सैयदो का भाग्य पलट चुका था इससे एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीन खाँ ने एक मनुष्य को नियत किया, जिसने ठीक सवारी के समय पालकी मे अमीरुल्‌उमरा को छूरे से मार डाला। यह घटना उसी वर्ष के ६ जीहिज्जा को 'तोरः' पडाव मे हुई थी। अमीरुल्‌उमरा के भाई कुतुबुलमुल्क ने यह डरावना समाचार पाकर एक शाहजादे को दिल्ली के दुर्ग से निकालकर गद्दी पर बैठाया और सेना एकत्र कर युद्ध को आया पर युद्ध के बाद कैद हो गया।

नवाब निजामुल्मुल्क के दक्षिण प्रांत के प्रबंध में विशेष प्रेम रखने के कारण मुहम्मद अमीन खाँ को मंत्रित्व का पद मिला। यह ख्वाजा बहाउद्दीन का पुत्र था, जो उक्त नवाब आबिद खाँ का भाई तथा समरकंद नगर का काजी था। मुहम्मद फर्रुखसियर के राज्यकाल में मुहम्मद अमीन खाँ को द्वितीय बख्शी का स्थायी पद मिला था। एक प्रकार जैसा लिखा गया है, प्रधान मंत्री के पद तक उसकी उन्नति हुई पर उसके बाद मृत्यु ने अवसर नहीं दिया और थोड़े दिन ही बाद मर गया। नवाब निजामुल्मुल्क ने दक्षिण से दिल्ली पहुँच कर मंत्रित्व का खिलअत पहिरा और चाहा कि औरंगजेब के समय के नियमों को फिर से प्रचलित करे, जो बंद हो गए थे। निर्द्वन्द्व सर्दारों ने इसको अपनी इच्छाओं का विरोधी समझ कर बादशाह के मन को इसके विरुद्ध कर दिया। इसी समय सन् ११३५ हि० में गुजरात के नाजिम हैदर कुली खाँ की चाल में विद्रोह के लक्षण प्रगट हुए और नवाब उसे दंड देने पर नियत हुए तथा इस बहाने सर्दारों ने नवाब को दरबार से हटा दिया। जब नवाब गुजरात के पास झाबुआ पहुँचा तब हैदर कुली खाँ ने, जो युद्ध के लिए कई पड़ाव आगे बढ़ आया था, अपने में सामना करने की शक्ति न देख कर अपने को पागल प्रकट कर दिया। नवाब राजधानी लौट आए। इस सेवा के पुरस्कार में मंत्रित्व तथा दक्षिण के शासन के साथ इसे मालवा तथा गुजरात की सूबेदारी मिल गई। परंतु सर्दारों के विरोध से मनोमालिन्य बढ़ता गया। सन् ११३६ हि० में कुल दक्षिण प्रांत का शासन नवाब मुबारिज खाँ के स्थान पर इसे मिला, जो बहुत वर्षों से हैदराबाद का नाजिम था। साथ ही छिपा हुआ मनोमालिन्य प्रगट होने लगा। इस पर आसफजाह ने राजधानी की वायु अपनी प्रकृति के विपरीत तथा मुरादाबाद की अनुकूल बता कर, जहाँ पर पहिले शासन कर चुका था, इसी बहाने मुरादाबाद जाने की छुट्टी ले ली। कुछ दिन यात्रा करने के बाद दक्षिण की ओर रवाना हो गया और बड़ी शीघ्रता से यात्रा करता हुआ दक्षिण पहुँच गया। मुबारिज खाँ युद्ध को आया। शकरखेड़ा के पास औरंगाबाद से साठ कोस पर सामना हुआ और २३ मुहर्रम सन् ११३७ ई० को घोर युद्ध हुआ। मुबारिज खाँ मारा गया तथा नवाब का कुल दक्षिण प्रांत पर अधिकार हो गया। इसके अनंतर बादशाह ने नवाब को शांत रखने का प्रयत्न किया और सदा कृपापात्र और पुरस्कार भेजता रहा। इसी समय इसे आसफजाह की पदवी दी गई। सन् ११५० हि० में बादशाह ने हठ कर इसे दरबार बुलाया और नवाब भी अपने पुत्र निजामुद्दौला नासिरजंग बहादुर को दक्षिण में अपना प्रतिनिधि छोड़ कर राजधानी पहुँचा तथा सेवा में उपस्थित हुआ। फज्ल अली खाँ ने इसकी तारीख इस प्रकार पद्य में कही है। कितः

सौ शुक्र है कि धर्म का रक्षक आया।
बादशाही राज्य को शोभा देने वाला आया॥
हातिफ उसके पहुँचने की तारीख बतलाओ।
कहा 'आयत रहमते इलाही आमद'॥

नवाब ने उसे एक सहस्र रुपया और चाँदी के साज सहित एक घोडा पुरस्कार मे दिया। दिल्ली पहुँचने के दो महीने बाद बादशाह ने नवाब को मराठों को दंड देने के लिए बिदा किया। नवाब जब आगरे पहुँचा तब कुछ कारणों से दक्खिनी मार्ग छोड़ कर पूर्व की ओर चला। इटावा और मकनपुर होते हुए कालपी के नीचे से जमुना नदी पार किया। वहाँ से दक्षिण को चला और मालवा मे आया। कई पड़ाव तै करने पर उस प्रांत के अंतर्गत भूपाल नगर मे पहुँचा। दक्षिण से आई हुई मराठा सेना ने इसका सामना किया। उक्त वर्ष के रमजान के महीने मे भूपाल के आसपास खूब युद्ध हुए। नादिरशाह के आने का समाचार फैल रहा था इसलिए नवाब ने अवसर समझ कर संधि कर ली और दरबार लौट आया। जब नादिरशाह विजयी हुआ और जो होना था हो चुका तब अन्य सर्दारो से इस पर बहुत अधिक कृपा हुई। नादिरशाह के युद्ध मे अमीरुल्उमरा खानदौराँ मारा जा चुका था, इसलिए नादिरशाह के विजय के पहिले ही अमीरुल्उमरा का मंसब अन्य पदो के साथ नवाब को मिला। नादिरशाह के जाने के बाद भी वह पद बहाल रहा। सन् ११५३ हि० मे नवाब ने बादशाह से दक्षिण जाने की छुट्टी ले ली और यात्रा करता हुआ बुर्हानपुर के पास पहुँचा। नवाब के विरोधियो ने निजामुद्दौला नासिरजंग को बाध्य किया कि वह रास्ता रोके। दक्षिण के बहुत से सर्दारों तथा सेना ने पहिले साथ देने की प्रतिज्ञा की पर अंत में नवाब आसफजाह की स्वामिभक्ति के कारण वे युद्ध के समय हटने लगे। निजामुद्दौला सेना का यह रंग देखकर शाह बुर्हानुद्दीन गरीब के रौजा मे जाकर एकांतवास करने लगा। जब प्रांत का प्रबंध करते हुए तथा नई आज्ञाएँ देते हुए आसफजाह ससैन्य वर्षाकाल मे औरंगाबाद पहुँचा तब निजामुद्दौला इस आशंका से कि कही उस पर आक्रमण न हो रौजा से निकल कर मुल्हेर दुर्ग मे चला गया। नवाब आसफजाह ने पहिले के नियम के अनुसार वर्षा काल मे सेना को अपने गृह तथा चरागाह जाने की छुट्टी दे दी और स्वयं अकेले औरंगाबाद मे रह गया।

दुष्ट शैतान मनुष्य का डाकू है, यहाँ तक कि अपनी माया के जोर से नबियो के फलो को बहका देता है और लोगो को (अरबी का कुछ अंश है) उद्दंड बना देता है। नवाब निजामुद्दौला ने दुष्टो के कहने से औरंगाबाद जाने का निश्चय किया और सात सहस्र सवारों को एकत्र कर धावा करता औरंगाबाद पहुँचा। नवाब आसफजाह जितने सैनिक मौजूद थे उन्हे तथा तोपखाना लेकर नगर के पास ईदगाह की ओर युद्ध के लिए ठहरा। २० जमादिउल् अव्वल सन् ११५४ हि० को युद्ध हुआ। आसफजाही तोपखाने की अधिकता तथा संध्या के अंधकार और समय की कमी से दूसरी ओर की सेना आप ही बिखर गई। नवाब निजामुद्दौला हाथी को बढा कर थोड़ी सेना के साथ आसफजाह के हाथीके पास पहुँचा पर घायल होकर पिता के हाथ पकड़ा गया।

सन् ११५६ हि० मे नवाब आसफजाह ने कर्णाटक विजय करने का निश्चय किया और उस प्रांत मे पहुँचने पर त्रिचनापल्ली दुर्ग को घेर कर विजय किया, जो मराठों के अधिकार मे था। इसके अनंतर अरकाट प्रांत को नवायतों से, जो बहुत मुद्दत से उस प्रांत पर अधिकृत थे, ले लिया और वहाँ के शासन पर अनवरुद्दीन खाँ शहामतजंग गोपामुई को अपनी ओर से नियत कर सन् ११५७ हि० मे यह औरंगाबाद लौट आया। सन् ११५९ हि० मे दुर्ग बालकुंडा को, जो हैदराबाद के अंतर्गत तथा कुछ दक्खिनी सर्दारो के हाथ मे था, घेर कर थोड़े समय मे विजय कर लिया। सन् ११६१ हि० में अहमद खाँ अब्दाली के काबुल की ओर से दिल्ली आने का समाचार सुन पड़ा। देशीय नीति के विचार से नवाब औरंगाबाद से बुर्हानपुर चला आया और वहाँ समाचार मिला कि अहमदशाह विजयी हुए और अहमद खाँ अब्दाली परास्त होकर काबुल लौट गया।

नवाब आसफजाह को इसी समय कड़ी बीमारी हो गई। उसी हालत में २७ जमादिउल अव्वल को औरंगाबाद रवाना हुआ पर रोग के बढ़ने से बुर्हानपुर नगर के पास खेमे में ठहर गया। बीमारी प्रतिदिन बढ़ती गई यहाँ तक कि ४जमादिउल् आखिर सन् ११६१ हि० को संध्या के समय मर गया। शव उठाते समय बड़ा शोर मचा, जिससे भूमि तथा लोग काँप उठे। बड़े बड़े सर्दारो ने जनाजा कंधों पर उठा कर मैदान में पहुँचाया और नमाज पढ़ कर शाह बुर्हानुद्दीन गरीब के रौजा को भेज दिया। शेख की कब्र के नीचे वह गाड़ा गया। 'मुतवज्जह बिहिश्त' से मृत्यु की तारीख निकलती है, जिसे मीर गुलामअली आजाद ने निकाला था।

•

४००. नवाब आसफजाह 'आसफ'

इसका मातामह शाहजहाँ बादशाह का प्रधान अमात्य सादुल्ला खाँ था और इसका पितामह आबिद खाँ समरकंद का तथा शेख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी का वंशज था। शाहजहाँ बादशाह के समय आबिद खाँ हिंदुस्तान आया और शाहजादा औरंगजेब के सेवकों मे भर्ती हो गया। शाहजादे के गद्दी पर बैठने पर इसका मंसब बढ़ कर पाँच हजारी हो गया। यह दो बार सद्र कुल पद पर नियत हुआ। २४ रबीउल् अव्वल सन् १०९८ हि० को गोलकुंडा दुर्ग के घेरे में गोला लगने से यह मर गया। इसका पुत्र मीर शहाबुद्दीन औरंगजेब के समय का एक प्रमुख सर्दार था। क्रमशः इसे सात हजारी मंसब और गाजीउद्दीन खाँ बहादुर फीरोजजंग की पदवी मिली। बीजापुर के विजय में अच्छे प्रयत्नों के उपलक्ष मे इसकी पदवियों में 'फर्जंद अर्जुमंद'

शब्द बढा कर इसे सम्मानित किया गया। शाह आलम के राज्यकाल मे इसे गुजरात की सूबेदारी मिली। वहां के शासनकाल में सन् ११२२ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। इसी का पुत्र नवाब आसफजाह था, जिसका वास्तविक नाम मीर कमरुद्दीन था। इसका जन्म सन् १०८२ हि० मे हुआ था और औरंगजेब के समय इसे चीन कुलीज खाँ की पदवी और पाँच हजारी मंसब मिला था। उस राज्य के अंत में बीजापुर की सूबेदारी मिली। शाह आलम के समय मे खानदौराँ बहादुर की पदवी और अवध की सूबेदारी मिली। थोड़े ही समय बाद सर्दारो से मनोमालिन्य हो जाने से मंसब छोड कर फकीरी कपड़े पहि' दिल्ली मे एकांतवास करने लगा। जहाँदार श ह के समय एकात से निकल कर इसको पहिले का मंसब तथा पदवी फिर मिल गई। फर्रुखसियर के राज्य के १म वर्ष मे इसे निजामुल्मुल्क बहादुर फतहजंग की पदवी, सात हजारी मंसब तथा दक्षिण की सूबेदारी मिली। जब दक्षिण का शासन अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ को मिला और नवाब दरबार चला आया तब इस कष्ट को दूर करने के लिए बादशाह बिना किसी प्रभाव के नाममात्र को गद्दी पर बैठा हुआ है, इसने मुरादाबाद का शासन अपने हाथ मे ले लिया। रफी-उद्दर्जात के राज्यकाल मे इसे मालवा की सूबेदारी मिली और दरबार के सर्दारों से झगडा होने के कारण इसने दक्षिण विजय करने का निश्चय किया। सन् ११३२ मे मालवा से दक्षिण को चला। आसीरगढ को तालिब खाँ से और बुर्हानपुर नगर को मुहम्मद खाँ अनवर से, जो रफीउद्दर्जात् के समय बुर्हानपुर का सूबेदार नियत हुआ था, शाति के साथ ले लिया। १३ शाबान को उसी वर्ष सैयद दिलावर खाँ पर, जो दरबार से नवाब से युद्ध करने के लिए नियत हुआ था, हंडिया सरकार के हसनपुर मौजा मे विजय प्राप्त किया और बुर्हानपुर लौट आया। उसी वर्ष के ६ शव्वाल को अमीरुल्उमरा सैयद हुसेन अली खाँ के भतीजे सैयद आलमअली खाँ को, जो दक्षिण मे नायब था, बालापुर के पास परास्त किया।

जब बारहा के सैयदो का समय बिगड गया और एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीन खाँ भी, जो सैयदो के बाद मुहम्मदशाह बादशाह का मंत्री हुआ था मर गया तब नवाब को सन् ११३४ हि० मे दक्षिण से दरबार पहुँचने पर ५ जमादिउल् अव्वल को वजीर का पद मिला। यह लेखक उस समय दिल्ली ही मे था। उसी समय गुजरात के प्रांताध्यक्ष मुइज्जद्दौला हैदरकुली खाँ इसफरायनी ने विद्रोह कर दिया तब मुहम्मदशाह ने गुजरात तथा मालवा की सूबेदारी भी मंत्रित्व तथा दक्षिण के शासन के साथ नवाब को देकर हैदरकुली खाँ को चढाई पर भेजा। नवाब फुर्ती से गुजरात के पास झाबुआ पहुँचा था कि हैदरकुली खाँ युद्ध करने को अपने मे सामर्थ्य न देख कर पागल बन हट गया। नवाब अपने चाचा हामिद खाँ को गुजरात तथा औध मे अपना नायब नियतकर आया मालवा और यहाँ अपने चचेरे भाई अजीमुद्दीन खाँ को अपना प्रतिनिधि-शासक नियत कर उसी वर्ष के जमादिउल् अव्वल के

आरंभ में राजधानी लौट गया। दरबार के सरदारगण नहीं चाहते थे कि नवाब वहाँ बादशाह के पास ठहरे, इसलिए बादशाह का मन उसकी ओर से फेर दिया। सन् ११३६ हि० मे दक्षिण का शासन हैदराबाद के नाजिम नवाब मुबारिज खाँ के स्थान पर इसको मिल गया। नवाब ने राजधानी की वायु अपने विरुद्ध तथा मुरादाबाद का अपनी प्रकृति के अनुकूल होने का बहाना कर, जहाँ वह पहिले शासन कर चुका था, मुहम्मद शाह से वहाँ जाने की छुट्टी ले ली। यात्रा आरभ करने पर दक्षिण की ओर बाग मोड़ दी और फुर्ती के साथ दक्षिण पहुँचा। मुबारिज खाँ ने युद्ध की तैयारी की २३ मुहर्रम सन् ११३७ हि० को शकरखड़ा में घोर युद्ध हुआ और मुबारिज खाँ मारा गया। दक्षिण के कुल प्रात नवाब के अधिकार मे चले आए। यह समाचार आने पर गुजरात प्रात का शासन मुबारिजुल्मुल्क सर बुलंद खाँ तूनी को और मालवा प्रांत गिरिधर को नवाब के स्थान पर मिला। मुहम्मदशाह ने नवाब को शात करने के लिए सन् ११३८ हि० मे आसफजाह की पदवी दी। सन् ११५० हि० में बहुत कह सुन कर इसे दरबार बुलाया। नवाब अपने पुत्र नवाब निजामुद्दौला नासिरजंग को दक्षिण में अपना प्रतिनिधि छोड़कर दरबार गया। उसी वर्ष के रबीउल् अव्वल के अंत मे यह राजधानी पहुँच गया। दो महीने बाद मुहम्मदशाह ने नवाब को शत्रु को दमन करने के लिए विदा किया और राजा जयसिंह के स्थान पर आगरे की तथा बाजीराव के स्थान पर मालवा की सूबेदारी नवाब को देकर आगरे चला आया। आसफजाह अपने वजीर तथा संबंधी मुहीउद्दीन कुली खाँ को अपने प्रतिनिधि रूप मे आगरे मे छोड़ कर मालवा की ओर गया। खेल नदी के तट पर बहुत से गहरे गड्ढे एक के बाद एक हैं और नवाब के दक्षिण से आते समय इसी नदी के किनारे के चोरो ने सेना को बहुत हानि पहुँचाई थी इसलिए नवाब आगरा के पास ही जमुना पार कर पूर्व ओर होता चला और न देखे हुए सीधे मार्ग से कमनपुर होता कालपी के नीचे से फिर जमुना पार कर बुंदेलों के देश मे आया। बुंदेला नरेश सेना सहित साथ हो गया और कई पड़ाव चलने पर मालवा प्रांत के अंतर्गत भूपाल पहुँचा। बाजीराव ने भी भारी सेना के साथ दक्षिण से आकर भूपाल के पास उसी वर्ष के रमजान महीने मे युद्ध आरंभ कर दिया। जब नादिरशाह के आने का समाचार ठीक ज्ञात हुआ तब अन्य सर्दारो की अपेक्षा नवाब से उसने बहुत अच्छा व्यवहार किया। जब नादिरशाह के युद्ध मे अमीरुल्उमरा समसामुद्दौला खानदौराँ मारा गया तब अमीरुल्उमरा का पद भी नवाब को अन्य पदो के साथ मिल गया।

इसी समय दक्षिण का नायब नवाब निजामुद्दौला नासिरजंग उपद्रवियो के बहकाने से विद्रोही हो गया। नवाब ने अशांति दमन करने के लिए सन् ११५३ हि० मे कर्णाटक प्रांत विजय करने की आशा से कमर बाँधी। पहिले बादशाह से छुट्टी लेकर दक्षिण आया। २० जमादिउल् अव्वल सन् ११५४ हि० को औरंगाबाद

के पास पश्चिम की ओर पिता पुत्र मे युद्ध हुआ, नवाब निजामुद्दौला घायल होकर पिता के यहाँ कैद हो गया। नवाब ने सन् ११५६ हि० मे कर्णाटक प्रांत विजय करने का दृढ़ निश्चय किया। पहिले त्रिचिनापल्ली दुर्ग घेर कर विजय किया और इसके बाद नव यतो से अर्काट ले लिया। सन् ११५७ हि० मे हैदराबाद के अतर्गत दुर्ग बालकन्हढ घेर कर मुकर्रब खाँ दक्खिनी से ले लिया। ४ जमादिउल् आखिर सन् ११६१ हि० (सन् १७४८ ई०) को बुर्हानपुर के पास इसकी मृत्यु हो गई और इसके शव को ले जाकर दौलताबाद दुर्ग के पास शाह बुर्हानुद्दीन गरीबके मकबरे मे नीचे की ओर गाड दिया। इसी वर्ष मुहम्मदशाह बादशाह और वजीर कमरुद्दीन खाँ एतमादुद्दौला भी मरे। लेखक कहता है—अर्थ—

हिंदुस्तान देश के तीन स्तंभ संसार से चले गए।
संसार के हाथ से तीन अनूठे मोती गिर पडे, शोक ॥
इन हर तीन की मृत्यु के लिए तारीख मैने निकाली।

'नमानद शाहजमाँ बा वजीर व आसफ दह्र' (न रहे संसार के बादशाह वजीर और आसफ के साथ)।

नवाब हिंदुस्तान के तैमूरी साम्राज्य के बड़े सर्दारो मे से था। औरंगजेब के समय से मुहम्मदशाह के राज्य तक बहुत दिन सर्दारी में बराबर उन्नति करता रहा। प्रायः तीस वर्ष तक दक्षिण के छ प्रांतो का शासन करता रहा, जितना बड़ा राज्य कम बादशाहो का था। मुहम्मदशाह बादशाह के समय के बहुत से सर्दार इसके परिवार के थे और वे पुत्रवत् प्रतिष्ठा के रस्मो को पूरा करते थे। इसके व्यक्तित्व मे विचित्र फिरिश्तो से गुण तथा भलाई भरी हुई थी। सर्वदा इसकी सरकार मे साधुओं, विद्वानो, गुणियों तथा भले आदमियो की प्रतिष्ठा उनकी योग्यता के अनुसार होती रही। अरब, मावरुन्नहर, खुरासान, एराक तथा हिंदुस्तान के चारों ओर के प्रांतो के विद्वान् और शेख इसकी गुणग्राहकता की प्रसिद्धि सुनकर दक्षिण आते थे और इसके यहाँ से बहुत कुछ ले जाते थे। इसके स्मारको मे बुर्हानपुर का नगर-रक्षक दुर्ग है, जिसकी नीव सन् ११४१ हि० मे पडी थी और बहुत दिनो मे तैयार हुई थी। इसी ने फर्दापुर घाटी के ऊपर निजामाबाद बस्ती बसाई, जो उजाड पड़ा था और मस्जिद, सराय, महल तथा पुल बनवाए। इस बस्ती के समान हैदराबाद का नगर-रक्षक दुर्ग और नहर हर्सूल है, जो औरंगाबाद नगर के बीच आती है। नवाब अच्छी कविता करते थे और भारी दीवान लिखा है। उसका कहा हुआ है—शैर—

यार ने जब आईना को अपने सौंदर्य के सामने कर दिया।
तब आईना पर आब ताजा आ गया ॥
प्रेम के दाग से हमारे दीवाने दिल को जला दिया।
हम पतंग के सिर के गिर्द दीपक को फिरा दिया ॥

नवाव आसफजाह ने मरते समय छ पुत्र छोड़े थे। मीर मुहम्मद और मीर अहलद दो एक माँ से थे तथा मीर सैयद मुहम्मद, मीर निजाम अली, मीर मुहम्मद शरीफ और मीर मुगल ये चार अन्य स्त्रियो से थे। इनमे हर एक वड़ी पदवियों से विभूपित थे। विभिन्नता के लिए प्रथम अमीरुल् उमरा, द्वितीय निजामुद्दौला, तृतीय अमीरुलमुमालिक, चतुर्थ आसफजाह सानी, पंचम वुर्हानुलमुल्क और पष्ठ नासिरुल्मुल्क कहलाता था। नवाव आसफजाह के पुत्र अमीरुल्उमरा गाजीउद्दीन खाँ वहादुर फीरोजजंग को दरवार से पितामह की पदवी मिली थी। जव नवाव आसफजाह दक्षिण से दिल्ली आकर दरवार से संमानित हुआ और सन् १२५३ हि० मे दक्षिण जाने की मुहम्मदशाह से छुट्टी पाई तव नायव अमीरुल्उमरा के पद पर अपने पुत्र फीरोजजंग को नियत कर गया, जो पद ख्वाजा आसिम खानदौराँ समसामुद्दौला के नादिरशाही में मारे जाने पर नवाव आसफजाह को मिला था। नवाव आसफजाह की मृत्यु पर अहमद के समय अमीरुल्उमरा का पद वशारत खाँ को दिया गया। कुछ दिन वाद यह पद उसके स्थान पर शहादत खाँ फीरोजजंग को दिया गया। नवाव निजामुद्दौला के मारे जाने पर अमीरुल्उमरा नासिरजंग को दक्षिण के राज्य की इच्छा हुई। दरवार के सर्दारगण कुछ कारणो से पहिले इस वात पर राजी नहीं थे पर वाद को राजी हो गए। इसका हाल सफदरजंग के वृत्तांत मे लिखा गया है। ३ रजव सन् ११६५ हि० को अमीरुल्उमरा ने अहमद-से दक्षिण के शासन का खिलअत पाया और वर्षाकाल में दक्षिण की ओर चला। दक्षिण मे तीसरा भाई अमीरुल्लमालिक अधिकार में था इसलिए होलकर मराठा को, जो दिल्ली के पास भारी सेना के साथ उपस्थित था, अपना साथी वनाया। यात्रा करता हुआ २० जीकदा को उसी वर्ष औरंगावाद पहुँचा। अमीरुल्मुमालिक हैदराबाद मे था और वह युद्ध के लिए चला। शत्रु (मराठों) ने अवसर पाकर अमीरुल्उमरा से पूरा खानदेश प्रांत, संगमनेर तथा जालना, जो अंतिम दो औरंगावाद के अंतर्गत थे, आदि के लिए प्रार्थना की। अमीरुल्उमरा नया आया हुआ तथा अनुभवहीन था और भारी काम अमरुल्ममालिक से युद्ध करने का सामने था इससे खानदेश आदि की सनद अपनी मुद्रा से शत्रुओं को दे दिया। ऐसा प्रांत मुफ्त में शत्रु के हाथ चला गया।

मृत्यु की लेखनी इस प्रकार चल चुकी थी कि दक्षिण का राज्य अमीरुलमुमालिक ही को वहाल रहे इसलिए अमीरुल्उमरा औरंगावाद मे दाखिल होने के सत्रह दिन वाद उक्त वर्ष के अंतिम दिन ७जीहिज्जा को एकाएक मर गया। इसके मित्रगण ने, जिन्होने वड़े विश्वास के साथ इसकी मित्रता निवाही थी, आशा छोड़ दी और इसके तावूत को रक्षा में सही सलामत मार्ग मे ले चलने के लिए यह निश्चय किया कि आगे पीछे अपना व्यूह वनाकर औरंगावाद से दिल्ली ले जायें। अंत मे ऐसा ही

किया। जिस प्रकार नाश (शव, चार तारे) विनातुल्नाश (सप्तर्षि) के पीछे चलता है उसी प्रकार मार्ग चलते हुए दिल्ली पहुँचे और वहीं शव को गाड़ा।

नवाव आसफजाह के पौत्र तथा अमीरुल्उमरा फीरोजजंग के पुत्र एमादुल्मुल्क का वास्तव में नाम मीर शहाबुद्दीन था, जो एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ वजीरुल-मुमालिक का दौहित्र था। इसे भी पैतृक पदवी गाजीउद्दीन खाँ वहादुर शीरोजजंग की मिली थी। जिस समय इसका पिता अमीरुल्उमरा दक्षिण जाकर एकाएक मर गया और यह भयानक समाचार दिल्ली पहुँची, एमाद्‌ुल्मुल्क वजीरुल्मुमालिक सफदरजंग के घर में जा वैठा और यहाँ तक शोक प्रगट किया कि सफदरजंग ने दया कर इसको अहमदशाह से अमीरुल्उमरा का इसका पैतृक पद दिलवा दिया। अंत मे इसने इस भलाई का टेढा वदला दिया। एमादुल्मुल्क ने चाहा कि सफदरजंग को विगाड़ दें, जिसका विवरण सफदरजंग के वृत्तांत में दिया है। एमादुल्मुल्क ने उक्त युद्ध के समय होलकर को मालवा से और जयापा को नागौर से अपनी सहायता को वुलवाया पर उनके पहुँचने के पहिले सफदरजंग से संधि हो गई। एमादुल्मुल्क, होलकर व जयापा तीनो मिलकर सूरजमल जाट पर गए और भरतपुर, कुंभेर तथा डीग को, जो जाट प्रांत के तीन दृढ दुर्ग हैं, घेर लिया। दुर्ग तोड़ने का अच्छा सामान तोपें है इसलिए मराठा सर्दारो के कहने पर एमादुल्मुल्क ने अहमदशाह के यहाँ तोपों के लिए एक प्रार्थना पत्र अपने मुख्य कर्मचारी आकवतमहमूद खाँ कश्मीरी के हाथ भेजा। मृत एमादुद्दीन खाँ का पुत्र इंतजामुद्दौला वजीर एमादुल्मुल्क के हठ पर वादशाह को तोपो के भेजने से मना कर दिया। आकवत महमूद खाँ ने वादशाही मंसवदारो तथा तोपखाने के आदमियो को यह वचन देकर कि जव एतमादुद्दौला का अधिकार होगा सवके साथ ऐसी-वैसी कृपाएँ की जायगी, उन्हे अपनी ओर मिलाकर चाहा कि तजामुद्दौला को उखाड़ दें। एक दिन निश्चय कर एलजामुद्दौला के गृह पर आक्रमण कर मारकाट आरंभ कर दिया। उस दिन काम न होने पर दासना की ओर भागा। उचित मार्ग को छोड़कर इसने वादशाही महलो तथा मंसवदारो की जागीरो को, जो राजधानी के चारो ओर थे, लूटकर विद्रोह खड़ा कर दिया। इसी समय सूरजमल जाट ने, जो घेरनेवालो से तंग आ गया था, अहमदशाह से सहायता की प्रार्थना की। अहमदशाह प्रकट मे शिकार व उस प्रांत के प्रवंध के वहाने पर वास्तव मे जाट की सहायता को दिल्ली से निकल कर सिकंदरा मे आकर ठहरा और आकवत महमूद खाँ को, जो वहीं उपद्रव किए हुए था, शांत कर वुलाया आकवत महमूद खाँ खुर्जा से शीघ्र आकर वादशाह की सेवा कर फिर खुर्जा लौट गया। ईश्वरी योग से होलकर के हृदय मे यह आया कि अहमदशाह ही तोपो को देने मे ढिलाई करता है और अव वह वाहर आ गया है इसलिए चल कर सेना के अन्न व घास को वंद कर देना चाहिए और इस प्रकार कष्ट देकर तोपें उससे लेना चाहिए। उसने यह भी निश्चय किया कि किसी को इस कार्य मे साथी न वनावे

इसलिए वह एमादुल्मुल्क तथा जयापा को सूचित न कर रात्रि मे चल दिया और मथुरा से जमुना पार कर जिस रात्रि को आकबत महमूद खाँ सेवा कर खुर्जा लौट आया था उसी रात्रि को होल्कर अहमदशाह की सेना के पास पहुँच गया। पहिली रात्रि को कुछ गोले छोड़े कि आदमियों को शंका हो कि आकबत महमूद खाँ शरारत से फिर लौटकर युद्ध को तैयार होकर आया है और इसे साधारण बात समझकर युद्ध की तैयारी न करें और न भागने का विचार करें। परंतु इस स्वप्न देखने का कुछ फल न निकला। रात्रि के अंत मे यह निश्चय हो गया कि होलकर आ गया है। सभी घबड़ा गए कि न लड़ने की शक्ति है और न भागने का अवसर। निरुपाय हो अहमदशाह, भाऊराव और अमीरुल्उमरा समसामुद्दौला खानदौरां का पुत्र मीर आतिश समसामुद्दौला स्त्रियों, बच्चों तथा परिवार वालों को वहीं छोड़ कर कुछ सैनिकों के साथ दिल्ली भागे और बादशाह के इस लड़कपन, अनुभवहीनता तथा अयोग्यता से तैमूरिया वंश के नाम पर भारी चोट पहुँची। होलकर ने पहुँचकर बिना युद्ध के साम्राज्य के सारे सामान को लूट लिया। फर्रुखसियर बादशाह की पुत्री, जो मुहम्मद शाह की स्त्री थी, तथा बादशाही खेमे की दूसरी पर्देवालियाँ सब कैद हो गईं। यद्यपि होलकर ने इन सबको बड़े सम्मान से रखा पर ऐसे सम्मान पर धूल पड़े। एतमादुल्मुल्क यह समाचार पाते ही घेरा उठा कर राजधानी भागा। जब जयापा ने देखा कि दोनों सर्दार चल दिए और वह अकेला घेरा नहीं चला सकता तब वह भी घेरा उठा कर नारनौल चला गया। सूरजमल को यों ही घेरे से छुट्टी मिल गई। एमादुल्मुल्क ने होलकर के जोर पर तथा दरबार के सर्दारों विशेष कर समसामुद्दौला के मेल से इंतजामुद्दौला के स्थान पर वजीर का पद स्वयं ले लिया और मीर आतिश समसामुद्दौला को अमीरुल्उमरा बना दिया। जिस दिन वजीर का पद लेकर सवेरे खिलअत पहिरा उसी दिन अहमदशाह को उसकी माता के साथ कैद कर १० शाबान आदित्यवार सन् ११६७ हि० को मुइज्जुद्दीन जहाँदार शाह के पुत्र इज्जुद्दीन को आलमगीर द्वितीय की पदवी से गद्दी पर बैठा दिया। कैद करने के एक सप्ताह बाद अहमद शाह और उसकी माँ की आँखों मे, जिससे कुल उपद्रव हुए थे, सलाई फिरवा दी। कुछ दिन बाद पंजाब प्रांत का प्रबंध करने को लाहौर गया।

में लाहौर पहुँच गए और ख्वाजासराओं को हरम मे भेज कर वेगम को, जो वेधड़क सोई हुई थी, जगा कर कैद कर लिया। मकान से वाहर लाकर उसे खेमे मे रखा गया। वेगम एतमादुल्मुल्क के मामा की स्त्री थी और इसकी पुत्री की एमादुल्-मुल्क लाहौर की सूवेदारी आदीना वेग खाँ को तीस लाख रुपया भेंट की शर्त पर देकर दिल्ली लौट गया। जव यह समाचार शाह दुर्रानी ने सुना तव वह वहुत क्षुब्ध हुआ और शीघ्रता के साथ कधार से वह लाहौर पहुँचा। छुट्टी के लड़के के समान, जो कितावो से भागता है, अदीना वेग खाँ हांसी हिसार के जंगलो मे भाग गया। शाह दुर्रानी फुर्ती से दिल्ली से वीस कोस पर पहुँच कर उतरा। कुछ सामान न रखने के कारण एमादुल्मुल्क अधीनता के सिवा और कोई उपाय न देख शाह दुर्रानी की सेवा मे पहुँचा। पहिले यह दंडित हुआ। अंत मे उक्त वेगम तथा अशरफ अनवर के अनुरोध से खाँ से प्रसन्न हुआ और विना भेंट लिए वजीरी पर वहाल रखा। जव शाह दुर्रानी ने जहाँ खाँ को सूरजमल जाट के दुर्गो को लेने के लिए नियत किया तव एमादुल्मुल्क ने जहाँ खाँ के साथ रह कर वहुत प्रयत्न किया और शाह ने उसकी प्रशंसा की। जव वजीर होने के भेंट की वात आई तव एमा-दुल्मुल्क ने शाह से प्रार्थना की कि यदि तैमूरी वंश के चिह्न तथा दुर्रानियो की सेना साथ मिले तो अंतर्वेद से वहुत धन वसूल कर कोष मे जमा कर दूँ। शाह दुर्रानी ने दो शाहजादे—एक आलमगीर द्वितीय का पुत्र हिदायतवख्श और दूसरा आलमगीर द्वितीय के भाई अजीजुद्दीन के दामाद मिर्जा वावर को दिल्ली से वुलवा कर जाँवाज खाँ के साथ, जो शाह के साथ के सर्दारो मे से एक था, एमादुल्मुल्क के संग भेजा। एमादुल्मुल्क दोनों शाहजादो तथा जाँवाज खाँ के साथ विना पूरा सामान लिए जमुना नदी पार कर मुहम्मद खाँ वंगश के पुत्र अहमद खाँ के निवास स्थान फर्रुखावाद को गया। अहमद खाँ ने स्वागत कर शाहजादो को खेमा, कनात, हाथी, वस्त्र आदि भेंट दिए। एमादुल्मुल्क यहाँ से आगे वढ कर गंगा नदी पार हो अवध प्रांत की ओर चला। अवध का नाजिम शुजाउद्दौला युद्ध की तैयारी के साथ लखनऊ से निकल कर सांडी व पाली के मैदान मे पहुँचा, जो अवध की सीमा पर है। दो वार साधारण युद्ध दोनो ओर के करावलो मे हुआ। अंत मे सादुल्ला खाँ रुहेला की मध्यस्थता में पांच लाख रुपए पर संधि हो गई, जिसमे कुछ नगद दिया और कुछ वादे पर रहा। ७ शव्वाल सन् ११६० हि० को एमादुल्मुल्क ने शाहजादो के साथ मैदान से कूच किया और गंगा नदी पार कर फर्रुखावद आया।

जव शाह दुर्रानी सेना मे महामारी फैलने से स्वदेश जाने के लिए आगरे से रवाना हुआ तब जिस दिन यह दिल्ली के पास पहुँचा उस दिन आलमगीर द्वितीय नजी-वुद्दौला के साथ मकसूदावाद तालाव पर आकर शाह से मिला और एमादुल्मुल्क की वहुत शिकायत की। इस पर शाह दुर्रानी नजीवुद्दौला को हिंदुस्तान के अमीरुल्-

उमरा का पद देकर लाहौर चल दिया। नजीबुद्दौला जाति का अफगान था इसे योग्य समझ कर एमादुल्मुल्क ने अपनी सरकार में स्थान दिया था और जब शाह दुर्रानी हिंदुस्तान आया तब अपनी योग्यता तथा उसके स्वजातीय होने से इसने बादशाह से विशेष परिचय पैदा किया, यहाँ तक कि स्वयं अमीरुल्उमरा हो गया और एतमादुल्मुल्क का उसे विरोधी बना दिया। संक्षेपतः एतमादुल्मुल्क नजीबुद्दौला को स्थानच्युत करने के लिए दिल्ली को चला और बालाजी राव के सौतेले भाई रघुनाथ राव होल्कर को बहाने से दक्षिण से बुलवा कर साथ ही दिल्ली को घेर लिया। आलमगीर द्वितीय तथा नजीबुद्दौला घिर गए और पैतालिस दिन तोप बंदूक का युद्ध होता रहा। अंत में होल्कर ने नजीबुद्दौला से भारी घूस लेकर संधि करा दी और नजीबुद्दौला को सम्मान तथा सामान आदि के साथ दुर्ग से बाहर लाकर अपने खेमे के पास स्थान दिया। उसके इलाकों को, जो जमुना नदी के उस पार थे तथा जिनमे महारपुर, चांदौर तथा बारहः के कुल कस्बे थे, होल्कर ने अपने अधिकार में ले लिए। जब शत्रु-सर्दार ने नजीबुद्दौला को शकरताल मे घेर लिया, जिसका विवरण शुजाउद्दौला की जीवनी में दिया है, तब एमादुल्मुल्क को उसने दिल्ली से सहायतार्थ बुलवाया। एमादुल्मुल्क खानखानाँ इंतजामुद्दौला से अप्रसन्न था और आलमगीर द्वितीय से भी उसका हृदय स्वच्छ नही था क्योंकि वह समझता था कि लोग शाह दुर्रानी से गुप्त पत्र-व्यवहार करते रहते हैं और नजीबुद्दौला का उस पर प्रभुत्व चाहते हैं, इसलिए उसने पहिले खानखानाँ को मरवा डाला और तीन दिन बाद ८ रबीउल् आखिर गुरुवार सन् ११६३ हि० को आलमगीर द्वितीय को भी मार डाला। उक्त इतिहास मे लिखा है कि औरंगजेब के पुत्र कामबख्श के लडके मुही उल्हुसनः को शाहजहाँ की पदवी से गद्दी पर बैठाया। बादशाह और खानखानाँ को मारने के बाद यह दत्ता के बुलाने पर सहायता को गया। इसी समय शाह दुर्रानी के आने-आने का शोर वहाँ मचा। दत्ता शकरताल के पास से उठ कर शाह दुर्रानी से लड़ने के लिए सरहिंद की ओर चला और एमादुल्मुल्क दिल्ली आया। जब शाह दुर्रानी ने करावलो से दत्ता के युद्ध का समाचार सुना तब दुर्रानियो के विजय तथा चचा के पराजय होने का निश्चय किया। इस कारण कि कुश्ती लडते हुए दो पहलवानों मे इसने देखा कि निर्बल को अधिक सबल शक्ति से नीचे ले गया। दुर्रानियो ने इसके चचा को आक्रमणकर दिल्ली की ओर भगा दिया। एमादुल्मुल्क को ज्ञात हुआ कि इसके चचा को हटा कर शाह दुर्रानी दिल्ली के पास आ पहुँचा है। उसके डर से नए बादशाह को दिल्ली में छोड कर वह स्वयं सूरजमल जाट के यहाँ चला गया।

नवाब आसफजाह का द्वितीय पुत्र निजामुद्दौला सर्दारो में एक अनमोल मोती था और कवियों मे प्रसिद्ध था। उसका वृत्तात उसकी जीवनी में विस्तार से दिया

हुआ है। यहाँ केवल कुछ हाल सजावट के लिए दिया जाता है। जब नवाब आसफजाह सन् ११५० हि० मे दिल्ली आया तब अपने पुत्र को दक्षिण मे अपना प्रतिनिधि छोड़ आया। अपने प्रतिनिधिकाल मे इसने राजा राव को, जो अहंकार से भरा था, परास्त किया था, जो शत्रु के वृत्तांत मे दिया गया है। नवाब आसफजाह की मृत्यु पर यह दक्षिण की गद्दी पर बैठा और शत्रु पर इसका ऐसा रोब छा गया था कि इसके राज्यकाल के अंत तक उसने अपनी सीमा के बाहर पैर न निकाला। हिंदुस्तान के सम्राट् अहमदशाह ने साम्राज्य के कामो को ठीक करने के लिए अपने हाथ से नवाब निजामुद्दौला को पत्र लिखा। नवाब फुर्ती से नर्मदा नदी के किनारे तक पहुँचा था कि इसी समय अहमद शाह का दूसरा पत्र पहिली आज्ञा को रद्द करने का पहुँचा और इधर मुजफ्फरजंग ने अधीनता छोड दी, जिसका विवरण उसकी जीवनी मे आया है। नवाब नर्मदा से लौट कर सत्तर सहस्र सवार और एक लाख पैदल सेना लेकर मुजफ्फरजंग को दड देने के लिए चला और फूलचेरी बदर तक, जो औरंगाबाद से पाँच सौ कोस जरीबी है, फुर्ती से पहुँचा। २६ रबीउल् आखिर सन् ११६३ हि० को युद्ध हुआ और निजामुद्दौला की विजय हुई तथा मुजफ्फरजग जीवित कैद हो गया। निजामुद्दौला ने वर्षाऋतु अर्काट मे व्यतीत किया। कर्णाटक के अफगान तथा हिम्मत खाँ आदि ने, जो इस चढाई मे साथ थे, स्वामिभक्ति छोड़ कर जमीन और धन के लोभ मे धोखा देने पर कमर बाँधी और फूलचेरी के ईसाइओं के साथ ज्योतिष के अनुसार १५ मुहर्रम की और सुनी सुनाई बात से १६ की रात्रि को सन् ११६४ हि० मे रात्रि आक्रमण कर नवाब निजामुद्दौला को बाग मे मार डाला। इसके तावूत को कुछ लोगो ने शाह बुर्हानुद्दीन गरीब के रौजे मे नवाब आसफजाह के मकबरे के पास गाड़ दिया।

उसके मारे जाने के बाद मुजफ्फरजंग को, जो कैद मे साथ था, दक्षिण की गद्दी पर बैठाया और फुलचरी से हैदराबाद को चले। दैवयोग से नवाब निजामुद्दौला के बदले का सामान जुट गया और मुजफ्फरजंग तथा अफगानो मे झगडा हो गया। एक दिन जब लकरीतपल्ली मे पडाव पड़ा हुआ था तब यह छिपा वैमनस्य प्रगट हो गया। उक्त वर्ष के १७ रबीउल् अव्वल को दोनो पक्ष अपने अपने स्थानो से निकल कर युद्ध करने लगे और दोनो ओर के सर्दार मुजफ्फरजंग, हिम्मत खाँ आदि मारे गए। नवाब निजामुद्दौला के खून ने अपने घातको को धूलि मे मिला दिया। मुजफ्फरजंग का नाम वास्तव मे हिदायत मुहीउद्दीन खाँ था। इसका संबंध शाहजहाँ बादशाह के वजीर अब्दुल्ला खाँ तक पहुँचता था और यह नवाब आसफजाह का दौहित्र था। नवाब आसफजाह के समय बीजापुर का शासन इसे मिला था और नवाब निजामुद्दौला के समय उसने इसका विरोध किया। नवाब हुसेन दोस्त खाँ उर्फ चंदा साहब ने, जो अर्काट के नवायत सर्दारो मे से था, पहुँच कर इसे अर्काट लेने की लालच दी। मुजफ्फरजंग अर्काट की ओर चला। फुलचरी के फ्रेंच ईसाइओं

की एक सेना नवाब चंदा साहब की मार्फत साथ लिया और नवाब आसफजाह के समय मे नियुक्त अर्काट के शासक अनवरुद्दीन खाँ गोपामूई पर गया। १६ शाबान सन् ११६२ हि० को युद्ध में वह मारा गया। शहामतजंग ने वीरता दिखलाकर अपना प्राण दे दिया।

नवाब निजामुद्दौला के मारे जाने पर अफगानो तथा ईसाइयो ने मुजफ्फरजंग को गद्दी पर बैठाया। मुजफ्फरजंग ने रामदास को अपना मंत्री बनाकर राजा रघुनाथदास की पदवी दी। यह रामदास ब्राह्मण सैनिक था और सिकाकोल का निवासी था। निजामुद्दौला की सरकार में मुत्सद्दियो के नीचे था और कुछ भी प्रतिष्ठा न रखता था। नवाब निजामुद्दौला के मारने में बहुत प्रयत्न कर मुजफ्फरजंग के प्रेम का जनेऊ कमर मे बाँधा, जिसमे मुजफ्फरजंग ने उसे इस पद पर पहुँचा दिया। इसके बाद अफगानो के साथ फुलचरी गया और वहाँ के कप्तान अर्थात् शासक मे भेंट कर तथा ईसाई सेना लेकर हैदराबाद चला। अर्काट पार कर यह अफगानो के देश मे आया। दैवयोग से मुजफ्फरजंग तथा अफगानो मे विरोध हो गया। जिस दिन लकरीतपल्ली मे पड़ाव पडा हुआ था उस दिन यह गुप्त विरोध प्रकट हो गया और युद्ध छिड़ गया। एक ओर मुजफ्फरजंग और ईसाई थे तथा दूसरी ओर अफगानगण युद्ध के लिए तैयार हो गए। हिम्मत खाँ तथा अन्य अफगान सर्दार मारे गए और मुजफ्फरजंग का काम भी आँख की पुतली मे तीर लगने से पूरा हो गया। यह घटना १७ रबीउल् अव्वल सन् ११६४ हि० को घटी थी।

मुजफ्फरजंग की प्रकृति विद्यार्थी सी थी और मंतिक खूब जानता था। कवियों के प्रति कुछ भी श्रद्धा नहीं थी। अपने दो महीने के राज्यकाल मे प्रायः आठ दिन इस लेखक को उससे मिलने का अवसर मिला। रात्रि मे वह स्वयं शास्त्री तर्कवितर्क मे लगा रहता और श्वास प्रश्वास को शुद्ध करने मे अच्छी योग्यता नहीं रखता था। जब यह आत्मप्रशंसा करने लगता तब उपस्थित लोग उसका खूब समर्थन करते। मुजफ्फरजंग के समय मे बालाजी पूना से सेना सहित औरंगाबाद आया और वहाँ के नाजिम रुक्नुद्दौला ने पंद्रह लाख रुपए देकर अपनी जान छुड़ाई। यह रुक्नुद्दौला नवाब आसफजाह के बड़े सर्दारो मे से था। ११ रजब सन् ११७० हि० को यह मर गया। मुजफ्फरजंग पहिला आदमी था, जिसने ईसाइओं को नौकर रखकर इस्लाम के पक्ष मे लाया था। इसके पहिले वे अपने बंदरो मे रहते थे और कभी अपनी सीमा से पैर बाहर नहीं निकालते थे। नवाब निजामुद्दौला के मारे जाने के बाद मुजफ्फरजंग ने फ्रेंच ईसाइओं को नौकर रख कर अपनी शक्ति बढ़ाई। मुजफ्फरजंग के मारे जाने पर वे ईसाई अमीरुल्मुमालिक के नौकर हो गए तथा सिकाकोल, राजबंदरी और अन्य मौजे जागीर मे ले लिए। दक्षिण मे इन सब ने ऐसा सम्मान पा लिया कि इन्हीं की आज्ञा चालू हो गई। मूसा बूसा (मोंश्योर बुसी)

इन ईसाइओ के सर्दार को उम्दतुलमुल्क की पदवी मिली। अंग्रेजो तथा फरासीसियों मे वरावर विरोध रहता था और दोनो जातियो के बंदर भी पास-पास थे। अंग्रेज ईसाइओ को भी वादशाही राज्य मे भूमि की लालच हुई, जैसे उल्लू उल्लू को देख कर द्वेष करता है। अंग्रेजो ने अर्काट के कुछ स्थान ले लिए और वंगाल मे भी अधिकृत हो गए। सूरत वंदर के दुर्ग पर भी इनका अधिकार हो गया। सन् ११७४ हि० में फुलचरी वंदर को घेर कर फरासीसियों से करने लगे और फुलचरी इमारतों को नष्ट कर दिया। सिकाकोल्, राजवंदरी तथा अन्य मौजे, जो फ्रेंच की जागीर में चले गए थे और विचार मे न आता कि किस तरह इनके हाथ से निकलेगा, आप से आप छुट गए।

नवाव आसफजाह के तृतीय पुत्र अमीरुल्मुमालिक का असली नाम सैयद मुहम्मद खाँ था। पहिले इसकी पदवी सलाव्तजंग हुई और अंत मे आलमगीर द्वितीय के समय अमीरुल्मुमालिक की पदवी मिली। मुजपफरजंग के मारे जाने के वाद राजा रघुनाथ दास तथा अन्य सर्दारों को इसने वहाल रखा। राजा रघुनाथ दास को वकील मुतलक वनाया। राजा ने फ्रेंच ईसाई सेना को, जिसे मुजपफरजग फुलचरी से नौकर रख कर लाया था, समझाकर अमीरुलमुमालिक का साथी वना लिया। अमीरुल्मुमालिक कूच करता हुआ औरंगावाद पहुँचा और वर्षाऋतु वहीं व्यतीत कर १५ जीहिज्जा सन् ११६४ हि० को वालाजी को दमन करने के लिए पचास सहस्र सवार के साथ वाहर निकला। १२ मुहर्रम सन् ११६५ हि० को युद्ध आरंभ हुआ। इस्लाम के वहादुरो ने लड़ते लडते शत्रु को पूना के पास पहुँचा दिया और शत्रु की वस्तियो को जो मार्ग मे पडी जलाकर भस्म कर दिया। इन युद्धों में फिरंगियो ने अपने तोपखाने से शत्रु को पराभूता कर दिया था। विशेष रूप से १४ मुहर्रम की रात्रि को, जव पूर्ण चन्द्रग्रहण था, ईसाइयो ने शत्रु पर रात्रि आक्रमण किया और वहुतो को मार डाला। जव वालाजी चंद्रग्रहण की पूजा कर रहा था तभी उसने नंगे शरीर नंगे घोड़े की पीठ पर वैठ भागने ही मे अपनी मुक्ति समझी। सामान तथा पूजा के सोने के वर्तन मुसलमानो ने लूट लिए। परतु आपस के विरोध से इस सव प्रयत्न का कुछ फल न निकला। अमीरुल्मुमालिक युद्ध के वाद हैदरावाद की ओर चला। थालकी के मैदान मे १३ जमादिउल् आखिर सन् ११६५ हि० को राजा रघुनाथदास को मार डाला। नवाव अमीरुल्मुमालिक हैदरावाद भागे और आज्ञानुसार रुक्नुद्दौला तथा समसामुद्दौला औरंगावाद से हैदरावाद पहुँचे। रुक्नुद्दौला वकील मुतलक वनाया गया। एकाएक समाचार आया कि नवाव आसफजाह का पुत्र अमीरुल्उमरा फीरोजजंग अहमदशाह के दरवार से दक्षिण की सूवेदारी का खिलअत पहिरकर आ रहा है। रुक्नुद्दौला वकील पद को छोड़कर कपरतला जानोजी निंवालकर के पास चला आया। इसका विचार था कि अमीरुल्उमरा होलकर मराठा के साथ दक्षिण आ रहा है और जानोजी निंवालकर तथा वालाजी की

मध्यस्थता मे, जिससे वह नवाब आसफजाह के समय से मेल रखता था, अमीरुल्उमरा के पास पहुँच कर मित्रता पैदा कर ले। जिस समय रुक्नुद्दौला हैदराबाद से चला उस समय समसामुद्दौला वहीं था और हैदराबाद की सूबेदारी अमीरुल्उमरा से उसे मिली। जब अमीरुल्उमरा औरंगाबाद पहुँचकर सत्रह रोज जीवित रह मर गया और उन्हीं सत्रह दिनो मे क्या खराबी नहीं हुई तब शत्रु ने, जो अमीरुल्उमरा की सरकार मे प्रभुत्व तथा सम्मान का अधिकारी था, खानदेश प्रांत, संगमनेर सरकार और जालना आदि पर अमीरुल्उमरा से सनद लिखाकर अधिकार कर लिया। इसके अनंतर रुक्नुद्दौला कपरतला से निकलकर अमीरुल्मुमालिक के पास पहुँचा और फिर वकील मुतलक बन गया तथा समसामुद्दौला को उक्त पद से हटाकर औरंगाबाद भेज दिया। जब वर्षाऋतु पास आई तब अमीरुल्मुमालिक रुक्नुद्दौला के साथ औरंगाबाद आया। उम्दतुल्मुल्क मूसा बूसा भी रुक्नुद्दौला के साथ पहुँचा। १४ सफर सन् ११६७ हि० को रुक्नुद्दौला के स्थान पर समसामुद्दौला शाहनवाज खाँ औरंगाबादी को वकील का पद दिया गया। समसामुद्दौला ने चार वर्ष तक उस बड़े पद का काम किया और इस काल मे अच्छे प्रयत्नों से शत्रु को ऐसा दबाए रहा कि वे जरा भी न उभड़े। इसका विवरण मआसिरुलउमरा की भूमिका मे लिखा गया है।

मीर निजामअली और मीर मुहम्मद शरीफ इस मुअत्तली के समय अमीरुल मुमालिक के साथ समय व्यतीत कर रहे थे। समसामुद्दौला ने सन् ११६९ हि० में प्रथम को बरार की सूबेदारी और द्वितीय को बीजापुर की सूबेदारी अमीरुल्मुमालिक से दिलवाकर हर एक को अपने अपने प्रात पर भेज दिया। मीर निजामअली अंत मे आसफजाह द्वितीय की पदवी से प्रसिद्ध हुआ। मुहम्मद शरीफ को पहले शुजा-उल्मुल्क और बाद को बुर्हानुल् मुल्क की पदवी मिली। ६ जीकदः सन् ११७० हि० को समसामुद्दौला के स्थान पर यह वकील मुतलक नियत हुआ, जो बीजापुर प्रांत से आकर अमीरुल्मुमालिक के दरबार मे उपस्थित था। इसी समय आसफजाह द्वितीय अच्छी सेना के साथ बरार से औरंगाबाद आया और बुर्हानुल्मुल्क को हटा कर राज्य का कुल प्रबंध अपने हाथ ले लिया।

बुर्हानुलमुल्क को वकील मुतलक का पद मिला था इसलिए वह युवराज कहलाता था। उसी वर्ष बालाजीराव युद्ध के लिए औरंगाबाद के पास पहुँचा। आसफजाह द्वितीय ने नवाब अमीरुल्मुमालिक को औरंगाबाद के शासन पर छोड़ा और स्वयं बुर्हानुलमुल्क के साथ युद्ध करता हुआ सिंधखेड गया, जो औरंगाबाद से तीस कोस के लगभग दूर है। अंत मे शत्रु को जागीर देना निश्चय कर संधि की। सत्ताईस लाख रुपए की आय का देश दक्षिण के प्रांतों मे से शत्रु को दे दिया और उन महालों से इस्लाम के शासन की शान उठ गई। नवाब आसफजाह द्वितीय संधि के बाद सिंधखेड से औरंगाबाद आया और ईसाइयों के सर्दार मूसा बूसा का कर्मचारी हैदरजंग हुआ। इसने जब देखा कि नवाब आसफजाह द्वितीय के कारण उसका

प्रभुत्व तथा अधिकार ठीक नहीं बैठता तब उसके पतन का उपाय सोचने लगा। अनेक प्रकार के बहानों से इब्राहीम खाँ कापर्दी तथा नवाब आसफजाह की कुल सेना को उससे अलग कर मूसा मूरा के नौकरों के अधीन कर दिया। सेना का आठ लाख रुपया अपने पास से स्वीकार कर लिया और नवाब को अकेला कर दिया। इसके अनंतर समसामुद्दौला को कैद कर दोनो ओर से अपने को सुचित कर लिया। उसने चाहा कि नवाब आसफजाह को हैदराबाद की सूबेदारी के बहाने से वहाँ भेज दे और गोलकुंडा दुर्ग मे सुरक्षित रखे तथा मैदान अपने लिए खाली कर ले। परंतु उसने न समझा कि भाग्य उपायो को घुमा देता है। ३ रमजान सन् ११७१ हि० को दोपहर के समय हैदरजंग नवाब आसफजाह के खेमे में आया। नवाब आसफजाह अपने संमतिदाताओ मे गुप्त रूप से हैदरजंग को मार डालने का निश्चय कर चुका था इससे वहाँ के उपस्थित लोगो ने उसे पकड़कर मार डाला। नवाब आसफजाह घोड़े पर सवार हो अकेला सेना से निकल गया और फिरंगी तोपखाना आश्चर्य मे पड़ रह गया। उसने ऐसा साहस किया कि रुस्तम और अफरासियाब के कारनामे रद्द हो गए। हैदरजंग के मारे जाने से मूसा मूसा तथा सेना के अन्य सर्दारो के होश उड गए। इसी उपद्रव मे नवाब समसामुद्दौला, यमीनुद्दौला और नवाब समसमुद्दौला का पुत्र अब्दुल्गनी खाँ भी मारे गए। इस घटना के बाद अमीरुल्मुमालिक, बुर्हानुल्मुल्क और मूसा मूसा हैदराबाद को चल दिए। नवाब आसफजाह द्वितीय हैदरजंग को मार कर बुर्हानपुर चला गया और इब्राहीम खाँ कापर्दी, जो बलात् हैदरजंग द्वारा नवाब आसफजाह से अलग किया गया था, इस समय नवाब के पास पहुँचा। नवाब आसफजाह उक्त वर्ष के १३ रमजान को बुर्हानपुर के पास ठहरा और नगर के धनिको, मुहम्मद अनवर खाँ बुर्हानपुरी आदि को धन वसूल करने को बुलाया। उक्त खाँ उगाहने वालो की कड़ाई तथा धन के शोक मे उक्त वर्ष के १७ जीकदः को मर गया और शाह बुर्हानुद्दीन गरीब की दरगाह मे गाड़ा गया। नवाब आसफजाह बुर्हानपुर से बरार गया और पातम कस्बे मे, जो बरार के बडे कस्बो मे है, छावनी डाली। इसके बाद रघूजी भोसला के पुत्र जानोजी से, जो बरार का मकासदार था, युद्ध करने लगा और फिर संधि की। संधि के अनंतर अमीरुलमुमालिक के यहाँ चला, जो हैदराबाद के पास था। मिलने के बाद तीनो भाइयो मे खूब मारकाट हुई। अंत मे यह तै हुआ कि नवाब अमीरुल्मुमालिक और नवाब आसफजाह द्वितीय एक साथ रहे तथा नवाब बुर्हानुल्मुल्क अपने प्रांत बीजापुर मे रहा करे। १८ रबीउल् अव्वल सन् ११७३ हि० को विचित्र उपद्रव हुआ कि निजामशाही राजधानी अहमदनगर दुर्ग को सदाशिव तथा बालाजी के दो चचेरे भाइयो ने दुर्गाध्यक्ष के मेल से छीन लिया और उक्त तारीख को उनके आदमियो ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया। अहमदनगर अहमद निजामशाह का बसाया हुआ है, जिसकी नींव सन् ९०० हि० मे पड़ी थी और अपने नाम पर जिसका नाम रखा था।

दो तीन वर्ष मे नगर अच्छी प्रकार वस गया। कुछ दिन बाद पत्थर और मिट्टी का दुर्ग भी दन गया। इसके भीतर अपने लिए आकर्षक इमारतें तथा सुंदर प्रासाद रहने को वनवाए। इसकी मृत्यु पर इसके पुत्रगण इस दुर्ग के स्वामी हुए। अकवर वादशाह के पुत्र शाहजादा दानियाल ने अपने सेनापति खाँनखानाँ के साथ सन् १००९ हि० के आरंभ मे दुर्ग को निजामशाहियो से ले लिया और इसके वाद हिंदुस्तान के तैमूरिया वादशाहो की ओर से दुर्गाध्यक्ष नियत होते रहे। प्रायः दो सौ सत्तर वर्ष वाद यह दुर्ग मुसलमानो के हाथ से निकलकर मूर्तिपूजको के अधिकार मे चला गया। इसी वर्ष यादवराव ने यह कुविचार किया कि दक्षिण से मुसलमानों का राज्य उठ जाय और मूर्तिपूजन की शोभा वढे। इसने इब्राहीम खाँ कापर्दी को नौकर रखा, जो मूर्ति काटने वाले से भी वुरा था। यह इब्राहीम खाँ एक अच्छी जाति का आदमी था, जिसने फिरंगियो के यहाँ शिक्षा पाकर उन्हीं के नियमों के साथ युद्ध करता था। युद्ध का सामान तथा तोपखाना इसके पास काफी था। पहिले यह आसफजाह द्वितीय के यहाँ नौकर हुआ और फिर खूव धन एकत्र कर अलग हो शत्रु से जा मिला। शत्रु पूना से निकलकर उक्त वर्ष के २२ जमादीउल्अव्वल को ऊदगिरि के पास युद्ध के लिए पहुँचा। उस समय शत्रु-सेना साठ सहस्र थी। अमीरुल्मुमालिक और आसफजाह द्वितीय ने चाहा कि ऊदगिरि से धारवर तक घेरा वना ले और कुछ सरकारी सेना को, जो धारवर के पास थी, साथ लेकर युद्ध की भूमि पूना को जायँ।

यह छिपा नही रहा कि पहिले शत्रु मे कज्जाकी चाल का युद्ध हुआ। इसका तात्पर्य है कि इसलाम की सेना के लिए अन्न, घास आदि रसद शत्रु ने वंद कर दिया और घात पाकर थोड़े सामान के साथ वे युद्ध करते रहे। मुसलमान सेना का तोपखाने ही पर द रमदार था कि दुर्ग की सेना के चारो ओर तोपो को खींच कर चलाते थे। इस वार इब्राहीम खाँ की मित्रता से शत्रु से कज्जाकी तथा फिरंगी अर्थात् गोलावारी दोनों प्रकार का युद्ध हुआ। इसलिए तोपें भी साथ ले गए। मुसलमानी सेना तोपखाने तथा समूह की अधिकता से धीरे-धीरे चलती थी इसलिए शत्रु के तोपखाने के गोले कम खाली जाते और मुसलमानी तोपखाना के गोले संयोग से इन तक पहुँचते। इब्राहीम खाँ ने स्वयं अपने को मुसलमान कहते हुए भी इस्लाम के पराजय पर कमर वाँधी। चलते या ठहरते हुए दिन रात तोपखाने को पास लाकर आग वरसाता और यात्रा करते, रुकते, सोते, जागते गोले छोड़ते हुए कभी छुट्टी न देता था। इसमे मुसलमानी सेना घटने लगी और वहुत से आदमी मारे गए। उक्त वर्ष के ६ जमादिउल् आखिर को मुसलमानो ने तोपखाने छोड़ कर इब्राहीम खाँ तथा दूसरे शत्रु पर धावा कर दिया और साहस के तलवार से वहुत से शत्रु को मारा तथा घायल किया। इब्राहीम खाँ की सेना से पंद्रह झंडे छीन लाए। इसी प्रकार लड़ते हुए धारवर से तीन कोस पर उडीसा दुर्ग पहुँचे। शत्रु ने देखा कि यदि मुसलमान सेना धारवर पहुँच कर वहाँ की सेना से मिल जायगी तो विजय

जाना कठिन हो जायगा। इस कारण १५ जमादिउल् आखिर को लगभग चालीस सहस्र घुड़सवार सेना के साथ मुसल्मानी सेना के चंदावल पर आक्रमण कर दिया। शत्रु-सेना वहुत थी और मुसल्मानी सेना दो तीन सहस्र से अधिक न थी इसलिए वहुत मारकाट के वाद चंदावल नष्ट हो गया और मुसलमानों की पूर्ण पराजय हो गई। दूसरे दिन लौटना निश्चय हुआ। निरुपाय हो संधि की, जिससे वहुत उपद्रव हुआ। शत्रु ने साठ लाख रुपए आय की जागीर मे औरंगावाद के कुल महाल नगर को छोड़ कर, वीदर प्रांत के हस्नूल, सितारा तथा नीमा के पर्ग ने और हवेली, वीजापुर, दौलतावाद दुर्ग, आसीरगढ तथा वीजापुर दुर्ग, जिसमे प्रत्येक मुसल्मान सुलतानों की राजधानी थी, ले लिया। खास सर्कारी तथा सर्दारो और मंसब्दारो की वहुत सी जागीरें शत्रु के वेतन में जाने से अच्छी मारकाट हुई। सिवा हैदरावाद प्रांत और वरार तथा वीजापुर प्रांतो के कुछ भाग और वीदर के दुर्गों के कुछ भी आसफ-जाह के वशजो के हाथ मे नहीं रह गया। ये भी स्यात् चौथ के देनदार थे। खराब खून देश के रगो मे दौडने लगा। यद्यपि इस्लाम की जड़ मे वड़ी सुस्ती आ गई पर वैसा नही हुआ कि यादव की इच्छानुसार इस्लाम का राज्य एकदम दक्षिण से मिट जाय। इस सुस्ती का आरंभ अहमद नगर दुर्ग के जाने से है। इसलिए किसी ने साठ लाख रुपए की भूमि के जाने की तारीख इस प्रकार कही है—

काफिर इस्लाम के शत्रु ने लिया।
वहुत से दृढ दुर्ग चतुराई से॥
वुद्धि ने वर्ष की तारीख लिखी।
अहमदनगर व मुल्क दकिन गया (रफ्त)॥

संधि होने पर शत्रु ने दौलतावाद पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी। वहाँ के दुर्गाध्यक्ष शुजाअतजंग ने, जो सैय्यद महमूद कन्नौजी का वंशज था, दुर्ग को सौंपना स्वीकार नही किया तव शत्रु ने अमीरुलमुमालिक का शुजाअतजंग के नाम का आज्ञा पत्र उसके आदमियो को वुला कर दिखलाया और कहा कि निश्चय के अनुसार, जो दोनो पक्ष के वीच तै हुआ है, दुर्ग दे देना चाहिए। निरुपाय हो १९ शावान सन् ११७३ हि० को शुजाअतजंग ने दुर्ग शत्रु के सैनिकों को सौंप दिया। एक ने इसकी तारीख पद्य मे कही है—

काफिरों ने अहमदनगर ले लिया।
दूसरा दौलतावाद दुर्ग भी चला गया॥
वुद्धि ने साल की तारीख संसाररूपी पट्टी पर।
इस प्रकार लिखा कि 'दौलतावाद (हम रफ्त) भी गया'॥

[यहाँ दौलतावाद कब और किस प्रकार मुसल्मानों के हाथ आया इसका विवरण लिखा जाता है।]

इतिहासज्ञों ने लिखा है कि दिल्ली के सुलतान जलालुद्दीन खिलजी के दामाद तथा भतीजा सुलतान अलाउद्दीन ने हिंदुस्तान आने के पहिले सुना था कि दक्षिण के राजा रामदेव के पास बहुत बड़ा पैतृक कोष है। सन् ७०४ हि० मे वह सात आठ सहस्र सवार लेकर हिंदुस्तान से देवगिरि अर्थात् दौलताबाद विजय करने के लिए दक्षिण को चला। बहुत मार्ग तै कर वह एलिचपुर पहुँचा और वहाँ से देवगिरि की ओर धावा किया। रामदेव ने, जो असावधानी की मदिरा से मस्त था, उस समय जो सेना तैयार थी उसे युद्ध करने के लिए भेजा। देवगिरि से दो कोस पर सुलतान की अग्गल सेना से मुठभेड़ हुई। दक्षिण के हिंदुओं ने कभी मुसल्मानो को नही देखा था और इनकी तीरंदाजी तथा बहादुरी से काम नहीं पड़ा था इसलिए इनके पहिले ही धावे को न सहकर देवगिरि नगर तक न ठहर सके। रामदेव यह हालत देख कर देवगिरि दुर्ग मे जा बैठा। सुलतान अलाउद्दीन धावा करता हुआ देवगिरि नगर मे पहुँच कर वहाँ के ब्राह्मणो तथा धनाढ्यो को कैद कर डेढ सौ मन सोना तथा कई मन मोती आदि ले लिए। दो सौ हाथी तथा कई सहस्र घोड़े रामदेव के तवेले से छीन लिए। इसके अनंतर रामदेव के कोष को लेने के लिए दूत भेज कर सधि की बात चलाई। अत मे एक सहस्र दक्खिनी मन सोना, सात मन मोती, एक मन दूसरे रत्न, एक सहस्र मन चाँदी, चार सहस्र सुनहली-रुपहली रेशमी चादर तथा अन्य वस्तुएँ लीं, जिनका हिसाब बुद्धि के परे है। सुलतान ने भेंट प्राप्त कर और प्रति वर्ष के लिए रामदेव पर कर नियत कर 'काफिरो' को कैद से छुट्टी दी तथा घेरे के २५ वें दिन लौटना आरंभ कर कुशलता तथा लूट के साथ हिंदुस्तान पहुँचा और सुलतान जलालुद्दीन को मारकर स्वयं गद्दी पर बैठा।

जब रामदेव ने घमड से तीन साल तक कर नही भेजा तब सुलतान ने सन् ७०६ हि० मे मलिक काफूर नायब को, जो उसके बड़े सर्दारो मे से था, एक लाख सवारो के साथ दक्षिण विजय करने भेजा और जब वह दौलताबाद के पास पहुँचा तब रामदेव अपने मे युद्ध की सामर्थ्य न देख कर अपने पुत्र सिकंदर देव को दुर्ग मे छोड़कर स्वयं सभी पुत्रो तथा भेंट का सामान आदि ले दुर्ग बाहर निकल कर मलिक नायब से मिलने आया। मलिक नायब इसे कैद कर सन् ७०७ हि० के आरंभ मे सुलतान अलाउद्दीन की सेवा मे लिवा लाया। सुलतान ने उस पर कृपा कर उसे श्वेत छत्र, राय रायान की पदवी तथा देवगिरि और बहुत-सा पुराना प्रांत उसे देकर सम्मानित किया। बंदर सूरत के पास नूसारी कस्बा पुरस्कार मे और एक लाख तन्का नगद देकर पुत्रो तथा साथियो के साथ उस ओर जाने की छुट्टी दे दी। रामदेव ने देवगिरि पहुँच कर सुलतान से प्राप्त प्रांतो पर अधिकार कर सारी अवस्था भर अधीनता के विरुद्ध नही किया। सन् ७०९ हि० मे सुलतान ने मलिक नायब काफूर को भारी सेना के साथ देवगिरि मार्ग से वारंगल भेजा। जब यह देवगिरि

पहुँचा तब रामदेव ने स्वागत कर इसकी अच्छी सेवा की और काम में बहुत सहायता पहुँचाई। मलिक नायब ने वारंगल विजय के अनंतर वहाँ के राजा लकददेव को शरण दी और भारी भेंट लेकर हिंदुस्तान लौटा। सन् ७१० हि० में मलिक नायब को फिर दक्षिण के एक बंदर द्वार समुद्र,जो उस समय जल के बढ़ने से खराब था,और कई अन्य बंदरों को विजय करने भारी सेना के साथ भेजा। जब यह देवगिरि पहुँचा तब इसे ज्ञात हुआ कि रामदेव मर गया है और उसका पुत्र स्थानापन्न हुआ है। जब पुत्र से पिता का सा व्यवहार नहीं पाया तब सावधानी की दृष्टि से एक सेना जालना में छोड़ कर वह आगे गया। तीन महीने बाद इच्छित बंदरों तक पहुँच कर उस प्रांत को नष्ट कर दिया और कर्णाटक नरेश बल्लालदेव को कैद कर लिया। नगद और कई सहस्र करन (एक तौल) रत्न, जिसका मूल्य लगाना दैवी विद्या पर निर्भर है, लेकर वह सकुशल जालना लौट आया और वहाँ बल्लालदेव तथा कर्णाटक के दूसरे सर्दारों को, जिन्हें कैद कर लाया था, एकदम छोड़ दिया। सुलतानपुर और नगरवार के मार्ग से सन् ७११ हि० में यह दिल्ली पहुँचा। तीन सौ बारह हाथी, छानवे मन सोना, रत्नों के संदूक तथा बीस सहस्र घोड़े सुलतान को भेंट दिए। कुछ दिन बाद सुलतान से प्रार्थना किया कि रामदेव मर गया है और उसके पुत्र पर मेरा विश्वास नहीं है। यदि आज्ञा हो तो दक्षिण जाकर कई वर्ष का कर युद्ध से वसूल करें और रामदेव के देश को साम्राज्य में मिला लें। सुलतान ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर दक्षिण जाने की आज्ञा दे दी।

मलिक नायब जब देवगिरि पहुँचा तब रामदेव के पुत्र को पकड़ कर मार डाला। दुर्ग को अधिकार में लाकर उस देश में मुहम्मदी झंडा गाड़ दिया तथा 'राम राम' के स्थान पर सलाम चला दिया। उसी समय से यह दुर्ग मुसल्मान शासकों के अधिकार में बराबर रहा। बादशाह शाहजहाँ साहिब किरान द्वितीय के एक सर्दार महाबत खाँ ने १९ जीहिज्जा सन् १०४४ हि० को यह दुर्ग निजाम शाहियों से ले लिया और तब से हिंदुस्तान के तैमूरी वंश के सुलतानों के दुर्गाध्यक्षगण एक के बाद दूसरा इस दुर्ग का रक्षक रहा। प्रायः चार सौ साठ वर्ष के अनंतर यह मुसलमानों के अधिकार से मूर्तिपूजकों के हाथ में चला गया।

राजाओं के समय देवगिरि में दुर्ग, चहार दीवारी, खाई आदि नहीं थी। मुसलमान सुलतानों ने भारी दुर्ग बनवाया और तुगलक शाह के पुत्र सुलतान मुहम्मद ने देवगिरि का नाम दौलताबाद रखा तथा दुर्ग के चारों ओर पत्थर की गहरी खाई बनवाई। उसी ने बड़ी इमारतें बनवाईं तथा उसे राजधानी बनाना चाहा और दिल्ली को उजाड़ कर वहाँ के निवासियों को यहाँ लाकर बसाना चाहा। अंत में उसका यह विचार पूरा न हो सका।

बीजापुर के दुर्गाध्यक्ष ने सामान की कमी से इसकी रक्षा नहीं की, जिससे शत्रु

ने अमीरुलमुमालिक की आज्ञा प्राप्त कर भेज दिया तथा दुर्ग शत्रु के आदमियों को सौंप दिया गया। बीजापुर का दुर्ग आदिलशाही राजवंश के यूसुफ आदिलशाह का निर्माण कराया हुआ है। पहिले यह मिट्टी का था, जिसे तोड़ कर यूसुफ आदिल शाह ने सन् ९०० हि० के अंत में दुर्ग को पत्थर तथा मसाले से बनवाया। उसकी मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारियों का अधिकार रहा। औरंगजेब ने सन् १०९७ हि० के जीकदा महीने के आरंभ में इस दुर्ग को सिकंदर से, जो आदिलशाही वंश का अंतिम सुलतान था, ले लिया। उस समय से तैमूरी वंश के सुलतानों के दुर्गाध्यक्ष इसकी रक्षा करते रहे। दो सौ सत्तर वर्ष से कुछ अधिक बीतने पर यह दुर्ग तसबीह फेरने वालों के हाथ से निकल कर जनेऊधारियों के हाथ में चला गया।

आसीरगढ़ के अध्यक्ष मीर नजफ अली खाँ ने इस्लाम धर्म के विचार से शत्रु के मनुष्यों को दुर्ग देना अस्वीकार कर दिया और उसके घेरा डालने पर एक वर्ष तक युद्ध कर उसकी रक्षा की। अंत में जब कुल सामान चुक गया तब १२ रबीउल् आखिर शुक्रवार सन् ११७४ हि० को संधि कर दुर्ग शत्रु को दे दिया। लेखक कहता है—किता—

काफिर ने इस्लाम के शाह का दुर्ग लिया।
इस रूप में भाग्य का आज्ञापत्र गया॥
बुद्धिमान ने इसकी तारीख का वर्ष।
लिखा 'अजब हुस्न आसीर रफ्त'॥

(विचित्र दुर्ग आसीर गया)

आसीरगढ़ आसा अहीर का निर्मित कराया है जिसके अधिक प्रयोग से बीच के अक्षर लुप्त हो गए। आसा एक मनुष्य का नाम था और अहीर उसकी पदवी। अहीर हिंदी भाषा में गाय चराने वाले को कहते हैं। खानदेश के मातबर जमींदारों में से आसा अहीर था। इसके पूर्वजगण प्रायः सात सौ वर्ष से उस ऊँचे पहाड़ में रहते थे और पशु तथा कुल माल की रक्षा के लिए पत्थर व मिट्टी का दुर्ग बना कर उसीमें कालयापन करते रहे। जब आसा अहीर का समय आया और धन तथा पशुओं में यह अपने पूर्वजों से बढ़ गया तब पुरानी दीवाल तोड़ कर पत्थर व मसाले का यह दुर्ग तैयार कराया और इससे यह इसीके नाम से प्रसिद्ध हुआ।

बुर्हानपुर के शासक नसीर खाँ फारुकी ने, जो सन् ८०१ हि० में गद्दी पर बैठा, दुर्ग को आसा अहीर से छीन लिया। विवरण यों है कि इसने आसा अहीर के पास संदेशा भेजा कि बगलाना तथा अंतूर के राजा ने भारी सेना एकत्र कर उससे शत्रुता की है जिससे वह चाहता है कि वह उसके परिवार को अपने दुर्ग में स्थान दे और वह सुचित्त होकर शत्रु को दमन कर सके। आसा ने स्वीकार कर लिया। नसीर खाँ ने पहिले दिन कुछ स्त्रियों को डोलियों में गढ़ में भेज दिया और उन्हें समझा दिया

कि यदि आसा की स्त्रियाँ मिलने आवें तो जैसा उचित हो वैसा करें। दूसरे दिन बहादुर सैनिकों को डोलियों में विठाकर भेजा और जब वे दुर्ग मे पहुँच गईं तब वे सैनिक एकाएक डोलियों से निकल पड़े और तलवार खीचकर आसा के घर की ओर चल दिए। दैवयोग से आसा और उसके पुत्रगण असावधान थे और मुबारकबादी के लिए आ रहे थे। इन लोगों ने सामना होते ही सबको मार डाला। बचे हुए रक्षा माँगकर बाहर निकल गए। नसीर खाँ ने यह समाचार पाकर जहाँ वह था वहाँ से शीघ्रता से चलकर अपने को आसीर में पहुँचाया। नए सिरे से उसकी मरम्मत कराकर टूटे फूटे स्थानों को ठीक किया। उस समय से यह दुर्ग नसीर खाँ के वंशजो के पास तब तक रहा जब सन् १००९ हि० में अकबर ने इस दुर्ग को राजाअली खाँ के पुत्र बहादुर से छीन लिया। उस समय से तैमूरी सुलतानों के दुर्गाध्यक्षगण इसकी रक्षा का प्रबंध करते रहे। छ सौ साठ से अधिक वर्षों के बाद यह दुर्ग मुसलमानो के अधिकार से निकल गया और काफिरो क हाथ चला गया।

साठ लाख रुपयो का देश तथा तीनो दुर्ग लेकर यादव घमंड से भर गया और लड़ाकू सेना तथा फिरंगी तोपखाना लेकर हिंदुस्तान चला कि प्रयत्न कर दत्ता को परास्त करे पर वह यह नही समझा कि उपाय पर भाग्य हँसता है, मृत्यु ने मार्ग प्रदर्शन कर इसे हिंदुस्तान पहुँचा दिया। यद्यपि नाम को सेना की सर्दारी विश्वासराव को मिली थी और प्रबंधकर्ता यादव बनाया गया था पर वास्तव मे यही हर्ताकर्ता था। हिंदुस्तान पहुँचने पर शाह दुर्रानी के युद्ध मे विश्वासराव, यादव तथा दूसरे सर्दारगण मारे गए और यह सेना, तोपखाना तथा अचिंतनीय सामान दुर्रानियों को लूट मे मिला। शाह दुर्रानी के हाल मे इसका विस्तृत विवरण आवेगा। यह घटना ६ जमादिउल् आखिर सन् ११७४ हि० को हुई। बालाजीराव दक्षिण मे उक्त वर्ष के १९ जीकदः को पुत्र तथा भाई से जा मिला और राज्य उसके पुत्र माधोराव को, जो अल्पवयस्क था, तथा उसके सौतेले भाई रघुनाथराव को मिला। सन् ११७५ हि० मे आसफजाह द्वितीय सेना एकत्र कर अमीरुल्मुमालिक के साथ बीदर से, जहाँ छावनी थी, उक्त कारणो से औरंगाबाद की ओर चला। रघुनाथराव और माधोराव भी भारी सेना तथा तोपखाने के साथ पूना से चलकर शाहगढ के मैदान में मुसलमानो के सामने पहुँचे। औरंगाबाद तक युद्ध होता रहा। आसफजाह द्वितीय ने अपना अधिक सामान औरंगाबाद मे छोड़कर २३ रबीउल् आखिर सन् ११७५ हि० को वहाँ से पूना की ओर यात्रा आरंभ की और शत्रु को मारते हुए पूना से सात कोस पर पहुँचा दिया। मार्ग मे लौनगर को जलाकर तथा मूर्तियो को तोड़कर इमारतों को ढहा दिया। यह नगर दक्षिणी गंगा के किनारे पर है, इसमें भारी मंदिर है तथा शत्रु ने यहाँ बड़े-बड़े प्रासाद रहने को बनवाए थे। प्रायः पूना नगर की भी यही हालत होने को थी कि एकाएक नवाब आसफजाह के छठे पुत्र नासिरुल्मुल्क अपने भाई से मनोमालिन्य रखने के कारण तथा मुसलमानी सेना के एक बड़े सर्दार राजा रामचंद

दोनों शत्रु से मिल गए और उक्त वर्ष के २७ जमादिउल् अव्वल को मुसलमानी सेना से हटकर शत्रु सेना मे जा पहुँचे। जो कार्य नही करना चाहता था उसे कर डाला। इस घटना से शत्रु ने मुसलमानो का पल्ला हल्का हो जाना समझ कर दूसरे दिन चारों ओर से आक्रमण कर दिया और तोपें लगा कर आग की वर्षा करने लगे। मुसलमानो ने तोपों की मार से निकल कर छोटे शस्त्रों से युद्ध करना आरंभ किया और तेज तलवार से शत्रु के व्यूह को तोड़ कर बहुतो को मार डाला। शत्रु असमर्थ हो युद्धस्थल से भाग गया। जब देखा कि विजयी सेना इतनी दूर का यात्रा कर पूना से सात कोस पर आ पहुँची है तब माधोराव के आगे जाकर फरियाद किया और कहा कि मार्ग बहुत रोका गया पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ। कल पूना भी जलाया जायगा। पूना के निवासीगण ने भी रघुनाथराव के पास जाकर शोर मचाया कि हम लोगो के परिवार को मुसलमानो को देना चाहता है। निरुपाय हो रघुनाथराव तथा माधोराव ने दूत भेजकर संधि का प्रस्ताव किया और औरंगाबाद तथा बीदर प्रांतो की सत्ताईस लाख की भूमि लेकर आसफजाह द्वितीय ने उसे स्वीकार कर लिया। यह संधि ६ जमादिउल् आखिर सन् ११७५ हि० को हुई। विचित्र यह है कि इसी दिन एक वर्ष पहिले शाह दुर्रानी ने यादव पर विजय प्राप्त की थी। नवाव आसफजाह पूना से सात कोस दूरी से कूच कर राजा रामचंद्र के महालों की ओर चला और उसके किए हुए कुकर्म के बदले में उसके देश को नष्ट कर डाला। वर्षाकाल के आरंभ मे १४ जीहिज्जा सन् ११७५ हि० को छावनी डालने की इच्छा से बीदर के दुर्ग मे अमीरुल्मुमालिक के साथ पहुँचा। उसी दिन अमीरुल्मुमालिक को दुर्ग मे कैद कर दिया। इसने एक वर्ष तीन मास तथा छ दिन कैद मे विताया। इस पुस्तक के लिखे जाने के वाद ८ रबीउल अव्वल गुरुवार सन् ११७७ हि० को यह मर गया और शेख मुहम्मद मुलतानी के मकबरे के पास गाड़ा गया। इसकी मृत्यु की तारीख मीर औलाद मुहम्मद जका ने निकाला।
किता—

दक्षिण के स्वामी की ऊँची आतमा।
परिश्रम के फंदे से उड़ गई॥

जका ने उसकी मृत्यु की तारीख लिखी। 'अमीरुल्मुमालिक वजिन्नत शुदः' (अमीरुल्मुमालिक स्वर्ग गया)

आसफजाह द्वितीय ने दुर्ग बीदर मे ठहरने के वाद शाहआली गौहर के फर्मान को स्वागत कर संमान के हाथो लिया, जो इसके नाम अमीरुल्मुमालिक के स्थान पर दक्षिण की सूबेदारी की नियुक्ति पर था, और राजगद्दी को दृढता से सुशोभित किया। इसने संगमनेर निवासी ब्राह्मण राजा परमासूत को अपना पूर्ण प्रबंधक बनाकर कुल माली तथा देशीय कार्य उसे सौंप दिया। संधि के वाद उक्त वर्ष के ६ जमादिउल् आखिर को यह सुनने मे आया कि रघुनाथराव तथा माधोराव ने

पूना के पास छावनी डाली है और इस समय दोनो मे वैमनस्य हो गया है। माधोराव के साथी चाहते थे कि अवसर पाकर रघुनाथराव को कैद कर लें और रघुनाथराव यह सूचना पाकार ३ सफर सन् ११७६ हि० को थोड़े सवारो के साथ शीघ्र पूना से निकल कर नासिक की ओर चल दिया। नवाब आसफजाह द्वितीय ने अपने एक अच्छे सर्दार मुहम्मद मुराद खाँ बहादुर औरंगाबादी को शत्रु को दंड देने के लिए नियत किया। वह औरगाबाद मे रहता था और रघुनाथराव के बाहर निकलने का समाचार सुनकर १४ सफर को उसी वर्ष सेना सहित औरंगाबाद से शीघ्रता से चलते हुए उसने नासिक के पास रघुनाथराव को जा पकड़ा। रघुनाथराव बिना कुछ सामान के घबडाहट में चला आया था इसलिए मुहम्मद मुराद खाँ बहादुर का आना अपने लिए अनुकूल समझकर नम्रता से व्यवहार किया। शत्रु के सर्दारो ने मुहम्मद मुराद खाँ की मित्रता देखकर समझा कि नवाब आसफजाह रघुनाथराव के पक्ष मे हैं इसलिए उनमे से बहुतो ने उसका पक्ष ग्रहण कर लिया और माधोराव का साथ छोड़ दिया। इस कारण रघुनाथराव के पास अच्छी सेना एकत्र हो गई। २५ रबीउल् आखिर क औरंगाबाद से वह अहमदनगर गया। माधोराव भी सेना सहित पूना से निकला और अहमदनगर से बारह कोस पर वर्तमान वर्ष के २५ रबीउल् आखिर को माधोराव पराजित होकर मैदान से हट गया तथा दूसरे दिन जब प्राणरक्षा का वचन ले लिया तब अपने चाचा रघुनाथराव के पास पहुँचा। नवाब आसफजाह रघुनाथराव की सहायता को बीदर से निकलकर युद्धस्थल के पास पहुँचा था कि वहीं उसे सब समाचार मिला। जब आसफजाह बीडगाँव पहुँचा तब रघुनाथराव ने भी वही पहुँचकर उसी वर्ष के १ जमादीउल् अव्वल की भेंट की तथा भोज दिया। रघुनाथराव ने इसके उपलक्ष मे पचास लाख की भूमि और दौलताबाद दुर्ग नवाब आसफजाह को भेंट किया तथा सनदो को तैयार कर सरकारी वकीलो को दे दिया।

यह भारी काम मुहम्मद मुराद खाँ के प्रयत्नो से हुआ था इसलिए राजा परमासूत यह न देख सका कि दौलताबाद दुर्ग तथा देश मे उसका अधिकार तथा प्रभुत्व होवे और इसलिए उसने संधि तोड़ दी। उसने नवाब आसफजाह को इस पर बाध्य किया कि वह रघुनाथराव को मुअत्तल कर दे और बरार के मकासदार रघू भोसला के पुत्र जानोजी को इस लोभ से कि तुमको रघुनाथराव के स्थान पर नियत करते हैं बुलाकर नवाब आसफजाह के साथ कर दिया। नवाब आसफजाह का छठा पुत्र नासिरुल्मुल्क, जो शत्रु की ओर चला गया था, अपमान के कारण दुखी हो उक्त वर्ष के १४ शाबान को नवाब आसफजाह के पास चला आया। नवाब भारी सेना के साथ रघुनाथराव को दंड देने चला और वह अपने मे युद्ध का सामर्थ्य न देखकर भागा तथा देश को लूटने मे लगा, जो शत्रु की प्रकृत चाल है। वह तीस सहस्र सवार के साथ औरंगाबाद आकर नगर के पश्चिम ओर उतरा और नगरवासियों से बहुत

धन माँगा। औरंगाबाद के नाज़िम मोतमिनुल्मुल्क बहादुर ने सेना तथा युद्धीय सामान की कमी के कारण बड़ी चतुराई तथा सतर्कता से बुर्ज, दीवाल आदि को दृढ़ कर तथा मोर्चों का प्रबंध नगर कोतवाल हिम्मत खाँ बहादुर को, जो मुहम्मद मुराद खाँ बहादुर का सौतेला भाई था, तथा अन्य मुत्सद्दियों और नगर निवासियों को सौंपकर नवाब आसफजाह की सहायता की प्रतीक्षा करते हुए शत्रु से बातचीत करता रहा। रघुनाथराव ने इस अर्थ का पता पाकर नगर लेना निश्चय कर दुर्ग तोड़ने के लिए सीढ़ियाँ बनवाईं। उक्त वर्ष में २० शाबान को सबेरे पूर्व ओर के छोटे द्वार से उसके साथी लुटेरे चहारदीवारी के बाहर बस्ती में घुस आए और लूटमार करने लगे। रघुनाथराव स्वयं ससैन्य नगर के उत्तर ओर ठहरा रहा और उसके सैनिकगण ने दुर्ग के नीचे सीढ़ियाँ लगाईं। हाथियों को दीवाल के पास खड़ा कर कुछ लोग दीवाल पर चढ़ गए और फाटक के पल्लों को, जो भीतरी दुर्ग के बड़े बाग की दीवाल में था, तोड़कर भीतर घुस जाना चाहा। हिम्मत खाँ बहादुर, मिर्जा मुहम्मद बाकर खाँ तथा नगर के तमाशाई लोगों ने तीर, गोली, पत्थर आदि की वर्षा करने में इतना प्रयत्न किया कि बहुत से कुविचारी दीवाल से नीचे नर्क चले गए और दूसरी ओर भी बहुत से लुटेरे नगरनिवासियों द्वारा मारे तथा घायल किए गए। ठीक युद्ध में जब गोली व तीर की वर्षा हो रही थी तभी रघुनाथराव के हाथियों पर गोले पड़े और उससे वे मैदान से निकल भागे। रघुनाथराव हसरत से हाथ मलते हुए तथा उपद्रव की धूल मुख पर डालते हुए चढ़ाई से लौट गया। आसफजाह के ससैन्य पास पहुँचने का समाचार पाकर वह बगलाने की ओर चला गया। उक्त वर्ष के २६ शाबान को आसफजाह औरंगाबाद पहुँचा। शत्रु का विचार था कि बरार प्रांत में पहुँचकर लूटमार करे, इसलिए नवाब ने प्रथम रमजान को लंबी यात्रा कर बालापुर के लगभग पहुँच उसका मार्ग रोका। शत्रु उस ओर से लौटकर और औरंगाबाद के पास से होता हुआ हैदराबाद गया। नवाब भी गंगा नदी तक पीछा करता हुआ गया और वहाँ यह सम्मति निश्चित हुई कि पीछा करने से शत्रु के राज्य को लूटना अच्छा है इसलिए नायब ने पीछा छोड़ पूना का रास्ता लिया। आदननगर की घाटी पार कर सिपाहियों के झुंडों को हर ओर भेजा कि शत्रु के निवास स्थानों को लूटें। स्वयं पूना से दो कोस पर पहुँच कर पड़ाव डाला। यहाँ के निवासी पहिले ही भाग कर दुर्गों तथा पास के स्थानों को चले गए थे। मुसलमानों ने पूना की कुल इमारतों को जला कर खाककर दिया। सेनाओं ने पूना के चारों ओर तथा कोकण प्रांत में लूट-मार करने में कुछ उठा न रखा। ईश्वरेच्छा थी कि बालाजी और यादव के समय की दक्षिण की सीमाओं से लाहौर तक किसी का सामर्थ्य न था कि इनके मार्ग में बाधा डाल सके पर अब इनके सामान तथा संपत्ति लूटी जा रही थी और लाखों की बनी हुई इमारतें जला दी गईं। मीर औलाद मुहम्मद 'जका' ने कहा है—किता—

आसफजाह द्वितीय, झंडो के सुलेमान ने
बिरह्मन जाति की बस्ती कुल जला दी ।
जफा के प्रज्वलित हृदय से तारीख सुनो
'आतिशजदः पूना रा सिपाह इस्लाम'
(इस्लाम की सेना ने पूना को जला दिया, ११८१ हि०)

रघुनाथराव ने हैदराबाद पहुँच कर उक्त वर्ष के १ जीकदः को नगर पर आक्रमण कर उसे लेने के लिए बहुत प्रयत्न किया पर वहाँ के शासक शुजाउद्दौला वहादुरदिल खाँ औरगाबादी ने काफी सेना रख कर नगर का ठीफ प्रबंध कर लिया था इससे वहाँ के मनुष्यो ने दृढ़ता के साथ तोप, बंदूक व तीर से धावे को रद्द कर दिया । बहुत से गाजियो ने शत्रु की सेना को नर्क की अग्नि को भेट कर दिया । यहाँ से भी रघुनाथ राव असफल लौट गया ।

०

४०१. निजामुल्मुल्क निजामुद्दौला आसफजाह

यह निजामुल्मुल्क आसफजाह का चौथा पुत्र था । इसका वास्तविक नाम मीर निजामअली था । अपने पूज्य पिता की देखरेख मे शिक्षा प्राप्त कर खॉ तथा असद-जंग बहादुर की इसने पदवी पाई । इसके मुख से साहस प्रकट हो रहा है था इसलिए छोटी अवस्था ही मे शेख अली खाँ बहादुर की अभिभावकता मे इसे मराठो को दमन करने पर नियत किया । सलावतजंग के अधिकार-काल मे सन् ११६९ हि० मे यह बरार का सूबेदार नियत हुआ । इसके अनंतर औरंगाबाद मे अपने भाई सलावतजंग के पास पहुँच कर इसने युवराज का पद पाया । इसी समय राव बालाजी के अधिक कर माँगने का विचार जान कर तथा उन्हे दमन करना उचित समझ कर इसने भाई को उक्त नगर मे छोड़ा और स्वयं कुल सेना के साथ जाकर उसका सामना किया । अंत मे दोनों मे संधि हो गई ।

इसी बीच मूसा-मूसा (मौंश्योर बुसी), जो फरासीसी टोपवालो का सर्दार सलावतजंग के सेवको मे से था, हैदराबाद से आया । जब इसने उसके कर्मचारी हैदरजंग के विरोधी चाल को देखा तब उसके मस्तिष्करूपी प्याले को जीवन-मर्यादा से खाली कर बड़े साहस से बुर्हानपुर का मार्ग लिया । वहाँ सामान एकत्र कर साहस के साथ बरार गया और रघूजी भोसला के पुत्र जानोजी से, जो मराठो के चौथ

के बदले में उस प्रांत मे था, कई युद्ध कर प्रवंध ठीक किया। इसके बाद सलावतजंग से भेंट करने को, जो उस समय औरंगाबाद प्रांत में मछली बंदर के पास ठहरा हुआ था, उस ओर गया। इसका छोटा भाई वसालतजंग इसके आने का समाचार सुनकर बड़े भाई से अलग होकर कृष्णा नदी पार करते हुए अपने अधीनस्थ प्रांत को चला गया। यह पहुँचकर यौवराज्य के कार्यों को करने लगा। इसके अनंतर सन् ११७३ हि०, सन् १७५९ ई० मे जब बालाजीराव ने अहमदनगर दुर्ग पर अधिकार कर उस प्रात की अपनी माँग को उठा लिया तब इसने उससे युद्ध करना निश्चय किया। भाग्य से चंदावल सेना परास्त हो गई जिससे इसके सर्दारगण मारे गए तथा घायल हुए। अवसर समझ कर इसने साठ लाख रुपए के आय की भूमि मराठो को देकर संधि कर ली। सलावतजंग से विदा होकर यह कर उगाहने के लिए उक्त प्रात मे राजेंद्री की ओर गया। वहाँ से लौटने पर सलावतजंग की सरकार पर सेना का वेतन अधिक चढ़ जाने से आज्ञा मानना दोनों के बीच नहीं रह गया था इसलिए हैदराबाद प्रांत के कुछ सरकार सेना का वेतन चुकाने के योग्य लेकर तथा उक्त प्रांत के अंतर्गत एलकेंदल मे पहुँच कर इसने वर्षा वहीं व्यतीत की। दूसरे वर्ष बालाजी का भाई रघुनाथराव ससैन्य आकर कष्ट पर कष्ट देने लगा तब दृढता को हाथ से न जाने देकर युद्ध करता हुआ यह उक्त प्रांत के मेदक कस्बे तक आया और वहाँ संधि हो गई। इसके अनंतर बीदर जाकर मुकतदा खाँ से उस दुर्ग को ले लिया। वहाँ कुछ दिन ठहर कर यह हैदराबाद के पास पहुँचा। उस समय बसालतजंग बीजापुर प्रात के जमींदारो से, जो उसके अधीन था, धन वसूल करने के लिए सलावतजंग को कृष्णा नदी के उस पार लिवा गया था पर कोई लाभ न होने से उससे अलग हो गुलबर्गा दुर्ग की ओर चला। यह समाचार पाकर फुर्ती से यह उस दुर्ग मे पहुँचा और भाई को सान्त्वना दिला कर अपने साथ ले बरसात व्यतीत करने को बीदर आया। इसी वर्ष मे बालाजी की मृत्यु हो गई और उसके भाई रघुनाथराव तथा पुत्र माधोराव में वैमनस्य हो गया इसलिए मराठो को दमन करने का यह अवसर समझ कर सन् ११७५ हि० में युद्ध करता हुआ यह पूना से छः कोस पर पहुँचा, जो उनका निवासस्थान था। संधि हो जाने पर बीदर लौट आया। उसी वर्ष दक्षिण की सूबेदारी की सनद दरबार से इनके नाम आई, जिससे इसने अपने भाई को एकांत मे बैठाकर स्वयं उस प्रात का कुल कार्य अपने हाथ मे ले लिया।

इसके दूसरे वर्ष मराठो को दमन करने का निश्चित विचार कर इसने भीमरा नदी पार किया। रघुनाथराव सेना की कमी से सामना न कर सकने पर भागा और यह शीघ्रता से उसका पीछा करते हुए कि कभी पंद्रह कभी बीस कोस दूरी रह जाती थी, पायाँघाट बरार की सीमा तक और वहाँ से औरंगाबाद प्रांत के पत्तन कस्बा तक दौड़ता रहा। जब रघुनाथराव लूटता मारता हुआ हैदराबाद की

ओर चला तब इसने पूना पहुँचकर उस जाति से बदला लेने तथा लूटने में कोई प्रयत्न उठा नही रखा इसके बाद ओसा दुर्ग आकर तथा अपना बोझ हलकाकर औरंगाबाद की ओर लौटा। गंगा नदी (नर्मदा) बाढ पर थी इसलिए कुछ दिन उसे पार करने के लिए रुकना पड़ा। सेना दो भाग मे हो गई—एक उस ओर, जो इसके साथ औरगाबाद पहुँच गई और दूसरी इस ओर इसके दीवान राजा विट्ठलदास के साथ रह गई। मराठे घात मे लगे थे एकाएक इस पर आ पड़े। कुछ मारे गए, कुछ नष्ट हो गए। इसके अनंतर इसके तथा माधोराव के बीच संधि हो गई, जो अपने पितृत्व रघुनाथराव पर हावी हो गया था। सन् ११७८ हि०, सन् १७६४ ई० मे यह कमरनगर कर्नूल गया, जहाँ का ताल्लुकेदार स्वच्छंद हो रहा था, और उससे सधि कर खिराज लेता हुआ कुजी कोटा, तुरवती तथा कृष्णा नदी के उस ओर से यात्रा करता हुआ गुजरात प्रांत के अंतर्गत बजवारः के पास से उक्त नदी को पार किया। सन् ११८२ हि०, सन् १७६८ ई० मे श्रीरंगपत्तन जाकर वहाँ के ताल्लुकेदार हैदरअली खाँ से मिलकर, जिसकी जीवनी अलग दी गई है, कर्णाटक हैदराबाद के ईसाइयों पर सेना ले गया पर इच्छानुसार लाभ नही हुआ और तब संधि कर हैदराबाद पहुँचा।

इसके अनंतर सन् ११८७ हि० मे माधोराव की मृत्यु पर उसके भाई नारायण-राव को मारकर रघुनाथराव उपद्रव करने को इसके राज्य मे आया इसलिए यह जो सेना मौजूद थी उसी को लेकर बीदर पहुँचा। लगभग एक मास तक तोप बदूक की लड़ाई होती रही। अत मे संधि हो गई। इस समय रघुनाथराव उन्मत्त हो रहा था इसलिए सधि का विचार न कर लौटते समय उसने इसके अधीनस्थ महालो से मनमाना धन ले लिया। इसी समय बालाजीराव के पुराने सर्दारो ने, जो रघुनाथ के कड़े स्वभाव से बिगड़ गए थे और निर्दोष नारायणराव को मारने से शत्रु हो गए थे, इसके पास आकर सहायता माँगी। इसने भी सहायता पर कमर बाँधी और कल्याण दुर्ग के पास से मूच दुर्ग तक और वहाँ से बुर्हानपुर तक रघुनाथराव का पीछा करने से हाथ नही उठाया। वर्षाकाल व्यतीत करने के लिये यह औरंगाबाद चला आया। दूसरे वर्ष फिर उसी ओर चला यहाँ तक कि रघुनाथराव नर्बदा नदी के उस पार चला गया। इसके अनंतर बरार प्रात के कामो को ठीक करने के लिये, जहाँ रघूजी भोसला के पुत्रों साबाजी व माधोजी मे आपस मे झगडा था और वे वहाँ के नायब नाजिम इस्माइल खाँ बहादुर से विद्रोह रखते थे, रवाना होकर यह नागपुर तक पहुँचने के पहिले न रुका, जो रघूजी के आदमियो के रहने का स्थान था। यद्यपि साबाजी इसके पहुँचने के पहिले अपने भाई के हाथ मारा जा चुका था पर नागपुर से लौटते समय माधोजी ने भी संधि करना उचित समझकर शत्रुता से हाथ खींच लिया। इसी समय इसकी सरकार का दीवान रुक्नद्दौला, जो साधारण मनुष्य

था, इस्माइल खाँ के सिपाहियों द्वारा सन् ११८९ हि० में मारा गया और उक्त इस्माइल खाँ भी सेना के पास पहुँचकर सरकारी सेना से वीरता से लड़ता हुआ मारा गया।

इसके अनंतर निजामुद्दौला नये उत्साह से अपने राज्य के कार्य में लग-कर उसे पूरा करने लगा और वास्तव में ये कार्य इसने वहुत समझकर किए। अपनी प्रजाप्रियता तथा दया करने मे एक था। दक्षिण के छोटे वड़े सभी अपने भाग्य के अनुसार इससे पुरस्कृत हुए। यद्यपि यह मिलनसार तथा अधिक क्रोधी न था पर इसके दरवार मे रोव छाया रहता था। यद्यपि शान व शौकत सुल्तानो के ऐसी थी पर गरीवों पर कृपादृष्टि रखता था। सैनिक गुणों, तीर तथा गोली चलाने और घुड़सवारी का ज्ञाता था। सुन्नी मतानुसार ईश्वरी भय मानता और उसके कार्यो मे लगा रहता। ईश्वरी कृपा से इन गुणो के साथ साथ सौंदर्य भी मिला था और इसे आराम की लंवी अवस्था भी मिली थी। इसका वड़ा पुत्र मीर अहमद खाँ वहादुर, जिसकी पदवी अमीरुल्मुमाल्कि आलीजाह थी, बुद्धिमान था। दूसरा पुत्र मीर अकवर अली खाँ ऊर्फ मीर फौलाद खाँ था। यह अल्पवयस्क है पर होनहार है। और भी संतान हैं। वह इन सवको अपनी साया में रख कर योग्य वना रहा है।

०

४०२. नूर कुलीज

यह अल्तून कुलीज खाँ का पुत्र था, जो अकवरी कुलीज खाँ का एक संवंधी था। अकवर के राज्य मे पाँच सदी मंसव तक पहुँचकर २१वें वर्ष मे जव वादशाह अजमेर से राणा के राज्य मे गघूँदा पहुँच तव यह कुलीज खाँ के साथ ईडर भेजा गया। वहाँ के राजा के साथ युद्ध मे हाथ मे चोट लगने पर भी वरावर युद्धीय प्रयत्न करता रहा। २६वे वर्ष मे शाहजादा सुलतान मुराद के साथ मिर्जा मुहम्मद हकीम की चढ़ाई पर गया। ३१वे वर्ष मे गुजरात के अध्यक्ष कुलीज खाँ ने अमीन खाँ गोरी की सहायता को भेजा। ३२वे वर्ष खान खानाँ के साथ दरवार आया।

०

४०३. नूरुद्दीन कुली

यह जहाँगीर के समय मे आगरे का कोतवाल नियत हुआ था। १२वें वर्ष में एक हजारी ३००० सवार का मंसब इसने पाया था। महाबत खाँ के विद्रोह करने और भागने पर पीछा करनेवाली सेना मे नियत होने पर अजमेर पहुँच कर वहीं ठहरा। इसके अनंतर जहाँगीर की मृत्यु पर और शाहजहाँ के उक्त नगर मे पहुँचने पर यह १म वर्ष मे दरबार मे उपस्थित हुआ और इसका पुराना मंसब, जो दो हजारी ७०० सवार का था, बहाल हुआ यह खानजहाँ लोदी के साथ नियत हुआ, जो पहिली बार जुझारसिंह बुंदेला को दंड देने के लिए भेजा गया था। ३रे वर्ष जब बादशाह दक्षिण गए और तीन सेनाएँ तीन सर्दारो की अधीनता मे खानजहाँ लोदी को दंड देने और निजामुलमुल्क दक्खिनी के राज्य को लूटने के लिए, जिसने उसे शरण दिया था, भेजी गईं तब यह आजम खाँ के साथ नियत हुआ। ५वें वर्ष २१ शाबान सन् १०४१ हि० (सन् १६३१ ई०) को, दरबार से छुट्टी पाकर जब वह घर गया हुआ था, जसवंत राठौर के पुत्र कृष्णसिंह ने बदला लेने को, जिसके पिता को जहाँगीर के राज्यकाल मे नूरुद्दीन कुली के आदमियो ने मार डाला था, इसे गहरी चोट दे समाप्त कर चल दिया।

०

४०४. नौजर सफवी, मिर्जा

यह मिर्जा मुजफ्फर हुसैन कंधारी के द्वितीय पुत्र मिर्जा हैदर का पुत्र था। जब मिर्जा मुजफ्फर का विश्वास अकबरी दरबार मे ठीक न बैठा तब उसके पुत्रगण भी कुछ समय तक दूर रहे। जहाँगीर के राज्यकाल मे मिर्जा हैदर पाँच सदी १५० सवार के मंसब एक हजारी २०० सवार का हो गया। ४थे वर्ष मे इसकी मृत्यु हो गई। इसका पुत्र मिर्जा नौजर सौभाग्य से बादशाही कृपा पात्र होकर १८वे वर्ष में दो हजारी २००० सवार का मंसबदार हो गया। १९वें वर्ष मे पाँच सदी मंसब मे बढाया गया और कोशबेगी की सेवा मिली। इसी वर्ष पाँच सदी और बढ़ने से इसका मंसब तीन हजारी हो गया। इसके बाद कृपा के कारण २२वे वर्ष मे सौर तुला के समय इसका मंसब चार हजारी ३००० सवार का हो गया। कँधार की पहिली चढाई मे शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ बाएँ भाग की सेना का सर्दार नियत हुआ। मोर्चे बाँटने मे चिलरनिया पहाड़ के पीछे के मोर्चे की रक्षा इसे तथा इसके भाई मिर्जा सुलतान को मिली और इन दोनो ने अच्छा प्रयत्न भी किया। २३वें वर्ष में एतकाद खाँ के स्थान पर अवध के अंतर्गत बहराइच

की जागीर मिलने पर वहाँ का प्रबंध करने को भेजा गया। इसके बाद मांडू का फौजदार हुआ।

बीमारी के बहुत दिनों तक रहने तथा असाध्य हो जाने से यह काम करने के योग्य नहीं रह गया। यहाँ तक कि यह अपनी जागीर की भी रक्षा नहीं कर सकता था इसलिए २६वें वर्ष में इसे सेवाकार्य से छुट्टी मिली और तीन सहस्र रुपया वार्षिक वृत्ति नियत कर दी गई। यह भी आज्ञा हुई कि उसके पिता के चाचा रुस्तम कंधारी का पुत्र मिर्जा मुराद इल्तफात खाँ पटना मे एकांतवास कर रहा है इसलिए यह भी वहीं जाकर रहे। यह कुछ दिनो बाद पटने से आगरे आकर बड़े आराम से दिन रात एकांत मे व्यतीत करता रहा। औरंगजेब के ७वें वर्ष मे सन् १०७४ हि० (सन् १६६४ ई०) मे इसकी मृत्यु हो गई। मिर्जा व्यय करने मे तेज था, जो आता उड़ा देता पर बहुधा गरीबों को भी देता। यह शैर अपनी हालत पर सजल की तरह जोड़ा था—शैर

नौजर मिस्की अगर जर रक्खे।
बेनवाई जहाँ मे न बच जावे॥[1]

०

४०५. पायन्दः खाँ मोग़ल

यह हाजीमहम्मद खाँ कोका का भतीजा और कोका के भाई बाबा कशका का पुत्र था, जो बाबर का एक बड़ा सरदार था। हाजीमहम्मद बहुधा चढ़ाइयों मे हुमायूँ के साथ रहता था। बंगाल की चढ़ाई मे उस बादशाह के साथ यह भी था। उक्त प्रांत के विजय होने पर जब बादशाह जिन्नतावाद (गौड़) मे रहने लगे और शेर खाँ सूर ने बनारस पर अधिकार कर जौनपुर के आस-पास विद्रोह किया तब हाजी महम्मद खाँ बादशाह के यहाँ से भाग कर मिर्जा नूरुद्दीन महम्मद के पास पहुँचा, जो कन्नौज मे था। इसने मिर्जा हिंदाल को यह सुझाया कि वह अपने नाम खुतबा पढ़ावे। जब शेर खाँ सूर से दो युद्धो मे बादशाही सेना परास्त हो गई और हुमायूँ ठट्टा और भक्कर के पास से असफल होने पर कंधार के पास पहुँचा और वहाँ भी मिर्जा असकरी से वैमनस्य होने के कारण जब न ठहर सका तब एराक जाने का निश्चय कर उस ओर चला गया। इसके सीस्तान पहुँचने पर हाजीमहम्मद मिर्जा असकरी से अलग होकर हुमायूँ के पास पहुँचा। एराक की यात्रा और कंधार तथा काबुल की चढाइयो मे इसने बादशाह के साथ रह कर बहुत काम किया। अंत में

---

१. नौजर = नया धन। मिस्की = गरीब। बेनवाई = दरिद्रता।

जब इसकी बुरी इच्छा प्रगट हुई तब इसको इसके भाई शाह महम्मद के साथ, जो विद्रोह और दुष्टता का उस्ताद था, पकड़ कर मरवा डाला। कहते हैं कि हाजी-महम्मद साहस में एक था। शाह ने कई बार कहा था कि बादशाहों के सेवक ऐसे ही होने चाहिए। निशानेबाजी के दिन इसने निशाना मारा और बादशाह से पुरस्कार पाया।

अकबर के राज्य के ५वें वर्ष में पायंदः खाँ मुनइम खाँ खानखानाँ के साथ काबुल से आकर सेवा में उपस्थित हुआ। उसी वर्ष के अंत में अदहम खाँ के साथ मालवा विजय करने भेजा गया। १०वें वर्ष मुनइम खाँ खानखानाँ के साथ बंगाल विजय करने पर नियत हुआ। २२वें वर्ष राजा भगवंतदास के साथ राणा प्रताप को दंड देने पर नियत हुआ। अब्दुल् रहीम खानखानाँ और मुजफ्फर गुजराती के बीच जो युद्ध हुआ था उसमें हरावल का सरदार था। ३२वें वर्ष में घोड़ाघाट में जागीर पाकर उस ओर गया।

०

४०६. पीर मुहम्मद खाँ शरवानी, मुल्ला

यह अकबर के समय का पाँच हजारी मंसबदार था। यह बुद्धिमान तथा विद्वान था। आरंभ में कंधार में बैरम खाँ का नौकर हुआ और अकबर के राजगद्दी पर बैठने के बाद उक्त खाँ के द्वारा अमीर तथा सर्दार होकर उक्त खाँ की ओर से वकील नियत हुआ। हेमू पर विजय प्राप्त होने के अनंतर युद्ध में विशेष प्रयत्न करने के उपलक्ष में नसिरुल्मुल्क की पदवी पाई। क्रमशः स्वामित्व बढ़ा, जिससे सभी देशीय तथा कोष संबंधी कार्यों को यह स्वयं कर डालता मानो वही साम्राज्य का वकील हो। इसकी शानो शौकत यहाँ तक बढ़ी कि साम्राज्य के स्तंभ तथा चगत्ताई वंश के सर्दारगण इसके गृह पर जाकर बहुधा भेंट न होने पर लौट आते थे। यह सचाई तथा दुरुस्ती से किसी का हिसाब नहीं रखता था प्रत्युत इसकी कड़ाई तथा कठोरता से दूसरे ही हिसाब में रहते थे। जब कुछ लोग इतनी शान न सहन कर सके तब ईर्ष्यालु अदूरदर्शियों ने द्वेष से बैरम खाँ से अयोग्य बातें कह कर इसकी ओर से घृणा पैदा करा दी। ४ थे वर्ष दैवात् नासिरुल्मुल्क कुछ दिन बीमार पड़ गया और बैरम खाँ खानखानाँ उसे देखने गया। दरबान तुर्क दास ने पहिचान कर कहा कि ठहरो, देता हूँ। खानखानाँ आश्चर्यचकित हुए। मुल्ला पीर मुहम्मद इस बात को सुनकर घर से बाहर निकल आया और बहुत नम्रता तथा लज्जा से क्षमायाचना करते हुए कहा कि इस दास ने नवाब को नहीं पहचाना। खानखानाँ ने कहा कि तुम्हीं हमको कितना पहिचानते हो कि वह पहिचाने। इस पर भी बैराम खाँ भीतर गया पर

साथियों के प्रवंध की अधिकता से थोड़ी देर ठहर कर चला गया। खानखानाँ वहुत दिनो तक रुष्ट रहा। अवसर पाकर उन कहने वालो ने इसका मन और भी उसकी ओर से फेर दिया, जिससे इसने संदेश भेजा कि हमने तुमको साधारण से सर्दार वना दिया पर कम हौसला का होने से एक प्याले ही मे तू वेखवर हो गया। अव यही उचित है कि एकांतवास करो। मुल्ला स्वतंत्र प्रकृति का था इसलु प्रसन्नता के साथ अलग हो वैठा। शेख गदाई कंबू तथा अन्य बुरा चाहने वालो के प्रयत्न से कुछ दिन वाद वैराम खाँ ने मुल्ला को वयानः दुर्ग मे भेज कर कैद कर दिया और फिर हज करने की आज्ञा दे दी।

मुल्ला गुजरात की ओर रवानः हुआ पर मार्ग मे अदहम खाँ आदि सर्दारो का लेख मिला कि वह जहाँ हो वहीं ठहर जाय और गुप्त कार्य की प्रतीक्षा करे। मुल्ला रणथभौर के पास रुक गया। जव वैराम खाँ को इसकी सूचना मिली तो कुछ आद-मियो को भेजा कि उसको कैद कर लावें। मुल्ला मारकाट के वाद अपना सामान व वस्तु छोड़ कर तथा थोडा साथ ले निकल गया। वास्तव मे वैराम खाँ ने अदूर-दर्शियो तथ द्वेपियो के वहकावे मे पड़ कर ऐसे कार्यदक्ष पुरुप को अपने से दूर कर दिया और अपने हाथ से अपने पैरों पर कुल्हाडी मारी। इस घटना का विवरण अकवर को वहुत नापसंद हुआ। मुल्ला गुजरात नहीं पहुँचा था कि उसे वैराम खाँ के प्रभुत्व के नष्ट होने का समाचार मिला। वह फुर्ती से वादशाह की सेवा मे पहुँच खाँ की पदवी, झंडा व डंका पाकर संमानित हुआ। इसके अनतर अदहम खाँ के साथ मालवा विजय करने पर नियत हुआ। जव ६ठे वर्ष अदहम खाँ कोका दरवार वुला लिया गया तव मुल्ला को मालवा का शासन स्थायी रूप से मिला। वाजवहादुर की इससे निभ न सकी इसलिए ७वें वर्ष मे अवास की सीमा पर सेना एकत्र कर उसने विद्रोह कर दिया। पीर मुहम्मद ने सेना सुसज्जित कर उस पर चढाई कर दी और थोडे ही प्रयत्न पर उसे परास्त कर भगा दिया। इसके वाद वीजागढ़ दुर्ग लेने का साहस कर उसे वलपूर्वक एतमाद खाँ से, जो वाजवहादुर की ओर से उसका दुर्गा-ध्यक्ष था, छीन लिया और साम्राज्य मे मिला लिया। खानदेश के शासक मीरान मुहम्मद शाह फारूकी ने वाजवहादुर की सहायता देने की तैयारी की इसलिए पीर मुहम्मद खाँ एक सहस्र अनुभवी सैनिको को लेकर धावा करते हुए एक रात्रि में वुर्हानपुर से चालीस कोस पर पहुँचा क्योंकि वह दुर्ग आसीर मे था और उसे लूट लिया। इसके वाद कतलआम की आज्ञा दी, जिसमे वहुत से सैयदो तथा विद्वानो को अपने सामने गर्दन कटवा दी। वहुत-सा लूट लेकर जव लौटते समय इसने सुना कि वाजवहादुर मार्ग मे वहुत पास आ गया है तव इसने युद्ध की तैयारी की। लोगो ने युद्ध की संमति न देकर पहले हडिया चलना उचित वतलाया पर पीर मुहम्मद खाँ की वुद्धि तथा नीति साहस से दव गई थी इसलिए इसने कुछ न सुन कर युद्ध ही का निश्चय किया। साथियो ने मित्रता पूरी तौर न निवाही और थोड़े ही

प्रयत्न पर न टिक सके। कुछ हितैषी इसके घोड़े को पकड़ कर इसे बाहर निकाल लाए। जब नर्मदा के किनारे पहुँचे तब संध्या हो गई थी। लोगों ने कहा कि शत्रु दूर है इसलिए आज रात्रि यहीं व्यतीत करना चाहिए पर इसने कुछ न सुना और घोड़ा नदी में डाल दिया। दैवयोग से ऊँटों की पंक्ति बीच नदी में से जा रही थी, जिसमें इसके घोड़े को धक्का लगा और यह उससे अलग हो गया। पास वालों ने बुराई से इसे निकालने के लिए कुछ भी सहायता नहीं की, जिससे वह डूब गया। शेर—

जब दिन ने अंधकार की ओर मुख फेरा।
संसार देखनेवाली दोनों आँखें चकित हो गईं॥

बुर्हानपुर के निर्दोषों के रक्तपात ने अपना असर दिखलाया।

शेर—

हाथ आने पर भी नाहक खून मत कर।
कहीं उसका बदला न पैदा हो जाय॥

यह घटना सन् ९६९ हि० (सन् १५६२ ई०) में हुई थी। अकबर ने ऐसे योग्य, कार्यदक्ष तथा वीर और साहसी सेवक के चले जाने पर बहुत शोक किया। कहते हैं कि पीर मुहम्मद ने ऐश्वर्य तथा संमान इतना संग्रह कर लिया था कि प्रतिदिन एक सहस्र थाली भोजन की आती थी। घमंड और अहंकार के होते भी दयालु था। कई बार एक दिन में पाँच सौ घोड़े लोगों को दिए थे। परंतु जो कुछ हो वह क्रोध का रूप था। सैनिक घमंड को बड़प्पन के साथ मिलाकर बहुत ऐश्वर्य और संपत्ति संचित कर लिया था। इसके सिवा क्या कहा जा सकता है। जिस समय यह साम्राज्य का मदारुल्मुहाम था उस समय दरबार से खानजमाँ शैबानी के यहाँ धमकाने के लिए गया, जो ऊँटवान के पुत्र शाहिम को अपना माशूक मान कर 'मेरे बादशाह मेरे बादशाह' कहा करता था। आज्ञा थी कि उसे दरबार भेज दे या अपने यहाँ से दूर कर दे। खानजमाँ अपने विश्वासी नौकर बुर्जअली को बादशाही क्रोध को शांत करने और समझाने के लिए दरबार भेजा। वह पीर मुहम्मद खाँ के पड़ाव पर आकर कुछ ही संदेश कह पाया था कि मुल्ला ने क्रोध कर उसको लकड़ी में कसवा दिया और दुर्ग के बुर्ज से नीचे फेंकवा दिया तथा ठठाकर हँसते हुए कहा कि अब इस आदमी ने अपने नाम को प्रगट कर दिया।

०

४०७. पुरदिल खाँ

इसका नाम बारा या पीरा था और यह दिलावर खाँ दिरंज का पुत्र था, जो शाहजहाँ के समय के पुराने सरदारों में से था। शाहजादा शाहजहाँ के दुर्भाग्य तथा बुरे दिनों में अपनी स्वामिभक्ति के कारण बराबर अच्छी सेवा करते रहने से उक्त शाहजादे के हृदय में इसने स्थान कर लिया था और यह उस चुने हुए समूह में से था, जो सभी बादशाही सेवकों से पार्श्ववर्ती तथा विश्वसनीय होने में बढ़ कर थे। राज्य के आरंभ में चार हजारी २५०० सवार का मनसब पाकर मेवात का फौजदार नियत हुआ। इसके अनंतर इसे जौनपुर जागीर में मिला। ४थे वर्ष अपने पुत्र बीरा के साथ जौनपुर से आकर तथा बुर्हानपुर में बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर संमानित हुआ। उस समय शाही सेना निजामशाह को दमन करने और उसके राज्य पर अधिकार करने के लिए नियत हो चुकी थी, उसी में यह भी नियुक्त किया गया। इसके मनसब में सवारों की संख्या जाती मनसब के बराबर बढ़ा दी गई और उसके पुत्र का मनसब बढ़ा कर एक हजारी कर दिया गया तथा पुरदिल खाँ की इसे पदवी मिली। परंतु आकाश ने इतना समय नहीं दिया कि वह कुछ दिन तक ऐश्वर्य और सुख का उपभोग कर सके। उसी वर्ष दिलावर खाँ की मृत्यु हो गई।

पुरदिल खाँ बादशाह की कृपा और गुणग्राहकता से, जो वे अपने पुराने सेवकों पर सदा बनाए रहते थे, बराबर तरक्की पाते हुए १० वें वर्ष में दो हजारी २००० सवार का मनसबदार हो गया और राजा जगतसिंह के स्थान पाई बंगश का थानेदार नियत हुआ। १७ वें वर्ष अजीजुल्ला खाँ के स्थान पर दुर्ग बुस्त का अध्यक्ष नियत हुआ। २० वें वर्ष में एक हजार सवार की तरक्की मिली। जब ईरान के अब्बास द्वितीय ने कंधार विजय करना निश्चित किया और स्वयं साहस कर फराह से इस ओर आया तब मेहराब खाँ को बुस्त दुर्ग घेरने को भेजा। उस समय जब अलीमर्दान खाँ ने इस प्रांत को बादशाह को सौंपा था और मेहराब खाँ बुस्त का दुर्गाध्यक्ष था तब कुलीज खाँ ने उस दुर्ग को इससे छीन कर तथा क्षमा कर ईरान भेज दिया था। मेहराब खाँ ने बुस्त के नए दुर्ग को, जिसे शाहजहाँ ने पुराने दुर्ग के पास बनवाया था, उसकी दृढ़ता के कारण तोड़ना कठिन समझ कर और पुराने दुर्ग पर अधिकार करना सुगम समझ कर इसे ही मोर्चे बाँध कर घेर लिया। पुरदिल खाँ स्थान-स्थान पर अपने संबंधियों को मोर्चों के सामने रक्षा के लिए नियत कर अपने स्थान से निरीक्षण करता। तोप और बंदूक की आग से बहुत से शत्रु मारे गए। घेरे के आरंभ से ५४ दिनों तक मार काट जारी रही और दोनों ओर से कुछ आदमी मारे गए और कुछ घायल हुए। पुरदिल खाँ के अधीनस्थ छ सौ सवारों में से तीन सौ आदमी और कजिलबाशों में से बहुत से मारे गए। अंत में १४वीं मोहर्रम

सन् १०५९ हि० को पुरदिल खाँ जीवन की रक्षा का वचन लेकर अधीनता स्वीकार करने के लिए मेहराव खाँ के पास गया। उस अन्यायी ने अपना वचन तोड़ना ठीक समझ कर तीन सौ आदमियो मे से, जो इसके साथ रह गए थे, कुछ को, जो शस्त्र सौंपने के समय उन्हे हाथो मे लेकर अड गए थे, मरवा डाला और इसको वचे हुए आदमियो तथा परिवार के साथ कैद कर शाह के पास कंधार लिया गया। शाह इसको अपने साथ ईरान ले गया। यद्यपि पुरदिल खाँ का ईरान जाने तथा वाद का कि वह कहाँ गया, कुछ वृतात ज्ञात नही है पर जीवन भर वह लज्जा, सबंधियो के मुँह छिपाने और परिचित तथा अपरिचित के तानो से दूर रहा। यदि वह हिंदुस्तान में आता तो कंधार के दुर्गाध्यक्ष दौलत खाँ तथा उस ओर के दूसरे सरदारो के समान दंडित होकर विश्वास तथा सेवा से दूर किया जाता।

•

४०८. पेशरौ खाँ

इसका नाम मेहतर सआदत था और यह हुमायूँ का एक दास था, जिसे ईरान के शाह तहमास्प ने दिया था। इसका तबरेज मे पालन हुआ था। यह हुमायूँ की सेवा मे बराबर रहा और उसकी मृत्यु पर यह अकबर की सेवा मे काम करता रहा। इस वादशाह के राज्य १९वे वर्ष मे यह बंगाल प्रात के सरदारो से कुछ आज्ञा कहने के लिए भेजा गया। इस कार्य मे शीघ्रता आवश्यक थी, इसलिए यह नाव पर सवार होकर गगा जी से रवाना हुआ। बिहार प्रात के एक प्रसिद्ध जमीदार गजपति के राज्य की राज्य सीमा पर पहुचते ही यह उसके आदमियो द्वारा पकडा गया। जब गजपति के दृढतम दुर्ग जगदीशपुर पर अधिकार हो गया और वह परास्त हो गया तब भाग्य की विचित्रता ने पेशरौ खाँ की इस दशा से छुट्टी दिलाई। कहते हैं कि उस विद्रोही के यहाँ वहुत से मनुष्य कैद थे, जिनमे से बहुतो को उसने मरवा डाला। इसी विचार मे पेशरौ खाँ को भी उसने किसी को सौप दिया था पर वह इसे मारने का साहस न कर सका और तब उसने दूसरे को सौप दिया। उसने भी अपनी तलवार निकालने का बहुत जोर किया पर वह मियान से वाहर न निकली। निरुपाय होकर गजपति के सकेत पर, जो उस समय भाग रहा था वह पेशरौ खाँ को अपने हाथी पर बैठा कर रवाना हो गया। दैवयोग से यह हाथी बदमाश और बिगड़ैल था इस कारण वह आदमी उस पर से उतर पडा। वह हाथी उसे एक लात मार कर और चिग्घाड कर भागा तथा इस भयानक आवाज से दूसरे सब हाथी भी इधर उधर भाग गए। जिस हाथी पर उक्त खाँ सवार था वह जंगल मे पहुँचा।

पेशरी खाँ ने चाहा कि रस्सी से बँधे हुए अपने दोनों हाथों को महावत के गले में डाल कर उसे मुरेड़ दे पर महावत बहुत प्रयत्न कर नीचे कूद पड़ा और भागने ही में अपनी भलाई समझी। सवेरा होते-होते हाथी मुल्तान बैठ गया तब उक्त खाँ नीचे कूद पड़ा और इस बला से छुट्टी पाकर इसने अपना रास्ता लिया इसी समय इसका परिचित एक सवार मिला जो इसे अपने घोड़े पर सवार करा कर चल दिया। २१वें वर्ष मे पेशरौ खाँ बादशाह की सेवा मे पहुँचा। कुछ दिनों के अनंतर दक्षिण निजामुल्मुल्क को समझाने के लिए यह नियत हुआ, जो मनुष्यो से मिलना छोड़ कर एकांत में जीवन व्यतीत कर रहा था। २४वें वर्ष में उसके सेवक आसफ खाँ को भेंट के साथ लिवा लाया। इसके अनंतर आसीरगढ़ के शासक राजे अली खाँ के पुत्र बहादुर खाँ को समझाने के लिए भेजा गया पर जब उसने नहीं माना और बादशाह ने उक्त दुर्ग को घेर लिया तथा मालीगढ़ दुर्ग को विजय करने मे इसने अच्छा प्रयत्न किया। ४०वें वर्ष तक इसका मंसब साढ़े तीन सदी तक पहुँचा था। अकबर की मृत्यु पर जहाँगीर बादशाह का कृपापात्र होने से इसका मनसब बढ़ कर दो हजारी हो गया और फर्राशखाने की सेवा इसे मिली। ३रे वर्ष सन् १०१६ हि० मे वह मर गया। बादशाह ने इसकी सेवा का विचार कर इसके लड़के को पेशखाने की सेवा दे दी।

०

४०९. शाह फखरुद्दीन

यह मूसवी तथा मशहदी था और मीर कासिम का लड़का था। सन् ९६१ हि० मे हुमायूँ के साथ हिंदुस्तान आकर बादशाह का कृपापात्र हुआ। इसके अनंतर जब अकबर बादशाह हुआ तब इसे ऊँची सरदारी मिली। ९वें वर्ष अब्दुल्ला खाँ उजबक का पीछा करनेवाली सेना के साथ नियत होकर इसने बहुत प्रयत्न किया। १६वें वर्ष खानकलाँ के अधीन गुजरात की ओर जाती हुई अगल सेना मे नियत हुआ। जब विजयी सेना एतमाद खाँ और मीर अबूतुराब के यहाँ भेजा, जिन्होंने बराबर प्रार्थना-पत्र भेज कर गुजरात पर चढाई करने के लिए कहलाया था। यह मार्ग में मीर से मिलकर एतमाद खाँ के पास गुजरात गया और उसे सात्वना देकर बादशाह की सेवा में लिवा लाया। इसके बाद खानआजम कोका के सहायकों मे गुजरात प्रांत मे नियत हुआ। इसके अनंतर वहाने से बादशाह की सेवा मे उपस्थित होकर उन सरदारो के साथ, जो गुजरात के धावे पर आगे भेजे गए थे, उस ओर रवाना हुआ। वहाँ से उज्जैन का शासन पाकर विश्वासपात्र हुआ और नकाबत खाँ की पदवी पाई। २४वें वर्ष तरसून महम्मद खाँ के स्थान पर पत्तनगुजरात का हाकिम नियत हुआ। यह दो हजारी सरदार था।

०

४१०. फजलुल्लाह खाँ बुखारी, मीर

यह बुखारा के सैयदों में से है। हिंदुस्तान आने पर सौभाग्य से योग्य मंसब पाकर जहाँगीर की कृपा से एक सर्दार हो गया। जहाँगीरी सर्दारो मे यह ऐश्वर्यवान तथा सेनावाला होकर बादशाह की कृपा तथा विश्वास का पात्र हो गया। इसे 'सफाअत' विद्या का शौक हो गया और कीमिया बनाने के फेर मे पड़ गया। हिंदुस्तान मे जिस स्थान मे ऐसे जानकार को सुना और ऐसे कार्य के खोजियो का पता लगा यह उनके पास पहुँचा और बहुत धन व्यय कर डाला। कहते हैं कि 'कमरी' का कार्य इसके हाथ आ गया था, जिससे आवश्यकतानुसार चाँदी बना लेता था और अपने घर ही मे सिक्के ढालकर सेना का वेतन देने तथा जागीर के व्यय मे काम लाता था। जिस प्रकार यह इस कार्य मे प्रयत्नशील था उससे ज्ञात होता था कि यह शीघ्र 'शम्सी' अमल भी जान जायगा पर मृत्यु ने समय न दिया और यह मर गया। इस दस्तरी के सिलसिले में इसे कई आश्चर्यजनक काम ज्ञात हो गए थे जैसे पारे को इस प्रकार कर लेता था कि उसका एक दाना चावल बराबर दसगुना भूख और वीर्य बढा देता था। इसका पुत्र मीर असदुल्ला प्रसिद्ध नाम मीर मीरान तरबियत खाँ बख्शी का दामाद था। जिस समय शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर पहिली बार दक्षिण के प्रांतो का शासक नियत हुआ। उस समय यह शाहजहाँ की आज्ञा से शाहजादे की सरकार का बख्शी नियुक्त किया गया। जिस समय शाहजादा बल्ख की चढाई पर भेजा गया तब यह उक्त कार्य से इस कारण अलग हो गया। इसके बाद खानदेश प्रांत के अंतर्गत रहनगांव व चोपरः की फौजदारी तथा जागीरदारी पर नियत होकर बहुत दिन वहाँ व्यतीत किया। इसका मंसब छ सदी ६०० सवार का था।

दूसरी बार दक्षिण की सूबेदारी के समय जब शाहजादा ने ३१वे वर्ष में हैदराबाद के सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह पर चढाई कर गोलकुंडा को, जो तैलंग देश की राजधानी थी, घेर लिया तब उक्त मीर भी दक्षिण के मोर्चे मे नियत हुआ। इसके अनंतर एक करोड़ रुपए पेशकश देकर तथा सुलतान की पुत्री का औरंगजेब के बड़े पुत्र सुलतान मुहम्मद से निकाह हो जाने पर संधि हो गई तब सभी मोर्चे वालो को खान खोदने तथा लड़ाई करने की मनाही हो गई। मीर असदुल्ला अपने मोर्चे से निश्चिंत हो बाहर निकल कर घूम रहा था कि एकाएक दुर्ग से एक गोली उसे लगी और वह खत्म हो गया। इस पर पहिले ही से शाही कृपा थी इसलिए मीर असदुल्ला शहीद पदवी हुई। औरंगजेब के बादशाह होने पर उसकी औलाद छोटी बड़ी पर योग्य बादशाही कृपा हुई। इसके पुत्रो से जलालुद्दीन खाँ को शाहजादा मुहम्मद आजमशाह की सेना की बख्शीगिरी और बीदर की दुर्गाध्यक्षता दरबार से मिली जिससे वह शीघ्र बराबर वालो से विश्वास मे आगे बढ़ गया। मृत्यु ने अवसर

न दिया और इसकी मृत्यु हो गई। दूसरा पुत्र मीर यहिया था, जिसका निकाह मीर वख्शी सर बुलंद खाँ की पुत्री से हुआ था। मीर यहिया का पुत्र मीर ईसा खाँ था, जो वहुत दिनो तक चादवर तथा संगमनेर का दुर्गाध्यक्ष रहा। इसकी मृत्यु पः इसका नाती वहाँ का दुर्गाध्यक्ष हुआ।

मीर असदुल्ला के अन्य पुत्रो मे, जो तरवियत खाँ की पुत्री से हुए थे, मीर नूरुल्ला सैयद नूर खाँ प्रसिद्ध नाम 'वाघमार' एक था, जो सदा थालनेर और खानदेश के दूसरे पर्गनो की फौजदारी तथा किलेदारियो पर नियत रहा। छोटा मंसव रखते हुए भी ऐश्वर्य, सामान, हाथी व सेना वहुत एकत्र कर रखा था। पर निडरता तथा असतर्कता के कारण छोटे मंसव ही पाकर दंडित रहा। तव भी ऐसा होते खानाजादी के विश्वास के कारण देश की जो हालत लिखता वह स्वीकार हो जाता। जिस समय शाहजादा मुहम्मद अकवर भागकर अवास प्रांत लाँघकर खानदेश आया उस समय खानजहाँ वहादुर उसे पकड़ने के लिए शीघ्रता से धावा करता हुआ पास पहुँच कर इसलिए ठहर गया कि वह वगलानः के पार्वत्यस्थान मे चला जाय। किसी का भी साहस ऐसा लिखने का नहीं होता था पर इसने यह वात वादशाह को लिखकर खानजहाँ को दंडित कराया तथा पदवी छिनवा दी। इसका सहोदर भाई मीर रहमतुल्ला था, जिसका खानदौराँ लंग की नतिनी से निकाह हुआ था। इसके पुत्र मीर नेअमतुल्ला का अमानत खाँ मीरक मुईनुद्दीन खाँ की पुत्री से निकाह पढाया गया था। दूसरे पुत्र तथा पौत्र वहुत थे। सरकार कालना का पर्गना वीड़ वहुत दिनों से इसके संतान के लिए जागीर मे नियत था और ये सव वहीं निवास करते थे। नवाव आसफजाह के अधिकार के आरंभ ही से वह महाल सरकार मे जव्त हो गया। वे सव भी दूसरे नगरो तथा कस्वो मे चले गए। यदि कोई वच गया हो तो वह साधारण जनता के समान वसर करता होगा।

c

४११. फजायल खाँ मीर हादी

यह शाहजादा मुहम्मद आजम शाह के दीवान वजीर खाँ मीर हाजी का वड़ा पुत्र था। यह अच्छी योग्यता रखता था तथा सच्चरित्र था और शेख अव्दुल्अजीज अकवरावादी से विद्या तथा गुण सीखे थे। शाहजादे के यहाँ इसका संमान वहुतो से वढकर था। २७वें वर्ष के आरंभ में जव शाहजादा मुहम्मद आजम पहिली वार बीजापुर की चढाई पर गया, तव वादशाह उक्त मीर से किसी कारणवश क्रुद्ध हो गए

और आतिश खाँ रोजविहानी को आज्ञा दी कि शाहजादा की सेना से जाकर इसको दरवार लिवा लावें। पहिले यह रूहुल्ला खाँ की रक्षा में और उसके अनंतर सलावत खाँ की रक्षा में रखा गया। २५ रमजान महीने को उक्त वर्ष में आज्ञा के अनुसार दौलतावाद दुर्ग में कैद किया गया। इसके अनंतर वादशाह की आज्ञा पाकर यह आगरे गया और वहाँ एकांत मे रहते हुए विद्यार्थियों को पढाता रहा। अंत में इसका भाग्य पलटा और इस पर कृपा हुई। यह दरवार में वुलाया गया और इसने जाकर चौखट चूमा। इसे मीर मुंशी का और पुस्तकालय के दारोगा का खिलअत मिला। ४४वें वर्ष खोदावन्दः खाँ के स्थान पर वयूताती का कार्य मुंशीगीरी के साथ इसे मिला। इसके अनंतर उक्त सेवाओ के साथ साथ सहायक खानसामाँ का कार्य भी इसे दिया गया। ६ जीकदः को ४७वें वर्ष सन् १११४ हि०, १३ मार्च सन् १७०३ ई० को यह मर गया।

यह अपनी वुद्धिमानी और अनुभव से अपने समय का एक ही था। अपने विपय में यह कहता था कि 'वंदा हाजिर काम वतलाओ।' वादशाह इसके विपय में कहते थे कि सहायक खानसामाँ का कार्य इस प्रकार इसने किया मानो घर रोशन हो गया। जव यह दारुल् इंशा का अध्यक्ष था तव इसने एक दिन वादशाह से कहा कि हिंदी भाषा तथा हिंदी लिपि मे 'हा' के लिए कोई अक्षर नहीं है और यद्यपि अलिफ उन अक्षरो मे मिला हुआ है, जो इस भापा में एकदम मतरूक है उसके वदले मे और ऐन तथा हमजा के ऐसा एक अक्षर है जिसे शब्द के आरंभ, मध्य तथा अंत मे लगाते हैं परतु वारह स्वरों में से जिनका कि प्रयोग होता है और अक्षरो को जोड़ने मे काम मे लाया जाता है, एक को काना कहते हैं जिसे शब्द के अंत मे लगाते हैं। यह सूरत और उच्चारण मे अलिफ के समान है। इसलाम के पहिले अनुवाद करनेवाले तथा फारसी लिखनेवाले भूल से इस अलिफ के स्थान पर हा लिखते थे जैसे वंगाला और मालवा के वदले वंगालः (मालवः) लिखते थे। वादशाह ने जो सर्वज्ञ तथा हिंदी के जानकार थे, इसे पसंद कर दफतर वालो को आज्ञा दी कि इन शब्दों को अलिफ् के साथ लिखा करें।

उक्त खाँ का दौहित्र मीर मुर्तजा खाँ गंभीर तथा सैनिक स्वभाव का युवक था और अपने वंश का यादगार था। कुछ दिनों तक हैदरावाद के नाजिम मुवारिज खाँ के साथ उक्त प्रांत के अंतर्गत मेदक का फौजदार था। इसके अनंतर नवाव आसफजाह की सेवा मे पहुँचा। एलकंदल सरकार का आमिल नियुक्त होकर शमशी के जमींदार पर, जो काला पहाड़ के नाम से प्रसिद्ध था, चढ़ाई की,। यह जल्दी कर स्वयं अकेले गढ़ी के पास पहुँच गया और एक गोला छाती में लगने से मर गया। कहते हैं कि यह सरकारी वहुत सा रुपया खा गया था, इसलिए इसने आत्महत्या कर ली।

४१२. फतह खाँ

यह प्रसिद्ध मलिक अंबर हब्शी का पुत्र था। अपने पिता के जीवन काल ही मे वीरता, साहस तथा उदारता मे विख्यात हो चुका था। उसकी मृत्यु पर निजामशाही वंश का प्रबंधक होकर इसने मुर्तजा निजामशाह द्वितीय के हाथ मे कुछ भी अधिकार नही रहने दिया। मुर्तजा निजामशाह ने निरुपाय होकर उपद्रवियो के कहने तथा बहकाने पर फतह खाँ को कैद कर जुनेर भेज दिया। कहते हैं कि एक चुडिहारिन की सहायता से एक रेती से अपने पैर की बेड़ी काट कर भाग गया और अपनी सेना मे पहुँचकर अहमद नगर की ओर चला गया। मुर्तजा शाह ने एक सेना इस पर भेजी। दैवयोग से युद्ध में घायल होकर यह फिर पकड़ा गया और दौलताबाद मे कैद हुआ। निजामशाह को कुछ दिन बाद मालूम हुआ कि तुर्की दास मुकर्रब खाँ, जो फतह खाँ के स्थान पर मीर शमशेर तथा सेनापति नियत हुआ था, और प्रधान मंत्री हमीद खाँ हब्शी दोनो अपना काम ठीक तौर पर नहीं कर रहे हैं। तब फतह खाँ को पहिले की तरह प्रधान मंत्री और सेनापति नियत किया। कहते हैं कि इस बार उसकी बहिन के कहने पर, जो निजामशाह की माँ थी, छुट्टी मिली थी और वह सैनिक ढग पर जीवन व्यतीत कर रहा था। हमीद खाँ की मृत्यु पर इसे राज्यकार्य का अधिकार मिला।

फतह खाँ ने पहिले की घटनाओ से उपदेश ग्रहण कर हवशियो को शिक्षितकर अपनी ओर मिला लिया। जब इसे मालूम हुआ कि आवश्यकता के कारण ही इसको छुट्टी मिली थी और जब वह कपटी निजामशाह स्वस्थचित्त हो जायगा तब फिर कैद कर देगा, इसलिये इसने पहिले ही सन् १०४१ हि०, सन् १६३२ ई० में यह प्रसिद्ध कर कि निजामशाह को उन्माद रोग हो गया है, उसे उसी प्रकार कैद कर दिया, जिस प्रकार उसके पिता ने कैद मे रक्खा था। पहिले दिन पचीस पुराने विश्वासी सरदारो को मरवा डाला और शाहजहाँ को लिख भेजा कि निजामशाह अदूरदर्शिता तथा दुष्टता से शाही सेवको का विरोध करता है इसलिये उसे कैद कर दिया है। जवाब मे यह शाही फर्मान गया कि यदि इस बात मे सचाई है तो संसार को उसके लाभहीन जीवन से साफ कर दो अर्थात् मार डालो। फतह खाँ ने उसको मारकर यह प्रसिद्ध कर दिया कि वह अपनी मृत्यु से मरा। उसके दस वर्षीय पुत्र हुसैन को उसके स्थान पर गद्दी पर बैठाया। जब दूसरी बार यह वृत्तांत बादशाह को लिख भेजा तब शाहजहाँ ने आज्ञा भेजी कि निजामशाह के कुल हाथी, अच्छे जवाहिरात और जडाऊ बर्तन भेज दो। फतह खाँ नम्रता तथा आज्ञाकारिता के होते भी उन सब वस्तुओं को भेजने मे विलंब करता रहा। इस पर ५वे वर्ष में बुरहानपुर से वजीर खाँ दौलताबाद विजय करने के लिए भेजा गया। फतह खाँ ने शीघ्रता से अपने बड़े पुत्र अबुल् रसूल को जवाहिरात और हाथियों के साथ, जिसकी कुल कीमत

आठ लाख रुपया थी, भेंट के रूप में भेज दिया। जाफर खाँ उसका स्वागत कर वादशाह की सेवा मे ले गया और ऐसा करने के कारण वादशाही क्रोध से इसकी रक्षा हो गई। फतह खाँ अकेले ही राज्य का सब प्रबंध कर रहा था इस कारण बीजापुर के नरेश आदिलशाह ने विचार किया कि इसको हटा कर स्वयं दौलतावाद पर अधिष्ठित हो। उसने फरहाद खाँ के अधीन भारी सेना इस पर भेजी। फतह खाँ ने दक्षिण के सूबेदार महावत खाँ को लिखा कि मेरे पिता की यह आज्ञा है कि बीजापुर राज्य के प्रभुत्व से तैमूरी वंश के वादशाहों की सेवा अधिक अच्छी है, इस लिए आदिलशाही सेना के आने के पहिले आप पहुँच जायँ। इसका वृत्तांत महावत खाँ की जीवनी में विस्तार से दिया गया है। उक्त खाँ के बुरहानपुर से आ पहुँचने पर फतह खाँ, जिसके वचन तथा कार्य में कुछ भी विश्वास न था, चापलूसी मे आकर दुर्ग मे घिर गया। जब रसद अपव्यय करने के कारण चुक गया तब इसे शीघ्र ही अधीनता स्वीकार कर दुर्ग कुछ शर्तो पर सौंप देना पड़ा। यह निजामुल्मुल्क के लड़के तथा उस वंश के सेवकों को, जिस वंश का उस देश मे एक सौ पैंतालीस वर्ष राज्य रहा था, लेकर खाँ के साथ रवाना हो गया। महावत खाँ ने विना कारण ही प्रतिज्ञा तोड़ कर फतह खाँ को जफर नगर मे कैद कर दिया और उसके सब सामान को जब्त कर लिया। आज्ञानुसार इसलाम खाँ गुजरात की सूबेदारी से बदल कर बुरहानपुर आया और उक्त खाँ तथा नष्ट हुए परिवार को वादशाह के पास लिवा गया। निजामुल्मुल्क ग्वालियर मे कैद किया गया और फतह खाँ पर कृपा की गई। अभी इसे अच्छे मनसब देने का विचार हो रहा था कि स्यात् एक घाव के कारण, जो इसके सिर पर लगा था और जिससे यह दृष्टि से गिर गया पर इसका सामान इसे लौटा दिया गया और जिससे इसका दिमाग खराब हो गया था, इसने अनुचित बातें कहीं इसे दो लाख रुपये की वार्षिक वृत्ति दी गई। यह लाहौर मे बड़े सुख और आराम से बहुत दिनों तक एकांतवास करता रहा और वहीं अपनी मृत्यु से मरा। कहते हैं कि यह अरब के लोगों से बहुत बातचीत करता था और उन्हें धन देता था। इसका भाई चंगेज इसके पहिले २२वे वर्ष मे सेवा मे पहुँच कर ढाई हजारी १००० सवार का मनसब और मंसूर खाँ की पदवी पाकर संमानित हो चुका था। उसके बहुत से संबंधियो ने योग्य मनसब पाया।

मलिक अंबर ने वादशाही नौकरी स्वीकार नहीं की थी, इसलिए उसका वृत्तात इस ग्रंथ मे नहीं दिया गया है पर वह अपने समय का एक प्रधान पुरुष था इसलिये उसका वृत्तात यहाँ दे दिया जाता है। वह बीजापुर का एक दास था और कई साहसी हब्शियो के साथ निजामशाह के दरबार मे सेवक होकर उसने साहस तथा योग्यता के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त की। जब मलका चाँद सुलतान सन् १००९ हि०, सन् १६०० ई० मे अदूरदर्शी दक्षिणियों के द्वेषरूपी तलवार से मार डाली गई और वादशाह अकबर का अहमदनगर दुर्ग पर बलात् अधिकार हो गया तथा बहादुर

निजामशाह पकड़ा जाकर ग्वालियर दुर्ग में कैद हो गया तब निजामशाही राज्य में पूरी निर्बलता आ गई, जो बुरहानपुरशाह के समय से ही निर्बल हो रहा था। कोई भी प्रभुत्वशाली सरदार उस राज्य में नहीं रह गया था। मलिक अंबर और राजू मियाँ दक्षिणी ने दृढता का झंडा खड़ा किया। तिलंग की सीमा से अहमदनगर से चार कोस और दौलताबाद से आठ कोस तक इधर पहिले के अधिकार में आया और दौलताबाद के उत्तर गुजरात की सीमा तक और दक्षिण में अहमदनगर से छः कोस इधर तक दूसरे ने अपने अधिकार में कर लिया। शाह अली के पुत्र मुर्तजा निजामशाह द्वितीय के लिए औसा दुर्ग और उसके व्यय के लिए कुछ ग्राम छोड़ दिया। इन दो सरदारों मे हर एक दूसरे की जमीन लेना चाहता था, इसलिए वे सदा एक दूसरे से लड़ते रहते थे। सन् १०१० हि०, सन् १६०१–२ ई० मे नानदेर के पास मलिक अंबर और खानखानाँ अब्दुल्रहीम के पुत्र मिर्जा एरिज के बीच घोर युद्ध हुआ, जिसमें मलिक अंबर घायल हो जाने पर मैदान से उठा लाया गया। खानखानाँ ने, जो उसके विचारों को जानता था, प्रसन्न होकर संधि कर ली। मलिक अंबर ने भी इसे गनीमत समझ कर खानखानाँ से भेंट की और एक दूसरे से प्रतिज्ञा कर संधि कर ली। मलिक अंबर प्रायः राजू मियाँ से पराजित हो जाता था, इसलिये अब उसने खानखानाँ की सहायता से उसको परास्त कर दिया और मुर्तजा निजामशाह को अपने हाथ में कर जूनेर में नजरबंद कर रक्खा। इसके अनंतर राजू पर फिर सेना भेज कर उसे कैद कर लिया। उत्तरी भारत में बहुत सी घटनायें, जैसे शाहजादा सुलतान सलीम का विद्रोह, अकबर की मृत्यु और सुलतान खुसरू का बलवा करना सब थोड़े ही समय के बीच बीच हुआ, इसलिये मलिक अंबर आराम के साथ धीरे-धीरे अपनी शक्ति बढाता गया और बहुत सेना एकत्र कर ली तथा बहुत से बादशाही महालो पर भी अधिकार कर लिया। खानखानाँ समय देखकर यह सब सहता गया। जब जहाँगीर की बादशाहत जम गई तब उसने इस पर बराबर सेनाएँ भेजी। मलिक अंबर कभी हारता कभी जीतता था पर उसने युद्ध करना कभी नहीं छोड़ा। इसके अनतर जब युवराज शाहजादा शाहजहाँ दो बार दक्षिण मे नियत हुआ और उस प्रात के सभी सुलतानों ने अधीनता स्वीकार कर ली तब मलिक अंबर ने भी विजय किए हुए महालो को बादशाही वकीलो को सौंप दिया और अधीनता मे अंत तक दृढ रहा। मलिक अंबर आदिलशाही सुलतानों से बराबर जमीन के लिये लड़ता रहा और बराबर विजय भी पाता रहा। साथ ही यह नाल बंदी में धन वसूल करता रहा। सन् १०३५ हि०, सन् १६२६ ई० मे ८० वर्ष की अवस्था मे यह मर गया। यह दौलताबाद के रौजा में शाह मुनाजिबुद्दीन जरबख्श और शाह राजूय कत्ताल की दरगाहों के बीच गाड़ा गया। रौजा ऊँचे गुबद और दीवार से घिरा है। इतने उलटफेर हो जाने पर भी अब तक उसके लिये भूमि लगी हुई है, जिससे रोशनी का प्रबंध हो जाता है। यह युद्धकौशल, सरदारी, राजनीति के ज्ञान

तथा योग्यता मे अपने समय का अद्वितीय था। इसने कज्जाकी की प्रथा को पूरी तरह समझ लिया था, जिसे दक्षिण मे वर्गी गिरी कहते हैं और उस देश के उपद्रवियों तथा दुष्टो को बराबर शांत रखता था। इसने प्रजा के आराम और देश के बसाये रखने मे बड़ा प्रयत्न किया था। इतने उपद्रव और लड़ाइयो के होते हुए जो मोगल और दक्षिण की सेनाओ मे निरतर होता रहता था, इसने दौलताबाद से पाँच कोस पर स्थित खिरकी ग्राम मे जो अब खुजस्ता बुनियाद औरंगाबाद के नाम से प्रसिद्ध है, तालाब, बाग, तथा बड़ी इमारतें बनवाईं। कहते हैं कि यह खैरात बाँटने में, अच्छे काम करने मे तथा न्याय करने और पीड़ितो को सहायता देने मे बड़ा दृढ़ था। यह कवियो का आश्रयदाता था। एक शायर ने इसकी प्रशसा मे कहा है। शैर—

दर खिदमते रसूले खोदा एक बिलाल था।
बाद एक हजार साल मलिक अंबर है आया॥

०

४१३. फतह जंग खाँ मियाना

इसका नाम हुसेन खाँ था, और यह बीजापुर के आदिलशाही राजवंश का प्रसिद्ध सरदार था। यद्यपि यह प्रसिद्ध बहलोल खाँ मियाना का संबंधी न था। पर यह अपने उच्चवंश तथा ऐश्वर्य के कारण बीजापुर के प्रसिद्ध पुरुषो मे से था। आदिलशाह के घरैलू सेवकगण अपने बादशाह को कुछ नही समझते थे और विद्रोह कर आपस मे लड़ने के लिये सदा तैयार रहते थे, इसलिये उस राज्य का कार्य बिगड़ता गया और शत्रुता बढ़ती गई। औरंगजेब कुतुबशाही और आदिलशाही राजवंशो को नष्ट करना बहुत पहिले ही निश्चय कर चुका था और जब बहुत दिनो के बाद उसे दक्षिण बादशाह हो जाने पर आना पड़ा तब अपने पुराने विचार को उसने फिर से दृढ़ किया। फतहजंग दूरदर्शिता से और अपने सौभाग्य के मार्ग प्रदर्शन से उचित समझ कर बादशाह की सेवा मे चला आया और २६वें वर्ष मे औरंगाबाद दुर्ग मे सेवा उपस्थित हुआ। बादशाही आज्ञा से आतिश खाँ रोज-बिहानी ने गुसलखाने के द्वार तक जाकर इसका स्वागत किया और अशरफ खाँ मीर आतिश चबूतरः तक जाकर इसे लिवा लाया। इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मनसब, झंडा, डंका, फतह जंग खाँ की पदवी और चालीस सहस्र रुपया पुरस्कार मे मिला। इसके भाई तथा दूसरे संबंधियो मे से हर एक ने खिलअत और योग्य मनसब पाया।

इसी समय एक विचित्र घटना हुई। शाहजादा मुहम्मद आजमशाह, जिसे बीजापुर की ओर जाने की आज्ञा मिल चुकी थी, नीरा नदी के किनारे से दरबार बुला लिया गया। जब यह नगर के पास पहुँचा तब यह एक दिन घोडे पर सवार होकर आ रहा था कि एकाएक फतहजंग खाँ का हाथी बिगड़ कर उसकी सेना की ओर दौड़ता हुआ शाहजादे के पास पहुँचा। इसने एक तीर चलाया पर वह और पास आया। सवारी का घोडा बिगड़ रहा था, इसलिये शाहजादा उस पर से उतर पड़ा और सामना कर हाथी के सूँड़ पर एक तलवार मारी। इसी समय साथ के रक्षको ने, जो अस्तव्यस्त हो गए थे, घातक चोटों से हाथी को मार डाला। जब उक्त शाहजादा बीजापुर की चढाई पर नियत हुआ तब फतह जंग खाँ भी उसके साथ नियत हुआ। मोरचो के पास युद्ध में वहाँ इसने बहुत प्रयत्न किए और अपने को घावो से सुशोभित किया। इसके अनंतर यह राहिरी का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ और बहुत दिनो तक वहीं रहा। वहाँ इसने कई बार मराठों से युद्ध किया पर एक बार यह कैद कर लिया गया। संभाजी ने संमान के साथ इससे बर्ताव किया और इसे राहिरी पहुँचवा दिया। वही यह मर गया। यह सीधा सादा आदमी था और अपने कार्यो को मन लगा कर करता था। इसके पुत्रो में से, जिनमे अधिकतर इसके जीवन काल ही में मर गए थे, कुदरतुल्ला तालीकोट का फौजदार था। ५०वें वर्ष में तालीकोट बीजापुर की सूबेदारी के साथ हुसैन कुलीज खाँ बहादुर को मिल गया और कुदरतुल्ला मेहकर का फौजदार नियत हुआ, जो बालाघाट बरार के अंतर्गत है। इसके समय मे मराठों ने धावा कर बस्ती को लूट लिया। इसके भाइयो मे से यासीन खाँ करर का थानेदार था और उस जिले में इसे फौजदारियाँ भी मिली थी। बहादुरशाह के समय में इसके स्थान पर पुरदिल खाँ अफगान भेजा गया जिससे तहसील करने में झगड़ा हो गया और युद्ध मे यासीन खा मारा गया।

०

५१५. फतेहजंग खाँ रुहेला

इसका पिता जिकरिया खाँ उसमान खाँ रुहेला का भाई था, जो बहुत दिनों तक दक्षिण के सहायको मे नियत था। छोटा मनसब होते भी इसका समान तथा विश्वास लोगों मे काफी था। शाहजहाँ के १३वे वर्ष में यह खानदेश का फौजदार नियत हुआ और वहाँ के कार्य मे बहुत से अच्छे नियमों को जारी कर तथा रुहेलों का अधिक पक्षपात कर इसने प्रसिद्धि अर्जित किया। ३०वें वर्ष मे इसकी मृत्यु हो गई। यह एक हजारी ९०० सवार का मनसबदार था। जिकरिया खाँ भी अपने

साहस और वीरता के लिए प्रसिद्ध था। फतेह खाँ अपने पिता तथा चचा से आगे वढ गया और अपने प्रयत्नो तथा उत्साह से इसने शाहजहाँ के समय अपने चचा का मनसब प्राप्त कर लिया। २६वे वर्ष यह खानदेश मे टोडापुर का फौजदार नियत हुआ, जो वालाघाट का मुख है, और इसके अनंतर उसी प्रांत के अंतर्गत चोपडा का फौजदार नियत हुआ। इसका मनसब एक हजारी ८०० सवार का हो गया। कहते हैं कि यह वहुत ही अच्छी चाल का था और छोटा मनसव होते भी यह अमीरो के समान रहता था और अपनी योग्यता से अधिक साज सामान तथा नियमो का विचार रखता था। यह भाग्यशाली था तथा उदार व दानी था। यद्यपि यह वुद्धिमानी और विद्वत्ता से खाली न था पर इसकी नम्रता और मिलन-सारी ऐसी थी कि यह छोटे आदमियो से भी काम पड़ जाने पर उसके घर जाकर उसकी इतनी चापलूसी करता कि लोग आश्चर्य करते। यह अपने जातिवालो के पालन करने मे अद्वितीय और सेनाध्यक्षता मे प्रसिद्ध था। अपने भाई तथा जवान भतीजों के पालन पोषण का भार इसने अपने कँधे पर ले लिया था, जो सभी वीरता तथा साहस मे एक से एक वढकर थे। इसने शाहजादा मुहम्मद औरंगजेव वहादुर की सेवा मे, जो दक्षिण का सूवेदार था, स्वामिभक्ति तथा विश्वास के काम किए। उस चढाई में जव दुर्ग वद्री कल्याण पर शाही अफसरो का अधिकार हो गया था तव शाहजादा ने इसको मीर मलिक हुसैन कोका के साथ नीलंगा पर भेजा, जिसको इन लोगो ने शीघ्र विजय कर लिया। जिस समय शाहजादा ने साम्राज्य के लिये उत्तरी भारत जाने का निश्चय किया उस समय यह अपने भाइयो तथा दामादो के साथ युद्ध करने के लिये कमर वाँधकर संग हो लिया। वुरहानपुर से आगे वढ़ने पर इसे खाँ की पदवी मिली। महाराज जसवंतसिंह से युद्ध होने के अनंतर इसे फतहजंग खाँ की पदवी, झंडा व डंका मिला और ढाई हजारी हजार सवार का मनसव पाकर यह संमानित हुआ। इसके वाद साम्राज्य के लिये अन्य लड़ने वालों के साथ जो युद्ध हुए उन सवमे अपने भाइयो के साथ इसने वरावर प्रयत्न किया। खजवा युद्ध के अनंतर मोअज्जम खाँ खानखानाँ के साथ शुजाअ का पीछा करने पर नियत हुआ और उस सेनापति के हरावल मे रहकर इसने वहुत अच्छा काम दिखलाया। राज्यगद्दी के वर्ष के अंत मे खानखानाँ अकवरनगर (राजमहल) से सूती की ओर, जो जहाँगीर नगर से चौदह कोस पर है गया और वहादुर सैनिको को प्रसिद्ध आदमियो के साथ नावो मे वैठाकर नदी के उस ओर भेजा, जहाँ शत्रु के मोरचे थे। कुछ ही लोग उतरे थे कि युद्ध होने लगा और शत्रु के वेडे के कुछ जंगी कोसे आक्रमण कर युद्ध करने लगे। वहुत से विना लड़े लौट आए। इसके भाई हयात खाँ उर्फ जवरदस्त खाँ ने, जो अपने कुछ मित्रो के साथ एक नाव मे था, वहुतों को मारा और घायल किया। स्वयं उसे गोली से एक और तीरो से दो घाव लगे और तव वह लड़ता हुआ शत्रु के नावो से निकल आया।

इसके भाई शहबाज तथा शरीफ और इसके भतीजे रुस्तम तथा रसूल बहुत से संबंधियो और अनुयायियो के साथ दूसरे नाव मे थे। ये सब नाव से उतरे नहीं थे कि शत्रु इनको रोकने को आ पहुँचे। हाथी की चोट से शहबाज मारा गया और रुस्तम तथा रसूल अन्य लोगो के साथ आक्रमण करते हुए मारे गए। बचे हुए घायल होकर कैद हो गए। इसके अनंतर जब खानखानाँ ने मुखलिस खाँ को अकबरनगर का फौजदार नियत किया तब इसको जबरदस्त खाँ के सहित उक्त खाँ के साथ छोड़ दिया। शुजाअ का कार्य निपट जाने पर यह बंगाल से दरबार आया। यह दक्षिण में रहना चाहता था इसलिये वहीं के सहायको मे नियत हुआ। बीजापुर की चढाई मे मिर्जाराजा जयसिंह के साथ सेना के बाएँ भाग का यह अध्यक्ष नियत हुआ। जब बीजापुर के पास पहुँचा तब शरजा खाँ महदवी और सीदी मसऊद बादशाही राज्य मे आकर उपद्रव करने लगे। दैवयोग से उसी समय फतहजंग का भाई सिकंदर उर्फ सलाबत खाँ राजा की सेना मे मिलने के लिये परिन्दा से चार कोस पर आ पहुँचा था। शरजा खाँ ने छ सहस्र सवारो के साथ उस पर आक्रमण किया। इसने अपने सनमान की रक्षा के लिये शत्रु के आगे से भागना उचित न समझा और ४० निजी सवारो के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। इसके हर एक भाई साहस, वीरता तथा बहादुरी के लिये प्रसिद्ध थे। परगना जामेजा, जो खानदेश मे था, इसकी जागीर थी। वहाँ के बहुत से गाँवो की मोकद्दमा इसने अपने हाथ मे ले लिया और मौजा पैपरा को अपना निवास बनाया। यह फरदापुर से आठ कोस पर बुरहानपुर के मार्ग पर है। इसने उसे बसाने का प्रयत्न किया और इसके संतान वहीं बस गए। औरंगजेब के राज्य के अंत मे इसका पुत्र ताज खाँ जीवित था और इसका प्रभुत्व भी था पर उसके अनंतर यह प्रभाव जाता रहा और प्रायः १० वर्ष हुए कि इनकी अयोग्यता से वह मौजा जागीर मे से निकाल लिया गया परंतु ये जमींदार की तरह अधिकृत हैं। उसका दामाद अलहदाद खाँ मंगलोर (शाह बदरुद्दीन) कसबा मे रहने लगा और अपनी हवेली के फाटक को बडी शान से बनवाया। उसके वंशवाले अभी तक वहीं हैं।

०

४०५. ख्वाजा फतहुल्ला

यह हाजी हबीबुल्ला काशी[1] का पुत्र था, जिसको उसकी योग्यता तथा बुद्धिमानी के कारण २०वें वर्ष जलूसी मे अकबर बादशाह ने कोह[2] बंदर भेजा था

१. काशान देश का निवासी।

२. कोह वर्तमान गोआ है। अकबरनामा भाग ३ पृ० १४६।

कि वहाँ से वह अच्छी वस्तुएँ लावे। २२वें वर्ष में वहाँ की अमूल्य वस्तुओं को लेकर यह दरबार मे उपस्थित हुआ। शेख अबुल् फजल ने अकबरनामा में लिखा है कि उस प्रांत की चीजो मे एक अर्गन बाजा था, जिसे बादशाही महफिल मे अच्छी तरह बजाते थे। उक्त हाजी २९वें वर्ष मे मर गया।[1] उक्त सज्जन फतहुल्ला अकबर बादशाह के खास सेवको मे से था और अच्छा संमान रखता था। जिस वर्ष बादशाह अजमेर दर्शन करने गए उस वर्ष इसे कुतुबुद्दीन अतगा को लिवाने भेजा और आज्ञा दी कि उसे मालवा के मार्ग से लिवा लावे, जिसमे वह योग्य आदमियो को भेज कर खानदेश के शासक को मुजफ्फरहुसैन मिर्जा को भेजने के लिये भय तथा आशा देकर बाध्य कर सके। यह वहाँ पहुँच कर तथा आदेशानुसार काम करते हुए अपनी चालाकी से साथ भेजे गए लोगों के लिए बुर्हानपुर पहुँचा। यहाँ से बिना बादशाही आज्ञा के हिजाज को चल दिया। इसके अनंतर अपनी इस चाल से दुःखी होकर बेगमो[2] के साथ, जो हज से लौटी हुई थी, आकर २७वें वर्ष मे उन्हीं की सिफारिश से क्षमा प्राप्त कर सेवा में भर्ती हो गया।

२९वें वर्ष मे यह बंगाल के सर्दारो पर नियत हुआ, जो बादशाही कामो मे स्वास्थ्य की कमी के कारण ढिलाई कर रहे थे। ३०वें वर्ष मे, जब खानआजम कोका दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुआ तब यह भी उसके साथ सेना का बख्शी होकर गया। ३७वे वर्ष मे शेख फरीद बख्शी के साथ मिर्जा युसुफ खाँ रिज्वी के चचेरे भाई यादगार को दमन करने पर नियत हुआ, जिसने कश्मीर में उपद्रव मचा रखा था। ४५वें वर्ष में जब बादशाही सेना बुर्हानपुर मे थी तब यह मुजफ्फर हुसेन मिर्जा के साथ ललंग दुर्ग लेने भेजा गया। जब उक्त मिर्जा उन्माद के कारण, जिसका हाल उसके वृत्तांत मे दिया गया है, भाग गया तब यह सेना के साथ उक्त दुर्ग के पास पहुँचा। दुर्गवालो ने भोजन के सामान की कमी से किले की कुंजी इसे सौंप दी। यह खानदेश के कुछ सैनिको को, जिन्होने अधीनता स्वीकार कर ली थी, वचन देकर बादशाह के पास लिवा लाया। इसी वर्ष के अंत में यह नासिक की ओर भेजा गया। जब दुर्ग कालना के पास पहुँचा तब वहाँ का ताल्लुकदार सआदत खाँ, जो बहुत दिनों से अधीनता मानने की इच्छा रखता था, इसके पास मिलने आया और दुर्ग सौंप दिया। ४८वें वर्ष शाहजादा सुलतान सलीम की प्रार्थना पर, जो इलाहाबाद मे था, इसे एक हजारी मनसब देकर शाहजादे के पास नियत कर दिया। जहाँगीर की राजगद्दी पर इसे बख्शी का पद मिल गया।

---

१. अकबरनामा पृ० ३२८। आईन अकबरी, ब्लॉकमैन जीवनी सं० ४९९ पर फतहुल्ला का वृत्तांत दिया गया है।

२. गुलबदन बेगम अन्य बेगमो के साथ हज्ज को गई थीं।

४१६. फतहउल्ला खाँ बहादुर आलमगीर शाही

इसका नाम महम्मद सादिक था और यह बदख्शां के अंतर्गत खोस्त का एक सैयद था। यह एक वृद्ध अनुभवी सैनिक था और तलवार चलानेवाले बहादुरों का सरदार था। यह आरंभ मे खाँ फीरोजजंग के साथ रहते हुए बादशाही मनसब पाकर संमानित हुआ। यह वीरता तथा द्वंद्व-युद्ध में बहुत प्रसिद्ध हुआ। २७वें वर्ष में जब फीरोजजग मराठों पर बराबर आक्रमण तथा घोर युद्ध करने के उपलक्ष मे शहाबुद्दीन के स्थान पर गाजीउद्दीन खाँ बहादुर के नाम से संबोधित हुआ तब फतहउल्ला खाँ को, जिसने उन युद्धों में प्रसिद्धि प्राप्त की थी, सादिक खाँ की पदवी मिली। इसने बहुत दिनों तक खाँ फीरोजजंग के साथ रहकर बहुत अच्छे काम किए और फतहउल्ला खाँ की पदवी से प्रसिद्ध हुआ। इसके अनंतर उक्त खाँ के साथ छोड़ कर बादशाही कृपा से सरदार हो गया और बराबर शत्रुओं के देश मे घूमने और दंड देने मे लगा रहा। ४३वें वर्ष मे इसलामपुरी मे चार वर्ष ठहरने के बाद जब बादशाह शंभाजी के दुर्गों को विजय करने निकला तब फतहउल्ला खाँ ने भी दुर्ग लेने के कामों, जैसे मोर्चे तथा खान खोदने मे बड़ी फुर्ती दिखलाई। सितारा दुर्ग के घेरे मे, जो पहाड़ के एक पुश्ते पर बना हुआ है और जिसकी चोटी सुरैया तक पहुँची है और जिसकी जड़ पृथ्वी के नीचे तक गई है, रुहुल्ला खाँ द्वितीय के साथ दुर्ग के फाटक के सामने मोर्चाल बनाने मे लगा। यह अपने उत्साह तथा वीरता से दुर्ग के फाटक के पास पहुँच कर चाहता था कि एक मुक्का मार कर उसे तोड़ डाले। इसके रोब तथा अन्य मोर्चाओं के पास पहुँचने से भय के कारण दुर्ग विजय हो गया। परली दुर्ग के विजय मे, जो चौडाई तथा ऊँचाई मे सतारा के बराबर था, यह भी साथ रहा। जब सितारा विजय हो गया तब फतहउल्ला परली पर चढाई करनेवाली सेना का हरावल नियत हुआ। औरगजेब स्वयं तीन दिन मे वह दूरी समाप्त कर दुर्ग के फाटक के सामने जा उतरा। फतहउल्ला ने उस दुर्ग की दृढ़ता को विचार मे न लाकर पहाड़ पर तोप ।ना लगाने और तोपें चढ़ाने में बहुत बड़ा परिश्रम किया, जिससे सालों का काम कुछ दिनों में पूरा हो गया। यहाँ तक कि इसने एक तोपखाना एक बहुत बड़े पत्थर के नीचे लगाया, जो नीचा होता हुआ दुर्ग के छोटे फाटक की ओर चला गया था। पर इस पत्थर पर चढना बहुत ही कठिन था। यदि इस चट्टान पर अधिकार हो जाय तो दुर्ग का लेना सुगम हो जाय। फतहउल्ला खाँ कुछ बहादुरों के साथ उस चट्टान पर वीरता तथा साहस से निकल आया और उस मैदान मे, जो दुर्ग के फाटक तक फैला था, शत्रुओं पर आक्रमण किया। शत्रु सामना करने का साहस न कर फाटक की ओर भागे और मोगलों ने पीछा किया। उक्त खाँ ने दुर्ग के भीतर घुसने का विचार नहीं किया था, प्रत्युत वह चाहता था कि

सैनिकों को चट्टान पर नियत कर तथा तोप लाकर दुर्ग की दीवार तोड़ डाले। शत्रुओं ने दरीचे को दृढ कर दीवाल पर से गोलियाँ और हुक्कों की वर्षा करना आरंभ किया। उन्होंने उस बारूद में आग लगा दी, जिसे ऐसे ही दिन के लिए दुर्ग के निकलने के मार्ग में फैला रखा था। फतहउल्ला खाँ का पौत्र फकीरुल्ला खाँ सडसठ आदमियों के साथ मारा गया। उस चट्टान पर कोई रक्षा का स्थान न था, इसलिये ये वहाँ ठहर न सके और नीचे उतर कर पुराने स्थान पर चले आये। परंतु इस युद्ध से शत्रु डर गए और उनका अहंकार मिट गया तथा उन्होंने संधि की प्रार्थना की। डेढ महीने के अनंतर ४४वें वर्ष में दुर्ग विजय हुआ। इस विजय की तारीख 'हजा नसरुल्ला है' (यह विजय अल्लाह की है) से निकलती है। यह दुर्ग इब्राहीम आदिलशाह के बनवाए हुए इमारतों में से था और इसकी नीव सन् १०३५ हि० (सन् १६२६ ई०) में पड़ी थी। आदिलशाह हर एक नई वस्तु को बनवा कर उसका नाम नवरस शब्द संयुक्त रखता था, इसलिए बादशाह ने इस दुर्ग का नाम नवरस तारा रखा। उक्त खाँ ने मनसब में तरक्की पाकर अपनी सेना की कमी पूरी करने के लिए औरंगाबाद जाने की छुट्टी पाई। परनाला के घेरे के समय दरबार आने पर इसे आज्ञा मिली कि एक ओर तरबियत खाँ मीर आतिश तोपखाना लगावे और दूसरी ओर फतहुल्ला खाँ शाहजादा बेदारबख्त की अध्यक्षता में तैयार करावे तथा इसके बाद मुनइम खाँ के साथ एक और मार्ग बनावे। इस आज्ञाकारी ने एक महीने में पथरीली जमीन को मिट्टी के समान काट कर एक गली दीवाल तक पहुँचा दी, जिससे गली बनानेवाले चकित हो गए। दुर्गवाले डर गए और संधि की प्रार्थना की। इसको बहादुर की पदवी मिली।

जब बादशाही सेना परनाला से खतावन की ओर चली, जहाँ खेती अच्छी होती है और अन्न काफी मिलता है, कि वहीं छावनी डाले तब इस बहादुर को दरदांगढ लेने के लिये आगे भेजा, जो उस मौजा से दो कोस पर था। उस गढ की सेना ने इसके भय से उसे खाली कर दिया और अपनी जान बचा लेने को गनीमत समझा। इस दुर्ग का नाम इसके नाम पर सादिकगढ़ रखा गया। खतावन से एक सेना बख्शाउलमुल्क बहरःमन्द खाँ के अधीन नन्दगिर, चन्दन और मंडन लेने के लिये भेजी गई। थोड़े ही समय में तीनों दुर्ग के सैनिक संधि कर या भागकर चले गए। पहिले का नाम गीरु, दूसरे का मिफ्ताह और तीसरे का मफतूह रखा गया। ४५वें वर्ष में शाही सेना सादिकगढ से खेलना दुर्ग की ओर रवाना हुई, जो कुल पहाड़ी था और घने जंगलों तथा काँटेदार झाड़ झंखाड़ से भरा हुआ था। कुछ दिनों में यह लोग उसके पास पहुँच कर ठहर गए। पथरीली जमीन और ढालू रास्ते तथा गड्ढों के कारण वह दुर्गम हो रहा था। अधिक कर चार कोस का मार्ग था, जिसमें चलने की कठिनाई से लोग डर गए थे पर फतहउल्ला खाँ के प्रबंध तथा प्रयत्न से तथा फावड़ेवाले और संगतराशों के परिश्रम से यह कठिनाई दूर हो गई। उक्त खाँ को एक

खास तूणीर पुरस्कार मे देकर वादशाह ने इस पर कृपा की और यह अमीरुल् उमरा जुम्लतुल्मुल्क असद खाँ की अध्यक्षता मे तथा हमीदुद्दीन खाँ, मुनइम खाँ और राजा जयसिंह के साथ खेलना दुर्ग के घेरे पर नियत हुआ। उस दिन इस साहसी खाँ ने किले के पुश्ते को शत्रुओ मे छीनकर उस पर तोपें लगा दी। इन तोपखानो को आगे वढाने और मार्ग को चौड़ा करने मे ये वरावर प्रयत्न करते रहे। फरहाद के समान परिश्रम करते हुए उस पहाड़ी पर पटे हुए मार्ग दुर्ग के मध्य तक पहुँचा दिए गए और चारों ओर कूचे दौड़ा दिए गए। दिन भर सोना वाँटा जा रहा था और यह मजदूरो के साथ स्वयं काम करता था। दुर्ग से वरावर सौ तथा दो सौ मन के पत्थर फेंके जा रहे थे। एकाएक एक पत्थर चौडी छत पर गिरा और उसे तोड़ डाला। फतहउल्ला खाँ सिर पर चोट खाने से लुढकता हुआ एक गहरे खड्ड की ओर जाने लगा पर एक गिरे हुए कजावा के वीच मे रुक गया। आदमियो मे वड़ा शोर गुल मचा और सव लोगो मे निराशा फैल गई। यह वेहोश उठा लाया गया, जिसके वहुत देर वाद इसे होश आया। इसके सिर और कमर मे इतनी चोट लग गई थी कि वह एक महीने तक खाट पर पड़ा रहा। फिर उसी कार्य पर पहुँच कर इस विचार मे पड़ा कि क्या उपाय करे कि वुर्ज की ओर से आक्रमण कर सके। इसी समय शाहजादा वेदारवख्त के प्रयत्नो से दुर्ग विजय हो गया। फतहउल्ला खाँ को जड़ाऊ जीगा पुरस्कार मे मिला और आलमगीर शाही की पदवी मिली।

यद्यपि फतहउल्ला खाँ ने दुर्गों के लेने तथा शत्रुओ के नष्ट करने मे जो सेवा की थी वह किसी दूसरे से न हो सकी थी पर औरंगजेव ने राजनीतिक कारण तथा दूरदर्शिता से इसे मनसव मे योग्य तरक्की तथा पद नही दिया। वादशाह इसकी वीरता, साहस तथा निर्भयता के कारण इसे एक अच्छा सरदार मानता था। एक दिन इनसे प्रार्थना की कि यदि उसे पाँच हजार सवार मिले तो वह दक्षिण मे मराठो का नाम निशान मिटा दे। वादशाह ने आज्ञा दी कि पहिले वह अपने समान एक दूसरे सरदार को पाँच सहस्र सवारो के साथ अपने पास रख ले तव उसे पाँच सहस्र सवारो की सरदारी मिले। इन कारणो से फतहउल्ला खाँ उदासीन होकर दरवार मे नही रहना चाहता था और इस पर इसने कावुल मे नियत किए जाने के लिये कई वार प्रार्थना की, जो उसका देश था। ४७वे वर्ष मे तीन हजारी १००० सवार का मनसव पाकर कावुल जाने की छुट्टी पाई। ४९वे वर्ष मे उस प्रांत में अल्लाहयार खाँ के स्थान पर लोहगढ का थानेदार नियत हुआ और २०० सवार इसके मनसव मे वढाए गए। औरंगजेव की मृत्यु पर जव शाहजादा वहादुरशाह उस प्रांत के सव सहायक सरदारो के साथ पेशावर से रवाना हुआ तव फतहउल्ला खाँ को आने की आज्ञा भेजी, जो अपने निवासस्थान को चला गया था। लाहौर के पास यह सूचना मिली कि उस आज्ञा पर भी फतहउल्ला खाँ ने साथ देने से जान वचाई। शाहजादे ने कहा कि जाननिसार खाँ जो वहादुरी मे फतहउल्ला खाँ से कम नहीं है,

आगरे मे भारी सेना के साथ पहुँच गया होगा, चाहे फतहउल्ला खाँ आवे या न आवे। वहादुरशाह के राज्य के आरंभ में यह मर गया। यह सच्चा सैनिक था और निडर होकर कड़वी बात भी कह देता था। एक दिन औरंगजेब ने किसी कार्य पर खफा होकर एक ख्वाजासरा से इसके पास भर्त्सनापूर्ण संदेश भेजा, जिस पर उसने उत्तर मे कहलाया कि बुद्धिमान मनुष्य अस्सी वर्ष की अवस्था तक पहुँचने पर अपनी बुद्धि को वेठाता है। मैं अपने खुदा से सौ फर्सख दूर हो सिपाही वन वैठा हूँ और व्यर्थ ऐसे कार्य मे जान दे रहा हूँ। जव ख्वाजासरा ने उसके भाषा की कड़ाई वतलाई तब इसने नम्रता से क्षमायाचना की।

०

४१७. फतहउल्ला शीराजी, अमीर

यह अपने समय के अध्ययन योग्य तथा उपयोगी कार्यगत विज्ञानो मे अद्वितीय योग्यता रखता था। यद्यपि इसने ख्वाजा जमालुद्दीन महम्मद, मौलाना जमालुद्दीन शेरवानी, मौलाना करद और मीर गयासुद्दीन शीराजी की पाठशालाओं मे बहुत ज्ञान प्राप्त किया था पर विद्या मे यह उनसे वढ़ गया। अवुल्फजल इस प्रकार कहता है कि यदि विज्ञान के पुराने ग्रंथ नष्ट हो जाँय, तो वह नई नीव डाल सकता है और तव पुराने की कोई आवश्यकता न रह जायगी।

आदिलशाह वीजापुरी ने इसको हजारो प्रयत्न कर शीराज से दक्षिण बुलाया और अपना प्रधान अमात्य वनाया। आदिलशाह की मृत्यु पर अकवर के वुलाने पर यह २८वें वर्ष सन् ९९१ हि० मे फतहपुर मे पहुँचा। खानखानाँ और हकीम अवुल्-फतह ने इससे मिल कर वादशाह के सामने इसे उपस्थित किया। वादशाही कृपा पाकर थोड़े ही समय मे यह वादशाह का अंतरंग मुसाहिव वन गया। यह सदर नियत किया गया और मुजफ्फर खाँ तुरवती की पुत्री से इसका निकाह हुआ। कहते हैं कि वह तीन हजारी मंसव तक पहुँचा था और ३०वें वर्ष के जुलूस पर इसे अमीनुल्मुल्क की पदवी मिली थी। आज्ञा हुई कि राजा टोडरमल मीर की राय से देश के कोषविभाग का कार्य ठीक करे और उन पुराने मामिलो को, जिनकी मुजफ्फर खाँ के समय से जाँच नही की गई है, ठीक करे। मीर ने कुछ ऐसे नियम वनाए, जिनसे कोषविभाग की उन्नति हो और प्रजा को आराम मिले। ये नियम स्वीकृत हुए। इसी वर्ष अजीजुद्दौला की पदवी पाकर खानदेश के शासक राजे अली खाँ को समझाने भेजा गया। वहाँ से असफल हो लौट कर खान-आजम के पास पहुँचा, जो दक्षिणियों पर आक्रमण करने और उस प्रांत के सर्दारो को दंड देने के लिये नियत हुआ था। वह शहाबुद्दीन अहमद खाँ तथा अन्य सहायक अफसरो के साथ

अच्छा व्यवहार नहीं करता था, इसलिये वहाँ का कार्य संतोष-जनक न रहा। ३१वें वर्ष मे मीर दुखी होकर खानखानाँ के पास दक्षिण गुजरात चला गया।

कहते हैं कि मीर दक्षिण के काम को पूरा करने के लिये भेजा गया था पर आजम खाँ काका और शहाबुद्दीन खाँ के बीच एकता न रही, इस पर राजे अली खाँ ने, यह वैमनस्य देख कर, दक्षिण के सेनापतियो को मिला कर युद्ध की तैयारी की। मीर ने बहुत चाहा कि उसको रास्ते पर लावें पर कोई उपाय नहीं बैठा। निरुपाय होकर यह गुजरात खानखानाँ के पास गया कि उसे सहायता के लिये ले आवे पर उसने भी इन्हीं कारणो से हाथ नहीं लगाया तब यह दरबार चला गया। ३४वें वर्ष सन् ९९७ हि० मे जिस समय बादशाह काश्मीर से लौट रहे थे उस समय यह बीमार होकर शहर ही मे रह गया। हकीम अली उसकी दवा करने मे असफल रहा। बदायूनी लिखता है कि वह स्वयं हकीम था और हकीम मिश्री के कहने को मान कर ज्वर को हरीश से अच्छा करना चाहा, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। यह मीर सैयद अली हमदानी के खानकाह मे मरा था। बादशाह की आज्ञा से सुलेमान पहाड़ पर उसका शव गाड़ा गया, जो बहुत ही अच्छा स्थान है। इसकी तारीख 'फिरस्तबूद' से निकलती है। अकबर ने मीर के मरने पर बहुत दुखी हो कहा था कि मीर हमारा मंत्री, दार्शनिक, वैद्य और ज्योतिषी एक ही मे था। हमारे शोक का कौन अनुमान लगा सकता है। यदि वह फिरंगियो के हाथ पडता और वह उसके बदले कुल कोष माँगते तब भी हम उसे सस्ता सौदा समझते और उस उत्तम मोती को सस्ते मे खरीदा समझते। शेख फैजी ने उसके शोक में एक अच्छा कसीदा लिखा, जिसके कुछ शैर यहाँ दिए जाते हैं। (अनुवाद नहीं दिया गया है)

तबकात मे लिखा हुआ है कि अमीर फतहउल्ला सब विद्याओं में ईरान और हिंदुस्तान बल्कि सारी दुनिया मे अपना जोड नहीं रखता था। जादूगरी और तिलस्म भी बहुत जानता था। उसने एक मशीन बनाया था, जो सतह पर चल कर आटा पीसती थी। उसने एक आइनः बनाया था जिसमें दूर और पास की विचित्र शक्ल दिखलाई पड़ती थीं। एक चक्कर था, जिससे १२ बंदूकें भरी जाती थी और साफ भी होती थी। बदायूनी लिखता है कि मीर इतना दुनिया दोस्त था कि इतने ऊँचे पद पर पहुँच कर भी पढाने से हाथ नही रोका। अमीरों के घर जाकर उनके लडको को साधारण शिक्षा देता था और अपनी विद्या की प्रतिष्ठा का ध्यान नही करता था। बादशाह के साथ कंधे पर बंदूक रख और कमर मे थैला बाँध पैदल दौड़ता था। मल्लयुद्ध मे रुस्तम के समान था। प्रसिद्ध है कि मीर इतनी विद्या के रहते भी बादशाह के विषय मे कहता था कि यदि मैं अनेकता तथा एकता के पुजारी की सेवा मे पहुँचता तो ईश्वर को पहचानने का मार्ग न जान पाता। मीर ने सन् ९९२ हि० मे तारीख-इलाही नियत किया। अकबर बहुत दिनो से विचार मे था कि हिंदुस्तान

मे नया शाका और महीना चलावे क्योंकि हिजरी शाका अपनी प्राचीनता के कारण अप्रचलित हो रहा था और उसका आरंभ शत्रुओ की प्रसन्नता और मित्रों के शोक से होता है। परन्तु बुद्धिमानो के झुड के इस विचार से कि शाकाओं का वदलना धर्म से संवंध रखता है इसलिये कोई रद्दोवदल नही हुआ। मीर और उसके ही समान विद्वानो ने, जिन्होने दीन इलाही स्वीकार कर लिया था, इन शाका को आरभ किया और सब प्रांतो को फर्मान भेजे गये कि इस शाका को चलावे, जिसका आरंभ अकवर के राज्य के आरंभ से मनाया गया और यह पत्रे पर तैयार किया गया। इसका वर्ष और महीना सौर रखा गया और लौंद महीना उड़ा दिया गया। महीना और दिन का नाम फारस ही का रहा।

४१८. फरहत खाँ

इसका नाम मेहतर सकाई था और यह हुमायूँ के विशिष्ट सेवको मे से था। मिर्जा कामराँ के युद्ध मे जब धोखेबाज सरदारगण कपट से मिर्जा कामराँ के पास चले गए और वेग वावाई कोलावी ने पीछे से आकर हुमायूँ पर तलवार चलाई, जो न लगी, तव फरहत खाँ ने पहुँच कर एक ही चोट मे उसको भगा दिया। जिस समय हुमायूँ सिकदर सूर से लडने के लिये लाहौर से सरहिंद को रवाना हुआ तव इसे लाहौर का शिकदार नियत किया। जव शाह अवुल्मआली उस प्रात मे नियत हुआ तव उसने इसको विना आज्ञा के उस पद से हटा कर अपने आदमी को उस कार्य पर नियत कर दिया। इसके अनंतर जव शाहजादा अकवर उस प्रांत मे भेजा गया तव फरहत खाँ शाहजादे सेवा मे पहुँच कर प्रशंसा का पात्र हुआ। अकवर के राज्यकाल मे यह कसवा कोड़ा[1] का जागीरदार रहा। जव पूर्व की ओर से वादशाह लौट रहे थे तव इसके गृह पर गए और इसका निमंत्रण स्वीकार कर इसका सनमान बढाया। मुहम्मद हुसेन मिर्जा के युद्ध मे अहमदाबाद के पास इसने वहुत अच्छी सेवा की। जव मिर्जा पकड़ा गया और उसने पीने के लिये पानी माँगा तव फरहत खाँ ने अत्यंत क्रुद्ध होकर दोनो हाथ से उसके सिर पर चपत लगाई और कहा कि किस नियम के अनुसार तुम्हारे ऐसे विद्रोही को पानी दिया जाय। वादशाह ने इस पर विरोध किया और अपना खास पानी मँगाकर पीने को दिया। १९वें वर्ष मे यह अन्य लोगो के साथ रोहतास दुर्ग पर अधिकार करने भेजा गया[2], जो दुर्ग दुर्गमता तथा

---

१. इसका नाम कोड़ा तथा कड़ा भी है और इलाहाबाद मे है।

२. अकवरनामे में इस दुर्ग के घेरने तथा अफगानो से युद्ध करने का विवरण विस्तार से दिया है, जहाँ से यह अंश लिया ज्ञात होता है। इलि० डाउ० भाग ६ पृ० ४६–५०।

दृढ़ता मे अद्वितीय है और जिसमें पहाड़ पर इतनी खेती होती है और पानी के इतने सोते हैं कि वे दुर्ग-रक्षकों के लिये काफी हैं। जब घेरा डाल दिया गया और कुछ दिन बीत गए जब बादशाही आज्ञापत्र मुजफ्फर खाँ के नाम, जो उस समय फरहत खाँ के अधीन इसलिये नियत किया गया था कि उसका घमंड टूट जाय, भेजा गया कि वह विद्रोही अफगानों को दंड दे, जो बिहार मे उपद्रव मचा रहे थे और इस प्रकार वह फिर कृपा का पात्र हुआ। मुजफ्फर खाँ और अफगानों के बीच युद्ध में फरहत खाँ बाएँ भाग का अध्यक्ष था। जब राजा गजपति ने आरा कसबा के पास विद्रोह किया, जो फरहत खाँ की जागीर में था, तब यह युद्ध करना ठीक न समझ कर दुर्ग में जा बैठा। जब फरहत खाँ के पुत्र फरहंग खाँ ने अपने पिता के दुर्ग में घिर जाने का समाचार सुना तब वह सहायता को आया। युद्ध मे किसी सैनिक के तलवार से उसका घोड़ा मारा गया और वह भी पैदल लडता हुआ काम आया। फरहत खाँ यह शोकजनक घटना सुन कर पुत्रस्नेह के कारण दुर्ग से बाहर निकल आया और मारा गया। यह घटना २१वे वर्ष सन् १५७६-७७ ई० मे हुई थी।[1]

•

४१९. फरीद शेख मुर्तजा खाँ बुखारी

एकबालनामा[2] मे लिखा है कि यह शेख मूसवी सैयदों मे से था और यह बात वैचित्र्य से खाली नही है। बुखारा के सैयदों से सैयद जलाल बुखारी[3] से क्या संबंध है, यह स्पष्ट है और इनका इमाम हुमाम अली नकी अल्हादी तक सात पीढी का संबंध पहुँचता है। कहते हैं[4] कि चौथे दादा शेख अब्दुल् गफ्फार देहलवी ने अपने पुत्रों को वसीयत किया था कि धार्मिक वृत्ति लेकर कालयापन करना छोड़ दें और सैनिक सेवा कार्य करें। इस कारण शेख छोटी अवस्था में अकबर बादशाह की सेवा

---

१. अहमद खाँ को बाँध कर बुर्ज पर से फेंकने वालो मे फर्हत खाँ खासखेल का भी नाम आया है। यदि यह वही है, तो इसका उल्लेख इस जीवनी में नही हुआ है। आईन अकबरी, ब्लॉकमैन सं० १४५ पर इसकी जीवनी में भी इसका उल्लेख नही है। नौ सदी मंसबदारों की सूची मे इसका नाम दिया गया है।

२. कामगार हुसेनी भी यही बतलाता है।

३. मखदूम जहाँनियाँ जहाँ गश्त।

४. प्राइस कृत जहाँगीरनामा पृ० २३।

५. अकबरनामा भाग ३ पृ० ३९०-५। खानआजम की बंगाल की लड़ाई पर शेख फरीद भी दरबार से सहायक सेना के साथ भेजा गया था।

में पहुँचा और अपने अच्छे स्वभाव तथा योग्य सेवा से कृपापात्र होकर मूसाहेव हो गया और वुद्धिमानी, वीरता तथा साहस से इसने नाम कमाया। २८वें वर्ष जव खानआजम वंगाल के जलवायु के अनुकूल न होने के कारण विहार लौट आया और वहाँ की सेना का प्रवंध वजीर खाँ को मिला तथा जव कतलू लोहानी उड़ीसा में विजयी होकर और विद्रोह कर अपना अधिकार वढाने के लिए उद्यत हुआ तव निरुपाय होकर वंगाल के भी कुछ महाल उसे दिए गए। यह निश्चय हुआ कि शेख फरीद नियत स्थान पर भेंट कर संधि के शर्तों को दृढ करे परंतु वह विद्रोही भेंट करने को उपस्थित नही हुआ। शेख भलाई चाहने के कारण और सिवाई से मीठा वोलने वालो के कहने मे आकर उसके घर पर गया। कतलू वडी चापलूसी से मिला और वह इस विचार मे था कि जव सव लोग अपने स्थानो पर जाकर आराम करने लगें तव शेख को पकड़ कर कैद कर दे तथा उसकी कैद से वह स्वयं सफलता प्राप्त करे। शेख को पता लग गया और उसने रात्रि के आरंभ ही में चलने की तैयारी की। द्वार पर घोडे नही रहने पाये थे और कई जगह मार्ग रोक दिया गया था इसलिये युद्ध होने लगा। इसी वीच शेख एक हाथी पर सवार होकर वाहर निकला। भाग्य विचित्रता से हाथी आज्ञा मानना छोड कर वेराह चला। शेख नदी तक पहुँच कर उतार की खोज में था कि एकाएक कुछ आदमियों ने पहुँच कर तीर चला इसे घायल भी कर दिया। शेख अपने को एक ओर कर धीरे से निकल भागा। वे सव समझते रहे कि शेख अम्वारी में है। इसी समय एक नौकर घोडा लेकर आ पहुँचा और यह उस पर सवार होकर पड़ाव में चला आया।[1] निश्चित हुई संधि टूट गई। कतलू इस विद्रोह के कारण वरावर लड़ते तथा भोगते हुए असफल रह गया।

शेख ३०वें वर्ष में सात सदी मनसव पाकर ४०वें वर्ष तक डेढ़ हजारी मनसव तक पहुँच गया। भाग्य-वल से यह मीर वख्शी नियत हो गया। वख्शी होने पर दीवान की अयोग्यता से उस दीवाने-तन के कार्य को, जो दीवान के विभाग का काम था, अपने हाथ मे लेकर जागीर के महाल को लोगो को वेतन मे वाँट दिया।

---

१. यह वृत्तांत अकवरनामा के अनुसार है, देखिए अकवरनामा भा० ३ पृ० ४०६। निजामुद्दीन (इलि० डाउ० जि० ५ पृ० ४२९) और वदायूनी इसका विवरण देते हैं कि कतलू ने यह उपद्रव नहीं किया था। उसने शेख फरीद को विदा कर दिया था पर मार्ग में वहादुर गौडिया ने इस पर आक्रमण किया और यह वच कर निकल गया। नुरुल्हक के जव्दतुत्तवारीख में वहादुर का नाम नही दिया है और यह घटना वर्दवान जिले मे हुई वतलाई गई है। यह इतिहास तथा शेख अलहदाद का अकवरनामा शेख फरीद की आज्ञा पर लिखे गए थे।

बाद को[1] अकबर की मृत्यु पर भी इन दोनों भारी कार्यों को शेख करता रहा, जिससे इसका विश्वास और संमान साम्राज्य के बराबर वालों प्रत्युत् सभी सरदारो से बढ गया था।

जब जहाँगीर ने अपनी शाहजादगी मे विद्रोह कर इलाहाबाद मे अपने नौकरो को पदवी और मनसब देकर जागीर बाँटने लगा तब अकबर ने उसके बड़े पुत्र सुल्तान खुसरो पर विश्वास बढाया, जिससे लोगो को उसके युवराज होने की आशंका हो गई। इसके अनंतर जब शाहजादा बादशाह के पास पहुँचा तब उसका मस्तिष्क शंका से खाली नही था। बादशाह आलस्य तथा सुस्ती में समय बिता रहा था। शाहजादे के सेवकगण गुजरात चले गये थे[2] क्योंकि उन्हे हाल ही मे वहीं जागीरें मिली थीं, इसलिये अकबर ने अपनी बीमारी में संकेत कर दिया कि शाह-जादा दुर्ग के बाहर जाकर अपने घर में बैठ रहे, जिसमे विरोधीगण विद्रोह न कर बैठें। मिरजा अजीज कोका और राजा मानसिंह ने सुलतान खुसरू से संबंध रखने के कारण उसकी बादशाहत के विचार से दुर्ग के फाटकों को अपने आदमियो को सौंप दिया और खिजरी दरवाजा को अपने आदमियों के साथ शेख फरीद को सौंपा। शेख सेनापति था, इसलिये उसको यह बात बुरी मालूम हुई और वह दुर्ग से बाहर निकला तथा शाहजादे के पास पहुँच कर साम्राज्य पाने की प्रसन्नता की बधाई मे आदाब बजा लाया। यह सुन कर सरदारगण हर ओर से आने लगे। अभी अकबर जीवित था कि राजा मानसिंह बगाल में बहाल होकर चले गए। जहाँगीर दुर्ग में पहुँच कर गद्दी पर बैठा और शेख को साहेबुस्सैफ व अलकाम की पदवी और पाँच हजारी मनसब देकर मीरबख्शी नियत किया।

इसके अनंतर जब सुल्तान खुसरू के दिमाग मे खुशामदिओ की बात सुन कर बादशाहत का विचार जोश खाने लगा तब वह अपने पिता के राज्य के प्रथम वर्ष सन् १०१४ हि० (सन् १६०७ ई०) के जीहिज्जा महीना में रात्रि के समय भागा

---

१. ३१ वें वर्ष के अंत मे यह मावरुन्नहर के राजदूत तथा अन्य सर्दारो को लिवा लाने अफगानिस्तान भेजा गया (इलि० डा० भा० ५ पृ० ४५०)। इलि० डा० भा० ६ पृ० ६९, १३५-७ पर लिखा है कि ४५वें वर्ष मे आसीर की चढाई मे यह अबुल्फज्ल के साथ था। पृ० १२५ पर वर्णन है कि ३८वें वर्ष सन् १००३ हि० में बादशाह ने शेख फरीद को अन्य सर्दारो तथा दृढ सेना के साथ जम्मू तथा रामगढ लेने के लिये भेजा और इसने दोनो कार्य पूरा किया। इसके अनंतर सिवालिका प्रांत के अन्य कई स्थानो के विद्रोहियों को दमन कर यह लाहौर लौट गया, जहाँ बादशाह थे।

२. जहाँगीर कभी गुजरात का अध्यक्ष नियत हुआ था पर अकबर के अंतकाल में इसे एक रुपए वार्षिक खंभात की आय से मिले थे।

और मार्ग में लूटता हुआ आगरे से लाहौर की ओर चल दिया। शेख बहुत से सरदारों के साथ पीछा करने पर नियत हुआ। जहाँगीर स्वयं भी शीघ्रता से रवाना हुआ। अमीरुल् उमरा शरीफ खाँ और महावत खाँ ने, जो शेखफरीद से वैमनस्य रखते थे, बादशाह से प्रार्थना की कि शेख जानबूझ कर कम प्रयत्न करता है और पकड़ने की इच्छा नहीं रखता। इस पर महावत खाँ ने जाकर बादशाह की ओर से प्रयत्न करने के लिये कहा। शेख ने अपने स्थान से बाहर न आकर योग्य उत्तर भेज दिया। सुलतान खुसरू ने सुलतानपुर की नदी के पास शेख के पहुँचने का समाचार सुनकर लाहौर के घेरे से हाथ हटा लिया और बारह सहस्र सवारों के साथ, जो इन्हीं कुछ दिनों में एकत्र हो गये थे, युद्ध करने के लिये लौटा। शेख सेना के कम होने पर भी युद्ध के लिये तैयार होकर व्यास नदी पार कर युद्ध के मैदान में पहुँचा। घोर युद्ध हुआ, जिसमे बुखारा तथा बारहा के बहुत से सैयद वीरता दिखलाकर मारे गए। सुलतान खुसरो अपनी बहुत सी सेना कटाकर भागा। शेख ने एक मैदान आगे बढ़कर पड़ाव डाला।[1]

उसी दिन दो तीन घड़ी रात बीतने पर जहाँगीर ने फुर्ती के साथ पहुँच कर शेख को गले लगा लिया और उसी के खेमा मे ठहर कर उस स्थान को, जो परगना भैरोवाल मे था, शेख की प्रार्थना पर एक परगना बनाकर और फतेहाबाद नाम रखकर शेख को दे दिया। साथ ही मुर्तजा खाँ की पदवी और गुजरात का शासन दिया। २रे वर्ष शेख ने गुजरात से एक बदख्शी लाल की अंगूठी भेट मे भेजी, जो एक ही लाल के टुकडे मे काटकर नगीना, नगीने का घर और घेरा सब बनाया गया था और जो अच्छे पानी व रंग का था तथा तौल मे एक मिसकाल व पंद्रह सुर्ख का था। इसका मूल्य पचीस हजार रुपया आँका गया। शेख के भाइयो के बरताव तथा चाल से गुजरात के आदमियो ने विरुद्ध होकर दरबार मे प्रार्थनापत्र भेजा, तब यह बुलाया जाकर ५वे वर्ष मे पंजाब का सूबेदार नियत हुआ। सन् १०२१ हि० सन् १६१० ई० मे उस प्रांत के अंतर्गत कांगड़ा की चढ़ाई पर नियत हुआ। ११वें वर्ष सन् १०२५ हि० (सन् १६१६ ई० मे पठान कसबे में मर गया। इसकी कब्र दिल्ली मे इसके पूर्वजो के मकबरे मे है। इसकी वसीयत के अनुसार एक इमारत बनी, जिसकी तारीख 'दाद खुरद बुर्द' (सन् १०२५ हि०) से निकलती है। इसके पास से कुल एक हजार अशर्फी निकली।

---

१. इलि० डा० भा० ६ पृ० २६५-७ पर इस युद्ध का विवरण तारीख सलीमशाही या तुजुके-जहाँगीर से और पृ० २९६-८ पर वाकेआते जहाँगीर से दिया गया है। फरीद की सेना खुसरो की सेना से अधिक थी। स्थान का नाम भैरोवाल न देकर गोविंदवाल दिया गया है परन्तु प्रथम मे लिखा है कि इसी युद्ध मे खुसरो पकड़ा गया था। द्वितीय में उसके भागने का वृत्त दिया है कि वह चिनाव नदी के किनारे सुधारा ग्राम में नदी पार करते समय पकड़ा गया था।

शेख वाह्य तथा अंतर दोनों से सच्चा था। वीरता के साथ उदारता भी इसमें थी। इसका दान इस प्रकार चलता रहता था कि जो कोई इसके पास पहुँचता वह किसी तरह निराश नहीं लौटता था। यह दरवार पहुँचने तक दरवेशों को कम्मल, चादर, कपड़े आदि वाँटता जाता था। अशर्फी, रुपया आदि अपने हाथ से देता था। एक दिन एक दरवेश सात वार शेख से ले गया और जव आठवी वार आया, तव इसने धीरे से उससे कहा कि जो कुछ सात वार तू ले गया है उसे छिपा रख, जिसमे दूसरे दरवेश तुझसे ले न ले। मुल्लाओ, फकीरो तथा विधवा स्त्रियो को दैनिक से वार्षिक तक वृत्तियाँ वाँध रक्खी थी, जो उसके सामने या पीछे विना सनद या आज्ञापात्र के उन तक पहुँच जाया करती थीं। इसकी जागीर में अधिकतर सहायक वृत्तियाँ थीं। इनकी नौकरी मे जो लोग मर गये थे, उनके लड़को के लिये महीना वँधा हुआ था और वे लडके शेख के आसपास उसके पुत्रो की तरह खेला करते थे और शिक्षकगण पढाने को नियत थे। गुजरात मे यह सैयदो के, पुरुष या स्त्री के, नाम लिखवाकर उनकी संतान के विवाह का सामान अपने व्यय से देता था, यहाँ तक कि गुर्विणी स्त्रियो के लिये धन अमानत मे दे दिया था, जिससे इसके अनंतर जो पैदा हुआ उसके विवाह का सामान भी इसी धन से हुआ। परंतु यह भाटों तथा गायकों को कुछ नहीं देता था। इसने वहुत से मुसाफिरखाने और सराय वनवाए। अहमदावाद मे वुखारा नाम का महल्ला वसाया। शाह वजीहुद्दीन का मकवरा और मसजिद इसी ने वनवाया था। यह दिल्ली मे फरीदावाद[1] इमारत व तालाव सहित अपना स्मारक छोड गया। लाहौर मे भी एक मुहल्ला वसाया और वहाँ चौक मे वड़ा हम्माम घर इसी का वनवाया है। शेख साल मे तीन वार अच्छे खिलअत वादशाही आदमियो को देता था, जिससे उसका काम रहता था और कुछ को नौ वार। अपने नौकरों को वर्ष मे एक वार एक खिलअत पैदलो को एक कंवल और हलालखोर को एक जूता देता था। ऐसा इसका साधारण व्यवहार था, जिसमे जीवनभर फर्क न डाला। अपने किसी किसी मित्र को, जिनके पास जागीर भी थी एक लाख वार्षिक पहुँचा देता था। अच्छे घोड़ो पर तीन सहस्र चुने हुए सवार तैयार रखता था। अकवर के समय से जहाँगीर के राज्य तक हवेली मे न जाकर सदा पेशखाने मे उपस्थित रहता था। इसने तीन चौकी नियत की थी और प्रति दिन पाँच सौ आदमियो को भोजन भेजवा देता था। सैनिको का वेतन अपने सामने दिलाता था और आदमियो के शोरगुल से अप्रसन्न नही होता था।

कहते हैं कि शेर खाँ नामक एक अफगान इसका परिचित नौकर था। यह गुजरात से छुट्टी लेकर अपने देश चला गया और ५-६ वर्ष तक वहीं रह गया।

---

१. यह दिल्ली के दक्षिण में है इसके लेख से ज्ञात होता है कि फरीद का पिता सैयद अहमद था।

जब शेख कांगडा की चढाई पर नियत हुआ तब यह कलानौर मे सेवा मे हाजिर हुआ। शेख ने अपने बख्शी द्वारकादास से कहा कि इस आदमी को खर्च दे दो, जिससे अपने घरवालो को दे आवे। बख्शी ने उसके वेतन का हिसाब लिखकर तारीख देने के लिये शेख के हाथ मे दिया। शेख ने क्रुद्ध होकर कहा कि नौकर पुराना है, यदि किसी कारण से देर को पहुँचा, तो हमारा कौन काम बिगड़ गया। जिस तारीख से उसका वेतन बाकी था हिसाब करके ७०००) रुपया दे दिया।

सुभान अल्लाह, यद्यपि दिन रात का वैसा ही चक्र और नक्षत्रो तथा आकाश का वैसा ही फेरा है परंतु इस काल में यह देश ऐसे आदमियों से खाली है, स्यात् दूसरे देश मे चले गये हो। शेख को पुत्र नहीं था। एक पुत्री थी, जो निस्संतान मर गई। शेख के दो दत्तक पुत्र महम्मद सईद और मीर खां थे, जो बड़ी शान से दिन बिता रहे थे और खूब अपव्यय करते थे। यहाँ तक कि अपने घमंड में बादशाही संमान का विचार नही करते थे, तब सरदारो की क्या बात थी। बादशाही झरोखा के सामने यमुना नदी के किनारे बहुत से मशाल और फानूस दिखलाते चलते थे। कई बार मना किया गया पर कोई लाभ न निकला। अंत मे जहाँगीर ने महाबत खाँ को संकेत कर दिया। उसने अपने विश्वासपात्र नौकर राजे सैयद मुबारक मानिकपुरी से कहा कि परदा उठाना है, इसलिए उसको बीच से उठा दो। एक रात्रि मीर खाँ दरबार मे उठकर जा रहा था कि सैयद ने उसको मार डाला और स्वयं भी उसके हाथ से घायल हुआ। शेख ने इस खून के बदले महाबत खाँ के विरुद्ध दावा किया। वह बादशाह के सामने विश्वासपात्र आदमियो को लिवा लाया (साक्षी दिलाया) कि मीर खाँ को मारनेवाला महम्मद सईद है, उससे खून का बदला ले। शेख मजलिस की यह हालत देखकर ठीक मतलब समझ कुछ न बोला और खून का दावा उठा लिया।

४२०. फरेदूं खाँ बर्लास, मिर्जा

यह मिर्जा मुहम्मद कुली खाँ बर्लास का पुत्र था। पिता की मृत्यु पर अकबर की कृपा होने से इसे योग्य मंसब मिला। जलूस के ३५वें वर्ष मे यह खानखानाँ अब्दुर्रहीम के साथ ठट्टा की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ और इसने वहाँ अच्छा प्रयत्न किया। जब ठट्टा प्रांत पर अधिकार हो गया तब ३८वें वर्ष में सर्दार हो यह जानी बेग के साथ दरबार को रवानः होकर सेवा मे उपस्थित हुआ। ४०वें वर्ष तक पाँच सदी मंसब तक पहुँचा था। इसके अनंतर जब जहाँगीर ने राजसिंहासन की शोभा

बढ़ाई तब २रे वर्ष मे इलाहाबाद प्रांत में जागीर पाकर एक हजारी १०२० सवार का मंसबदार हुआ। ३रे वर्ष इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी १३०० सवार का और फिर उसके बाद २००० सवार का हो गया। ८वें वर्ष में सुल्तान खुर्रम के साथ राणा अमरसिंह की चढाई पर नियत हुआ। इसके बाद इसकी मृत्यु हो गई। स्वत्व के ज्ञाता बादशाह ने इसके पुत्र मेहू अली को एक हजारी १००० सवार का मंसब दिया।

०

४२१. फाखिर खाँ

यह बाकर खाँ नज्मसानी का पुत्र था। शाहजहाँ के राज्य के ३रे वर्ष मे, जिस समय बादशाह दक्षिण मे थे, यह एक जड़ाऊ कमरबंद और कुछ रत्न अपने पिता की ओर से, जो उड़ीसा का शासक था, भेंट लाकर दरबार मे उपस्थित हुआ। इसे योग्य मनसब मिला। पिता की मृत्यु पर इसका मनसब बढ कर दो हजारी १००० सवार का हो गया। थोड़े दिनों बाद किसी दोप के कारण इसका मनसब और जागीर छिन गई। २१वें वर्ष मे इसका मनसब बहाल हो गया और खाँ की पदवी पाकर नवाजिश खाँ के स्थान पर मीर तुजुक नियत हुआ। बादशाही इच्छा के विरुद्ध कुछ काम करने के कारण इसे कुछ दिन तक कोरनिश करने की आज्ञा नहीं मिली। २७वें वर्ष मे सुल्तान दारा शिकोह की प्रार्थना पर इसे पुराना मनसब पुनः मिल गया। २९वें वर्ष पाँच सदी जात इसके मनसब मे बढाया गया। यह सामूगढ़ के युद्ध में दारा शिकोह की सेना के बाएँ भाग का अध्यक्ष था और भागते समय यह लाहौर की ओर चला गया। जब औरंगजेब आगरा के पास पहुँचा तब यह सेवा में उपस्थित हुआ और मनसब के छिन जाने पर राजधानी मे वार्षिक वृत्ति पाकर रहने लगा। २३वे वर्ष तक यह जीवित था और उसके बाद अपने समय पर मरा। इसके पुत्र इफ्तखार का शाहजहाँ के ३१वें वर्ष मे सात सदी १२० सवार का मनसब था। इसके अनंतर जब आलमगीर बादशाह गद्दी पर बैठा तब ५०वें वर्ष इसको मफाखिर खाँ की पदवी मिली। ९वे वर्ष में इसका मनसब एक हजारी ४५० सवार का हो गया। यह असद खाँ का दामाद था।

०

४२२. फाजिल खाँ

इसका आका अफजल इस्फहानी नाम था और यह पारस से हिंदुस्तान आया। इसने शेख फरीद मुर्तजा खाँ से संबंध जोड़ा। शेख ने इसकी योग्यता और बुद्धि के अनुसार इसका सनमान बढ़ाया और एक लाख रुपया वार्षिक नियत किया। शेख साहस कृपा और गुण ग्राहकता का समुद्र था और बहुतों को एक लाख या अस्सी हजार वार्षिक वृत्ति देता था। इसी प्रकार फाजिल खाँ के भाई अमीर बेग को अस्सी हजार रुपया देता था। जब पंजाब के शासन पर बादशाह जहाँगीर ने शेख को नियत किया तब शेख ने आका अफजल को लाहौर की सूबेदारी पर अपना प्रतिनिधि बनाया। इसने उक्त कार्य को बड़ी योग्यता तथा समझदारी से किया। शेख की मृत्यु पर उक्त प्रांत एतमादुद्दौला को जागीर में दिया गया तब उसने भी फाजिल खाँ को अपना प्रतिनिधि पहिले की तरह रहने दिया, जिससे इसका विश्वास बढ़ता गया। इसके अनंतर यह शाहजादा सुलतान पर्वेज का दीवान नियत हुआ। इसके बाद बादशाह की ओर से इसे योग्य मनसब और फाजिल खाँ की पदवी मिली। जब सुलतान पर्वेज महाबत खाँ की अभिभावकता में युवराज शाहजहाँ का पीछा करने नियत हुआ तब उस सेना की बख्शीगिरी और वाकिया-नवीसी फाजिल खाँ को मिली। २०वें वर्ष में इसे डेढ़ हजारी १५०० सवार का मनसब मिला और एक घोड़ा तथा एक हाथी पुरस्कार में देकर दक्षिण का दीवान नियत किया। उक्त प्रांत के अध्यक्ष खानजहाँ लोदी से अपने सांसारिक अनुभव के कारण यह अच्छी तरह मिल गया और राजनीतिक तथा कोष-संबंधी कार्यों में सम्मति देने में उसका साथी रहा। जब जहाँगीर की मृत्यु हो गई तब शाहजहाँ ने, जो उस समय दक्षिण जुनेर में रहता था, जाननिसार खाँ को उक्त प्रांत की खानजहाँ की अध्यक्षता की बहाली का फर्मान देकर भेजा और उसमें यह सूचना दी कि वह उसी मार्ग से आ रहा है। फाजिल खाँ ने, जिसका भाई सुलतान शहरयार के साथ था, खानजहाँ की राय को बदलते हुए कहा कि बादशाही सरदारों ने दावरबख्श को गद्दी पर बैठा दिया है और शहरयार लाहौर में अपनी सल्तनत का डंका पीट रहा है और अपनी सेना में खूब रुपया बाँट रहा है। इस कारण बड़े-बड़े सरदार शाहजहाँ से सशंकित हो रहे हैं कि गद्दी पर बैठने पर स्यात् वह बदला न ले। आप एक गरोह के सरदार हैं और बादशाही सेना के अध्यक्ष हैं। इनमें से जो कोई हिंदुस्तान की गद्दी पर बैठेगा, आप उसी के नौकर हो। शाहजहाँ ने आपके इतने वर्षों की सेवा का कुछ भी विचार न करके कल महाबत खाँ को इतने दोषों के पहाड़ के रहते हुए और उसके सेवा में पहुँचते ही आपके बदले सिपाहसालार की पदवी दे दी। इन बातों ने खानजहाँ लोदी पर इतनी बुद्धिमानी तथा गम्भीरता के रहते हुए ऐसा प्रभाव डाला कि उसने जाननिसार खाँ को बिना लिखित उत्तर दिए विदा कर दिया।

शाहजहाँ ने इस पर बुरहानपुर का मार्ग छोड़ दिया और गुजरात के मार्ग से आगरे को रवाना हुआ।

साम्राज्य की गद्दी पर दृढता से बैठ जाने और आवश्यक राजकार्यों के पूरे हो जाने पर खानजहाँ और फाजिल खाँ के नाम दरबार मे उपस्थित होने के लिए आज्ञापत्र भेजा गया। फाजिल खाँ नर्वदा नदी के किनारे हंडिया उतार से खानजहाँ से अलग होकर आगे रवाना हो गया। उस समय बादशाही सेना जुझार सिंह बुंदेला पर नियत हो चुकी थी और शाहजहाँ भी ग्वालियर दुर्ग तक सैर करने को आ रहा था। जब उक्त खाँ नरवर पहुँचा तब यह आज्ञा के अनुसार कैद किया गया और इसका सामान जब्त कर लिया गया। यह कुछ दिन तक कड़े कैद मे रहा। जिस समय खानजहाँ बादशाह के दरबार में उपस्थित हुआ तब फाजिल खाँ के छुटकारे के लिए छ लाख रुपया दंड निश्चित हुआ। बहुत से सरदारो ने अपनी शक्ति के अनुसार सहायता की। खानजहाँ ने भी एक लाख रुपया दिया। यह बहुत दिनो तक दंडित रहा और मनसब तथा संमान से गिरा रहा। इसके अनंतर गुजरात प्रांत मे बड़ौदा का जागीरदार नियत हुआ। ९वें वर्ष जब शाहजहाँ दौलताबाद से राजधानी लौट रहा था तब उसने फाजिल खाँ को दरबार आने की आज्ञा भेजी। यह गुजरात प्रांत से फुर्ती से रवाना होकर बुरहानपुर मे दरबार में उपस्थित हुआ। इस पर फिर से कृपा हुई और इसे एतमाद खाँ की पदवी और दक्षिण की दीवानी मिली। १५वें वर्ष यह बंगाल का दीवान और उस प्रांत के अध्यक्ष शाहजादा मुहम्मद शुजाअ की सरकार का दीवान नियत हुआ। उसी जगह २१वें वर्ष मे इसकी मृत्यु हो गई। डेढ हजारी ६०० सवार का मनसबदार था। इसका पुत्र मिर्जा दाराब बुद्धिमान था और बराबर बादशाह की सेवा मे लगा रहा।

०

४२३. फाजिल खाँ बुर्हानुद्दीन

यह फाजिल खाँ मुल्ला अलाउल्मुल्क तूनी का भतीजा था। अपने चचा की मृत्यु के समय के कुछ ही पहिले यह ईरान से ताजा हिंदुस्तान मे आया था। इसके अनंतर जब फाजिल खाँ मर गया और उसे कोई संतान न थी, इसलिये औरंगजेब ने, जो स्वामिभक्ति का कद्र करनेवाला और राज्यभक्तिरूपी रत्न का पहचानने वाला था, बुर्हानुद्दीन पर कृपाकर और उसे खिलअत देकर शोक से उठाया तथा आठ सदी १५० सवार का मनसब दिया। बुर्हानुद्दीन में आध्यात्मिक गुण बहुत थे और यह शीलवान तथा निर्दोष था। यह अनुभवी तथा न्यायशील और योग्य तथा विश्वसनीय

था। बादशाह ने थोड़े ही समय में इसका मनसब बढ़ा दिया और काबिल खाँ की पदवी दी। १८वें वर्ष में जब डाक तथा दारुल् इनशा के दारोगा महम्मद शरीफ को, जो पुराने मुंशी वालाशाही अबुल्फतह काबिल खाँ का भाई था, उसके विचार से काबिल खाँ की पदवी दी गई तब बुर्हानुद्दीन को एतमाद खाँ की पदवी मिली। २२वें वर्ष में दूसरी बार जब बादशाह ने अजमेर जाने का निश्चय किया तब इसे राजधानी दिल्ली का दीवान बनाया और इसके बाद इसे दीवाने-तन का खिलअत मिला। ३२वें वर्ष यह कामगार खाँ के स्थान पर बादशाही खानसामाँ नियुक्त हुआ और इसका मनसब पाँच सदी १०० सवार बढ़ाए जाने पर दो हजारी ४०० सवार का हो गया और इसे यशम की कल्गी मिली। इसी वर्ष इसने फाजिल खाँ की पदवी पाई। इसके अनंतर पाँच सदी १०० सवार इसके मनसब में बढ़ाए गए। ४१वें वर्ष खानसामाँ के पद से छुट्टी पाकर अमीरुल्उमरा शायस्ता खाँ के स्थान पर कश्मीर का अध्यक्ष नियत हुआ। ४४वें वर्ष बादशाही आज्ञा हुई कि शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम का प्रतिनिधि होकर यह लाहौर का प्रबंध करे। इसने यह स्वीकार न कर दरबार में आने के लिये प्रार्थनापत्र भेजा। आज्ञानुसार आते समय बुरहानपुर पहुँचकर सन् १११२ हि० (सन् १७०० ई०) में यह मर गया।

इसका पुत्र अब्दुल्रहीम पिता की मृत्यु पर दरबार आया और ४७वें वर्ष में इसे बयूताती का कार्य मिला और खाँ की पदवी तथा मनसब में तरक्की मिली। गुणग्राहक बादशाह ने कहा कि फाजिल खाँ अलाउल्मुल्क और फाजिल खाँ बुर्हानुद्दीन का सेवाकार्य से हम पर बहुत स्वत्व है इसलिए इस खानाजाद पर बहुत कृपा रखूंगा। वास्तव में यह युवक बहुत योग्य था और यदि जीवन अवसर देता तो यह बहुत उन्नति करता परंतु यह कुछ दिन बाद ही युवा अवस्था में मर गया। इस वंश में फाजिल खाँ बुर्हानुद्दीन के भतीजे तथा दामाद जिआउद्दीन के सिवा कोई नहीं रह गया था इसलिए इसको चीना पत्तन की दीवानी से दरबार बुलाकर इसका मनसब बढाया और खाँ की पदवी देकर बयूताती का कार्य सौंपा। वास्तव में पूर्वजों के अच्छे कार्य गुणग्राहक स्वामियों के यहाँ उनके वंशजों के लिये किमीया से कम नहीं हैं। उक्त खाँ बहादुर शाह के समय भी कुछ दिन बयूताती का कार्य करता रहा और उसके अनंतर बंगाल का दीवान नियत हुआ।

जब महम्मद फर्रुखसियर के राज्य में अमीरुल् उमरा मीर हुसेन अली खाँ दक्षिण का सूबेदार नियत हुआ और उसे उक्त प्रांत में अफसरों को हटाने तथा नियुक्त करने का अधिकार मिला तब उसने दक्षिण पहुँचने पर अपने अनुगामियों को सर्वत्र नियत किया और जो लोग दरबार से नियुक्त होकर आते थे उन्हें अधिकार नहीं देता था, इससे बादशाह की अप्रसन्नता बढती गई और अब्दुल्ला खाँ कुत्बुल्मुल्क से इसका उलाहना दिया गया। उसने क्षमा माँगते हुए इस बात को अस्वीकार कर दिया। अंत में यह निश्चय हुआ कि उन सब सेवाओं में सर्वश्रेष्ठ

नियुक्ति दीवान तथा बख्शी की है और उनकी नियुक्ति दरबार से की जाय। इस पर मृत अमानत खाँ के पौत्र दिआनत खाँ के स्थान पर जिआउद्दीन खाँ दक्षिण का दीवान नियत हुआ और इसलाम खाँ मशहदी के पुत्र अब्दुर्रहीम खाँ के पुत्र अब्दुर्रहमान खाँ की मृत्यु पर फजलुल्ला खाँ बख्शी नियत हुआ, जो मृत का भाई था। ये दोनो साथ ही औरंगाबाद आए। अमीरुल् उमरा ने अपनी बदनामी और इस प्रसिद्ध हुई बात को कि बादशाह से नियुक्त आदमियो को वह अधिकार नही देता, दूर करने के लिये लिये जियाउद्दीन खाँ को अधिकार दे दिया, जिसका कुत्बमुल्क से अच्छा परिचय था और जिसके लिये उसने विशेप प्रकार से लिखा था। परंतु दूसरे के विपय मे उसने ध्यान भी न दिया, जो उपद्रवी था। इनके अनंतर उक्त खाँ अमीरुल् उमरा के साथ दिल्ली गया। फर्रुखसियर के राज्यगद्दी हटाए जाने पर प्रगट हुआ कि वह बादशाह से पत्र-व्यवहार रखता था, जिससे इसका विश्वास उठ गया और उसी समय इसकी मृत्यु भी हो गई।

०

५२४. फाजिल खाँ शेख मखदूम सदर

यह ठट्टा का रहने वाला था। आरंभ मे यह मुहम्मद आजमशाह का मुंशी था। औरंगजेब के २३वें वर्ष मे जब अबुल्फतह काबिल खाँ मीर मुंशी कारणवश दंडित हुआ तब फाजिल खाँ को बादशाही दारुल् इनशा का कार्य सौंपा गया और इसे पाँच सदी ३० सवार का मनसब और कमखवाब के दस-दस चीरा,पटका और जामा खिलअत मे मिला। शरीफ खाँ की मृत्यु पर २६ वें वर्ष सदारत कुल का पद मिला। २८वें वर्ष इसे फाजिल खाँ की पदवी और हील दिल पत्थर की दवात मिली। २९ वें वर्ष खिदमत खाँ के स्थान पर प्रार्थनापत्रो का दारोगा तथा अन्य कार्यो के साथ नियत हुआ। ३२वे वर्ष सन् १०९९ हि० (सन् १६८८ ई०) मे यह महामारी से मर गया, जो औरंगजेब की सेना मे फैली हुई थी।

०

५२५. फिदाई खाँ

यह शाहजहाँ का मीर शरीफ नामक एक स्वामिभक्त सेवक था। शाहजहाँ को घोडो के एकत्र करने का शौक था, इसलिये उसने फिदाई खाँ को ईरान के राजदूत के साथ एराकी घोड़ों को लाने के वास्ते भेजा। जब यह शाहजहाँ के पसंद के अनुसार घोड़े नहीं लाया तब इसने प्रार्थना की कि यदि उसे अरब और रूम के

आसपास तक जाने की छुट्टी मिले तो वह बादशाह की सवारी के योग्य घोड़े लाकर अपनी लज्जा दूर करे। इस पर मित्रतापूर्ण एक पत्र और एक जड़ाऊ बहुमूल्य खंजर कैसरे रूम के वास्ते देकर इसे विदा किया कि यदि किसी रूम के सुलतान के पास पहुँच जाय तो इनका उपयोग कर अपना काम पूरा करे। १०वें वर्ष लाहरी बंदर से रवाना होकर समुद्री मार्ग से यह हेजाज पहुँचा और वहाँ के पवित्र स्थानों का दर्शन कर मिश्र देश गया। वहाँ से मौसल पहुँच कर सुल्तान मुराद खाँ को देखा, जो बगदाद विजय करने आ रहा था। सुलतान ने पत्र संमान के साथ लेकर तुर्की भाषा में पूछा कि इतने दूर की लंबी यात्रा करने का क्या कारण है। फिदाई खाँ ने कारण बतला कर जड़ाऊ खंजर भेंट किया। सुलतान ने प्रसन्न होकर कहा कि ऐसे समय एक बड़े बादशाह के राजदूत का आना और जड़ाऊ खंजर भेंट देना विजय का शुभ सगुन है। दूसरे दिन मीर जरीफ ने एक सहस्र कपड़े अपनी ओर से भेंट किए। सुलतान ने हिंदुस्तान के शस्त्रों के बारे में पूछा। फिदाई खाँ के पास एक बहुमूल्य ढाल थी, जिसके विषय में उसने बतलाया कि तीर या गोली इसे पार नहीं कर सकती। कैसर ने आश्चर्य कर एक तीर पूरी शक्ति से ढाल पर मारी पर वह पार न हो सकी। सुलतान ने दस सहस्र करुश, जो बीस सहस्र रुपया होता है, इसको देकर कहा कि बगदाद की चढाई के अनंतर विदा करूंगा, उस समय तक मौसल जाकर जो वस्तु खरीदना चाहते हो खरीदो। इसके अनंतर जब सुलतान मुराद बगदाद दुर्ग को ईरानियों से विजय कर मौसल लौटा तब मीर जरीफ को लौटने की छुट्टी दी और अर्सलाँ आका के हाथ पत्र का उत्तर भेजा तथा अच्छी चाल का एक अरबी घोड़ा भेंट के रूप में भेजा, जिसकी जड़ाऊ जीन हीरे की थी और रूम की चाल पर मोती टँकी हुई अबाई थी। मीर जरीफ उक्त राजदूत के साथ बसरा से जहाज पर सवार होकर ठट्टा में उतरा।

जब १२वें वर्ष यह लाहौर पहुँचा तब कशमीर की ओर रवाना होकर, जहाँ उस समय बादशाह थे, यह सेवा में उपस्थित हुआ। इसने ५२ घोड़े, जिन्हें उस देश में क्रय किया था, उन दो घोड़ों के साथ जिन्हें तुर्की के सुलतान के शस्त्राध्यक्ष ने तुर्की के सर्वोत्तम घोड़ों में से चुनकर इसे भेंट में दिया था, बादशाह के सामने पेश किया। इस अच्छी सेवा के लिये इसकी बहुत प्रशंसा हुई और इसे एक हजारी २०० सवार का मनसब तथा फिदाई खाँ की पदवी मिली। यह तरबियत खाँ के स्थान पर आखता बेग नियत हुआ और इसी समय लाहरी बंदर का अध्यक्ष बनाया गया। अभी यह सौभाग्य की पहिली सीढी तक पहुँचा था कि काल ने असफलता का खारा पानी इसके मुख पर गिरा दिया। १४वें वर्ष सन् १०५१ हि० के आरंभ में यह मर गया।

•

४२६. फिदाई खाँ

इसका नाम हिदायतुल्ला था और यह चार भाई थे, जिनमें हर एक अपनी योग्यता तथा साहस से जहाँगीर के समय मे संपत्तिवान तथा प्रभुत्त्वशाली होकर विश्वस्त पद पर पहुँच गया। पहिला मिर्जा मुहम्मद तकी जहाँगीर के राज्य आरंभ में महावत खाँ के साथ राणा अमरसिंह की चढाई पर गया। इसका सिर घमंड के कारण बिगडा हुआ था और उसकी जिह्वा पर गाली रखी रहती थी, जो बहुत बुरा दोष है, इसलिये यह सवारो के साथ अच्छा वर्ताव नहीं करता था। उन सब ने एक करके मांडलपुर स्थान मे इसे 'सरेदीवान' कर दिया। दूसरा मिर्जा इनायतुल्ला, जो अपनी योग्यता तथा बुद्धिमानी के लिये प्रसिद्ध था और हिसाब किताब में अद्वितीय था, सुलतान पर्वेज का दीवान नियुक्त होकर बड़ी योग्यता से सब काम करने लगा और ऐश्वर्य तथा जान-शौकत को बढाया परंतु इसने अपनी कड़ाई से बहुत लोगों को असंतुष्ट कर दिया और घमंड के कारण किसी से नम्रता न दिखलाई। अंत मे उस पद तथा प्रभुत्त्व से गिर गया। कहते हैं कि जब इसका मृत्यु-काल आ पहुँचा तब इसने सुलतान की सेवा मे उपस्थित होकर अपना दोष क्षमा कराया और अपनी संतान के लिये प्रार्थना की। वहाँ से लौटने पर घर आते ही मर गया। तीसरा मिर्जा रूहुल्ला अच्छे रूपवाला युवक था, चौगान का अच्छा खेलाड़ी था और अहेर खेलने में बहुत तेज था। जहाँगीर की सेवा में इसने अच्छी पहुँच तथा संमान प्राप्त कर लिया था। यह एक विचित्र घटना है कि जब बादशाह जहाँगीर दुर्ग मांडू मे ठहरा हुआ था तब उसने इसे सेना के साथ आसपास चारों ओर के उपद्रवियों को दंड देने के लिये नियत किया। जब यह जैतपुर पहुँचा तब वहाँ के राजा ने इसका स्वागत कर नगर के बाहर इसे वृक्ष के नीचे ठहराया और भोज की तैयारी की। एकाएक एक काला साँप वृक्ष के पास निकला। मिर्जा के मुख से 'मार मार' (साँप साँप) निकला। इसके एक साथी ने यह समझ कर कि राजा को मारने के लिये कह रहा है, उसने राजा को घायल कर दिया। राजा ने यह हालत देखकर फुर्ती तथा चालाकी से मिर्जा को एक ही चोट मे समाप्त कर दिया। सेना बिना सरदार के भाग गई और राजा इसके सब सामान को लेकर पहाड़ों मे चला गया। इसके अनंतर उसका देश बादशाही सेना द्वारा लूटा गया और उसे दंड मिला। चौथा मिर्जा हिदायतुल्ला है, जो सबसे छोटा था। आरंभ में यह नावो का मीर बह्र नियत हुआ। यह महावत खाँ का वकील होकर बहुत दिनों तक दरबार मे रहकर बादशाही कृपा तथा संमान का पात्र हुआ।

महावत खाँ का आश्रय पाकर बहुत थोड़े समय मे यह एक सरदार हो गया परंतु महावत खाँ के विद्रोह के समय निमक तथा स्वामि-भक्ति का विचार करके प्रयत्न करने और जान लड़ाने मे इसने कमी न की। इसका वृत्तांत इस प्रकार है कि

झेलम नदी के किनारे जहाँगीर बादशाह का खेमा लगा हुआ था और सरदारगण असतर्कता से कुल पड़ाव के साथ जब पुल के इस ' ार चले आए और उस पार सिवाय बादशाही खेमो के और कुछ नही रह गया तब महाबत खाँ ने, जो अवसर देख रहा था, निर्भयता से बादशाही खेमों पर अधिकार कर लिया। फिदाई खाँ इस विद्रोह का पता पाकर और पुल के जला दिए जाने के कारण स्वामिभक्ति से बादशाही खेमे के ठीक सामने अपने घोड़े नदी मे डाल दिए। इसके कुछ साथी नदी मे बह गए और कुछ अर्धजीवित अवस्था मे किनारे पर पहुँच गए। सात सवारो के साथ निकल कर इसने वीरता से आक्रमण किया। इसके चार साथी मारे गए और जब देखा कि काम सफल नही हो सकता और शत्रु की भीड के कारण यह जहाँगीर के सेवा में ‍हुँच नही सकता तब यह उस पत्थर के टुकड़े के समान, जो लोहे की दीवार पर टकरा कर लौट जाता है, उसी फुर्ती और चालाकी से लौट कर नदी के पार हो गया। दूसरे दिन जब सरदारगण नूरजहाँ बेगम के साथ उस विद्रोही को दमन करने के विचार से नदी के पार होने लगे पर राजपूतो के धावो से आगे न बढ सके और लौट गए तब फिदाई खाँ ने साहस तथा लज्जा के मारे कुछ सेना के साथ उस स्थान से एक तीर नीचे हटकर नदी पार कर लिया और सामने की सेना को हटा कर सुलतान शहरयार के स्थान तक पहुँचा, जहाँ बादशाह भी थे। कनात के भीतर सवार तथा पैदलो की भीड़ थी, इसलिए दरवाजे पर खड़े होकर तीर चलाने लगा। यहाँ तक कि बादशाही तख्त तक इसके तीर पहुँचने लगे। मुखलिस खाँ ने बादशाह जहाँगीर के सामने खड़े होकर अपने को भाग्य की तीर का ढाल बना दिया। यहाँ तक कि फिदाई खाँ बहुत देर तक प्रयत्न कर और अपने दामाद अताकल्लाह के दो तीन मनसबदारो के साथ मारे जाने पर भी जब बादशाह के पास न पहुँच सका तब वह रोहतास पहुँच कर और अपने परिवार को साथ लेकर गिरझाकबंद को चला गया, जो कांगड़ा पर्वत के पास है और वही शरण ली। वहाँ का जमीदार बद्रबख्श जनुहा से इसका परिचय तथा मित्रता थी इसलिये अपने परिवार को वहीं छोड़कर यह हिंदुस्तान चला आया।

जब २१वें वर्ष मे बंगाल का शासक मुकर्रम खाँ नाव पर सवारी के समय नदी मे डूब गया तब फिदाई खाँ वहाँ का शासक नियत हुआ। निश्चय हुआ कि यह पाँच लाख रुपया बादशाह की भेंट और पाँच लाख रुपया बेगम की भेंट कुल दस लाख रुपया राजकोष मे जमा करे। उस समय से बंगाल के अध्यक्षों के लिये यही भेंट देना निश्चित हो गया। शाहजहाँ की राजगद्दी पर इसका मनसब चार हजारी ३००० सवार का हो गया। ५वें वर्ष इसे डंका और झंडा मिला और इसी वर्ष जौनपुर की जागीर इसे मिली। इसके बाद यह गोरखपुर का फौजदार हुआ। जब बिहार के सूबेदार अब्दुला खाँ ने प्रताप उज्जैनिया को दमन करने के लिये तैयारी की तब फिदाई खाँ बिना आज्ञा के ही काम करने के उत्साह मे उसकी सहायता को पहुँचा और

वहाँ की राजधानी भोजपुर के विजय करने मे इसने अब्दुल्ला खाँ का साथ दिया। कहते हैं कि यह सैनिकों का मित्र था और अफगानों को नौकर रखता था। यह घमंड से खाली नहीं था, जो इन भाइयो के स्वभाव की विशेपता थी। कहते हैं कि जब यह बंगाल से हटाया गया और दरबार मे उपस्थित हुआ तब बहुत से आदमियों ने नालिश की कि इसने उन लोगों से बड़ी बड़ी रकमे बिना किसी स्वत्व के ले लिया है। जब यह नालिश बादशाह के सामने पेश हुई तब मुत्सद्दियो ने इसे संदेश भेजा कि यह प्रधान न्यायालय मे उपस्थित होकर जवाब दे। इसने जमधर हाथ मे लेकर कहा कि 'उन सबका जवाब इस जमधर के नोक पर है और मेरा वहाँ आना कठिन है। वे कभी ऐसा विचार न रखें।' जब यह वृत्तांत बादशाह को मालूम हुआ तब उसने इस बात पर ध्यान न देकर इस पर और कृपा की। १३वे वर्ष मे जब जब जरीफ को फिदाई खाँ की पदवी मिली तब इसे जाननिसार खाँ की पदवी दी गई। १४वें वर्ष मे इसने अपनी जागीर से दो हाथी दरबार भेजा। जब इसी वर्ष जरीफ फिदाई खाँ मर गया तब इसे पुनः पुरानी पदवी मिल गई। १५वें वर्ष मे जागीर से आकर इसने सेवा की और इसी वर्ष दाराशिकोह के साथ यह भेजा गया, जो ईरान के शाह की कंधार पर चढाई की आशंका से काबुल मे नियत हुआ था। वहाँ से लौटने पर इसने अपनी जागीर गोरखपुर जाने की छुट्टी पाई। १९वे वर्ष फिर सेवा मे उपस्थित हुआ और जब राजा जगतसिंह की मृत्यु पर मुर्शिद कुली खाँ को तारागढ दुर्ग विजय करने की आज्ञा हुई तब फिदाई खाँ भी इस कार्य को पूरा करने पर नियत हुआ। यद्यपि मुर्शिद कुली खाँ ने इसके पहुँचने के पहिले ही दुर्ग पर अधिकार कर लिया था पर इसके पहुँचने पर उसे फिदाई खाँ को सपुर्द कर दिया। फिदाई खाँ के प्रार्थनापत्र के पहुँचने पर वह दुर्ग बहादुर कम्बू के हवाले किया गया। कुछ दिन बाद इसी वर्ष इसकी मृत्यु हो गई।[1]

•

४२७. फिदाई खाँ महम्मद सालह

यह और सफदर खाँ महम्मद जमालुद्दीन दोनो आजम खाँ कोका के लड़के थे। औरंगजेब के राज्य के २१वें वर्ष मे जब आजम खाँ बंगाल के शासन से हटाए जाने पर ढाका पहुँचकर मर गया तब बादशाह ने हर एक लडको के लिये शोक का खिलअत भेजा। पहिला पुत्र अपने पिता के जीवन-काल में योग्य मनसब पाकर २३वें

---

१. अमल सलिह नामक इतिहास ग्रंथ मे इसके संबंध मे अनेक अन्य बातें भी लिखी मिलती हैं पर वे विशेष महत्व की नहीं हैं।

वर्ष में सलावत खाँ के स्थान पर हाथी खाने का दारोगा नियत हुआ था। २६वें वर्ष शहाबुद्दीन खाँ के स्थान पर यह अहदियों का बख्शी नियत हुआ। २८वें वर्ष बरेली का फौजदार तथा दीवान नियत किया गया। इसके बाद ग्वालियर का फौजदार नियत हुआ। ३८वें वर्ष मे अपने पिता की पुरानी पदवी फिदाई खाँ पाकर शायस्ता खाँ के स्थान पर आगरा का फौजदार नियत हुआ। इसके बाद कुछ दिन तक बिहार का नाजिम नियत रहा। ४४वें वर्ष मे तिरहुत और दरभंगा का फौजदार नियुक्त होने पर इसका मनसब तीन हजारी २५०० सवार का हो गया। दूसरा खानजहाँ बहादुर कोकलताश का दामाद था। आरंभ मे अच्छा मनसब व खाँ की पदवी पाकर २७वें वर्ष मे सफदर खाँ की पदवी से सम्मानित हुआ। इसके अनंतर ग्वालियर का फौजदार नियत हुआ और ३३वें वर्ष उसी ताल्लुका की एक गाढ़ी पर चढ़ाई करने में मृत्यु की तीर लगने से समाप्त हो गया।

०

४२८. फिरोज खाँ ख्वाजासरा

यह जहाँगीर के विश्वासपात्र सेवकों मे से था। जब उस बादशाह की मृत्यु पर आसफ खाँ हसन ने खुसरू के पुत्र बुलाकी को गद्दी पर बैठाकर शहरयार से युद्ध किया और शहरयार अपना हवास छोड़कर राजधानी मे आ उसी महल मे जा छिपा तब यह उक्त खाँ के संकेत पर उस महल मे गया और उसे खोजकर बाहर ला आसफ खाँ को सौंप दिया। शाहजहाँ के राज्य में प्रथम वर्ष में सेवा मे आकर यह दो हजारी ५०० सवार के पुराने मनसब पर बहाल हुआ। ४थे वर्ष ३०० सवार मनसब मे बढाए गए। ८वें वर्ष इसका मनसब बढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया। १२वें वर्ष ढाई हजारी १२०० सवार का मनसब हुआ। १३वे वर्ष ५०० सवार मनसब में बढाए गए। १८वें वर्ष में बादशाह की बड़ी पुत्री बेगम साहेबः के अच्छे होने के जलसे मे, जो दीपक की लपट के पास पहुँचने के कारण कपड़े मे आग लग जाने से जल गई थी और कुछ दिन तक रुग्ण शय्या पर पड़ी थी, इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया। २१वें वर्ष १८ रमजान सन् १०५७ हि० ७ अक्तूबर सन् १६४७ ई० को यह मर गया। यह बादशाही महल का नाजिर था और शाहजहाँ की सेवा मे इसका विश्वास और सम्मान था। इसने झेलम नदी के किनारे बाग बनवाया था, जो अपनी सजावट के लिये प्रसिद्ध था।

●

४२६. फैजुल्ला खाँ

यह जाहिद खाँ कोका का पुत्र था। अपने पिता की मृत्यु के समय यह १० वर्ष का था। शाहजहाँ ने गुणग्राहकता तथा पद के विचार से इसे एक हजारी ४०० सवार का मनसब दिया। यद्यपि यह प्रगट मे अपनी दादी हूरी खानम के यहाँ पालित होता था पर वास्तव मे नवाब बेगम साहेबा उसपर अधिक ध्यान रखती थी। २४वें वर्ष में इसे खाँ की पदवी मिली और क्रमशः उन्नति पाते हुए इसका मनसब दो हजारी १००० सवार का हो गया। २८ वें वर्ष इसका विवाह अमीरुल्उमरा (अलीमर्दान खाँ) की पुत्री से हुआ। बादशाह ने कृपा तथा 'बन्दः परवरी' से जुम्लतुल्मुल्क सादुल्ला खाँ को आज्ञा दी कि मोती का सेहरा उसके सिर पर बाँधे। ३१ वें वर्ष सर बुलंद खाँ के स्थान पर आख्त बेग (अश्वाध्यक्ष) नियत हुआ। दाराशिकोह के पराजय के अनंतर यह औरंगजेब की ओर हो गया और इसका मनसब एक हजारी ३०० सवार बढ़ाया गया। इसी समय नवाजिश खाँ के स्थान पर यह करावल बेग (प्रधान शिकारी) नियत हुआ और पाँच सदी ५०० सवार मंसब मे बढ़ाए गए। ९वें वर्ष में यह मनसब से त्यागपत्र देकर एकान्तवास करने लगा। इसके अनंतर फिर से सेवा करने का विचार करने पर इसे कौसबेगी पद पर नियत किया। १३वें वर्ष यह सभल मुरादाबाद का फौजदार बनाया गया और बहुत दिनों तक यह कार्य करता रहा। यह प्रति वर्ष दरबार में आता और बादशाही भारी कृपा पाकर आज्ञा के अनुसार अपने ताल्लुका पर लौट जाता था। औरंगजेब इसपर खानाजाद होने के विचार के सिवा स्वत. विशेष कृपा रखता था। यह भी बादशाह से बहुत प्रेम रखता था और बेगम साहेब. की सेवा मे भी बहुत जी लगाता था। अंत मे इसे हाथीपाव रोग हो गया और यह हाथी पर सवार होकर कही जाता आता था। जब यह बादशाह के यहाँ आता था तब दरबार मे पैदल नही जा सकता था, इसलिये सवारी पर बैठे हुए मुजरा करता था। २४ वें वर्ष सन् १०९२ हि० (सन् १६८१ ई०) में मुरादाबाद में यह मर गया। यह भला तथा स्वतंत्र विचार का आदमी था और सासारिक कार्यो मे लिप्त नही रहता था। यह किसी को सिर नही झुकाता था। यह पशु-पक्षी, जंगली जानवरो तथा साँपो का शौक रखता था, जिनके नमूने दूर देशो तथा बंदरो से इसके लिये लाये जाते थे। कहते हैं कि ऐसे कम जानवर रहे होगे, चाहे वे जंगली या पालतू हो या ज्ञात या अज्ञात हो, जिनके नमूने इसके सग्रह में न रहे हो। यहाँ तक कि कीडे मकोड़े, मच्छड, पिस्सू आदि के नमूने भी लकडी या ताँबे के बरतनों मे रखकर पाले जाते थे। ऐसी हालत पर भी योग्य पुरुष इसका संमान करते थे। इसके पुत्रो में से किसीने योग्यता नही प्राप्त की।

४३०. फौलाद, मिर्जा

यह खुदादाद बर्लास का पुत्र था। बर्लास का अर्थ वंश परंपरा से साहसी है और कुल बर्लास जातिवालों का वंश ऐलमजी तक पहुँचता है, जो पहिला मनुष्य था जिसने यह अल्ल धारण किया था। यह काचूली बहादुर का पुत्र था, जो अमीर तैमूर साहिबकिराँ की आठवीं पीढ़ी में उसका पूर्वज था और तबाम कबूल खाँ का भाई था, जो चगेज खाँ का प्रपितामाह था।

मिर्जा फौलाद पीढ़ी-दरपीढ़ी उसी राजवंश में सेवा करता आया था। जब फिर तूरान के शासक अब्दुल्ला खाँ और अकबर में भेंट उपहार आने-जाने और मित्रता हो जाने से आपस में यह क्रम खूब बढ़ गया और उसने ईरान पर चढ़ाई करने की प्रार्थना की कि इस मित्रता के कारण एराक, खुरासान और फारस को उस देश वाले सुलतान से ले लेने। अकबर ने वीरता तथा गुरौव्वत से ३२वें वर्ष में मिर्जा फौलाद को, जो राजनियमों तथा मर्यादा को जाननेवाला युवक था, हिंदुस्तान की अच्छी भेंट सहित तूरान के राजदूत के साथ वहाँ भेज दिया। उत्तर में लिखा गया कि सफवी वंश का नबियों के वंश के साथ संबंध निश्चित है इसलिए उनकी खातिर उचित है। केवल नियम या संप्रदाय भेद से वह राज्य लेने के लिये चढ़ाई करना उचित नहीं समझता और पहिले की अच्छी मित्रताएँ भी इस कार्य से रोकती हैं। इस कारण कि उसने ईरान के शाह का समान के साथ उल्लेख नहीं किया था उसे उपालंभ देते हुए उपदेश लिखा। शैर—

> बुद्धिमान अपने बड़ों का नाम नहीं पढ़ते,
> जिसमें वे भोंडी तौर पर लिए जायं।

राजदूत का कार्य निपटा कर मिर्जा फौलाद हिंदुस्तान लौट आया और बादशाही सेवा में अच्छे कार्य करते हुए सफलता प्राप्त करता रहा। इस जातिवालों में मूर्खता तथा तुर्की शरारत, क्योंकि इनका स्वभाव उसी संबंध से था, दूसरों के साथ मिलकर पालित होने तथा सुख करने पर भी रह जाता है, विशेषकर मत तथा मिल्लत में, जिसमें कठोरता तथा हठ को भी धर्म का पक्ष करना समझते हैं। ३२ वें वर्ष के आरम्भ सन् ९९६ हि० (सन् १५८८ ई०) में मिर्जा फौलाद ने यौवन के उन्माद तथा वीरता के घमंड में मुल्ला अहमद टट्ठवी को, जो अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान था, भारी चोट देकर समाप्त कर दिया और स्वयं भी अकबरी न्याय द्वारा दंड को पहुँचा।

इसका विवरण इस प्रकार है कि जब अकबर ने पूर्ण शांति देने का निश्चय कर धार्मिक स्वतंत्रता जनसाधारण को दे दी तब हर एक पथवाले अपने अपने मत की बातों को निर्भय हो गाने लगे और हर एक अपने अपने नियमानुसार

निश्शंक ईश्वर पूजन करने लगे। मुल्ला अहमद बहुत बुद्धिमान होने भी इमामिया मत की बातों का दृढ़ हो समर्थन करने लगा। वह पहुँचते ही सुन्नी व शीआ मत की बात छेड़ता और उसे आदत के अनुसार बेकाएदे कह डालता। मिर्जा फौलाद उसी प्रकार सुन्नी मत के समर्थन मे कुराह चलता था और इस कारण उसने मन मे द्वेष रखकर उसे मार डालना चाहा। एक अर्द्धरात्रि को एक साथी के साथ अँधेरी गली मे घात में जा बैठा और एक को शाही नकीब की चाल पर उसे बुलाने को भेज दिया। मार्ग मे घात मे बैठे दुष्टो ने इस पर तलवार चलाई, जिससे उसका हाथ बाजू के बीच से कट गया। वह जीन पर से नीचे गिर गया। निडर वीर सिर कटा समझकर उसे छोड़कर आड मे चले गए। 'जे है खंजरे फौलाद' (फौलाद के खंजर से, वाह) से इस घटना की तारीख निकलती है। मुल्ला ऐसी चोट लगने पर भी हाथ उठाकर हकीम हसन के गृह पर पहुँच गया। बहुत प्रयत्न पर उन दोनों खूनी का पता लगा। रक्त के कुछ नए चिह्नो से पता तो लग गया, पर उनसे यह मेल न मिला सका। अकबर ने खानखानाँ, आसफ खाँ व शेख अबुल् फजल को मुल्ला के यहाँ हाल पूछने को भेजा। उसने दुखित हृदय से कुल बात फिर कह डाली। अकबर ने मिर्जा फौलाद को उसके साथी सहित मरवा डाला और हाथी के पैर मे बँधवाकर लाहौर के सारे शहर मे घुमवाया। साम्राज्य के अच्छे सरदारो ने उस दंडित के छुटकारा के लिये बहुत प्रयत्न किया पर कुछ लाभ न हुआ। मुल्ला भी चार पाँच दिन बाद मर गया। कहते हैं कि शेख फैजी व शेख अबुल्फजल ने मुल्ला के कब्र पर कुछ रक्षक नियत कर दिए थे। परंतु इसी समय बादशाही उर्दू कश्मीर की ओर जाने को बढ़ी जिससे नगर के मूर्खो और लुच्चो ने उसके शव को निकाल कर जला दिया।

मुल्ला का वृत्तांत विचित्रता से खाली नहीं है इसलिये यहाँ कुछ लिख दिया जाता है। मुल्ला के पूर्वज फारूकी व हनफी मत के थे और इसका पिता ठट्टा का काजी तथा सिंध का रईस था। पूर्वी हवा चलने के समय एक अरब यात्री सालिह एराक से ठट्टा पहुँचकर कुछ दिन मुल्ला के आस पास ठहरा रहा। उससे भेंट होने पर इमामिया मत के नियमों को जानकर इसकी उसमे रुचि हो गई और उ के मुख से वही निकलने लगा। यद्यपि यौवनकाल ही मे अपनी बुद्धि प्रगट कर उसने शिष्यो को पढ़ाने का साहस किया था पर कुछ विद्याओ को प्राप्त करने तथा कुछ पुस्तकों के समझने का उस नगर में साधन नहीं था इसलिए बाईस वर्ष की अवस्था मे फकीरो की चाल पर यात्रा की। मशहद मे पहुँचकर मौलाना अफजल कानी से इमामिया धर्मग्रंथो को गणित आदि के साथ इसने पढ़ा। वहाँ से यज्द और शीराज जाकर मुल्ला कमालुद्दीन हुसेन तबीब और मुल्ला मिर्जा जान से कानूनी पुस्तको और तजरीद की टीका व्याख्या सहित पारायण किया। कजवीन में शाह तहमास्प सफवी की सेवा में उपस्थित हुआ। जब शाह इसमाइल द्वितीय ईरान की

गद्दी पर बैठा और उसका सुन्नी होना प्रसिद्ध हुआ तब मुल्ला अहमद एराक, अरब व मक्का मदीना को चल दिया। बहुत से उस समय के विद्वानो से यह मिला और लाभ उठाया। इसके बाद समुद्र से दक्षिण पहुँचकर गोलकुंडा के शासक कुतुबशाह के यहाँ गया। २७ वे वर्ष मे फतहपुर सीकरी में अकबर के दरबार में उपस्थित होकर सम्मानित हुआ। इसने तारीख अलफी की रचना की, जिसमे इसलाम के एक सहस्र वर्ष का इतिहास है। उसने प्रत्येक वर्ष का वृत्तात बड़े प्रयत्न से चंगेज खाँ के समय तक का लिखकर दो जिल्दो मे पूरा किया। जब वह मारा गया तब बाकी हाल आसफ खाँ जाफर ने सन् ९९७ हि० तक का लिखकर पूरा किया। कहते है कि मुल्ला अहमद जो कुछ तारीख अलफी में लिखता या वह बादशाह के सामने पढ़ता था। जब खिलाफत के विवरण मे तीसरे खलीफा तक पहुँचा तब मारे जाने के कारणो तथा उनकी व्याख्या मे बहुत विस्तार किया। अकबर ने इस विस्तार से रंज होकर कहा कि मौलवी, इस घटना को क्यो इतना विस्तृत व बडा करता है। उसने तूरान के सर्दारो और बटो के सामने निर्भय होकर कह दिया कि यह घटना सुन्नियो तथा उसके समूह का रौज-एशुहदा (शहीदों का मकबरा) है, इसलिए इससे कम मे संतोष नही कर सका। इसकी ऐसी ही बाते शीआ मत की प्रसिद्ध हो गई थी। शेख अब्दुल् कादिर बदायूनी अपने मुंतखिबुत्तवारीख मे लिखता है कि एक दिन उसे बाजार में देखा कि कुछ एराकी उसकी प्रशंसा करते थे, एक ने कहा कि उसके कपोल पर 'तरफुज' का प्रकाश प्रगट है। मैंने कहा कि इसी से सुन्नीपन का नूर तुम्हारे मुख पर प्रकट है।

•

४३१. बयान खाँ

यह फारूकी शेख था और खानदेश के फारूकियो के समान इसने खाँ की पदवी पाई तथा इसे ढ़ाई हजारी मनसब मिला। यह दक्षिण प्रांत मे जागीर पाकर वही नौकरी करता रहा। यह फकीरी चाल पर रहता था। इसके शिष्यगण इसकी योग्यता का वर्णन किया करते थे। इसकी कुतुबुल्मुल्क सैयद अब्दुल्ला खाँ से पुरानी मित्रता थी। जब सन् ११२९ हि०, सन् १७१७ ई०, मे जब अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ दक्षिण से मुहम्मद फर्रुखसियर को कैद करने के लिए दिल्ली की ओर आया, उस समय यह बीमार था। सन् ११३० हि०, सन् १७१८ ई०, मे यह मर गया और औरंगाबाद नगर के फाजिलपुरा मोहल्ले में

अपनी हवेली में गाड़ा गया। इसका बड़ा पुत्र अपने पिता की पदवी पाकर जीवन व्यतीत कर रहा था। द्वितीय पुत्र महम्मद मुर्तजा खाँ था, जो अमीनुद्दौला बहादुर सर्फराज जंग सी पदवी और अच्छा मनसब पाकर बीदर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। यह सजीव तथा संतोषी पुरुप था। यह मित्रता निवाहने मे एक था। यह सन् ११८९ हि०, सन् १७७५ ई० में मर गया और हैदराबाद नगर के बाहर फतह फाटक के पास गाड़ा गया।

•

४३२. बरखुरदार, खानआलम मिर्जा

यह मिर्जा अब्दुर्रहमान दोल्दी का पुत्र था, जिसके पूर्वजगण तैमूरियावंश के पुराने स्वामिभक्त सेवक थे और पीढ़ी दर पीढ़ी तैमूर के समय से सर्दार होते आए थे। अब्दुर्रहमान का परदादा मीरशाह मलिक तैमूर का एक भारी सरदार था और अपनी स्वामिभक्ति तथा सत्यनिष्ठा के लिए सदा प्रसिद्ध रहा। अकबर के राज्यकाल के ४०वें वर्ष तक मिर्जा बरखुरदार ढाई सदी मंसब तक पहुँचा था। ४४वे वर्ष मे बिहार के विद्रोहियों में से एक दलपत उज्जैनिया को जब कैद से छुट्टी मिली और उसने अपने घर जाने की आज्ञा पाई तब मिर्जा बरखुरदार ने अपने पिता अब्दुर्रहमान का बदला लेने को, जो इस विद्रोही से युद्ध करने में मारा गया था, जंगल में कुछ आदमियो के साथ उस पर आक्रमण किया पर दल्पत बचकर निकल गया। अकबर ने आज्ञा दी कि मिर्जा को बाँधकर उस जमीदार के पास भेज दो। पर यह आज्ञा कुछ दरबारियो के कहने पर रद्द कर दी गई और यह कैद किया गया। सौभाग्य से यह शाहजादा सलीम की सेवा में अधिक प्रेम रखता था इसलिए उसकी राजगद्दी पर शिकार में अधिक दक्षता रखने के कारण यह कोसबेगी पद पर नियत किया गया। ४थे वर्ष जहाँगीरी मे इसे खानआलम की भारी पदवी मिली। ६ठे वर्ष सन् १०२० हि० में ईरान के शाह अब्बास सफवी ने यादगारअली सुलतान तालिश को अकबर की मृत्यु पर शोक मनाने और जहाँगीर की राजगद्दी पर प्रसन्नता प्रगट करने को भेजा। ८वें वर्ष में उसके साथ खानआलम राजदूत होकर गया। शाह रूमियों को दमन करने के लिए आजुरबईजान की ओर गया हुआ था इसलिए खानआलम को हिरात तथा कुम में कुछ दिन ठहरने के लिए कहा गया। कहते हैं कि बहुत से आदमी इसके साथ थे। दो सौ केवल बाजवाले तथा मीर शिकार ही थे और एक सहस्र विश्वस्त बादशाही सेवक थे। अधिक दिन ठहरने के कारण मिर्जा बरखुरदार ने बहुत से आदमियों को हिरात से लौटा दिया।

सन् १०२३ हि० (सन् १६१७-१८) में जब शाह राजधानी कजवीन मे लौट कर आया तब खानआलम सात आठ सौ आदमियो को साथ लेकर तथा सोने चाँदी के सामान तथा हौदा सहित दस भारी हाथियो, अनेक प्रकार के शिकारी जानवर, जंगी घोडे पक्षिगण, बोलनेवाली चिड़ियाएँ, गुजराती बैल, चित्रित रथ तथा पालकियो सहित नगर के पास पहुँचा। बहुत से बड़े-बड़े सर्दारो ने इसका स्वागत किया। और इसे सआदताबाद बाग़ में ले आए। दूसरे दिन जब शाह सआदताबाद के मैदान में चौगान और कबक खेल रहा था तब खानआलम सेवा मे उपस्थित हुआ। शाह ने इसका बड़े समान के साथ आदर किया और कहा कि हमारे और बादशाह जहाँगीर के बीच मे भाईचारे का बर्ताव है और उन्होने तुमको भाई लिखा है इसलिए भाई का भाई ही है। इसके बाद उसके गले से गले मिला। खानआलम चाहता था कि प्रतिदिन वह एक-एक उपहार भेंट दे पर शाह जंगल के शिकार को उस प्रात मे जाना चाहते थे, जो माजिंदरान देश का एक विशेष अहेर है और जिसका समय बीत रहा था, इसलिए एक ही दिन इसने सब अमूल्य: उपहार पेश कर दिए और बाकी सामान बयूतात को सौंप दिए कि शाह क्रमश उन्हे देख सके। शाह इसकी संगत से इतना मुग्ध था कि यदि वह सब लिखा जाय तो कल्पनातीत समझा जायगा। कृपा के आधिक्य से शाह इसे जानआलम कहा करता था और इसके बिना एक सायत भी नही रह सकता था। यदि किसी दिन या रात्रि मे यह उपस्थित न हो सकता तो शाह बिना किसी विचार के इसके निवासस्थान पर पहुँचकर उसपर अधिक कृपा दिखलाता था। जिस दिन यह शाह से बिदा होकर नगर के बाहर पडाव में आकर ठहरा उस दिन शाह ने आकर क्षमा प्रार्थना की थी।

वास्तव में खानआलम ने इस सेवा-कार्य को बडी खूबी से किया और काफी धन व्यय कर अच्छा नाम पैदा किया। 'आलम-आरा अब्बासी' इतिहास का लेखक सिकन्दर बेग मुन्शी लिखता है कि जिस दिन खानआलम कजवीन मे गया था, मैंने उसका ऐश्वर्य देखा था और विश्वसनीय आदमियो से सुना भी था कि इतने प्रभूत ऐश्वर्य तथा वैभव के साथ भारत या तुर्की का कोई भी राजदूत सफवी राजवंश के आरभ से अब तक ईरान मे नही आया था। यह भी नही ज्ञात है कि पूर्वकाल के खुसरू या किसान वंश के सुलतानो के समय भी कोई इस प्रकार आया था या नही। सन् १०२९ हि० (सन् १६२० ई०) के आरंभ मे तथा जहाँगीर के राज्य के १४वें वर्ष के अन्त में ईरान से लौटकर खानआलम कस्बा कलानौर में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ, जब कि जहाँगीर बादशाह होकर प्रथम बार कश्मीर की ओर गया था। बादशाह ने अत्यंत कृपा के कारण इसे दो दिन रात अपने शयनगृह में रखा और अपनी खास लिहाफ व दरी दी। सफल राजदूतत्व के

पुरस्कार में इसे पाँच हजारी ३००० सवार का मंसब मिला। विचित्र यह है कि बादशाहनामा शाहजहानी ने अब्दुल हमीद लाहौरी लिखता है कि खानआलम मधुर भाषण तथा सभा चातुरी में, जो राजदूत में आवश्यक है, कुशल न था और इसलिए जैसा चाहिए वैसा कार्य नहीं कर सका। नहीं ज्ञात होता कि उसने ऐसा क्यों लिखा और इसके लिये उसका क्या आधार था ?

जब शाहजहाँ हिंदुस्तान की राजगद्दी पर सुशोभित हुआ तब खानआलम छ हजारी ५००० सवार के मंसब, झंडा व डंका के साथ मिर्जा रुस्तम सफवी के स्थान पर बिहार का सूबेदार नियत हुआ। अफीम के आधिक्य से राजकार्य ठीक तौर पर नहीं कर सका, इसलिये उसी वर्ष वहां से हटा दिया गया। ५वें वर्ष सन् १०४१ हि० (सन् १६३२ ई०) में जब शाहजहां बुर्हानपुर से आगरे लौटा तब खानआलम सेवा में उपस्थित हुआ। बादशाह ने इसके वार्द्धक्य तथा अफीम के व्यसन के आधिक्य के विचार से सेवा से क्षमाकर एक लाख रुपया वार्षिक वृत्ति दे दी। यह राजधानी आगरा में शांति के साथ निवास करने लगा और कुछ दिन बाद मर गया। यह निस्संतान था। इसका भाई मिर्जा अब्दुस्सुबहान इलाहाबाद का फौजदार नियत होकर अच्छी तरह अपना कार्य करता रहा। यहाँ से बदल कर यह काबुल में नियत हुआ और अफरीदियों के युद्ध में मारा गया। इसका पुत्र शेरजाद खाँ बहादुर साहसी पुरुष था और सहिंद: के युद्ध में खानजहाँ लोदी से लड़ते हुए मारा गया। आलमआरा का लेखक लिखता है कि खानआलम को जहाँगीर की ओर से भाई की पदवी मिली थी पर हिंदुस्तान के इतिहासों में इसका कहीं उल्लेख नहीं है और न जनसाधारण में ऐसा प्रचलित ही है। परन्तु जब शाह ने भेंट के समय इस बात को कहा तब इसकी सचाई में शंका करने का कोई कारण नहीं है क्योंकि बिना ठीक तौर समझे हुए वह ऐसी बात कह नहीं सकता था। ईश्वर जाने।

४३३. बसालत खाँ मिर्जा सुलतान नजर

यह अर्लात के चगत्ताई जाति का था। इसका पिता मिर्जा मुहम्मदयार बलख का निवासी था और वहाँ से शाहजहाँ के राज्य-काल में हिन्दुस्तान आकर मनसबदारों में भर्ती हो गया। मिर्जा सुलतान नजर हिन्दुस्तान में पैदा हुआ और अवस्था प्राप्त होने पर मनसब पाकर महम्मद आजमशाह की सेवा में रहने लगा। अन्त में यह शाहजादे का वकील होकर दरबार में रहने लगा। औरंगजेब की मृत्यु पर

महम्मद आजमशाह ने इसको तीन हजारी मनसब और सलाबत खाँ की पदवी देकर अपने दीवान खास का दारोगा नियत किया। बहादुरशाह के साथ के युद्ध में यह घायल होकर मैदान मे गिर गया। इसके अनन्तर बहादुरशाह की सेवा में पहुँच कर इसने कमालत खाँ की पदवी पाई और उस घुड़सवार सेना का बख्शी नियत हुआ, जो सुल्तान आलीतबार के नाम से प्रसिद्ध थी। दक्षिण से लौटने समय वेतन देने मे देरी करने के कारण रिसाले के आदमियो की हालत बहुत खराब हो गई थी इसलिये यह उस पद से हटा दिया गया। जहाँदारशाह के राज्य-काल में जुल्फिकार खाँ के प्रयत्न से इसका पहिले का मनसब और जागीर बहाल हो गई। मुहम्मद फर्रुखसियर के समय में इसे हुसेनअली खाँ पुराने परिचय का विचार कर अपने अधीनस्थ सेना का, जो राजपूतो को दमन करने के लिये नियत हुई थी, बख्शी बनाकर अपने साथ लिवा ले गया। इसके बाद दक्षिण की यात्रा में भी हुसेनअली खाँ के साथ जाकर सन् ११२७ हि० मे उस युद्ध मे, जो दाऊद खाँ पन्नी से बुरहानपुर नगर के पास हुआ था, यह मारा गया और उसी नगर के सनवारा मोहल्ले में अपने मकान मे गाड़ा गया। यह मित्रता निबाहने मे प्रसिद्ध था और शुभ बातें कहने मे बहुत दक्ष था। इसका बड़ा पुत्र मिर्जा हैदर हुसेनअली खाँ की सहायता से पिता के बाद उक्त बख्शी के पद पर नियत किया गया। सैयदों के बाद सेवा छोड़ कर यह एकांतवास करने लगा। दूसरे पुत्र को, जो अपने पिता की पदवी पाकर आसफजाह के साथ था, इस ग्रन्थ के लेखक ने देखा था। इसमे दो पुत्र, जो बच गए थे, मनसब तथा थोड़ी सी जागीर पाकर कालयापन करते रहे।

•

४३४. बहरःमंद खाँ

इसका नाम अजीजुद्दीन था और यह मीर बख्शी था। इसका पिता मिर्जा बहराम प्रसिद्ध सादिक खाँ का चौथा पुत्र था, जो यमीनुद्दौला आसफ खाँ का बहनोई था। जब सादिक खाँ की मृत्यु हुई, उस समय मिर्जा बहराम सब भाइयों से छोटा और अल्पवयस्क था पर उसे पाँच सदी १०० सवार का मनसब मिला। इसके अनंतर उसने कुछ तरक्की न की और कभी जवाहिरखाने का और कभी बावर्चीखाने का दारोगा नियत होता रहा। यह डेढ़ हजारी २०० सवार के मनसब तक पहुँचा था। जब इसका बड़ा भाई उम्दतुल्मुल्क जाफर खाँ विहार का सूबेदार नियत हुआ तब यह भी उसी प्रांत मे नियुक्त किया गया। जब ३० वें वर्ष में

दाराशिकोह के बड़े पुत्र सुलेमानशिकोह का इसकी पुत्री से विवाह होना निश्चय हुआ तब यह पटना से बुलाया गया और शाहजहाँ ने इसे डेढ़ लाख रुपये के मूल्य के रत्न जड़ाऊ बर्तन और दूसरी वस्तुएँ विवाह के उपहार के रूप में दिया। इसके अनंतर यह अंधा होकर बहुत दिनो तक राजधानी मे एकांतवास करता रहा। इसके दो पुत्र अजीजुद्दीन और शरफुद्दीन थे। पहिले को औरंगजेब के राज्य के १० वें वर्ष मे बहर मंद खाँ की पदवी मिली। यह योग्यता, कार्य्य-कुशलता तथा अनुभव रखता था, ऐसी कम सेवायें थी, जिस पर यह नियत न हुआ हो और इस प्रकार फीलखाना के दारोगा पद से अहदियों का बख्शी होता हुआ आखता बेगी नियत हुआ। २३वें वर्ष मे सलावत खाँ के स्थान पर मीर आतिश नियुक्त होकर सम्मानित हुआ। इसी वर्ष बादशाह अजमेर गए। उक्त खाँ आनासागर तालाव के उस पार बाग में ठहरा हुआ था। दैवयोग से यह एक पेड़ के नीचे बैठा हुआ था कि बिजली तड़की और यह कूद कर तालाब मे जा गिरा। कुछ देर तक बेहोश रहने पर इसकी चेतनता लौटी। २४ वे वर्ष यह मीर तुजुक हुआ इसके अनंतर यह लुत्फुल्ला खाँ के स्थान पर गुसुलखाने का दारोगा नियत हुआ। इसके अनंतर बादशाही सेना दक्षिण पहुँची और उसने अहमदनगर के पास पड़ाव डाला। बहर मद खाँ योग्य कर्मचारी होने के साथ साथ कुशल सेनापति भी था इसलिये शत्रुओ पर कई बार धावा करने को भेजा गया। २८ वें वर्ष मे जब इसका पिता राजधानी मे मर गया तब आज्ञा के अनुसार बख्शीउल्मुल्क अशरफ खाँ इसको दरबार मे लिवा लाया और इसे शोक का खिलअत देकर सांत्वना दिलाई। यह जुम्लतुल्मुल्क असद खाँ का भांजा था, इसलिये उसे भी नीम-अस्तीन मिली, जिसे बादशाह पहिरे हुए थे। ३०वें वर्ष मे बीजापुर विजय के अनंतर रुहुल्ला खाँ के स्थान पर यह द्वितीय बख्शी नियत हुआ, जो प्रथम बख्शी बना दिया गया था। जब जुम्लतुल्मुल्क असद खाँ जिजी दुर्ग पर अधिकार करने भेजा गया तब यह वजीर नियत हुआ। ३६वे वर्ष मे मृत रुहुल्ला खाँ के स्थान पर यह मीर बख्शी हुआ और इसका मनसब चार हजारी २००० सवार का हो गया। इसके बाद इसका मनसब पाँच हजारी ३००० सवार का हो गया। इस बीच यह कई बार शत्रु को दंड देने गया। ४५ वें वर्ष में जब मरव'नगढ़ पर, जो खतानून से दो कोस पर है, फतउल्ला खाँ बहादुर के प्रयत्न से अधिकार हो गया और शाही पडाव वहाँ पहुँचा तब एक भारी सेना बख्शी उल्मुल्क बहर'मंद खाँ के अधीन नाँदगढ़, जिसे नामगढ़ भी कहते हैं, और चंदन तथा मंदन, जिन्हें मिफनाह (नाबी) और मफ-तूह (खुला हुआ) के नाम से प्रसिद्ध कर रखा था, विजय करने को नियत हुई। फतहउल्ला खाँ की सहायता से इसने थोड़े ही दिनों मे इन तीनो दुर्गो को विजय कर लिया और लौट आया। ४६ वें वर्ष खेलना दुर्ग पर अधिकार होने के बाद ५ जमादिउल् आखिर सन् १११८ हि०, १६ अकतूबर सन् १७०२ ई०, को यह मर

गया। जुम्लतुल्‌मुल्क अमीरुल्‌उमरा असद खाँ की पुत्री इसके घर में थी, इसलिये शाहजादा मुहम्मद कामबख्श आज्ञा के अनुसार इसको शोक से उठाकर बादशाह के पास लिवा लाया, जिसे अनेक प्रकार से सांत्वना दी गई। बहर.मंद खाँ को लडके न थे। इसकी एक पुत्री मुहम्मद तकी खाँ बनी मुखतार को व्याही थी, जिसका पुत्र वर्तमान बहर मंद खाँ है। इसका वृत्तात मृत दाराब खाँ की जीवनी में दिया गया है। दूसरी पुत्री मृत अमीर खाँ के बडे पुत्र मीर खाँ को बहर मद खाँ की मृत्यु के बाद व्याही गई। औरगजेब के राज्य मे मीर खाँ का मनसब एक हजारी ६०० सवार का था। बहादुरशाह के राज्य के आरंभ मे आसफुद्दौला का नायब होकर कुछ दिन लाहौर का सूबेदार और उसके बाद कालिंजर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ, जो इलाहाबाद प्रात के प्रसिद्ध दुर्गों मे से है।

संक्षेपत मृत बहर मंद खाँ एक सम्मानित, विनम्र, ऐश्वर्यशाली, पवित्र वाला, आचारवान तथा मिलनसार सरदार था। अतकाल मे रोग से इसकी जिव्हा बात-चीत मे लडखडाने लगी थी। कहते हैं कि दक्षिण की चढाई मे जब यह मीरबख्शी और वैभवशाली सरदार हो गया तब चाहता था कि यदि बादशाह उसे दिल्ली में रहने के लिये एक साल की छुट्टी दे तो वह एक लाख रुपया भेंट दे। इसके साथियों ने कहा कि दिल्ली की सैर हिन्दुस्तान के बादशाह की मुसाहिबी और प्रजा के सम्मान से बढ कर नही है इसने उत्तर दिया कि यह ठीक है कि यह ऐश्वर्य बडा है पर ऐसे समय का आनंद यही है कि अपने नगर जाऊँ और अपना नगरपति बनूँ। इस अभिमानी आत्मा को इससे बढ़ कर कोई प्रसन्नता नही है कि जिस स्थान मे यह पहिली दशा मे देखा गया था यहाँ अब वर्तमान अवस्था मे देखा जाय।

•

४३५. बहराम सुलतान

यह बल्ख के शासक नज्र मुहम्मद खाँ का तीसरा पुत्र था। खुसरू सुलतान के के जीवन वृतात के अत और अब्दुल् रहमान सुलतान की जीवनी मे नज्र मुहम्मद खाँ का वृत्त और अंत का हाल क्रमश लिखा जा चुका है, इसलिये उसके पूर्वजो का कुछ हाल यहाँ लिखना अनिवार्य है नज्र मुहम्मद खाँ और उसका बड़ा भाई इमाम कुली खाँ दोनो दीन मुहम्मद खाँ प्रसिद्ध नाम यतीम सुलतान के लडके थे, जो जानी सुलतान का पुत्र और यार महम्मद खाँ का पौत्र था। अंतिम ख्वारिज्म

की राजधानी ऊरगंज के शासक हाजिम खाँ का भतीजा था। जब इसके पूर्वजों से शेर खाँ नाम का प्रांत रूमियों ने ले लिया तब यार मुहम्मद खाँ दरिद्रता मे वहाँ से चला आया। यह हाजिम खाँ के बुरे बर्ताव मे भी आगा। जब वह मावरुन्नहर पहुँचा तब प्रसिद्ध अब्दुल्ला खाँ के पिता सिकंदर खाँ ने इसको योग्य तथा अच्छे वंश का युवक समझ कर अपनी पुत्री का विवाह इससे कर दिया, जो अब्दुल्ला खाँ की सगी बहन थी। इस विवाह से जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम जानी खाँ था। इसके पाँच पुत्र थे, सबसे बड़ा दीनमुहम्मद खाँ था और अन्य बाकीमहम्मद खाँ, वलीमहम्मद खाँ, पायन्दा महम्मद सुल्तान और अलीम सुल्तान थे। ये पाँचों भाई अब्दुल्ला खाँ के सामने ही तून, कायन, कुहिस्तान के कुल प्रांत में दिन व्यतीत करते थे। अलीम सुलतान वहीं मर गया। जिस समय अब्दुल्ला खाँ और उसके पुत्र अब्दुल्मोमीन खाँ के बीच युद्ध होने लगा तब इन भाइयो ने अब्दुल्ला खाँ के स्वत्वो का विचार करके अब्दुल्मोमीन खाँ की सेवा स्वीकार नही की। जब वह तूरान का शासक हुआ तब उसने अपने परिवारवालो और संबंधियो में से हर एक को जिनसे उसे अच्छे व्यवहार तथा सभ्यता की शंका हो गई उन्हे निकाल बाहर किया अर्थात् अपने परिवार (दूद मान) से धुँआ (दूद) निकाल दिया। यार महम्मद खाँ को भी कुव्यवहार कर बल्ख से निकाल दिया और जानी खाँ को पकड़ कर कैद कर दिया। अन्य भाइयो ने खुरासान से इसके विरुद्ध बलवा कर दिया। दैवयोग से अब्दुल्मोमीन खाँ सन् १००६ हि० मे खुरासान पर चढ़ाई करने के विचार से भारी सेना के साथ बुखारा मे रवाना होकर बल्ख पहुँचा था कि एक रात्रि वह उजबको के एक तीर से मारा गया, जो दुखियो के कष्ट से पीडित होकर घात मे बैठे हुए थे। दीन महम्मद खाँ ने इस अवसर को अच्छा पाकर बड़ी प्रसन्नता मनाई और जिस स्थान पर था, वहाँ से हिरात पहुँच कर उसपर अधिकार कर लिया तथा मर्व पर वली महम्मद को अध्यक्ष नियत कर दिया। तूरान में सर्वत्र बडा उपद्रव मचा हुआ था और हर एक सर सरदार बना था तथा हर एक दर दरबार बन गया था। इसलिये खुरासान के उजबको ने निरुपाय होकर दीन मोहम्मद खाँ को शासक मान लिया। उसने हिरात मे राज्य स्थापित कर अपने दादा यार महम्मद खाँ के नाम से खुतबा पढवाया और सिक्का ढलवाया। यार महम्मद खाँ बल्ख से निकाले जाने पर हिंदुस्तान चला आया था और अकबर की सेवा मे पहुँच कर बादशाही कृपा पा चुका था। कुछ दिन बाद यात्रा करने के विचार से वह छुट्टी लेकर कंधार पहुँचा था कि आकाश ने यह राज्यविप्लव कर दिया। अभी दीन मोहम्मद खाँ अपनी इच्छा पूरी नही करने पाया था कि शाह अब्बास सफवी युद्ध के लिए सेना तैयार कर हिरात आ पहुँचा, जो अपना पैतृक प्रांत छुडा लेने का अवसर ढूंढ रहा था। कुछ दूरदर्शी हितैषियों ने दीन महम्मद से कहा कि खुरासान के बारे मे झगड़ा

करना अनुचित है क्योंकि वह सौ वर्ष से कजिलबाशो के हाथ मे है और उसका केवल एक टुकड़ा हम लोगो के अधिकार मे है। उचित यही है कि कजिलबास बादशाह से मित्रता प्रगट किया जाय और तुर्किस्तान का प्रबंध किया जाय, जो उसका प्राचीन पैतृक देश है तथा जिसका कोई योग्य सरदार नही है। उस प्रांत को शात करने के अनंतर यदि वह अपने को समर्थ समझे तो खुरासान पर अधिकार करना अनुचित न होगा। दीन महम्मद खाँ ने युद्ध-प्रिय युवको के बहकाने से, जो उस प्रांत के शासन के स्वाद को अभीतक भूल नही सके थे और अब्दुल्ला खाँ के समय खुरासान मे उपद्रव होने से कई कजिलबाश सरदारो पर युद्ध में विजय प्राप्त कर चुके थे, इस युद्ध को भी सहज और सुगम समझ लिया। हिरात से चार फर्सख पर पुल सालार के पास रबातविरियाँ मे युद्ध हुआ। भारी लड़ाई के बाद उजबक सेना परास्त हो गई और लगभग पाँच छः सहस्र बहादुर सैनिको के मारे जाने पर दीन महम्मद खाँ भागा। जब वह मारूचाक पहुँचा तब घावो के कारण बहुत निर्बल हो गया। इसके मित्रों ने एक स्थान पर इसे आराम देने के लिये उतारा, जहाँ वह मर गया।

कुछ लोग कहते हैं कि वह अपने सिपाहियो के नौकरो के यहाँ एक खेमें मे छिपा रहा था, जहाँ उसे न पहचान कर उन आदमियो ने उसके साथ अनुचित व्यवहार किया और जब उसे पहचाना तब दंड पाने के डर से उसे मार डाला। पायन्दा मुहम्मद सुल्तान कंधार गया और वहाँ के प्रांताध्यक्ष यारबेग खाँ ने उसे कैद कर बादशाह अकबर के पास भेज दिया। उसने हसनबेग शेख उमरी को सौंपा, जो काबुल जा रहा था। इसने पंजाब के सूबेदार कुलीज खाँ के पास पहुँचा दिया। एक वर्ष बाद लाहौर मे इसकी मृत्यु हो गई। वली मुहम्मद खाँ अपने बड़े भाई दीनमहम्मद खाँ का वृत्तात बिना जाने हुए ही युद्ध स्थल से तीस चालीस आदमियो के साथ निकल कर बुखारा की ओर चला गया और मीर-मुहम्मद खाँ से जा मिला, जो अब्दुल्ला खाँ का एक संबंधी था और जिसे अब्दुल्-मोमिन खाँ ने यह समझ कर नही मार डाला था कि वह अफीम खानेवाला फकीर है और जो बराबर अफीमचियों के अड्डे पर दरिद्रता तथा निराशा में दिन बिताया करता है। यह बाद में तूरान की गद्दी पर बैठा। जिस समय तवक्कुल खाँ कज्जाक मावरुन्नहर को शक्तिशाली बादशाह से खाली पाकर सेना के साथ चढ आया और युद्ध मे जानी खाँ के एक पुत्र बाकी मुहम्मद खाँ ने बड़ी बहादुरी व साहस दिखलाया तब पीरमहम्मद खाँ ने इस अच्छी सेवा के उपलक्ष मे उसे समरकन्द का शासनाधिकार दे दिया। बाकी मुहम्मद खाँ ने कुछ समय तक सेवा और अधीनता मानने के अनन्तर अपने को शासन कार्य मे पीरमुहम्मद खाँ से अधिक समझ कर स्वयं राज्य करने की इच्छा से खाँ की पदवी धारण कर ली और मियाँकाल देश पर अधिकार करने के लिये सेना लेकर समरकंद से बाहर

निकला। पीरमुहम्मद खाँ यह समाचार पाकर दुखी हो चालीस सहस्र सवारों के साथ समरकंद पहुँचा। वाकी महम्मद खाँ ने बहुत चाहा कि अधीनता का बहाना कर इस उपद्रव को शात करे पर कोई लाभ नहीं निकला। निरुपाय होकर उसने युद्ध की तैयारी की और एक दिन दुर्ग के बाहर निकल कर पीरमहम्मद खाँ को मध्य सेना पर धावा कर दिया और उसे परास्त कर दिया। पीरमहम्मद खाँ घायल होकर भागते समय पकडा गया और वाकी महम्मद खाँ की आज्ञा से उसी समय मार डाला गया। इस विजय के अनंतर वाकी महम्मद खाँ बुखारा पहुँच कर राजगद्दी पर बैठ गया और अपनी योग्यता तथा वीरता से उसने पूरे बल्ख और बदख्शाँ पर अधिकार कर लिया। उसका दादा यारमहम्मद खाँ, जो अभी तक कंधार ही में था, यह समाचार सुनकर हज्ज जाने का विचार छोड़कर तूरान की ओर चल दिया। वाकी मुहम्मद खा ने बड़ी प्रतिष्ठा के साथ उसका स्वागत कर गद्दी पर बैठाया और उसके नाम सिक्का ढलवाया और खुतबा पढ़वाया पर दो वर्ष बाद जब उसने देखा कि उसका दादा अपने पुत्रो अब्बास मुलतान, तरसून सुलतान और पीरमहम्मद मुलतान का, जो जानी खाँ की माता के पुत्र नहीं थे, पक्ष ले रहा है तब उसने यारमुहम्मद खाँ के हाथ से राज्याधिकार लेकर अपने पिता जानी खां को उसके स्थान पर बैठा दिया। इसके अनंतर जब यारमहम्मद खां और जानी खा दोनो मर गए तब वाकीमहम्मद खा ने अपने नाम सिक्का ढलबाया और खुतबा पढ़वाया, जिससे इसकी शक्ति और सम्मान सुरैया के समान हो गया और इसके राज्य के झडे आकाश के तीसरे गुंबज तक पहुँच गए। सन् १०१४ हि० में इसकी मृत्यु हुई और वलीमुहम्मद गद्दी पर बैठा। इसने बल्ख, अन्दखूद और उसके अतर्गत के देश, जो वंक्षु नदी के इस पार थे और इसके भाई के समय इसके अधीन थे, अपने भतीजो इमामकुली सुलतान और नजमुहम्मद खा को दे दिया, जो दीनमहम्मद खा के लडके थे। ये दोनो अपने प्रतिष्ठित चाचा की सेवा मे बहुत दिन व्यतीय कर अंत में अपने यौवन के कारण और मूर्ख मित्रो के बहकाने मे अधीनता छोड़ कर विद्रोही हो गए। ईरान के राजदूत के आने जाने से अपने पितृव्य पर धर्म बदलने की शंका दिखला कर बहुत से उजबक सरदारो को उसके विरुद्ध कर दिया। अन्त मे देहबीदी का ख्वाजा अबू हासिम, मुहम्मद वाकी कलताक; जो वली मुहम्मद खां के पहिले से समरकंद का शासक था और यलंगतोश बे अतालीक ने, जो उस स्थान पर उसकी सहायता को नियत था और जो वली मुहम्मद खाँ के कुवताव से हुआ था, इमामकुली खा के नाम से खुतबा पढ़वा कर तथा सिक्का ढलवाकर इसको बल्ख से बुलवाया। वह अपने भाई नज मुहम्मद खाँ के साथ जैहून नदी पार कर चाहता था कि कोहतन मार्ग से समरकंद जाय। वली मुहम्मद खा यह समाचार पाकर बुखारा से सेना एकत्र कर इनके मार्ग में आ डटा। इमाम कुली खा में इससे युद्ध करने की शक्ति नहीं

थी, इसलिये मिलने पर इसने मध्यस्थो से बहुत से उलाहने कहलाए। वली मुहम्मद खाँ भी नही चाहता था कि युद्ध हो। इसी बीच दैवयोग से एक रात्रि दो तीन सुअर वली मुहम्मद खाँ के खेमे मे मरघट के जगल से निकल कर आ घुसे। बहुत से आदमी खेमो से चिल्लाते हुए बाहर निकल कर उनसे लड़ने लगे। यह शोर मचा कि इमाम कुली खाँ ने रात्रि आक्रमण किया है। सैनिक लोग वली मुहम्मद खाँ के कनात के पास इकट्ठे हो गए पर उसका कुछ भी पता न लगा, क्योंकि यह उस समय अपने आदमियो पर शका करके कुछ विश्वासपात्रो के साथ अलग हट गया था। झुड के झुड मनुष्य दोनो भाइयो से जा मिले। कुछ लोगों का कहना है कि यह रात्रि आक्रमण की खबरे साधारण आदमियो की उठाई हुई नही थी प्रत्युत् उसके अच्छे सेवको ने स्वामिद्रोह तथा लोभ के कारण वली मुहम्मद खाँ के निमक का विचार न करके और इसकी असफलता मे अपनी सफलता समझ कर रात्रि आक्रमण का शोर मचा दिया और शत्रु की ओर आशा का मुख फेर दिया। वली मुहम्मद खा कुछ समय तक यह दृश्य देखकर बड़े कष्ट और नैराश्य मे बुखारा चला गया। वहा भी अपना ठहरना उचित न देखकर निराश हो ईरान चला गया।

इमाम कुली खाँ इस प्रकार आशा से अधिक सफलता पाकर फुर्ती से बुखारा पहुँचा और गद्दी पर जा बैठा। इसने नज मुहम्मद खाँ को बलख और बदख्शाँ दे दिया। अब्दुल्ला खाँ का छोटा भाई एबादुल्ला सुलतान की पुत्री आयखानम पहिले अब्दुल्मोमिन खाँ को ब्याही गई थी, जिसके बाद वह ऐशम खाँ कज्जाक के अधिकार में रही। इसके बाद पीरमुहम्मद खाँ से और उसके बाद बाकी मुहम्मद खाँ की स्त्री हुई। यह उजबकों में अपने सौन्दर्य और मंगल-चरण होने के लिए प्रसिद्ध थी। वली मुहम्मद खाँ ईरान जाते समय समय की कमी के कारण इसको चारजू दुर्ग मे, जो जैहून के किनारे है, छोड गया था। इमाम कुली ने इसको बुलाकर अपनी रक्षिता बनाना चाहा। जब उसने स्वीकार नही किया तब इसने काजियो और मुफ्तियो से उपाय निकालने को कहा। किसी ने ऐसा करने की सम्मति नही दी पर एक ससारी काजी ने धर्म का विचार छोड कर यह फतवा दिया कि वली मुहम्मद खाँ विधर्मी हो जाने के कारण मुसल्मानी घेरे के बाहर चला गया, इसलिए उसकी स्त्रियाँ बधनरहित हो गई। उस निडर ने अपने जीवित चाचा की स्त्री से, जिसे तिलाक नही दिया गया था, निकाह कर लिया, जो किसी धर्म में भी उचित नही है।

वली मुहम्मद खा के इस्फहान पहुँचने पर शाहअब्बास प्रथम ने इसका स्वागत किया और यद्यपि इसने अज्ञान से घोड़े पर सवार रहकर ही भेंट की थी पर शाह ने नम्रता और उत्साह से इसका पूरी तरह आतिथ्य किया। इसके पहुँचने की

तारीख 'आन्दः बादशाह तूरान' (तूरान का बादशाह आया) निकलती है। यद्यपि शाह अपनी मित्रता और उत्साह बहुत बढ़ाता गया पर वली मुहम्मद खां मौन रहकर कुछ नहीं खुला। कुछ समय के अनंतर जब गाने बजाने का एक जलसा समाप्त हुआ और राजनीतिक बातें होने लगीं तब शाह ने कहा कि इस वर्ष रूस के तुर्क तबरेज पर चढ आये हैं, इन्हें दमन करना आवश्यक है। इसलिए अगले वर्ष वह स्वयं खां के साथ जाकर उसे पैतृक गद्दी पर बैठा देगा। खां ने कहा कि रुकना और देर करना ठीक नहीं है। अभी इमाम कुली खां की शक्ति दृढ नहीं हुई है और कजिलबाशों की सहायता उजबकों के लिए भय की वस्तु हो जायगी। दैवात् इसी समय इसे उजबक सरदारों के पत्र मिले, जिनके विद्रोह के कारण ही इसे भागना पडा था। इन पत्रों में उन सबने अपने कार्यों के लिए लज्जा प्रगट की थी और भविष्य के लिए अपनी स्वामिभक्ति और सेवा का वचन दिया था। इस पर वली महम्मद खां शाहब वहाये ने छुट्टी लेकर बुखारा की ओर रवाना हो गया। छ महीने के अनन्तर, जो एराक आने जाने में लग गए थे, इसने तूरान पहुँचकर कुछ सरदारों की सहायता से, जो अपने कर्म के लिए पश्चाताप करते हुए उसका बदला चुकाना चाहते थे, बुखारा पर बिना युद्ध अधिकार कर लिया। इमाम कुली खाँ बुखारा से भागकर कर्शी आया और वहाँ आदखानम को छोडकर समरकद चला गया। वली मुहम्मद खाँ अपनी सफलता के घमंड और अपने स्वाभाविक उन्माद से लोगों से बदला लेने में लग गया और योग्य सेना बिना एकत्र किए हुए दुष्टों और लडाई लगानेवालों की बात पर विश्वास कर उसने अपने भतीजों पर चढ़ाई कर दी। समरकंद से दो फर्सख पर दोनों पक्षवालों का सामना हो गया। उस जाति के बहुत से सरदार युद्ध से हट कर पीछे की ओर चल दिए। वली मुहम्मद खां इस बार भागने की अप्रतिष्ठा की लज्जा न सह सका और कुल दो तीन सौ निजी सैनिकों के साथ इमामकुली खाँ की सेना पर धावा कर घायल हो मैदान में गिर पड़ा। इसको उठा कर सैनिक गण इमामकुली खाँ के सामने ले गए, जिसने इसे तुरन्त मरवा डाला। इस प्रकार तूरान का राज्य बिना किसी साझीदार के इमामकुली खाँ को मिल गया। बल्ख और बदख्शाँ का शासन नज्र मुहम्मद खाँ को मिला। ३५ वर्ष राज्य करने पर सन् १०५१ हि० में इमामकुली खाँ के अंधे हो जाने पर उस देश के कार्यों में गड़बड मच गई। नज्र मुहम्मद खाँ ने अपनी आँखें भाई के स्वत्वों की ओर से बंद कर समरकंद और बोखारा ले लेने का विचार किया। यद्यपि उजबक लोगों ने, जो इमामकुली के अच्छे व्यवहार के कारण अत्यंत प्रसन्न थे, एकमत होकर कहा कि यद्यपि आँखें अंधी हो गई हैं पर हृदय की आँखें खुली हुई हैं और हम लोग आप का राज्य अंधे होते हुए भी स्वीकार करते हैं पर जब इमामकुली खाँ ने हृदय से नज्र मुहम्मद खाँ को अपना स्थानापन्न होना मान लिया तब निरुपाय होकर उसे समरकद से

लिवा लाकर उसके नाम खुतबा पढ़ा। नज्र मुहम्मद खाँ ने उसको एराक के मार्ग से हज्ज को रवाना किया, यद्यपि वह हिंदुस्तान के मार्ग से जाना चाहता था और उसके हरम की किसी स्त्री को, यहाँ तक कि आयखानम को, जो उसकी प्रेयसी थी, साथ जाने नही दिया। इसने उसकी कुल सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। इमामकुली खाँ बडे कष्ट से ख्वाजा नसीब, नजर वेग मामा, रहीम वेग और ख्वाजा मीरक दीवान, लगभग पन्द्रह आदमी उजबक और दासो के साथ रवाना होगया और शाह अब्बास द्वितीय से भेंट कर तथा उसका आतिथ्य ग्रहण कर काबा चला गया। वहाँ से वह मदीना गया, जहाँ उसकी मृत्यु हुई और बकीआ में वह गाडा गया।

नज्र महम्मद खाँ का गद्दी पर बैठना, उजबको का उपद्रव और हिंदुस्तान की सेनाओ का उस देश में आने का कुल वृतांत उसके द्वितीय पुत्र खुसरू सुलतान के जीवन-वृत्त मे विस्तार से लिखा जा चुका है, इसलिए अब अपने विपय की ओर आते है। जब शाहजादा मुरादबख्श सन् १०५६ हि० जमादि उल्अव्वल महीने में बल्ख के पास पहुँचा तब बहराम सुलतान और सुभान कुली सुल्तान बल्ख के कुछ सरदारों और बडे आदमियो के साथ विजयी सेना में चले आए। शाहजादा ने असालत खाँ मीरबख्शी को इन्हे लाने के लिए भेजा और अमीरुल् उमरा अली मर्दान खाँ दीवानखाने के द्वार तक स्वागत कर लिवा लाया। शाहजादा ने बडे सम्मान से अपनी मसनद के दाहिनी ओर कालीन पर बैठाया और कई तरह से अपनी कृपा प्रकट करके उन्हे विदा कर दिया, जिसमे वे जाकर नज्र मुहम्मद खाँ को सांत्वना दें कि हर तरह से उपद्रव करनेवालो का दंड देने और दमन करने में सहायता दी जायगी और जब तक उक्त खाँ का कुल प्रबंध ठीक तौर पर न हो जायगा तब तक यह विजयी सेना आराम न करेगी।

नज्र मुहम्मद खाँ का राजत्व समाप्त हो चला था, इसलिए वह झूठी शंका कर शाहजादे का आतिथ्य करने का बहाना कर मुराद बाग चला गया और थोडा सा रत्न और अशर्फी साथ लेकर अपने दो पुत्रो सुभानकुली और कतलक सुलतान के साथ भाग गया। जब यह समाचार शाहजादे को मिला तब बहादुर खाँ रुहेला और असालत खाँ को उसका पीछा करने को नियत किया और स्वयं उस प्रांत का प्रबंध करने और भागे हुए खाँ का सामान जब्त करने मे लग गया। कुल बारह लाख रुपये का जडाऊ बर्तन वगैरह और ढाई हजार घोडियाँ बादशाही अधिकार मे आईं। यद्यपि उसका संचित सामान संदूकों मे रखा गया था, जिनकी तालियाँ वह सर्वदा अपने पास रखता था पर वह सब कुछ नहीं मिला। मुतसद्दियो से इतना जबानी मालूम हुआ कि उसकी संपत्ति सत्तर लाख रूपये की थी, जितनी इसके किसी पूर्वज के पास न थी। उजबक और अलअमानो के उपद्रव मे और

भागने तथा गड़बड़ी में व्यय थोड़ा हुआ पर अधिकतर लूट में चला गया। बल्ख और बदख्शाँ प्रांत तथा पूरे मावरुन्नहर और तुर्किस्तान की आय जो इन दोनों भाइयो के अधिकार में थी, इनके दफतरों की नकल से लगभग एक करोड़ वीस लाख खानी था, जो सिक्का उस देश में चलता था और जो तीस लाख रूपये के बराबर था। इसमे भूमि कर, अन्य भिन्न कर, नगद और जिन्स, सभी प्रकार की आय सम्मिलित थी। इसमे सोलह लाख इमामकुली खाँ की और चौदह लाख नज्र महम्मद खाँ की थी।

शाहजहाँ के २० वे वर्ष के आरंभ में जमादिउल् आखीर महीने में वल्ख नगर मे शाहजहाँ के नाम खुतवा पढ़ा गया। नज्र महम्मद खाँ के लड़के बहराम और अब्दुर्रहमान खुसरू सुलतान के लड़के रुस्तम के साथ जो तीनो नज्र मुहम्मद के संग सूचना न होने के कारण नही जा सके थे और बल्ख दुर्ग में उसके परिवार के साथ रह गए थे, उक्त खाँ की स्त्रियो और पुत्रियों सहित नजरबंद कर दरबार रवाना कर दिए गए। जब ये काबुल के पास पहुँचे तब सदरुस्सदूर सैयद जलाल खियाबाँ तक स्वागत कर बादशाह की सेवा में लिवा गया। बहराम सुलतान को पाँच हजारी १००० सवार का मनसब, पच्चीस हजार रुपया नगद और अन्य प्रकार की कृपायें मिली। इस पर बादशाह की बराबर दया बनी रही और वह शान्ति से दिन व्यतीत करता रहा। जब नज्र मुहम्मद खाँ दूसरी बार अपने पैतृक देश पर अधिकृत हुआ तब उसके बुलाने पर उसके संबंधी लोग ३० वें वर्ष में बल्ख चले गए। बहराम सुलतान हिंदुस्तान के आराम और आनंद से चित्त नही हटा सका और बसने तूरान जाना स्वीकार नही किया तथा योग्य वृत्ति पाकर औरंगजेब के समय तक यही आराम से जीवन व्यतीत कर दिया।

४३६. बहादुर

यह सईद बदख्शी का पुत्र था जो कुछ दिन तिरहुत सरकार का अमल गुजार था। अकबर के राज्य काल के २५ वें वर्ष में जब कि बिहार के सरदारो ने विद्रोह मचा रखा था तब सईद अपने उक्त पुत्र को अपने अधीनस्थ महालो में छोड़ कर वलवाइयों के पास पहुँचा। बहादुर ने दुर्भाग्य से शाही खालसा का धन सेना में व्यय कर वलवा कर दिया और सिक्का तथा खुतवा अपने नाम कर लिया कहते है कि उसके सिक्के पर यह शैर खुदा था। शैर—

बहादुर इब्न सुलतान बिन सईद इब्न शहे सुलतान।
पिसर सुलतान, पिदर सुलतान जहे सुलतान बिन सुलतान ।।

जब मासूम खाँ क़ाबुली के कहने पर सईद अपने पुत्र के पास गया कि उस उपद्रवी को समझा कर ऐक्य स्थापित करे तब बहादुर ने उद्दंडता से पिता को कारागार मे भेज दिया। पिता ने भी थोडे दिनों में उसकी सरदारी स्वीकार करली जब शाहिम खाँ जलायर पटना पर चढाई कर विजयी हुआ तब सईद युद्ध मे मारा गया और बहादुर ने तिरहुत के बाहर आस पास के स्थानों पर अधिकार कर लिया। सरकार हाजीपुर इसके अधीन था और यह हर ओर लूट मार करता रहता था। अंत में सादिक़ खाँ ने एक सेना इस पर भेजी, जिससे गहरी लडाई हुई और यह २५ वें वर्ष सन् ९८८ हि० में मारा गया।

४३७. बहादुर खाँ उजबक

इसका नाम अब्दुन्नबी था और यह कराान के सरदारो मे से था। अब्दुल् मोमिन खाँ के समय यह ऊँचे पद पर पहुँचा और मशहद का शासक नियत हुआ। उक्त खाँ के मारे जाने पर बाकी खाँ ने इसको बहुत दिलासा दिया पर यह हज्ज करने के बहाने छुट्टी पाकर हिंदुस्तान चला आया। ४८ वें वर्ष में यह अकबर की सेवा में पहुँचा और इसने योग्य मनसब तथा जड़ाऊ खंजर पाया। जहाँगीर की राजगद्दी पर चालीस हजार रुपया व्यय के लिए पाकर सत्तावन मनसबदारो के साथ शेख फरीद मुर्तजा की सहायता को नियत हुआ, जो खुसरो का पीछा कर रहा था। ५ वें वर्ष ताज खाँ के स्थान पर मुलतान का अध्यक्ष नियत हुआ। ७ वें वर्ष इसका मनसब बढ़कर तीन हजारी ३००० सवार का हो गया और बहादुर खाँ की पदवी पाकर मिर्जा गाजी के स्थान पर कंधार का शासक नियुक्त हुआ। इसके बाद बराबर बढते हुए इसका मनसब पाँच हजारी ३५०० सवार का हो गया। १५ वें वर्ष में नेत्रों की निर्बलता का उज्र कर कंधार के शासन से त्याग पत्र दे दिया। कहते हैं कि हजाज़ के बादशाह की सेना के आने का जब समाचार सुनाई पडने लगा, तब यह अपने को वहाँ ठहरने में असमर्थ मानकर दो लाख रुपये शाही मुत्सद्दियो मे घूस बाँटकर उस पद से हट गया। इस पर यह आगरा प्रांत मे जागीर पाकर वही रहने लगा। जब शाहजहाँ अजमेर से आगरे को चला तब यह बादशाह की सेवा में पहुँचा। इसके बाद का हाल नही मिला।

४३८. बहादुर खाँ बाकी बेग

यह शाहजादा दाराशिकोह का नौकर था और अपने अनुभव तथा अच्छी सेवा से इसने शाहजादे के मन में जगह कर लिया था। इससे विश्वास बढ़ने के कारण यह अपने बराबर वालों से सम्मान और पदवी में बढ़ गया। सेना में भरती होते समय यह एक हजारी ४०० सवार का मंसब पाकर शाहजादा की ओर से इलाहाबाद प्रांत का नाज़िम नियत हुआ। जब यह उस प्रांत के प्रबंध को ठीक कर रहा था, तभी २२ वें वर्ष में यह दरबार में बुला लिया गया और शाहजादे का प्रतिनिधि होकर गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियुक्त हुआ। इसका मनसब बढ़कर दो हजारी ५०० सवार का हो गया और गैरतखाँ की इसने पदवी पाई। २३ वें वर्ष में शाहजादे की सेवा से हटाया जाकर बादशाही सेवकों में भरती कर लिया गया और इसे तीन हजारी २००० सवार का मनसब और झंडा मिला। जिस समय शाहजादा दाराशिकोह ने कंधार की चढ़ाई की अध्यक्षता स्वयं स्वीकार कर ली और राजधानी काबुल का शासन अपने बड़े पुत्र सुलतान सुलेमान शिकोह को दिया, उस समय उस प्रांत का प्रबंध गैरत खाँ को फिर मिला। २८वें वर्ष में इसका मनसब बढ़ते हुये चार हजारी २५०० सवार का हो गया और यह बहादुर खाँ की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। काबुल की सूबेदारी के समय बीरम्बू और नगज जाकर वहाँ के अफगानों को, जो बलवा कर शाही लगान नहीं दे रहे थे, दमन कर और दंड देकर एक लाख रुपया कर लगाया। काबुल का प्रबंध जब इससे न हो सका और वहाँ का कार्य उचित रूप से यह न कर सका तब २३ वे वर्ष में काबुल का शासन निजी रूप से रुस्तम खाँ फीरोज जंग को सौंपा गया और बहादुर खाँ लाहौर का शासक नियत हुआ, जो शाहजादे की जागीर में था। सन् १०६८ हि० सन् १६५८ ई० में शाहजहाँ के राज्य के प्रायः अंत में ५०० सवार मनब से बढ़ाए गए और शाहजादे का प्रतिनिधि होकर यह बिहार का सूबेदार हुआ तथा सुलेमान शिकोह के साथ भेजा गया, जो शुजाअ का सामना करने पर नियुक्त हुआ था। यद्यपि प्रगट में मिर्जाराजा जयसिंह को अभिभावकता और प्रबंध सौंपा गया था पर वास्तव मे दाराशिकोह ने बहादुर खाँ को अभिभावक बनाकर सेना का अधिकार दे दिया था और इस कार्य का कुल प्रबंध इसी की राय पर छोड़ा था। जब सुलेमान शिकोह शुजाअ के पराजय के अनंतर अमीर खाँ का पीछा करता पटना पहुँचा तब औरंगजेब की चढ़ाई का समाचार सुनकर फुर्ती से लौटा। इलाहाबाद से आगे बढ़ने पर मौजा कड़ा के पास अपने पिता के पराजय का समाचार सुनकर इसका उत्साह भंग हो गया। इसकी सेना मे गड़बड़ी मच गई और मिर्जाराजा तथा दिलेर खाँ पुरानी प्रथा के अनुसार उससे अलग हो गए। निरुपाय होकर

सुलेमान शिकोह ने चाहा कि दिल्ली की ओर रवाना होकर किसी प्रकार अपने पिता के पास पहुँच जाय पर बहादुर खाँ ने इस विचार का समर्थन नही किया और उसे इलाहाबाद लौटा लाया। यहाँ भी घबड़ाहट और भय से न रहकर अधिक सामान और संबंध की कुछ स्त्रियो को इलाहाबाद दुर्ग में छोड़कर तथा नदी के उस पार जाकर असफलता में इधर उधर भटकता रहा। हर पड़ाव पर बहुत से लोग इससे अलग होकर चल देते थे और इसकी सेना कम होती जाती थी। यह लखनऊ से आगे बढ़कर नदीना पहुँचा। यहाँ वह जिस उतार से गंगा नदी पार करना चाहता था, उसी उतार की नावें इसके पहुँचने के पहिले ही इस पार से उस पार जा रहती थी, जिससे वह कही उस पार न जा सका। तब यह नदीना से आगे बढ़ा कि हरिद्वार के सामने वहाँ के जमीदार तथा श्री नगर के राजा की सहायता से गंगा पार कर सकेगा। यह मुरादाबाद होता हुआ चांदी पहुँचा, जो हरिद्वार के सामने तथा श्री नगर राज्य की सीमा के पास था। इसने एक आदमी को उक्त राजा के पास सहायता माँगने को भेजा और उत्तर की प्रतीक्षा मे वहीं ठहर गया। इसी बीच औरंगजेब की सेना इस पर आ पहुँची। लाचार होकर इसने भागना निश्चय किया और श्री नगर के पहाडो को अपना रक्षास्थल माना। जब यह उस पार्वत्य प्रात में श्री नगर से चार पड़ाव पर पहुँचा तब वहाँ के राजा ने भेंटकर कहा कि हमारा स्थान छोटा है और इसमें इतने आदमी नही रह सकते। हाथी घोड़ो के लिए यहाँ मार्ग नही है। यदि यहाँ रहने की इच्छा हो तो सेना को लौटा कर अपने परिवार तथा कुछ सेवकों के साथ श्री नगर मे चले आइये। इसी समय बहादुर खाँ लाचार होकर सुलेमान शिकोह से छुट्टी लेकर अलग हो गया। यह इलाहाबाद छोड़ने के बाद ही असाध्य रोग से बीमार हो गया था और इसकी एक आंख भी इसी रोग के कारण जाती रही थी। वास्तव मे वह मृत के समान हो गया था पर अपने आत्म-सम्मान तथा स्वामिभक्ति के कारण पीछे नही हटा। पहाड़ी स्थान से बाहर आते ही इसकी मृत्यु हो गई।

•

४३९. बहादुर खाँ रुहेला

यह दरिया खाँ दाऊदजई का लडका था। यह अपने पिता के जीवन काल ही में अच्छी सेवा के कारण शाहजादा शाहजहाँ का सुपरिचित हो गया था। जब इसका पिता शाहजादा से कृतघ्नता कर अलग हो गया तब बहादुर खाँ ने अधिक दृढता के कारण शाहजहाँ का साथ नही छोड़ा। राज्य गद्दी होने पर इसका मनसब

चार हजारी २००० सवार का हो गया और यह कालपी जागीर में पाकर वहाँ के बलवाइयों को दमन करने भेजा गया। जब पहिले वर्ष में जुझार सिंह विद्रोह कर ओड़छा दुर्ग मे जा बैठा और हर ओर से शाही सेनायें उस पर भेजी गईं तब अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग ने बहादुर खाँ के साथ कालपी की ओर से, जो उसके पश्चिम है, आकर एरिज दुर्ग पर चढाई की, जिसके हर एक बुर्ज आकाश तक ऊँचे थे। शत्रुओ ने इन वीरो पर धावा कर घोर युद्ध आरंभ कर दिया। बहादुर खाँ अपने अधीनस्थ सैनिकों के साथ पैदल ही व्यूह तोड़ने वाले एक हाथी को आगे कर फाटक की ओर फुर्ती से दौड़ा और लोगों की सहायता से फाटक तोड़कर दुर्ग में घुस गया। इसने काले हिंदुओं को सौसन रंग के तलवार से लाल फूल के रंग के रक्त से नहला कर वीरता के मुख पर विजय का गुलाबी रंग चढा दिया। इस विजय के उपलक्ष में इसे डंका मिला। इसके अनंतर यह दक्षिण के सूबेदार आजम खाँ के साथ खानजहाँ लोदी को दमन करने पर नियत हुआ। जब आजम खाँ धावा कर राजौरी बीड में खानजहाँ पर जा पहुंचा तब वह २५० सवारों के साथ बाहर निकलकर दृढ़ता तथा शांति के साथ रवाना हो गया। जब शाही सेना उसके पास पहुंचती तब वह लौटकर तीर चलाते हुए उसे भगा देता था। जब वह राजौरी पहाड से बाहर निकला तब बहादुर खाँ से युद्ध करने लगा, जो एक हजारी मनसबदार था और वीरता तथा साहस के लिए प्रसिद्ध था। बहादुर रुहेला ने इतनी बहादुरी दिखलाई कि रुस्तम और असफंदियार की कहानी फीकी पड़ गई पर सैनिको की कमी से अंत मे वह कष्ट में पड़ गया और पैदल होकर बराबर फतिंगे के समान शत्रु की तलवार के आग पर अपने को डालता रहा।

कहते हैं कि जब मुख पर और बगल में तीरें खाकर यह गिरा और शत्रुगण उसका सिर काटना चाहते थे तब यह चिल्लाया कि मैं दरिया खाँ का पुत्र और यादगार हूं तथा तुम्ही लोगो में से हूं। खानजहाँ ने अपने आदमियों को मना कर दिया। इसके अनंतर जब आजम खाँ ने चौथे वर्ष दुर्ग कंधार विजय करने के बाद भालकी और चतकोबा पर चढाई करने के विचार से मानजरा नदी के किनारे पड़ाव डाला तब निश्चय किया कि जब सेना किसी जगह अपने खेमे खड़ी कर रही हो तब तक हर एक सेना की टुकड़ी कुछ सरदारों के साथ एक कोस तक ठहर कर उसकी रक्षा करती रहे, जिसमें पडाव के आदमी घास और ईंधन सुचित्ती से एकट्ठी कर लावे। एक दिन बहादुर खाँ रुहेला की पारी थी और शत्रु कहीं दिखलाई नही पड रहे थे, इसलिए यह असावधानी से थोडे सैनिको के साथ दूर हटकर जा बैठा था। दैवयोग से इसी के पास एक गाँव था, जहाँ के निवासी लोग अपने यहाँ की सपत्ति और पशुओ की रक्षा के लिए पडाव के आदमियों से लड़ने को तैयार हो गए। बहादुर खाँ यह समाचार पाकर अन्य सरदारो के साथ सहायता

को गया, जिसके पास एक सहस्र से ज्यादा आदमी नही थे। रन्दौला खाँ आदिलखानी कुल भीड़ के साथ लडने लगा और सरदार गण भी वहादुरी से लडने लगे। जब ये कठिनाई मे पड़े तब घोडे से उतर कर जान देने को तैयार हुए। तीन हजारी सरदार शहबाज खाँ मारा गया और वहादुर खाँ तथा यूसुफ मुहम्मद खाँ ताशकंदी घावो से वेहोश होकर गिर पडे। शत्रु ने इन्हे उठा ले जाकर बीजापुर मे कैद कर दिया। जब ५ वे वर्ष यमीनुद्दौला आदिल शाही राज्य को लूटने के लिए नियत होकर बीजापुर के पास पहुँचा तब आदिलशाह ने दोनो को छोड दिया। बहादुर खाँ दरबार मे आया और मनसब बढने से शाही कृपा पाई। इसने फिर से कालपी, कन्नौज और उसके अन्तर्गत महालो की जागीर पाई। उस प्रात के मल्कोसा बलवाइयो को यह दड देने के लिए तैयार हुआ, जो वहाँ के किसान से सिपाही तक सभी शस्त्र रखते थे। यहाँ तक कि जब खेतिहर खेत जोतने जाते थे तब भरी हुई बदूक हल में बाँध रखते थे और सुलगता हुआ पलीता साथ रखते थे। इसी कारण वे अपने कृषि कार्य मे पूरा समय नही देते थे। उस समय वे बीर गाँव में इकट्ठे हो गये थे, जो वहाँ का दृढतम स्थान था, और विद्रोह कर उन सबने माल गुजारी देने से एकदम इनकार कर दिया था। ईश्वर की सहायता पर भरोसा कर इसने एकाएक उन उपद्रवियो पर धावा कर दिया और विचित्र युद्ध होने लगा। बहादुर खाँ ईश्वर की सहायता की ढाल लगाकर दीवार तक पहुँचा। उपद्रवीगण भी बडी वीरता और साहस से डट गए और खूब द्वन्द्वयुद्ध होने लगा। अत में बहुतो के मारे जाने पर बचे हुए भाग गए। बहादुर खाँ उनके निवास स्थान को नष्ट कर लौट गया। उस प्रात में बल्वाइयो पर ऐसी विजय किसी दूसरे के भाग्य से नही लिखी थी, जिससे बहादुर खाँ की योग्यता सबने मान लिया। इसके अनंतर राजा जुझार सिह बुदेला का पीछा करते समय अब्दुल्ला खाँ फीरोजजग और खान दौराँ बहादुर का हरावल होकर इसने बहुत काम किया। जब वह गढ़ तथा लानजी से आगे बढकर चांदा के प्रात मे चला गया तब बहादुर खाँ, जो उसका पीछा कर रहा था, घायल होने के कारण अपने चचा नेकनाम को उस सेना के साथ आगे भेजा कि उसे रोक ले। जुझार सिंह इसका साहस देखकर लौट पडा और लड़ गया। नेकनाम अन्य साथी सैनिको के साथ अत्यंत घायल हो गिर पडा। इसी बीच बहादुर खाँ ने खानदौराँ के साथ पीछे से पहुँचकर उस अभागे पर धावा कर दिया और उसकी सेना को भगा दिया।

अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग चम्पत राय बुन्देला को दमन करने मे ढिलाई कर रहा था, इसलिए १३ वे वर्ष मे बहादुर खाँ इसलामाबाद की जागीर पर भेजा गया कि उस विद्रोह को शांत करे पर स्वार्थियों ने इसे रहने न दिया। उन सबने बादशाह को समझा दिया कि बुंदेलखंड को रुहेलखंड बनाना अच्छी नीति नही है

इसलिए यह शीघ्र वहाँ से हटा दिया गया। उसके बाद इसने जगता के कार्य में और मऊ लेने मे अपनी बहादुरी दिखलाई। अपने सरदार की आज्ञा से इसके सैनिक मुर्दों की सीढ़ी बनाकर शत्रु के मोर्चों पर चढ़ दौड़े थे। उस दिन इसके अधीनस्थ सात सौ अफगान मारे गए। २२वें वर्ष यह मुलतान की रक्षा पर नियत हुआ। इसे रबी फसल की जागीर नही मिली थी, इसलिए दीवानी के मुत्सद्दियों को आज्ञा मिली कि इसका वेतन इसके जिम्मे जो बाकी है उसमें मुजरा बख्श का हरावल नियत होकर वीरता के लिए प्रसिद्ध हुआ। जब शाहजादा तूलदर्रे के नीचे पहुँचा, जो बादशाही साम्राज्य और बदख्शाँ राज्य की सीमा है तब असालत खाँ शाही बेलदारो और कई सहस्र मजदूरो के साथ, जिन्हे अमीरुल् उमरा अली मर्दान खाँ ने काबुल के आसपास से एकत्र किया था, नियत हुआ कि सरावाला तक एक कोस दो शाही गज चौडा और मराजेर तक, जो बदख्शाँ की ओर है, आधकोस और कही ढाई कोस तक बर्फ काट कर सडक बनावे, जिससे लदे हुए ऊँट उस मार्ग से जा सके। बाकी सडको के बर्फ को इस तरह पीट डाले, जिसमें घोडे तथा ऊँट जा सके। पर जब यह काम उन सबसे न हो सका और इसके बिना पार करना कठिन था तब बहादुर खाँ ने असालत खाँ के साथ अपने कुल सवारों तथा पैदल सिपाहियो को बर्फ हटाने और मार्ग खोलने मे लगा दिया। सिपाहियो ने हरतरह से प्रयत्न कर बर्फ को खोदकर रास्ते के दोनो ओर हाथो से और दामनो से उठा उठाकर फेंका। बहादुर खाँ के परिश्रम से दो गज चौडा एक कोस तक मार्ग बन गया, जहाँ बर्फ बहुत था। जब शाहजादा वहाँ तक पहुँचा तब तूफान का शासक नजर मुहम्मद खाँ यह बहाना कर कि वह शाहजादे का स्वागत करने को मुराद बाग में जा रहा है, शर्गान चल दिया। शाहजादे की आज्ञा से बहादुर खाँ असालत खाँ के साथ पीछा करने को रवाना हुआ। लगभग दस सहस्र उजबक और अलअमान, जो नजर मुहम्मद खाँ के पास इकट्ठे हो गये थे, शाही सेना के पहुँचते पहुँचते लुटजाने के डर से अपने सामान और परिवार के साथ अदखूद भाग गए। नजर मुहम्मद खाँ थोडी सेना के साथ शर्गान से चार कोस पर युद्ध के लिए पहुँचा पर युद्ध आरंभ होते होते लडाई की आवाज आदमियो ने सुनी भी नही थी कि वे धैर्य छोड़कर भाग गए। निरुपाय होकर नजर मुहम्मद खाँ भी लौटकर अंदखूद गया और वहाँ से खुरासान चला गया। बहादुर खाँ को यद्यपि मनसब मे उन्नति मिली पर ऐसे समय जब थोड़ा प्रयत्न करने पर यह निश्चय था कि नजर मुहम्मद खाँ पकड लिया जाता तब इस वीर पुरुष ने न मालूम क्यो जी चुरा लिया। हो सकता है कि यह साथियों की सुस्ती से या किसी अन्य कारण से हुआ हो पर बादशाह के मनमें यह बात बैठ गई। जब शाहजादा मुरादबख्श उस प्रांत मे न रहने की इच्छा से शाहजहाँ की बिना आज्ञा लिए काबुल को चल दिया तब बल्ख की सूबेदारी और उस देश की रक्षा बहादुर

खाँ को असालत खाँ के साथ सौंपी गई। इसके अनंतर जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर उस प्रांत में पहुँचा तब बहादुर खाँ ने हरावल में नियुक्त होकर उजबकों के युद्ध में, जो चिड़ियों तथा टिड्डियों से संख्या में बढ गए थे, बड़ी बहादुरी दिखलाई। वहाँ से लौटते समय पडाव के चंदावल का प्रबंध इसे मिला था और पडाव को लिवा लाने में इसे बहुत परिश्रम करना पडा था। जब तंग-शुतुर दर्रे में पहुँचे, जो हिंदू कोह से दो पडाव पर है और जिसका पार करना कठिन है, तब बर्फ गिरने लगी और ऐसा रातभर तथा दोपहर दिनतक होता रहा। बडे परिश्रम और कठिनाई से बचा हुआ पडाव और सेना इस दर्रे के पार हुई। बर्फ के अधिक गिरने के कारण इसी समय एक दिन और रात ठहरना पडा। छोटी आँख वाले हजारा लोग अधिक माल लूटने की इच्छा से पड़ाव के आदमियों पर धावा करने लगे पर बहादुर खाँ उन शत्रुओं को हरबार दंड देकर भगा देता था। जब हिंदूकोह के दर्रे में पहुँचे तब एक दिन के लिए ठहर गए, जिसमें पीछे रहे हुए लोग भी आकर मिल जाय। अंत मे यह स्वयं पार हो गया। मार्ग की कठिनाइयो, हवा की तेजी और बर्फ की अधिकता से आरंभ से अंत तक प्राय: दस हजार जानदार, जिसमे आधे आदमी थे, और सब पशु मर गए और बहुत सा सामान बर्फ के नीचे दबा रह गया। जब बहादुर खाँ दर्रे बाहर आया तब जुल्कद्र खाँ, जो शाही कोष का रक्षक था, मजदूरो के थक जाने के कारण रुकने के लिए बाध्य हुआ। बहादुर खाँ ने अपने और दूसरो के ऊँटो पर जो बच गए थे, सामान उतरवाकर कोष लदवाया और बचा हुआ सिपाहियों के घोड़ों और खच्चरों पर लदवा दिया। उसी स्थान पर हजारो से युद्ध कर शाहजादा से चौदह दिन बाद काबुल पहुँचा।

यद्यपि बहादुर खांने इस चढ़ाई मे बहुत अच्छा कार्य किया था पर कुछ लोगों के कहने से शाहजहाँ के मन में यह बात बैठ गई थी कि नजर मुहम्मद खाँ का पीछा करने और उजबकों के विजय के समय सईद खाँ की सहायता करने में इसने जी चुराया था। इस कारण इतना कष्ट और परिश्रम करने पर भी कालपी और कन्नौज सरकार, जो इसे जहाँगीर से मिले थे और जिनकी बारह महीने की तीस लाख रुपया तहसील थी, सरकारी बकाया मे जब्त कर लिये गए। इससे यह बहुत दुखी हुआ। २२ वे वर्ष कंधार की पहली चढ़ाई में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ नियत होकर इसने उस दृढ दुर्ग के घेरे में मालोरी फाटक के सामने मोर्चा बाँधा। वहीं १९ रज्जब सन् १०५९ ई० को (१९ जुलाई सन् १६४९ ई०) यह क्षय की बीमारी से मर गया। शाहजादा और जुमल्तुल् मुल्क सादुल्ला खाँ ने इसके अनुयायियों को, जो दो हजार सवार थे, हर एक को, जो सेवा के योग्य थे, उपयुक्त मनसब और वेतन देकर अपनी सेवा मे ले लिया और बचे हुआ को दूसरे

सरदारों ने। शाहजहाँ ने इसके बड़े पुत्र दिलावर को, जो १४ वर्ष का था, एक हजारी ५०० सवार का मनसब दिया और इसके अन्य छ पुत्रों में से हर एक को, जो छोटे उम्र के थे, योग्य मनसब दिया। हाथियों के सिवा इसकी सब सम्पत्ति इसके पुत्रों को दे दी गई। कहते हैं कि इसने बादशाही काम में इतनी राजभक्ति और बहादुरी दिखलाई थी कि शाहजहाँ के मन में इसके पिता के द्रोह का जो मालिन्य जम गया था वह बिलकुल मिट गया। कहते हैं कि बहादुर खाँ सदा शोक किया करता था कि वह बीजापुरियों से स्वयं बदला नही ले सका और जबतक जीवित रहा इसकी लज्जा इसके मुख पर झलकती रही। इसके एक पुत्र अजीज खाँ बहादुर ने औरंगजेब ४९ वें वर्ष में वाकीनकेरा के घेरे में बहुत प्रयत्न किया और उसे चगत्ताई की पदवी मिली।

•

४४०. बहादुर खाँ शैबानी

इसका नाम महम्मद सईद था और यह खानजमाँ अलीकुली खाँ का भाई था। यह अकबर के समय पाँच हजारी सरदार था। जिस समय हुमायूँ सेना के साथ हिंदुस्तान पर अधिकार करने आया, उस समय यह जमीदावर में नियत था। कुछ दिन अनंतर कुविचार के कारण इसने कंधार लेने की इच्छा की और चाहा कि धोखे व कपट से यह काम पूरा करे पर वैसा न हो सका। तब निरुपाय होकर यह युद्ध करने को तैयार हुआ। शाह मुहम्मद खाँ बैराम खाँ की ओर से दुर्ग की रक्षा पर नियत था। उसने हिंदुस्तान से सहायता पाना दूर देखकर दुर्ग को दृढ़ किया और ईरान के शाह से सहायता माँगी। इस पर कजिलवाश सेना ने पहुँचकर एकाएक बहादुर खाँ पर धावा किया। इसने घोर युद्ध किया पर कुछ न कर सकने पर भाग गया। उस प्रांत में न रह सकने के कारण जुलूस के २ रे वर्ष लज्जित होकर यह दरबार आया, जब अकबर मानकोट को घेरे हुए था। बैराम खाँ के कहने पर यह क्षमा किया गया और मुहम्मद कुली खाँ बर्लास के स्थान पर मुलतान इसे जागीर मे मिला। ३ रे वर्ष बहादुर खाँ बहुत से सरदारों के साथ मालवा विजय करने पर नियत हुआ। इसी समय बैराम खाँ का प्रभुत्व अस्त-व्यस्त हो गया। उक्त खाँ ने इसको लौटा दिया, जिसमें स्वयं उस प्रांत को अपने अधिकार में लाए और फिर इसी विचार में लौटा। बहादुर खाँ को दिल्ली मे पहुँचने पर मोहम अनगा की राय से भारी मनसब वकील का मिला पर कुछ दिन न बीते थे कि इसे इटावा की जागीर देकर वहाँ बिदा कर दिया। १० वें वर्ष जब इसके बड़े भाई खानजमाँ ने विद्रोह किया तब इसको सिकंदर खाँ उजबक के साथ सरियार

प्रांत में भेजा कि उधर से उत्तरी भारत मे जाकर गड़बड़ मचावे। इस पर अकबर ने एक सेना मीर मुइज्जुल् मुल्क मशहदी की सरदारी मे नियत किया। बहादुर खाँ ने बहुत कुछ कहा सुना कि मेरी माता इब्राहीम उजबक के साथ बादशाह के यहाँ जाकर मेरा और मेरे भाई का दोष क्षमा करा लाई है पर मीर मुइज्जुल् मुल्क ने न मानकर युद्ध आरंभ कर दिया। यद्यपि सिकंदर खाँ जो इसके साथ था, भाग गया पर बहादुर खाँ ने मीर मुइज्जुल् मुल्क की मध्य सेना पर धावा किया। शाह विदाग खाँ वीर सरदार होते भी पकड़ा गया और मीर, परास्त हुआ। खानजमाँ और इसके दोष क्षमा हो चुके थे इसलिये इस कार्य पर ध्यान नहीं दिया गया। वह क्षमा इस शर्त पर मिली थी कि जब तक शाही सेना उस जिले मे रहे तब तक खानजमाँ गंगा नदी पार न करे परंतु जब अकबर चुनार गढ़ देखने चला तब अली कुली खाँ विचार न कर गंगा पार हो गया। बादशाह ने क्रुद्ध होकर इन पर चढ़ाई कर दी और जौनपुर में अशरफ खाँ को आज्ञा भेजी कि उनकी माता को कैद कर ले। बहादुर खाँ ने यह वृत्तांत जानकर तथा फुर्ती से जौनपुर पहुँचकर दुर्ग पर अधिकार कर लिया और अशरफ खाँ को कैदकर अपनी माता को छुड़ा लिया। जौनपुर और बनारस को लूटकर बादशाह के लौटने तक यह बाहर निकल गया। खानजमाँ के क्षमा किए जाने और मुनइम खाँ की प्रार्थना पर बहादुर खाँ के दुष्कर्मों पर ध्यान नहीं दिया गया। १२ वें वर्ष सन् ९७४ हि० मे अपने बड़े भाई के साथ स्वामिद्रोह और दुश्शीलता से बादशाह से फिर लड़ाई करने लगा। जब बाबा खाँ काकशाल ने खानजमाँ की सेना पर धावा किया तब बहादुर खाँ ने सामना कर उसको परास्त कर दिया। एकाएक इसका घोड़ा तीर खाकर मर गया और यह जमीन पर गिर गया। इसके सिपाही यह हाल देखकर भागने लगे। विजयी सेना के बहादुरो ने इसको घेर लिया। वजीर जमील बेग ने जो उस समय सात सदी मनसबदार था, दुष्टता और नीचता से इसे पकड़ कर छोड़ दिया पर उसी समय दूसरो ने पहुँचकर इसको कैद कर लिया और बादशाह के पास लाए। बादशाह ने कहा कि बहादुर खाँ, हमने तुम्हारे साथ क्या बुराई की थी कि तुम इस उपद्रव के कारण हुए। उसने कहा शुक्र है अल्लाह का। स्यात् अभी तक अपने अयोग्य काम कर लज्जित नहीं हुआ था, नहीं तो नम्रता के शब्द जबान पर लाता। अपने हितैषियों की प्रार्थना पर उसी समय शहबाज खाँ को आज्ञा दी कि तलवार से इसकी गर्दन काट दो।

यह कविता भी करता था जिसके एक शैर का अर्थ इस प्रकार है—

उस चंचल अत्याचारी ने दूसरा पत्थर उठा लिया मानो मुझ घायल से युद्ध का मार्ग पकड़ा।

४४१. बहादुरुल् मुल्क

कहते हैं कि यह पंजाब का निवासी था। दक्षिण के सुल्तानों की सेवा में बहुत दिन व्यतीत कर यह अकबर के दरबार में आया और सेना में भरती हुआ। ४३ वें वर्ष में इसने बरार प्रांत में दुर्ग पनार विजय किया। यह दुर्ग ऊँचे पर बना है, जिसके तीन ओर नदी है और जो कभी उतरने लायक नहीं होती। इसके अनंतर कई युद्धो मे बराबर प्रयत्न कर इसने प्रसिद्धि प्राप्त की। ४६ वे वर्ष, जब यह हमीद खाँ के साथ तिलिंगाना की रक्षा पर नियत था, तब मलिक अंबर ने वहीद प्रात से सेना लेकर इन पर चढ़ाई कर दी। इन दोनो ने थोडी सेना के साथ उसका सामना किया और मानजरा नदी के किनारे युद्ध हुआ। दैवयोग से ये परास्त हुए और हमीद खाँ पकडा गया। बहादुरुल् मुल्क बड़े प्रयत्नो से नदी पार हो गया और बच गया। जहाँगीर के ८ वे वर्ष मे इसे झंडा मिला। यह समय आने पर मर गया। कहते हैं कि इसकी अँगूठी पर यह मिसरा खुदा हुआ था। मिसरा-मकबूल दोस्त जो कोई होवे बहादुर है।

४४२. बाकर खाँ नज्म-सानी

इस वंश का संबंध मिर्जा यार अहमद इस्फहानी तक पहुँचता है। वह आरंभ मे शाह इस्माइल सफवी के प्रधान अमात्य मीर नज्म गीलानी के सत्संग से योग्यता तथा कर्मशीलता के लिए प्रसिद्ध हुआ। जब मीर नज्म मर गया तब शाह ने कुल कार्य इसे सौंप कर नज्म सानी की पदवी दी और इसका पद सभी बडे-बडे सरदारों के ऊपर हो गया। मिसरा—

नज्म सानी के समान दोनो लोक में कोई नही रहा।

कहते हैं कि इसका इतना ऐश्वर्य बढ गया था कि प्राय. दो सौ भेडें प्रति दिन इसकी रसोई मे खर्च होती थी और एक सहस्त्र थालियाँ अच्छे भोजनो की रखी जाती थी। यात्रा मे चालीस कतार ऊटो पर इसका बावर्ची खाना लादा जाता था। मावरुन्नहर की चढ़ाई मे, जिसमे शीघ्रता की जा रही थी, तेरह चाँदी की देगों मे खाना पकता था। जब इसका वैभव और उच्चता सीमा तक पहुँच गई तब इसमे घमंड और अहंकार भर गया। यह तूरान को विजय करने के लिए नियत हुआ। शाह ने इसको बाबर की सहायता के लिए भेजा था, जो उस प्रात को उजबको के कारण छोड कर शाह के पास सहायता के लिए आया था। नज्मसानी

वंक्षु नदी पार कर मार काट में लग गया। उजबक सुलतानों ने गजदवाँ में कूचा बंदी करके युद्ध आरंभ किया। कजिलवाश सरदार गण, जो इससे वैमनस्य और कपट रखते थे, युद्ध में ढिलाई करते रहे। फलतः अमीर नज्मसानी ने दृढ़ता के साथ बहुत प्रयत्न किया और कैद हो गया। सन् ९१८ हि० में अब्दुल्ला खाँ उजबक ने इसे मार डाला। कहते हैं कि बाकर खाँ का पिता बहुत दिनों तक खुरासान का दीवान रहा। दैव कोप से उसका हाल खराब हो गया और बाकर खाँ दरिद्रता में हिंदुस्तान चला आया। यह योग्य युवक होने के कारण अकबर की सेवा में भर्ती हो गया और इतने तीन सदी मनसब पाया। कुछ लोग कहते हैं कि यह जहाँगीर के समय में फारस से आकर दो सदी ५ सवार के मनसब के साथ दैनिक सेवक हो गया। दैवात् उसी समय खानजहाँ लोदी वहाँ आया और बादशाह से पूछा कि यह कौन युवक है। जहाँगीर ने नज्मसानी का कुल वृतांत बतला दिया। खानजहाँ ने प्रार्थना की कि इतना जान लेने पर इतना छोटा मनसब देना योग्य नहीं। इस पर इसे नौ सदी ३० सवार का मनसब मिला। इसके नक्षत्र और भाग्य ऊँचे थे, इस लिए नूरजहाँ की बहिन खदाजा बेगम की पुत्री से इसका विवाह हो गया। एका एक इसके लिए आश्चर्य पूर्ण उन्नति का द्वार खुल गया। इसको दो हजारी मनसब और मुल्तान की अध्यक्षता तथा अलम खाँ नदी की फौजदारी मिली। इसने अपनी योग्यता और परिश्रम से वहाँ बड़ी शान्ति फैलाई और बलूचियों, गुदायनों और नाहरों से, जो मुलतान और कंधार के बीच एक अन्य जाति है, भेंट वसूल कर खूब धन और सामान इकट्ठा किया। इसके नाम पर मुलतान का बाकराबाद नाम रखा गया। जहाँगीर बादशाह इसे कृपा के कारण पुत्र कहता था। शाहजहाँ के उपद्रव के समय यह अवध का सूबेदार था और अपनी सजी हुई सेना के साथ दरबार आकर प्रशंसा का पात्र हुआ। जहाँगीर के आखिरी समय उड़ीसा का सूबेदार हुआ और वहाँ भी अपने कार्य मे प्रसिद्धि प्राप्त की। शाहजहाँ के ४ थे वर्ष में छत्र द्वार से दो कोस पर खीरःपाडा पर चढाई की, जो उडीसा तथा तिलंग के बीच एक दर्रा है और इतना तंग है कि यदि एक छोटा झुंड बंदूकचियों और धनुष धारियों का जम जाय तो उसे पार करना असम्भव है। इसके दूसरी ओर चार कोस पर मनसूर गढ है, जिसे कुतुबुल् मुल्क के दास मंसूर ने बनवाकर अपने नाम पर उसका नाम रखा था। बाकर खाँ ने उस प्रांत को लूटने में कोई कमी नहीं की। जब दुर्ग के पास पहुँचा तब वीरता से युद्ध कर शत्रु को परास्त कर दिया और दुर्ग वालो ने इसकी वीरता देखकर भय के मारे अधीनता स्वीकार कर लिया और दुर्ग दे दिया। यह बहुत दिनों तक उड़ीसा की अध्यक्षता करता रहा। इसका पिता, जो अपने बुढ़ापे के कारण पुत्र के साथ रहता था, वहीं मर गया। ५ वें वर्ष उडीसा की प्रजा पर अत्याचार और कुव्यवहार करने से उस पद से हटाए जाने पर यह

दरबार आया तब ६ठे वर्ष गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ और वहीं १० वे वर्ष में सन् १०४७ ई० के आरंभ में मर गया।

वीरता और साहस में यह अद्वितीय और सैनिक गुणों में सबसे बढ़ा चढ़ा था। तीर चलाने में भी एक ही था। जहाँगीर ने अपने रोजनामचे मे लिखा है कि एक रात्रि बाकर खाँ ने हमारे सामने एक पतला शीशा मसाल की रोशनी मे रखा और मक्खी के पर के समान मोम की कुछ चीज बनाकर उस शीशे पर चपका दिया और उस पर एक चावल खोस कर उसके ऊपर एक मिर्च का दाना रखा। पहिली ही तीर में मिर्च को उड़ा दिया, दूसरी मे चावल को और तीसरी में मोम को पर शीशे पर जरा भी चोट न आई। कहते हैं कि बाकर खाँ करना की आवाज सुनने से इस कारण प्रसन्न होता था कि रुस्तम भी इसकी आवाज को सुना करता था। यह अपने नक्कार खाने को खूब सजा कर रखता था। एक दिन हकीम रुकनाय काशी इसे देखने गया, जिसके सामने करना बजाया जाने लगा। हकीम ने कहा कि नवाब साहब रुस्तम भी कभी-कभी करना सुना करता था। बाकर खाँ गद्य, पद्य और सुलिपि लिखने मे बड़ा योग्य था। इसने एक दीवान बनाया था।[1]

इसका बड़ा पुत्र मिर्जा साबिर जवानी के आरंभ ही में मर गया और दूसरे पुत्र फाखिर खाँ का हाल अलग दिया गया है।

•

४४३. बाकी खाँ चेला कल्माक

यह बादशाह का एक विश्वसनीय दास था। अच्छे नक्षत्रों और सेवा से यह शाहजहाँ के हृदय में स्थान पा चुका था। ६ ठे वर्ष इसे सात सदी ५०० सवार का मनसब मिला। ९ वें वर्ष यह बढ़कर एक हजारी १००० सवार का मनसबदार हो गया। १० वें वर्ष इसका मनसब बढ़कर एक हजारी १००० सवार से दो हजारी २००० सवार का हो गया और झंडा, घोड़ा और हाथी पाकर क्षत्रा का फौजदार नियत हुआ, जो बुंदेलखंड में ओड़छा के अंतर्गत एक परगना है। जब यह प्रांत जुझार सिंह से युद्ध होने पर शाही सेना का पड़ाव बन गया। तब यह परगना, जिसमे ९०० गाँव थे और जिसकी आय आठ लाख रुपए थी और जो अच्छे मैदानों तथा नदियों की अधिकता से शोभित था, खालसा किया गया और इसका इस्लामाबाद नाम रक्खा गया। इसी समय खाँ यहा का फौजदार हुआ और इसने

---

१. इसके आगे तीन शेर दिए गए हैं जिनका अर्थ यहाँ नही दिया गया है।

वहाँ के उपद्रवियों को दमन करने में बहुत प्रयत्न किया। जब राजा जुझार सिंह का सेवक चम्पत बुंदेला उसके मारे जाने पर उसके पुत्र पृथ्वीराज को विद्रोह का केंद्र बनाकर ओड़छा और झाँसी के मौजों को लूटने लगा तब अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग इस्लामाबाद का जागीरदार नियुक्त होकर इन विद्रोहियों को दमन करने भेजा गया। जब वह यहाँ आया तब इसने चाहा कि बाकी खाँ स्वयं इनको दंड देने जाय, जो इस काम में पहिले भी प्रयत्न कर चुका था। उक्त खाँ ने काम करने की इच्छा से वचन दिया कि यदि वह इसे अपनी सेना देवे तो वह उस काम को पूरा कर दे। फीरोज जंग आलस्य के मारे स्वयं नहीं गया और इसी पर सब काम छोड़ दिया। बाकी खाँ १३ वें वर्ष में धावा कर असावधान विद्रोहियों पर आ पहुँचा। खूब युद्ध करने के बाद चम्पत बचकर निकल गया और पृथ्वीराज पकड़ा गया। १७ वें वर्ष बाकी खाँ गुसुलखाने का दारोगा नियत हुआ। २७ वें वर्ष के अंत में आगरा प्रांत के अंतर्गत अपनी जागीरदारी में मर गया। इसकी जागीर के महाल खालसा कर लिए गए। इसके पुत्र सरदार खाँ और बाकी खाँ औरंगजेब के राज्य में प्रसिद्ध हुए, जिनके वृत्तांत अलग-अलग दिए गए हैं। कहते हैं कि आरंभ में बाकी बेग लाहौर का कोतवाल था, जब यमीनुद्दौला वहाँ का जागीरदार था। बाकी खाँ के पहिले उस बड़े सरदार की ओर से बाबा इनायतुल्ला यज्दी वहाँ का शासक था, जो उसका विश्वास पात्र सेवक था। इनायतुल्ला बाकी बेग को नहीं मानता था और न उस पर विश्वास रखता था इसलिए उसने अपनी अँगूठी पर खुदवा लिया था—

'काम इनायत का है और बाकी बहाना'

०

४४४. बाकी खाँ हयात बेग

यह सरदार खाँ का छोटा भाई था। औरंगजेब के २३ वें वर्ष में इसे हयात खाँ की पदवी मिली। २८ वें वर्ष मीर अब्दुल् करीम के स्थान पर सात चौकी का अमीन नियत हुआ। इसके अनंतर शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम प्रसिद्ध नाम शाह आलम के गुसुलखाने का दारोगा बनाया गया। जब बीजापुर के घेरे के समय बादशाह का मिजाज शाहजादे की ओर से राजद्रोह की आशंका से सशंकित हो गया और उस पर कृपा कम हो गई तथा बादशाही सम्मतिदातागण, जैसे तोपखाने का दारोगा मोमिन खाँ नज्मसानी, द्वितीय बख्शी और दीवान वृंदावन, छुड़ा दिए गए तब भी शाहजादा नहीं समझा और हैदराबाद के घेरे में अब्दुल्रहमन के साथ

पत्र-व्यवहार करता रहा; जिससे उसका पहिले से परिचय था। उसका यही प्रयत्न था कि इस घेरे का कार्य उसी के द्वारा हो और इस दुर्ग के विजय का सेहरा उसी के माथे पिता के द्वारा बाँधा जाय। ईर्ष्यालु तथा इसका बुरा चाहने वालो ने बादशाह को उलटा समझा कर बादशाह का मिजाज इसकी ओर से बिगाड़ दिया। एक दिन एकात में बादशाह ने हयात खाँ से इस विषय मे पूछा। इसने बहुत कुछ शाहजादे की निर्दोषिता बतलाई पर कोई असर न हुआ। बादशाह ने आदेश दिया कि शाहजादे को आज्ञा पत्र भेजा जाय कि शेख निजाम हैदराबादी इस रात्रि को पड़ाव पर धावा करेगा, उस समय शाहजादा अपने सेवको को पड़ाव के आगे भेज दे, जिसमे वे उसे रोकने के लिए तैयार रहे। जब ये आदमी उस ओर चले जावेगे तब एहतमाम खाँ कालेवाल उसके पड़ाव की रक्षा करेगा। दूसरे दिन २९वे वर्ष के १८ जमादि उल् आखिर को शाहजादा आज्ञा के अनुसार अपने पुत्रों मुहम्मद मुइज्जुद्दीन और मुहम्मद अजीम के साथ दरबार आया। उस समय बादशाह दीवान में बैठे हुए थे। इसके आने और कुछ देर बैठने के बाद आज्ञा दी कि हमने असद खाँ और बहर.मंद खाँ से कुछ बातें कह दी हैं, इसलिए तसबीह खाना मे जाकर उनसे समझ लो। लाचार होकर यह वहाँ गया। असद खाँ ने उससे शस्त्र माँग लिए और उससे कहा कि कुछ दिन तक शांति से समय व्यतीत कीजिए। इसके अनंतर उसे पास ही लगे हुए खेमे मे ले गए। कहते है कि शस्त्र लेने के समय मुइज्जुद्दीन ने दूसरा विचार प्रकट किया पर पिता की कडी नजर पड़ते ही शांत हो गया। शाही मुत्सद्दियो ने उसके तब शाही चिन्ह एक क्षण में अन्त कर लिए। बादशाह दीवान से उठकर महल मे गए और हाय हाय करके अपने दोनों हाथ जघो पर पटक कर कहा कि हमने चालीस वर्ष का परिश्रम धूल ने मिला दिया।

इस घटना के अनंतर हयात खाँ के बडे भाई सरदार खाँ के बादशाही कृपा-पात्र होने से यह दड से बच कर सेवा कार्य में लगा रहा। इसके बाद अपने पिता की पैतृक पदवी पाकर ४९ वें वर्ष मे इसे पाँच सदी की तरक्की मिली, जिससे इसका मनसब दो हजारी हो गया और कामदार खाँ के स्थान पर आगरे का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ, जो सभी दुर्गों से दृढ़ता मे बढकर था और इस कारण भी भी कि बहुत दिनो से बादशाही कोष तथा रत्न इसीमे सुरक्षित रहते आये थे। यह हिन्दुस्तान के सब दुर्गों से अधिक प्रतिष्ठित था। औरंगजेब की मृत्यु पर बाकी खाँ ने स्वतः यह निश्चय कर लिया था कि साम्राज्य का जो वारिस सबसे पहिले आगरे पहुचेगा उसी को दुर्ग की कुंजी और कोष सौप दूँगा। इस कोष मे नौ करोड रुपये की अशर्फी, रुपया तथा दूसरे सामान सिवाय सोने चांदी के बरतनो के एक हिसाब से थे पर दूसरे हिसाब से कहते है कि तेरह करोड़ का था। अधिकतर

संभावना थी कि महम्मद आजम शाह सबके पहिले आ पहुँचेगा पर भाग्य ने बहादुरशाह के बादशाहत लिखी थी इसलिए उसी के अनुसार कार्य हुआ। मुहम्मद अजीम, जो बंगाल के शासन से हटाया दरबार आ रहा था, वह समाचार सुनकर घोड़ों की डाक से शीघ्र आगरे पहुँच गया। बाकी खाँ ने दुर्ग देने से इनकार कर दिया और अपना निश्चय कह सुनाया। शाहजादे ने तोपखाने लगा दिए और कुछ गोले बेगम मसजिद पर गिरे! शाहजादे ने युद्ध से कोई लाभ न देखकर संधि की बात चलाकर बाकी खाँ का प्रार्थना पत्र उसके निश्चय को लिखकर अपने पिता के पास भेज दिया। इसी समय बहादुर शाह सेना के साथ दूर की यात्रा तै करता हुआ दिल्ली पहुँच गया था! यह अच्छा समाचार सुनकर वह शीघ्रता से आगरे चला आया। बाकी खाँ ने दुर्ग की तालियाँ और कोष भेंट कर बहादुर शाह को राज्य गद्दी पर बैठने की बधाई दी। इसपर शाही कृपाएँ हुई। बहादुरशाह ने कोष से चार करोड रुपये तुरंत निकाल लिए और हर एक शाहजादे तथा सरदारो को उनके पद तथा दशा के अनुसार पुरस्कार दिया, पुराने सेवको का बाकी वेतन दे दिया, कुछ महल के व्यय के लिए दिए तथा कुछ फकीरो तथा गरीबो को बाँटा। इसमे दो करोड़ रुपया व्यय हो गए। उसने बाकी खाँ को पहिले ही के तरह दुर्ग में छोडा। यह बहादुर शाह के राज्य के आरंभ मे मर गया। इसे बहुत से लड़के तथा दामाद थे।

●

४४५. बाकी मुहम्मद खाँ

यह अकबर का धाय भाई और अदहम खाँ का बड़ा भाई था। इसकी माता माहम अनगा का बादशाह से खास संबंध था। जिस समय साम्राज्य का अधिकार इसके हाथ मे था, उस समय इसने बाकी खाँ की शादी की थी। बादशाह इसके कारण महफिल में आए थे। खाँ तीन हजारी मनसब तक पहुँचा था। अब्दुल् कादीर बदायूनी के इतिहास से मालूम होता है कि वह ३० वें वर्ष मे गढ़ा कटक में मर गया, जो इसे जागीर में मिला था।

●

४४६. बाज बहादुर

इसका नाम बायजीद था और इसका पिता शुजाअत खाँ सूर था, जो हिंद के जनसाधारण की भाषा में सजावल खाँ के नाम से प्रसिद्ध था। जब शेरशाह ने मालवा मल्लू खाँ कादिर शाह[1] से ले लिया तब इसको, जो उसका एक सरदार और खास खेल था, उस प्रांत का अध्यक्ष नियत किया। सलीमशाह के समय यह दरबार आया पर कुछ दिन बाद अप्रसन्न होकर मालवा चला गया। सलीमशाह ने चढ़ाई की तब यह राजा डूंगरपुर की शरण में चला गया। अंत में सलीम शाह ने इसको प्रतिज्ञा करके अपने पास बुलाया और इसे अपनी रक्षा में रखकर मालवा सरदारों मे बाँट दिया। इसके अनंतर अदली के समय फिर मालवा की अध्यक्षता पाकर चाहता था कि खुतबा और सिक्का अपने नाम से करे। सन् ९६२ हि० में यह मर गया। बाज बहादुर[2] पिता के स्थान पर बैठा और अपने शत्रुओं को परास्त कर सन् ९६३ हि० (सं० १६१२) में छत्र धारण कर खुतबा अपने नाम पढ़वाया। कुल मालवा पर अधिकार कर लेने के बाद गढ़ा के विस्तृत प्रांत पर चढ़ाई की और वहाँ की रानी दुर्गावती से परास्त होकर चुप बैठा रहा। यह ऐश आराम करने मे लग गया और अपने राज्य की नीव को जल और वायु के आश्रय पर छोड़ दिया। मदिरा-पान और गायन वादन में इस प्रकार लग गया कि न दिन का और न रात का ध्यान रक्खा और न किसी दूसरे काम की ओर दृष्टि रक्खी। शराब को वैद्यक के विद्वानो ने खास खास स्वभाव के आदमियो के लिए निश्चित समय और मोताद मे लेने के लिए बतलाया है। गायन के विषय मे दूरदर्शी बुद्धिमानों ने कहा है कि जिस समय चित्त दुखी हो, जैसा कि सामाजिक कार्यों में प्रायः होता है, उस समय मन बहलाने के लिये इधर ध्यान देना चाहिये। यह नही कि इन दोनो को भारी कार्य समझकर हर समय इन्ही मे लगा रहे। बाज बहादुर स्वयं गायन वादन की कला का उस्ताद था और पातुरो को एकत्र करने मे लगा

---

१. हुमायूँ के बंगाल में परास्त होने पर खिलजियों के एक दास मल्लू खाँ ने सं० १५९२ मे सुल्तान कादिरशाह के नाम से मालवा में राज्य स्थापित किया था, जिसे सं० १६०० मे शेरशाह सूरी ने निकालकर मालवा पर अधिकार कर लिया और शुजाअत खाँ को वहाँ का शासक नियत किया।

२. शुजाअत खाँ के दो पुत्र बायजीद (बाज बहादुर) और मल्लिक मूसा या मुस्तफा थे और इसका एक दत्तक पुत्र दौलत खाँ भी था। बायजीद ने पिता की मृत्यु पर दौलत खाँ को कपट मे मार डाला और मूसा हार कर भाग गया।

रहता था, जो गाने में और अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध थी। इनमें सबसे बढ़कर रूपमती[१] थी। कहते हैं कि यह पद्मिनी थी, जो नायिकाओं के चार भेद में से प्रथम है। इस प्रकार के भेद हिंद के विद्वानों ने किए हैं। तात्पर्य यह कि स्त्रियों के सभी अच्छे गुण इसमें थे। बाज बहादुर को इससे अत्यंत प्रेम था। इसके प्रेम में हिंदी कविता कहकर अपने हृदय का उद्‌गार निकालता था। इन दोनों के सौंदर्य और प्रेम की कहानियाँ अब तक लोगों की जबान पर है।

अकबर के राज्य के छठे वर्ष सन् ९६८ हि० सं०१६१८) में अदहम खाँ कोका[२] अन्य सरदारों के साथ मालवा विजय करने भेजा गया। बाज बहादुर सारंगपुर से, जो उसका निवास स्थान था, दो कोस पर मोर्चा बाँध कर डट गया और युद्ध करने लगा। इसके सिपाही इससे प्रसन्न न थे, इसलिये दृढ़ता नहीं दिखलाई। अंत में घोर युद्ध पर यह परास्त हुआ। यह कुछ विश्वासी आदमी स्त्रियों और पातुरों की रक्षा को छोड़ गया था कि यदि पराजय का समाचार आये तब सब को मार डालना, जो हिन्दुस्तान की प्रथा है। जब पराजय हो गई तब कुछ मार डाली गई, कुछ ने घायल होकर जीवन बिताया और कुछ की पारी भी नहीं आई कि शाही सेना नगर में पहुँच गई। इतना अवसर न मिला कि वे सब भी मारी जायँ। अदहम खाँ सबको अपने अधिकार में लेकर रूपमती को ढूँढने लगा, जो बहुत घायल हो चुकी थी। जब उसने यह बात सुनी तब प्रेम के कारण विष खाकर उसने बाज बहादुर के नाम पर जान दे दिया।

जब अदहम खाँ के स्थान पर मालवा का शासन पीर मुहम्मद खाँ शरवानी को मिला तब बाज बहादुर ने, जो खान देश और मालवा के बीच घूम रहा था, सेना इकट्ठी कर चढ़ाई की और फिर परास्त होकर खान देश के सुलतान मीरान मुबारक शाह की शरण में गया। उसने अपनी सेना इसके साथ कर दी। इसी समय पीर मुहम्मद खाँ बीजा गढ विजय कर तथा बुर्हान पुर लूटकर बहुत सामान के साथ लौट रहा था। दोनों का सामना हो गया। पीर मुहम्मद खाँ परास्त होकर भागते हुए नर्मदा पार कर रहा था कि घोड़े से अलग होकर डूब मरा। मालवे के जागीरदार घबड़ाकर आगरे चल दिए और बाज बहादुर का मालवा पर दूसरी बार अधिकार हो गया। इस घटना का समाचार पाने पर ७ वें वर्ष अब्दुल्ला खाँ उजबक[३], जो अकबर का एक सरदार था, अच्छी सेना के साथ उस प्रांत पर

---

१ देखिए काशी, नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ३ सं० १९७९ पृ० १६५—९०।

२ देखिए मआसिरुल् उमरा हिंदी भाग १।

३, देखिए मआसिरुल् उमरा हिंदी भाग १।

नियत हुआ। बाज बहादुर शाही सेना के पहुँचने के पहिले ही घबड़ा कर भागा और विजयी सेना के पीछा करने के भय से पहाड़ी घाटियों में छिपकर समय काटने लगा। कुछ दिन बगलाना के जमींदार भेर जी[1] के यहाँ रहा और फिर वहाँ से गुजरात चंगेज खाँ तथा शेर खाँ गुजराती की शरण मे गया। इसके अनंतर निजा-मुल्-मुल्क दक्खिनी के यहाँ पहुँचा और यहाँ से भी दुखित होकर राणा उदय सिंह की रक्षा में रहने लगा। १५वें वर्ष सं० १५७१ अकबर ने हसन खाँ खजानची को भेजा कि उसको शाही कृपा की आशा दिलाकर सेवा मे लावे।[2] आरंभ मे इसे एक हजारी मनसब[3] मिला और अंत तक दो हजारी जात व सवार के मनसब तक पहुँचा।[4] बाज बहादुर और रूपमती दोनो उज्जैन[5] के तालाव के बीच पुश्ता पर आराम कर रहे हैं।

•

४४७. बादशाह् कुली खाँ

यह तहव्वुर खाँ के नाम से प्रसिद्ध था और एक योग्य सैनिक था। यह खालसा के दीवान इनायत खाँ खवाफी का दामाद था। यह भी खवाफ का रहने वाला था। औरंगजेब अपने राज्य के २२ वें वर्ष मे महाराज जसवंत सिंह के राज्य को जब्त करने को, जिनका इसी बीच देहांत हो गया, ससैन्य अजमेर में ठहरा हुआ था। वहाँ से बादशाह के राजधानी को लौटते समय इफ्तखार खाँ के स्थान पर यह अजमेर का फौजदार नियत हुआ। इसके अनंतर महाराज के विश्वस्त सेवकों ने दुष्टता से बादशाही सेना मे उपद्रव मचाया और जोधपुर पहुँचकर वहाँ बलवा कर

---

१. देखिए मआसिरुल् उमरा हिंदी भाग १ पृ० २६८।

२. अकबर ने नागौर से दुबारा हसन खाँ को लिवालाने को भेजा था। आईन अकबरी मे बाज बहादुर का नाम संसबदारो तथा गायको दोनों की सूची में दिया गया है।

३. आईन अकबरी मे (दफ्तर २ पृ० २८३) एक हजारी जात २०० सवार का संसद लिखा है।

४ बाज बहादुर का मृत्यु काल तथा इसके संतान आदि के विषय में कुछ ज्ञात नहीं हुआ। मुंतखबुत्तवारीख से (भाग २ पृ० ५१-२) सं० १६५१ के पहिले इसकी मृत्यु होना सूचित होता है।

५. तारीख माल्वा में सारंगपुर में इसकी कब्र होना लिखा है।

दिया। राजा के सेवकों में से एक राजसिंह असंख्य सेना इकट्ठाकर तहव्वुर खाँ पर चढ आया, तीन दिन तक दोनों में खूब युद्ध हुआ और तीर तथा गोलियाँ इतनी चलीं कि उनका टोटा पड गया तथा मारे गए लोगों का ढेर लग गया। अंत मे तहव्वुर खाँ ने विजय का डंका बजाया और राजसिंह बहुत से सैनिकों के साथ मारा गया। राजपूतों पर इसका इतना रोष जम गया कि इसे युद्ध के लिए तैयार देखकर वे कभी लडने के लिए दोबारा नही आये। २३ वे वर्ष के आरंभ मे जब दूसरी बार औरंगजेब अजमेर आया तब इसको दो हाथी पुरस्कार में देकर महाराणा के मांडल आदि परगनों पर अधिकार करने के लिए नियत किया और स्वय भी उसी विद्रोही को दंड देने के लिए उसी ओर रवाना हुआ। जब माडल पर बादशाही अधिकार हो गया तब इसे बादशाह कुली खाँ की पदवी मिली। इसके अनतर यह शाहजादा मुहम्मद अकबर के साथ राठौर राजपूतो को दमन करने के लिए सोजत और जयतारण की ओर भेजा गया। जब विद्रोही राजपूतो का जीवन तग कर दिया गया और उनका देश बादशाही सेना द्वारा रौद डाला गया तब उन्होने विचार किया कि वह कुफ्र का तोडनेवाला बादशाह जब तक हम लोगो को पूर्णतया दमन न कर लेगा तबतक चुप न बैठेगा, इस पर उन सब ने कपट करने का निश्चय किया। पहिले शाह आलम बहादुर के पास, जो उस समय आना सागर तालाब पर ठहरा हुआ था, अपना दोष क्षमा कराने के बहाने पहुँचकर उसे विद्रोह करने को बहकाया और चालीस सहस्त्र सवार के साथ उससे मिलने के लिए वचन दिया।

कहते है कि अपनी माता नवाब बाई के कहने पर शाहजादे ने इन कपटी विद्रोहियो को अपने पास फटकने नही दिया। निरुपाय होकर शाहजादा मुहम्मद अकबर के पास पहुँचकर उन्होने उसे बहकाया। शाहजादे ने बुद्धि तथा विवेक के होते भी अपनी अनुभवहीनता, यौवन तथा दुष्ट मित्रो की कुमंत्रणा के कारण विद्रोह करना निश्चनु कर लिया। शाह आलम ने यह समाचार पाकर बादशाह को लिख भेजा कि काफिरो तथा शाहजादे के बहकाने मे वह न पड़े। औरगजेब ने इसे भाई भाई की ईर्ष्या तथा द्वेष के कारण लिखा हुआ समझा, क्योकि हसन अब्दाल मे शाहआलम इसी प्रकार बदनाम हो चुका था और मुहम्मद अकबर की ओर से अब तक कोई शंका नही उठी थी। बादशाह ने उत्तर मे लिख भेजा कि यह दोष बहुत बडा है, तुमको ईश्वर सर्वदा सीधे रास्ते पर दृढ रक्खे। कुछ दिन नही बीते थे कि शंका मिट गई। दुर्गा दास की अध्यक्षता में राजपूतो के पहुँचने और शाहजादे के बादशाह की गद्दी पर बैठकर उन बादशाही नौकरों को, जो उससे मिल गए थे, पदवी बाँटने और मनसब बढाने का एक बार ही कुल समाचार दरबार मे पहुँचा। बादशाह कुली खाँ को जो इस विद्रोह तथा कुमार्ग का प्रदर्शक था, अमीरुल् उमरा की पदवी और सात हजारी मनसब मिला। उसने कुछ को विरोधी समझ कर, मुहतशिम खाँ और मामूर खाँ, कैद कर दिया। यह भी समाचार मिला कि शाह-

जादा सत्तर सहस्र सवारों के साथ युद्ध के लिए आ रहा है। इस समय बादशाही सेना विद्रोहियों तथा दुष्टों को दंड देने के लिए भेजी जा चुकी थी। ऐसा कहा जाता है कि बादशाह के साथ ख्वाजासरा, दफ्तरवाले आदि भी सब ८०० सवार थे पर मआसिर आलमगीरी में लिखा है कि बादशाह के सेवको की संख्या दस सहस्र सवार से अधिक न थी। एकाएक इस घटना से पड़ाववालो मे विचित्र भय और आशंका फैल गई। उसी समय मीर आतिश को सेना के चारो ओर तोपखाने लगाने की आज्ञा हुई और शाह आलम को आज्ञा पत्र भेजा गया कि शीघ्रता से यहीं चला आये। औरंगजेब ने स्वयं दो बार यह कहा था कि बहादुर ने अवसर अच्छा पाया है, देर क्यों करना है। बादशाह अजमेर से निकलकर देवराय मौजे में आकर ठहर गया था। जब शाह आलम दस सहस्र सवारो के साथ पास पहुँचा तब समय देखकर रक्षा के विचार से तोपखाने का मुँह उसकी ओर घुमवा आज्ञा भेजी कि वह अपने पुत्रो के साथ तुरंत सेवा मे आये। जब सोलह हजार सवार एकत्र हो गए तब सेना का व्यूह ठीक किया गया। इसी समय बहुत से सरदार, जैसे दिलेर खाँ का पुत्र कमालुदीन खाँ, फीरोज जंग का भाई मुजाहिद खाँ, शत्रु की सेना में से हटकर बादशाही सेना में आ मिले। यहाँ तक कि ५ मुहर्रम सन् १०९२ हि० को एक पहर से अधिक रात्रि बीतने पर बादशाह को समाचार मिला कि बादशाह कुली खाँ अकबर की सेना से कुदशा में दरबार में आया है। तब गुसुलखाने के दारोगा लुत्फुल्ला खाँ को आज्ञा हुई कि उसे निश्शस्त्र लिवा लाओ। उस मृत्युग्रस्त ने, जिसका कुविचार स्पष्टतः ज्ञात हो रहा था, गुसुलखाने की डेवढ़ी पर पहुँचते ही शस्त्र देने में यहाँ तक हठ किया कि अंत से लुत्फुल्ला खाँ ने बादशाह से जाकर प्रार्थना की कि यह कहता है कि मैं खानाजाद हूँ, कभी बिना शस्त्र के सामने नहीं गया हूँ। आज्ञा दी कि शस्त्र सहित लिवा लावो। जबतक लुत्फुल्ला खाँ लौटकर आवे तबतक इसका होश ठिकाने आ गया और चाहा कि बाहर चल दें पर राजद्रोह उसके पाँव की बेड़ी हो गई। ज्यो ही इसने गुसुलखाने के कनात के बाहर पैर रखा कि अर्दली के आदमियों तथा चेलों ने इसपर आक्रमण किया। यह वस्त्र के नीचे कवच पहिरे हुये था, इसलिए घावो का असर कम हुआ परंतु एक चोट उसके गले पर ऐसी पहुँची, जिससे वह ठंडा हो गया। कहते हैं कि जब यह शस्त्र न देने पर दृढ रहा और यह प्रार्थना की गई कि शाहजादा अकबर की सम्मति से यह दुष्ट विचार के साथ आया है तब बादशाह ने क्रुद्ध होकर तथा हाथ मे तलवार लेकर कहा कि रोको मत और शस्त्र सहित आने दो। इसी समय पहलवानो मे से एक ने उस मृत्युग्रस्त की छाती पर छडी से मारकर इसे रोका। यह उसके मुख पर एक तमाचा जड़कर लौटा पर दैव योग मे इसका पैर खूँटे से ठोकर खा गया और यह गिर पडा। हर तरफ से मारा मारी का शोर मचा और लोगो ने उसका सिर काट लिया। यह भी कहते हैं कि शाह आलम ने उसे मारने का संकेत कर दिया था।

यद्यपि कवच पहिरने के कारण लोगों ने शंका कर ली थी कि यह दुष्टविचार से आया था पर खबाफी खाँ ने अपने इतिहास मे ख्वाजा मुकारम जान निसार खाँ से, जो शाह आलम का उस समय विश्वासी नौकर तथा पुराना कर्मचारी था और अकबर की पीछे की सेना से युद्ध कर घायल हुआ था, सुनी हुई बात लिखी है कि अपनी स्त्री के पिता इनायत खाँ के लिखने पढने से औरंगजेब की सेना मे चला आया था, नही तो बादशाह कुली खाँ के आने का दूसरा कोई कारण नही था। विश्वास की कमी या लज्जा ने उसे दबा लिया था, जिससे हथियार न देने मे उसने मूर्खता की। शाहजादा अकबर की सेना मे, जो बादशाही पडाव से डेढ कोस पर थी, झगडा हो गया। आधीरात के समय परिवार, पुत्र और सामान को छोडकर वह भाग गया। जनता मे यह प्रसिद्ध हुआ कि बादशाह ने इस उपाय से एक आज्ञा पत्र महम्मद अकबर को लिख भेजा कि यद्यपि तुमने आज्ञा के अनुसार इन उजड्ड राजपूतो को बहकाकर सेना के पीछे भाग में नियत किया है पर अब चाहिए कि उन्हे हरावल में नियत करो, जिसमें दोनो ओर के तीरो के बीच मे रहे। जब यह आज्ञापत्र राजपूतो के हाथ मे पडा तब वे घबड़ाकर अलग हो गए।

इसके अनंतर शाहआलम पीछा करने पर नियत हुआ और बहुत लोगो को, जो जबरदस्ती विद्रोहियो के साथ हो गए थे, स्थान स्थान पर नियत किया। काजी खूबुल्ला महम्मद आकिल और मीर गुलाम महम्मद असरोहवी को, जिन्होने समय के बादशाह के विरुद्ध आक्रमण करने के पत्र पर हस्ताक्षर किया था, शिकजे मे खीचकर और बेड़ी पहिराकर गढ पथली मे भेज दिया। यद्यपि बादशाह कुली खाँ विद्रोही कहा गया था पर उसके भाई तथा संतान पर खानजादा होने के कारण कृपा बनी रही। उसके भाई फाजिल बेग को २९वे वर्ष मे बहादुर खाँ की पदवी मिली और हिम्मत खाँ बहादुर के साथ बीजापुर के घेरे मे नियत हुआ। इसके पुत्र असदुद्दीन अहमद को बहादुर शाह के समय खाँ की पदवी मिली। फर्रुखसियर के राज्य के ३ रे वर्ष मे यह अहमद नगर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। यह बड़ा घमडी था और इसपर दूसरे प्रकार का दोष भी लगाया गया था।

•

४४८. बाबा खाँ काकशाल

अकबर के राज्य काल से काकशाल सरदारों में मजनू खाँ के बाद यही मुखिया था। खान जमाँ के युद्ध में इसने बड़ी वीरता और साहस दिखलाया था। १७वें वर्ष सन् ९८० हि० में गुजरात की पहिली चढ़ाई में शहबाज खाँ मीर तुजुक को प्रबंध का कार्य मिला था। उस तुर्क ने अयोग्यता और घमंड से बिना समझे इनके साथ कठोरता का वर्ताव किया। बादशाह ने इसे दंड देने और कुमार्गियों को ठीक करने के लिए भारी चढ़ाई की। उस समय यह अपनी स्वामिभक्ति से बादशाह का कृपापात्र हुआ। बंगाल की चढ़ाई के अनंतर मजनू खाँ काकशाल के मरने पर यद्यपि उसका पुत्र जब्बारी बेग इनका सरदार हुआ पर बाबा खाँ इस समूह का मुखिया रहा। इन काकशालों को घोडा घाट जागीर में मिला था। जब कि दाग की प्रथा बादशाह ने आरंभ किया तब मुनसहियों ने, जो दुश्शील लालची और बेपरवाह थे, इस कार्य को पूरा करने में बड़ी कड़ाई की। इस पर बाबा खाँ ने बंगाल के प्रान्ताध्यक्ष मुजफ्फर खाँ से कहा कि सत्तर हजार रुपया भेंट की तरह इन कर्मचारियों को छोड़ चुका हूँ पर अबतक सौ सवार भी दाग न लगा चुके और कुछ प्रयत्न नहीं हो रहा है। इसी समय २४वें वर्ष में मासूम खाँ काबुली ने बिहार के कुछ जागीरदारों के साथ बलवा किया। बाबा खाँ ने भी अवसर पाकर बंगाल के कुछ जागीरदारों के साथ विद्रोह में उनका साथ दिया। सन् ९८९ हि० में खालदी के साथ सिरों को काट कर गौड़ नगर में आया, जो पहिले लखनौती के नाम से प्रसिद्ध था और शाही सेना से युद्ध कर हर बार असफल रहा। अंत में क्षमा याचना की। मुजफ्फर खाँ ने बिहार प्रान्त के इस बलवे को सुनकर भी घमंड के मारे इसका प्रबंध नहीं किया। एक बार मासूम खाँ दूसरे बलवाइयों के साथ शाही सेना के आते आते बिहार प्रांत से निकल कर बंगाल के बलवाइयों के पास पहुँचा। ये दोनों दल इकट्ठे होकर लूट मार करने लगे। अंत में २५वें वर्ष में मुजफ्फर खाँ को, जो टाँडा में घिर गया था, पकड़कर मार डाला। इस प्रकार थोड़े समय में सफलता मिल जाने और इच्छा पूरी हो जाने से उस प्रांत को बाँटने और मनसब तथा पदवी लेने में वे लग गए। बाबा खाँ ने खानखानाँ की पदवी धारण कर बंगाल का शासन अपने हाथ में ले लिया पर उसी वर्ष ठीक विजय के समय बालखोरे की बीमारी से ग्रस्त हो गया। प्रतिदिन दो सेर मांस उस स्थान पर रखकर जानवरों को खिलाता और कहता था कि स्वामिद्रोह के कारण मेरा यह हाल हुआ। इसी हालत में वह मर गया।

४४६. बालजू कुलीज शमशेर खाँ

यह कुलीज खाँ जानी कुर्बानी का भतीजा और दामाद था। जहाँगीर के ८वें वर्ष में इसका मनसब बढ़कर एक हजारी ७०० सवार का हो गया। ९वें वर्ष में दो हजारी १२०० सवार का मनसब पाकर बंगाल प्रांत में नियत हुआ। इसके बाद बहुत दिनों तक काबुल प्रांत मे रहकर शाहजहाँ से प्रथम वर्ष में इसने दो हजारी १५०० सवार का मनसब पाया। जहाँगीर की मृत्यु पर जब बल्ख के शासक नजर मुहम्मद खाँ ने अपनी सेना के साथ काबुल के पास आकर युद्ध आरंभ किया और नगर मे रहनेवाले शाही आदमियो को धमकी का संदेश भेजा तब इन सबने राजभक्ति के कारण उस पर कुछ ध्यान नही दिया। इन्ही में बालजू[1] कुलीज भी था, जिसकी स्वामिभक्ति बादशाह पर विशेष रूप से प्रगट हुई। दूसरे वर्ष प्रांताध्यक्ष लशकर खाँ के संकेत पर यह सेना के साथ जोहाक और बामियान पर गया। उजबक लोग भय से दुर्गों को छोड़कर भाग गए। तीसरे वर्ष सईद खाँ के साथ कमालुद्दीन रुहेला को दंड देने मे इसने प्रसिद्धि प्राप्त की, जो रुकनुद्दीन रुहेला को दंड देने मे इसने प्रसिद्धि प्राप्त की, जो रुकनुद्दीन का पुत्र था, जिसे जहाँगीर के समय चार हजारी मनसब मिला था और जिसने बाद में उस ओर उपद्रव मचा रखा था।[2] इसको पुरस्कार मे दो हजार पाँच सदी १६०० सवार का मनसब और शमशेर खाँ की पदवी मिली। ४ थे वर्ष में यह दोनो बंगश का थानेदार नियत हुआ और मनसब बढ़कर तीन हजारी २५०० सवार का हो गया। ४वें वर्ष सन् १०४१ हि० (सन् १६३२ ई०) में यह मर गया। इसके पुत्र हसन खाँ का आठ सदी ३०० सवार का मनसब था। इसके भाई अली कुली को नौसदी ४५० सवार का मनसब मिला था पर वह शाहजहाँ के १७वें वर्ष में मर गया।

●

---

१ बादशाहनामा में बालचू या बालखू नाम दिया है।

२ पेशावर प्रांत से तात्पर्य है।

४५०. बुजुर्ग उम्मेद खाँ

यह शायस्ता खाँ का पुत्र था। यह औरगजेब के राज्य के आरंभ में योग्य मनसब पाकर अपने पिता के साथ सुलेमान शिकोह का मार्ग रोकने के लिए नियत हुआ, जो गंगा नदी पारकर दाराशिकोह से मिलना चाहता था। इसके अनंतर खाँ की पदवी पाकर राज्य के प्रथम वर्ष मे यह अपने पिता के साथ राजधानी से आकर सेवा मे उपस्थित हुआ, जब बादशाही सेना शुजाअ के पराजय के अनंतर दाराशिकोह का सामना करने के लिए अजमेर जा रही थी। ९वें वर्ष इसका मनसब एक हजारी ४०० सवार का हो गया। ८वे वर्ष में जब इसके प्रयत्न से चटगाँव बदर विजय हो गया तब इसका मनसब बढ़कर डेढ हजारी ९०० सवार का हो गया। चटगाँव अराकान के जमींदार के राज्य की सीमा पर है, जो मघ जाति का था। उक्त जमींदार के मनुष्य बराबर अवसर पाते ही बादशाही राज्य मे आते थे और लूटमार कर लौट जाते थे। विजय होने पर चटगाँव बंगाल प्रांत मे मिला दिया गया। ३६वें वर्ष खानजहाँ बहादुर कोकलताश के पुत्र हिम्मत खाँ के स्थान पर यह इलाहाबाद का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ और इसके अनंतर बिहार का सूबेदार हुआ। ३८ वें वर्ष में सन् ११०५ हि० सद् १६९४ ई० में इसकी मृत्यु हो गई। कहते हैं कि यह बड़े ऊँचे दिमाग का था। मूसवी खाँ मिर्जा मुइज्ज[1] उपनाम फितरत, जो शाह नवाज खाँ सफ़वी का जामाता और विद्वान तथा सहृदय कवि था, इसकी सूबेदारी के समय बिहार का दीवान नियत हुआ था। पहिली भेंट के दिन सूबेदार के मकान के बरामदे में 'एक छोटे हौज़ मे' जिसमे पानी बह रहा था, मिर्जा ने बिना समझे—अपना हाथ डालकर दो बार हाथ मुँह धोया। इस कार्य पर बुजुर्ग उम्मेद खाँ ने खफा होकर दरबार को शिकायत लिख भेजी और इसे प्रसन्न करने के लिये मिर्जा वहाँ की दीवानी से हटा दिया गया।

•

४५१. बुर्हानुल्मुल्क सआदत खाँ

इसका नाम पीर मुहम्मद अमीन था और यह नैशापुर के मूसवी सैयदो मे से था। आरंभ में यह मुहम्मद फर्रुखसियर का वालाशाही एक हजारी मनसबदार नियत हुआ। बादशाह की राजगद्दी के अनंतर मुहम्मद जाफर की प्रार्थना पर, जो उस राज्य मे तकर्रुब खाँ की पदवी से खानसामाँ के पदपर नियत था और

---

१. इसी पुस्तक में इसका परिचय आगे दिया गया है।

राज्य के आरंभ में अकाल पड़ने पर बाजार का करोड़ी भी हो गया था, उसका नायब करोडी नियत हुआ। इसके बाद आगरा प्रांत के अंतर्गत हिंडून बयाना का फौजदार नियुक्त हुआ, जो विद्रोहियो का स्थान था। इसने विद्रोहियो और दुष्टो को दमन करने मे बहुत प्रयत्न किया, जिससे इसका पाँच सदी मनसब बढ़ गया। जब आगरे के पास मुहम्मद शाह को सेना ने पडाव डाला तब यह अच्छी सेना के साथ उससे जा मिला। यह हुसेन अलीखाँ के मारने के षड्यत्र मे मुहम्मद अमीन खाँ बहादुर का साथी था और उस कार्य मे सफल होने पर सैयद गैरत खाँ बारहा तथा हुसेन अली खाँ के अन्य मित्रो के बलवा पर इसने उनपर आक्रमण करने में बहुत प्रयत्न किया। इसके पुरस्कार मे इसका मनसब बढकर पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया और इसे बहादुर की पदवी और झडा तथा डका मिला। इसके अनतर मुहम्मद शाह तथा सुलतान रफीउश्शान के पुत्र मुहम्मद इब्राहीम के युद्ध में, जिसे हुसेन अलीखाँ के मारे जाने पर उसके बडे भाई कुतुबुल् मुल्क ने बादशाह बनाया था, इसने सेना के बाएँ भाग का अध्यक्ष होकर बडी वीरता दिखलाई। विजय के उपरात इसका मनसब बढकर सात हजारी ७००० सवार का हो गया और इसे बुर्हानुल् मुल्क बहादुर बहादुर जंग की पदवी मिली तथा राजधानी आगरा का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। जब चूडामन जाट, जो सैयदो का बढ़ाया हुआ था, इस युद्ध मे बादशाही सेना के बहादुरो द्वारा मारा गया और उसके पुत्रगण अपने राज्य के दुर्गों को दृढ करके विद्रोह मचाने लगे तब इसने उन्हे दमन करने पर नियत होकर कोई उपाय उठा नही रखा पर घने जगलो और रक्षा के दृढ स्थानो के कारण यह कैसा चाहिए सफल न हो सका। तब उक्त सूबेदारी से हटाया जाकर शाही तोपखाने का दारोगा नियत हुआ और इसके साथ अवध प्रात का सूबेदार भी नियत हुआ, जिसके लिए दैनिक वेतन था (जिसकी नियुक्ति में शक्ति की आवश्यकता थी)। उस प्रांत मे बहुत सेना तथा तोपखाना रखने के कारण और विद्रोही दुष्टों के मारने तथा कैद करने में अच्छी ख्याति पाई। मुहम्मद शाह के २१ वें वर्ष मे ११५१ हि०, सन् १७३९ ई०, मे जब नादिर शाह हिंदुस्तान मे आया और बादशाह उसका सामना करने के लिए करनाल तक गए, तब यह पीछे रह गया था। लम्बी लम्बी यात्रायें कर यह पास पहुँच गया। पर इसी कारण इसका तथा सेना का सामान पीछे मार्ग से रह गया और इस बात का समाचार पाकर ईरानी सेना ने उस पर धावा कर दिया। इस चढ़ाई का वृत्तात सुनते ही बादशाह के तथा अपने सम्मति दाताओ के मना करने पर बुर्हानुल् मुल्क जल्दीकर जो सेना तैयार थी उसी को लेकर युद्ध के लिए चल दिया। शत्रु लौट गए और यह पीछा करता हुआ एक मैदान आगे बढ गया। इसके बाद शत्रु अन्य सेना से मिलकर लौटे और युद्ध मे यह घायल हुआ। दैवयोग से बुर्हानुल् मुल्क के भतीजे निसार मुहम्मद खाँ शेर जंग का हाथी मस्त था और उसने बुर्हानुल् मुल्क के हाथी पर आक्रमण कर उसे

कजिलवाश सेना मे पहुँचा दिया। उसे रोकना संभव नही था, इसलिए बहानुल् मुल्क कैद हो गया। इसके अनंतर सासारिक प्रथा के अनुसार अपने बादशाह की निर्बलता नादिर शाह के मनमे बैठा दी और उससे वचन-बद्ध हुआ कि राजधानी दिल्ली से वह बहुत धन दिलावेगा। इसके बाद मुहम्मद शाह और नादिरशाह में संधि हो गई तब नादिरशाह ने बुर्हानुल् मुल्क को आज्ञा दी कि वह तहमास्प खाँ जलावर के साथ दिल्ली जाय। इस पर इसने दिल्ली पहुँच कर नादिर शाह के लिए शाही दुर्ग मे स्थान ठीक किया। ९ जीहिज्जा सन् ११५१ हि०, १० मार्च सन् १७३९ ई० की रात्रि को यह उन घावो के कारण मर गया। वास्तव में यह एक कर्मठ सरदार था और साहस तथा प्रजापालन मे एक सा था। इसे पुत्र न थे। इसकी पुत्री अबुल् मसूर खाँ को ब्याही थी, जिसका वृत्तात अलग दिया गया है।

४५२. बेबदल खाँ सईदाई गीलानी

यह अच्छी कविता करता था। जहाँगीर के समय हिंदुस्तान आकर बादशाही सेवको मे भर्ती हो गया और कवियो के समूह में इसका नाम लिखा गया। शाहजहाँ के समय मे इसे बुद्धिमानी तथा योग्यता के कारण बेबदल खाँ की पदवी मिली और बहुत दिनो तक यह जवाहिरखाने का दरोगा रहा। इसी के प्रबन्ध मे तख्त ताऊस नामक जडाऊ सिंहासन सात वर्ष मे एक करोड रुपये व्यय कर बना था, जो तीन सौ तैंतीस हजार एराकी तूमान और मावरुन्नहर के चार करोड खानी सिक्को के बराबर था। इस कार्य के पुरस्कार में इसको इसी के तौल के बराबर सोना मिला। वास्तव मे ऐसा बहुमूल्य और सुन्दर सिंहासन कभी किसी समय किसी अन्य देश मे नही देखा गया था और आज भी कही उसका जोड नहीं मिलता। शैर—

इसका जोड देखने में नही आता यद्यपि हरओर देखा गया।

बहुत दिनो में बहुत तरह के रत्न बादशाही जवाहिर खाने में एकत्र हो गये थे, इसलिए शाहजहाँ के हृदय मे अपने राज्य के आरंभ में यह विचार उत्पन्न हुआ कि ऐसे अमूल्य रत्नो का संचय बादशाहत के वैभव को प्रदर्शित करने के लिए है, इसलिये ऐसा करना चाहिए कि जिसमे समुद्रो तथा खानो की इन उपजो के सौंदर्य को दर्शकगण देख सकें और साम्राज्य को नई शोभा प्राप्त हो। महल के भीतर के

खास रत्नों को छोड़कर, जो दो करोड रुपये के मूल्य के थे, जवाहिर खाने से, जिसमें तीन करोड रुपये के रत्न संचित थे, छियासी लाख रुपये के रत्न चुनकर बेबदल खाँ को सौंपे गए कि वह एक लाख तोला खरा सोना का, जो पचीस हजार मिषकाल तौल में होता है और जिसका मूल्य चौदह लाख रुपया है, तीन गज लंबा, ढाई गज चौडा और पाँच गज ऊँचा सिंहासन तैयार करावे। छत का भीतरी भाग मीनाकारी और कुछ रत्नो से बने पर वाहरी भाग लाल व हीरा से जडा रहे। यह छत पन्ने से जडे हुए बारह खंभों पर खडी की जाय। इस छत के ऊपर दो मोर जडाऊ रहे और उनके बीच एक वृक्ष हो, जिसमें लाल, हीरे, पन्ने, मोती जड़े हों। इस सिंहासन पर चढ़ने के लिए तीन सीढ़ियाँ कमानीदार रत्नो से जडी हुई बनाई गई थी। कुल ग्यारह जडाऊ तखते तकिए के तौर पर चारो ओर लगे हुए थे। उनमें से मध्य का जिस पर बादशाह हाथ अडाकर बैठते थे, दस लाख रुपये मूल्य का था। इसमें केवल एक लाख रुपये का जडा हुआ था, जिसे शाह अब्बास सफवी ने जहाँगीर को उपहार में भेजा था और जिसे उसने दक्षिण के विजय के उपलक्ष में शाहजहाँ को भेज दिया था। पहिले इसपर अमीर तैमूर, मिर्जा शाहरुख और मिर्जा उलुग बेग का नाम खुदा था। इसके अनंतर समय के फेर से जब यह शाह के हाथ मे आया तब उसने अपना नाम भी खुदा दिया था। जहाँगीर ने अपना और अकबर का नाम भी खुदवा दिया। इसके अनंतर शाहजहाँ ने भी उस पर अपना नाम अंकित कराया। ८वें वर्ष मे तीन शव्वाल सन् १०४४ हि० को नौरोज के उत्सव पर बादशाह सिंहासन पर बैठे। हाजी मुहम्मद खाँ कुदसी ने औरंगेशाहनशाह-आदिल' (न्यायी बादशाह का सिंहासन) में तारीख निकाली और प्रशंसा में एक मनसवी कहा जिसका एक शैर इस प्रकार है। शैर का अर्थ—

यदि आकाश सिंहासन के पाए तक अपने को पहुँचावे,
तो मुह दिखाई में सूर्य्य और चंद्रमा को देवे।

बेबदल खाँ ने भी एक सौ चौंतीस शैर कहे, जिसमें बारह शैर के हर मिस्रे से बादशाह के जन्म का, इसके अनं बत्तीस शैरों के हर मिस्रे से राज्यगद्दी का और बचे हुए नब्बे शैरो के हर मिस्रे से आगरा से कश्मीर जाने की, जो सन् १०४३ हि० में हुई थी, आगरे लौटने की और तख्त ताऊस पर बैठने की तारीखें निकलती थी। इसकी यह रुबाई प्रसिद्ध है। रुबाई—

तेरा यह सिंहासन आकाश सा उच्च है।
तेरा न्याय संसार की शोभा है॥
जब तक खुदा है तब तक तूभी है।
क्योंकि जहाँ वस्तु है वहाँ छाया भी है॥

औरंगजेब के राज्य के आरंभ में शाही आज्ञा से अमीना के प्रबंध मे तख्त ताऊस की शोभा और बढ़ाई गई जिससे एक करोड़ रुपए से अधिक मूल्य बढ़ गया। सन् ११५२ हि० में जब नादिरशाह दिल्ली आया तब वह तख्त ताऊस को तत्कालीन बादशाह से छीनकर हिंदुस्तान के लूट मे ले गया।

४५३. बेगलर खाँ

इसका नाम सादुल्ला खाँ था और वह अकबर के समय के सईद खाँ चगत्ताई का पुत्र था। यह एक सरदार का पुत्र होने के कारण अच्छी अवस्था में था। यह अपने सौंदर्य, अच्छी चाल और मीठी बोलचाल के लिए प्रसिद्ध था। चौगान खेलने और सैनिक गुणो में अपने साथ वालो से आगे बढ़ गया था। अपने पिता के जीवन काल ही मे यह योग्यता तथा विश्वस्तता मे नाम कमा चुका था। ४६ वें वर्ष मे अकबर ने मिर्जा अजीज कोका की पुत्री से इसका विवाह कर दिया। यह ऊँचे दिमाग वाला था और जलूस वगैरह मे शाहजादो के समान नियम आदि का पालन करता था। यह यश लोलुप था। जब इसका पिता मरा तब छोटे मनसब पर होते भी इसने पिता के अच्छे नौकरो को नही छुड़ाया और जहाँगीर के राज्य के आरंभ मे इसे नवाजिश खाँ की पदवी मिली। ८ वें वर्ष सन् १०२२ हि० में जब जहाँगीर अजमेर में ठहरा हुआ था और राणा की चढ़ाई पर, जो बहुत दिनो से चली आ रही थी, शाहजहाँ को नियत करना उचित समझा गया तब वह भारी सेना के साथ भेजा गया। बेगलर खाँ भी उसके साथ गया। जब राणा के निवास स्थान उदयपुर पर अधिकार हो गया तब नवाजिश खाँ कुछ सरदारो के साथ कुम्भलनेर भेजा गया, जो पहाड़ी स्थान में है और जहाँ अन्न इतना महँगा हो गया था कि एक रुपये का एक सेर भी नहीं मिलता था। बहुत से लोग भूखो मर गए। उक्त खाँ उदारता और साहस से सौ आदमियो के साथ नित्य भोजन करता था। नगद न रहने पर सोने चाँदी के बर्तन बेंचकर अपना व्यय चलाता रहा। जब जहाँगीर और शाहजादा शाहजहाँ में वैमनस्य पैदा हो गया और प्रेम के स्थान पर मनमे मालिन्य आ गया तथा दोनो ओर से युद्ध की तैयारी हुई तब बादशाह लाहौर से थोड़ी सेना के साथ दिल्ली की ओर चला कि भारी सेना एकत्र करे। नवाजिश खाँ गुजरात प्रांत के अंतर्गत अपनी जागीर से फुर्ती के साथ दरबार पहुँचा। ऐसे समय स्वामिभक्ति तथा विश्वास की परीक्षा होती है और इसी कारण इसकी प्रशंसा हुई तथा इस पर कृपाएँ हुईं। यह अब्दुल्ला खाँ के साथ नियत हुआ, जो हरावल का

अध्यक्ष था। जिस समय शाही सेना और शाहजादे की सेना में सामना हुआ अब्दुल्ला खाँ गुप्त प्रतिज्ञा के अनुसार शाहजादे की सेना में जा मिला। नवाजिश खाँ इस बात से अनभिज्ञ होने के कारण यह समझा कि यह धावा युद्ध के लिए है। इसलिए यह कुछ सरदारो तथा सैनिको के साथ खूब लडा और वीरता तथा साहस के लिए इसने नाम पैदा किया। इसपर शाही कृपा बढती गई और यह बेगलर खाँ की पदवी, सरकार सोरठ और जूनागढ की फौजदारी तथा जागीर और दो हजारी २५०० सवार का मनसब पाकर सम्मानित हुआ। इसने बहुत दिनो तक उस प्रांत मे विश्वास तथा सम्मान के साथ बिताया। शाहजहाँ की राजगद्दी पर इसका मनसब एक हजारी बढा पर उसी वर्ष उस स्थान से यह हटाया गया और ३ रे वर्ष सन् १०३९ हि० (सन् १६३० ई०) मे मर गया। सरहिंद में अपने पिता की कब्र के पास गाडा गया। इसके बाद इसके वंश वालों मे से किसी ने उन्नति नही की।

•

४५४. बैराम खाँ खानखानाँ

इसका संबंध अलीशुक्र बेग बारलू तक पहुँचता है, जो कराकवीलू तुर्कमान जाति का एक सरदार था। इसके राज्य के उन्नति-काल में अर्थात् करा यूसुफ और उसके पुत्रो करा सिकंदर तथा मिर्जा जहाँशाह के समय मे जब राज्य-विस्तार इराक, अरब और आजर बईजान् तक था तब अलीशुक्र बेग को हमदान, देनूर और कुर्दिस्तान प्रांत जागीर में मिला था। अबतक वह प्रांत अलीशुक्र के नाम से मशहूर है। इसका पुत्र पीर अलीबेग बादशाह हसन आका कवीलू के समय, जो करा कवीलू को दमन करने आया, शादमान दुर्ग आकर सुलतान महमूद मिर्जा के यहाँ कुछ दिन व्यतीत करने पर फारस चला गया और शीराज के अध्यक्ष से युद्ध कर परास्त हुआ। इसी समय यह सुलतान हुसेन मिर्जा के सरदारो के हाथ मारा गया। इसके अनंतर इसका पुत्र यारबेग जाह, इस्माइल सफवी के समय एराक से बदख्शाँ आकर वहीं बस गया। वहाँ से अमीर खुसरू शाह के पास कंदज गया। इस राज्य का अंत होनेपर अपने पुत्र सैफ अली बेग के साथ, जो बैराम खाँ का पिता था, बाबर बादशाह का सेवक हो गया। बैराम खाँ बदख्शाँ मे पैदा हुआ और पिता की मृत्यु पर बल्ख जाकर विद्या प्राप्त किया। सोलहवें वर्ष मे हुमायूँ की सेवा मे आकर बराबर उसका अधिकाधिक कृपापात्र होता गया, जिससे यह समर में मुसाहब और सरदार हो गया। कन्नौज के उपद्रव में बहुत प्रयत्न करके

यह संभल की ओर गया और वहाँ के एक विश्वास भूम्याधिकारी राजा मित्रसेन के यहाँ सहायता पाने की इच्छा से लखनौर बस्ती को चला। जब यह समाचार शेर खाँ को मिला तब उसने उसे बुला भेजा। यह मालवा होकर उसके पास पहुँचा। शेर खाँ ने उठकर इसका स्वागत किया और मीठी मीठी बातें करके इसे मिलाना चाहा पर शील रखनेवाला धोखा नहीं देता। बैराम खाँ ने उत्तर दिया कि जो सच्चे है वे कभी किसी को धोखा नहीं देते। यह बुरहानपुर के पास से ग्वालियर के अध्यक्ष अबुल् कासिम के साथ बड़ी घबड़ाहट से गुजरात की ओर रवाना हुआ। मार्ग मे शेर खाँ का दूत, जो गुजरात से आ रहा था, यह वृत्तांत जानकर आदमी भेजे, जिन्होने अबुल् कासिम को दोनों मे सुरत शकल मे अच्छा पाकर पकड़ लिया। बैराम खाँ ने उदारता और वीरता से कहा कि बैराम खाँ मैं हूँ। अबुल् कासिम ने भी बहादुरी से कहा कि यह मेरा सेवक है और कहता है कि मुझ पर निछावर हो जाय? इसपर उन्होने इसे नही पकड़ा। इस प्रकार बैराम खाँ छुट्टी पाकर सुलतान महमूद के पास गुजरात पहुँचा। अबुल् कासिम भी बाद को न पहचाने जाने से छोड दिया गया! शेर खाँ ने कई बार कहा था कि उसी समय, जब बैराम खाँ ने कहा कि जो शील रखता है धोखा नही देता, हमने समझ लिया था कि वह हमसे नही मिलेगा। सुलतान महमूद गुजराती ने भी उसकी मित्रता चाही पर बैराम खाँ ने स्वीकार नही किया और हिजाज की यात्रा को विदा होकर सूरत आया और वहाँ से हरिद्वार होते हुए हुमायूँ की सेवा मे पहुँचने के विचार से सिंध की ओर चल दिया। ७ मुहर्रम सन् ९५० हि० (१३ अप्रैल सन् १५४३ ई०) को उस समय, जब बादशाह बाल्देव के राज्य से लौटकर सिंध नदी के तटस्थ जून बस्ती मे, जो बागो तथा नहरो की अधिकता के लिये उनकी बस्तियो मे प्रसिद्ध था, ठहरे हुए थे, बैराम खाँ सेवा में पहुँचकर कृपापात्र हुआ। दैवयोग से जिस दिन यह पहुँचा था उस समय सेवा में उपस्थित होने के पहिले यह उस मैदान में पहुँचा, जहाँ बादशाही सेना अरगूनियो से लड़ रही थी। बैराम खाँ भी युद्ध के लिये तैयार होकर बडी बहादुरी से लड़ने लगा। शाही सेना आश्चर्य में थी कि यह दैवी सहायता है पर जब मालूम हुआ कि वह बैराम खाँ है तब यह हैरानी मिट गई। इराक की यात्रा में यह स्वामिभक्त सेवको मे एक था। इराक के शाह ने भी इसकी बुद्धिमत्ता और योग्यता को खूब पसंद किया। हुमायूँ बादशाह की प्रसन्नता के लिये शाह कभी महफिल सजाता और कभी शिकार का प्रबंध करता था। एक दिन चौगान खेलते हुए और तीर चलाते समय इसको खाँ की पदवी दी। इराक से लौटने पर शाह का उपदेशमय पत्र और हुमायूँ का फरमान लेकर यह मिर्जा कामराँ के पास गया। इसने विचार किया कि मिर्जा बैठा होगा, उस समय यह दोनो पत्र देना उचित नही है क्योंकि मिर्जा का अभ्युत्थान देना संभव नहीं। तब यह एक कुरान हाथ मे भेंट देने के लिए लेता गया। मिर्जा उसकी प्रतिष्ठा के लिये

खडा हुआ तब इसने दोनों पत्र दे दिया। जब हुमायूँ ने कंधार के विजय के बाद प्रतिज्ञा के अनुसार उसे कजिलवाशियों को सौंपकर काबुल लेने का विचार दृढ़ किया तब अपने परिवार की रक्षा के लिये प्रबंध करना भी आवश्यक हुआ। इस पर दुर्ग को बलात् लेकर बैराम खाँ को सौंप दिया और शाह को क्षमापत्र लिखा कि बैराम खाँ दोनों ओर का सेवक है इसलिये उसी को सौंप दिया है। जब सन् ९६१ हि० में कुछ दुष्टों ने बैराम खाँ के विरुद्ध कुछ अनुचित बातें बादशाह से कही तब वह स्वयं कंधार आया। यहाँ मालूम हुआ कि वह सब झूठ था तब इस पर कृपा किया। इसने हिंदुस्तान की चढ़ाई में अच्छे सरदारों और वीरों के साथ बडी वीरता दिखलाकर कई विजय प्राप्त किया। इन सब में विशिष्ट माछीवाडा युद्ध था, जिसमे थोडी सेना के साथ बहुत से अफगानों से युद्ध कर इसने विजय प्राप्त किया था। इसे सरहिंद आदि परगने जागीर मे मिले और यार वफादार विरादर निकोसियर और फरजंद सआदतमंद की ऊँची पदवियाँ पाकर यह सम्मानित हुआ। सन् ९६३ हि० मे यह शाहजादा अकबर का अभिभावक नियत होकर सिकंदर खाँ सूर को दंड देने के लिये और पंजाब प्रांत का प्रबंध करने के लिए नियुक्त हुआ। इसी वर्ष २ रबीउल् आखिर शुक्रवार को जब अकबर पंजाब के अंतर्गत कलानौर मे गद्दी पर बैठा तब बैराम खाँ प्रधान मंत्री हुआ और साम्राज्य का कुल प्रबंध इसी के हाथ मे आया। इसको खानखानाँ का ऊँचा पद मिला और यह खान बाबा के नाम से पुकारा जाता था। सन् ९६२ हि० में इसका सलीमा सुलतान बेगम से निकाह हुआ, क्योकि हुँमायूँ ने अपने जीवन में ऐसा निश्चय कर दिया था। वह मिर्जा नूरुद्दीन की पुत्री और हुमायूँ की भाँजी थी। मिर्जा नूरुद्दीन अलाउद्दीन का पुत्र और ख्वाजा हुसेन का पौत्र था, जो चगानियान के ख्वाजाबादी के नाम से मशहूर थे। वह ख्वाजा हसन का भतीजा था। ये लोग ख्वाजा अलाउद्दीन के लडके थे, जो नक्शबंदी ख्वाजों का सरदार था। शाह बेगम की पुत्री, जो बैराम खाँ के प्रपितामह अलीशकर बेग की लडकी थी और सुलतान अबू सईद के पुत्र सुलतान महमूद के घर मे थी, ख्वाजा के लडके को व्याही थी। इस संबंध मे बाबर ने अपनी पुत्री गुलरुर्ग बेगम का मिर्जा से निकाह कर दिया था और उसी कारण यह भी संबंध हुआ। सलीमा बेगम ने कवि हृदय रखने से अपना उपनाम 'मस्त्रफी' रखा था। उसका यह शैर प्रसिद्ध है (पर इसका अर्थ यहाँ नही दिया गया है।)

बैराम खाँ के मरने पर अकबर ने बेगम से स्वयं निकाह कर लिया और वह जहाँगीर के राज्य-काल के ७ वे वर्ष में मर गई।

ऐसा संबंध, उच्च पद, दृढ़ता, बुद्धिमानी, योग्यता और शालीनता के रहते हुए भी भाग्य के फेर से ऐसा हो गया कि अकबर का मन उस उच्चाशय पुरुष से फिर

गया। वास्तव में ईर्ष्यालु दुष्टों ने अपने स्वार्थ के लिए एक का सौ कहकर युवक बादशाह के चित्त को इसकी ओर से फेर दिया और खुशामदियों तथा स्वामिद्रोहियों ने उस वृद्ध सरदार को स्थानच्युत करा दिया। जैसा होना चाहता था, वैसा नही हुआ। एक दिन बैराम खाँ नाव पर सवार होकर यमुना जी मे सैर कर रहा था। एक बादशाही हाथी नदी में उतरकर मस्ती से इसकी नाव की ओर दौडा। यद्यपि हाथीवान ने बहुत रक्षा की पर बैराम खां भय से बहुत घबड़ा गया। बादशाह ने उसकी खातिर हाथीवान को उसके पास भेज दिया पर बैराम खां ने शाही नियम का विचार न कर उसे प्राण दंड दे दिया। इस कारण बादशाह अप्रसन्न हो गए और उससे संबंध तोड़ना निश्चय किया। सन् ९६७ हि० में अकबर आगरे से शिकार के बहाने दिल्ली चल दिया और वहाँ पहुँचकर सरदारो को लाने की आज्ञा भेज दी। माहम अनगा की सम्मति से शहाबुद्दीन अहमद खाँ देश के प्रबंध पर नियत हुआ। खानखानाँ चाहता था कि स्वयं सेवा में उपस्थित हो पर अकबर ने संदेशा भेज दिया कि इस बार साक्षात् न होगा इसलिए अच्छा होगा कि दरबार न आवे। कुछ लोग कहते हैं कि बादशाह केवल अहेर खेलने की इच्छा से बाहर निकलकर जब सिकंदराबाद दिल्ली पहुँचा तब माहम अनगा के बहकाने से अपनी माता हमीदाबानू को देखने के लिए दिल्ली गया। बैराम खाँ की ओर से उसके मन में कुछ भी मालिन्य न था। यद्यपि ईर्ष्यालु दुष्ट गण इस फिक्र मे थे कि इस संबंध को बिगाड़ कर अपना स्वार्थ पूरा करे। उन सबने ऐसी बातें बादशाह से कही, जो मनोमालिन्य का कारण हो गईं, विशेषकर अदहम खाँ और उसकी माता माहम अनगा ने। परंतु, बैराम खाँ का विश्वास बादशाह के हृदय में ऐसा जमा हुआ था कि इन बातों का कोई प्रभाव नही पडा लेकिन कहा गया है कि—शैर

उन दुष्टों ने यह अवसर पाकर उसके हृदय में पूरी तरह मालिन्य जमा दिया।

संक्षेपत: बैराम खाँ ने अपनी सचाई के कारण कुल राजचिह्न अच्छे सरदारों के साथ दरबार भेजकर हज्ज जाने की प्रार्थना की पर फिर कुछ उपद्रवियो की राय में पड़कर मेवात चला गया। जब शाही सेना के पीछा करने का शोर मचा तब बादशाही आदमी इससे अलग हो गए। इसने झंडा, डंका आदि सरदारी के सब चिह्न अपने भांजे हुसेन कुली बेग के हाथ दरबार भेज दिया और पीछा करने वाले सरदारों को लिखा कि अब हमने इस कार्य से हाथ उठा लिया है, क्यो व्यर्थ प्रयत्न करते हो और मेरी तो बहुत दिनो से हज्ज करने की इच्छा थी। निरुपाय होकर सरदार लोग लौट गए। जोधपुर का राजा राय मालदेव गुजरात का मार्ग रोके हुए था और खानखानां से वह शत्रुता भी रखता था, इसलिये यह नागौर से बीकानेर चला गया, जहाँ के राजा राय कल्याण मल्ल ने इसका स्वागत कर अच्छा

आतिथ्य किया। इसी समय प्रसिद्ध हुआ कि मुल्ला पीर महम्मद गुजरात से आकर इसका पीछा करने पर नियत हुआ है। षड्‌यंत्रियों ने बैराम खाँ के क्रोध को उभाड़ दिया और यह युद्ध करना निश्चय कर पंजाब लौटा परंतु फिर इन अभागे दुष्टों की बात को छोड़कर इसने पंजाब का जाना रोक दिया और चारों ओर के सरदारों को लिख भेजा कि हज्ज जाने ही की इच्छा है। परंतु जब इसे मालूम हुआ कि माहम अनगा आदि बादशाह का मन फेरकर इसका नाश ही चाहते हैं, तब उसने निश्चय किया कि एक बार इन दुष्टों को दंड देकर हज्ज को जाऊँ और मुल्ला पीर महम्मद शरवानी से समझ लूं, जो इसी बीच झंडा व डंका पाकर मुझे निकालने को नियत हुआ है।

वास्तव मे ये ही बर्ताव उसके क्षुब्ध होने के कारण हुए और वह अपने को रोक न सका। उपद्रवियों ने यह अवसर पाकर इसे और भड़काया। जब खानखानाँ के विद्रोह का समाचार मिला तब अकबर अतगा खाँ को सरदार बनाकर स्वयं पीछा करने के लिए दिल्ली से निकला। उस समय खानखानाँ जालंधर लेने का प्रबंध कर रहा था पर अतगा खाँ का आना सुनकर उसका सामना करने के लिये आया। तलवारा के घोर युद्ध मे, जो सिवालिक पहाड़ में एक दृढ़ स्थान है, खानखानाँ परास्त होकर वहाँ के राजा राय गणेश की शरण में गया। जब बादशाही सेना उस पहाड़ के पास पहुँची तब दुर्ग की सेना ने निकल कर उससे युद्ध किया। कहते हैं कि उस युद्ध में शाही सेना का सुलतान हसन खाँ जलायर मारा गया और जब उसका सिर काट कर खानखानाँ के पास ले गए तब वह दुखी होकर बोला कि मेरे इस जीवन को धिक्कार है जो ऐसे लोगों की मृत्यु का कारण हुआ। इसने अपने सेवक जमाल खाँ को बड़े शोक के साथ बादशाह के पास भेजकर क्षमा याचना की। अकबर ने मुनइम खाँ तथा अन्य सरदारों को पहाड़ के नीचे भेजा कि बैराम खाँ को सांत्वना देकर सेवा में ले आवे। ५ वे वर्ष सन् ९६८ हि० के मोहर्रम महीने मे खानखानाँ कम्प के पास पहुँचा। कुल सरदार आगे बढ़कर बड़ी प्रतिष्ठा के साथ इसे लिवा लाए। जब यह सामने पहुँचा तब रूमाल गले में डालकर अपना सिर बादशाह के पैरों पर रख दिया और रोने लगा। अकबर ने बड़ी कृपा करके उसे गले लगाकर रूमाल गर्दन से निकाल दिया और हाल पूछकर पहिली प्रथा के अनुसार बैठने की आज्ञा दी। अच्छा खिलअत, जो तैयार रक्खा था, देकर हज्ज जाने के लिए विदा किया। जब यह गुजरात के अंतर्गत पत्तन पहुँचा, जो पहिले नहरवाला के नाम से प्रसिद्ध था, तब कुछ दिन तक वहाँ ठहरकर आराम करता रहा। उस समय मूसा खाँ फौलादी उस नगर का अध्यक्ष था और बहुत से अफगान उसके यहाँ एकत्र हो गए थे। इनमे एक मुबारक खाँ लोहानी ने, जिसका पिता माछीवाड़ा के युद्ध में मारा गया था, बैराम खाँ से

बदला लेने का विचार किया। सलीम शाह की काश्मीरी स्त्री अपनी पुत्री के साथ, जो उससे पैदा हुई थी, बैराम खाँ के साथ हज्ज को जा रही थी और यह निश्चय हुआ था कि बैराम खा के पुत्र के साथ उसका संबंध हो। अफगान लोग इस कारण भी इससे बुरा मानते थे। उसी वर्ष की १४वी जमादिउल् अव्वल शुक्रवार को यह कुलाबे की सैर को गया, जो उस नगर का एक रम्य स्थान है और सहस्र लिंग के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसके तालाव के दो ओर कई सहस्र मंदिर बने हुए हैं। जिस समय बैराम खाँ नाव पर से उतर रहा था उस मूर्ख ने मिलने के बहाने पास आकर ऐसा छूरा मारा कि इसका काम समाप्त हो गया। उस समय खानखानाँ के मुँह पर अल्ला हो अकबर आया ही था कि वह मर गया और फकीरो से जिसके लिए प्रार्थना किया करता था। कहते हैं कि कई वर्षों से वीरगति पाने की इच्छा से यह बुधवार को हजामत बनवाता और स्नान करता था। इसके प्रभुत्व-काल में एक सीधे सैय्यद ने यह सुना और मजलिस मे खड़े होकर कहा कि नवाब के वीरगति पाने के लिए फातिहा पढ़ा करता हूँ। इसने मुसकिरा कर कहा कि मीर यह कैसी सहानुभूति है, वीरगति चाहता हूँ पर इतनी जल्दी नही।

इस घटना के अनंतर इसके सभी सेवक अपने स्थान को भाग गए और बैराम खाँ खून और धूल मे पड़ा रहा। कुछ फकीरों ने इसके शव को शेख हिसाम के मकबरे के पास, जो उस स्थान का एक शेख था, गाड़ दिया। इसके अनंतर हुसैन कुली खाँ खानजहाँ के प्रयत्न से मशहद में गाड़ा गया। कासिम अरसलाँ मशहदी ने इस घटना पर तारीख कही है। कहते हैं कि इस घटना के बहुत पहिले स्वप्न में जानकर उसने यह कहा था।

खाँ के शव को उसकी वसीयत के अनुसार वह सन् ९८५ हि० मे मशहद ले गया था। बैराम खाँ ने बहुत सी अच्छी कविता कही है। अच्छे कसीदे और उस्तादो के शैर खूब याद किए था और उनका संग्रह 'दखीला' नाम से किया था। कहते हैं कि जब बैराम खाँ कंधार मे था तब हुमायूँ ने एक रुबाई लिखी थी और बैराम खाँ ने उत्तर भी रुबाई में लिखा था। कहते हैं कि एक रात्रि हुमायूँ बादशाह खाँ से बात कर रहे थे और यह अन्य विचार मे मग्न हो गया। बादशाह ने पूछा कि हमने क्या कहा? खाँ ने सतर्क होकर कहा कि बादशाह, मैं उपस्थित हूँ परंतु सुना है कि बादशाहों के सामने आँख पर, साधुओ के सामने हृदय पर और विद्वानो के सामने वाणी पर ध्यान रखना चाहिए पर आप मे तीनो के गुण हैं इसलिए चिंता में था कि किस एक पर ध्यान रख सकता हूँ। बादशाह को यह लतीफा पसंद आया और इसकी प्रशंसा की।

तबकाते-अकबरी का लेखक लिखता है कि बैराम खाँ के पच्चीस सेवक पांच हजारी मनसब तक पहुँचे थे और झंडा तथा डंका पा चुके थे। वास्तव में बैराम खाँ योग्यता, साहस, उदारता तथा दूरदर्शिता के गुणों से विभूषित था और वीर, कार्य-कुशल तथा दृढ़ चित्त का था। इसने तैमूरी राजवंश पर अपने कार्यों से अपना भारी स्वत्व स्थापित कर लिया था। जब हुमायूं बादशाह के राज्य का प्रबंध स्थिर भी न हो पाया था तभी वह परलोक सिधारा और शाहजादा छोटी अवस्था का अननुभवी था। सिवाय पंजाब के कुल देश दूसरों के हाथ में चला गया था। अफगान गण चारों ओर से हजूम करके राज्य पर अपना स्वत्व दिखलाते हुए विद्रोह को तैयार हुए और हर ओर लड़ने को उद्यत हो गए। चगत्ताई सरदार हिंदुस्तान में ठहरना नही चाहते थे, इसलिये काबुल जाने की राय देने लगे। मिर्जा सुलेमान ने अवसर पाकर काबुल में अपना खुतबा पढ़वा दिया। ऐसे अशांतिमय काल में बैराम खाँ अपने सौभाग्य, दृढ़ता, दूरदर्शिता और नीति-कौशल से नदी पार कर किनारे पहुँचा और राज्य को दृढ़ बनाया। अकबर भी अनेक प्रकार से उसको अपनी कृपाओं से संतुष्ट कर कुल कार्य उसके हाथ में देते हुए शपथ खाई कि जो कुछ उचित और आवश्यक हो वही वह करे, किसी का विचार न करे और किसी से न डरे। इसके बाद एक मिसरा पढ़ा।

इस प्रकार खानखानाँ की प्रतिष्ठा बढ़ती गई, जिससे द्वेष के कांटे बहुतो के हृदय में खटकने लगे। अदूरदर्शी ईर्ष्यालु लोगों ने झूठ सच बातें इकट्ठी कर एक का सौ बना बादशाह को इसके विरुद्ध कर दिया। खानखानाँ भी अपने सनमान तथा प्रभुत्व के कारण दूसरों पर विश्वास न कर उनपर कृपा नही करता था और अपने शक्की स्वभाव और चिड़चिड़े पन से शीघ्र गिर गया। इस पर भी खानखानाँ का विद्रोह करने का तनिक भी विचार न था। मीर अब्दुल्लतीफ कजवीनी द्वारा शाही आज्ञा पाते ही कुल सामान सरदारी का दरबार भेजकर हज्ज जाने को तैयार हो गया पर उपद्रवियो ने दोनो पक्ष को नही छोड़ा। शत्रुओ ने मार्ग के राजाओं को लिखा कि इसे सुरक्षित न जाने दें। इधर लोगो ने इसे समझाया कि छोटे मनुष्य तुम्हे उखाड़ने मे अपने उपायों के सफल होने पर अभिमान करते हैं और तुम इतना स्वत्व रखते हुए इस तरह नीचे गिर गए। सम्मान के साथ मरना ऐसे जीवन से अच्छा है। इन बातो ने वह कार्य किया, जिससे इसकी ऐसी दुर्दशा हुई। आदमी को बुरे दिन ऐश्वर्य प्रियता और अहंकार में डाल देते है, जिससे उसे बहुत कष्ट उठाना पडता है। इसी से कहते है कि संसार-प्रियता भूल है।

•

४५५. बैरम बेग तुर्कमान

शाहजहाँ जब शाहजादा था, उस समय यह उसका मीर बख्शी था और उसके अच्छे सरदारों में से था। इसका मनसब ऊँचा और पदवी खानदौराँ की थी। जब शाहजादा रुस्तम खाँ शेगाली के धोखा देने से सुलतान पर्वेज के सामने से भागा और नर्वदा नदी पार हो गया तब इसने कुल नावों को अपनी ओर ले जाकर तथा कुल उतारों को तोप बंदूक से दृढ़कर बैरम बेग को कुछ सेना के साथ नदी के किनारे की रक्षा के लिये वहीं छोड़ा और आप बुर्हानपुर चला गया। जब महावत खाँ सुलतान पर्वेज के साथ नर्मदा के किनारे पहुँचा तब बैरम बेग युद्ध को तैयार हुआ। उसके पहुँचते ही तोप और बंदूक की लड़ाई छिड़ गई। महावत खाँ ने देखा कि इस तरह पार होना कठिन है तब वह चाल चलने लगा। उसने राव रत्न के द्वारा मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखानाँ को लिखा और इसकी मध्यस्थता में संधि की बात चलाई। खानखानाँ ने भी शाहजहाँ पर जोर दिया कि वह संधि उसी के बीच में अवश्य की जाय। यदि यह संधि उसकी इच्छा के अनुसार न होवे तो उसके पुत्रों को दंड दिया जाय। इस बात के साथ उसने कई शपथें खाईं। जब संधि की बात प्रसिद्ध हो गई तब उतारों की रक्षा में ढिलाई पड़ गयी। खानखानाँ के पहुँचने के पहिले ही रात्रि में महाबत खाँ नदी पार हो गया और खानखानाँ भी कुल वचन और प्रतिज्ञा को भूलकर शाही सेना से जा मिला। बैरम बेग लाचार हो बुर्हानपुर चला गया। इसके अनंतर जब बंगाल की चढ़ाई में शाहजादा वर्दवान में ठहरा हुआ था उस समय आसफ खाँ जाफर का भतीजा सालेह बेग वहाँ का फौजदार था और वह दुर्ग के कच्चे होते भी उसमें जा बैठा। अब्दुल्ला खाँ ने उसको घेर कर जब उसे तंग किया तब निरुपाय होकर वह बाहर निकला और शाहजहाँ की आज्ञा से कैद किया गया। बैरम बेग को वर्दवान सरकार जागीर में मिला और वह वहाँ का प्रबंध देखने को भेजा गया। जब शाहजादा बंगाल पर अधिकार कर बिहार पहुँचा और उसपर भी अधिकार कर लिया तब बैरम बेग बर्दवान से आकर बिहार प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। इसके अनंतर जब बनारस में शाही सेना से शाहजहाँ का सामना हुआ तब वजीर खाँ बिहार का अध्यक्ष नियत हुआ और बैरम बेग आज्ञा के अनुसार शाहजादे के पास गया। जिस दिन सुलतान पर्वेज ने अपने बख्शी महम्मद जमाँ को नदी के पार भेजा उस दिन बैरम बेग खानदौराँ उससे अवसर निकाल कर युद्ध करने को भेजा गया। इसने घमंड और अहम्मन्यता से महम्मद जमाँ को योग्य न समझ कर थोड़े आदमियों के साथ गंगा औ यमुना के संगम के पास उसपर धावा कर दिया, जिसमें इसने घायल होकर व्यर्थ अपनी जान दे दी। इसका पुत्र हसन बेग युद्ध में घायल होकर निकल आया पर कुछ दिन बाद मर गया।

४५६. सैयद मंसूर खाँ बारहः

यह सैयद खानजहाँ शाहजहानी का पुत्र था। यह युवा मंसबदार तथा जागीरदार था। जब १९ वें वर्ष में इसका पिता मर गया तब उसकी मृत्यु के समय ही यह बिना कारण झूठी शंका करके जंगल की ओर भाग गया। शाहजहाँ ने गुर्जबर्दारो के दारोगा यादगारबेग को कुछ गुर्जबर्दारो के साथ उसका पता लगाने को सरहिंद की ओर भेजा, (जो अवश्य ही अपने घर की ओर गया होगा) कि उस मूर्ख को जहाँ पावें कैद कर दरबार लावें। इसके अनंतर ज्ञात हुआ कि वह लक्खी जंगल की ओर जाकर वहाँ के करोड़ी के हाथ पकड़ा गया है तब मीर तुजुक शफीउल्ला बर्लास कुछ वीरों के साथ उसे लाने को भेजा गया। उक्त करोड़ी ने खानजहाँ के पुत्र होने के कारण, जो साम्राज्य का बडा सर्दार था, इस कृतघ्न उपद्रवी की रक्षा मे विशेष कड़ाई नहीं रखी थी इस कारण वह शफीउल्ला के पहुँचने के पहिले ही भाग गया। इसने पहुँचते ही उक्त करोड़ी को उसकी असावधानी पर, जो उससे हो हो गई थी, बादशाही कोप की, जो ईश्वरी कोप का नमूना है, सूचना दी। उसने अपने चाचा थारः के करोड़ी को शीघ्रता से लिखा कि यदि वह उस ओर गया हो तो प्रयत्न कर उसे कैद कर ले नही तो इसकी जान और जीविका नष्ट हो जायेगी। बहुत प्रयत्न पर चिन्ह पहिचानने वालो ने पता बतलाया कि वह थारः होता सरहिंद जा रहा है। यह भी स्वयं पीछा करता हुआ चला और यादगार बेग से मिलकर, जो सरहिंद तक पता न पाकर भी उसकी खोज मे वही ठहर गया था, उसका पता लगाने लगा। बहुत परिश्रम करने के बाद उसका यह पता लगा कि दो मित्रों के साथ बहुत कोशिश करता सरहिंद के पास पहुँच गया है और घोड़ो को जंगल मे छोड़कर तथा जीनो को कुएँ मे डालकर स्वयं हाफिज बाग मे फकीर बनकर एकात मे रहता है। यादगार बेग उसे कैद कर तथा हथकडी बेड़ी पहिराकर दरबार लिवा लाया। वह कैदखाने भेज दिया गया। २१ वें वर्ष मे शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर की प्रार्थना पर, जब वह बलख की चढ़ाई पर जा रहा था, इसे कैद से छुट्टी मिली पर यह शाहजादे को सौंपा गया कि अपने सेवको मे भर्ती कर बलख ले जावे। इसके बाद उसका दोष क्षमा होने पर मंसब बहाल हो गया। परन्तु स्वभाव ही से वह दुष्ट था इसलिए नए दोष किए, जिनमें प्रत्येक दंडनीय था। बादशाह ने इसके पिता की सेवाओ का विचार कर इसे केवल नौकरी से हटा दिया।

उसी समय जब शाहजादा मुरादबख्श गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ तब इसे उसके साथ कर दिया कि वही से मक्का जाकर अपने दोषो की क्षमा याचना करे कि स्यात् अपने कुकर्म तथा अयोग्य चाल को मन से दूर कर सके। ३० वें वर्ष मे वहाँ से लौटने पर उसकी चाल से पुराने कृत्यो के लिए लज्जा प्रकट हो रही थी

इसलिए उक्त शाहजादे की प्रार्थना पर इसे एक हजारी ४०० सवार का मंसब देकर गुजरात में नियत कर दिया। यहाँ से उक्त शाहजादे के साथ महाराज यशवंतसिंह के युद्ध में तथा दाराशिकोह की प्रथम लड़ाई में प्रयत्न करने से इसका मंसब बढ़ा और खाँ की पदवी मिली। जब वह[1] अदूरदर्शी शाहजादा आलमगीर बादशाह के हाथ कैद हुआ तब इसे तीन हजारी १५०० सवार का मंसब मिला और यह खलीलुल्ला खाँ के साथ भेजा गया, जो दाराशिकोह का पीछा करने पर नियत हुआ था। इसके बाद इसका क्या हाल हुआ और यह कब मरा, इसका पता नहीं लगा।

•

४५७. मकरम खाँ मीर इसहाक

यह शेख मीर का द्वितीय पुत्र था, जिसका विश्वास तथा कार्यशक्ति इस प्रकार औरंगजेब के हृदय में बैठ गई थी कि उसकी एक अच्छी सेवा के कारण, जिसने उसके राज्य के आरंभ में स्वामी के कार्य में अपना प्राण निछावर कर दिया था, उसका भारी स्वत्व अपने ऊपर मान लिया था और उसके पुत्रों पर अनेक प्रकार की कृपा करता रहा। प्रसिद्ध है कि बादशाह इन सब को साहबजादा कहा करता था। इसी कृपा के कारण घमंडी हुए ये लोग अपने स्वामी से भी खानाजादी की ऐंठ दिखलाते थे और सांसारिक व्यवहार का विचार न कर किसी के आगे सिर नहीं झुकाते थे तथा सिवा एकांतवास के किसी से मिलते न थे। संक्षेपतः मीर इसहाक को अच्छा मंसब तथा मकरम खाँ की पदवी मिली और यह जिलौ[2] के नौकरों का दारोगा नियत हुआ। १८ वें वर्ष में जब बादशाह हसन अब्दाल गए तब उक्त खाँ भाई शमशेर खाँ मुहम्मद याकूब के साथ भारी सेना सहित अफगानों को दंड देने के लिए नियत हुआ। मकरम खाँ ने खालूग[3] घाटी की ओर से घुसकर कई बार शत्रु से युद्ध किया और बहुतों को कैदकर उनके स्थानों को नष्ट कर डाला। एक दिन उपद्रवियों ने अपने को दिखलाया और इसने बिना उनकी संख्या समझे निडरता से आक्रमण कर दिया तथा जीत भी गया। इसी समय दो भारी सेनाओं ने, जो घात

---

१. मुरादबख्श से तात्पर्य है।

२ जिलौ का अर्थ कोतल घोड़ा है जो साथ में रहता है। तात्पर्य बादशाह के निजी कामों के सेवकों से है।

३. पाठांतर खाबूग तथा खानूग दो मिलता है।

में पहाड़ों मे छिपी हुई थी, धावा किया और दोनो ओर से खूब मार काट हुई। शमशेरखां तथा शेख मीर का दामाद अजीजुल्ला दृढ़ता से पैर जमाकर बहुतों के साथ मारे गये और बहुत से अप्रतिष्ठा के साथ भागने का राह न पाकर मारे गए। मकरम खाँ कुछ लोगों के साथ मार्ग जानने वालों की सहायता से बाजौर के थानेदार इज्जत खाँ के पास पहुँच गया।[1] इसने इसका आना भारी बात समझकर आतिथ्य अच्छी प्रकार किया और आज्ञानुसार दरबार भेज दिया। २० वें वर्ष मे अब्दुर्रहीम खाँ के स्थान पर गुर्जबर्दारों का दारोगा नियत किया। २३ वें वर्ष में राणा के उदयपुर से अजमेर प्रांत को लौटते समय वह चितौड़ के अंतर्गत बिदनोर के उपद्रवियो को दमन करने के लिये भेजा गया और इसे एक हाथी मिला। इसके बाद किसी कारण से दडित होने पर दरबार में उपस्थित होने से यह रोक दिया गया। २६ वें वर्ष मे पुनः इसे सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा मिल गई और लाहौर के शासन पर नियत हुआ। ३० वें वर्ष में उस पद से हटाया गया। इसके अनंतर मुलतान का सूबेदार हुआ। इसके बाद फिर लाहौर प्रांत का शासक हुआ। ४१ वें वर्ष में यहां से हटाए जाने पर नौकरी से त्याग पत्र देकर राजधानी में एकांतवास करने लगा।

४५ वे वर्ष मे सेवा की इच्छा से दुर्ग पर्नालः के पास कहतानून स्थान में दरबार पहुँचकर कुछ दिनो तक यह बादशाह का कृपापात्र रहा। दोनो ओर से विमनसता बनी रही तथा मन ठीक नही बैठा और किसी एक ने इसके दूर करने के लिए कुछ नही किया, इससे यह लौटकर एकांत में रहने लगा। इसके अनतर राजधानी में आराम तथा संतोष से दिन बिताने लगा। सचित धन से मकान तथा दूकानें खरीदी। खर्च भी था और गुण से खाली भी न था। अपने को सूफी मानता और 'सब उसका है' कहता। विचार पर तर्क-वितर्क भी करता। नवाब आसफजाह ने इस सबध में स्वयं कहा था, जो बहादुरशाह के समय कुछ दिन दिल्ली में एकांतवासी थे। उस समय मकरम खाँ की सेवा में जाकर हमने पूछताछ की थी। मुहम्मद फर्रुखसियर के समय इसकी मृत्यु हुई। यह निस्संतान था। अबदुल्ला खाँ उनका पोष्य पुत्र है, जो आसफजाह की ओर से वकील होकर बादशाही दरबार में रहता है।

प्राय. अकर्मण्यता में मुक्त धन प्राप्ति तथा सोना बनाने की ओर मन आकर्षित होता है और बहुत कर देखा गया है कि यह कार्य आलस्य को दूर करने तथा आशा दिलाने का प्रभाव रखता है। मकरम खाँ भी इस पागलपन से खाली न था। औरंगजेब के राज्य के अत में एक विचित्र घटना हुई, जो वाके आनवीसों के समाचारों द्वारा बादशाह तक पहुँचा। खवास खाँ ने अपने इतिहास में लिखा है कि

---

१. मआसिरे आलमगीरी में यह विवरण दिया हुआ है।

मैंने एक आदमी से सुना है, जो दिल्ली के नाजिम मुहम्दयार खाँ की ओर से इस बात की जाँच करने के लिए मकरम खाँ के पास गया था और जिससे स्वयं उसी ने सुना था। यह एकदम विश्वास के बाहर नहीं है इसलिए लिखा जाता है। घटना यो है कि जब मकरम खाँ कीमिया[1] की खोज मे प्रसिद्ध हो गया और दस्तकारी के कारखाने खोले तब एक फकीर पहुँचे हुए शेख की तरह सूरत शकल बनाए हुए आया और बड़ी सचाई से अपने को प्रकट किया। गुप्त रूप से उसने यह भी बतलाया कि वह बड़े सिद्ध हजरत गौसुल्सकलीन का शिष्य है। वह दस्तकारी का गुण जानता हैं, जिसे तुम्हें सिखलाने की आज्ञा दी गई है। कपट से कुछ सोना को मंत्र फूँककर और हाथ की कारीगरी से दूना करके दिखला दिया। मकरम खाँ उसी का वशवर्ती हो गया और इस काल में इसने बहुत कष्ट उठाकर उसकी खातिरी की पर कुछ फल नहीं निकला। बहुत सी वस्तुओं से पहँज करने के कारण कम वस्तु इसे पसंद आती थी। जब सिखलाने की बात आती तब विदा के दिन पर छोड़ देता। यहाँ तक कि एक दिन कहा कि बहुत बड़ी देग लावो और उसे मुँह तक एक तह अशरफी और उस पर एक तह ताँबे के पैसों की चुन दो। फिर मिट्टी से बंदकर आग पर रख दो। जब एक तिहाई रात बीत गई तब उस देग में से डरावनी आवाज निकलने लगी। वह कपटी शोक से हाथ मलते हुए बोला कि इस प्रयोग में कुछ कठिनाई आ गई है और काले बच्चे का रक्त डालने से वह ठीक हो सकता है। मकरम खाँ ने कहा कि किस प्रकार नाहक खून किया जा सकता है।[2] फकीर ने बाहर निकलकर कहा कि तुमसे हो सकता है। कुछ अशर्फी लेकर बाहर गया और दो घड़ी बाद एक लड़के को पकड़कर ले आया और अपने हाथ से उसके गले पर छुरी चलाकर कुछ बूंद आग पर डाला, जिससे आवाज बंद हो गई। उस काटे हुए शव को घास पर डाल दिया। कुछ समय नहीं बीता कि कोतवाल के आदमी मशाल लिए शोर मचाते हुए आ पहुँचे कि उस बच्चे के चोर फकीर को इसी घड़ी बाहर निकालो, इस घर में मत रखो और पकड़कर दो कि उसके माँ बाप न्याय माँगें। मकरम खाँ ने घबड़ाकर बदनामी के डर से भारी घूस देने की लालच दी पर उन सब ने शोर मचाना नहीं कम किया और बराबर उस दुष्ट को देने के लिए कहते रहे। अंत में वह आपही बाहर आकर बोला कि मैं उपस्थित हूँ। प्यादों ने उसे बाँध लिया और पीटते हुए ले चले। मकरम खाँ पेड़ के नीचे बैठकर कभी आश्चर्य से अँगूठा मुह में डालता और कभी लज्जा का हाथ दाँत से काटता।

---

१ जिस वस्तु के मिलाने से ताँबा सुवर्ण हो जाय।

२. पाठांतर का अर्थ है कि इसे सिर से निकाल देना चाहिए अर्थात् इस प्रयोग को बंदकर देना चाहिए।

पर नियत हुआ। दुर्ग के रक्षकगण प्रवल सेना की बहादुरी को आँखों से देखकर साहस छोड़ बैठे तथा अधीनता स्वीकार करने की प्रार्थना की। ऐसा दुर्ग जो रक्षा के कुल सामान से दृढ था और पर्वत के ऊपर घोर जंगल तथा काँटेदार वृक्षों के बीच स्थित था बिना युद्ध तथा प्रयत्न के अधीन हो गया। मकरमत खाँ ने इस विजय के उपरांत झाँसी तथा दतिया के आसपास से बहुत प्रयत्न कर अट्ठाईस लाख रुपये इकट्ठे किए और बादशाह की सेवा में पहुँचकर भेंट किया। शाहजहाँ ने उस प्रांत की सैर के अनंतर, जो नदी तथा झरनों के आधिक्य से सदाबहार कश्मीर का ईर्ष्यापात्र था, उसी वर्ष के अंत में नर्मदा नदी पार किया। मकरमत खाँ राजदूत की चाल पर बीजापुर के सुलतान आदिलशाह के पास भेजा गया, जिसने अदूरदर्शिता से कर भेजने में ढिलाई की थी और बची हुई निजामशाही सेना को अपने यहाँ रख लिया था। मकरमत खाँ ने उसे ऊँचा नीचा समझाकर अधीन बनाया और नवें वर्ष में वहाँ से अनेक प्रकार की अमूल्य भेंट तथा गजराज कहलाता था, लेकर लौटा और सम्मानित हुआ। इसके अनंतर इसे खानसामाँ का ऊंचा पद मिला। पंद्रहवें वर्ष के आरंभ सन् १०५१ हि० में तीन हजारी ३००० सवार का मसब और डंका पाकर यह दिल्ली का सूबेदार नियत हुआ। १८वें वर्ष में इसके साथ ही आजमखाँ के स्थान पर मथुरा व महावन की फौजदारी तथा जागीरदारी भी इसे मिली और एक हजारी १००० सवार बढ़ने से इसका मंसब चार हजारी ४००० सवार का हो गया।

[सूचना—मआसिरुल् उमरा में मकरमत खाँ की जीवनी के साथ शाहजहाँ की बनवाई हुई दिल्ली का पूरा विवरण दिया हुआ है उसीका अनुवाद यहाँ दिया जाता है।]

●

४६०. शाहजहानाबाद नगर (दिल्ली) का विवरण

उच्च साहस यहाँ इस विचार में है कि इसके संबंध में कुछ लिखे। ऐश्वर्यशाली सम्राट्गण की स्वभावत यह इच्छा रहती है कि संसार में कुछ अपना स्थायी चिह्न छोड़ जायँ और इसी विचार से शाहजहाँ ने एक मनोहर नगर जमुना नदी के किनारे बसाने का निश्चय किया। इमारती काम के ज्ञाताओ ने बहुत प्रयत्न के बाद एक भूमि, जो तत्कालीन राजधानी दिल्ली में नूरगढ़ तथा इस नगर के आरभ की बस्ती के बीच मे स्थित था, चुना। २५ जीहिज्जा सन् १०४८ हि० को १२ वें वर्ष जलूमी में बादशाह द्वारा निश्चित चाल पर अब्दुल्ला खाँ फीरोजजंग के भतीजे

गैरत खाँ की सरकारी में, जो दिल्ली का शासक था, रंग डालकर नीव की भूमि खोदी गई। उक्त वर्ष के ९ मुहर्रम को उसकी नींव डाली गई। साम्राज्य में जहाँ कहीं संगतराश, राजगीर, कारीगर आदि थे वे सब बादशाही आज्ञानुसार आकर सभी काम में लग गए। अभी इमारतों का कुछ सामान आदि इकट्ठा हुआ था कि गैरत खाँ ठट्टा की सूबेदारी पर भेज दिया गया और दिल्ली प्रांत का शासन तथा इमारतों के उठवाने का कार्य अलावर्दी खाँ को सौंपा गया। इसने दो वर्ष और कुछ दिन में इस काम को करते हुए नदी की ओर से दुर्ग की नीव दस गज उठवाई। इसपर उक्त प्रांत का शासन तथा इमारतो के बनवाने का कार्य उससे लेकर मकरमत खाँ को दिया गया, जो खानसामा का कार्य कर रहा था। इसने बहुत प्रयत्न किए तथा कार्य दिखलाया। यहाँ तक कि २० वें वर्ष यह ऊँचा दुर्ग स्वर्ग के समान इमारतों के साथ बन गया, जिसके हर कोने मे बड़े-बड़े प्रासाद थे और हर ओर बाग तथा जलाशय थे मानो वह सहज ही चीन का चित्रगृह सा था। परंतु वह पहिले वालों का कर्म था और यह आजकल वालो का। शैर—

उसमें चित्रकारी इतनी कर दी गई थी कि कारीगर आप भी उसपर मुग्ध है।

यह अमीर खुसरो की भविष्यवाणी है कि जो कुछ वह दिल्ली के बारे में कह गया था वह अब इस समय ठीक उतरा। शैर—

यदि स्वर्ग पृथ्वी पर है तो यही है, यही है और यही है।

साठ लाख रुपए व्यय कर नौ वर्ष तीन महीने और कुछ दिन मे यह सौंदर्य का रूप तैयार हो गया।

यह विशाल दुर्ग, जो अठपहलू बगदादी है, लंबाई मे एक सहस्र गज बादशाही और चौड़ाई मे छ सौ हाथ है! इसकी दीवालें लाल पत्थर की बनी हैं, जिनकी ऊँचाई मुंडेरो तथा मोहरियों तक पच्चीस हाथ थी। भूमि छ लाख गज थी अर्थात् आगरा दुर्ग कीभूमि की दूनी। घेरा तीन सहस्र तीन सौ हाथ था। इसमें इक्कीस बुर्ज थे जिनमें सात गोल और चौदह अठपहल थे। इसमें चार फाटक तथा दो द्वार थे। इसकी खाई बीस गज चौड़ी तथा दस गज गहरी और नहर से भरी हुई थी, जो दो ओर से जमुना में गिरती थी। पूर्व की ओर छोड़कर जिधर जमुना नदी दुर्ग की दीवाल तक पहुँच गई थी यह कुल इक्कीस लाख रुपए में बनी थी। खास महलों के निर्माण में, जिनमें चांदी की छत सहित शाहमहल, सुनहला बुर्ज के नाम से प्रसिद्ध शयनगृह सहित इम्तियाज महल, खास व आम दीवान तथा हयातबख्श बाग थे, छब्बीस लाख रुपए लगे। बेगम साहब तथा अन्य स्त्रियों के महलो में सात लाख और बाजार व चौकी आदि की अन्य इमारतों में, जो बादशाही कारखानों के लिए बनवाई गई थीं, चार लाख रुपए लगे।

सुल्तान फीरोज तुगलक ने अपने राज्यकाल में खिज्राबाद पर्गन के पास से जमुना जी से नहर काटकर तीस कोस सफेदून परगने तक, जो उसका शिकारगाह

था पर खेती के लिए जल कम था, पहुँचा दिया था। वह नहर सुलतान की मृत्यु के बाद समय के फेर तथा जनसाधारण के उपद्रव से नष्ट हो गया तथा पानी आना बंद हो गया। अकबर के समय में दिल्ली के सूबेदार शहाबुद्दीन अहमद खाँ ने खेती की उन्नति तथा अपनी जागीर की बस्ती के लिए उक्त नहर की मरम्मत कर उसे जारी किया, जिससे वह शहाब नहर कहलाई। जब उसका समय बिगड़ गया तब उसकी मरम्मत आदि न हो सकी और पानी आना फिर बन्द हो गया। जिस समय शाहजहाँ यह दुर्ग बनवाने लगा तब आज्ञा दी कि उक्त नहर का खिज्रबाद से सफेदून तक, जो उसका आरभ तथा अन्त है, मरम्मत करें और सफेदून से दुर्ग तक, जो भी तीस कोस बादशाही था, नई नहर खोदें। बनने पर इसका स्वर्ग नहर नाम रखा गया। भरे हुए तालाबों तक ऊँचे उडते हुए फौवारों सहित महलों से इसकी शोभा बढ गई। २४ रबीउल् अव्वल सन् १०५८ हि० को २१ वें वर्ष में, जब कि ज्योतिषियों ने बादशाह के प्रवेश करने की साइत दी थी, जशन की तैयारी तथा आराम के सामान प्रस्तुत करने की आज्ञा हुई। कुल खास इमारतों को अनेक प्रकार के फर्शों से, जो कश्मीर तथा लाहौर मे पशमीने के हर प्रासाद के लिए बडी कारीगरी से तैयार किए गए थे, सजा दिया गया। प्रत्येक कोठों तथा कमरो में जरदोजी, कामदानी, कलाबत्तू तथा मखमल के पर्दे, जो गुजरात के कारीगरों द्वारा तैयार किए गए थे, लटकाए गए। हर महल में जडाऊ, सोना व मीना के सिंहासन काम के या सादे बैठाए गए। हर एक पर जहाँ ऊँचे मसनद लगाए गए सुंदर गिलाफों में में बडे तकिए लगाकर सुनहले बिछौने बिछाए गए। उस शानदार विशाल कमरे के तीन ओर चाँदी की धूपदानी और झरोखे के आगे सोने की धूपदानी रखी गई और उसके हर ताक में सुनहले तारे सोने की सिकडी से लटकाकर उसे आकाश सा बना दिया। उस बडे कमरे के बीच में चौकोर चौकी लगाकर तथा उसके चारों ओर सोने की धूपदानियाँ सजाकर उस पर जड़ाऊ सिंहासन रख दिया, जो संसार को प्रकाशित करनेवाले सूर्य के समान था। तख्त के आगे सुनहला शामियाना, जिसमें मोतियाँ लटकाई हुई थी, जड़ाऊ खभो पर लगाया गया। सिंहासन के दोनों ओर मोतियाँ लगे हुए जडाऊ छत्र तथा चारों ओर अठपहल गमले रखे गए। पीछे की ओर जडाऊ तथा सोने की संदलियाँ रखकर उनपर शस्त्र, जैसे जड़ाऊ म्यान सहित रत्नजटित तलवार, जड़ाऊ सामान सहित तरकश और जड़ाऊ भाले, जिनके बनाने में समुद्र तथा खान के खजाने लगा दिए गए थे, सजाए गए। उस कमरे की छत, खभे, द्वार तथा दीवार और उसके चारो ओर के कमरो को जो दीवान खास तथा आम के थे, जरदोजी सायबानों तथा फिरगी व चीनी जरदोजी कामों के पर्दों से जो गुजराती सुनहले तथा रुपहले जरबफ्त मखमल पर बने थे और जिनमे कलाबत्तू व बादले के झालर लगे हुए थे, सजा दिए। उस विशाल कमरे के आगे मखमल जरबफ्त के व चारों ओर के कमरों के आगे मखमल जरबफ्त के सायबान रुपहले काम

काम सहित लगा दिए गए। बारगाह के नीचे रंगीन फर्श बिछाकर उसके चारों ओर चाँदी के मुहज्जर रख दिए गए। उक्त बारगाह अपनी विशालता मे आकाश की बराबरी करता था। बादशाही आज्ञा से अहमदाबाद के सरकारी कारखाने में तैयार किया गया था और एक लाख रुपया व्ययकर काफी समय मे तैयार हुआ था। इसकी लम्बाई सत्तर हाथ बादशाही तथा चौड़ाई पैंतालीस हाथ थी और चादी के चार खंभों पर खड़ा किया गया था, जो हर एक सवा दो गज के घेरे में था। यह तीन हजार गज भूमि घेरता था और दस सहस्त्र आदमी इसके नीचे खड़े हो सकते थे। तीन सहस्र फर्राश आदि आदमी एक महीने के समय मे उस विद्या की जानकारी से खड़ा करते थे। वह जनसाधारण में दलबादल के नाम से प्रसिद्ध था।

ऐसा बारगाह जो आकाश की बराबरी करे, कभी खड़ा न हुआ और न वैसा मकान कि स्वर्ग का नमूना हो, इस शोभा के साथ नहीं सजाया गया। बादशाह के इन मकानो में जाने के अनंतर दस दिन तक बराबर जशन होता रहा। प्रति दिन सौ आदमियो को खिल्अत मिलते रहे। झुंड लोगो को मंसब मे उन्नति, पदवियाँ, नगद, घोड़े व हाथी पुरस्कार में दिए गए। मीर यहिया काशी ने इस बड़ी इमारत की समाप्ति की तारीख एक मिसरे से निकाली और इसके उपलक्ष मे उसे एक सहस्र रुपये पुरस्कार मिले। मिसरा—

शुद्ध शाहजहानाबाद अज शाहजहाँ आबाद।

मकरमत खाँ को इस इमारत के तैयार कराने के पुरस्कार मे मंसब में एक हजारी १००० सवार की उन्नति मिलने से इसका मंसब पाँच हजारी ५००० सवार ३००० सवार दो अस्पा सेह अस्पा हो गया। २३ वें वर्ष सन् १०५९ हि० में मकरमत खाँ की शाहजहानाबाद में मृत्यु हो गई। उक्त खाँ धनाढ्यता तथा ऐश्वर्य के लिए प्रसिद्ध था। प्रसिद्ध है कि एक दिन शाहजहाँ ने कहा कि बगदाद तथा इस्फहान के मानचित्रों के देखने के बाद वहाँ के अठपहल तथा पटे हुए बाजारो से ये नही बने, जैसा कि वह चाहता था और उस वांछित कमी से यह नगर ठीक नही हुआ। इस बारे मे मकरमत खाँ से बहुत कहा सुना था। उस दिन से मकरमत कहता था कि यदि यह नगर मेरे नाम से पुकारा जाय तो जो कुछ व्यय हुआ है वह सब राजकोष में भर दे। इसे एक पुत्र था जिनका नाम मुहम्मद लतीफ था। २२वें वर्ष मे यह मध्य दो आब का फौजदार नियत हुआ। इसका भतीजा रूहुल्ला योग्य मंसब रखता था।

तेज चलनेवाली लेखनी ने लिखने के बहाने शाहजहानाबाद दुर्ग का वर्णन करते हुए प्रस्तुत विवरण में इस नगर तथा पुरानी दिल्ली का भी उल्लेख किया है। जब दुर्ग शाहजहानाबाद तैयार हो गया तब उसके दाएँ तथा बाएँ नदी के किनारे सभी ऐश्वर्यशाली शाहजादों तथा बड़े-बड़े सर्दारों ने भारी इमारतें और भव्य प्रसाद

बनवा डाले। इन बड़ी इमारतों के सिवा, जिनमें बीस लाख रुपये लग गए थे, जन-साधारण से लेकर बड़ों तथा धनियों ने अपने सम्मान के अनुसार व अपने धन के आधिक्य या कमी और इच्छा या आराम के विचार से बहुत से गृह बनवाए। दुर्ग के बाहरी घेरे के बाहर की बस्ती को लेकर इस प्रकार इतना बड़ा नगर बस गया कि संसार के भ्रमणकारी यात्रियों ने भी इतने विशाल ऐश्वर्यपूर्ण तथा जानकीर्ण नगर का कहीं पता नहीं दिया है। शैर—

ईश्वर की कृपा है कि यदि मिश्र व शाम हैं।
तो वे इस जनपूर्ण नगर के एक कोने में हो जाएँगे।।

इस्लामी नगर बगदाद पाँच सौ वर्षों से अधिक काल तक अब्बासी खलीफों की राजधानी रहा है और दजला नदी के दोनों ओर मिलकर इसका घेरा दो फर्सख अर्थात् छ कोस रस्मी है तथा इस बड़े नगर का घेरा पाँच फर्सख अर्थात् पंद्रह कोस रस्मी है। जब नए नगर का प्राचीर जो पत्थर तथा मिट्टी का बना था, वर्षा की अधिकता के कारण स्थान स्थान पर टूट गया तब वह प्राचीर २६ वें वर्ष में पत्थर तथा मसाले से बड़ी दृढ़ता से नींव देकर बनवाया गया। ३१ वें वर्ष के अंत मे यह छ सहस्र तीन सौ चौसठ हाथ की लंबाई में, जिसमे सत्ताईस बुर्ज तथा ग्यारह दरवाजे थे, चार लाख रुपए व्यय करने पर तैयार हुई। इसमे के दो बड़े फाटक चार हाथ चौडे और नौ हाथ कोण सहित ऊँचे थे।

लाहौर की ओर का मार्ग चालीस हाथ चौडा व एक सहस्र पाँच सौ बीस गज लंबा था, जिसके दोनों ओर पंद्रह सौ साठ बड़े सुंदर व आकर्षक कमरे तथा मकान थे, जिन्हें बादशाही आज्ञानुसार नगर निवासियो ने बनवाए थे। बाजार के सिरे से, जो बादशाही घुडसाल के पास था और जो दुर्ग की दीवाल से ढाई सौ हाथ की दूरी से आरंभ हुआ था, चौक तक बराबर अस्सी अस्सी थे। कोतवाली का चबूतरा चार सौ अस्सी गज था। वहाँ से चौक तक बगदादी आठपहल के समान सौ सौ थे। इतने ही लंबे चौड़े बाजार थे। इस चौक के उत्तर विशाल दो मंजिला सराय बेगम साहब की थी, जो एक ओर बाजार की तरफ और दूसरी ओर बाग की तरफ खुलती थी। यह बाग; जो वास्तव में तीन बाग थे, साहबाबाद कहलाता था और लंबाई में नौ सौ बहत्तर गज था। इनमें से एक मकरमत खाँ ने भेंट किया था, जिसे शाहजहाँ ने मलका को दे दिया था। उक्त जिले के बाजार के दक्खिन ओर एक हम्माम घर बड़ी सफाई तथा सुंदरता से उसी मलका की आज्ञा से बना हुआ था। इस सराय तथा चौक से फतहपुरी महल के चौक व सराय तक पाँच सौ साठ गज था। आगरे की ओर के बाजार की लंबाई एक सहस्र पचास व चौड़ाई तीस हाथ थी, जिसके दोनों ओर आठ सौ अट्ठासी कमरे व गृह बड़ी खूबी से बने हुए थे। बाजार के आरंभ में दुर्ग के फाटक के पास दक्खिनी ओर अकबराबादी महल की बनवाई विशाल मस्जिद है और इस नगर की जामा मस्जिद, जिसे जहाँनुमा

मस्जिद कहते हैं, बिशालता तथा दृढ़ता से दुर्ग के पूर्व की ओर सड़क पर एक सहस्र गज की दूरी पर बना हुआ है। इसकी नीव १० शव्वाल सन् १०६० हि० को पडी थी। छ वर्ष में दस लाख रुपए के व्यय से सादुल्ला खाँ व खलीलुल्ला खाँ के प्रबंध में यह तैयार हुई थी। बनने की तारीख 'किब्ल हाजात आमद मस्जिदे शाहजहाँ से (शाहजहाँ की मस्जिद में आवश्यकताओ के किब्ल. आ गए) निकलती है। उस समय से लिखने के समय तक प्राय: सौ वर्ष बीत गए और भारी सर्दारो तथा उच्चपदस्थ अमीरो द्वारा मनोहर और चित्ताकर्षक प्रासाद इस प्रकार बनवाए गए है कि तीव्रगामी विचारधारा भी इसके वर्णन में लँगडी हो गई है तब लकडी के पैर वाली लेखनी कैसे वर्णन कर सकती है। विशेषकर उन मस्जिदो का क्या वर्णन हो सकता है, जो सादुल्ला खाँ चौक या चाँदनी चौक में हैं और जिन्हें जफर खाँ प्रसिद्ध नाम रौशनुद्दौला के कारीगरो ने तैयार किया था। हर एक गुंबद के शिखर मीनारो के साथ ऊपर की ओर सुनहले ताँबो से चमक रहे हैं। सूर्य तथा चंद्र के उदय के समय इनके प्रकाश आकाश की आँख को बंद कर देते हैं। इस कारण कि बहुत दिनो से ईश्वरी छाया के झंडो का साया इस मस्जिद पर पडता रहा। प्राचीर के बाहर हर ओर के रहनेवालो का यही स्थान था, जो उसके चारो ओर रहते थे। सातो देश के आदमियो के झुंड के झुंड आने से हर गली व बाजार भरा हुआ था और प्रत्येक गृह धन माल से भरा पुरा था, जो नगरो के लिए अनिवार्य है। हर एक दूकान अनेक देश के अलभ्य तथा अमूल्य वस्तुओ से भरी हुई थी। इसी से नादिरशाही उपद्रव मे इस नगर पर गहरी चोट पहुँची और थोडे ही समय मे फिर वैसी ही हालत को पहुँच गया प्रत्युत् पहिले से भी अच्छी हालत को पहुँच गया। उसके मानचित्र तथा विवरण का चित्रण लेखनी की शक्ति के परे हैं। बारीक कारीगरी तथा अच्छी कला का बाजार नित्य है और गान विद्या तथा जलसो का हृदय से संबंध है। तीव्रगामी लेखनी के पैर इस आश्चर्यजनक स्थान की विशेषताओ के वर्णन मे लँगड़े हो गए है इसलिए 'फरोगी' कश्मीरी के एक शैर पर संतोष करता हूं, जिसे इस नगर पर उसने बनाया है। शैर—

यदि संसार को अपने से कुछ अच्छा याद हो तो यही शाहजहानाबाद होगा।

प्राचीन दिल्ली, जो हिंदुस्तान के बडे तथा पुराने नगरो मे से है, पहिले इंद्रप्रस्थ कहलाता था। लंबाई एक सौ चौदह दर्जा व अड़तीस दकीका और चौडाई अट्ठाईस दर्जा व पंद्रह दकीका थी। यद्यपि कुछ लोग इसे दूसरे इकलाम मे मानते हैं पर है तीसरे मे। सुलतान कुतुबुद्दीन तथा सुलतान शम्सुद्दीन दुर्ग पिथौरा में रहते थे। सुलतान गियासुद्दीन बलबन ने दूसरे दुर्ग की नीव डाली पर उसको अशुभ समझा। मुइज्जुद्दीन कैकुबाद ने जमुनाजी के किनारे नए नगर की नीव डाली, जिसे

केलीगढी कहते है। अमीर खुसरो किरानुस्सादेन में इस नगर की प्रशंसा करता है। शैर—

ऐ दिल्ली और ऐ सादे बुतो।
पाग बांधे हुए और चीरा टेढ़ा रखे हुए।

हुमायूं का मकबरा अब भी इसी नगर में है। सुल्तान अलाउद्दीन ने दूसरा नगर बसाकर उसका नाम सिरी रखा। इसके बाद तुगलक शाह ने तुगलकाबाद बसाया। इसके अनंतर इसके पुत्र सुल्तान मुहम्मद ने नया नगर और अच्छे प्रासाद बनवाए। सुल्तान फीरोज ने अपने नाम पर बडा नगर बसाया और जमुना नदी को काटकर पास लाया। फीरोजाबाद से तीन कोस पर दूसरा महल जहांनुमा नाम से बनवाया।

जब हुमायूं का समय आया तब इंद्रप्रस्थ दुर्ग को बनवाकर उसका दीनपनाह नाम रखा। शेर खां सूर ने अलाउद्दीन की दिल्ली को उजाड कर नया नगर तैयार कराया। इन नगरों के चिह्न स्पष्ट मिलते हैं। इस प्रांत की लंबाई पलोल से लुधियाना तक, जो सतलज नदी पर है, एक सौ साठ कोस है और चौड़ाई रेवाड़ी सरकार से कमायूं की पहाड़ी तक एक सौ चालीस कोस है। दूसरे हिसार से खिज्राबाद तक एक सौ तीस कोस है। पूर्व में आगरा, उत्तर-पूर्व के बीच अवध प्रांत के अंतर्गत खैराबाद, उत्तर में पार्वत्य स्थान, दक्षिण मे आगरा व अजमेर और पश्चिम में लुधियाना तथा गंगा का स्रोत है। इस प्रांत में दूसरी बहुत सी नहरें हैं। इस प्रांत के उत्तरी पहाड़ को कमायूं कहते हैं। सोना, चांदी, सीसा, तांबा, हडताल तथा सुहागा की खानें हैं। कस्तूरी मृग, पहाड़ी बैल, रेशम के कीड़े, बाज व शाहीन तथा अन्य शिकारी जानवर और हाथी व घोडे बहुत हैं। इस प्रांत में आठ सरकार और दो सौ बत्तीस पर्गने हैं तथा इसकी आय अकबर के समय में साठ करोड सोलह लाख पंद्रह हजार पांच सौ पचपन दाम थी। जब शाहजहां ने नया नगर बसाकर शाहजहानाबाद नाम से राजधानी बना लिया तब महालो के बढ़ने से बारह सरकार तथा दो सौ इक्यासी महाल हो गए। इसकी आय एक सौ बाईस करोड़ उंतीस लाख पचास हजार एक सौ सैंतीस दाम हो गई।

इस प्रांत की ओर जो हिंदुस्तान के अच्छे नगरों से युक्त है, तीन फस्लें होती है। आबान (मार्गशीर्ष) के आरंभ से बहमन (फाल्गुन) तक जाडा रहता है और आजर (पूस) तथा दी (माघ) में ठंढक बहुत पडती है। इसके पहिले तथा बाद के महीनो में ठंढक रहती है पर अधिक नही। इस फसल की ऋतु की खूबी हिंदुस्तान मे यह है कि सैर तथा अहेर इच्छा भर किया जा सकता है। दूसरी गर्मी अस्फंदियार (चैत्र) के आरंभ से खुरदाद (आषाढ) के अंत तक रहती है। अस्फंदियार मे हिंदुस्तान के बहार (बसंत) का आरंभ है, पूर्णरूप से। फरवरदी

(वैशाख) भी साधारण है। इन दो महीनों में सवारी व परिश्रम कर सकते हैं। अर्दे विहिश्त (ज्येष्ठ) भी बुरा नही है पर विना आवश्यकता के परिश्रम नहीं हो सकता। खुरदाद में बड़ी गर्मी पड़ती है। तीसरा वर्षा काल है। जब वर्षा होती रहती है हवा अच्छी रहती है और नहीं तो खुरदाद से बढ़कर गर्मी होती है। अमरदाद (भाद्रपद) ठीक वर्षा का महीना है और बड़ी अच्छी हवा चलती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक दिन में दस पंद्रह बार वर्षा होती है और रंगीन बादल दिखलाई देते हैं। यह काल भी हिंदुस्तान की खूबियो में से है। शहरयार (आश्विन) में भी वर्षा होती है पर इसके पहिले के महीने सी नही। वर्षा का अतिम महीना मेहर (कार्तिक है। इस समय की वर्षा रबी व खरीफ दोनों को लाभदायक है। प्रतिदिन एक पहर बाद गर्म हो जाता है और रात्रि ठंडी होती है, यदि वर्षा हुई तो बरसात नही तो गर्मी। परंतु गर्मी की हवा मे उमस नही होती। वर्षा काल मे पानी न बरसने तथा हवा न चलने से उमस होती है। ये तीनों ऋतु कुल हिंदुस्तान में होते हैं पर हवा में भिन्नता रहती है।

४६१. मखसूस खाँ

यह सईद खाँ चगत्ता[1] का छोटा भाई था। जिस समय अकबर धावा करता हुआ गुजरात गया तब मुलतान के सूबेदार सईद खाँ को उस ओर विदा कर इसको अपने साथ ले लिया। २१ वें वर्ष में यह शाहबाज खाँ के साथ गजपति की चढाई पर नियत हुआ। जब २६ वे वर्ष में बादशाह ने शाहजादा सुल्तान मुराद को सेना सहित काबुल की ओर मिर्जा मुहम्मक हकीम को दंड देने के लिए भेजा तब इसे सेना के बाएँ भाग में स्थान मिला। इसके बाद जब बादशाह ने स्वयं काबुल जाकर मिर्जा मुहम्मद हकीम का दोष क्षमा कर दिया और जलालाबाद की ओर जहाँ बड़ी सेना मौजूद थी फुर्ती से गया तब उक्त खाँ साथ में था। उड़ीसा की चढाई में इसने बहुत प्रयत्न किया था, जो राजा मानसिंह के आधिपत्य में पूर्ण हुई थी। इसके अनंतर शाहजादा सुलतान सलीम के साथ नियुक्त होकर ४९ वें वर्ष में उसके साथ सेवा मे उपस्थित हुआ और इसे तीन हजारी मंसब मिला। जहाँगीर के राज्यकाल के आरंभ में जीवित था। मृत्यु की तारीख देखने में नही आई इसके पुत्र मकसूद के लिए जिससे उसका पिता प्रसन्न नही था, जहाँगीर की राज्यगद्दी पर इसके बड़े भाई सईद खाँ चगत्ता ने मंसब के लिए प्रार्थना की थी जिसपर बादशाह ने उत्तर दिया कि जिससे उसका पिता अप्रसन्न है वह कैसे खुदा की कृपा तथा बादशाह की दया पा सकता है[2]।

---

१. मुगल दरबार के पाँचवें भाग में इसका विवरण दिया गया है।

२. जहाँगीर नामा में ये ही शब्द दिए हुए हैं।

४६२. मजनूँ खाँ काकशाल

यह एक अच्छा तथा ऐश्वर्य शाली सर्दार था। हुमायूँ के समय इसे नारनौल जागीर में मिला था। जब हुमायूँ की मृत्यु हो गई तब शेरशाह के एक अच्छे दास हाजी खाँ ने भारी सेना लेकर इस दुर्ग को घेर लिया, जिसमे मजनूँ खाँ बहुत कष्ट में पड गया। हाजी खाँ के साथी राजा भारामल कछवाहा ने शील तथा वीरता दिखलाकर मजनूँ खाँ को संधि के साथ दुर्ग से बाहर लाकर दिल्ली भेज दिया। जब अकबर बादशाह हुआ तब इसे मानिकपुर जागीर में मिला। जिस समय खानजमाँ[1] तथा उसके भाई ने शत्रुता और विद्रोह का झंडा खड़ा किया उस समय इसने दृढता से उनका सामना कर राजभक्ति दिखलाई। जिस युद्ध मे खानजमाँ अपने भाई के साथ मारा गया उसमे मजनूँ खाँ ने बादशाह के साथ रहकर बहुत प्रयत्न किए। १४ वें वर्ष में बादशाह के आज्ञानुसार कालिंजर दुर्ग घेर लिया, जो भारत के प्रसिद्ध दुर्गों मे से था। इस दुर्ग को ठट्टा[2] के शासक राजा रामचन्द्र ने पठानो की गिरती हालत मे भारी नगद दाम देकर बहार खाँ से ले लिया था। जब चित्तौड तथा रत-भँवर के दुर्गों की विजय का समाचार फैला तब राजा ने दुर्ग को मजनूँ खाँ को सौंप दिया और उसकी ताली २९ सफर सन् ९७७ हि० को दरबार भेज दिया। उस दृढ दुर्ग की अध्यक्षता बादशाह ने उक्त खाँ को सौंप दिया। १७ वें वर्ष मे खानखानाँ मुनइम खाँ के साथ यह गोरखपुर की रक्षा को गया।

संयोग से उसी वर्ष गुजरात की चढाई के आरंभ में बादशाह के साथ रहते हुए बाबा खाँ काकशाल की मीर तुजुक शाहबाजखाँ से प्रबंध संबंध मे बातें करने के कारण भर्त्सना हुई थी। झूठे चुगुलखोरो ने खानखानाँ की सेना मे यह गप्प उड़ा दी कि बाबा खाँ, जब्बारी, मिर्जा मुहम्मद और दूसरे काकशाल शाहबाज खाँ को मार-कर विद्रोही मिर्जो के यहाँ चले गए हैं और बादशाह ने लिखा है कि मजनूँ खाँ को कैद कर लें। उक्त खाँ ने मार्ग ही मे कुल काकशालो को सेना से अलग कर लिया। सेनापति ने बहुत समझाया कि समाचार झूठा है, इसमे सचाई नही है पर कोई लाभ नही हुआ। इसके अनंतर जब दरबार से पत्र पहुँचे कि बाबा खाँ और जब्बारी अपनी अच्छी सेवाओ के कारण बादशाह अकबर के कृपापात्र हैं तब मजनूँ खाँ अपने कार्य से लज्जित होकर खानखानाँ के पास पहुँचा, जब वह गोरखपुर विजय कर लौटा था। इसके अनंतर बंगाल तथा बिहार की विजय मे सेनापति के साथ रहकर इसने खूब प्रयत्न किए। सन् ९८२ हि० मे खानखानाँ के प्रयत्नो से बंगाल की विजय होने पर दाऊद खाँ किर्रानी उडीसा की ओर चला गया और काला पहाड,

---

१ मुगल दरबार भाग १ देखिए।

२. ठट्टा भूल से लिख गया है, भट्टा चाहिए जिसे बघेलखंड भी कहते हैं।

सुलेमान तथा बाबू मंगली घोड़ा घाट को चले गए। खानखानाँ ने उस प्रांत की राजधानी टाँडा में निवासस्थान बनाया और विजयी सेना को चारों ओर भेजा जिनमे लगे हाथ उस प्रांत का कुल कुप्रबंध तथा झगड़ा मिट जाय। मजनूँ खाँ कुछ अन्य सर्दारों के साथ घोड़ाघाट भेजा गया। काकशालो ने उस ओर युद्ध कर अपनी वीरता दिखलाई तथा खूब लूट बटोरा। घोड़ाघाट के शासन का दम भरनेवाला सुलेमान मंगली परलोक गया। अफगानो के परिवार कैद हुए और वह बस्ती अधिकार में चली आई।

मजनूँ खाँ ने सुलेमान खाँ मंगली की पुत्री से अपने पुत्र जब्बारी बेग का विवाह बाँधा और उस प्रांत को काकशालों में बाँट दिया। उसी वर्ष अर्थात् २० वे वर्ष में खानखानाँ दाऊद को दंड देने के लिए गंगा की ओर रवाना हुआ। कूच की ओर भागे हुए बाबू मंगली तथा काला पहाड़ ने जलालुद्दीन सूर के संतानो से मिलकर फिर विद्रोह कर काकशालो पर चढ़ाई कर दी। इन सब ने लज्जा तथा सम्मान को धूल में मिला कर कही ठहरने का साहस नहीं किया और टाँडा भागकर चले आए। मजनूँ खाँ मुअइअन खाँ के साथ खानखानाँ की प्रतीक्षा में टाँडे मे ठहरा रहा। खानखानाँ दाऊद की संधि के अनंतर शीघ्रता से लौटा और दूसरी बार मजनूँ खाँ की सर्दारी में सेना घोड़ाघाट भेजी। इसने नए सिरे से उस प्रांत को खाली कराकर उचित प्रबंध किया। उसी बीच इसकी मृत्यु हो गई। इसका मंसब तीन हजारी था। तबकात के लेखक ने पाँच हजारी लिखते हुए लिखा है कि इसके पास निज के पाँच सहस्र सवार थे। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र जब्बारी कुछ वर्षों तक नौकरी तथा सेवा कार्य में लगा रहा। जब दाग की बात उठी और काकशालों का झुंड आशंकित हो विद्रोह का विचार करने लगा तब यह भी उनका साथी हो गया था। मुजफ्फर खाँ तुर्बती[1] के मारे जाने पर, जो कुछ समय तक सफल हुआ था और हर एक के लिए पदवी निश्चित की थी, इसकी पदवी ख्वाजाजहाँ हुई। जब इस झुंड ने मासूम खाँ काबुली से अलग होकर क्षमा याचना की तब सेवा में आने पर अकबर ने इसको बहुत दिनो तक कैद मे रखा। ३९ वें वर्ष मे इसको लज्जित देखकर क्षमा कर दिया।

●

---

१. मुगल दरबार के इसी भाग मे इसकी जीवनी दी गई है।

हुआ। यहाँ से बदले जानेपर नए संबंध के कारण, जिसमें इसकी भांजी तथा मृत कामयाब खाँ की पुत्री अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ को ब्याही गई थी, यह दयावान सर्दार दक्षिण जाकर औरंगाबाद में रहने लगा और इसका छोटा भाई गुजरात प्रांत के अंतर्गत कोदरः व थासरः का फौजदार हुआ। ये समृद्धिशाली हो उठे। इसके बाद अमीरुल्उमरा ने इसे बगलाना की फौजदारी पर नियत कर दिया। उक्त खाँ ने अच्छी सेना के साथ आलम अली खाँ के पास पहुँच कर नवाब आसफजाह के युद्ध मे अपना कुल ऐश्वर्य नष्ट कर दिया। उसी समय हैदराबाद का शासक मुबारिज खाँ फतहजंग से मिलने के लिए आया हुआ था। उसने मतलब खाँ की पुत्री को अपने पुत्र ख्वाजा असद खाँ के लिए मांगा। कहते है कि दुरवस्था के कारण शादी के लिए सामाह ठीक करने को कुछ धन भी निश्चय हुआ था पर मतलब खाँ ने अधिक धन माँगा और उसने अस्वीकार कर दिया। इसपर क्रुद्ध हो उक्त खाँ ने मध्यस्थो से, जो संदेश लाए थे, कहा कि आखिर क्या समझे कि यह लड़की मुख्तार के वंश की है। उनमे से एक ने, जो चपल प्रकृति का था, कहा कि वे भी इस दामादी के कारण मुख्तार के काम करनेवाले है। अबूतालिब खाँ भी आपत्ति में पड़ा हुआ था, इसलिए उक्त खाँ के साथ हैदराबाद जाकर कोलपाक के अंतर्गत शाहपुर की दुर्गाध्यक्षता तथा अन्य कृपाएँ पाकर आराम से रहने लगा। नवाब आसफजाह के युद्ध में, जो मुबारिज खाँ से हुआ था, यह भी घायल हुआ था, औरंगाबाद में रहते हुए दोनों भाई समय आने पर मर गए।

४६४. मरहमतखाँ बहादुर गजनफरजंग

इसका नाम मीर इब्राहीम था और यह अमीर खाँ काबुली का पुत्र था। औरंगजेब के ४८ वें जलूमी वर्ष में इसका मंसब बढ़कर एक हजारी ४०० सवार का हो गया। मुहम्मद फर्रुखसियर के समय में मालवा प्रांत के अंतर्गत माडू का दुर्गाध्यक्ष तथा फौजदार नियत होकर इसने वहाँ के उपद्रवियो को दंड देने मे नाम कमाया। उक्त बादशाह के राज्य के अंत में जब हुसेन अली खाँ दक्षिण से राजधानी लौट रहा था तब यह मार्ग में होते हुए भी लज्जा के मारे या यह समझकर कि बादशाह उससे अप्रसन्न हैं बीमारी के बहाने मिलने नही आया। हुसेन अली खाँ ने दरबार पहुँचते ही इसे उस पद से हटा लिया और नियुक्त सर्दार[1] को अधिकार दिलाने के लिए मालवा के तत्कालीन शासक नवाब निजामुल्मुल्क आसफजाह को

---

1. ख्वाजम कुली खाँ।

लिखा। इसने इसे समझाकर दुर्ग से बुलवा लिया और इस कारण कि दरबार जाने का इसका मुख नही था इसलिए इसे मालवा के महाल सिरौंज आदि का दुर्गाध्यक्ष बना दिया। उसी समय आसफजाह ने दक्षिण जाने का निश्चय किया तब यह अच्छी सेना लेकर उसके साथ हो गया। सैयद दिलावर अली खाँ के युद्ध में यह बाएँ भाग का अध्यक्ष था। खूब प्रयत्न कर यह हरावल के बराबर जा पहुँचा और शत्रु के साथ के बहुत से राजपूत मारे गए। आलम अली खाँ के युद्ध में भी इसने बहुत प्रयत्न कर वीरता दिखलाई। विजय के बाद इसका मसब बढकर पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया और मरहमत खाँ बहादुर गजनफरजग की पदवी के साथ यह बुर्हानपुर का सूबेदार नियत हुआ। खानदेश के रावलों को दमन करने में इसने बहुत प्रयत्न किया। परतु जब इसके कर्मचारियो के अत्याचार की फर्याद आसफजाह तक पहुँची तब खानदेश के शासन के बदले बगलाना की फौजदारी इसे मिली और चौदह लाख रुपये की जागीर इसके नाम नियत हुई। इससे यह प्रसन्न न होकर तथा मुहम्मदशाह के राज्य के दृढ होने और बारहा के सैयदो के प्रभुत्व के नष्ट होने का समाचार सुनकर दरबार गया तथा कुछ दिन मेवात का फौजदार और बाद को पटना का सूबेदार हुआ। समय आने पर इसकी मृत्यु हो गई। इसका पुत्र बकाउल्ला खाँ, जो अबुल्मंसूर खाँ सफदरजग के भाई मिर्जा मुहसिन का दामाद था, बहुत दिनो तक उक्त खाँ का प्रतिनिधि होकर इलाहाबाद का प्रबध करता रहा। अहमद खाँ बगश के उपद्रव मे इसने दृढ रह कर दुर्ग की अफगानो से रक्षा की।

•

४६५. मसीहुद्दीन हकीम अबुल् फतह

यह गीलान के मौलाना अब्दुल् रज्जाक का पुत्र था, जो हकीमी में बहुत अनुभव रखता था और जो बहुत वर्षों तक उस प्रात का सदर रहा। जब सन् ९७४ हि० में ईरान के सम्राट् शाह तहमास्प का गीलान पर अधिकार हो गया और वहाँ का राजा खान अहमद अनुभवहीनता से कारागार मे बद हुआ तब मौलाना स्वामिभक्ति तथा सचाई के कारण शिकंजे और कैद मे मर गया। हकीम अबुल् फत्ह अपने दो भाई हकीम हुमाम और हकीम नूरुद्दीन के साथ, जिसमे हर एक योग्यता तथा बुद्धिमानी के लिये बहुत प्रसिद्ध था, अपने देश से दूर होकर निर्धनता के साथ हिंदुस्तान आया। २० वें वर्ष में अकबर की सेवा में पहुँच कर तथा योग्य मनसब पाकर तीनो भाई सम्मानित हुए।

हकीम अबुल् फत्ह दूसरे प्रकार की योग्यता रखता था। संसार की प्रगति समझने और अवसर से लाभ उठाने की योग्यता रखने से दरबार में यह शीघ्र उन्नति कर २४ वें वर्ष में वह बंगाल का सद्र और अमीन नियत हुआ। जब बंगाल और बिहार के विद्रोही सरदारों ने मिलकर वहाँ के सूबेदार मुजफ्फर खाँ को बीच में से उठा दिया और हकीम तथा बहुत से बादशाही हितैषी गण कैद हो गए तब यह एक दिन अवसर पाकर दुर्ग से नीचे कूद पड़ा और बड़ी कठिनाई तथा परिश्रम से सुरक्षित स्थान में पहुँच कर दरबार को रवाना हो गया। जब यह दरबार में पहुँचा तब इनका विश्वास और सम्मान इतना बढ़ गया कि यह अपने बराबर वालों से आगे निकल गया। यद्यपि इसका मनसब एक हजारी से अधिक न हुआ पर प्रतिष्ठा में यह वजीर और वकील से आगे बढ़ गया था। ३० वें वर्ष में जब राजा बीरबल जैन खाँ कोका की सहायता को, जो यूसुफ जई जाति को दंड देने के लिए भेजा गया था, नियत हुआ तब हकीम भी एक स्वतंत्र सेना का अध्यक्ष बनाकर साथ सहायतार्थ भेजा गया। परंतु ये दोनों आपस में मिलकर कार्य न कर सके और इस प्रकार मनमाना चलने का यह फल हुआ कि राजा उस विद्रोह में मारा गया और हकीम तथा कोकलताश उस विप्लव से बड़ी कठिनाई से बचकर दरबार आए। कुछ दिन तक वे दंडित रहे। ३४ वें वर्ष सन् ९९७ हि० (सं० १६४६) में जब बादशाही सेना कश्मीर से लौटकर काबुल की ओर रवाना हुई तब यह दमतूर के पास मर गया। आज्ञा के अनुसार ख्वाजा शमसुद्दीन खवाफी ने इसके शव को हसनअब्दाल ले जाकर उस गुंबद में, जिसे ख्वाजा ने बनवाया था, मिट्टी में सौंप दिया। इस घटना के कुछ दिन पहिले अल्लामा अमीर अजदुद्दौला शीराजी भी मरे थे। इस पर साव जी[1] ने यह तारीख कहा। शैर का अर्थ—

इस वर्ष दो अल्लामा संसार से उठ गए। अंतिम गए और अगले गए॥ दोनों ने कभी मित्रता न की इससे तारीख न हुई कि 'हर दो बाहम रफ्तंद' (दोनों साथ गए)।

अकबर ने, जो इस पर विशेष कृपा रखता था, बीमारी के समय इसका हाल कृपा कर पुछवाया था और इसकी मृत्यु पर शोक भी प्रकट किया था। जब वह हसन अब्दाल में पहुँचा तब इसकी आत्मा की शांति के लिए इसकी कब्र पर फातिहा पढ़ा था। हकीम अच्छे मस्तिष्क वाला, मर्मज्ञ तथा बुद्धिमान था। फैजी ने उसकी शोक-कविता में कहा है। शैर का अर्थ इस प्रकार है—

---

१. इसका नाम सलाहुद्दीन सरफी था और ईरान के सवाह का निवासी होने के कारण सवाहजी या सावजी कहलाया। मआसिरे रहीमी में इसका उल्लेख है। यह दरवेश की चाल पर रहता था और कुछ दिन गुजरात तथा लाहौर में रहा। फैजी के साथ यह दक्षिण भी गया था।

उसकी तात्विक बातें भाग्य की अनुवाद थी। सुकार्यो से उसके उपाय दुभाषिए की स्वीकृति थी।

सासारिक कार्यो में यह आलस्य नही करता था। इससे जो कुछ प्रकट होता वह बुद्धिमत्ता में गंभीर निकलता। परोपकार, उदारता तथा गुणो मे अपने समय मे अद्वितीय था। इसके समय के कवियों ने इसकी प्रशसा की है, विशेष कर मुल्ला उर्फी शीराजी ने, जिसने बहुधा कसीदे इसकी प्रशंसा में कहे है। उसके कसीदो मे से एक किता यह है। (यहां चार शैर दिए गए है, जिनका अर्थ नही दिया गया है।)

इसका भाई हकीम नूरुद्दीन 'करारी' उपनाम रखता था और-विद्वान् कवि था। कविता भी अच्छी करता। यह शैर उसका है जिसका अर्थ इस प्रकार है—

मृत्यु को अपयश क्या दू षर्य कि तुम्हारे कटाक्ष रूपी तीरो से घायल हूं। यदि अन्य सौ वर्ष बाद भी मरूँगा तो इन्हीं से मारा जाऊंगा।

जब भारी उपद्रव शात हुआ तब यह अकबर बादशाह की आज्ञा से बंगाल गया था। वही बिना उन्नति किए बड़े विद्रोह में समाप्त हो गया। इसकी कई कहावतें थी कि दूसरों के सामने अपने साहस की बाते प्रगट करना लोभ दिखलाना है, बाजारू सेवको पर दृष्टि रखना अपना स्वभाव बिगाडना है, जिस पर विश्वास करो वही विश्वासपात्र है। यह हकीम अबुल् फत्ह को संसारी जीव कहता और हकीम हुमाम को परलोक का मनुष्य समझता था तथा अपने को दोनो से अलग रखता था। हकीम हुमाम का वृत्तात अलग दिया गया है। इसका एक और भाई हकीम लुत्फुल्ला ईरान से आकर हकीम अबुल् फत्ह के द्वारा बादशाही सेवको में भर्ती हो गया और उसे दो सदी मनसब मिला। यह शीघ्र मर गया। इसका पुत्र हकीम फत्ह उल्ला संपत्तिवान तथा योग्य पुरुष था। जब जहाँगीर की इस पर कृपा नही रह गई तब एक दिन दिआनत खाँ लग ने इस पर राजद्रोह का आरोप कर प्रार्थना की कि सुलतान खुसरो के विद्रोह के समय उसने मुझसे कहा था कि इस समय यही उचित है कि उसे पंजाब प्रात देकर इस झगडे को समाप्त कर दें। फत्ह उल्ला ने यह कहना अस्वीकार कर दिया। दोनो एक दूसरे के विरुद्ध शपथ लेने लगे। अभी पंद्रह दिन बीते थे कि झूठे शपथ ने अपना काम किया। आसफ खाँ जाफर के चचेरे भाई नूरुद्दीन ने सुलतान खुसरू को बचन दिया कि अवसर मिलते ही वह उसे कैद से निकाल कर गद्दी पर बैठावेगा। इसने उसका साथ दिया। दूसरे वर्ष काबुल से लाहौर लौटते समय दैवयोग से यह बात बादशाह तक पहुँची तब नूरुद्दीन की खोज के बाद उसके दूसरे साथियो के साथ यह भी दंड को पहुँचा। हकीम फत्ह उल्ला को गदहे पर उलटा सवार कर पडाव दर पडाव साथ लाए और उसके बाद उसे अंधा कर दिया[1]।

---

१ अन्य इतिहास ग्रंथो मे इसे प्राणदंड देना लिखा है पर तुजुके जहाँगीरी में में भी अंधा करना ही उल्लिखित है।

४६६. महमूद खाँ बारहा सैयद

इस जाति का यह प्रथम पुरुष था. जो तैमूरिया वंश के राज्य में सरदारी को पहुँचा। पहिले यह बैराम खाँ खानखानाँ की सेवा में था। अकबरी राज्य के १ वर्ष में अली कुली खाँ शैबानी के साथ हेमूँ को दमन करने पर नियत हुआ, जो तर्दी बेग खाँ के पराजय पर घमंड से भारी सेना एकत्र कर दिल्ली से आगे रवाना हुआ था। २ रे वर्ष शेर खाँ सूर के दास हाजी खाँ को दंड देने पर नियुक्त हुआ जो अजमेर तथा नागौर पर अधिकार कर स्वतंत्रता का दम भरने लगा था। ३ रे वर्ष दुर्ग जैतारण पर अधिकार करने को नियत होकर उसे राजपूतो से विजय कर लिया। जब बैराम खाँ का प्रभुत्व मिट गया तब बादशाही सेवा मे भर्ती होकर इसने दिल्ली के पास जागीर पाई। ७ वें वर्ष में जब शम्सुद्दीन मुहम्मद खाँ अतगा के मारे जाने पर सशंकित होकर खानखानाँ मुनइमबेग दूसरी बार काबुल की ओर भागा तब सैयद महमूद खाँ, जो अपनी जागीर के महाल मे था, उसको पहिचानकर सम्मान के साथ बादशाह के पास लिवा लाया। इसके अनंतर इब्राहीम हुसेन मिर्जा का पीछा करने पर नियत हुआ। इसके बाद स्वयं बादशाह ने इस काम को करना चाहा और आगे गए हुए सर्दारो को आदमी भेजकर लौटा लिया तब उक्त खाँ शीघ्रता करके सरनाल कस्बे के पास बादशाह की सेवा मे पहुंच गया और अच्छा प्रयत्न किया। जब उक्त मिर्जा परास्त होकर आगरे की ओर भागा तब यह अन्य सर्दारों के साथ उक्त मिर्जा का पीछा करने पर नियुक्त हुआ। १८ वें वर्ष में गुजरात प्रांत से बादशाह के लौटने के पहिले नीचे के सर्दारो में नियत हुआ। जब बादशाह धावा करते हुए मेरठ की सीमा पर पहुँचे तब यह सेवा में उपस्थित हुआ। मुहम्मद हुसेन मिर्जा के युद्ध में जब बादशाह ने स्वयं थोड़े आदमियो के साथ सेना का व्यूह तैयार किया तब यह अन्य सर्दारो के साथ मध्य में स्थान पाकर युद्ध में निधडक हो आगे बढ़कर बहादुरी से लड़ा। उसी वर्ष के अंत में बारहा के सैयदों तथा अमरोहा के सैयद अहम्मद के साथ मधुकर बुंदेला के प्रांत पर नियत हुआ और वहाँ जाकर तलवार के जोर से अधिकार कर लिया। उसी के पास सन् ९८० हि० मे इसकी मृत्यु हो गई। यह दो हजारी मसब तक पहुँचा था।

बारह. शब्द से अर्थ है बारह मौजो का, जो जमुना तथा गंगा जी के बीच के दोआबे में संभल के पास स्थित है। उक्त खाँ परिवार वाला आदमी था। बादशाही सेवा में हुँचकर वीरता तथा उदारता में नाम कमाया और सिधाई में ख्याति पाई। कहते हैं कि जब अकबर ने इसको मधुकर बुंदेला पर नियत किया तब इसने पूरा प्रयत्न कर विजय प्राप्त किया। इसके अनंतर जब सेवा मे पहुँचा तब प्रार्थना की कि मैने ऐसा और वैसा किया। आसफ खाँ ने कहा कि मीरान जी यह विजय बादशाह के इकबाल से हुई और समझो कि इकबाल नाम एक बादशाही सर्दार का होगा।

उत्तर दिया कि तुम गलत क्यों कह रहे हो ? वहाँ बादशाही इकवाल न था, मैं था और हमारे भाई थे तथा तलवार दोनो हाथ से इस प्रकार मारता था। बाशाह ने मुस्किराकर उस पर अनेक कृपाएँ की। एक दिन किसी ने व्यंग्य में इससे पूछा कि वारहा के सैयदो का वंश वृक्ष कहाँ तक पहुँचता है। इसने तुरंत आग के कुंड में जंघे तक खडे होकर, जिसे मलंग के फकीरगण रात्रि में जलाया करते हैं, कहा कि यदि मै सैयद हूँ तो आग असर न करेगा और यदि सैयद न हूँगा तो जल जाऊँगा। प्राय एक घडी तक आग में खडा रहा और आदमियों के वहुत रोने गाने पर निकला। पैर में मखमल का जूता था जो नही जला था। उसके पुत्र सैयद कासिम और सैयद हाशिम थे, जिनका वृत्तान्त अलग दिया गया है।

---

४६७. महमूद, खानदौराँ सैयद

यह खानदौराँ नसरत जंग[१] का मध्यम पुत्र था। पिता की मृत्यु पर इसे एक हजारी १००० सवार का मनसव मिला। भाग्य की सहायता से तथा अच्छी प्रकार सेवा कार्य करते हुए ऐश्वर्य तथा संपत्ति अर्जन करने में यह अपने बड़े भाई सैयद महम्मद से आगे वढ गया। २२ वें वर्ष में इसका मनसव दो हजारी हो गया और कंधार की चढ़ाई मे शाहजादा औरंगजेव वहादुर के साथ गया। २३ वें वर्ष में लौटते समय सादुल्ला खाँ के साथ सेवा मे पहुँचा, जो साम्राज्य तथा प्रवंध कार्य मे अग्रणी था। इसे पहिले पिता की पदवी नसीरी खाँ मिली और उसके वाद मालवा प्रांत मे नियुक्ति और रायसेन की दुर्गाध्यक्षता और जागीरदारी मिली। ३० वें वर्ष जव मालवा का सूबेदार, जो उस प्रात के कुल सहायकों के साथ दक्षिण के शासक शाहजादा महम्मद औरगजेव के अधीन नियत हुआ कि अब्दुल्ला कुतुवशाह के दमन करने मे सहायता दे तव यह भी वहाँ साथ गया। इस कार्य के सफलता-पूर्वक पूरा हो जाने पर यह अपने निवास स्थान को लौटा। इसी वर्ष फिर वादशाही आज्ञा से दक्षिण जाकर उक्त शाहजादा के साथ आदिल शाही राज्य को लूटने तथा आक्रमण करने मे वड़ी वीरता दिखलाई।

शिवाजी तथा मानाजी भोसला ने वीजापुरियो के सकेत पर अहमद नगर के आसपास विद्रोह मचाकर कुछ महालो पर धावा कर दिया था इसलिए नसीरी खाँ

तीन सहस्र सवार तथा कारतलब खाँ, आदि सरदारों के साथ उस ओर जाकर युद्ध मे दत्तचित्त हुआ और शिवाजी के सैनिको मे से बहुतो को मार डाला। इसने स्वयं बीरगाँव में अपना निवास-स्थान बनाया, जिसमें बादशाही महालो तक इन उपद्रवियों से हानि न पहुँचे। बीदर तथा कल्याण दुर्गों के विजय के अनंतर बादशाहजादा के सहायक सरदारों के विषय मे लिखे गए विवरण के बादशाह के पास पहुँचने पर हर एक को दरबार से योग्य उन्नति मिली। नसीरी खाँ का भी मनसब बढकर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया। चढाइयो मे अच्छी सेवा तथा स्वामिभक्ति दिखलाने से शाहजादे की कृपा इस पर बराबर बढती गई और विश्वास भी बराबर वृद्धि पाता चला गया। राजा जसवंतसिंह के युद्ध के अनंतर जब शाहजादे की सेना ने ग्वालियर के पास पड़ाव डाला तब नसीरी खाँ रायसेन दुर्ग से बुलाये जाने पर आलमगीर की सेवा में पहुँचकर खानदौराँ की पदवी से विभूषित हुआ। दाराशिकोह के साथ के युद्ध मे यह सेना के बाएँ भाग का अध्यक्ष नियत हुआ और विजय के उपरात इसका मनसब पाँच हजारी ५००० सवार दो सहस्र सवार दो अस्पा सेह अस्पा का हो गया। यह कुछ बादशाही सेना के साथ इलाहाबाद प्रांत का शासन करने और दुर्ग को लेने के लिए भेजा गया, जो अपनी दृढ़ता तथा दुर्भेद्यता के लिए प्रसिद्ध था और जिसमे दाराशिकोह की ओर से सैयद कासिम बारहा उस ओर के शासन के लिए ठहरा हुआ था तथा दाराशिकोह के भागने का समाचार पाने पर भी स्वामिभक्ति की दृढता दिखलाते हुए अधीनता न स्वीकार कर दुर्ग की दृढता बढा रहा था। नसीरी खाँ ने कर्मठता से फुर्ती से पहुँचकर दुर्ग को घेर लिया। इसके अनंतर जब शुजाअ युद्ध की इच्छा से बनारस मे आगे बढकर इलाहाबाद के पास पहुँचा तब खानदौराँ घेरे से हाथ खीचकर शाहजादा सुलतान महम्मद के पास पहुँचा, जो अग्गल के रूप में दुर्ग के पास आ चुका था। जब शुजाअ ने अपने ऐश्वर्य का सामान लुटा दिया अर्थात् परास्त हो गया तब महम्मद सुलतान के अधीन एक सेना उसका पीछा करने पर नियत हुई और खानदौराँ भी उसके साथ नियत हुआ।

इसी समय इलाहाबाद का दुर्गाध्यक्ष सैयद कासिम बारहा, जो दाराशिकोह के लिखने पर शुजाअ के साथ हो गया था, उसके परास्त होने पर चालाकी से शुजाअ से आगे बढकर दुर्ग मे पहुँच गया और उस अभागे के लिए दूरदर्शिता से अधिकार करने का मार्ग बंद कर दिया तथा अपने लाभ के विचार से इसने बादशाही अधीनता स्वीकार कर ली। सुलतान महम्मद के इलाहाबाद पहुँचने पर खानदौराँ से, जो इसके पहिले पहुँचकर घेरा डाल चुका था, प्रार्थी हुआ और उसके द्वारा अपने दोष क्षमा कराए। उक्त खाँ ने बादशाही कृपा का उसको वचन देकर दुर्ग का अधिकार ले लिया और उस प्रांत का शासन करने लगा। दूसरे वर्ष जब इस प्रांत की

सूबेदारी बहादुरी बहादुर खाँ कोका को मिली तब बादशाही आज्ञा के अनुसार खानदौराँ उड़ीसा का सूबेदार नियुक्त होकर वहाँ गया और बहुत दिनों तक उस दूर देश में रहा। १० वें वर्ष सन् १०७७ हि० में इसकी वहीं मृत्यु हो गई।

●

४६८. महम्मद अमीन खाँ चीन बहादुर एतमादुद्दौला

यह आलमशेख के पुत्र मीर बहाउद्दीन का लड़का था, जिसका वृतांत कुलीज खाँ आबिद खाँ के हाल में दिया गया है। मीर बहाउद्दीन बहुत दिनों तक अपने पूर्वजों के स्थान पर बैठा रहा। जब उरकंज का शासक अनुस खाँ बोखारा के शासक अपने पिता अब्दुल् अजीज खाँ से युद्ध करने को तैयार हुआ तब मीर बहाउद्दीन पर उसका पक्ष लेने का आक्षेप लगाकर उसको उक्त पुत्र के साथ मार डाला। उक्त खाँ ने अपना देश छोड़कर हिंदुस्तान की ओर आने का विचार किया। औरंगजेब के ३१ वें वर्ष में दक्षिण में आकर दरिद्रावस्था में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। दो हजारी १००० सवार का मंसब और खाँ की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। दुर्गों को लेने और शत्रुओं को दंड देने पर नियत हुआ। खाँ फीरोज जंग के साथ यह भी नियुक्त हुआ। ४२ वें वर्ष में जब काजी अब्दुल्ला सदर मर गया तब यह आज्ञानुसार दर्बार आकर सदर का खिलअत और तीन अँगूठी पन्ने की मीनेदार पाकर प्रतिष्ठित हुआ। जिस समय बादशाह ने दुर्ग खेलना को विजय करने जाकर उसे घेर लिया और जो विजय के अनंतर तसखुरलना कहलाया, तब खाँ २०० सवार की तरक्की पाकर नियत हुआ कि अम्बाघाटी से तालकोट जाकर दुर्ग वालों के लिए उस ओर का आने जाने का मार्ग बन्द कर दे। उक्त खाँ साहस कर उस ओर गया और बहुत प्रयत्न कर शत्रुओं के हाथ से पुश्ते को छीन लिया, जिसके उपलक्ष में उसे बहादुरी की पदवी मिली। ४८वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर साढ़े तीन हजारी १२०० सवार का हो गया। ४९ वें वर्ष वाकिनकीरा दुर्ग के घेरे में और वहाँ के जमींदार का पीछा करने में, जो भाग गया था, अच्छा काम दिखलाने के कारण उसका मंसब बढ़कर चार हजारी १२०० सवार का हो गया। इसके बाद शत्रुओं को दंड देने पर नियत होकर वहाँ से सही-सलामत लौटने पर ५१ वें वर्ष में इसके मंसब में ३०० सवार बढ़ाए गए और इसे चीन बहादुर की पदवी मिली। यह सुल्तान कामबख्श साथ नियत था पर औरंगजेब की मृत्यु का समाचार सुनकर बिना सूचना दिए वहाँ से आजमशाह के पास चला गया। वहाँ की संगत भी मनचाही न देखकर मार्ग से अलग होकर औरंगाबाद आया क्योंकि उक्त शाहजादा

हिंदुस्तान की ओर रवाना हो चुका था इसके अनंतर जब बहादुरशाह विजयी होकर सुलतान कामबख्श से लड़ने के लिए दक्षिण की ओर आया तब यह सेवा में पहुँचकर बादशाह हिंदुस्तान लौटने पर मुरादाबाद का फौजदार नियत हुआ। चौथे वर्ष अन्य लोगों के साथ इसने करद की चढ़ाई पर जाने की तैयारी की। जब महम्मद फर्रुखसियर बादशाह हुआ तब कुतबुल् मुल्क और हुसेनअली खाँ के द्वारा सेवा में पहुँचकर छ हजारी ६०० सवार का मंसब, एतमादुद्दौला नसरतजंग की पदवी और द्वितीय बख्शी का पद पाया। ५ वें वर्ष मे मालवा प्रांत का शासक नियत हुआ। हुसेनअली खाँ ने दक्षिण से दर्बार रवाना होने पर किसी को उक्त खाँ के पास, जो उज्जैन में गिर्दावली कर रहा था, रोब बढाने वाला पर कृपा-संयुक्त संदेश भेजा। उसने शाही आज्ञा की प्रतीक्षा न कर राजधानी का मार्ग लिया। इस कारण दंडित होकर पद तथा मंसब से हटा दिया गया। इसी बीच हुसेन अली खाँ ने राजधानी पहुँचकर महम्मद फर्रुखसियर को कैद कर लिया। तब उक्त खाँ अपनी सेना के साथ सैयदों से जा मिला। सुलतान रफीउल् दरजात के राज्य मे इसने पुराना मंसब और द्वितीय बख्शी का पद पाया। कुछ दिन बाद इसमें और हुसेन अली खाँ में मनोमालिन्य हो गया। जब हुसेन अली खाँ महम्मदशाह के राज्य के आरंभ में मारा गया, जिसका वृत्तांत उसकी जीवनी में लिखा जा चुका है और उसका भांजा गैरत खाँ भी उद्दंडता कर मारा गया, तब उक्त खाँ का मंसब बढ़कर आठ हजारी सवार दोअस्पा सेहअस्पा हो गया। उसे एक करोड़ पचास लाख दाम, वजीरुल् मुमालिक की पदवी तथा वजीर का पद मिला। उसी वर्ष इस नियुक्ति के चार महीने बाद सन् ११३३ हि० में यह मर गया। यह एक वीर तथा संतोषी सर्दार था। साथियों, विशेषकर मगोलियो, के साथ उन कामों में, जो वह स्वयं लेता था, रियायत करता था। अपने मंत्रित्व के थोड़े समय में जिस शाही सेवक ने जागीर न होने की शिकायत इससे की, इसने पान बाई महाल से उसके लिए जागीर नियत कर अपने चोबदार को भेजकर जागीर के सनद तैयार कराके मँगवा अपने हाथ से उसे दिया था। इसका पुत्र एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ था, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है।

४६९. महम्मद शरीफ मोतमिद खाँ

यह ईरान के अप्रसिद्ध पुरुषो में से था। जब यह हिंदुस्तान मे आया तब सौभाग्य से यह जहाँगीर के परिचितो मे हो गया। ३ रे वर्ष इसे मोतमिद खाँ की पदवी मिली। इसके बारे मे तत्कालीन मुगल विद्वानो ने यह शैर कहा है—

जहाँगीर शाह के समय में खानी सस्ती हो गई।
हम लोगो की शरीफा वानू गई और मोतमिद खाँ हुए॥

यह बहुत दिनो तक अहदियों का बख्शी रहा। ९ वें वर्ष मे शाहजादा शाहजहाँ की सेना का बख्शी सुलेमान बेग फिदाई खाँ मर गया जो राणा की चढाई पर नियत हुई थी, और तब उस सेना का बख्शी मोतमिद खाँ नियत हुआ। ११ वे वर्ष मे जब शाहजादा दक्षिण प्रांत के प्रवध पर नियत हुआ तब मोतमिद खाँ फिर उसकी सेना का बख्शी नियत हुआ। जब जहाँगीर प्रथम बार कश्मीर की सैर को गया और केवल वहार की सैर का विचार था तव वहाँ मे उस ऋतु मे पीर पजाल घाटी के बर्फ मे ढके रहने मे सेना का उस मार्ग मे पार उतरना कठिन ही नही प्रत्युत् असभव था इसपे पखली तथा दमतूर मार्ग से लौटा। कृष्ण गगा के नहर पर १५ वे वर्ष सन् १०२९ हि० मे जशन सजाया गया। इस पडाव से कश्मीर तक मार्ग के सब स्थान व्यास नदी के किनारे पर है और दोनो ओर ऊँचे पहाड हैं। दर्रे सभी सकरे तथा दुर्गम है, जिससे पार उतरना बहुत कठिन है। इस कारण इस प्रवध का मोतमिद खाँ मीर नियत किया गया कि बादशाह के साथ के थोडे आदमियो के सिवा बड़े सर्दारो मे से किसी को भी पार न उतरने दे। उक्त खाँ मिलवास दर्रे के नीचे जा उतरा। दैवयोग से ज्योही जहाँगीर की सवारी इसके खेमे के पास पहुँची उसी समय वर्षा तथा बर्फ इतने वेग से गिरने लगा कि इससे बादशाह इतना घबरा गए कि इसके खेमे मे हरम के साथ ठहर गए तथा उस बर्फीली आँधी से बच गए। रात्रि आराम मे व्यतीत हुई। बादशाह जो पोशाक पहिरे हुए थे वह मोतमिद खाँ को दे दी गई और इसका मसब बढकर डेढ़ हजारी ५०० सवार का हो गया। विचित्र यह है कि दफ्तर के प्रबंध से जो कश्मीर की सैर के लिए आवश्यक है, इने गिने हुए खेमे, फर्श, सोने के लिए सामान, बावर्चीखाने का सामान तथा आवश्यक बर्तन आदि साथ मे थे, जैसा कि धनाधीशो के ऐश्वर्य के लिए उपयुक्त था, कि किसी से माँगने की आवश्यकता नही पडी और इतना भोजन तैयार था कि भीतर तथा बाहर के सभी आदमियो के लिए काफी था।

ईश्वर की प्रशंसा है कि वह कैसा शुभ तथा बरकत का समय था कि ऐसे छोटे मसबवाले के यहाँ ऐसे समय मे इतना सब सामान उपस्थित था कि हिंदुस्तान के

बादशाह के आतिथ्य का बिना पहिले सूचना पाए कुल प्रबंध पूरा हो गया। कश्मीर से इसी बार लौटने के समय यह मीर जुमला के स्थान पर अर्ज मुकर्रर के पदपर नियत हुआ। यह शाहजादा शाहजहाँ का हितैषी होने के लिए प्रसिद्ध था इसलिए इसने उसकी राजगद्दी के बाद मंसब की उन्नति तथा विशेष सम्मान और विश्वास प्राप्त किया। २ रे वर्ष मे इस्लाम खाँ के स्थान पर यह द्वितीय बख्शी नियत हुआ। १० वे वर्ष मीर जुमला के स्थान पर यह मीर बख्शी नियत हुआ और इसका मंसब बढ़कर चार हजारी २००० सवार का हो गया। इसी वर्ष राजा विट्ठलदास के भतीजे शिवराम गौड़ की सहायता के लिए उक्त राजा के साथ यह धंनेरा प्रांत मे नियत हुआ। मोतमिद खाँ वहाँ के जमीदार इंद्रमणि को कैदकर दरबार लिवा लाया। १३वें वर्ष सन् १०४९ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि इतिहास ज्ञान के लिए यह प्रसिद्ध था पर इकबालनामा जहाँगीरी से, जिसकी आकर्षक तथा सुंदर शैली उसी की है, ज्ञात होता है कि इतिहास लेखन नही जानता था। राज्य का विवरण लेखन का पद रखते हुए भी यह न जानता था कि क्या आवश्यक है प्रत्युत् बड़ी घटनाओं को भी अपूर्ण विवरण के साथ लिख गया है।

इसका पुत्र दोस्तकाम ३१ वें वर्ष तक आठ सदी २०० सवार के मंसब तक पहुँचकर क्रमश: गुजरात, काबुल तथा बंगाल का बख्शी नियत हुआ था। औरंगजेब के राज्य के ७ वें वर्ष में बंगाल में मर गया। मोतमिद खाँ के भाई मुहम्मद अशरफ ने लखनऊ की जागीरदारी के समय वहाँ बड़ी इमारतें बनवाईं, अशरफपुरा की सराय तथा बस्ती बसाई और ऐसा बाग बनवाया कि लोगो का सैरगाह हो गया। इसकी तारीख 'बोस्ताने दोस्ताँ' उसके द्वार पर कुतबा लिपि में खोदी हुई है। यह उसी बाग में रहते हुए मर गया।

●

४७०. महलदार खाँ

यह महलदार खाँ चरकिस का पुत्र था। निजामशाही दरबार मे इसका बहुत विश्वास तथा सम्मान था। दक्षिण में बहुत समय व्यतीत करने के कारण यह दक्खिनी प्रसिद्ध हुआ। इसकी मृत्यु पर निजामशाह ने इसके पुत्र को पिता की पदवी देकर सर्दारी तथा सेनापतित्व मे इसका नाम कर दिया। शाहजहाँ के ६ठे वर्ष मे जब सेनाध्यक्ष महाबत खाँ दौलताबाद दुर्ग को घेरे हुए था तब इसने

सौभाग्य से कस्बा तयाली से, जो उस समय नेअमतावाद कहलाता था और सरकार कालना के अंतर्गत था, महावत खाँ के पास संदेश भेजा कि इस स्थान को जिसे निर्देश करें सौंप कर आपके यहाँ चला आऊँ। इसने बहुत कुछ अपनी सचाई प्रकट की पर सेनाध्यक्ष ने इसकी सचाई तथा राजभक्ति जाँचने के लिए कहलाया कि साहू भोसला और रनदौला खाँ बीजापुरी का परिवार वैजापुर मे है उस पर आक्रमण कर उसे लेलो, इसके पहिले बादशाही कृपा नही होगी। महलदार खाँ ने समय की सहायता से निडरता से उस कस्बे पर धावा कर दिया। दैवयोग से वहाँ सरलता से काम हो गया क्योंकि उसके पास ही साहू की स्त्री तथा पुत्री कोष और बहुत सामान के साथ जुनेर से आकर ठहरी थीं, जो इसके अधिकार में चली आईं। चार सौ घोड़े, डेढ़ लाख हून तथा बहुत सा सामान और अन्न भोसला का तथा बारह सहस्र हूनका रनदौला खाँ का सामान व नगद मिल गया। उक्त खाँ प्रशंसा का पात्र होकर सेनाध्यक्ष के आदेशानुसार साहू के परिवार को कालना के दुर्गाध्यक्ष जाफरबेग को सौंप स्वयं दरबार पहुँच गया। ७ वें वर्ष के आरंभ में दक्षिण से आगरा आकर सेवा मे उपस्थित हुआ। इसे चार हजारी २००० सवार का मंसब तथा बीस सहस्र रुपया नगद देकर सम्मानित किया गया। बिहार प्रांत के अंतर्गत मुंगेर सरकार इसे जागीर मे मिला।

दक्षिण के सभी सर्दारों में यह ऐश्वर्य में बढा चढा था इसलिए उसी वर्ष इसे झंडा व डंका भी मिल गया और मुखलिस खाँ के स्थान पर गोरखपुर सरकार की फौजदारी भी इसे मिल गई। इसके बाद दक्षिण के सहायकों मे नियत हो बादशाही कार्य अच्छी प्रकार किया। चरकिस जाति का होते हुए इसने अपना वेश छोड़ दक्षिण ही में विवाह आदि किए। अपनी पुत्री का दिलावर खाँ हब्शी के पुत्र से निकाह किया, जिसका पिता भी निजामशाही सर्दार था।

●

४७१. महावत खाँ खानखानाँ सिपहसालार

इसका नाम जमानाबेग था और यह गयूर बेग काबुली का पुत्र था। ये शुद्ध वंश के रिजविया सैयद थे। इसके पुत्र खानजमाँ ने अपने लिखे इतिहास मे अपने पूर्वजों की शृंखला इमाम मूसा तक पहुँचा दी है और सबको बड़ा तथा ऐश्वर्यशाली गिना है। गयूर बेग शीराज से काबुल आकर यहाँ के एक पर्गने मे रहने लगा। मिर्जा मुहम्मद हकीम के यकः जवानो मे यह भर्ती हो गया। मिर्जा मुहम्मद हकीम की मृत्यु पर यह अकबर की सेना मे भर्ती हो गया। चित्तौड़ के युद्ध के इसने बहुत

प्रयत्न किया। जमाना बेग ने छोटी अवस्था ही में शाहजादा सलीम के अहदियों में भर्ती होकर कुछ ऐसी अच्छी सेवा की कि थोड़े ही समय में उचित मंसब पाकर शागिर्द पेशेवालो का बख्शी हो गया।

मुअज्जम खाँ फतहपुरी के वचन देने पर राजा उज्जैनिया खासी सेना के साथ, जो नगर तथा गाँव से पकड़ लाए गए थे, इलाहाबाद में शाहजादे की सेवा में उपस्थित हुआ और इस कारण कि वह जब आता तो उसके आदमियो से खास व आम भर जाता था। जहाँगीर को यह बात बुरी मालूम हुई। रात्रि में एकांत में उसने कहा कि इस गँवार का उपाय किया जाय। जमाना बेग ने कहा कि यदि आज्ञा हो तो आज ही रात्रि में इसका काम समाप्त कर दिया जाय। संकेत के अनुसार यह एक सेवक के साथ चला और अर्द्ध रात्रि के बाद राजा के स्थान पर पहुँचा जो रावटी में मस्त सोया पड़ा हुआ था। इसने सेवक को द्वार पर खड़ा कर दिया और राजा के आदमियों को यह कहकर बाहर कर दिया कि शाहजादा का संदेश बहुत गुप्त है। इसने स्वयं रावटी के भीतर जाकर उसका सिर काट लिया और शाल में लपेट कर निकल आया। आदमियो से कहा कि कोई भीतर न जाय क्योंकि मैं उत्तर लेकर फिर आता हूँ। इसने सिर ले जाकर शाहजादा के आगे डाल दिया। उसी समय आज्ञा हुई कि राजा की सेना को लूट लें। उसके आदमी यह समाचार पाकर भाग खड़े हुए और उसका कोष तथा सामान सरकार में जब्त हो गया। इस कृति के उपलक्ष में जमाना बेग को महाबत खाँ की पदवी मिली।

जहाँगीर के राज्य के आरंभ में तीन हजारी मंसब पाकर यह राणा की चढाई पर नियत हुआ। अभी वह कार्य पूरा न हो पाया था और पर्वत की बाहरी थानेबंदी को तोड़कर यह चाहता था कि भीतर घुसे कि दरबार बुला लिया गया। इसके अनंतर शाहजादा शाहजहाँ के साथ दक्षिण की चढाई पर नियत हुआ। १२ वें वर्ष में शाह बेग खाँ खानदौराँ के स्थान पर यह काबुल का सूबेदार नियत हुआ पर एतमादुद्दौला के प्रभुत्व तथा अधिकारों से, जिससे यह हार्दिक वैमनस्य रखता था, कुढ कर इसने चाहा कि काबुल से एराक चला जाय। इस पर शाह अब्बास सफवी ने सम्मान से स्वलिखित पत्र बुलाने को भेजा परंतु खानःजाद खाँ खानजमाँ ने साथ के आदमियो को अस्त व्यस्त कर दिया, जिससे इसे वह विचार छोड़ना पड़ा।

१७ वे वर्ष में नूरजहाँ बेगम के बहकाने से जहाँगीर तथा शाहजादा युवराज शाहजहाँ में मनोमालिन्य आ गया तथा युद्ध और मारकाट भी हुई। शाहजादा की शक्ति तोड़ने के लिये महाबत खाँ के चुने जाने पर यह काबुल से बुलाया गया। बेगम की ओर से आशंका रखने के कारण इसने पहिले इच्छा नही की पर फिर शंका छोड़ कर दरबार गया। जब अब्दुल्ला खाँ बादशाही सेना की हरावली से हट

कर शाहजहाँ की सेना मे चला गया तब जहाँगीर ने सशंकित होकर आसफ खाँ को, जो सेना का सर्दार था, ख्वाजा अबुल् हसन के साथ अपने पास बुला लिया। सेना मे बड़ा उपद्रव मचा। महाबत खाँ ने शाहजहाँ के विजयी होने के चिह्न देखकर अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ के द्वारा अपनी उसके प्रति राजभक्ति प्रगट की और लिखा कि यदि दोष क्षमाकर मुझे संतुष्ट कर देवें तो अच्छी सेवा करूँ। इस समय यही उचित है कि अपनी सेना को हटाकर युद्ध बंद कर दें और स्वयं मांडू जाकर ठहरें जिसमें मैं पुरानी जागीर की बहाली की सनदें शाही मुहर के साथ भेजवा दूँ। शाहजादा बराबर अपने पिता को प्रसन्न करना चाहता था इसलिए खानखानाँ के इस बहकावे में पडकर लौट गया। इसके अनंतर सुलतान पर्वेज इलाहाबाद से वहाँ पहुँचा। महाबत खाँ ने दूसरे स्वार्थियों के साथ मिलकर बादशाह को इसपर राजी किया कि वह अजमेर आकर सुलतान पर्वेज को महाबत खाँ की अभिभावकता में शाहजादे पर भेजे। शाहजादा माडू से बुर्हानपुर और वहाँ से तेलिंगाना होते हुए बंगाल चला। महाबत खा सुलतान पर्वेज के साथ बुर्हानपुर आकर दक्षिण के प्रवध को ठीक करने में लगा। इसी समय आज्ञा पहुँची कि जल्दी से दक्षिण के प्रवध को छोडकर इलाहाबाद पहुँचे, जिसमें यदि बंगाल का प्रांताध्यक्ष शाहजादे का मार्ग न रोक सके तो वे उसका सामना करें।

महाबत खाँ ने थोडे ही समय में अपने उपायों से दक्षिण के सुलतानों को बादशाह का अधीन तथा राजभक्त बना दिया। मलिक अंबर ने कई बार अपने वकील भेजे कि अपने पुत्र को बादशाही नौकरी मे भर्ती कराकर वह देवल गाँव मे भेंट करेगा और इस प्रांत के कार्य उसी के अधिकार में छोड़ दिए जायँ। परंतु जब आदिल खाँ बीजापुरी ने, जो सदा इससे वैमनस्य रखता था, अपने राज्य के वकील मुल्ला मुहम्मद लारी को पाँच सहस्र सवार सेना के साथ भेज दिया कि बराबर बादशाही राज्य का सहायक रहे और उसने बहुत प्रयत्न भी किए तब महाबत खाँ ने मलिक अबर का पक्ष छोड दिया और मुल्ला मुहम्मद लारी को राव रत्न हाड़ा सर बुलंद राय के साथ बुर्हानपुर में छोडकर स्वयं शाहजादा सुलतान पर्वेज के साथ ठीक वर्षाकाल में मालवा की भूमि पार कर इलाहाबाद प्रांत में पहुँचा। टोस स्थान मे कुछ दिन युद्ध हुआ। शाहजादा शाहजहाँ ने सेना की कमी देखकर युद्ध करना उचित नही समझा। पर राजा भीम के बहकाने पर, जो उसका साथी था, वही हुआ जो होना था। जब काम समाप्त हुआ तब घायल अब्दुल्ला खाँ बहुत मिन्नत कर शाहजहाँ को बागडोर पकडकर बाहर निकाल ले गया।

दैवयोग से दक्षिण में मलिक अंबर आदिलशाही सेना के बादशाही सेना मे मिल जाने से सशकित होकर खिरकी बस्ती से निजामुल् मुल्क के साथ बाहर निकला और कंधार में अपने परिवार तथा सामान को छोड़कर कुतुबुल्मुल्क के प्रात की

ओर रवाना हुआ। उससे प्रति वर्ष के निश्चित धन तथा सेना का व्यय लेकर बिना सूचना के बीदर पर आक्रमण कर उसे लूट लिया और तब बीजापुर की ओर चला। आदिलशाह ने दुर्ग बंदकर मुल्ला मुहम्मद लारी को बुलाने के लिए दूत भेजा और महाबत खाँ को भी लिखा कि ऐसे समय बादशाही सेना भी सहायता के लिए भेजे। महाबत खाँ इलाहाबाद जा रहा था इसलिए सर बुलंदराय को लिखा कि लश्कर खाँ को जादोराय, ऊदाजीराम तथा बालाघाट के कुल सर्दारो के साथ इस काम पर नियत करे। मलिक अंबर ने यह समाचार पाकर बहुत कुछ कहा कि हम भी बादशाही सेवक हैं और कोई दोष भी नही किया है कि हमारे विरुद्ध आप कमर बांधते हैं। हमें अपने शत्रु से निपटने दीजिए। किसी ने कुछ नही सुना तब वह युद्ध के लिए बाध्य हुआ। संयोग से मुल्ला मुहम्मद मारा गया और जादोराय तथा ऊदाजीराम बिना युद्ध किए हट गए। पच्चीस आदिलशाही सर्दार और बादशाही सेना के बयालीस सर्दार लश्कर खाँ और मिर्जा मनोचेह्र के साथ कैद हुए और बहुत दिनों तक दौलताबाद दुर्ग में कैद रहे। अहमदनगर का दुर्गाध्यक्ष खंजर खाँ और बीड़ का फौजदार जानसिपार खाँ केवल बच गए।

'अंबर फत्हकर्द' (अंबर ने विजय किया) से इस घटना की तारीख निकलती है। कहते हैं कि मलिक अंबर साहित्यिक नही था और इसे सुनकर कहा कि क्या विशेषता है ? बच्चे भी जानते हैं कि अंबर ने विजय किया। इसने तथा आदिलशाह दोनों में दूसरी पद्यमय प्रार्थनापत्र दक्षिण के कार्य के लिए शाहजहाँ के पास भेजे। शाहजादे ने बंगाल से लौटकर मलिक अंबर की सेना तथा याकूत खाँ हब्शी के साथ बुर्हानपुर को घेर लिया। दक्षिण के इस उपद्रव की सूचना पा आज्ञानुसार महाबत खाँ सुलतान पर्वेज के साथ फुर्ती से बंगाल से लौटा। तब मालवा में सारंगपुर फिदाई खाँ शाही फर्मान लाया कि खानजहाँ गुजरात से महाबत खाँ के स्थान पर नियत हुआ है और महाबत खाँ को बंगाल की सूबेदारी मिली है। सुलतान पर्वेज इस अदल बदल से प्रसन्न नहीं हुआ तब दूसरी आज्ञा पहुँची कि यदि महाबत खाँ को बंगाल जाना पसंद नही है तो दरबार चला आवे। खान:जाद खाँ को जो पिता का प्रतिनिधि होकर काबुल का शासन कर रहा था, बुलाकर बंगाल बिदा किया कि वहाँ का प्रबंध देखे। आसफ खाँ इससे वैमनस्य रखने के कारण अरब दस्तगैब को एक सहस्र सवार अहदियों के साथ भेजा कि इसको शीघ्र दरबार लावे। निरुपाय हो महाबत खाँ बुर्हानपुर से चल दिया। सुलतान सराय बिहारी तक साथ आया। महाबत खाँ चाहता था कि कुछ मंसबदारों को साथ ले जावे पर दक्षिण के दीवान फाजिल खाँ ने फर्मान बतलाया कि वह दंडित है अतः कोई साथ न दे। महाबत खाँ ने कहा कि मुत्सद्दियो ने राय में गलती कर दी है। सुलतान यदि सुनेगा तो इस बुलाने से लज्जित होगा। जब रतभवर पहुँचा तब इस पर दृष्टि रखना आरंभ हुआ, राणा ने भी एक सहस्र अच्छे सवार इसके साथ दिए। कहते हैं कि यही अरब

दस्तगैव पहुँचा। महावत खाँ ने उससे कहा कि जिस कार्य के लिए आया है उसकी सूचना मुझे मिल चुकी है, मैं जा रहा हूँ तू चाहे उलटी बातें कह। छ सहस्र सवारों के साथ, जिनमें चार सहस्र राजपूत तथा दो सहस्र मुगल, शेख, सैयद तथा अफगान थे, यह आगे बढा।

जिस समय बादशाह काबुल की सैर को जा रहे थे उस समय इसके आने का समाचार मिला। आज्ञा हुई कि जब तक बादशाही बकाया जमा न कर देगा और बंगाल के जागीरदारो का, जिनका इसने ले लिया था, जवाब न दे लेगा तब तक सेवा में उपस्थित न हो सकेगा। इसने यह भी सुना कि आसफ खाँ इसे कैद करने की चिंता में है कि व्यास नदी के किनारे जिस दिन पड़ाव पड़े और उर्दू तथा कुल सेना नदी के पार हो जावे और बादशाह चौकी की सेना के साथ इस पार रह जावे, उस समय यदि महाबत खाँ सेवा मे आवे तो बादशाह उसका हाथ पकडकर नाव पर बिठा कर साथ ले जावें। उसके बाद पुल तोड दिया जाय कि उसकी सेना पार न उतर सके। शाहाबाद के पडाव पर हथसाल का दारोगा फजहत खाँ ने इसके स्थान पर आकर आज्ञा सुनाई कि इस बीच जितने हाथी उसने संग्रह किए हों सरकार में दे देवे। महावत खाँ ने कुछ प्रसिद्ध हाथी रखकर बाकी सब दे दिए। फजहत खाँ ने कहा कि खाँजी किस दिन के लिए रख छोड़ते हैं, तुम्हारी जीवन-नौका नष्ट हो चुकी है। यदि पुत्रगण जीवित रहे तो ज्वार की रोटी को तरसेंगे। महाबत खाँ ने मुस्किराकर कहा कि उस समय तुम्हें सहायता न करना होगा। इन हाथियो को मैं स्वयं भेंट करूँगा। अब जल्द जाओ क्योकि ये राजपूत गँवार हैं, तुम्हारी व्यर्थ की बातों पर वे आपे से बाहर आ जायँगे। संक्षेप मे ऐसी बातो से महावत खाँ ने समझ लिया कि शत्रु से जान बचाना कठिन है। मृत्यु निश्चित कर सैनिकों को आगाऊ वेतन देकर दृढ़ प्रतिज्ञा ले ली।

जब बादशाही सेना ने व्यास नदी के किनारे पडाव डाला तब आसफ खाँ ने अपने निश्चय के अनुसार कुल सेना यहाँ तक कि बाशाही सेवको को भी पुल से उस पार भेज दिया, जिन्होने बड़ी असावधानी तथा वेपरवाही से पडाव डाल दिया। महावत खाँ दैवी सहायता के आसरे बैठा हुआ था और इस अवसर को अनुकूल समझकर उसने एक सहस्र सवार पुल के प्रबंध के लिए भेज दिया तथा स्वयं फुर्ती से शहरयार तथा दावरबख्श के घर जाकर उन्हें अपने साथ ले लिया। इसके अनंतर फाटक तोडकर बादशाही महल में घुस पड़ा। द्वार पर अपने आदमियों को नियतकर बादशाह की सेवा में पहुँचा और कहा कि जब आसफ खाँ की शत्रुता से मैंने देखा कि मेरा बचना सभव नही है तब मैंने ऐसा साहस किया। जिस दड के योग्य समझें वह मुझे अपने हाथ से दे। कहते हैं कि जब निडर राजपूत गुसुलखाने मे घुस गए तब मुकर्रबखाँ ने पुरानी चाल पर महावत खाँ से कहा

कि कोढ़ी, यहकै सी बेअदवी है ? उसने कहा कि जब अमुक मनुष्य की स्त्री तथा पुत्री को बाँट रहे थे तब कुछ न बोल सका था। छड़ी की मूठ, जो इसके हाथ में थी, उसके माथे पर ऐसी मारी कि तिलक सा घाव होकर रक्त वहने लगा। इसी समय बादशाह ने क्रोध के मारे दो बार हाथ तलवार की मूठ पर रखा। मीर मंसूर बदख्शी ने धीरे से कहा कि यह समय परीक्षा का है। इसके अनंतर महाबत खाँ ने प्रार्थना की कि उपद्रव त्यागकर शिकार के लिए सवार होना उचित है। वहाने से अपने हाथी पर सवार कराया। कजहत खाँ खास सवारी की हथिनी को लेकर आया, जिस पर स्वयं महाबत होकर तथा अपने पुत्र को खवासी में कर बैठा हुआ था। महावत खाँ ने कहा कि खाँजी यही दिन है कि हमारे लड़के ज्वार की रोटी के लिए मुहताज होगे। इसके अनंतर राजपूतों को संकेत किया कि दोनो को बेधड़क मार डालें। मार्ग से बादशाह को अपने गृह लिवा जाकर पुत्रों के साथ बहुत सी वस्तुएँ निछावर किया। नूरजहाँ बेगम से वह असावधान हो गया था अतः फिर बादशाह को सवार कराकर सुलतान सहरयार के घर लिवा गया। इसी बीच में बेगम बाहर निकल गई। इस असावधानी पर इसने बहुत अफसोस किया तथा लज्जित हुआ। बेगम ने उसी गड़बड़ी में नदी पारकर सर्दारो की बहुत भर्त्सना की और सेना ठीक कर युद्ध की तैयारी की। पुल में आग लगा दी गई थी इसलिए दूसरे दिन विना भारी तैयारी के उतारो से रवाना हो अपने को पानी मे डाल दिया। इस कारण कि तीन ही चार डोगे थे और शत्रु ने हाथियो को आगे कर धावे किए सेना अस्त व्यस्त हो गई। बहुत से धैर्य छोड़ बैठे और हर एक घबड़ा कर भाग गया। बेगम भी लौटकर अपने खेमे में गई। आसफ खाँ अपनी जागीर अटक दुर्ग में जा बैठा। अन्य सर्दारगढ वचन लेकर महावत खाँ के पास गए और और उसकी कडी बातों को सहन किया। महावत खाँ ने स्वयं अटक जाकर वचन तथा शपथ से आसफ खाँ को उसके पुत्र अबूतालिब तथा मीर मीरान के पुत्र खलीलुल्लाह के साथ अपने अधिकार में ले लिया। साम्राज्य के सभी राजनीतिक तथा कोष के कार्य अपने हाथ में लेकर योग्य लोगो को हटा दिया। इसने राजपूतों को चौकी पर नियत कर किसी को भी कोई काम पर नही छोड़ा।

जब जहाँगीर काबुल में जाकर रहा तब उसी के संकेत पर कुछ अहदियों तथा राजपूतों में चरागाह में कहासुनी हो गई। संयोग से इसी में एक मारा गया। इस पर संख्या में अधिक होने से उन सब ने राजपूतों को घेर कर घोर युद्ध किया, जिसमें बहुत से काफिर अपने अच्छे सर्दारों के साथ मारे गए। चारागाहो के चारों ओर इधर उधर जो भागे थे वे हर मौजे नौकरो के हाथ मारे गए तथा कितने कैद होकर बेंचे गए। यद्यपि महावत खाँ स्वयं उनकी सहायता को सवार हुआ पर हल्लड़ में ठहर न सका और तब लौटकर बादशाही शरण मे चला आया। जहाँगीर

ने इस उपद्रव को शांत करने के लिए कोतवाल को नियत किया और इसकी खातिर से कुछ अहदियो को भी भेजा पर इसका वह रोब तथा अधिकार नही रह गया। सशंकित रहकर यह वहाँ रहने लगा। कावुल से लौटते समय रोहतास के पास नूरजहाँ बेगम का ख्वाजासरा होशियार खाँ उसी के अदेशानुसार दो सहस्र सवारों के साथ लाहौर से आकर उपस्थित हुआ। सेना के निरीक्षण के वहाने पर आज्ञा हुई कि पुराने तथा नए सभी सेवक सशस्त्र तथा कवच पहिरे रहे।

जब ब्यास नदी के किनारे पडाव पडा, जहाँ से उसका उपद्रव आरंभ हुआ था तव महावत खाँ को सदेश भेजा गया कि कल बेगम की सेना का निरीक्षण करना निश्चित हुआ है इसलिए तुम आगे जाकर देखो कि उन सेवको मे, जो बादशाही नही हैं, कोई कहासुनी न हो, जिससे झगडा बढे। यह शंका के कारण एक पडाव जाकर ठहर गया। दैवयोग से इसी समय महावत खाँ के अधिकार का समाचार पाकर शाहजादा शाहजहाँ पास रहना उचित समझकर नासिक से अजमेर चला आया पर बादशाही सेना के एकत्र हो जाने पर, जिससे शाहजहाँ को शंका हो गई, अवसर न मिला और तव ठट्टा की ओर चल दिया। इस पर भय तथा शंका से ग्रस्त मनुष्य को अ ज्ञा मिली कि शाहजादा शाहजहाँ दक्षिण से मालवा और वहाँ से अजमेर चला आया था इसलिए उसका पीछा जैसलमेर के मार्ग से ठट्टा की ओर शीघ्रता से करे। महावत खाँ आसफ खाँ से वचन लेकर तथा उसे विदा कर चल दिया। शाहजहाँ ठट्टा नगर मे ठहरा हुआ था, जहाँ अठारह दिन बाद नूरजहाँ बेगम का पत्र मिला कि अदूरदर्शी महाबत खाँ, जो उसके दादा के समय से नौकर है, उद्दंडता से बादशाह के विरुद्ध उपद्रव कर वादशाही सेना से डरकर दक्षिण जा रहा है। इसी समय सुलतान की मृत्यु का भी समाचार मिला तथा बीमारी का भी पता चला। १८ सफर सन् १०३६ हि० को शाहजहाँ वहाँ से रवाना होकर बयालीस दिन में गुजरात के मार्ग से दो सौ साठ कोस चलकर नासिक पहुँच गया। निरुपाय होकर महाबत खाँ जैसलमेर के चालीस कोस इधर ही पोकरण मे ठहर गया। इसके पीछे बादशाही सेना नियत हुई थी पर वह इसका सामना नही कर सकी और उसके पीछे जाकर रुक गई। महाबत खाँ इस सबसे मन हटाकर राणा की शरण में चला गया पर वहाँ अच्छा व्यवहार नही हुआ। लाचार हो दो सहस्र राजपूत सवारों के साथ, जिन्होने इसका साथ नही छोडा था, भी के देश मे, जो राणा के राज्य तथा गुजरात के वीच में था, चला गया और वहाँ से शाहजादा शाहजहाँ को अपने उद्दंड कार्य के लिए क्षमायाचना करते पत्र लिखा, जो उस समय निजामशाह की प्रार्थना पर नासिक से जुनेर जाकर रहता था, जिसकी मलिक अंबर ने नीव डाली थी और जलवायु के अच्छे होने के साथ वहाँ अच्छी इमारते भी थी। शाहजहाँ के बुलाने पर २१ सफर सन् १०३७ हि० को राजपीपला तथा बगलाना के मार्ग से महाबत खाँ उसकी सेवा में पहुँचा।

इसी बीच जहाँगीर की मृत्यु हुई। शाहजहाँ राज्य के लिए गुजरात मार्ग से अजमेर पहुँचा। जब वह मुईनुद्दीन चिश्ती के रोजे के दर्शन को गया तब महावत खाँ ने कुरान की पुस्तक की तावीज कब्र पर रख दिया और प्रार्थना किया कि मेरी यही मंशा थी की आप ही बादशाह हो। ईश्वर की स्तुति है कि मेरी इच्छा पूरी हुई। यदि वचन के अनुसार आप मेरे दोषो को क्षमा करें, इस पुस्तक की शपथ लेकर ख्वाजा को बीच मे डालें या इसी समय काबा को विदा करें। नही तो कल ही आसफजाही पहुँचेगा ओर मेरे खून का फतवा निकलेगा। शाहजहाँ ने इसको इच्छानुसार सतुष्ट किया और राजगद्दी के बाद खानखानाँ सिपहसालार की पदवी, सात हजारी ७००० सवार का मंसब, चार लाख रुपए नगद तथा अजमेर की सूबेदारी दिया। इसी जलूसी वर्ष मे महावत खाँ को दक्षिण की सूबेदारी मिली। इसका पुत्र खानजमा इसका प्रतिनिधि नियत हुआ, जिसे हाल ही मे मालवा की सूबेदारी मिली थी। २रे वर्ष जब बादशाह खानजहाँ लोदी को दंड देने के लिए दक्षिण को चला तब महावत खाँ राजधानी दिल्ली का सूबेदार बनाया गया। ५वें वर्ष आजमखाँ के स्थान पर दक्षिण का फिर सूबेदार हुआ। कहते हैं कि उन तीस चालीस वर्षों में जो सूबेदारगण दक्षिण आते थे बालाघाट पहुँचने तक बिना मारकाट के अन्न की कठिनाई से तंग आकर लौट जाते थे। कोई इसकी फिक्र नहीं करता था। महावत खाँ ने इस सूबेदारी के समय पहिला उपाय यही किया कि हिंदुस्तान के व्यापारियों को हाथी, घोडे व खिलअत देकर इतना मिला लिया कि बजारो के एक सिर आगरा व गुजरात में तथा दूसरा बालाघाट मे रहता था। इसने निश्चय किया कि रुपए को दस सेर महगा होवे या सस्ता लेवें।

जब साहू भोसला ने आदिलशाहियों के पास पहुँचकर दौलताबाद दुर्ग क मलिक अंबर के पुत्र फतह खाँ के अधिकार से ले लेने के लिए कमर बाँधी तब फतह खाँ ने यह देखकर कि निजामशाही सर्दार गण उससे मनस्य रखते हैं, उसने महाबतो खाँ को लिखा कि दुर्ग में सामान नही है और यदि वह शीघ्र पहुंचे तो दुर्ग सौपकर वह स्वयं बादशाही सेवा में चला आये। महावत खाँ ने शीघ्रता के विचार से खानजमाँ को ससैन्य अग्गल के रूप मे रवाना कर स्वयं २९ जमादिउल् आखिर को ६ठे वर्ष बुर्हानपुर से कूच किया। खानजमाँ ने खिरकी घाटी से उतर कर साहू व रदनौला खाँ से युद्ध करने की तैयारी की और घोर युद्ध के बाद छ कोस तक पीछा करते हुए शत्रुओं को मारा। बीजापुरियों ने त्रस्त होकर फतह खाँ से संधि की बात चीत शुरू की और उसने भी वचन देकर उनका पक्ष ग्रहण कर लिया। महावत खाँ जफर नगर में ठहरा हुआ था और इस पर निरुपाय हो रमगावान को खिरकी पारकर यह खानजमाँ के पास पहुँचा तथा दुर्ग घेर लिया। पहिली रमजान को मोरचे बाँटकर अपने द्वितीय पुत्र लहरास्प को तोपखाना सौंप कर आज्ञा दी कि

सरकोब दुर्ग से, जो विस्तृत पर्वत श्रृंग है तथा जिसपर कागजीवाडा बसा हुआ है, दुर्ग दौलताबाद की ओर गोले उतारे। बराबर वीरता तथा साहस से खानजमाँ तथा अपनी बहादुरी और प्रयत्न से खानदौराँ ने घास तथा रसद के लिए साहू, रनदौला खाँ तथा बहलोल खाँ बीजापुरी से खूब युद्ध किए और हरबार बादशाही बहादुर लोग विजयी होते रहे।

अंबर कोट के विजय के अनंतर जब महाकोट के लिए जाने का प्रबंध होने लगा तब दुर्गपालों ने अन्न के अभाव तथा शक्ति की हीनता से घबड़ाकर, जो बहुधा मुर्दे पशुओं का मास खाकर जीवन बचा रहे थे, और प्रतिदिन बादशाही सेना की तेजी देखकर रनदौला खाँ के चाचा खैरियत खाँ और कुछ आदिलशाहियो ने, जो दुर्ग में थे, शरण माँग लिया और रात्रि मे गुबंद से छिप कर नीचे उतर खानखानाँ से मिलते हुए वे बीजापुर चले गए।

जब खान महाकोट के नीचे तक पहुँच गई तब फत्ह खाँ ने अपने परिवार तथा सामान को कालाकोट भेज दिया। मुरारी पडित बीजापुर राज्य का सर्वेसर्वा था और कुल आदिलशाही तथा निजामशाही सेना के साथ एलवर आकर तथा रनदौला तथा साहू को खानजमाँ के सामने, जो कागजीवाडा मे था, छोड़कर वह स्वयं याकूत खाँ हब्शी के साथ खानखानाँ के सामने पहुँचा। घोर युद्ध होने के अनंतर शत्रु साहस छोड कर भाग गया। भागते समय याकूत खाँ हब्शी मारा गया। उस समय विचित्र जोर शोर से लड़ाई हुई। कहते हैं कि दक्षिण में ऐसी भयानक लड़ाई बहुत कम हुई थी। जब महाबत खाँ विजय प्राप्त कर लौटा तथा शेर हाजी महाकोट के खान के पास पहुँचकर उसमें आग लगाना चाहा तब फत्ह खाँ ने सूचना पाकर संदेश भेजा कि उसने आदिल शाहियों से ईमान पर प्रतिज्ञा की है कि बिना उनकी राय के आपस में सधि न करेंगे इसलिए आज बंद रखें। महाबत खाँ ने कहा कि यदि तुम्हारी बात मे सचाई है तो अपने पुत्र को भेज दो। परंतु जब वह नही आया तब आग लगा दी, जिससे एक बुर्ज तथा पंद्रह हाथ दीवाल फट गई। वीर सैनिको ने दुर्ग के भीतर घुसकर वर्ना मोर्चे बाँध लिए। फत्ह खाँ ने बहादुरो का यह कार्य देख कर धैर्य छोड दिया और अपनी लज्जा तथा वचन की रक्षा के लिए अपने बड़े पुत्र अब्दुल्रसूल को भेजकर पश्चात्ताप प्रगट किया और क्षमा याचना की। उसने व्यय तथा अपने परिवार आदि को निकाल ले जाने लिए एक सप्ताह की मुहलत के लिए प्रार्थना की। महाबत खाँ ने ढाई लाख रुपये देकर हाथी तथा ऊँट बोझे ढोने के लिए भेंज दिए। फत्ह खाँ ने दुर्ग की कुंजी भेज दी। १९ जीहिज्जा सन् १०४२ हि० को तीन महीने कुछ दिन के घेरे पर ऐसा ऊँचा दुर्ग विजय हुआ, जो—एक शैर का अर्थ

किसी ने इसके समान दुर्ग नही देखा।
दौलताबाद दुर्ग था और बस॥

इसकी तारीख 'नवाब बफत्ह दौलताबाद आमद' (नवाब दौलताबाद की विजय को आया) से निकलती है। महाबत खाँ, खानदौराँ को मीरान सद्रजहाँ पिहानवी के पुत्र मुर्तजा खाँ सैयद निजाम के साथ दुर्ग में छोड़कर स्वयं फत्ह खाँ को अल्पवयस्क निजामुल् मुल्क के साथ लेकर बुर्हानपुर चल दिया। जब जफर नगर पहुँच गया तब वचन व शपथ को ताक पर रखकर फत्ह खाँ को कैद कर दिया और उसके सामान को बादशाही सरकार में जब्त कर लिया। कहते हैं कि फत्ह खाँ ने मूर्खता से बीजापुर संदेश भेजा था कि महाबत खाँ के पास सेना कम है तुम सेना लाकर हमें छुडा लो या इस कारण कि जब कूच का डंका पिटा और महाबत खाँ सवार होकर खडा था तब यह घमंड के मारे सोया पड़ा था या राजनीतिक कारण से बिना किसी वजह के महाबत खाँ ने अपना वचन तोड दिया।

जब महाबत खाँ बुर्हानपुर पहुँचा तब शाहजहाँ ने इस अच्छी सेवा के उपलक्ष में इसे पाँच लाख रुपया पुरस्कार दिया। इसने बादशाही मुत्सद्दियो से पता लगाया कि इस मुहिम मे बादशाही कोष से कितना व्यय हुआ है। ज्ञात हुआ कि बीस लाख रुपए। महाबत खाँ ने पच्चीस लाख रुपए राज कोष में दाखिल कर कहा कि तीन वर्ष हुए कि मैंने बादशाह को कुछ भेंट नही किया है, अब दौलताबाद भेंट करता हूँ और बादशाह से प्रार्थना है कि यदि एक शाहजादा का चरण दिया जाय तो बीजा-पुर पर नई सेना की सहायता मे अधिकार कर लिया जाय। शाहजहाँ ने अपने द्वितीय पुत्र शाहजादा मुहम्मद शुजाअ को साथ कर दिया। महाबत खाँ ने परेंदा दुर्ग को, जो दक्षिण का एक दृढ़ दुर्ग है और निजामशाहियो के हाथ से निकल कर आदिलशाहियो के अधिकार मे चला आया था, विजय करने के लिए खानजमाँ को आगे भेजा। इसने घेरे का सब सामान ठीक कर तथा मोर्चे बाँट कर प्रतिदिन आक्रमण करना आरंभ किया। जब महाबत खाँ शाहजादे के साथ तीन कोस पर पहुँचकर ठहर गया तब आदिलशाही तथा साहू निजामशाहियों के साथ आ पहुँचे और कभी रसद लाने वाली सेना तथा कभी मोर्चो पर आक्रमण करने लगे। एक दिन ऐसी सेना पर, जब खानखानाँ की पारी थी, राजपूतों ने शत्रु को देखते ही फुर्ती कर धावा कर दिया। महाबत खाँ ने बहुत बुलाया कि लौट आवें पर मूर्खता से वे बहुत से मारे गए। महाबत खाँ अपने स्थान पर डटा रह कर प्रयत्न करता रहा। कहते हैं कि ऐसा युद्ध व्यूह दक्षिण में सौ वर्ष में नहीं देखने में आया था। पास था कि खानखानाँ का काम समाप्त हो जाय कि खानदौराँ ने सहायतार्थ पहुँच-कर शत्रु को परास्त कर दिया।

खानदौराँ तथा खानखानाँ के बीच वैमनस्य तथा अप्रसन्नता थी। खानदौराँ ने कई बार मजलिस में कहा कि मैंने उसको मारे जाने से बचाया है। महाबत खाँ यह सुनकर क्षुब्ध हुआ। दैवयोग से एक दिन खानदौराँ सैयद शुजाअत खाँ और

सैयद खानजहाँ बारहः के साथ सामान एकत्र करनेवाली सेना लेकर गया हुआ था और जब घास एकत्र कर वे लौटे तब शत्रु ने पहाड़ी दर्रे को रोककर बान चलाना शुरू कर दिया। इससे घास में आग लग गई, बहुत से हाथी, ऊँट व बैल जल गए और कुल जगल जल उठा, जिससे बाहर जाने का मार्ग नही रहा। कहते हैं कि तीस हजार पशु तथा दस सहस्र आदमी जल गए और अधजले संख्या के बाहर थे। सर्दार लोग ऊँचे पुश्ते पर खड़े हुए आकाश के खेल पर चकित थे। आग के शांत होने पर शत्रुओं ने धावा कर घेर लिया। महाबत खा सहायता को पहुँचा तथा शत्रु को परास्त कर भगा दिया। उस दिन से खानदौराँ का व्यंग्य करना छूट गया। कहते हैं कि यह उपद्रव महाबत खाँ के सकेत पर हुआ था। दुर्गाध्यक्ष सीदी मर्जान और उसके अनतर गालिब जो आदिल शाह के यहाँ से इसके स्थान पर आया था दोनो गोली लगने से मारे गए पर तब भी विजय का कोई चिह्न नहीं देख पडा और न किसी प्रयत्न का असर हुआ। वर्षाऋतु आ गई और सर्दारों ने महाबत खाँ से द्वेष कर शाहजादे को लौटने के लिए बहका दिया। महाबत खाँ ने बहुत कहा पर शाहजादे ने रुकना स्वीकार नही किया।

सेना में लद्दू पशु नही रह गए थे इसलिए लोगों ने बाजारों से अधिक मूल्य देकर बैल खरीदे। कूच करने के दिन बंजारे ने रास्ता रोककर महाबत खाँ से कहा कि आपके कथन पर विश्वास कर हम सामान लाए थे पर अब लादनेवाले पशु नहीं हैं कि उठा ले चलें। पूछा कि कितने का माल है? उत्तर दिया कि दो लाख का। उसी समय कोप से उसने दिलवा दिया और कहा कि जो चाहे जितना लाद ले तथा जो बचे उसे जला दे। शाहजहाँ ने यह सुनकर महाबत खाँ पर क्रोध प्रगट करते हुए शाहजादे को अपने यहाँ बुला लिया। महाबत खाँ जब बुर्हानपुर पहुँचा तब उन राजपूतों पर, जो रसद लाने में आगे बढकर अपने को मारने को दे दिया था, अविश्वास प्रगट कर कहा कि ये केवल मरना जानते हैं। अपने दीवान काका पंडित को आगरे भेजा कि ये केवल मरना जानते है। अपने दीवान काका पंडित को आगरे भेजा कि वहाँ से दस सहस्र शेख, सैयद, मुगल व पठान भर्ती कर लिवा लावे, जिसमें आगे के वर्ष मे वह सहायक सेना का मुहताज न रहे और परिंदा दुर्ग के लिए उसकी ही सेना काफी हो।

इसी समय इसके पुराने भगंदर रोग ने, जो विशेष प्रकार का नासूर होता है, जोर पकडा। असफल हो इस चढ़ाई से लौटने तथा इसके कुव्यवहार से खानजमाँ के अलग होकर दरबार लौट जाने से क्षुब्ध होने के कारण इसकी हालत बिगड़ती गई। यह कुछ भी पर्हेज नहीं करता था। कहता था कि ज्योतिष से ज्ञात हो चुका है कि मैं इस रोग से न बचूंगा और उसी हालत में दरबार करता। परेंदः लेने की इच्छा से बुर्हानपुर नगर से बाहर निकलकर मोहन नाला के पास पडाव डाला कि

जो कुछ जीवन बचा है उसे बादशाही काम से खाली न रहने दे। कुल चार सहस्र अशर्फी बाहर व भीतर बाँटकर जो कुछ बचा उस सबका ढेर लगा दिया और अपनी स्त्री खानम से कहा, जिससे खानजमाँ की माँ के बाद निकाह किया था, कि हिंदुस्तान का रेत का कण भी मेरा शत्रु है। इसने एक रुपए का माल भी छिपा न रखा। इसने उस सब ढेर को बँधवाकर प्रार्थनापत्र के साथ दरबार भेज दिया। राजपूत सर्दारों को बुलाकर कहा कि तुम लोगो की सहायता से हमने नाम कमाया है। जो कुछ मेरे पास था सब इकट्ठा कर दरबार भेज दिया कि जिसमें कुछ न रहे और मेरे मरने के बाद बादशाही मुतसद्दी लोग उसे जब्त करें तथा अमलो को हिसाब के लिए तंग करें। हमारे ताबूत को दिल्ली ले जाकर शाह मर्दान के रौजे में गड़वा दें और कुल माल गहने व पशु आदि सरकार मे पहुँचवा दें। सन् १०४४ हि० में यह मर गया। 'जमानः आराम गिरफ्त' (जमानः ने आराम लिया) और 'सिपहसालार रफ्त.' (सेनापति गया) से मृत्यु की तारीख निकलती है।

राजपूतगण उसकी इच्छानुसार उसे बुर्हानपुर से दिल्ली तक पहिले के अनुसार मुजरा व सलाम करते हुए ले गए। शाहजहाँ ने सिवा हाथियो के सब इसके पुत्रो को दे दिया। कहते हैं कि नगद कम था। एक करोड वार्षिक आय थी, जो सब व्यय कर डालता था। यह साहसी था। एक दिन कहा कि खानजहाँ लोदी उदार नहीं था। एक ने कहा कि उसकी सरकार में आधिक्य नही था। इसने कहा कि यह क्या बात है, जो कमाए उसे व्यय करे वही मर्द है। परंतु उसका खास कपड़ा पाँच रुपये से अधिक का न होता। खाना भी इसका कम था। हाथियो का इसे बहुत शौक था इसलिए कमदं का चावल तथा विलायती खर्बूजा उन्हें खाने को देता। यह कुछ भी तकल्लुफ नही रखता था। सवारी में नौबत नही बजवाता था पर कूच के समय नगाडा तथा करना बजवाता था। यह विद्वान न था पर ज्योतिष में अच्छा गम था। हर जाति तथा वंश के पूर्वजो की परंपरा तथा हाल खूब जानता था। ईरानी सत्संग पसंद करता और कहता कि वे प्रशंसा के पात्र हैं।

कहते हैं कि यह कोई धर्म नही रखता था पर अंत में इसने इमामिया धर्म स्वीकार किया। रत्नों पर नाम खुदवा कर गले में पहिरता पर रोजा और नमाज का पक्का नही था। अत्याचार मे यह प्रसिद्ध था और बादशाही कामो में बहुत प्रयत्नशील तथा परिश्रमी था पर अपने काम में असावधान रहता। हृदय का चिकना था और जिस मनुष्य पर कृपा की उसके हजार दोष करने पर उसके सम्मान में कमी न करता। कभी शैर भी कह लेता था पर उसे प्रकट करना हेय समझता था। यह शैर उसका है—

शैर का अर्थ—

मेरा मन छोटा था कि स्वर्ग की इच्छा की।
मुझे नर्क मिलना था, इच्छा पूरी न हुई॥

इसके पुत्रो मे से खानजमां अमानी तथा लहरास्प महावत खां का वृतांत अलग दिया गया है। मिर्जा दिलेर हिम्मत कठोर प्रकृति तथा जालसी था, मिर्जा गर्शास्प अल्लावर्दी खाँ का दामाद था, मिर्जा बहरोज और मिर्जा अफरासियाब मे से किसी ने भी उन्नति नहीं की तथा मर गए।

•

४७२. महावत खाँ मिर्जा लहरास्प

यह महावत खां खानखानां सेनापति का खानजमां बहादुर के बाद सबसे बड़ा पुत्र था। शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में दो हजारी १००० सवार का मंसब पाकर दौलताबाद की चढाई में पिता के साथ रहकर इसने अच्छा कार्य दिखलाया। पिता की मृत्यु पर कृपा करके इसका मंसब बढ़ाकर इसे मीर तुजुक का पद दिया गया। कुछ दिन बाद अवध प्रांत के अंतर्गत बहराइच का फौजदार नियत होकर वहाँ का सुप्रबंध किया। इसके बाद बयाना का जागीरदार हुआ। कंधार की चढाइयों पर यह शाहजादो के साथ कई बार गया। २४ वें वर्ष मे इसका मंसब बढकर चार हजारी २००० सवार का हो गया और खलीलुल्ला खां के स्थान पर यह मीर बख्शी बनाया गया। २५ वे वर्ष में एक हजारी २००० सवार बढ़ने से इसका मंसब पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया और लहरास्प खां से महावत खां की पदवी पाकर सईद खां के स्थान पर काबुल का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। ३१ वें वर्ष में दक्षिण के शासक शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के नाम फर्मान शाही गया कि बीजापुर मे अली नामक साधारण वंश के आदमी को वहाँ का आदिलशाह बना दिया है इसलिए वहाँ जाकर जैसा उचित हो प्रबंध करे। महावत खां के नाम भी आज्ञा पत्र गया कि अपनी जागीर से दक्षिण जाय। उक्त खां दुर्ग के विजय के अनंतर शाहजादे की आज्ञानुसार भारी सेना के साथ कल्याण व गुलबर्गा के आसपास लूटमार करने भेजा गया और बीजापुर के सर्दारों के साथ कई युद्ध हुए। इसने वीरता से उन्हे परास्त कर भगा दिया। कल्याण दुर्ग के घेरे के समय एक दिन महावत खाँ घास के लिए पनहट्टा शाहजहाँपुर, जो वहाँ से पाँच कोस पर है, गया हुआ था कि एकाएक शत्रु अधिक संख्या में पहुंचकर युद्ध को तैयार हुआ। रुस्तम खां बीजापुरी ने इख्लास खां के चंदावल पर आक्रमण किया और खान मुहम्मद खां, जो शत्रुओं का एक प्रसिद्ध सर्दार था, राव शत्रुसाल से युद्ध करने लगा। हर ओर घोर युद्ध आरंभ हो गया। इसी समय बहलाल के पुत्रो ने राजा रायसिंह सीसोदिया पर आक्रमण कर ऐसा जोर किया कि राजपूत गण मरने का

निश्चय कर प्रसन्नता से घोड़ों से उतर पड़े और मारकाट को तैयार हो गए। शेर दिल-महावत खाँ ने उन अभागों पर पीछे से ऐसा आक्रमण किया कि प्रसिद्ध अफ्जल खाँ को, जो बीजापुर की सेना की अध्यक्षता के घमंड मे भरा हुआ था, मैदान से परास्त कर भगा दिया।

उस दृढ़ दुर्ग के टूटने पर भी अभी काम इच्छानुसार पूरा नही हुआ था कि शाहजहाँ के मिजाज बिगडने तथा बीमार होने का समाचार चारो ओर फैलने लगा। दाराशिकोह ने इस बीच साम्राज्य में पहिले से अधिक प्रभुत्व बढा लिया था और उसने महावत खाँ के नाम फर्मान भेजा कि शाहजादा औरंगजेब से बिना आज्ञा लिये तथा बिदा हुए कुल मुगलियों के साथ शीघ्र दरबार चला आवे। निरुपाय हो बादशाही आज्ञा से, जो सर्वमान्य है, काम किया और शाहजादे से बिना प्रगट किए हुए कूच करता हुआ दरबार चला। ३१ वें वर्ष के अंत में सन् १०६८ हि० में यह काबुल का सूबेदार फिर नियत हुआ। ५वें वर्ष आलमगीरी में काबुल की सूबेदारी से हटाए जाने पर सेवा में चला आया और महाराजा जसवंतसिंह के स्थान पर गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। इसका मंसब बढ़कर छ हजारी ५६०० सवार तीन हजार सवार दो अस्पा सेह अस्पा का हो गया। ११ वें वर्ष में गुजरात से दरबार पहुँचने पर फिर से काबुल का सूबेदार बनाया गया। १३ वें वर्ष मे वहाँ से हटाए जाने पर दरबार आया।

इसी समय शिवाजी ने ऐसा उपद्रव किया कि सूरत पर चढ़ाई कर नगर को जला दिया और वहाँ के निवासियों को लूट लिया तथा महावत खाँ भारी सेना के साथ उसे दंड देने को नियत हुआ। इसने मराठो को दमन करने में बहुत प्रयत्न किया। इसी के बाद काबुल के पार्वत्य स्थान में अफगानो का उपद्रव हुआ, जिसमें वहाँ का अध्यक्ष मुहम्मद अमीन खाँ खैबर दर्रे मे लुट गया। उन पहाडी उपद्रवियों के साथ महावत खाँ का कैसा व्यहार था, इस पर दृष्टि रखकर इसे दक्षिण से दरबार बुलाकर १६ वें वर्ष में इसे वहाँ का प्रबंध ठीक करने को भेजा। परंतु उक्त खाँ दूरदर्शिता तथा अनुभव के कारण जब पेशावर से-आगे बढा तब किसी प्रकार की रुकावट न कर उन उपद्रवियों को दंड देने की उपेक्षा और सही सलामत काबुल पहुँच गया। यह बात दरबार में प्रशंसित तथा उचित नही समझी गई तब १७ वें वर्ष में बादशाह प्रगट मे हसन अब्दाल गए और भारी सेनाएँ उपद्रवियो को दंड देने के लिए भेजी। महावत खाँ के सेवा में पहुँचने पर यह राजा भूपतदास गौड के पौत्र वीरसिंह को दंड देने पर नियत हुआ। जब पंजाब के अंतर्गत अमनाबाद पहुँचा तब सन् १०८५ हि० मे १८ वें वर्ष के आरंभ में वही इसकी मृत्यु हो गई। उद्दडता तथा निडरता में पिता का स्मारक था। औरगजेब बादशाह क्रोधी तथा शुष्क प्रकृति का मनुष्य था, उससे भी यह गुस्ताखी से प्रार्थना कर। प्रसिद्धता है कि औरगजेब

शाही आज्ञाओं को जारी करने में धार्मिक विचार से बहुत अच्छे मुकद्दमे काजीउल्-कुजात् अब्दुल्वहाव गुजराती के पास भेजता, जो बादशाह के हृदय में दृढ़ स्थान बना चुका था। इसका विश्वास इतना बढ़ा हुआ था कि प्रसिद्ध अमीरगण भी इसके हिसाब माँगने पर अपनी प्रतिष्ठा के लिए डरते थे। जब उपद्रवी शिवाजी के काम बहुत बढ़ गए और वहाँ जाने का निश्चय प्रस्तावित हुआ तब बादशाह ने भूमिका रूप मे उस उद्दंड के अत्याचारों का विवरण देते हुए महाबत खाँ की ओर मुखकर कहा कि उस अत्याचारी को दंड देना इस्लाम के लिए उचित है। उक्त खाँ ने निडरता से एकदम कह डाला कि सेना के रखने की आवश्यकता नही है, काजी के फतबे काफी होंगे। बादशाह को बहुत बुरा लगा और जाफर खाँ को आज्ञा मिली कि उससे कहे कि ऐसी झूठी बातें दरबार मे न कहा करे। इसका पुत्र मिर्जा तहमास्प, जिसका संबंध सईद खाँ जफरजंग की पुत्री से हो चुका था, मर गया। इसकी मृत्यु पर बहराम और फरजाम को योग्य मसब और खाँ की पदवी मिली। बहराम खाँ गोलकुंडा के घेरे में गोला लगने से मर गया। दूसरे ने कुछ उन्नति नहीं की।

•

४७३. महाबत खाँ हैदराबादी

यह मुहम्मद इब्राहीम किमारवाज के नाम से प्रसिद्ध था। यह विलायत का पैदा था। तिलंग के सुलतान अबुल् हसन कुतुबशाह के यहाँ भाग्य से पहुँच कर एक सर्दार हो गया। जब सैयद मुजफ्फर के हटाए जाने पर, जो बहुत दिनों तक राज्य का प्रधान था, दोनों भाई मदन्ना व एकन्ना ब्राह्मणों को पूरा प्रभुत्व राज्य में हो गया, जो उपद्रवियों के घर थे और जो उस पुराने वंश की अशांति तथा अवनति के कारण हुए, तब उन सबने अपनी जातिवालो तथा दक्खिनियों को बढ़ाकर मुगलों तथा गरीबों को हटाना चाहा पर उक्त खाँ दुनियादारी तथा हृदय पहचानने के कारण खुशामद करते हुए बना रहा। वे दोनो भी इसकी आज्ञा मानते तथा मर्जी देखने का प्रयत्न करते रहे। इस प्रकार यह उन्नति कर सेना का प्रधान हो गया और खलीलुल्ला खाँ की पदवी प्राप्त की। इस पर शैर कहा गया है—शैर—

> बादशाह तथा बुद्धिमान पंडित की कृपा से,
> इब्राहीम सेनापति खलीलुल्ला खाँ हो गया।

जब औरंगजेब की सेना दक्षिण के विजय में लगी तब पहिले बीजापुर ही पर उसकी दृष्टि पड़ी और उसने शाहजादा मुहम्मद आजमशाह को भारी सेना के

साथ उस पर भेजा। जब इस चढ़ाई में अधिक समय लगा तब बादशाह समयोचित समझ कर औरंगाबाद से अहमदनगर और वहाँ से शोलापुर पहुँचे। एकाएक अबुल् हसन का एक पत्र इसकी सेना में हाजिब के नाम बादशाह की दृष्टि में आया जिसका आशय था कि अब तक बड़प्पन का ध्यान करता था। सिकंदर को मातृ-पितृहीन तथा अशक्त समझकर यह बीजापुर को घेर उसे तंग किए हुए है। उचित तो हो कि बीजापुर की सेना के सिवा एक ओर से राजा शंभा उस बेचारे की सहायता को असंख्य सेना के साथ प्रयत्नशील हो और हम खलीलुल्ला खाँ के अधीन चालीस सहस्र सवार युद्ध को भेजें तब देखें कि ये किस-किस ओर मुकाबिला करते हैं। इस आशय पर बादशाही क्रोध उमड़ पड़ा तथा जिह्वा से निकला कि मैंने इस चीनी फरोश; बंदरबाज तथा चीता पालनेवाले को दंड देना रोक रखा था पर मुर्गी ने स्वयं बांग दिया है अतः अब नहीं रोक सकता। बीजापुर की चढ़ाई का आग्रह होते भी २८ वें वर्ष के अंत में शाहज़ादा शाहआलम बहादुर खानजहाँ कोकल्ताश के साथ अबुल्हसन को दंड देने के लिए भेजा गया। खलीलुल्ला खाँ ने शेख मिनहाज के साथ, जो बीजापुर की नौकरी के समय खिजिर खाँ पन्नी को मारकर अबुल्हसन के पास पहुँच सम्मानित हुआ था, तथा मादन्ना के चचेरे भाई रुस्तमराव के सहित शाहजादे का सामना कर युद्ध की तैयारी की और तलवारों के युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई। एक दिन खानजहाँ पर ऐसा धावा किया कि पास ही था कि वह पीछे हट जायँ कि इस बीच राजा रामसिंह का मस्त हाथी जंजीर तोड़कर आ पहुँचा और शत्रु की सेना में जा घुसा। बहुत से अच्छे सर्दारों के घोड़ों को रौंदकर दो आदमियों को भूमि पर मसल दिया जिससे शत्रु-सेना में गड़बड़ी मचने से वह परास्त हो गई। दूसरी बार शाहजादे से तीन दिन तक घोर युद्ध करता रहा, जिसमें कई बादशाही सरदार घायल हुए। अंत में तिलंग की सेना परास्त होकर भागी। शाहजादा पीछा न कर रुका रहा। इस अयोग्य कार्य से पहले के सब प्रयत्न बादशाह की दृष्टि में प्रशंसनीय नहीं रह गए और इसको भर्त्सना का पत्र मिला। शाहजादे ने सेनापति मुहम्मद इब्राहीम को भेजा कि तुम्हारे साथ कुछ उपेक्षा करने के कारण हम पर भर्त्सना का पत्र आया है। यदि बीदर-प्रांत की सीमा पर स्थित कौहीर व सरम का परगना छोड़ दो तो अबुल्हसन के लिए क्षमा पत्र हमारे पास पहुँच जाय। इस बातचीत को यह स्वीकार करना चाहता था पर रुस्तमराव तथा दूसरे मूर्ख हृदयों ने कहा कि ये परगने भालों की नोक से बँधे हुए हैं और हम लोग युद्ध को तैयार हैं। इस पर फिर युद्ध आरंभ हुआ और एक दिन शत्रु ने इतनी दृढ़ता तथा फुर्ती दिखलाई कि शाहजादे के दीवान राय वृंदावन को हाथी पर सवार रहते हुए हाँक ले चले। सैयद अब्दुल्ला

खाँ बारहा ओंठ पर बान का चोट लगने पर भी उसके पास पहुँच गया और उसे शत्रु से छुड़ा लाया। उस दिन शाहजादे के बख्शी गैरत खाँ की स्त्री बान लगने से मर गई जो हाथी पर आमारी में थी। उस दिन सवेरे से रात्रि तक युद्ध होता रहा। दूसरे दिन दक्खिनियों ने घमंड में कहलाया कि न्याय तो यह है कि सेना अपने स्थानों पर खड़ी रहे और सरदार लोग एक दूसरे से भिड़ें। शाहजादे ने उत्तर दिया कि यद्यपि इस कार्य में अभी अपूर्णता है कि भाला तथा तलवार चलाना ही चाहिए पर इस शर्त पर हम स्वीकार करते है कि तुम अपने हाथियो के पैरो में जंजीर डाल दो, जिसमें वे भाग न सकें क्योंकि हमारे लिए वह लज्जा की बात है और तुम लोग उसे एक गुण समझते हो। उन सबने कहा कि हम लोग युद्ध में पैरों में जंजीर नही डालते इसपर शाहजादे ने कहा कि हम लोग युद्ध से नही भागते। अंत में पुराने समय से दक्खिनियो तथा गरीबो में जैसा होता आया है वैसा झगड़ा हुआ और अबुल्हसन की सेना भागकर हैदराबाद चली गई। शाहजादे ने इस बार उनका पीछा किया। दक्खिनियों ने खलीलुल्ला खाँ पर पहुँच न होने से शंका कर उसीको पराजय का कारण प्रकट किया। मदन्ना ने, जो मुगलों से प्रकृत्या वैमनस्य रखता था, अबुल्हसन को समझा दिया कि वह बादशाही नौकरी की इच्छा रखता है इसलिए उसे कैद कर देना चाहिए। लाचार हो उक्त खाँ हैदराबाद के पास २९ वे वर्ष में शाहजादे की सेवा में पहुँचा और शाहजादे की प्रार्थना पर इसे छ हजारी ६००० सवार का मंसब तथा महाबत खाँ की पदवी मिली। इसी वर्ष शोलापुर मे बादशाह की सेवा मे उपस्थित होने पर इसे पचास सहस्र रुपए तथा अन्य वस्तुएँ मिली। ३० वे वर्ष में बीजापुर के विजय के अनंतर हसन अली खाँ बहादुर आलमगीर शाही के स्थान पर यह बरार का सूबेदार नियत हुआ। हैदराबाद की विजय के बाद इसका मंसब एक हजारी १००० सवार से बढ़ाया गया। इसी समय यह पंजाब प्रांत का शासक नियत हुआ और वहाँ पहुँचने पर ३२ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। 'कलमए महाबत खाँ' में इसकी मृत्यु की तारीख निकलती है। बादशाही सेवा करने पर इसका पौत्र मुहम्मद मंसूर ईरान से आया और सेवा में भर्ती हो गया। इसे डेढ हजारी १००० सवार का मंसब तथा मकरमत खाँ की पदवी मिली।

●

४७४. मामूर खाँ मीर अबुल्फ़ज़्ल मामूरी

यह शुद्ध वंश का सैयद तथा दयावान पुरुष था। यह बुद्धिमान तथा समझदार भी था। शाहजहाँ के राज्यकाल में पाच सदी २०० सवार का मंसब पाकर यह बहुत दिनों तक दक्षिण के सहायकों में नियत रहा। भाग्य की प्रबलता तथा अपने अच्छे व्यवहार के कारण हर एक सूबेदार, जो दक्षिण प्रांत मे आया, मिर्जा को अपनी मुसाहिबी से सम्मानित करता रहा। सुशीलता तथा वीरता मे यह अग्रणी और कार्यशक्ति तथा मित्रता में अपने समय का एक था। जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर दक्षिण का शासक नियत हुआ तब यह अपनी कार्य शक्ति, पुरानी सेवा का अनुभव और अपनी राजभक्ति शाहजादे के हृदयस्थ कर बराबर उसका कृपापात्र बना रहा। जब शाहजादा हिंदुस्तान के साम्राज्य के लिए आगरे की ओर सेना का झंडा फहराता हुआ बराबर कूच करते नर्बदा के किनारे पहुँचा तब उसी दिन इसका मंसब बढ़कर एक हजारी ४०० सवार का हो गया। महाराज जसवंतसिंह के युद्ध में यह शाहजादा मुहम्मद सुलतान के साथ हरावल की सेना में नियत था। विजय के अनंतर इसे मामूर खाँ की पदवी तथा डेढ़ हजारी ५०० सवार का मंसब मिला। दाराशिकोह के युद्ध के बाद जब बादशाह दिल्ली में अजराबाद उर्फ शालामार बाग के पास उतरे तब इस कारण कि ज्योतिषियो ने राजगद्दी के लिए शुभ साइत शुक्रवार १ जीकदः सन् १०६८ हि० को बतलाई थी और इतना अवसर न था कि इस साम्राज्य के प्रथानुसार पूरा समारोह हो सके इसलिए उक्त बाग मे ठीक निश्चित समय पर राजगद्दी पर बैठ गया।

दैवयोग से इसी समय सेनापति नजाबतखाँ घर बैठ रहा, जो इन भयंकर युद्धों तथा मारकाट में प्रयत्नों, तरद्दुदों, उपायों तथा काम करने में विजयी का साथी रहा। इस वीर खाँ से बढ़कर शाहजहानी सर्दारो में, जिन्होंने शाहजादे की मित्रता मे इतना बड़ा बोझ अपनी गर्दन पर उठाकर इतने बड़े काम में पैर बढ़ाया था, कोई न था और सात हजारी ७००० सवार का मंसब, दो लाख रुपए पुरस्कार और खानखाना सिपहसालार की पदवी पाने पर भी जो इसे बढ़ाकर मिली थी, ओछेपन तथा अनुदारता से अधिक माँगने से हाथ न उठाया और बादशाही कृपाओ को अपनी सेवा के उपलक्ष में कुछ नहीं माना। मामूर खाँ अपनी पुरानी सेवा तथा योग्यता के कारण बादशाह का कृपापात्र था और उक्त खाँ से भी संग साथ तथा मित्रता रखता था इसलिए बादशाही आज्ञाओं तथा मौखिक सदेशो को लेकर नजाबत खाँ के पास गया। इसने बहुत कुछ कड़ी तथा प्रेमपूर्ण बातें उसे समझाईं पर, उसका स्वार्थमय अहंकार फट पड़ा और वह अनुचित प्रार्थनाएँ तथा अनहोनी बातें करते हुए झूठी बकवाद करने लगा। मामूर खाँ ने मित्रता से स्वामिभक्ति

तथा राजनियमों की रक्षा को अधिक मानकर उसे कई बार मना किया पर उसने कुछ नहीं सुना। निरुपाय होकर उसकी तथा अपनी स्थिति समझकर यह उठकर चल दिया। नजावत खाँ ने यह समझकर कि यह बात और भी न विगाड़ दे ऐसा तलवार का हाथ मारा कि सिर न रह गया और इसका शव द्वार पर फेंकवा दिया। सात चौकी के आदमी लोग उस पर नियत हुए पर वह भी युद्ध के लिए तैयार हो बैठा। अंत में बिना मंसब तथा पदवी छीने हुए उस नाहक खून का दंड न दिया जा सका। उस वेचारे ने नित्य बढ़ते हुए ऐश्वर्य की इच्छा को धूल में डाल दिया और उसकी अविकसित आशाएँ मुर्झा गईं।

इसका पुत्र मीर अब्दुल्ला प्रसिद्ध पुरुष था और अच्छी चाल का था। सुलिपि लिखने में अच्छी योग्यता रखता था। यह कुछ दिन खाँ फीरोजजंग का वख्शी था। इसका पुत्र काम न मिलने से फकीर हो गया। इसकी पुत्री जाफर अली खाँ खुरासानी की स्त्री थी जो पहिले हातिमवेग किफायत खाँ का दामाद होकर औरंगजेब के राज्यकाल में बीजापुर, हैदरावाद तथा बीदर का दीवान हुआ और खाँ फीरोजजग की सेना के वख्शी का काम भी करता था। अत में यह परेशान हाल रहने लगा और खुसरुए जमाँ के समय मर गया। वह पुत्री इसके अनंतर अपने पिता तथा दादा के कब्रिस्तान के वाग मे, जो औरंगावाद नगर मे था, रहती हुई अव तक कालयापन करती है। मीर अबुल्फजल मामूर खाँ के अन्य सतानों के वारे में कुछ ज्ञात नहीं हुआ। उस मृत की बहिन को बहुत सतान थी। इसका एक पौत्र फख्रुद्दीन अलीखाँ मामूरी था, जो वड़ा साहसी तथा उत्साही था पर शोक कि सौभाग्य अच्छा न पाया था यद्यपि उसने बडे २ कार्य किए थे। इसका पिता मीर अबुल्फत्ह बादशाही नौकरी से त्यागपत्र देकर उडीसा प्रांत की राजधानी कटक नगर मे व्यापार करने लगा।

उक्त खाँ औरंगजेब के राज्यकाल में संगमनेर का बख्शी तथा वाकेआनवीस नियत हुआ। वहादुर शाह के समय में सूरत वंदर के दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। फर्रुखसियर के राज्य के आरंभ में इस पद से हटाए जाने पर नए दुर्गाध्यक्ष को अधिकार न देकर युद्ध के लिए तैयार हुआ और दंडित होने पर अहमदाबाद गुजरात में कुछ दिन काटे। जव हुसेन अली खाँ अमीरुल्उमरा दक्षिण आया तव उस पुराने परिचय के कारण, जो इसका पिता सैयद अब्दुल्ला खाँ वारहा के साथ रखता था, यह उस सर्दार के पास उपस्थित होकर नर्मदा नदी के किनारे वीजागढ़ का फौजदार नियुक्त हुआ। इतना होते हुए भी यह सामान व सेना एकत्र न कर वेहाल रहा और दुर्दशाग्रस्त हो दक्षिण से दिल्ली और यहाँ से बंगाल चला गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी यह कुछ न कर सका। उड़ीसा के मार्ग से हैदराबाद

आया। वहाँ के शासक मुबारिज खाँ ने पुरानी मित्रता के कारण इसका स्वागत किया।

जब मुबारिज खाँ दरबार से दक्षिण के कुल प्रांतों का अध्यक्ष बनाया गया तब उसने इसे बरार का सूबेदार नियत कर दिया। इसके अनंतर जब मुबारिज खाँ अधिकार न पाकर इस काम में पड़ गया तब उक्त खाँ अलग होकर सूरत बंदर की ओर चल दिया और नए सिरे से उसे पाया पर बुरे नक्षत्र के कारण शत्रु द्वारा लुट गया। यहाँ से यह राजा साहू के पास लाया गया। इसने राजा को बहुत बहकाना चाहा और प्रयत्न किया कि दक्षिण की संधि टूट जाय पर कुछ लाभ नहीं हुआ। जब आसफजाह ने फत्हजंग चांदा के पर्गनों को तिलंग के एलमा जाति के अधिकार से ले लेने की तैयारी की तब यह उसकी सेवा में भर्ती हो गया। इसकी कार्यशक्ति को दृष्टि में रखकर नौकरी दी गई थी पर मृत्यु ने छुट्टी न दी। उसी स्थान के आस पास यह गाड़ा गया। इन पंक्तियों का लेखक उससे विशेष संबंध रखता था। उस मृत की प्रकृति में कंजूसी इतनी भरी हुई थी, जैसी किसी की प्रकृति में न देखी थी।

•

४७१. मासूम खाँ काबुली

यह खुरासान के अंतर्गत तुर्बत का एक सैयद था। इसका चाचा मिर्जा अजीज जहाँगीर के समय वजीर के पद पर पहुँचा। यह मिर्जा मुहम्मद हकीम से धाय भाई का संबंध रखता था। साहस तथा कार्य दिखलाकर इसने नाम कमाया। मिर्जा के कुल प्रबंध को देखनेवाला ख्वाजा हसन नक्शबंदी मनोमालिन्य के कारण जो दुनियादारों में जरा से शक पर पैदा हो जाता है, इसे दंड को तैयार हुआ तब यह दूरदर्शिता से २० वें वर्ष में अकबर की शरण में चला आया और इसे पाँच सदी मंसब तथा बिहार में जागीर मिली। अफगानों के एक बड़े सर्दार तथा साहस और वीरता में प्रसिद्ध काला पहाड़ से उस प्रांत में इसने युद्ध कर विजय प्राप्त किया तथा घायल भी हुआ। इसके उपलक्ष में इसका मंसब बढ़कर एक हजारी हो गया। २४ वें वर्ष में उड़ीसा में इसे जागीर मिली। जब इस प्रांत के सर्दार गण बादशाही मुत्सद्दियों की दाग की प्रथा की कड़ाई के कारण विद्रोही हो गए तब मासूम खाँ ने राजद्रोह तथा मूर्खता से उनका सर्दार बनकर बलवे का झंडा खड़ा कर दिया और ऐसा काम किया कि उसे मासूम आसी की पदवी मिल गई। जब दरबार से सेना के आने का समाचार सुना तब बंगाल जाकर उस प्रांत के

विद्रोहियों तथा काकशालों से मिल गया और सेना की अधिकता हो जाने से उस प्रांत के अध्यक्ष मुजफ्फर खाँ को टाँडे मे घेर लिया। उसने युद्ध का साहस न कर तथा धन-लोभ और प्राण बचाने की इच्छा से मासूम खाँ के पास बीस हजार अशर्फी भेजकर अपने सम्मान की रक्षा का वचन ले लिया।

इस घबडाहट से काकशालगण तथा अन्य उपद्रवी लोग हर ओर से दुर्ग के नीचे आ पहुँचे। मासूम खाँ उस निश्चय के अनुसार धन हाथ में आने के पहिले ही मुजफ्फर खाँ के खेमे के पास आराम कर बड़े उत्साह से अकेले उसके पास गया, जो अपने कुछ सहस्त्र दासो के साथ खडा था, जो न युद्ध करने को और न भागने ही को खडे थे। इस उपद्रवी का मस्तिष्क बिगड गया था इसलिए ऐसे अवसर को न जाने देकर उस नष्टबुद्धि दोषी को इसने मार डाला। इस पर उस ओर महल से बडा शोर आने लगा। मासूम खाँ ऐसे साहस से स्वयं घबडाकर बाहर निकल आया और सदा अपने को इसे कार्य के लिए भर्त्सना करता रहा। मुजफ्फर खाँ का काम समाप्त कर तथा अच्छी पदवियाँ और जागीर बाँटकर सिक्का और खुतबा मिर्जा मुहम्मद हकीम के नाम कर दिया। गिजाली मशहदी के इस शैर को, जो खानजमाँ शैबानी की मित्रता के समय स्यात् कहा गया था क्योंकि उसने भी मिर्जा के नाम खुतबा पढा था, प्रसिद्ध किया—

शैर—

बिस्मिल्लाह अल्रहमान अल्रहीम.
मुल्क का उत्तराधिकारी मुहम्मद हकीम है।

जब खानआजम मिर्जा कोका इन सब को दंड देने के लिए नियत हुआ तब मासूम खाँ कतलू लोहानी से जा मिला, जिसने उडीसा प्रांत में विजय प्राप्त कर इस अवसर में बंगाल के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था, और बादशाही सेना से लडने के लिए तैयारी की। इसके अनंतर जब काकशालों ने इससे शत्रुता कर मिर्जा के यहाँ संधि का संदेश भेजा तब यह भागा। २८ वें वर्ष में इसने फिर उपद्रव किया। जब शहबाज खाँ बंगाल की सेना के साथ पहुँचा तब यह उससे युद्ध करने लगा। कडी पराजय होने पर जब बब्बारी आदि बलवाई इससे अलग हो गए तब मासूम खाँ भाटी प्रांत में चला गया और वहाँ के शासक ईसा की सहायता से बादशाही राज्य मे लूटमार करने लगा पर हर बार बादशाही सेना से हारकर असफलता से लौट जाता। ४४ वें वर्ष सन् १००७ हि० में उसी प्रांत में मर गया। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र शुजाअ मुजफ्फर खाँ के क्रीत कलमाक से मिलकर, जो तलवार चलाने मे नाम कमा कर अपने को बाजबहादुर कहता था; तथा तूरानी सैनिकों को मिलाकर उस सीमा पर कुछ दिन उपद्रव करता रहा। ४६ वें वर्ष में शरण आकर उस प्रांत के अध्यक्ष राजा मानसिंह कछवाहा से मिला और सेवा की

प्रतिज्ञा की। जहाँगीर के समय गजनी का थानेदार हुआ और शाहजहाँ के समय इसे डेढ़ हजारी १००० सवार का मंसब तथा असद खाँ की पदवी मिली। १२ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हुई। इसका पुत्र कुबाद पांच सदी ३०० के मंसब तक पहुँचा था।

०

४७६. मासूम खाँ फरनखूदी

यह मुईनुद्दीन खाँ अकबरी का पुत्र था। पिता की मृत्यु पर बादशाह की नई कृपा से एक हजारी मंसबदार हो गया तथा इसे गाजीपुर सरकार की जागीरदारी मिली। जब बिहार तथा बंगाल प्रांतों में मासूम काबुली और बाबा काकशाल के विद्रोह तथा उपद्रव बढ़े तब यह यद्यपि प्रगट में राजा टोडरमल का साथ देकर उपद्रवियों का पीछा करता रहा तथा उद्दंडता और मनमाना कार्य करता रहा पर जब मिर्जा मुहम्मद हकीम का पंजाब में आना तथा अकबर का उस ओर जाना सुना तब इसकी हृदयस्थ दुर्भावना बढ़ी और यह विद्रोही हो गया। इसने तर्सून खाँ के आदमियों से जौनपुर छीनकर उस पर अधिकार कर लिया। बाल्यकाल से इसपर बादशाही कृपा होती आ रही थी इसलिए अकबर ने मेहरबानी कर जौनपुर छोड़ देने की शर्त पर इसे अवध की जागीर पर नियत किया। प्रकट में फर्मान को मानकर यह अवध गया पर वास्तव में विद्रोह का सामान ठीक करने गया। दरबार से शाहकुली खाँ महरम और राजा बीरबल इसे सम्मति देने भेजे गए। इस बिगड़े दिमाग ने लज्जा के पर्दे से निकलकर असभ्य बातें की। निरुपायतः सम्मति से काम न चलता देखकर वे लौट गए। शहबाज खाँ बिहार के विद्रोहियो को दमन करने में लगा था और उसने इसका वृत्तांत सुनकर २५ वें वर्ष में उसे दंड देने का निश्चय किया। सुलतानपुर बिलहरी के पास युद्ध की तैयारी हुई। मासूम खाँ ने स्वयं आक्रमण कर युद्ध आरंभ कर दिया। शहबाज खाँ साहस छोड़कर भागा और जौनपुर पहुँचकर बाग खीचो, जो वहाँ से तीस कोस पर है। एकाएक मासूम खाँ के मारे जाने का शोर सुना जाने लगा, जिससे उसके आदमी भाग गए। वह मैदान में पहुँचकर आश्चर्य मे पड़ गया। इसके बाद बादशाही सेना का बायाँ भाग, जिसे सर्दार के पराजय की खबर न थी, आ पहुँचा। यह घबड़ाकर लड बैठा और घायल होकर रक्षास्थान मे चला गया।

उसका निवास स्थान बादशाही सेना द्वारा लुट गया था इसलिए अवध के कस्बे को चला गया। शहबाज खाँ ने जौनपुर मे सेना ठीक कर दूसरी बार युद्ध की तैयारी की। अवध से सात कोस पर युद्ध हुआ। वह फिर परास्त हो अवध मे जा

बैठा। अरब बहादुर तथा नयाबत खाँ, जो उसकी मस्ती के उद्गम थे, अलग हो गए। मासूम खाँ अपने ऐश्वर्य तथा सामान को छोड़कर भागा। इधर उधर टक्कर खाता हुआ गुम हो बैठा। किवारिज के जमीदार ने पुरानी मित्रता के नाते उसे अपने यहाँ लाकर उसका नगद तथा सामान ले लिया। तबाही की हालत में सर्द नदी पारकर वहाँ के राजा मान के पास पहुँचा। उसने कुछ बदमाशों को साथ दिया और इसके पास रत्नों की आशंका से इसे मारने का संकेत कर दिया। मासूम खाँ ने यह जानकर उनको सोने से बहकाया और स्वयं एकांत स्थान में चला गया।

इसी बीच इसका एक नौकर मकसूद इसके पास पहुँचा और अपना जमा किया हुआ धन भेंट कर दिया। इस उपद्रवी ने पुनः बलवे का विचार किया और थोड़े समय में धन के दासों को इकट्ठा कर लिया। बहराइच नगर को इसने लूट लिया। हाजीपुर से वजीर खाँ ने उस प्रांत के दूसरे जागीरदारों के साथ युद्ध की तैयारी की। बहुत दिनो तक तोप गोली का युद्ध होता रहा। रात्रि में मासूम खाँ सब छोड़कर चल दिया और फिर सेना इकट्ठी कर मुहम्मदपुर कस्बे को लूट लिया। यह जौनपुर लूटने के विचार में था कि वहाँ के सब जागीरदार इकट्ठे हो गए। जब उस विद्रोही ने देखा कि उसकी कुछ न चलेगी तब खानआजम कोका की शरण गया, जिसने बादशाह से इसका दोष क्षमा कराकर महिस्ती जागीर दिला दी। यह विद्रोह करने को था कि मिर्जा कोका उसका उपाय करने आ बैठा। अपने मे शक्ति न देखकर उससे मिलकर दरबार चला गया। २७ वें वर्ष में आगरे पहुँचा। हमीदा बानू बेगम के कहने से यह फिर क्षमा किया गया। उसी समय सन् ९९० हि० में अर्द्धरात्रि को दरबार से अपने घर चला। किसी ने आक्रमण कर इसे मार डाला। बहुत खोज हुई पर पता न चला। कुछ लोगों का कहना है कि ऐसा बादशाह के संकेत पर हुआ था। ईश्वर जाने।

●

४७७. मासूम भक्करी, मीर

इसका उपनाम 'नामी' था। इसके पूर्वज तर्मिज के सैयद थे और दो तीन पीढ़ी से कंधार में रहने लगे थे। इनका काम बाबा शेर कलंदर के मकबरे का मुतवल्लीपन था, जो सिद्धाई में अपने समय का एक महान् पुरुष था तथा वहाँ गाड़ा गया था। इस कार्य में और लोग भी इसके साझी थे। इसके पिता का नाम मीर सैयद सफाई था, जिससे इसे भी लोग सैयद सफाई कहते थे। भक्कर मे आने पर यहाँ के शासक सुलतान महमूद के इसका सम्मान करने से यह यहीं रहने

रगा। सिविस्तान के अंतर्गत खावरूत के सैयदों से इसने संबंध किया। मीर मासूम तथा इसके दो भाई यहीं पैदा हुए। मीर पिता की मृत्यु पर मुल्ला मुहम्मद की सेवा मे, जो भक्कर के अंतर्गत कंगरी का रहने वाला था, विद्याध्ययन करता रहा और योग्यता प्राप्त की। यह अहेर में भी कुशल था और वहुधा समय उसमें व्यतीत करता था। यहाँ तक कि दरिद्रता ने इन लोगों को आ घेरा कव यह पैदल गुजरात को चला। शेख इसहाक फारुकी भक्करी ने, जो ख्वाजा निजामुद्दीन हरवी की सरकार में उस प्रांत का दीवान था, पहली मित्रता के कारण मीर की ख्वाजा से मुलाकात करा दी क्योंकि दोनों सहपाठी थे। दैवयोग से उस समय तवकाते अकवरी लिखी जा रही थी। इतिहास-ज्ञान में अद्वितीय होने से मीर का सत्संग आवश्यक समझकर इसे वहीं रख लिया। इनके सहयोग तथा सत्संग से ख्वाजा ने भी शैर बनाकर उस रचना में रखे। इसके अनंतर वहाँ के प्रांताध्यक्ष शहावुद्दीन अहमद खाँ की सेवा मे नियत होने पर इसे मंसव भी मिल गया। वीरता तथा साहस में नाम अर्जित करने पर यह अकवर की सेवा में भर्ती हो गया। ४० वें वर्ष में इसे ढाई सदी मंसव मिला। वादशाह के पास रहने तथा विश्वास वढ़ने से यह ईरान के राजदूत पद पर नियत हुआ और अपनी वुद्धिमानी तथा योग्यता से शाह अब्वास सफवी का कृपापात्र हुआ। जव ईरान प्रात से लौटा तव सन् १०१५ हि० (सन् १६४०–१ ई०) में जहाँगीर ने इसे अमीनुल् मुल्क वनाकर भक्कर भेजा पर यह वहाँ पहुँचते ही मर गया। कहते हैं कि यह अकवरी एक हजारी मंसव तक पहुँचा था। यह शैर अच्छा कहता। यह शैर उसी का है—

क्या ही अच्छा है कि तू अपना वृत्तात पूछ रहा है।
तुझसे अपना वृत्तांत विना जिह्वा की भाषा मे कहता हूँ॥

दीवान नामी, मखजनुल् इसरार के जवाव में लिखी गई मादनुल् अफगार मसनवी, तारीख सिंध और मुफरंदात मासूमी नामक हकीमी का संक्षेप इसकी रचनाएँ हैं। यह अच्छी लिपि लिखने में भी दक्ष था। हिंदुस्तान से तव्रेज तथा इस्फहान तक सर्वत्र मार्ग में पड़ते हुए मस्जिदो और इमारतों पर इसने अपने शैर खोदे हैं। आगरा दुर्ग के फाटक और फतहपुर की जामः मस्जिद पर के लेख इसी की हस्तलिपि मे हैं। इसने वहुत से धर्मस्थान, विशेष कर अपने रहने के नगर सक्खर में वनवाए। सिंध नदी के वीच में, जो भक्कर के चारो ओर हैं, सत्यासर नामक इमारत वनवाई, जो पृथ्वीपर के आश्चर्यो में है। इसके निर्माण की तारीख 'गुंवदे दरियाई' है। विराग तथा तपस्या में यह इतना वढ़ा हुआ था और उदारता तथा दान में ऐसा था कि सक्खर के फकीरो के लिए हिंदुस्तान से सौगात भेजता था और वड़ो, विद्वानो, साधुओ आदि के लिए वृत्तियाँ वाँध दी थी। अंत में जव अपने देश गया तव वह सलूक नही रह गया, जिससे वहाँ के निवासी कष्ट मे पड़ गए। कहते हैं कि वस्ती वसाने में वह ऐसा था कि उसने नियम कर दिया था कि

अपने जागीर के महाल में एक टुकड़ा जंगल अहेर के लिए रक्षित रखे। इसका पुत्र मीर बुजुर्ग था। सुलतान खुसरो के बलवे में इसको मार्ग से सशस्त्र पकड़ कर लाए और कोतवाल ने प्रगट किया कि यह भी सुलतान का साथी था। इसने अस्वीकार कर दिया। जहाँगीर ने पूछा कि इस समय शस्त्र क्यो लगाए हुए हो। उत्तर दिया कि पिता कह गए हैं कि रात्रि की चौकी में सशस्त्र रहा करो। चौक के लेखक ने भी गवाही दी कि आज की रात्रि इसीकी चौकी थी। इस पर यह बच गया। बादशाह ने दया कर इसके पिता का माल इसे बख्श दिया। कंधार की बख्शीगीरी में इसने बहुत दिन व्यतीत किए। पिता के तीस-चालीस लाख रुपयो को अपव्यय में लगाने से इसका दिमाग इतना बढ गया कि किसी को सिर नही झुकाता था और किसी प्रांताध्यक्ष से इसकी नही पटी। यह साफ-सुथरे बहुत से नौकर रखता था। गद्य-पद्य लेखन में भी इसकी रुचि थी और अच्छा लिखता भी था। अनेक प्रकार की लूटमार करने से यह अत्याचारी हो गया था। मांडू के बादशाह की सेवा में पहुँचकर दक्षिण में नियत हुआ, जहाँ बहुत दिनों तक रहा। जागीर की आय से इसका आनंद का व्यय पूरा नही पडता था इससे काम छोडकर घर बैठ रहा। पिता की अचल संपत्ति तथा बागों पर इसने संतोष किया। स० १०४४ हि० मे यह मर गया। इसे संतान थीं। इनमें से कुछ मुलतान मे रहने लगे थे।

•

४७८. मिर्जा खाँ मनोचेहर

यह अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ के पुत्र मिर्जा एरिज शाहनवाज खाँ का पुत्र था। यह बैराम खाँ के वंश का स्मारक था। इस उच्च वंश में जैसा कि इसके पूर्वजों के नाम ही से प्रकट है, इसके सिवा और किसी ने इस समय प्रसिद्धि नहीं प्राप्त की। साहस, वीरता तथा बहादुरी में, जैसा कि इस वंश के उपयुक्त है, यह विशेषता रखता था और बुद्धिमानी के कारण ठीक सम्मति देने तथा उपाय निकालने की योग्यता और अनुभव में एक था। युद्ध में लगे हुए कुछ घावो के कारण यह कुछ दिनो तक आलस्य आदि में रहने से उन्नति न कर सका। यह बहुत दिनों तक दक्षिण के सहायकों में नियत रहा। भातुरी अहमद नगर के युद्ध में १९ वें वर्ष जहाँगीरी में, जब लश्कर खाँ बहुत से सर्दारो के साथ मलिक अंबर की कैद मे पड गया तब मिर्जा मनोचेहर भी ठीक पूर्ण यौवनकाल में अत्यंत घायल हो कैद हो गया। बहुत दिनों तक यह दौलताबाद में कैद रहा। उस युद्ध में इसने बहुत प्रयत्न दिखलाया था इससे छुटकारा मिलने पर जहाँगीर ने इसे मिर्जा खाँ

की पदवी, तीन हजारी २००० सवार का मंसब तथा झंडा व डंका दिया। शाहजहाँ की राजगद्दी पर इसपर कृपा बनी रही। ६ठे वर्ष में बहराइच सरकार का फौजदार नियत हुआ। ८ वें वर्ष में नजाबत खाँ श्रीनगर की चढ़ाई में ठीक उपाय न करने से दंडित हुआ था इसलिए उसके स्थान पर यह कांगड़ा पर्वत की तराई का फौजदार नियुक्त हुआ और उसकी जागीर इसे वेतन में मिली। ९वें वर्ष के अंत में मस्तिष्क बिगड़ने से कुछ दिन एकांतवास करता रहा और अच्छे होने पर एक दम अवध का सूबेदार नियत कर दिया गया। इसके बाद मांडू का फौजदार तथा जागीरदार हुआ। २५ वें वर्ष में अहमद खाँ नियाजी के स्थान पर यह अहमद नगर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। २८ वें वर्ष में एलिचपुर का शासन इसे मिला। देवगढ़ के भूम्याधिकारी कोकया ने १० वें वर्ष के बाद से खानदौराँ नसरतजंग को कर अदा किया था परंतु उसके अनंतर उसके पुत्र कीरतसिंह ने मालिक होने पर कर कोष में नहीं जमा किया था इसलिए दक्षिण प्रांत के सूबेदार शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर ने २९ वें वर्ष में बादशाही आज्ञानुसार मिर्जा खाँ को तिलंगाना के शासक हादीदाद खाँ तथा अन्य दक्खिनी सर्दारों के साथ इसे उक्त जमींदार पर नियत किया। जब उक्त खाँ उस प्रांत की सीमा पर पहुँचा तब उस दूरदर्शी उपद्रवी ने बादशाही आज्ञाओं को मानने ही में अपना छुटकारा देखकर नम्रता से काम लिया और मिर्जा खाँ से मिलकर वर्तमान् सन् तक का कुल पिछले वर्षों का बकाया कर देना स्वीकार किया। मिर्जा खाँ यह मानकर उक्त जमींदार को बीस हाथियों सहित, क्योंकि इससे अधिक उसके पास नहीं थे, शाहजादे की सेवा में लिवा लाया। ३१ वें वर्ष में गोलकुंडा की चढाई मे शाहजादे के साथ रहकर इसने अच्छी सेवा की और दुर्ग के उत्तर के मोर्चे का यह नायक था। कई बार इसने वीरता से शत्रुओं को परास्त किया। सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह से संधि होनेपर जब शाहजादा औरंगाबाद प्रांत को लौटा तब इसे एलिचपुर जाने की छुट्टी मिली। इतनी अच्छी सेवा तथा सुव्यवहार पर भी विजयी शाहजादे का साथ इन युद्धों मे नहीं दिया, जो साम्राज्य के दावेदारो के साथ हुआ था। इस कारण या और कोई कारण रहा हो औरंगजेब के राज्य के आरंभ ही में मंसब से हटाए जाने पर बहुत दिनों तक एकांतवास करता रहा। यह शेख अब्दुल्लतीफ बुर्हानपुरी की सेवा में रहा करता था और बादशाह भी उसका कृपापात्र था इसलिए उसके संकेत पर १० वें वर्ष में इस पर कृपा हुई और इसे तीन हजारी २-०० सवार का मंसब तथा एरिज की फौजदारी और जागीरदारी मिली। यहीं सन् १०८३ हि० (सन् १६७३ ई०) १६ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। बुर्हानपुर में एक बाग बनवाकर शेख अब्दुल्लतीफ को इसने भेंट कर दिया। यह शेख पर विशेष आस्था रखता था। इसका पुत्र मुहम्मद मुनइम योग्य पुरुष था। साम्राज्य के लिए दक्षिण

से हिंदुस्तान आते समय यह औरंगजेब की सेना के साथ था और इसे डेढ हजारी मंसब तथा खाँ की पदवी मिली। सभी युद्धों में साथ रहकर इसने बहुत प्रयत्न किया। २ रे वर्ष दाराव खाँ के स्थान पर यह अहमद नगर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ।

•

४७६. मिर्जा मीरक रिजवी

यह मशहद के रिजवी सैयदों में से था। यह आरंभ में अली कुली खानजमाँ का साथी था। अकबर के १० वे वर्ष में खानजमा की ओर से क्षमा प्रार्थना करने के लिए यह बादशाह के पास आया था और उसके दोष क्षमा भी किए गए थे। १२ वें वर्ष मे जब खानजमाँ के विद्रोह का समाचार बादशाह को मिला तब मिर्जा को कैद कर खान बाकी खाँ को सौंप दिया। मिर्जा अवसर की खोज में था और उसे पाकर यह भाग गया पर खानजमाँ के मारे जाने पर यह फिर पकडा गया। बादशाह की आज्ञा से इसको प्रति दिन मस्त हाथी के सामने डाल देते थे पर हाथीवान को संकेत कर दिया गया था कि कितना दंड दिया जाय। पाँचवें दिन दरबारियों की प्रार्थना पर इसकी जान बख्श दी गई। कुछ दिन बाद इस पर बादशाही कृपा हुई और इसे अच्छा मंसब तथा रिजवी खाँ की पदवी देकर सम्मानित किया गया। १९ वें वर्ष में यह जौनपुर का दीवान नियत हुआ। २४ वें वर्ष में इसके साथ-साथ बंगाल की बख्शीगिरी भी मिल गई। २५ वें वर्ष में बंगाल के जागीरदारो का विद्रोह हुआ और गंगा जी के उस ओर वे इकट्ठे हो गए। यह वहाँ के सूबेदार मुजफ्फर खाँ के साथ गंगाजी के इस पार था। जब संधि की बातचीत चली तब उक्त खाँ तथा राय पत्रदास दो एक आदमियों के साथ समझाने के लिए भेजे गए। उक्त राय के अनुयायी आदमियो ने विद्रोहियों को मार डालने का विचार इससे कह दिया। खाँ की प्रकृति दो रुखी और कपट की थी इसलिए इसने संकेत तथा इशारो से यह बात विद्रोहियो के मन में बैठा दी, जिससे वे इस जलसे से उठकर चल दिए और खूब उपद्रव मचाया तथा इसको अपनी रक्षा मे ले लिया। इसके बाद का हाल नही ज्ञात हुआ कि इसका क्या हुआ।

•

४८०. मिर्जा सुलतान सफवी

यह मिर्जा नौजर कंधारी का छोटा भाई था। यह इस्लाम खाँ मशहदी का दामाद था। जब शाहजहाँ के राज्यकाल में उक्त खाँ दक्षिण के प्रांतो का शासक नियत हुआ तब इसे भी एक हजारी ४०० सवार का मंसब देकर साथ विदा किया। इस्लाम खाँ की मृत्यु पर इसके दरबार आने पर इसका मंसब बढाया गया। २४ वें वर्ष मे अपने चचेरे भाई मिर्जा मुराद काम के स्थान पर कोरबेगी नियत हुआ और बहुत दिनों तक यह कार्य करता रहा। जब ३१ वे वर्ष में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर आदिलशाह को दंड देने तथा उसके राज्य को लूटने गया और मुअज्जम खाँ मीर जुम्ला के अधीन भारी सेना दरबार से सहायतार्थ भेजी गई तब मिर्जा सुलतान भी तरक्की मिलने पर तीन हजारी १५०० सवार का मंसब पाकर साथ नियत हुआ। इसके अनंतर जब दाराशिकोह के संकेत पर सहायक सेना लौटी तब मिर्जा शाहजादे की कृपा से उसका आभारी होकर उसकी सेवा न छोड औरंगाबाद मे ठहर गया। जब इसी समय हिंदुस्थान की ओर राज्य का दावा करने के लिए जाना निश्चय हुआ तब शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम को दक्षिण का सूबेदार नियत किया और मिर्जा को एक हजारी ५०० सवार की तरक्की देकर चार हजारी २००० सवार के मंसब के साथ फुलमरी से औरंगाबाद विदा कर दिया कि शाहजादा की सेवा मे रहकर काम करे। इसके अनतर औरंगजेब के बादशाह हो जाने पर यह दक्षिण से दरबार जाकर सेवा में उपस्थित हुआ। ९ वें वर्ष में एक हजार सवार मंसब मे बढ़ने पर यह शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम के साथ नियत हुआ, जो शाह अब्बास द्वितीय के हिंदुस्तान की ओर चढ़ाई करने के लिए आने जाने का समाचार सुने जाने पर फुर्ती से काबुल पहुँचने को बिदा किया गया था। शाहजादा राजधानी लाहौर से अभी आगे नही बढ़ा था कि ईरान के शाह की 'खनाक' बीमारी से मृत्यु हो जाने का समाचार मिला। १० वें वर्ष के आरंभ में यह शाहजादे के साथ लौटकर सेवा में उपस्थित हुआ। इसी समय उक्त शाहजादा दक्षिण का शासक नियत हुआ, जो वास्तव मे उसी से संबंध रखता था और जहाँ से ८ वे वर्ष के अंत में आज्ञानुसार दरबार चला आया था। वह समयोचित समझा जाकर राजा जयसिंह के साथ नियुक्त हुआ था, जो आदिलशाहियों को दंड देने के लिए गया था। पहिले ही के समान वहाँ का शासन ठीक रखने को उसे वही रहने की आज्ञा हुई। मिर्जा सुलतान भी खिलअत पाकर अपनी जागीर पर गया कि वहाँ का प्रबंध ठीक कर शाहजादे की सेवा मे दक्षिण जाय। यह बहुत दिनो तक उस प्रांत में रहा। इसकी मृत्यु का सन् नही ज्ञात हुआ पर दक्षिण ही में इसकी मृत्यु हुई। यही विशेष संभावना है क्योंकि इसका मकबरा औरंगाबाद के बाहर जैसिंहपुरा के पास दौलताबाद दुर्ग जाने के मार्ग पर स्थित है। इसका पुत्र मिर्जा सदरुद्दीन मुहम्मद खाँ बख्शी था, जिसका वृत्तांत अलग लिखा गया है।

४८१. मीरक शेख हरवी

यह काजी असलम का भतीजा प्रसिद्ध है। जहाँगीर के राज्यकाल में ठीक जवानी के समय खुरासान से हिंदुस्तान आया और लाहौर में मुल्ला अब्दुस्सलाम का शिष्य हुआ। यह मुल्ला उस नगर के प्रसिद्ध विद्वानों मे था, खासा बुद्धिमान था तथा पचास वर्ष से शिक्षक की गद्दी पर बैठता था। इसने 'बैजावी' पर टिप्पणी लिखी थी। बादशाही शिक्षा में भी कुछ दिन रहा। शाहजहाँ के राज्य के १ म वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। मीरक शेख ने प्रायः बहुत सी पुस्तकें देख डाली और इस प्रकार सुशिक्षित होने पर शाहजहाँ की सेवा मे भर्ती हो गया। सौभाग्य से शाहजादा दाराशिकोह तथा दूसरे शाहजादों को शिक्षा देने का भार इसे मिल गया। इसकी हालत की उन्नति करने तथा शाही कृपा से इसे योग्य मंसब मिला। १७ वें वर्ष में इसे अर्ज मुकर्रर का पद मिला। २८ वें वर्ष में बेगम साहबा का दीवान नियत हुआ और इसका मंसब पाँच सदी ५० सवार बढने से दो हजारी २०० सवार का हो गया। इसके बाद पाँच सदी और बढ़ा।

जब मुहम्मद औरंगजेब बहादुर ने विजय तथा भाग्य के जोर से थोड़े समय में हिंदुस्तान पर एक छत्र राज्य फैला लिया तब इस पर अधिकाधिक कृपा करते हुए २ रे जलूसी वर्ष में इसका मंसब पाँच सदी बढाकर तीन हजारी कर दिया। २ रे वर्ष के अंत में सैयद हिदायतुल्ला कादिरी के स्थान पर सदर कुल नियत हुआ। अवस्था अधिक हो गई थी इसलिए ४ थे वर्ष में उस काम से हटा दिया गया। उसी समय सन् १०७१ हि० (सन् १६६१ ई०) में यह मर गया।

●

४८२. मीर गेसू खुरासानी

यह खुरासान के सैयदों मे से था। अकबरी दरबार में अपनी पुरानी सेवाओं और संबंध के कारण बहुत विश्वासपात्र हो जाने से बकावल बेगी का पद इसे मिला, जो सिवा विश्वसनीय व्यक्तियों के किसी को नहीं मिलता था। जब मीर खलीफा के पुत्र मुहिब्ब अली खाँ ने साहस कर भक्कर दुर्ग घेर लिया और दुर्ग वाले तंग आ गए, जिसका वृत्तांत उसकी जीवनी में दिया गया है, तब वहाँ के स्वामी सुलतान महमूद ने अकबरी दरबार में प्रार्थना पत्र भेजा कि जो होना था वह हो गया पर अब दुर्ग को भेंट करता हूँ किंतु मेरे तथा मुहिब्ब अली खाँ के बीच लड़ाई हो चुकी है, इससे उससे निश्चिंत नहीं हूँ। कोई दूसरा सेवक इसके लिए

नियत हो। अकबर ने मीर गेसू को भेजा' जो योग्य तथा अनुभवी था। जब मीर वहाँ सीमा पर पहुँचा तब मुहिब्ब अलीखाँ के आदमियों ने मार्ग रोका। यह कैद हो जाता पर ख्वाजा निजामुद्दीन बख्शी का पिता ख्वाजा मुकीम हरवी अमीनी के कार्य से वहाँ पहुँच गया और मुहिब्ब अली खाँ को समझाकर युद्ध से रोका। दुर्ग वालो ने जो मीर की प्रतीक्षा ही में थे, सुलतान महमूद के निश्चय के अनुसार, जो मीर के पहुँचने के पहिले ही मर चुका था, दुर्ग की कुंजी १९ वें वर्ष में सन् ९८२ हि० (सन् १५७४-५ ई०) में सौंप दी। इस प्रकार यह बसा हुआ प्रांत उसके अधिकार में चला आया। परंतु मुहिब्ब अली लोभ के कारण वह स्थान छोड़ना नही चाहता था इसलिए कई युद्ध हुए।

जब अकबर ने यह वृत्तात सुना तब तमून खाँ को वहाँ का अध्यक्ष नियत कर भेजा। जब उसके भाई लोग वहाँ पहुँचे तब मीर गेसू ने जिसे हुकूमत का स्वाद लग गया था, विद्रोह के विचार से दुर्ग को दृढ़ करना चाहा पर फिर दूरदर्शिता से इस बुरे विचार से दूर हो गया और उस प्रांत से हाथ उठाकर दरबार चला गया। इसके अनंतर मेरठ तथा दिल्ली के आसपास के महालो का, जो दोआब के अच्छे महालों में थे, फौजदार नियत हुआ। दोआब का तात्पर्य गंगा और जमुना के बीच की भूमि से है। वह बराबर लोभ तथा कंजूसी के कारण नौकरो से झगड़ा किया करता और स्वामी तथा सैनिक दोनों ही अपना स्वार्थ देखते थे अतः २८ वें वर्ष सन् ९९१ (सन् १५८३ ई०) में मेरठ मे दोनों के बीच बातो मे बहुत झगड़ा हो गया। कुछ को इसने बेइज्जती से निकलवा दिया। शव्वाल के ईद के दिन साथियों सहित यह मदिरा पीकर ईदगाह में गया। कुछ कपटी उपद्रवी प्रार्थना करने आए पर इसने उन्मत्तता से शाति छोड कर उनके साथ बुरा वर्ताव किया। इन स्वामिद्रोहियो ने विद्रोह कर दिया। मीर क्रोध से उनके घर गया और उनमें आग लगवा दी। वे युद्ध को आए और इधर इसके सहायकों ने इसका साथ छोड़ दिया। इस प्रकार मीर का अंत हो गया और उन सब ने नीचता से उसके शव को जला दिया। अकबर ने यह सुनकर बहुत से उपद्रवियों को प्राण दंण दिया।

इसका पुत्र मीर जलालुद्दीन मसऊद, जिसे योग्य मंसब मिल चुका था, जहाँगीर के राज्य के २ रे वर्ष मे मर गया। इसकी माँ ने कष्ट मे, जब इसके मुख से मृत्यु के लक्षण प्रगट हो गए तब, प्रेम तथा वात्सल्य के कारण अफीम खा लिया। पुत्र की मृत्यु के दो एक घड़ी बाद वह भी चल बसी। पति की मृत्यु पर स्त्री का सती होना हिंदुस्तान में विशेष प्रचलित है पर माँ का पुत्र के लिए जान देना वैचित्र्य से खाली नही है। परंतु वास्तव में उसका इससे कोई संबंध नही है। पहिली में बहुधा ऐसा होता है कि बिना प्रेम ही के प्रथा समझ कर वैसा किया जाता है। यही कारण है कि राजों की मृत्यु पर दस बीस आदमी स्त्री पुरुप अपने को आग मे डाल देते हैं।

४८३. मीर जुम्ला खानखानाँ

यह तूरान में पैदा हुआ था तथा विनम्र पुरुष था और इसका नाम अब्दुल्ला था। किसी ने इसकी यों नकल कही है। जिस समय यह देश में पढ रहा था उस समय कुछ लोगों के साथ मिलकर बाग की सैर को नगर के बाहर गया। एकाएक उजबक सेना ने डाकूपन से पहुँचकर इन सब को अस्त व्यस्त कर दिया। यह बाग की दीवाल से उतर कर हिंदुस्तान को चल दिया। यात्रा का सामान न रहने से कष्ट से मार्ग चलता रहा। औरंगजेब के समय यहाँ पहुँचकर बंगाल प्रांत के अंतर्गत ढाका उर्फ जहाँगीर नगर का काजी नियत हुआ। इसके बाद पटना अजीमाबाद का काजी हुआ। जब मुहम्मद फर्रुखशियर पटना पहुंच कर गद्दी पर बैठा तब यह उससे मिलकर उसके साथ हो गया। इसके अनंतर जहाँदार शाह पर युद्ध में विजय मिलने पर इसे सात हजारी ७००० सवार का मंसब और मीर जुम्ला खानखानाँ मुअज्जम खाँ बहादुर मुजफ्फर जंग की पदवी मिली।

यद्यपि प्रगट में यह दीवान खास व डाक का दारोगा था पर विशेष विश्वास के कारण बादशाही हस्ताक्षर इसके हाथ मे था। एक शीघ्रता करनेवाला मुगल एकाएक ऐसे उच्च पद पर पहुँच गया था। बारहा के सैयदों का प्रभुत्व भी जम गया था और वे अपनी सेवाओं के आगे किसी को कुछ नहीं समझते थे, इसीलिए उनकी ओर से इसके विषय में एक का दस करके बादशाह से कहा जाता था। जुल्फिकार खाँ, हिदायतुल्ला खाँ तथा अन्य आदमियों के मारे जाने से दंड देने के संबंध से यह प्रसिद्ध होगया था और सैयद अब्दुल्ला खाँ तथा हुसेन अली खाँ ने इससे क्षुब्ध होकर दरबार आना जाना बंद कर दिया। मुहम्मद फर्रुखसियर के २ रे वर्ष में जब हुसेन अली खाँ अमीरुल् उमरा दक्षिण का शासक नियत हुआ तब उसने वहाँ जाना स्वीकार नहीं किया। यहाँ तक कि मीरजुम्ला पटना का सूबेदार नियत किया जाकर वहाँ भेजा गया था पर वहाँ पहुँचने पर भारी सेना रखने के कारण पद के वेतन के विरुद्ध इसने आपत्ति किया और इस कारण अंत में घबड़ाकर गुप्त रूप से पर्देदार पालकी मे बैठकर यह दरबार चल दिया। उस समय दरबार में सैयदों के बिगड़ जाने से प्रतिदिन अप्रसन्नता में बीत रहा था इसलिए बादशाह ने इसका कुछ न सुना तब इसने लाचार होकर सैयद अब्दुल्ला खाँ के पास जाकर शरण ली। वह झूठी बातें कर रहा था कि इसके मनुष्य पीछे से पहुँच कर वेतन के लिए शोर मचाने लगे। निरुपाय हो इसने मुहम्मद अमीर खाँ बहादुर के घर जाकर शरण ली। बादशाह ने उपद्रव शांत करने के लिए मंसब कम करने की धमकी देकर इसे पंजाब प्रांत में नियत कर दिया और इसके आदमियों का वेतन कोष से दिलवा दिया। फर्रुखसियर के कैद होने पर यह

सैयदों के पास आकर सदरकुल पद पर नियत हुआ पर पहिले सा इसका सम्मान नहीं रह गया। मुहम्मद शाह के समय इसकी मृत्यु हो गई। पटने की सूबेदारी में इसके साथी मुगलों ने वहाँ की प्रजा पर बड़ा अत्याचार किया था और यह स्वयं भी दया, मुरौवत तथा दूरदर्शिता नही रखता था। इतने पर भी जो कोई अपना काम इसे सौंपता उसे कर देता था।

•

४८४. मीर जुम्ला मुअज्जम खाँ खानखानाँ, मीर मुहम्मद सईद

यह अर्दिस्तान सफाहान के सैयदों में से था। जब यह गोल-कुंडा आया तब वहाँ के सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह की कृपा दृष्टि के कारण यह उक्तपद तथा ऐश्वर्य को पहुँचा। बहुत दिनों तक उस राज्य का कुल कार्य तथा प्रभुत्व इसके अधिकार में रहा। यहाँ तक कि इसने अपनी वीरता तथा कार्य शक्ति से कर्णाटक प्रात के बड़े अंश पर वहा के निवासियो को परास्त कर अधिकार कर लिया, जो एक सौ पचास कोस लंबाई तथा बीस से तीस कोस तक चौडाई में था और जिसकी आय चालीस लाख रुपए थी। इसमें हीरे की खान थी तथा लौह-निर्मित के सामान दृढ दुर्ग, जैसे कंची कोठा और सधूप, भी थे। इनसे तात्पर्य बालाघाट कर्णाटक तथा औरंगाबाद से है। उस समय वहा का शासक कृपा था। कुतुबुल्मुल्क के किसी पूर्वज को यह प्राप्त नही हुआ था। पहिले से इसका ऐश्वर्य, धन, सामान आदि इतना बढ़ गया कि यह निज के पाच सहस्र सवार नौकर रखता था। यह अपने बराबरवालों से बडप्पन तथा बुजुर्गी में बढ़ गया था। इन कारणों से इसके शत्रुओं में से बहुतों ने बुराई तथा उपद्रव के विचार से स्वामिभक्ति की ओट में भी जुम्ला के विरुद्ध बहुत सी अयोग्य बातें कुतुबशाह के हृदयस्थ कर उसे इसके प्रति सशंकित तथा इसका विरोधी बना दिया। इसके पुत्र मीर मुहम्मद अमीन की चाल सीमा के बाहर हो चली थी जो दरबार में रहता था तथा यौवन और वैभव के नशे से चूर था तथा पिता के भारी विजय के कारण घमंड से भर उठा था। एक दिन यह अभागा दरबार में पहुँचकर शाही मसनद पर जा सोया और उसी पर कै कर बीमार हो गया। इससे दुष्कृपा के चिन्ह प्रगट हो गए। मीर जुम्ला इस भारी विजय के उपलक्ष में विपय आशा रखता था पर इसके विरुद्ध फल पाकर उसका

मन हट गया और उसने शत्रु होकर २९वें वर्ष में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब की शरण ली तथा बुलाए जाने की प्रार्थना की, जो उस समय दक्षिण का सूबेदार था। शाहजहाँ ने शाहजादे की प्रार्थना पर इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब और इसके पुत्र मीर मुहम्मद अमीन को दो हजारी १००० सवार का मंसब दिया तथा काजी मुहम्मद आरिफ कश्मीरी हाथ कुतुबशाह के पास आज्ञापत्र भेजा कि वह इसके तथा इसके साथियों पर कोई अत्याचार या शत्रुता न करे। कुतुबशाह ने यह समाचार सुनते ही मीर मुहम्मद अमीन को साथियों सहित कैद कर दिया और उसका जो कुछ सामान था सब जब्त कर लिया। शाही आज्ञापत्र के पहुँचने पर भी उसने अपने कार्य मे हठ बनाए रखा। शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब ने पहिले बादशाही आज्ञापत्र को इस आशय के पत्र के साथ कि सुलतान मुहम्मद उडीसा के मार्ग से अपने पितृव्य शाहजादा मुहम्मद शुजाअ के पास बंगाल जाना चाहता है और उसे चाहिए कि अपने राज्य से सीधे रास्ते से जाने दे, भेज दिया। उस मूर्ख ने नीतिकौशल से असतर्क रहकर इसे स्वीकार कर लिया। शाहजादे ने आज्ञानुसार ८ रबीउल् अव्वल सन् १०६६ हि० को अपने प्रथम पुत्र सुलतान मुहम्मद को अग्गल रूप में हैदराबाद को विदा कर दिया और स्वयं ३ रबीउल्-अखीर को बाहर निकला। इस पर कुतुबुल्मुल्क असावधानी की निद्रा से जागा और मीर मुहम्मद अमीन तथा उसकी माँ को विदा कर दिया। यह हैदराबाद से बारह कोस पर सुलतान मुहम्मद की सेवा में उपस्थित हुआ। इस कारण कि उसने बदनीयत से इसके माल को नहीं दिया था इसलिए सुलतान उस नगर की ओर बढ़ा। कुतुबुलमुल्क यह समाचार पाते ही ५ रबीउल्आखीर को कुल धन, रत्न, सोना, चाँदी आदि के साथ गोलकुंडा दुर्ग में जा बैठा, जो नगर से तीन कोस पर है।

जब सुलतान मुहम्मद की सेना का पडाव हुसेन सागर तालाब के किनारे पड़ा तब कुतुबशाही सेना दिखलाई पड़ी और उपद्रव करने लगी। सुलतान ने वीरता से उसपर आक्रमण कर उन पराजितो को दुर्ग की दीवाल तक पहुँचा दिया और दूसरे दिन हैदराबाद पर अधिकार कर लिया। यद्यपि वहाँ की इमारतों को लाने तथा वहाँ के निवासियों की लूटमार करने से कुछ रक्षा की गई पर कुतुबसाह के बहुत से कारखाने लुट गए। अच्छी पुस्तकें, चीनी बर्तन तथा दूसरे बहुत से सामान जब्त कर लिए गए। इतना अधिक सामान था कि कई दिन की लूट के बाद भी लौटते समय ये मकान भरे हुए थे। यद्यपि सुलतान अब्दुल्ला ने प्रकट विजितों के सामान ही व्यवहार करते हुए रत्न, हाथी भेंट में भेजकर अधीनता दिखलाई थी पर भीतरी तौर पर उसने युद्ध, दुर्ग की दृढता तथा सामना का प्रबंध करते हुए कई बार आदिलशाह को सहायता के लिए लिखा। जब शाहजादा ने अठारह दिन में दुर्ग से एक कोस पर पहुँच कर सेना सजाई और दुर्ग के तीन कोस जरीबी घेरे के चारों

ओर मोर्चे जमाए। तब दुर्ग से बराबर गोले, गोलियाँ की वर्षा होने पर भी मैदान में कई बड़ी लड़ाइयाँ हुईं और सभी में बादशाही सेना विजयी हुई।

जब कुतुब शाह ने दुर्ग लेने का शाहजादे का हठ देखा तब निरुपाय होकर शरणार्थी हुआ और अपने दामाद मीर अहमद को भेजकर पिछले सनों के बाकी कर व मुहम्मद अमीन का सामान माल आदि भेज दिया तथा क्षमा याचना की। उसके प्राप्त होने पर अपनी माता को कृपा की आशा से भेजा, जिसने शाहजादे की सेवा में उपस्थित होकर पुत्र की क्षमा प्राप्ति के लिए एक करोड़ रुपया भेंट देना निश्चित किया और कुतुबुल्मुल्क की पुत्री का सुलतान मुहम्मद के साथ निकाह पढ़ाने का निश्चय किया। उस लड़की को दस लाख रुपये के आय की भूमि दहेज के रूप में मिली और उसे बड़ी प्रतिष्ठा के साथ दुर्ग से सुल्तान मुहम्मद के घर लिवा लाए। १२ जमादि उल् आखिर सन् ३० को हुसेनसागर तालाब के किनारे मीर जुमला विजित प्रांत से लौटकर शाहजादे की सेवा में आकर उपस्थित हुआ। इसे बैठने की आज्ञा मिलने से यह विशेष सम्मानित हुआ और शाहजादे ने भी इसके पड़ाव पर जाकर इसकी प्रतिष्ठा विशेष बढ़ाई ७ रज्जब को शाहजादा औरंगाबाद की ओर रवाना हुआ और गुप्त रूप से मीर जुमला से मित्रता तथा पक्षपात का वचन लेकर इंदौर पडाव से उसको पुत्र के साथ बादशाही दरबार भेज दिया। इसी पड़ाव पर दरबार से आया हुआ एक फर्मान मिला, जिससे इसे मुअज्जम खाँ की पदवी तथा झंडा व डंका प्रदान किया गया था। २५ रमजान को राजधानी दिल्ली मे उक्त खाँ बादशाह की सेवा मे उपस्थित हुआ और इसे छ हजारी ६००० सवार का मंसब, दीवान आला का पद, जड़ाऊ कलमदान, पाँच लाख रुपया नगद तथा कृपाएँ मिली। मुअज्जम खाँ ने नौ टाँक तौल का बड़ा हीरा, जो २१६ सुर्ख होता है और जिसका मूल्य दो लाख सोलह सहस्र रुपया होता है, और साठ हाथी अन्य रत्नों के साथ भेंट किया, जिसका सब का मूल्य १५ लाख रुपया आँका गया। इसका पालन व शिक्षण दक्षिण देश में हुआ था इसलिए इसने पहुँचते ही उन मुकदमो को, जो निर्णय के लिए पड़े हुए थे, ठीक करने का साहस किया कि इसी वर्ष समाचार मिला कि बीजापुर का इब्राहीम आदिशाह मर गया और उसके सर्दारों ने, जो अधिकतर क्रीत दास थे, अली नामक नीच वंश के एक आदमी को, जिसे उसने पोष्य पुत्र मान लिया था, उसका उत्तराधिकारी बना दिया है। मुअज्जम खाँ ने यह बात बतलाकर उस प्रांत को विजय करने की इच्छा प्रगट की तथा उस भारी काम का भार अपने ऊपर ले लिया। अपने पुत्र महम्मद अमीर खाँ को अपना नायब वजीर बना कर दरबार मे छोड़ दिया और स्वयं अच्छे सर्दारों के साथ, जैसे महाबत खाँ, राव सत्रुसाल तथा नजाबत खाँ, औरंगाबाद शाहजादा मुहम्मद औरंजेब के पास पहुँचा। शाहजादा ने इस बडे सर्दार की सहायता से शीघ्र बीदर दुर्ग को ले लिया, जो दक्षिण के बड़े दुर्गों मे से है। सन् १०६७ हि० के

जीकदा की पहिली को कल्याण दुर्ग पर अधिकार कर लिया तथा उस ओर की बहुत सी वस्तियों में थाने बैठा दिए। इसके अनंतर सेना गुलबर्गा लेने को भेजी गई, जो बीजापुर राज्य का एक प्रसिद्ध नगर था तब आदिलशाह अपने पराजयों से आशंकित होकर एक करोड़ रुपया भेंट, कोंकण प्रांत और परेंद: दुर्ग का कुल स्वत्व देकर शरण में चला आया बादशाही आज्ञा पत्र आया कि शाहजादा औरंगाबाद लौट जाय और मुअज्जम खाँ कोकण के दुर्गों में थाने बैठाकर वहाँ का प्रवंध देखे। अभी भेंट की कुल किस्तें तथा विजित प्रांत अधिकार शाहजादे के इच्छानुसार नही हो पाया था कि शाहजहाँ की बीमारी तथा साम्राज्य के कुल कार्यों का अधिकार दाराशिकोह के हाथ में चले जाने का समाचार मिला। कुछ लोग लिखते हैं कि अभी गुलबर्गा का घेरा तथा आदिलशाहियो से युद्ध चल रहा था कि यह उपद्रव उठ खडा हुआ और गत्र् बढ गया। संक्षेपत: दाराशिकोह ने उपद्रव तथा काम विगाडने के विचार से इस चढ़ाई के कुल सहायको को दरबार बुला लिया। महावत खाँ शाहजादेसे विना विदा हुए चल दिया। निरुपाय हो शाहजादा ने उचित समझ कर ऐसे उपद्रव में जब सारी सेना में शंका फैल गई थी अपने को सन् १०६८ हि० (सन् १६५७ ई०) के आरभ में सही सलामत औरंगाबाद पहुँचाया: इसी समय किसी दोष मे मुअज्जम खाँ वजीर के पद से हटाया गया और दूसरों के समान इसने भी दरबार जाने का मार्ग पकडा।

ऐसे बडों सर्दार का, जो दूरदर्शी, सुसम्मतिदाता, ऐश्वर्यशाली और अच्छी सेना रखनेवाला था, ऐसे समय यो चले जाना नैतिक दृष्टि के विरुद्ध तथा अदूरदर्शिता मात्र थी इसलिए शाहजादे ने उसके पास संदेश भेजा कि यदि जुम्ल्तुल्मुल्क इस समय हमसे विदा होकर जाय तो राजनीतिक विचार के लिए अच्छा होगा। इसने इस कार्य से अपने को बचाकर प्रार्थना की कि सेवाकार्य में आज्ञा मानने के सिवा कोई चारा नही है दूसरी बार सुलतान मुअज्जम को इसे फँसाने के लिए भेजकर कहलाया कि वह उस स्वामिभक्त को अपना हितैषी समझता है और कुछ अत्यंत आवश्यक कार्य हैं जिन्हें सुनकर चला जाय। उक्त खाँ सुलतान के समझाने पर निश्शंक हो लौटा पर शाहजादे के एकांत गृह में पहुँचते ही कैद हो गया। कुछ का कहना है कि दरबार जाना इसके मन के अनुसार नही था और अकारण रुकना भी अनुचित था इसलिए जो कुछ हुआ वह इसी की सम्मति से हुआ था। इस चाल का यह फल हुआ कि शाहजहाँ ने शाहजादे ही का अत्याचार तथा उत्पीडन समझा और फर्मान भेजा कि वदले के दिन इसके पूछे जाने से भय कर उस बेचारे सैयद को छोड दो, वह स्वामिभक्ति ही के कार्य में लगा हुआ था। शाहजादे ने आज्ञा होने के पहले ही प्रार्थनापत्र भेजा कि उसकी चाल से शंका पैदा हुई इसलिए उसे कैद कर लिया है नही तो वह दक्खिनियो के पास फिर पहुंच जाता।

जब शाहजहाँ की बीमारी और दाराशिकोह के प्रभुत्व का समाचार चारों ओर हिंदुस्तान मे फैलकर हर एक सिर को पागल बना रहा था उस समय शाहजादा औरंगजेब ने मुअज्जम खाँ के सामान व धन को अपने काम में लगा लिया और इसके नौकरों को अपनी सेवा मे ले लिया तथा इसे दौलताबाद दुर्ग में सुरक्षित रख छोडा। इसके अनंतर वह हिंदुस्तान की ओर चल दिया। जब वह हिंदुस्तान का बादशाह बन बैठा तब मुअज्जम खाँ को उसका कुल सामान व धन लौटाकर अपना कृपापात्र बना लिया और उसे खानदेश की सूबेदारी दी। इसी वर्ष जब शाहजादा मुहम्मद शुजाय के उपद्रव को शांत करने के लिए वह दिल्ली से पूर्व की ओर बढा तब मुअज्जम खाँ को दरबार बुलाया। इसने भी शीघ्रता से यात्रा करते हुए युद्ध के दो दिन पहले कडा के पास सेवा में उपस्थित होकर अपने को सम्मानित किया। युद्ध के दिन इसका हाथी बादशाही हाथी के बगल मे खडा था। विजय के अनंतर मुअज्जम खाँ को सात हजारी ७००० सवार का मंसब और दस लाख रुपया नगद पुरस्कार मिला तथा शाहजादा मुहम्मद सुलतान के साथ मुहम्मद शुजाअ का पीछा करने भेजा गया, जो युद्ध स्थल से भाग गया था। इस कार्य मे इसने बडी प्रत्युत्पन्नमति तथा वीरता दिखलाई, जैसा कि उच्चपदस्थ सर्दारो मे होना चाहिए था। जब शुजाय ने मुंगेर को युद्धीय सामान से दृढ़कर अपना निवास स्थान बनाया तब इसने अपने उपायों से ऐसा रोब गांठा कि शुजाअ वह स्थान छोडकर अकबर नगर चला गया, जिसे अपने आराम का स्थान समझता था। मुअज्जम खाँ सीधा मार्ग छोडकर जंगल व पहाड़ से आगे बढा और उसके पीछे उसपर पहुँचकर भागने का मार्ग बन्द कर दिया। सुजाय यह समाचार पाते ही अपनी राजधानी अकबर नगर को त्यागकर अपने परिवार के साथ गंगा जी पार उतरा और बाकरपुर में बंगाल के कुल नावों को, जो उस प्रांत के युद्ध के लिए आवश्यक है, अधिकार में लाकर तथा मोर्चे बाँधकर युद्ध के लिए तैयार हो बैठा। मुअज्जम खाँ शाहजादा सुलतान मुहम्मद को अकबर नगर में शत्रु के सामने छोड़कर स्वयं नदी पार उतरने का प्रबंध करने गया। बहुत दिनो तक युद्ध मे इसने खूब वीरता दिखाई।

जब वर्षाकाल आ गया तब सब प्रयत्न रुक गए और हर एक अपने अपने स्थानों पर आराम करने लगा। सुलतान शुजाय ने धोखे से शाहजादा सुलतान मुहम्मद को अपनी पुत्री से शादी करने का लालच दिखलाया। वह मुअज्जम खाँ से कुछ उपद्रवियों के बहकाने से वैमनस्य रखने लगा था इसलिए शुजाअ के बहकावे में आकर दो तीन विशिष्ट ओछे सवारों के साथ २७ रमजान सन् ९६९ हि० को उसमे जा मिला। इस घटना से बादशाही सेना मे बड़ा उपद्रव मचा। कहते हैं कि मुअज्जम खाँ के समान भारी सर्दार वहाँ न होता तो बडी कठिनाई पड़ती। मुअज्जम खाँ मौजा सूली से, जहाँ रहकर वह शत्रु के दमन करने मे लगा हुआ

था, इस घटना के होने पर भी दृढ़ता न छोड़कर पड़ाव पर आ पहुँचा। इसने साहस तथा अनेक प्रकार के अच्छे उपायो से सब काम ठीक रखा। यह कुल प्रांत तथा नावें शत्रुओ के हाथ मे पड गई थी इसलिए सेना में बड़ा गुलगपाड़ा था और अनेक शंकाए उठ रही थी। शुजाअ ने दूसरी बार अकबर नगर पर अधिकार कर कर लिया। वर्षाऋतु के बीतने पर मुहम्मद सुल्तान को हरावल बनाकर शुजाअ ने युद्ध की तैयारी की। मुअज्जम खाँ ने फत्हजंग खाँ रुहेला को हरावल, इस्लाम खाँ बदख्शी को दाए भाग और फिदाई खाँ कोका को बाएँ भाग में रखकर भागीरथी के किनारे सेना सहित उसका सामना किया क्योंकि वह भी सुलतान मुहम्मद, शुजाय और उसके पुत्र बुलंद अख्तर के समान तीन तोरः रखता था। संध्या तक तोप, बदूक और बान की लडाई होती रही। रात्रि में दोनों सेनाएं लडाई से हाथ खीचकर अपने अपने स्थान लौट गईं। मुअज्जम खाँ ने बिहार के प्रांताध्यक्ष दाऊद खाँ कुरेशी को, जो सहायता के लिए आया था, लिखा कि टाँडा के मार्ग से शीघ्र जाकर उस पर अधिकार कर ले, जहाँ शुजाय का कुल ऐश्वर्य तथा परिवार है। निश्चय है कि यह सामाचार पाते ही उसके पाँव काँप उठेंगे। मुअज्जम खाँ ने स्वयं दिलेर खाँ की प्रतीक्षा में, जो दरबार से सहायता के लिए भेजा गया था, दो तीन दिन युद्ध बंद रखा। इसी बीच मुअज्जम खाँ के विचार के अनुसार ही शुजाय ने दाऊद खाँ का समाचार पाकर घबडाहट मे लौटने का डंका पिटवा दिया और भागीरथी के किनारेसे सूली की ओर घूमा कि गंगा पार कर टाँडा पहुँचे। मुअज्जम खाँ यही अवसर देख रहा था इसलिए पीछा करने के विचार से सवार हुआ और पंद्रह दिन सवेरे से संध्या तक दोनो पक्ष में तोप बंदूक का युद्ध चलता रहा। रात्रि मे पडावो में सब सावधानी से रहा करते थे। यहाँ तक कि सुलतान शुजाअ गंगा पार कर टाडा की ओर चल दिया। मुअज्जम खाँ ने इस्लाम खाँ को दस सहस्र सवारो के साथ नदी के इस पार का अधिकार व प्रबंध करने को अकबर नगर भेजा और शुजाअ को दमन करने के लिए चला। इसी समय शाहजादा मुहम्मद सुलतान शुजाअ की बुरी हालत तथा निर्बलता को देखकर ६ जमादिउल् आखिर को टाँडा से शिकार के बहाने सवार होकर नदी के किनारे आया और नाव में बैठकर टाँडा उतार से दुकारी उत्तर चला आया। मुअज्जम खाँ ने शाहजादा को अपने यहाँ बुलवाया और कुल सर्दारों के साथ उसका स्वागत किया। उसके लिए खेमे तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का सामान किया, जो शीघ्रता में हो सकता था और आज्ञानुसार फिदाई खाँ के साथ उसे दरबार बिदा किया।

बादशाही सेना के वीरो तथा शत्रु सैनिको में बराबर लडाइयां होती रही और हर बार बादशाही पक्ष ही की विजय होती थी इसलिए मुअज्जम खाँ एक महीने तक महमूदाबाद में ठहरा रहा और सारा साहस महानदी को पार करने तथा शत्रु को दमन करने में लगाया, जो नदी के उसपार रहकर तोपखाने तथा नावो के बल

पर दृढ़ रहकर शीघ्रता के चिन्ह प्रकट कर रहे थे। इसने अपने आराम का विचार न कर ऐसा प्रयत्न किया कि यह कार्य शीघ्र पूरा हो गया और दूसरी वर्षाऋतु न आ पाई। दैवयोग से वगलाघाट से उतार मिल गया और यह अत्यंत साहसी सर्दार ससैन्य सवार होकर नाले के किनारे पहुँचा। शत्रु के रोकने पर भी यह पार उतर गया और उसके मोर्चोपर धावाकर दिया। वहुत से साहस छोड़कर टाँडा भाग गए। निरुपाय हो शुजाअ उस वहुत दिन के मिले प्रांत बंगाल से मन हटाकर मीर-दादपुर चौकी से टाँडा आया और यहाँ से थोड़े आदमियों के साथ नाव पर सवार हो जहाँगीर नगर चला गया। मुअज्जम खाँ टाँडा पहुँचकर शुजाअ के माल को, जो लुटेरों के हाथ से बाकी वच रहा था, जब्त कर उन लुटेरो से लौटाने में प्रयत्नशील हुआ। यहाँ से पीछा करने के विचार से यह शीघ्रता मे आगे बढ़ा। शुजाअ जहाँ-गीर नगर में रखंग के राजा की सहायता की प्रतीक्षा में था पर वादशाही सेना के पास पहुँचने से डरकर आलमगीरी ३रे वर्ष के आरम्भ में ६ रमजान को तीन पुत्र व कुछ अच्छे लोगो के साथ जहाँगीर नगर से निकलकर दुर्भाग्य से रखंग की ओर गया, जो ओछे आदमियों तथा अंधकार में पड़े काफिरो का स्थान था। इसके साथ सिवा वारहा के दस सैयदो सहित सैयद आलम और वारह मुगलों सहित सैयद कुली उजवेग तथा कुछ अन्य लोगों के और कोई नही था। कुल मिलाकर चालीस आदमी से अधिक नही थे। मुअज्जम खाँ को इस भारी प्रयत्न के उपलक्ष में, जो सोलह महीने के कड़े प्रयत्नो तथा कष्टो के उठाने पर पूरा हुआ था, खानखानाँ सिपहसालार की पदवी मिली।

शाहजहाँ की वीमारी के कारण साम्राज्य की सीमाओं पर उपद्रव होने लगा था। कूच विहार के प्रेम नारायण जमीदार ने अधीनता का मार्ग छोड़कर घोड़ा घाट पर आक्रमण करने का साहस किया। आसाम के राजा जयध्वजसिंह ने भी, जो विस्तृत राज्य, अधिक सामान तथा वैभव के कारण वढ़ा चढ़ा हुआ था, अपनी सेना नदी तथा भूमि के मार्ग से कामरूप भेजकर उस पर अधिकार कर लिया, जिससे तात्पर्य हाजू व गोहाटी तथा उसके अंतर्गत के मौजो से है जो वहुत दिनों से वादशाही साम्राज्य में मिला हुआ था। यद्यपि शुजाअ की हालत अच्छी नही थी पर वह ईस उपद्रव को शात न कर सका। उन सवने साहस कर करी-बाड़ी तक, जो जहाँगीर नगर से पाँच पड़ाव पर है, अधिकार कर लिया। मुअज्जम खाँ शुजाअ का पीछा करते हुए जव जहाँगीर नगर पहुँचा तव इसे उस सीमा के उपद्रव का वृतात मिला। आसाम-नरेश सेना के रोव तथा भय में आकर प्रार्थी हुआ और अधिकृत देश से हाथ हटा लिया। खानखाना ने प्रगट मे इसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और ४ थे वर्ष १८ रवीउल् अव्वल सन् १०७२ हि० को प्रेम नारायण को दंड देने के लिए खिजिरपुर से आगे बढ़ा।

जब मुअज्जम खाँ मुगल साम्राज्य के सीमांत बरीपठ मौजा पहुँचा तब इसने मार्गप्रदर्शको की राय से दुर्गम मार्ग पकड़ा, जिसे घोर तथा भंयकर जंगलोंके कारण शत्रु-सेना के पार करने योग्य न समझकर प्रेमनरायण ने उसकी रक्षा का कुछ भी प्रबंध नही किया था। प्रतिदिन जंगलो को काटते हुए वड़े प्रयत्न तथा परिश्रम से रास्ता तै करता रहा। अंत में ७ जमादिउल् अव्वल का सेना कूचविहार पहुँच गई। कहते हैं कि यह नगर वहुत अच्छी प्रकार बसाया हुआ था, सडको पर बाग लगे हुए थे और नाग केशर तथा कचनार के पेड़ बैठाए हुए थे, जो फूल पत्तियाँ से लदे हुए थे। मुअज्जम खाँ ने एक सेना प्रेमनारायण का पीछा करने को भेजा, जो कूचबिहार से पंद्रह कोस उत्तर भूतनत पहाड की तराई को चला गया था। उस पार्वत्य स्थान के शासक धर्मराज के यहाँ शरण लेकर वह पहाड़ पर चला गया। वह पहाड इतना ठंढा है कि पैदल लोग बडी कठिनाई से उसपर चढ सकते थे। यह प्रांत उत्तर को झुकता हुआ बंगाल के पश्चिमोत्तर में है। यह पचपन कोस जरीबी लंबा और पचास कोस चौडा है। जलवायु की उत्तमता तथा पेड पौधो की अधिकता से पूर्व के देशो मे यह प्रसिद्ध है। इसमें भीतरी तथा बाहरी नवासी परगने हैं, जिनकी आय दस लाख रुपया है। यहाँ के रहनेवाले अधिकतर कूच जाति के हैं इसलिए यह कूचबिहार कहलाया। यहा के निवासियो के देवता नारायण कहलाते थे, जो यहाँ के शासको के नाम का अंश हो गया था। हिंदुस्तान के काफिरों में यहाँ के अधिकारी की अच्छी प्रतिष्ठा थी, जो इस्लाम के आने के पहिले के बड़े राजवंशों में से थे। यहाँ का सिक्का सोने का था, जिसे नारायनी कहते हैं।

खानखानाँ की इच्छा इस चढाई से आसाम पर अधिकार करने की थी इसलिए मृत अल्लहयार खाँ के पुत्र अस्फंदियार खाँ को कूचविहार का फौजदार नियत कर उसका नाम आलमगीर नगर रखा और स्वयं घोडाघाट के मार्ग से आगे बढा। जब यह ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे पहुँचा तब रंगामाटी से दो कोस पर मार्ग की कठिनाई के होते भी उसे पार कर उस बडे कार्य में लग गया और उस दुर्द्धर्ष प्रांत पर अधिकार करने में दत्तचित्त हुआ। पर्वताकार हाथियो ने दाँतों से जंगल तोड़ ताड़कर चौपट कर दिया। धनुर्धारियों तथा पैदल सैनिको ने भी मैदान पाकर खूब फुर्ती दिखलाई। जहाँ नदी के किनारे मार्ग था वहाँ हर जगह दलदल था, जिसमें आदमी, घोड़े तथा हाथी तक घुस जाते थे, परंतु उनपर वृक्षों की शाखाएँ, बाँस और घास के गट्ठे डालकर मार्ग बना लेते थे। इस प्रकार प्रतिदिन ढाई कोस रास्ता पार करते थे। जब खत्ता चौकी पहुँचे तब उसपर अधिकार कर लिया। यह नदी के किनारे पर एक पहाड है और इसके पास दूसरा पहाड़ पंचरतन नाम का है। इन दोनो पर दो दृढ़ दुर्ग बने हुए हैं। जो लोग नावों पर युद्ध को आये थे वे परास्त हो कुछ डूब गए और कुछ कैद हुए। यहाँ तक कि बादशाही प्राचीन सीमा गौहाटी

से दो कोस पर पहुँच गए। इस मौजे में बड़ा दुर्गम दुर्ग बना हुआ है। इससे सात कोस पर कजली दुर्ग के पास कजली वन नामक जंगल है, जिसमे हाथी बहुत होते हैं। इसका उल्लेख हिंदुस्तान के रात्रिचरो में आया है। गोरखा, लोना चमारी व इस्माइल जोगी के मंदिर, जो बड़े मन्दिरों मे प्रसिद्ध हैं और हिन्दी मंत्र तंत्र के लिए सम्मानित है, पहाड़ो पर बने हैं, जहाँ पहुँचने के लिए एक सहस्र सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इन सब पर भी अधिकार हो गया। वहाँ एक लाख से अधिक आसामी इकट्ठे हो गए थे पर भय तथा घबड़ाहट से भाग गये। इसके अनंतर गोहाटी तक, जहाँ से आसाम की राजधानी करगाँव एक महीने के राह पर है, अधिकार ग्रस्त काफिरो से भूमि छुड़ा ली। खानख़ानाँ यहाँ का प्रबंध ठीक कर आगे को चला।

इस जाति के युद्ध की चाल धोखा देना तथा रात्रि-आक्रमण करना है इसलिए कुल सेना रात्रि भर सतर्कता से जागती रही और शस्त्र नहीं उतारे तथा घोड़े की पीठ से जीन नही उतारा। यहाँ तक कि ब्रह्मपुत्र नदी पार कर दुर्ग सेमल. को युद्ध कर ले लिया, जो उस प्रांत का एक प्रसिद्ध दुर्ग और करगाँव से पचास कोस पर है। इसमें लगभग तीन लाख लड़ाके आसामी इकट्ठे थे, जिनमें बहुत से मारे गए। इसके अनंतर नावों से युद्ध न हो पाता था। इनमें से बहुत तीरो से मारे गए। चमदरा दुर्ग, जो सेमला दुर्ग के समान था, बिना युद्ध के विजय हो गया। इन पराजयों का हाल सुनकर आसामियो में बड़ी घबड़ाहट फैली और राजा कामरूप पर्वतों की ओर चला गया, जो करगाँव से चार दिन के रास्ते पर है और जहाँ पहुँचना अत्यंत कठिन है। ४ थे वर्ष के अंत में ६ शाबान को करगाँव पर अधिकार हो गया और बादशाही खुतबा तथा सिक्का चलने लगा।

इस सेनापति सरदार ने अपने अनुभव तथा वीरता से इतने दूरस्थित तथा दुर्भेद्य प्रांत पर, बादशाही अधिकार करा दिया, जिसमें इतने दृढ़ दुर्ग तथा विस्तृत भूमि थी कि हिंदुस्तान के सुलतानों का विजय करने का साहस नही हुआ था और जब कभी पहिले समय सेना इस देश में आई तब वह काफिरों द्वारा समाप्त कर दी गई। सुलतान मुहम्मद शाह तुगलक ने हिंदुस्तान के बहुत से प्रांतो का शासक होकर एक लाख सवार पूरे सामान के साथ इस प्रांत पर अधिकार करने भेजा था पर इस जादू के देश में वे सब ला पता हो गए। इस कार्य के उपलक्ष में खान-खानाँ को एक करोड़ दाम आय की भूमि तथा तूमान तोग झंडा मिला। यह प्रांत बंगाल से उत्तर तथा पूर्व के बीच में लंबे बल स्थित है। इसकी लंबाई दो सौ कोस जरीबी है और चौड़ाई उत्तरी पहाड़ से दक्षिण सीमा तक आठ दिन की राह गोहाटी से करगाँव पचहत्तर कोस जरीबी है और यहाँ से खुत्तन प्रांत तक, जो पीरान वैसः का निवासस्थान था और उस समय आवा कहलाता था तथा पीगू-नरेश की राजधानी थी, जो अपने को पीरान वैसः के वंश मे समझता था, पंद्रह

दिन का मार्ग था। इनमें से पांच पड़ाव कामरूप के पहाड़ों के उस पार घोर जंगल में से था। इसके उत्तर ओर खता जंगल है, जिससे होकर महाचीन जाने का मार्ग है पर साधारण लोग माचीन कहते हैं। ब्रह्मपुत्र नदी इसी ओर से आई है और कुछ सहायक नदियां, जिनमें बड़ी धुनक नदी है, इस प्रांत मे होती हुई इसमे मिलती है। जो कुछ इस नदी के उत्तर किनारे की ओर है उसे उत्तर कूल कहते हैं। इस कुल प्रांत के वालू में सोने के कण मिलते हैं और यह देश की एक आय है। कहते हैं कि वारह सहस्र मनुष्यों की यही आजीविका है और प्रत्येक प्रति वर्ष केवल एक तोला सोना राजा को देता है। आसामी लोग कोई विशिष्ट मिल्लत (धर्म) नही रखते और केवल इच्छानुसार जो कुछ पसंद आता है वही करते हैं। इस प्रांत के पुराने निवासी दो जाति के हैं—आसामी और कुलतानी। दूसरे पहिले से हर एक काम में सिवा युद्धीय कला के बढ़कर थे। जब उस प्रांत के राजा तथा सर्दार गण का काम बिगड़ गया तब उनके खास लोग स्त्री पुरुष जीवन की कुछ आवश्यक वस्तुओं के साथ तहखानो मे जा बैठे। करगांव नगर में चार फाटक हैं और हर फाटक से राजमहल तक तीन कोस की दूरी है। वास्तव में यह नगर विशाल है और वाग तथा खेतो से भरा है। हर एक मनुष्य अपने घर के आगे वाग तथा खेत निजी रखता था। दंजू या वंजू नामक नहर नगर के बीच से वहती है। इसमे वाजार साधारण है, जिसमे केवल पान की दूकानें है और किसी दूसरे वस्तु की नही दिखलाती। इसलिए इस प्रात में क्रय विक्रय विशेप नही है। यहां के निवासीगण वर्प भर के लिए काफी सामान रख लेते हैं। सिवा सर पर टोपी तथा कमर में लुंगी के और कुछ पहिरने की यहां प्रथा नही है। इस प्रांत से वाहर जाना भी इनका ध्येय नहीं है। वाहरी लोग आ सकते हैं। इसलिए इस जाति का हाल मालूम नहीं होता। हिंदुस्तानी लोग इन्हें जादूगर कहते है और यहां के राजा को सर्गी राजा कहते हैं। कहते हैं कि इनका एक पूर्वक 'मलाय आला' (आकाश का स्थान) का शासक था। जब वह इस प्रांत को उतरा तब उसे यह ऐसा हृदयग्राही लगा कि फिर आकाश को नही गया।

सक्षेपत. जब खानखानां ने वर्षा के चिह्न देखे, क्योंकि इस ओर हिंदुस्तान के अन्य सभी भागो से वर्षा पहिले आरंभ होती है, तब मथुरापुर मौजे में अधिकतर सेना के साथ, जो करगांव से साढ़े तीस कोस पर पहाड़ के नीचे है, वर्षाऋतु वहीं व्यतीत करने की इच्छा से जाकर पडाव डाला। उसके चारो ओर रक्षा के लिए थाने नियत कर दिए तथा राजा और उसके सर्दारों को दमन करना बरसात के बाद के लिए छोड़ दिया। जब वर्षाऋतु आ पहुँचा तब सारी जमीन जल मे डूब गई। उपद्रवी आसामियों ने, जो स्थान पर छिपे हुए अवसर देख रहे थे, साहस पकड़कर हर ओर से हजूम किया। मुसलान सेना में आक्रमण तथा युद्ध की शक्ति नही थी इससे हर थाने पर रात्रि-आक्रमण हुए और सिवा करगांव तथा मथुरापुर

के और कुछ बादशाही सेना के हाथ में नहीं रह गया। जलवायु की खराबी के कारण महामारी फैल गई। झुंड के झुंड लोग हर ओर मरने लगे। अन्न के आने-जाने का मार्ग टूट जाने से बादशाही सेना मे मरने से बढकर बुरी हालत हो गई। जब रबीउल् अव्वल के अंत मे जमीन निकली तब मुसलमानी सेना ने चारो ओर आक्रमण कर मारे हुए लोगों के ढेर लगा दिए। राजा फिर पहाडो में जाकर सधि की बात करने लगा। मुअज्जम खाँ ने उचित न समझकर उसकी बात पर ध्यान नही दिया और कामरूप की ओर लौटा। इसी समय उक्त रोग ने सेनापति को घर दबाया जिससे सर्दारों तथा सैनिको में गडवड़ी मची कि कहीं सरदार का काम समाप्त न हो जाय और सेना बिना सेनापति के नष्ट हो जाय। या इस काम के ठीक होने के पहिले वर्षाऋतु आ जाय और फिर वही कठिनाइयाँ उठ खडी हो। यहाँ तक वे तैयार हो गए कि यदि खानखानाँ राजा को दमन करने के लिए वर्षाऋतु वही व्यतीत करने की इच्छा रखता हो तो वे विद्रोह कर बंगाल लौट जायँ। जब सर्दार को इसकी सूचना मिली तब इस मानसिक कष्ट से उसका शारीरिक रोग बढ गया। यद्यपि यह एक पडाव आगे बढा कि शत्रु जोर न पकड़ें पर संधि करना तथा लौटना निश्चय कर लिया। इस कारण दिलेर खाँ की मध्यस्थता में, जिससे राजा ने संधि की बात की थी, यह बात तै पाई कि राजा अपनी पुत्री या राजा पयाम की पुत्री सहित, जो उसका संबंधी था, बीस सहस्र तोला सोना, एक लाख अस्सी हजार तोला चाँदी और बीस हाथी भेंट तथा पंद्रह हाथी खानखानाँ के लिए व पाँच हाथी दिलेर खाँ के लिए भेजे। एक साल के भीतर तीन लाख तोला चाँदी तथा नब्बे हाथी सरकार में दाखिल करे। इसके सिवा प्रति वर्ष बीस हाथी कर दिया करे। यह सब पूरा वसूल होने तक एक पुत्र तथा तीन सर्दार ओल में बंगाल में रहे। दरंग प्रांत जो एक ओर गौहाटी तक है और उत्तर कूल में है तथा दक्षिण कूल से बेलतली बादशाही साम्राज्य में मिला लिया जाय। जब राजा ने इस निश्चय के अनुसार कार्य किया तब खानखानाँ ५ वें वर्ष में ८ जमादिउल्अव्वल को कामरूप के पहाड़ी स्थान धना से कूच कर बंगाल की ओर लौटा। मार्ग में बादशाही साम्राज्य में नए अधिकृत प्रांत का प्रबंध भी किया। कुछ जड़ी की दवाओं के उपयोग से दमा तथा हृदय की धड़कन भी बढ़ गई तब निरुपाय हो कजली से कूच कर गौहाटी में पड़ाव डाला। रशीद खाँ को कामरूप का फौजदार नियत कर तथा असकर खाँ को अधिकतर सेना के साथ कूच विहार के भूम्याधिकारी प्रेमनारायण को दमन करने के लिए भेजकर, जो फिर उपद्रव कर रहा था, स्वयं खिजिरपुर को चला। ६ ठे वर्ष के आरंभ में २ रमजान सन् १०७३ हि० (१ अप्रैल सन् १६६३ ई०) को खिजिरपुर से दो कोस पर इसकी मृत्यु हो गई।

मीर जुमला वैभवशाली सर्दार तथा शाहजादो के समान उच्चपदस्थ था। अपने समय के सर्दारो तथा अमीरों मे अपने सुव्यवहार, उदारता, दूरदर्शिता, बुद्धिमानी, वीरता तथा कर्मशीलता मे अपने समय का एक तथा अद्वितीय था। चढाई तथा सेना संचालन मे कोई इसके बराबर नही था। इसने अपना थोडा ही समय हिंदुस्तान मे व्यतीत किया था इसलिए इसके कार्यो का चिह्न या कम प्रकट हुआ। तिलंगाना के कस्बों में इसने बहुत स्मारक छोड़े हैं. जिनसे इसका नाम रहेगा। हैदराबाद नगर में इसके नाम से तालाब, बाग और हवेली प्रसिद्ध हैं।

•

४८५. मीर जुम्ला शहरिस्तानी, मीर मुहम्मद अमीन

यह इस्फहान के शहरिस्तानी सैयदों में एक सर्दार था। इसका बड़ा भाई मीर जलालुद्दीन हुसेन उपनाम सलाई योग्य विद्वान था और शाह अब्बास सफवी प्रथम का कृपापात्र होकर सदर नियत हुआ, जो ईरान के बड़े पदों में से है। जब वह मर गया तब उसका भतीजा मिर्जा रजी, जो मिर्जा तकी का पुत्र था, अपने चाचा के स्थान पर उस पद पर नियत हुआ। अपनी योग्यता तथा सौभाग्य से यह बादशाह का पार्श्ववर्ती हो गया। उस ऐश्वर्यशाली शाह के निजी दानों के अध्यक्ष का, जो बारह इमामों के किए गए थे, और मुहदारी का पद सदर के पद के सिवा इसे मिल गए। सन् १०२६ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र मदरुद्दीन मुहम्मद को, जो शाह का दौहित्र तथा दूध पीता बच्चा था, सदर नियत कर उस मृत के चचेरे भाई मिर्जा रफीअ को उसका प्रतिनिधि बना दिया। अंत में वह भी स्थायी सदर नियुक्त हो गया।

संक्षेपतः मीर मुहम्मद अमीन सन् १०१३ हि० (सन् १६०५ ई०) में एराक से दक्षिण आकर मुर्तजा मुमालिक मीर मोमिन अस्राबादी द्वारा तिलंग के सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह की सेवा मे भर्ती हो गया। मीर मोमिन मीर फर्खुद्दीन समाकी का भांजा था और सम्मति देने में बड़ी योग्यता रखता था। ईरान में इसने शाह तहमास्प सफवी के पुत्र सुलतान हैदर मिर्जा से शिक्षा पाई थी। शाह की मृत्यु, मिर्जा हैदर के मारे जाने तथा शाह इस्माइल द्वितीय का अधिकार होने पर यह वहाँ न ठहर सका और दक्षिण चला आया। उस देश के सभी सुलतानो के धर्म में एकता रखने के कारण मुहम्मद कुली कुतुबशाह का सेवक हो जाने पर यह उसका पेशवा तथा वकील हो गया तथा कई वर्षो तक उसके राज्य का प्रधान रहा। मीर मुहम्मद अमीन ने अपने सौभाग्य के जोर से मुहम्मद कुली के मिजाज में, जो सदा

से राज्य के प्रबंध तथा कोष विभागों के कोई भी कार्य नहीं देखता था, ऐसा स्थान कर लिया था कि इसे मीर जुमला की पदवी देकर कुल कार्य इसी पर छोड दिया। मुहम्मद कुली की मृत्यु पर इसे पुत्र न होने से इसका भतीजा सुलतान मुहम्मद कुतुवशाह गद्दी पर वैठा यह अपनी योग्यता तव बुद्धिमानी से राज्यकार्य देखने लगा इससे मीर से उससे नहीं पटी। सुलतान मुहम्मद ने मीर के धन आदि का कुछ भी लोभ न कर इसे अच्छी प्रकार बिदा कर दिया। मीर गोलकुंडा से बीजापुर पहुँचा पर आदिलशाह से भी उसका मन नही मिला। निरुपाय हो समुद्र से स्वदेश पहुँच-कर एराक में शाह अब्बास सफवी की सेवा में उपस्थित हुआ। मिर्जा रफीअ सदर के कारण, जिसका यह भतीजा होता था, यह शाह का कृपापात्र हुआ। इसने कई वार योग्य भेंट शाह को दी और चार वर्ष तक वहाँ सम्मान के साथ कालयापन किया। मीर चाहता था कि शाह की सेवा में ऊँचा मंसव प्राप्त करे और शाह चाहता था कि शाह कि मौखिक कृपा दिखलाकर जो वहुमूल्य वस्तु इसने इस बीच इकट्ठी की है वह ले लेवे। जव मीर को यह ज्ञात हो गया तब उसने जहाँगीर के सेवको से प्रार्थना की। वहुतों ने नासमझी से ठीक हाल न जानकर जहाँगीर की सेवा मे एक को सौ कर कह डाला। उस वडे वादशाह ने अपने हाथ से मीर को वुलाने के लिए फर्मान भेज दिया। यह इस्फहान से भागकर १३ वे वर्ष सन् १०२७ हि० (सन् १६१८ ई०) में सेवा में पहुँचा और इसे ढाई हजारी २०० सवार का मंसव तथा अर्ज मुकर्रर का पद मिला। १५ वे वर्ष में इरादत खाँ के स्थान पर यह मीर सामान नियत हुआ।

जब शाहजहाँ बादशाह हुआ तब भी पुरानी सेवा के कारण यह मीर सामान के पद पर नियत रहा। ८ वें वर्ष इस्लाम खाँ के स्थान पर मीर बख्शी नियत हुआ और इसे पाँच हजारी २००० सवार का मंसब मिला। १० रबीउल् आखिर स० १०४७ हि० (सन् १६३७ ई०) को लकवा की बीमारी से मर गया। मीर यद्यपि सैयदपन तथा वंश की उच्चता रखता था पर व्यवहार उसका अच्छा नही था। यह ओछे स्वभाव का तथा चिडचिड़ा था। इमामिया धर्म का कट्टर अनुयायी था। एक दिन शाहजहाँ के दरबार में धर्म पर वात होने लगी। मीर ने तेजी से कुछ कहा, जिसपर बादशाह ने कहा कि मीर वास्तव में इस्फहानी है क्योकि वहाँ के लोग उद्दंडता के लिए प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि ४ थे वर्ष मे बादशाह बुर्हानपुर में थे और वर्षा के अधिक्य के कारण अन्न इतना महँगा हो गया था कि रोटी के लिए लोग प्राण देने को तैयार थे पर कोई खरीदता नही था। शरीफ रोटी पर विकता था पर कोई नही लेता था। बादशाही मुत्सद्दियो तथा सर्दारों ने आज्ञानुसार लंगर-खाने हर नगर मे खोल रखे थे, उस समय मीर जुमला ने उदारता मे नाम पैदा किया। बुर्हानपुर में दिनरात भोजन का लंगर खुला रखता था तथा नगद और अन्न

भी लोगों को खैरात में देता था। यद्यपि उस समय भी ईरान के लोग कहते थे कि मीर की दया निजी नहीं है पर यह व्यंग्य उनके हृदयस्थ भाव का है। नही तो यह काम प्रशंसा के योग्य तथा परोपकार का है।

इस्फहान ईरान के बड़े नगरों मे से है। शैर—

इस्फहान को आधा संसार कहते हैं। आधा गुण इस्फहान को कहते हैं।

'असह' के अनुसार यह चौथा देश है पर कुछ लोग इसकी लंबाई चौडाई के के कारण इसे तीसरा कहत है। यह एराक का पुराना नगर है। पहिले यहूदी लोग यहाँ पढ़ते थे। इसराइल के अनुयायी लोग भाग्य से भाग कर संसार मे फैल गए। जब यहाँ की मिट्टी को पवित्र स्थान की मिट्टी के समान पाय। तव नगर बसाकर यहूदियो पर नाम रखा। कुछ लोग साम के पुत्र इस्फहान से इसका संबंध बतलाते है। कुछ लोग इसे सिकंदर का बसाया नगर मानते हैं। इब्नदरीद कहता है कि इस्फहान संयुक्त शब्द है, इस्फ का अर्थ नगर तथा हान का अर्थ सवारों है। फर्हंग रशीदी कहता है कि इस्पाह व इस्पह से सेना व कुत्ता और इसी प्रकार सिपाह व सिपह हुआ। इसी शब्द से व्युत्पन्न इस्पाहान है, जहाँ ईरान के सिपाहियों का सर्वदा निवास रहा है। वहाँ कुत्ते भी बहुत थे। इसी से तारीख इस्फहान का लेखक अली विन हम्जा कहता है कि पहिला और अतिम अक्षर 'अलिफ' व 'नून' निस्वत के लिए है। रशीदी की वात समाप्त हुई। इस्फहान इस्पहान का अरबी रूप है। कहते हैं कि आरंभ में चार ग्राम थे—किरान, कोशक, जूयार: और दश्त। जब कैकुबाद ने इसे राजधानी वनाया तव यह वड़ा नगर हो गया और वे ग्राम गालियाँ हो गईं। जिंद रोद (नहर) इसके नीचे बहती है, जो जाइंद: रोद के नाम से प्रसिद्ध है और कहते हैं कि एक सहस्र नहरें इससे निकली हैं। शाह अब्बास प्रथम ने अपने राज्यकाल में इसे राजधानी बनाया और कुछ बड़े प्रासाद तथा सुहावने बाग बनवाकर उस नगर के बसाने बढाने मे प्रयत्नशील हुआ कि यह नया मालूम हो। यह सफवी राजवंश के अंत तक राजधानी रहा अफगानो के उपद्रव के समय इस नगर मे खराबी आई। यहाँ की जलवायु अच्छी है। यहाँ के आदमी बहुत सुंदर तथा प्रसन्न चित्त होते है। यहाँ से बहुत से विद्वान तथा गुणी और सिद्धपुरुष निकले हैं। पहिले यहाँ के लोग शाफेई धर्म के माननेवाले थे पर अब शीआ है। परंतु ये कठोर तथा उद्दंड होते है। कहा जाता है कि इस्फहानी कंजूसी से खाली नही होता कहा जाता है कि साहब बिन एबाद एकता है कि जब मैं इस्फहान पहुँचता हूँ तब मै अपने मे कंजूसी पाता हूँ। इस नगर तथा यहाँ के रहनेवालो के लिए घंटा हिलाया गया है। शैर—

सभी वस्तुएं भली हैं पर यह कि इस्फहानी को दर्द नही होता।

४८६. मीर मुइज्जुलमुल्क

यह मशहद के सर्दारों में से था और मूसवी सैयद था। अकबर के राज्यकाल में तीन हजारी मंसबदारों मे भर्ती होकर बादशाही सेवा अच्छी प्रकार करते हुए बराबरवालों से बढ़ गया। १० वें वर्ष में सन् ९७३ हि० में जब बादशाह खानजमाँ को दंड देने के लिए जौनपुर चले तब उसने अपने भाई बहादुर खाँ को सिकंदर खाँ के साथ अपने से अलग कर सवार प्रांत में भेजा कि वहाँ लूट मार कर उपद्रव मचावे। बादशाह ने मीर मुइज्जुलमुल्क के अधीन कुछ सर्दारों को उन्हें दंड देने भेजा। उपद्रवियों ने इस सेना के आते आते साहस छोड़कर कपट का मार्ग ग्रहण किया और संदेश भेजा कि ऐसी कोई सूरत नहीं है कि बादश ही सेना का सामना करने को तैयार हो। प्रार्थना यह है कि दोष के क्षमा कराने का प्रबंध करें जो भारी हाथी अधिकार में आए हैं उन्हें दरबार भेज देते हैं। ज्योंही हम लोगो के दोष क्षमा कर दिए जाएँगे त्यों ही दरबार में उपस्थित होकर सिज्दः करेंगे। मीर ने उत्तर में लिखा कि तुम्हारे दोष इस प्रकार के नहीं है कि सिवा तलवार के पानी से काटे हुए क्षमा योग्य हो जायें। बहादुर खाँ ने ऐसी बात सुनकर भी शांति से कहलाया कि यदि उचित समझें तो हमलोग मिलकर आपस में कुछ बातचीत कर लें। इस पर मीर कुछ आदमियों के साथ पड़ाव से बाहर आया। इस ओर से बहादुर खाँ भी कुछ लोगों के साथ आगे आया और दोनों ओर से बहुत बातचीत भी हुई।

इन उपद्रवियों के मुख से झुठाई के चिह्न प्रगट हो रहे थे इसलिए संधि न हो सकी। बादशाह अकबर ने यह वृत्तांत सुनकर लश्कर खाँ और राजा टोडरमल को अन्य सेना भेजते हुए आज्ञा दी कि संधि हो या युद्ध, जो समय पर उचित समझें वही करे। इन लोगो ने मीर मुइज्जुलमुल्क के पास पहुँचते ही विद्रोहियों से कहला भेजा कि जो कुछ तुम लोगों ने सेवा तथा नम्रता के संबंध में कहा है उसमें यदि सचाई है तो विश्वास के साथ दरबार में उपस्थित हो जाओ और नहीं तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। उनमें विश्वास नहीं था अतः मार्ग पर नहीं आए। मीर का युद्ध पर दृढ़ विश्वास था और अपने साहस के घमंड से भरा हुआ था तथा यह सुनकर भी कि खानजमाँ दूसरों की मध्यस्थता में अपने दोष क्षमा करा चुका है, इसने सेना का व्यूह सजा कर खैराबाद के पास शत्रुओं पर आक्रमण कर दिया। सिकंदर खाँ उजबक का भतीजा मुहम्मद यार; जो इस बलवे का अगुआ था, बादशाही सेना के आक्रमण में मारा गया। सिकंदर खाँ चुनी हुई सेना के साथ उसके पीछे-पीछे युद्ध के लिए तैयार था पर पीठ दिखाकर भाग गया। विजयी सेना सिकंदर के भागने को युद्ध का अंत समझकर लूटमार के लिए अस्त व्यस्त हो

गई। बहादुर खाँ जो इसी घात में बैठा था, इसी समय बाएँ भाग की सेना के साथ पहुँचकर युद्ध करने लगा। शाह विदाग खाँ घोड़े से अलग होकर शत्रु के हाथ पकडा गया और एक झुंड साहस छोड़कर शत्रु के पास पहुँच गया। बहादुर खाँ इस सेना को हटाकर दूसरे झुंड पर जा पड़ा और वे बिना युद्ध किए ही भाग खड़े हुए। कुछ सैनिक झगड़े तथा निमक हरामी से अलग हो गए। इन झगड़ालुओं की बुराई तथा दुर्भाग्य और घमंड से हारी हुई सेना के सर्दार को पराजय प्राप्त हुई। राजा टोडरमल अन्य सर्दारों के साथ एकत्र होकर मैदान मे डटे रहे पर सेना के अस्त-व्यस्त हो जाने के कारण कुछ कार्य न हो सका। इसके अनंतर बिहार पर बादशाही अधिकार हो जाने पर मीर को परगना अरब तथा उसके अंतर्गत की पास की जमीन जागीर में मिली। २४ वें वर्ष में विहार के सरदारगण ने, जिस उपद्रव का मुखिया पटवा का जागीरदार मासूम खाँ काबुली था, बदनीयती तथा मूर्खता से विद्रोह का झंडा खडा किया और मीर मुइज्जुल्मुल्क को उसके छोटे भाई मीर अली अकबर के साथ अपनी बातो में बहकाकर उपद्रव करने लगे। पर ये दोनों भाई कुछ दिन उन बलवाइयो का साथ देकर अलग हो गए। मीर मुइज्जुल्मुल्क ने जौनपुर पहुँचकर विद्रोह किया और बहुत से अदूरदर्शी समय देखनेवालों को इकट्ठा कर लिया। इस कारण २५ वें वर्ष सन् ९८८ हि० मे दरबार से मानिकपुर के जागीरदार असद खाँ तुर्कमान को आदेश मिला कि उस सीमा पर शीघ्र जाकर उन उपद्रवियों को अन्य बलवाइयो के साथ, जो उससे मिल गए हैं, दरबार में लिवा लावे। उसने आज्ञानुसार उन सबको हाथ में लाकर नदी से बादशाह के यहाँ भेज दिया। इटावा नगर के पास मीर की नाव जमुना नदी में डूब गई।

•

४८७. मीर मुर्तजा सब्जवारी

यह सब्जवार प्रांत का एक सैयद तथा दक्षिण का एक सर्दार था। आरंभ में यह बीजापुर के सुलतान आदिलशाह का सेवक हुआ। बुलाने पर यह अहमदनगर के मुर्तजा निजाम शाह के यहाँ जाकर बरार का सेनापति हुआ। जब शाह कुली सलाबत खाँ चरकिस फिर निजाम शाह का वकील हुआ तब सैयद मुर्तजा अमीरुल् उमरा नियुक्त होकर आदिलशाह का राज्य लूटने के लिए भेजा गया। इस लूट मार में साहस तथा वीरता से इसने नाम कमाया। इसके अनंतर जब निजाम शाह पागलपन के कारण एकांत में रहने लगा और पत्र लेखन से मेल रखना निश्चित हुआ तब सलाबत खाँ ने कुल राजकार्य दृढ़ता से अपने हाथ में ले लिया। उसके

तथा मीर के बीच में मनोमालिन्य आ गया और वह बरार के जागीरदारों को उखाडने में लगा। मीर ने खुदावंद खाँ हब्शी, जमशेद खाँ शीराजी तथा बरार के अन्य जागीरदारों के साथ सन् ९९२ हि० में तैयारी से अहमद नगर के पास पहुँच कर सेना सहित पडाव डाल दिया। सलावत खाँ मुर्तजा निजाम शाह से दूसरी प्रकार का बर्ताव कर शाहजादा मीरान हुसेन के साथ युद्ध को आया। एकाएक बरार की सेना परास्त हो गई। मीर बहुत सा माल खोकर तथा उस प्रात में रहना अशक्य देखकर साथियों के साथ अकबर बादशाह के यहाँ चला आया। सेवा में पहुँचने पर हजारी मंसब तथा जागीर पाकर सम्मानित हुआ और दक्षिण की चढ़ाई मे शाहजादा मुराद के साथ रहकर इसने बहुत प्रयत्न किया। जब संधि होने पर अहमद नगर से लौ॰ तब शाहजादे ने सम्मति के लिए जलसा किया। बड़े-बड़े सर्दार विजित प्रांत की रक्षा करने से हट गए तब मुहम्मद सादिक ने सीमाओं की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया तथा मेहकर मे ठहरा। मीर मुर्तजा बस्तियों की रक्षा का भार लेकर एलिचपुर में रहने लगा। इसके निवासस्थान के पास होने से इसने धूर्तता से गाविलगढ़ पर अधिकार कर लिया, जो बरार प्रात का सबसे बड़ा दुर्ग है और इस प्रांत के शासको का सदा निवास स्थान रहा। यह एलिचपुर से दो कोस पर स्थित है तथा यह प्रांत बादशाही साम्राज्य से मिला हुआ था और बादशाही सेनापतिगण इस पर कभी विजय प्राप्त न कर सके थे। इसने केवल कुछ भय तथा आशा दिखलाकर यह कार्य कर लिया। वजीहुद्दीन तथा विश्वास राव दुर्ग के रक्षको ने रसद की कमी से इसकी बातें स्वीकार कर सन् १००७ हि० (सन् १५९९ ई०) ४३वें वर्ष में कुंजी सौंप दी और मंसब तथा जागीर पाकर सेवा में चले आए। इसके बाद मीर ने अहमद नगर दुर्ग के विजय में शाहजादा सुलतान दानियाल के साथ रहकर अच्छी सेवा की। इस विजय के अनंतर बुर्हानपुर में इसका मंसब बढ़ा, झंडा तथा डंका पाया और बसी हुई जागीर भी वेतन में मिली।

•

४८८. मीर मुहम्मद खाँ खानकलाँ

यह शम्सुद्दीन मुहम्मद खाँ अतगा का बड़ा भाई था। यह वीरता तथा उदारता में अद्वितीय था। मिर्जा कामराँ तथा हुमायूँ की सेवा में इसने अच्छे कार्य किए और अकबर के राज्यकाल मे भी उसी प्रकार अच्छी सेवा की। यह बहुत दिनो तक पंजाब का प्रांताध्यक्ष रहा। उस प्रांत के अधिकतर महाल अतगा खेल

को मिले थे, जिनमे तात्पर्य अतगा खाँ के भाइयो, पुत्रों तथा संबंधियों से है। गक्खर प्रांत पर अधिकार करने, सुलतान आदम को दमन करने तथा वहाँ के शासन पर कमाल खाँ को अधिष्ठित करने में खानकलाँ ने अच्छा प्रयत्न किया और भाइयों के साथ वीरता तथा साहस के चिह्न प्रगट किए। अकबर के सौभाग्य से इसे ऐसी विजये प्राप्त हुई कि दिल्ली के पुराने सुलतान उनकी इच्छा करते ही रह गए। ९ वें वर्ष मे अकबर के सौतेले भाई काबुल के शासक मिर्जा मुहम्मद हकीम ने बदख्शाँ के शासक मिर्जा सुलेमान के अत्याचार तथा अन्याय से दुखी होकर अकबर के पास सहायता के लिए प्रार्थनापत्र सिंध नदी से भेजा। बादशाह ने खानकलाँ को पंजाब के सर्दारो के साथ मिर्जा की सहायता के लिए नियत किया और आज्ञा दी कि सर्दारगण मिर्जा सुलेमान के अधिकार को काबुल प्रांत से हटाकर मिर्जा मुहम्मद हकीम को खानकलाँ के छोटे भाई कुतुबुद्दीन खाँ की अभिभावकता में उस प्रांत मे दृढता से स्थापित कर लौट आवे। इसके अनंतर जब खानकलाँ पंजाब की सेना के साथ मिर्जा की सहायता को काबुल पहुँचा तब मिर्जा सुलेमान घेरा उठाकर बदख्शाँ को चला गया। मिर्जा मुहम्मद हकीम इस सफलता तथा इच्छापूर्ति से बादशाही सर्दारो के साथ काबुल मे गया। खानकलाँ मिर्जा की अभिभावकता तथा उस प्रांत का कार्य स्वय करना उचित समझकर काबुल मे ठहर गया और कुतुबुद्दीन खाँ को दूसरे सर्दारों के साथ हिंदुस्तान विदा कर दिया। अवस्था की कमी के कारण मिर्जा अनुभव न रखने से बराबर काबुल के उपद्रवियों की व्यर्थ की बाते सुनता था, जो कुस्वभाव से विद्रोह मचाना चाहते थे। खानकलाँ अपने सुव्यवहार तथा स्वभाव की कडाई के लिए प्रसिद्ध था इसलिए उदारता की ओर नही जाता था। थोडी सी बात पर इसका मिजाज बदल जाता था और काम बिगड जाता था। इसलिए मिर्जा तथा काबुलियों से इसकी नही पटी। यद्यपि मिर्जा मुहम्मद हकीम से अपने मन की बात प्रगट कर देता था पर बहुत से बड़े कार्य बिना खानकलाँ की सम्मति के कर डालता था। यहाँ तक की अपनी बहिन का, जो पहिले शाह अबुल्मआली को ब्याही थी, ख्वाजा हसन नक्शबंदी से, जो काबुल मे रहता था, खानकलाँ से बिना राय लिए संबंध कर दिया। ऐसे ऊँचे संबंध के कारण सम्मानित होने पर मिर्जा के कार्यो को उसने स्वयं अपने हाथ में ले लिया। खानकलाँ उद्दंड प्रकृति का होते भी गंभीर तथा दूरदर्शी था और उसने समझ लिया कि ख्वाजा को अंत में बुरा फल मिलेगा। दूरदर्शिता से एक रात्रि में, जिसमे कोई उसे न रोके, काबुल से कूच कर हिंदुस्तान चल दिया और लाहौर पहुँचकर आराम से रहने लगा।

भाषा तत्ववेत्ताओ तथा राजनीतिज्ञो ने बादशाही को बागबानी से संबद्ध दिया है। अर्थात् जिस प्रकार माली वृक्षो से उद्यान की शोभा बढाने के लिए वृक्ष को

एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान मे बैठाता है, झुंड को पसंद नहीं करता, आवश्यकतानुसार सीचता है, उचित समय तक पालन पोषण करने में प्रयत्न करता है, खराब वृक्षो को उखाड डालता है, अनुचित रूप से बढी हुई शाखाओं को काट डालता है, बेकार झंखाट को निकाल डालता है तथा एक वृक्ष का कलम दूसरे में लगाता है और इस प्रकार अनेक प्रकार के फल व मेवे तथा अनेक रंग के फूल पैदा करता है, आवश्यकता पडने पर छाया मिलती है और इसी प्रकार के और भी लाभ होते हैं, जिनका वनस्पति शास्त्र मे वर्णन है। इसी प्रकार दूरदर्शी बादशाह गण भी नियम, विधान तथा दंड से सेवकों पर कृपा करते हुए शासन करते रहते हैं और आज्ञा का झंडा फहराते है। जब कभी कोई झुंड एक मत तथा एक दिल होकर एकत्र होता है और झुंड की अधिकता तथा भीड़-भाड़ प्रगट होती है तो पहिले कुछ अपने को ठीक करने तथा बाद को उस झुंड को देश की प्रजा के आराम का प्रबंध करने को कहकर अस्त व्यस्त करते हैं। कभी कोई कठोर कार्य उनसे नही प्रगट होता और इस अस्तव्यस्तता को सबकी सफलता समझते है। संसार के मर्दमारनी मदिरा के उपद्रव से तथा होश को नष्ट करनेवाले मदिरालय के आश्रितों को विद्रोह से क्या शांति नही मिल सकती। विशेषकर उस समय जब उपद्रवियो, बात बनानेवालो तथा बलवाइयो का झुंड इकट्ठा हो जावे और मूल ही मे असतर्कता हो गई हो।

उक्त कारणो मे अतगा खेल के अच्छे सर्दारो को जो बहुत समय से पंजाब में एकत्र होकर वहाँ का प्रबंध देख रहे थे, हटा कर दरबार बुला लिया। सन् ९७९ हि० में राजधानी आगरा में ये लोग सेवा में उपस्थित हुए और हर एक को नई जागीर मिली। हिंदुस्तान के अच्छे प्रांतो में से सरकार संभल मीर मुहम्मद खाँ को जागीर में मिला। नागौर का जागीरदार हुसेन कुली खाँ जुल्कद्र पंजाब का शासक नियत हुआ और उसके स्थान पर उस विस्तृत प्रांत का खानकलाँ अध्यक्ष बनाया गया। १७ वें वर्ष मे जब बादशाह अजमेर में पहुंचे और गुजरात के विजय का विचार दृढ हुआ तब खानकलाँ बहुत से सर्दारों के साथ अग्गल के रूप में उस प्रांत को भेजा गया। जिस समय उक्त खाँ सिरोही के पास भद्रार्जुन कस्बे मे पहुँचा तब राव मानसिंह देवडा, जो वहाँ का सर्दार था, हट गया और राजदूतो के रूप मे कुछ राजपूतो को भेजकर अधीनता स्वीकार करा ली। जब ये खानकलाँ से आकर मिले तब विदा होने के समय हिंदुस्तान की चालपर हर एक को बुलाकर इसने पान दिया और विदा किया। इन साहसियो में से एक ने खानकलाँ की हँसुली की हड्डी के नीचे इतनी जोर से छुरा मारा कि उसका सिरा तीन इंच दूसरी ओर पखे से बाहर निकल आया। अन्य-लोगों ने उन राजपूत तथा उनके साथियो को मार डाला। यद्यपि घाव गहरा था पर ईश्वरी कृपा से पंद्रह दिनों में अच्छा हो गया।

जब गुजरात प्रांत उसी वर्ष अकबर के अधिकार में चला आया तब खानकलाँ सरकार पत्तन का अध्यक्ष नियत हुआ, जो नहरवाला नाम का प्राचीन नगर है और पहले उस प्रांत की राजधानी थी। २० वें वर्ष सन् ९८३ हि० में, सन् १५७६ ई० में इसकी मृत्यु हो गई। यह गुणी पुरुष था। यह तुर्की तथा फारसी में कविता करता था। इसने एक दीवान तैयार किया, जिसमे कसीदे तथा गजल भी हैं। इसका उपनाम 'गजनवी' था। यह गानविद्या मे भी कुशल था। कहते हैं कि कभी इसका दरबार विद्वानों तथा कवियों से खाली न रहता। रंगीन बातें तथा चित्ताकर्षक गानों से शौकीनों को बहुत आनंद तथा प्रसन्नता होती थी। उसके एक शैर का अनुवाद इस प्रकार है—

मेरी अवस्था की प्राप्ति यौवन मे नादानी में बीत गई।
जो कुछ बाकी था वह भी परेशानी मे बीत गया॥
सिवा आँखों के कोई दूसरा पानी नही देता।
सिवा प्रातः समीर की आह के मेरा
कोई साथी काह खीचने में नही है॥

इसका पुत्र फाजिल खाँ एक हजारी मंसबदार था। मिर्जा अजीज के घिर जाने के समय यह अहमदाबाद मे बहुत प्रयत्न करते हुए मर गया, जहाँ प्रतिदिन वीर सैनिकगण बाहर निकलकर युद्ध किया करते थे। दूसरा पुत्र फर्रुख खाँ था जो अकबर के ४० वें वर्ष में पाँच सदी मंसब तक पहुँचा था।

●

४८६. मीर सैयद जलाल सदर

यह मीर सैयद मुहम्मद बुखारी रिजवी का वास्तविक पुत्र था, जिसका पाँच संबंध शाहआलम तक पहुँचता था, जो रसूलाबाद स्थान में अहमदाबाद में गड़ा हुआ है। २० जमादिउल्आखिर सन् ८१७ हि० को यह पैदा हुआ तथा ८८० हि० मे मर गया। इसने अपने पिता कुतुबआलम से शिक्षा पाई। यह सैयद जलाल मखदूम जहाँनियाँ का पौत्र था। ओछा के शासक की शत्रुता से पिता तथा अपने मुर्शिद शाह महमूद की आज्ञा से सुलतान महमूद के समय, जिसने गुजरात के शासक सुलतान मुजफ्फर के पुत्र से संबंध था, इस प्रांत में आकर अहमदाबाद से तीन कोस पर तबोह कस्बे मे रहने लगा। सन् ८५७ हि० में यह मर गया। मीर सैयद मुहम्मद ने शाह आलम की सज्जादः नशीनी (महंती) मे बड़प्पन प्राप्त किया और फकीरी तथा संतोष में अपना जोड़ नही रखता था। इसने कुरान का अनुवाद

अच्छा किया था। जब जहाँगीर गुजरात से समुद्र की सैर को खंभात की ओर चला तब मीर बड़े सम्मान से साथ गया था। शाहजहाँ ने दो बार उस बड़े सैयद का दर्शन किया था। पहिली बार शाहजादगी के समय अहमदाबाद में और दूसरी बार जूनेर से राजधानी जाते समय किया था। यह अपनी उत्पत्ति की तारीख में इस मिसरे से प्रसिद्ध है—मिसरा—'मन व दस्त व दामाने अल् रसूल' (मैं व हाथ व दामन रसूल का)। कहते हैं कि सैयद तथा उसके पूर्वज का धर्म इमामिया था। सन् १०४५ हि० में ८ वें वर्ष शाहजहाँनी में यह मरा। यह शाह आलम के रौजा के पश्चिम फाटक के पास के गुंबद में गाड़ा गया।

मीर सैयद जलाल स्वरूप के सौंदर्य तथा स्वभाव की अच्छाई से विभूषित था। यह विद्वत्ता तथा बुद्धिमानी मे पूरा था। यह सहृदय तथा योग्य कवि था। इसका 'रजाई' उपनाम' था। इसकी यह रुबाई प्रसिद्ध है—रुबाई का अर्थ—

घमंड तथा बड़प्पन से लाचार हूँ, क्या करूँ ?
यद्यपि आवश्यकता का कैदी हूँ, पर क्या करूँ ?
मुहताज मीर हूँ, प्रेमिका का नाज नही उठाया।
प्रेमिका की प्रकृति रखते प्रेमी हूँ, क्या करूँ ?

१५ जमादिउल् आखिर सन् १००३ हि० को सैयद जलाल पैदा हुआ, जिसकी तारीख 'वारिस रसूल' है। शाहजहाँ की राजगद्दी के अनंतर अपने पिता के कहने पर मुबारकबादी देने के लिए यह आगरे गया और इस पर अनेक प्रकार की कृपाएँ हुईं। इच्छा पूर्ण रूप से पूरी होनेपर अपने देश लौटा। दुबारा फिर दरबार गया। इस वंश के पहिले लोगो में भी कुछ गुजरात के सुलतानो के बड़े सर्दारों में से हो गए हैं इसलिए शाहजहाँ ने ७ शाबान सन् १०५२ हि० को १६ वें वर्ष मे बहुत समझाकर फकीरी वस्त्र उतरवाकर चार हजारी मंसब दिया और मूसवी खाँ के स्थान पर हिंदुस्तान का सदर बना दिया। सैयद ने अच्छे स्वभाव तथा इतने उच्च वंश के संबंध के होते हुए भी बादशाह से प्रार्थना की कि पहिले के सदर मूसवी खाँ की ढिलाई तथा असावधानी से ऐसे बहुतों को मददेमआश मिल गया है, जो कदापि इसके योग्य नही हैं तथा बहुतों ने जाली सनदों के आधार पर बहुत सी भूमि पर अधिकार कर लिया है। इसपर साम्राज्य भर मे आज्ञा हुई कि जबतक जाँच न हो कुल सनद जब्त कर लिए जायँ। नौकरी के समय इस प्रकार की कठिनाइयाँ आ जाती हैं कि अपना उत्तरदायित्व तथा स्वामी के स्वत्व का ध्यान रखना पड़ता है और यह प्रशंसनीय भी है पर साधारण जनता में सैयद की बड़ी बदनामी हुई।

दैवयोग से इसी समय जहाँआरा बेगम के दामन मे आग लग गई, जिससे उसका शरीर अधिक जल गया। खूब खैरात तथा पुरस्कार वँटे, कैदी छोडे गए तथा वकाया क्षमा किया गया। उक्त आज्ञा भी रोक दी गई। मीर का मंसब बरावर बढ़ने से छ हजारी १००० सवार का हो गया। यदि मृत्यु छोड़ती तो यह वहुत उन्नति करता। २१ वे वर्ष में लाहौर में १म जमादिउल्अव्वल सन् १०५७ हि० (२२ मई सन् १६४७ ई०) को यौवन ही मे मर गया।

कहते हैं कि मुल्ला मुहम्मद सूफी माजिदरानी ने यौवन में ईरान से आकर हिंदुस्तान के वहुत से प्रांतो की सैर की तथा अहमदाबाद में रहने लगा। इसने मीर से संवंध स्थापित कर उसे शिक्षा दिया। मुल्ला के शैर आनंद से खाली नही हैं। यह शैर उसके साकीनामा से है। शैर—

यह मदिरा जल से कुछ भी भिन्न नही है।
तू कहता है कि सूर्य को हल कर डाला है॥

मुल्ला ने बुतखाने के नाम से साठ सहस्र शैरो का एक संग्रह कवियो के दीवानो से चुनकर तैयार किया। गुजरात का सूबेदार मुल्ला पर विश्वास रखता था पर जहाँगीर के बुलाने पर निरुपाय हो विदा कर दिया। यह मार्ग मे मर गया और हालत में यह रुबाई कहा। रुबाई का अर्थ—

ऐ शाह न राजगद्दी और न रत्न रह जायगा।
तेरे लिए एक दो गज भूमि रह जायगी॥
अपने संदूक तथा फकीरो के प्याले को।
खाली करो और भरो कि यही रह जायगा॥

बादशाह ने यह सुनकर विनम्रता दिखलाई।

मीर सैयद जलाल के दो पुत्र थे। पहिला सैयद जाफर सूरत तथा स्वभाव में पिता के समान था। जब मीर सदर के पद पर नियत हुआ तब यह शाहआलम् के रौजे का सज्जाद नशीन बनाया गया। दूसरा सैयद अली प्रसिद्ध नाम रिजवी खाँ हिंदुस्तान का सदर हुआ। इसका वृत्तांत अलग दिया गया है। मीर सैयद जलाल ने अपनी पुत्री का सैयद भव. बुखारी दीनदार खाँ के पुत्र शेख फरीद से संबंध किया था।

बैठा इसलिए बहादुरशाह की मृत्यु पर बिना किसी स्थानापन्न के आए हुए इसने राजधानी का मार्ग लिया। शंका के कारण बादशाह के सामने जाने का इसका मुख न था इसलिए मार्ग में शाहजादा एज्जुद्दीन से, जो खानदौरां ख्वाजा हुसेन की अभिभावकता में फर्रुखसियर से युद्ध को जा रहा था, जा मिला। जब वह निरुत्साही युद्ध की रात्रि में खजवा की सराय से निकला तब यह वहीं अपने स्थान में ठहर गया। सुबह होते ही जब कुतुबुल्मुल्क वहाँ पहुँचा तब पुरानी मित्रता के कारण इसे अपनी हाथी पर बैठा लिया। जहाँदारशाह के युद्ध में यह हुसेन अली खाँ की सेना में था। जिस समय सर्दार ने बाग ढीली की अर्थात् धावा किया, तब यह साथ न दे सका और दूसरी ओर गिर गया पर बच गया। अमीरुल्उमरा इस पर विश्वास रखता था।

जब यह दक्षिण आया तब सरा का फौजदार नियत हुआ। जब दक्खिनी अफगानों ने, जो विद्रोह से खाली न थे, इस विचार से कि स्यात् एक जाति होने से इसके द्वारा पहिले के तथा वर्तमान मामले सुलझ जायँ और मनोमालिन्य दूर हो जाय, पहिले बहादुर खाँ पन्नी तथा अब्दुन्नबी खाँ मियान. भेंट करने आकर इससे मिल गए परंतु शीघ्र ही स्वार्थपरता के कारण वे अलग हो गए। मुतहोवर खाँ ने कुछ दिन बाकी भेंटों को उगाहने का साहस किया पर वह भी ठीक न बैठा और श्रीरंगपत्तन के जमींदार ने, जिससे बढ़कर कोई जमींदार नहीं था, अपना मुकद्दमा अमीरुल् उमरा के यहाँ भेज दिया तथा निरुपाय हो एक जमींदार की सहायता से, जो चीतल्दुर्ग का भरया नामक भूम्याधिकारी था तथा उसके कुछ स्थान पर अधिकृत हो चुका था, उस ओर गया। वह घमंडी विद्रोही बीस सहस्र सवार तथा छ सहस्र पैदल के साथ युद्ध को आया और यह परास्त हो भागा। इसी समय इसके बदले जाने का फर्मान आया। जो कुछ इसके पास सामान था सैनिकों को वेतन में बाँट कर ऋणग्रस्त हो तथा ऋण दाताओं के साथ औरंगाबाद की ओर चला। दक्षिण के सूबेदार आलम अली खाँ ने इसका सम्मान के साथ स्वागत कर वेतन में जागीर दी।

इसी समय आसफजाह के लौटने का समाचार सुनाई पड़ा। सँगरा मल्हार ही के हाथ में कुल कार्य था पर वह युद्ध के लिए राजी नहीं हुआ तब आलम अली खाँ ने निजी साहस तथा कुछ मूर्ख सैनिकों के बहकाने से युद्ध का निश्चय कर उस साहसी वीर को हरावल बनाकर युद्ध के लिए आगे बढ़ा। किसी से कोई काम पूरा नहीं हुआ और व्यर्थ अपनी जान खोई। मुतहोवर खाँ घायल हो मैदान में गिर पड़ा और इसका भाई तहोवर दिल खाँ मारा गया। फतहजंग के संकेत करने पर भी इसने पहिले उसका साथ नहीं दिया। इसके अनंतर जब सैयदों की चढ़ाई का अंत होगया और उनसे किसी प्रकार की आशा नहीं रह गई तब आसफजाह की

कृपा से इसकी हालत पर विचार कर मंसब तथा जागीर बहाल कर दी गई। इसके बाद एवज खाँ बहादुर की सम्मति से अमीन खाँ दक्खिनी के स्थान पर यह नानदेर का सूबेदार बनाया गया। यह बड़ी बेसामानी से गिरता पड़ता अपने ताल्लुका पर पहुँचा। हटाए गए विद्रोही ने इसके पर्गनो पर अधिकार करने में रुकावट डालकर वेतन का भी धन देना स्वीकार नही किया। जब एवज खाँ के लिखने पढने का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि इससे उक्त खाँ पहिले ही से वैमनस्य रखता था, तब उसने नए नियुक्त सूबेदार को लिखा कि यदि वह सिपाही है तो तुम भी सिपाही हो, क्यों अपना स्वत्व छोडते हो। निरुपाय हो इसने घरेलू झगडे का निश्चय किया। पहले इसने शुद्ध विचार से उस अदूरदर्शी से, जो चाहता था कि नानदेर से आगे बढ़कर बालकंद में शीघ्र चले जायँ, कहला भेजा कि हम विवश हैं और यदि वह घेरे से बाहर जायेगा तो रुकावट न डालने के संबंध में कहा सुनी केवल कूच करके हो सकेगी। उस मूर्ख घमंडी ने इस बात की पर्वाह न कर आगे बढने से बात न रोकी। वीर मुतहौवर खाँ प्रतिष्ठा के लिए मरना निश्चित कर थोडे आदमियो के साथ, जो पचास सवार से अधिक न थे, मार्ग रोकने के लिए निकला। दैवयोग से कुछ दूर जाने पर कमानदार आदि बिना बुलाए आ मिले जिससे कुछ सेना इकट्ठी हो गई। संध्या को दोनो पक्ष एक दूसरे के पास पहुँचकर उतरे और रात्रि सावधानी मे बिताया। जब सवेरा हुआ तब युद्ध छिड़ने ही को था कि संधि की बात चलने से वह रुक गया। निश्चय हुआ कि नानदेर लौटकर वह हिसाब से बचे हुए धन का उत्तर देगा। अभाग्य से चुने हुए सैनिकों के रहते हुए भी इसने दुर्गति कराई कि शत्रु इसे घेर कर आगे बढ़ा। इसके सिपाही परा बाँधकर दूर दूर साथ चले। अपनी मूर्खता से यह बहुत दिनो तक कैद रहा। विचित्र तो यह है कि ऐसा काम करके भी उनमे कोई अमलदारी मे न बढ़ा। इसकी बेसामानी तथा घबड़ाहट भी रत्ती भर न घटी। नौकरी से यह हटा दिया गया और इसके बाद फिर किसी सेवा-कार्य के लिए इसने प्रयत्न नही किया।

यह आश्चर्य से खाली नहीं है कि इतने गुणो के होते हुए भी कही इसकी अमलदारी का काम ठीक न बैठा। प्रगट है कि रियासत बिना कठोरता के नही होती। वहाँ दया तथा कृपा को भी प्रतिदिन स्थान है और उदारता उपकार की भी आवश्यकता है। आवश्यक न होने पर विचित्र कामों में ध्यान देना तथा प्रयत्न करना इसकी आदतो मे था। इसके सिवा मुबारिज खाँ के युद्ध मे यह दो सहस्र सवारो का अध्यक्ष होकर, जिनमे अधिकतर पन्नी अफगान थे, एवज खाँ बहादुर की हरावली मे नियत था। उन सबने शत्रु को वचन देकर काम से जी चुराया तथा चुपचाप खड़े रहे। इसने अकेले अपने हाथी को दौड़ाया पर उस समय तक शत्रु युद्ध को आकर अपने को वीरों की तलवारों पर झोंक चुका था। कुछ देर तक

यह भी, जिसे झूठा कलंक लगाया जा चुका था, अपनी वाली करता रहा। इसी बीच एक गोली के दाहिने हाथ की कोहनी में लगने से यह घायल हो गया। अच्छा हुआ जो देर किया।

यद्यपि सर्वदा सर्दारों ने इसकी बात स्वीकार की पर नवाब निजामुद्दौला के राज्यकाल मे इसकी एक से एक बढकर प्रार्थनाएँ स्वीकृत हुईं। इसके द्वारा बहुत लोगों का काम चल गया। जिस समय हिंदुस्तान से आसफजाह लौटा तब यह बुर्हानपुर जाकर उससे मिला। इसने ऊँचा नीचा, सरत मुरत, जो न कहना चाहिए, सब निजामुद्दौला का पक्ष लेकर कह डाला। यद्यपि सर्दार ने अपने व्यवहार से कुछ भी दुःख प्रगट न किया पर मन में ऐसा मालिन्य बैठ गया कि सत्मान तथा प्रेम का लेश भी न रह गया। मुहम्मदशाही २५ वें वर्ष मे जब वह कर्णाटक पर चढाई करने के लिए चले तब इसे राजधानी औरंगाबाद मे छोड गए। आखिर सफर महीने की दसवी को कोहनी का घाव सूज गया और एक महीने में आँव तथा पेट के फूलने का रोग हो गया। सन् ११५६ हि० के रबीउस्सानी की प्रथम को सबेरे निराशा हो गई और यह उसी दिन मर गया। उसी महीने की प्रथम तारीख को यह पैदा भी हुआ था। यह साठ वर्ष का हो चुका था।

मिसरा—सदब हुब्बे अली अजर दो सद आयद यापत

(अली के प्रेम के कारण पुरस्कार दो सौ पाया)

उक्त मिसरे से तारीख निकलती है। दो सौ शब्द से संख्या से तात्पर्य है अक्षरो से नही।

कारीगरी की विद्या का इसे बडा लोभ था। इस विषय की बहुत सी पुस्तकें इसने इकट्ठी की थी और तब भी कहता था कि अभी इतना ज्ञान नही हो सका है कि इन्हें काम में ले आऊँ। यद्यपि उसकी इच्छित बातो का आधा भी भेद नहीं खुला था पर कष्टसहिष्णुता से इस फन के दूसरे भेद इसे ज्ञात हो गए थे, जो मानो पहिले तथा अंतिम लोगो में प्रसिद्ध थे। कुरान के बहुत से आयतों व सूरों को विशिष्ट अर्थो के साथ आरंभ से अंत तक बडी योग्यता से घटाकर इस प्रकार यह उसकी व्याख्या करता कि सुनने मे वह बहुत आकर्षक हो जाता था। इसने हदीसो, बडो की बातो तथा शेखो और सूफियों के शैरो को अर्थ सहित प्रकाशित किया। विचित्रता यह कि कठिन आयतो और हदीसों को विभिन्न धार्मिक पुस्तको से लेकर तथा नियमित रूप से सजाकर उन्हें तर्क मे उपस्थित कर समर्थन करता और उन्हें अकाट्य बना देता। शोक है कि उसका सब ज्ञान संगृहीत न हो सका। अंत समय मे इन पृष्ठो के लेखक ने इस बारे मे उससे कहा भी पर शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। वह बुजुर्ग भी लेखन का शौक न रखने तथा अपरिचित होने से शोक से हाथ मलता रहा। पहिले नष्ट हुए इन पृष्ठो को उसने दुहराया था। इसने अपना कुछ हाल स्वयं लिखा था जो थोड़े हेरफेर के साथ यहाँ दिया गया है।

लड़कपन में इसे शिकार का बहुत शौक था, यहाँ तक कि पाठशाला में मकड़ियो से मक्खी का शिकार करता इसलिए इसने लिखने पढ़ने में योग्यता न प्राप्त की। जब अवस्था प्राप्त हुआ तो पक्षियो की तथा उनकी बोली की शिक्षा प्राप्त करने में प्रयत्न किया। गुरुओ से पक्षियो के पालने, बीमारी तथा उनकी दवा के बारे में जो कुछ सुनता तो स्वयं सुलिपि न लिख सकने के कारण दूसरो से लिखवाता। अंत मे इस विशिष्ट आकांक्षा ने लिपि के अभ्यास की ओर इसे मोड़ा और यह कुछ अक्षरो को बिना शुद्धता के लिखता। अपनी समझ के लिए इसने चिह्न बनाए थे। जब एक रोग पर कई दवाएँ विभिन्न वितरण के साथ मिली तब इसने पता लगाया कि स्यात् रोग भी कई प्रकार के हो। फिर यह पुस्तके देखने लगा। ये दवाएँ बहुधा अरबी तथा यूनानी थी तब एक को अनुसधान के लिए दिया। वहाँ से ज्ञात हुआ कि इनमे लाभदायक गुण बहुत कम हैं। इससे 'कराय. कन्सूरी' को प्रमाण मे माना। इसके अनंतर विश्वसनीय पुस्तकें एकत्र कर उनके अध्ययन से बहुत लाभ उठाया और इस प्रकार ज्ञान प्राप्त कर पक्षियो का विवरण तैयार कर चाहा कि पक्षी विद्या पर एक पुस्तक लिखे। इस विद्या के लिए तीन बातों की आवश्यकता है स्वास्थ्य, पक्षियो का ज्ञान तथ पूर्ण उत्साह। विशेष कर अंतिम की कि इसी से प्रथम दो हो जाते है। पक्षियो की औषधियो मे बहुधा खान की निकली वस्तुएँ भी थी इससे कीमिया की पुस्तको पर भी इसकी दृष्टि गई और कुछ सहज उपाय, जिसे पहिले के बडो ने लिखा है, इसे मिला। इसके मन मे आया कि यह कई वस्तुओ का मिलावट है, जो मिलकर सोना तथा चाँदी मे बदल जाता है पर इस प्रकार यदि हो जाता तो संसार मे कोई दरिद्र न रह जाता। इस पर ध्यान देने से रुककर यह इस विद्या की पुस्तको का मनन करने लगा पर वैसा ही पाया। इसका आश्चर्य बढ़ा कि ये पुस्तके उन लोगो के नाम पर हैं जो प्रकट तथा आंतरिक विद्याओ के पूर्ण ज्ञाता थे। इन लोगों ने अकारण ही धन का नाश करने को इन्हें लिखकर लोगों को दु.ख में डाल दिया है। विचार करने पर प्रकट हुआ कि इन लोगों ने भेदपूर्ण या रहस्यमयी भाषा मे सब लिखा है पर यदि यह रहस्य पुस्तक से ज्ञात न हो तो ये लेख झूठ से बढकर नहीं हैं। ऐसे गुणियों से इस प्रकार झूठ से लोगो को दुःख में डालना आश्चर्य की बात है। इसलिए इन सब लेखों के अनुसार अनुभव करना छोड़ इसने स्वयं इस पर अनुसंधान करना आरंभ किया। सन् ११२२ हि० तक इन सब बातो पर इसने विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया और समझा कि जिसने जिस विद्या में योग्यता प्राप्त की, हिंदसा, हकीमी, ज्योतिष, रमल, तिलस्म आदि यहाँ तक कि तीरंदाजी तथा कबूतरबाजी की, उसने उस विद्या का गूढ़ बातो को अपनी शैली पर लिख दिया, विशेषकर बनावटी विद्याओ में तफसीर (कुरान की टीका) हदीस, किस्से आदि।

शौक के कारण इन सबका इसने खूब परिशीलन किया कुछ योग्यता प्राप्त कर ली। इसके अनंतर सूफी मत देखना आरंभ किया और उसका भी कुछ हाल मालूम किया। यह ज्ञात हुआ कि यह ज्ञान धर्म तथा संसार की मिलावट है। अर्थात् अज्ञात के अज्ञात से लेकर सिद्ध मनुष्य तक और उन सब पर विचार इन लोगो के लिए कारीगरी की विद्या की तरह समान है क्योंकि उससे धर्म तथा संसार के विचार ज्ञात होते है और उसी से अशुद्ध बातें कट जाती हैं। इसी से कुरान के भेद ज्ञात होते हैं और हदीस की कठिनाइयाँ हल होती है। इस पर यह गहरे समुद्र में जा पडा और कीमिया का सारा संसार भूल गया। देखता हूँ कि कहाँ पहुँचता है। अंत है बातों का।

इस लिखने के बाद दो महीना न बीता था कि वह मर गया। शुभ बातें कहने मे यह निर्द्वंद्व था और सिफारिश भी करता। मिलनसारी तथा शालीनता थी और सहानुभूति के साथ सबसे मिलता तथा दुखियो को सान्त्वना देता। आसफजाह के इस सदेश पर कि ये मुतसद्दियो के प्रार्थनापत्र हैं और ऐसे लोगो के लिए क्यो कुछ कहते हो, यह कुछ दिन चुप रहा। परतु इसने फिर वही कार्य आरभ किया। इसकी बातें ऐसी होती थी कि चित्त पर असर कर उन्हें स्वीकृत करा देती थी और यह भूमिका भी अच्छी बाँधता था, जो सर्दार को अच्छी लगती थी पर ऐसा होते भी व्यय में गुंजाइश न थी। यद्यपि इसका मसब पाँच हजारी था पर यह सिपाहियो की चाल पर रहता प्रत्युत् फकीरो की चाल पर तब भी कुछ न बचता। एक मात्र पुत्र रहीमदाद जो बैसवाडा की फौजदारी के समय पैदा होकर पालित हुआ था, आमिल था उसके मन मे जो आता वही उठाकर दे देता। उसको बहुत समझाया गया पर उसने कुछ ध्यान न दिया। कभी बाकी लौटाने का उल्लेख न कर फारखती लिखकर तथा अपनी व संतानों की मुहर दे देता। इसका धर्म इमामिया था और इसने बहुत सी विभिन्न पुस्तकें तैयार कीं। यद्यपि ये लाभदायक न थीं पर सैयदो के बड़प्पन वर्णन करने में इसने बहुत प्रयत्न किया था। इसका विश्वास था कि यह जाति नबियो के वंश से संबंध रखने के कारण बहुत बुजुर्ग होगी और शरीअत की कितनी आज्ञाओ से सारे मनुष्यो में से केवल ये मुक्त हैं। कहता हूँ कि यदि इनमें विशेषता या अधिकता है तो साधारण स्वरूप से ये कोई विशिष्टता नही रखते। उत्तर मे कहा जाता है कि विश्वासी बनो। अर्थात् जब खुदा ने अपनी दया तथा प्रेम से अपनी संतों से बढ़कर उन पर कृपा न की और बराबरी की आज्ञा की तब यदि उम्मत के लोग आदमी की पवित्र नसल पर उसके ऐसे उपकार में विभेद डाल दें, जिसमें दूसरे साझी न थे तो वह उदारता के नियम के बाहर न होगा और न भक्ति तथा सेवा के स्वभाव से दूर होगा। अज्ञान में एक सैदानी से निकाह कर लिया जिसका पिता हैदर अली खाँ प्रसिद्ध शाह मिर्जा हैदराबादी का पौत्र था जो माजिंदरान के सैयदों में से था। जानने पर इसने

छोड़ना चाहा और शौक किया। इसके बाद अपनी जाति तथा मुगलों में निकाह किया, जिनसे हर एक से संतानें थीं। एक लड़के उम्म तुल्हबीब को बहादुरशाह की मृत्यु पर पुत्रवत् माना। उसकी मृत्यु पर दक्षिण अपने पिता के पास चला आया। भारी ऐश्वर्य में पला हुआ था इससे वह बेतकल्लुफी से खाली न था। पिता की मृत्यु को छ महीने न बीते थे कि यह भी मर गया। इसके पुत्रों में से एक बल्यूम अपने देश में है और फखूद्दीन खाँ तथा दूसरे मंसब तथा जागीर पा चुके हैं। इसका भतीजा तथा दामाद जाँबाज खाँ हजारी मंसबदार है। इन पंक्तियों का लेखक आरंभ में उसी मृत के प्रयत्न से दक्षिण में जम गया। इसके अनंतर इस दुरंगी दुनिया का ऊँचा नीचा देखते हुए वह आसफजाह तक पहुँचा। जिस एकांतवास के कारण यह पुस्तक लिखी गई और बेकारी बिताने में सहायता मिली उसमें दो वर्ष उस बुजुर्ग के पास बैठने तथा साथ रहने का अवसर मिला। खान पान के नियम तथा उठने बैठने की मर्यादा की स्वभाव में बेपरवाही होते हुए भी वह दोनों पक्ष में देखने में आया। बड़ों में जो बड़प्पन होनी चाहिए था वह कुछ नहीं छोड़ा। इसमें स्वभावतः भलाई भरी हुई थी। शुक्र है खुदा का कि आरंभ तथा अंत उसी की कृपा से हुआ। समाप्ति के गैर उसी के हैं।

•

५०८. मुनइम खाँ खानखाँना बहादुरशाही

इसका पिता सुल्तानबेग बर्लास जाति का था और आगरे के कुछ भाग का कोतवाल था। यह बादशाही काम से कश्मीर भी गया था। इसकी मृत्यु के अनंतर मुहम्मद मुनइम ने रोजगार की खोज में दक्षिण जाकर बादशाही सेना में अपनी योग्यता तथा वीरता से मीर बख्शी रूहुल्ला खाँ की मध्यस्थता प्राप्त की और बख्शीउल्मुल्क से इसके लिए मंसब प्राप्त कर अपनी मुहर इसे दिया। इसके अनंतर अपने भाग्य के बल से उन्नति कर यह औरंगजेब का परिचित हो गया तथा कई सेवाओं पर नियत हुआ। ३४ वें वर्ष में मीर अब्दुल्करीम मुल्तफित खाँ के स्थान पर हफ्तचौकी का अमीन नियत हुआ। ४६ वें वर्ष में यह फीलखाने का दरोगा बनाया गया। जब खेलना की चढ़ाई में यह मुहम्मद अमीन खाँ की सहायता को नहीं पहुँचा और इसने देर किया तब मंसब कम कर तथा पद से हटाकर इसे दंड दिया गया। इसके अंतर यह बादशाह के बड़े पुत्र शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम की सरकार

का आलम खाँ के स्थान पर दीवान नियुक्त किया गया। इसी के साथ काबुल की दीवानी भी इसे मिली। अपनी अच्छी सेवा तथा व्यवहार से यह शाहजादे का कृपापात्र हो गया। ४९ वें वर्ष मे पंजाब की सूबेदारी जब शाहजादे के वकीलों के नाम हो गई तब शाहजादे के प्रस्ताव पर यह उक्त खाँ का नायब तथा जम्बू का व्यक्तिगत फौजदार नियत हुआ। इसका मंसब डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। अच्छे उपायों तथा वीरता से वहाँ के उपद्रवियों तथा विद्रोहियों को दमन कर यह प्रबंध तथा न्याय करता रहा। यह योग्य अनुभवी पुरुष शाहजादे के प्रति दृढ़ राजभक्ति रखता था इसलिए परिवर्तित होते हुए समय को देखते हुए यह गुप्त रूपसे उसके साम्राज्य के लिए प्रयत्न करता रहा। दैवयोग से २५ जीहिज्जा सन् १००८ हि० को औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मुनइम खाँ को मिला। शाहजादे के पेशावर से, जो काबुल का गर्म निवासस्थान है, चित्ताकर्षक राजधानी लाहौर को पहुँचने तक मुनइम खाँ लगभग पाँच सहस्र सवार तथा भारी तोपखाना एकत्र कर और राजगद्दी का समान ठीक कर शाहदौला पुल के उस ओर सेवा मे उपस्थित हुआ। सरहिंद पहुँचने तक यह चार हजारी २००० सवार का मंसब, खानजमाँ की पदवी, तोरा व डंका पाकर सम्मानित हुआ। आगरे पहुँचने तक इसके प्रयत्नों तथा अच्छी सेवाओ से पचीस सहस्र सवार शाहजादे की सेना के सिवा, जो इसका आधा था, बादशाही छत्रछाया के नीचे इकट्ठा हो गया। इसके उपलक्ष मे इसका मसब पाँच हजारी का हो गया और बहादुर जफर जग की पदवी भी बढाई गई। मुहम्मद आजमशाह के युद्ध में प्रयत्न करने में इसने विजयी का साथ दिया था। जब मुहम्मद आजमशाह अपना निवासस्थान अपनी सौतेली बहिन जीनतुन्निसा बेगम की रक्षा मे तथा ग्वालियर जुम्लतुल्मुल्क असद खाँ के हाथ में छोड कर आगे बढा तब बहादुर शाह, जो बहुत विनम्र तथा धर्मभीरु था, मुसलमानों के मारे जाने के भय से अपने भाई को लिखा कि पिता की वसीअत के अनुसार दक्षिण, मालवा तथा गुजरात तक तुम्हे मिला है और हिंदुस्तान हमें। यदि शील के विचार मे तेलिंगाना बीजापुर के साथ कामबख्श को देदो, जो छोटा भाई पुत्र के समान है तो हम अपने हिस्से से तुम्हारा हिस्सा बढा देंगे और यह बहुत अच्छा होगा। यदि यह बात तुम्हे पसंद न आवे तो यह क्या ठीक होगा कि अपने स्वार्थ के लिए नश्वर राज्य के लिए लडे और बहुत से लोग अपने प्राण और धन गवावें। हम तुम अकेले युद्ध कर लें। ऐसी सूरत में तुम्हारा ही मन चाहा है क्योंकि अपने तलवार के सामने तुम किसी को कुछ नहीं समझते।

कुछ लोगो का कहना है कि बहादुरशाह को इस वसीयत का ज्ञान नहीं था पर अंत मे औरंगजेब ने उसे फर्मान लिखा, जिसके लिफाफे पर अपने हस्ताक्षर से लिखा था कि आल्मुलामोअल्लैक या वाली उल्हिंद। इसी से उसने जाना। जो कुछ हो

जब यह समाचार मुहम्मद आजमशाह के पास पहुँचा तब इसने लिखा कि यह बँटवारा उसे स्वीकार नहीं है और दूसरा ऐसा बँटवारा पेश किया जो किसी हालत में मानने योग्य न था। शैर का अर्थ—

फर्श से अटारी तक तो मेरा है,
और अटारी से आकाश तक तेरा है।

इसके बाद क्रुद्ध होकर एल्ची से कहा कि इस बुड्ढे शेख सादी का गुलिस्ताँ नहीं पढ़ा है कि एक देश में दो बादशाह नहीं होते। शैर का अर्थ—

जब कल सूर्य ऊँचा होगा तब मैं,
गुर्ज, मैदान व अफरासियाब।

१८ रबीउल् अव्वल को आगरे से दस कोस पर हाजू के पास दोनों का सामना हुआ। खानजमाँ भारी सेना तथा अन्य शाहजादों के साथ बाईं तथा दाहिनी ओर से उस समय पहुँचा जब बेदारबख्त अजीमुश्शान को तीन ओर से घेर चुका था। कड़े धावे तथा घोर युद्ध हुआ। यहाँ तक कि गोला इसके दाहिनी ओर बगल के नीचे पहुँच गया और यद्यपि हड्डियाँ पूरी बच गईं पर कुल मांस व चमड़ा पीठ तक का निकल गया। तब भी युद्ध से पाँव पीछे न हटा यह दृढ़ बना रहा जिससे मुहम्मद आजम अपने दो पुत्रों बेदारबख्त व वालाजाह के साथ मारा गया 'हाय मुहम्मद आजम' से तारीख निकलती है। खानजमाँ आजमशाह के परिवार तथा माल व समान की उस उपद्रव में रक्षा करता हुआ अर्द्धरात्रि के लगभग बादशाह के पास पहुँचा और उस बाद से बेहोश हो गया। उसी महीने की २९ तारीख को इसे खानखानाँ बहादुर जफरजंग की ऊँची पदवी तथा सात हजारी ७००० सवार का मंसब और प्रधानमंत्री का उच्च पद मिला। इसके सिवा एक करोड़ रुपया नगद व एक करोड़ का सामान बादशाह की ओर से मिला, जैसा तैमूरिया राजवंश के आरंभ से किसी सर्दार को नहीं मिला था। १० रबीउल्आखिर को बादशाह दहआरा बाग में इसे देखने आए, जो उसी घाव के कारण शैया पर पड़ा था और इसको बहुत सांत्वना दी क्योंकि यह विजय इसीके तलवार की जोर तथा सम्मति से प्राप्त हुई थी। इसने जो दस लाख रुपये की भेंट दी उसमें से केवल एक लाख को बादशाह ने स्वीकार किया। ८ जमादिउल्अव्वल को वजीर का पद तथा आगरे की सूबेदारी का भार इसने लिया। ३ रे वर्ष में बादशाह के सामने नौबत बजाने की आज्ञा पाकर यह सम्मानित हुआ। ४ थे वर्ष जब बहादुरशाह विद्रोही कर्दी को दमन करने के लिए शाहबौरा पहुँचकर ठहरा तब खानखानाँ शाहजादा मुहम्मद रफीउश्शान की अधीनता में उस कार्य पर भेजा गया। वह विद्रोही बहुत लड़ने के बाद लोहगढ़ में जाकर घिर गया। शाही सेना ने पीछा न छोड़कर उस

दुर्ग को घेर लिया। उस अदूरदर्शी के सहायक तथा साथी लोग, जो प्राण देने को दूसरे लोक में अविनश्वर जीवन पाना मानते थे, बड़ी वीरता तथा उत्साह से मोर्चों पर धावा करते रहे। बहुत से उनमें मारे गये। एक मुद्दत बाद खाने का सामान न रहने पर कलावा नाम का तंबाकू बेचने वाला एक खत्री उस विद्रोही का छद्म-वेश धारण कर उसके स्थान पर बैठा और वही एक झुंड के साथ बादशाही मोर्चे पर धावा कर पास के बर्फीराजा के देश को चला गया। उस दुर्ग पर अधिकार होने के बाद बादशाही आदमियों ने कलावा को इस भ्रम में पड़कर उसी को वही समझ लिया और कैद कर खानखानाँ के पास लाए। खानखानाँ ने फुर्ती से यह सुसमाचार भेजकर प्रशंसा पाई। डंका बजाने तथा दीवानआम होने की आज्ञा हुई। यह भी आदेश हुआ कि छड़दार पिंजरा भी शीघ्र तैयार हो। इसके अनंतर जब पूछताछ से ज्ञात हुआ कि बाज उड़ गया और उल्लू फँसा है तब खानखानाँ लज्जित हुआ और अपने आदमियों की भर्त्सना करते हुए कहा कि सब पैदल होकर बर्फीराजा के पहाड़ों से चलें व वही को पकड़ लावें या राजा को कैद करें। उसने राजा को भी लिखा कि उसे कैद करा देने में वह अपनी भलाई समझे। कहते हैं कि जुल्फिकार खाँ के हरकारों ने उक्त खाँ के संकेत पर जो इनसे ईर्ष्या करता था पहाड़ों से शाही पड़ाव तक यह प्रसिद्ध कर दिया कि वही पकड़ा गया। खानखानाँ के हरकारों ने भी एक पेशा होने से उनकी बात पर विश्वास कर यही समाचार कई बार सुना दिया और इसने भी बादशाह से कह दिया। जुल्फिकार खाँ ने उलटकर कहा कि स्यात् यह भी ठीक नहीं है। इसके अनंतर ज्ञात हुआ कि यह भी झूठ था। यद्यपि राजा को कैद में लाकर दिल्ली में उसी लोहे के पिंजड़े में बंद कर दिया पर खानखानाँ को लज्जा पर लज्जा मिली, जिससे वह क्रोध से बीमार हो गया और दिमाग खराब हो गया। उसी समय उसकी मृत्यु हो गई।

खानखानाँ बहुत उदार तथा सुशील था, उसमें जरा भी घमंड नहीं था और पुरानी मित्रता का विचार तथा गुणग्राहकता का सदा ध्यान रखता। यहाँ तक कि पुराने परिचय के कारण कम मंसबवालों को भी अभ्युत्थान देता। यद्यपि दान पुण्य आदि खुले हाथ न करता पर तब भी उदार काम से कमी न करता। मंत्रित्व के कार्य को बिना स्वार्थ या लोभ के अच्छी प्रकार करता रहा। कचहरी के समय सजावल नियत रहते कि कोई प्रार्थना पत्र बिना हस्ताक्षर के दूसरे दिन के लिए न रह जाय। घोड़े ऊँट आदि पशुओं की खोराक का उत्तरदायित्व मनसबदारों से लेकर उसकी नई तहसील का ढंग निकाल दिया। औरंगजेब के राज्यकाल में मनसबदारों ही पर पशुओं का व्यय था, पर उनकी जागीर की आय के बाकी रहने से या आय थोड़ी होने से तथा मुद्दत बाद मिलने से आधा या तिहाई व्यय उन पशुओं का

नहीं पूरा होता था तब उनके आवश्यक व्यय कैसे पूरे होते। फीलखाने के दारोगा, आख्तावेगी तथा दूसरे मुत्सद्दी बड़ी कठोरता से वकीलों से खुराक का धन माँगते थे और कहीं कुछ सुना नहीं जाता था। निरुपाय हो वकीलों ने त्यागपत्र दे दिया। खानखानाँ ने निश्चित किया कि वेतन के समय ही पशुओं के व्यय के अनुसार धन जागीर से काटकर बाकी लिखा जाया करे। इस कारण आजतक वही प्रथा चलती है। मिसरा—अच्छे लोग चले गए और प्रथाएँ रह गईं।

इसमें वे अच्छे गुण थे, जिनसे योग्यता समझी जाती है। शैर भी कहता था और इसकी रुचि सूफी धर्म की ओर थी। 'इल्हामात मनेअमी' नाम से एक पुस्तक इसने लिखी है पर अच्छे भाव नहीं हैं। यथातथ्य वर्णन के साथ अच्छे शैरों में कुछ गूढ़ बातें कह देता था। साहित्य मर्मज्ञो में कोई प्रशंसा और कोई निंदा से इसके उत्कर्षता का वर्णन करता था। इल्हाम में अपने स्वर्ग की सैर तथा वहाँ से खुदा के तख्त के नीचे पहुँचने का वर्णन करते हुए उसे स्वप्न में संपुटित कर दिया है। विरक्ति भाव नहीं है। यद्यपि इल्हाम विशेषकर पैगंबरो से संबंध रखता है इससे इसका दावा व्यर्थ है और अदब की ओर शंका पैदा करता है। आराम पसंद तथा कष्ट भीरु होते हुए भी यह चाहता था कि इसका नाम समय-पट पर बना रहे इसलिए इसने हर एक नगर में हवेली, सराय या कटरा बनवाया था और हर जगह भूमि तथा अमले के लिए धन भेजता था। अदूरदर्शी मुत्सद्दीलोग खुशामद के लिए जमीन तथा गृह आदमियो से अत्याचार कर ले लेते थे। अत्याचार की जड़ खराबी पैदा करती है इससे किस प्रकार स्थायी काम हो सकता था। बहुत से मकान तैयार न हो सके और बनवानेवाले के मरने पर पहिले से भी अधिक खराब होगए। कहते हैं कि खानखानाँ बहुधा नजूल मकान बादशाही सरकार से खरीद लेता था। एक दिन मुखलिस खाँ मुगलबेग ने कुविचार से बादशाह से कहा कि ईश्वर की कृपा से हिंदुस्तान सात इकलीम का जोड़ है। यदि यह बात कि हिंदुस्तान का बादशाह जमीन अपने नौकर के हाथ बेंचता है, ईरान या रूम के शाहों के कान तक पहुँचे तो कैसी अप्रतिष्ठा हो। असावधानी के लिए प्रसिद्ध बादशाह ने कैसी बुद्धिमानी का उत्तर दिया कि ऐ मुखलिस खाँ, हम क्या बुरा करते हैं, पड़ती जमीन बेकार उसे देते हैं और वह उस पर धन व्यय कर गृह बनवाता है। वह वृद्ध होगया ही है; कल मरेगा तब फिर सरकार में सब जब्त हो जायगा।

बहादुर शाह की राजगद्दी के अनंतर इसके बड़े पुत्र नईम खाँ का मंसब बढ़ने से पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया और इसे महाबत खाँ तथा सुनी सुनाई बात से मकरम खाँ खानजमाँ बहादुर की पदवी मिली। यह तीसरा बख्शी भी उसी समय नियत हुआ। जब जहाँदार शाह बादशाह हुआ तब जुल्फिकार खाँ ने पुराने

वैमनस्य के कारण इसे बादशाह के क्रोध में डाल दिया और कैद करा दिया। मुहम्मद फर्रुखसियर की राजगद्दी पर अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ पुराने संबंध तथा मित्रता के कारण इसकी फरियाद को पहुँचा और अपने साथ दक्षिण लिवा गया। अंत में एमादुल् मुल्क मुबारिज खाँ का साथ देकर यह सन् ११३६ हि० के युद्ध मे, जो निजामुल् मुल्क आसफजाह से हुआ था, उपस्थित था। दूसरा पुत्र खानःजाद खाँ बहादुर शाह के राज्य के आरभ मे चारहजारी ३००० सवार के मसव तक पहुँचा था।

५०६. मुनइम बेग खानखानाँ

यह हुमायूँ के राज्यकाल के अच्छे सरदारो मे से एक था। इसके पिता का नाम बैरम बेग था। जिस समय हुमायूँ बादशाह को दुर्भाग्य ने घेरा और सिंध के सिवाय कोई स्थान ठहरने योग्य बादशाह की नजर से नही आया तब वह कुछ दिन भक्कर के पास ठहरा रहा। इसके अनंतर वहाँ से हटने पर उसने सेहवन दुर्ग को जाकर घेर लिया। ठट्टा का शासक मिर्जा शाह हुसेन आगे बढ़कर मार्गों को बंद करने और अन्न को हटाने मे दत्तचित्त हुआ। बहुत से सरदारगण बिना आज्ञा लिए चल दिए। मुनइम खाँ ने भी, जो इन सबका मुखिया था, चाहा कि अपने भाई फजील बेग के साथ अलग हो जाय पर बादशाह ने उसको सावधानी के कारण कैद कर लिया। यद्यपि यह एराक की यात्रा मे हुमायूँ के साथ नही रहा पर ईरान से लौटने पर बराबर इसका सम्मान तथा मुसाहिबी बढ़ती गई। यह भी राजभक्ति का ध्यान रखता था। जिस समय हुमायूँ बादशाह बैराम खाँ के बारे में कुसमाचार सुनकर, जिसको अपने स्वार्थ के विचार से कुछ द्वेषियो ने झूठ ही कह दिया था, कंधार गए और वहाँ से लौटते समय उसका विचार हुआ कि मुनइम खाँ को वहाँ का अध्यक्ष नियत करे तब इसने प्रार्थना की कि बादशाह का हिंदुस्तान पर चढ़ाई करने का विचार है इसलिए ऐसे अवसर पर अदल बदल करने का सेना मे बुरा प्रभाव पड़ेगा। विजय के अनंतर जैसा उचित हो वैसा किया जाय। इस पर बैराम खाँ कंधार का अध्यक्ष बना रहा। उसी समय सन् ९६१ हि० मे यह काबुल में शाहजादा महम्मद अकबर का शिक्षक नियत हुआ और इस सम्मान के उपलक्ष में इसने मजलिस की और योग्य भेंट दिया। जब इसी वर्ष के अंत मे हुमायूँ बादशाह हिंदुस्तान की चढ़ाई पर रवाना हुआ तब शाहजादा मुहम्मद हकीम को, जो एक

वर्ष का था, काबुल में छोड़कर उस प्रांत के कुल कार्य्य को दृढ करने के लिए मुनइम खाँ को वहाँ नियत किया। यह बहुत दिनो तक उस प्रांत के कार्य पूरा करता रहा। जब अकबर बादशाह बैराम खाँ से बिगड गया तब यह आज्ञा के अनुसार सन् ९६७ हि० जीहिज्जा महीने में ५ वें जलूमी वर्ष मे लुधियाना पड़ाव पर, जहाँ बादशाह बैराम खाँ का पीछा करते हुए उपस्थित थे, सेवा मे पहुँच कर वकील का पद और खानखानाँ की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। ७ वें वर्ष में जब शम्सुद्दीन अतगा खाँ अदहम खाँ के उपद्रवी तलवार से मारा गया तब मुनइम खाँ शंका के कारण भाग गया क्योंकि यह गुप्त रूप से उस षड्यंत्र मे मिला हुआ था। अकबर ने मीर मुंशी अशरफ खाँ को भेजा कि इसे समझा बुझाकर लौटा लावे। कुछ दिन नही बीते थे कि फिर उसी शंका से काबुल जाने का विचार कर इसने आगरे से निकल कर पहाड का मार्ग लिया। छ दिन यात्रा करता हुआ सरवर परगना मे, जो मीर मुहम्मद मुंशी की जागीर में था, यह पहुँचा। वहाँ के आमिल ने इसके मुख पर भय के चिह्न देखकर हाल पूछा और चाहने न चाहते हुए भी कैद कर लिया। उस स्थान के पास एक भारी सरदार सैयद महमूद खाँ बारहा की भी जागीर थी और वह यह वृतात सुनकर जान गया कि यह खानखानाँ है। समय को गनीमत समझ कर उसने मनुष्योचित व्यवहार किया और बड़े सम्मान से बादशाह के पास लिवा ले गया। अकबर ने पहिले की तरह इसे वकील के पदपर नियत कर दिया। जब इसका पुत्र गनी खाँ, जो अपने पिता का प्रतिनिधि होकर काबुल का प्रबंध कर रहा था और यौवन, प्रभुत्व तथा कुसंग की मस्ती से दूसरों की हानि से अपना लाभ समझ कर उपद्रव करने लगा और मिर्जा मुहम्मद हकीम का कुछ भी हाल चाल न पूछता था तब मिर्जा की माता माहचूचक बेगम तथा हितैषियों ने निरुपाय होकर अधे फजील बेग और उसके पुत्र अबुल्फत्ह के साथ, जो अपने भतीजे की हुकूमत से कुढ गया था, निश्चय किया कि जिस समय गनी खाँ पालीज की सैर मे लौटकर आवे उस समय शहर का फाटक बन्द कर दिया जाय। जब उसने देखा कि कोई प्रयत्न सफल न होगा और कैद हो जाने की आशंका है तब काबुल से मन हटाकर हिंदुस्तान की ओर चल दिया। बेगम ने फजील बेग को मिर्जा का वकील नियत किया और उसके पुत्र को उसका प्रतिनिधि बनाया। इसके अनंतर जागीर बाँटी और अच्छी पदवियाँ भी लोगो को दी। कुछ दिनके अनंतर अबुल्फत्ह ने औचित्य छोडकर शाहवली आदि के साथ अपने प्रभुत्व को मस्ती में यहाँ तक पहुँचा दिया कि फजील बेग को पकड कर मार डाला।

जब काबुल की इस दुरवस्था का अकबर को पता लगा तब उसने मुनइम खाँ को मिर्जा मुहम्मद हकीम का अभिभावक नियत कर, जो वहाँ जाने के लिए बड़ा

इच्छुक था, ८ वें वर्ष में अच्छी सहायक सेना के साथ भेजा, जिसमें वह अपने पुत्र का वदला ले और वहां का प्रवंध ठीक करे। मुनइम खां काबुलियों को ठीक तौर पर न समझ कर सहायक सेना के आने के पहिले ही जल्दी से रवाना हो गया। बेगम वली अतगा को विद्रोह की शंका में प्राण दंड देकर और हैदर कासिम कोहबर को वकील नियत कर स्वयं राजकाज देखती थी। इस समाचार को सुनते ही वह चारो ओर से सेना एकत्र कर मिर्जा के साथ युद्ध के लिए वाहर निकली। जलालाबाद के पास दोनो पक्षमें युद्ध हुआ, जिसमे मुनइम खां परास्त हुआ और उसकी सरदारी का सारा सामान नष्ट हो गया। इससे शत्रु के डर से कहीं ठहरना उचित न समझ कर यह गखरो के देश मे चला आया। यहां से इसने वादशाह के पास प्रार्थना पत्र भेजा कि दरबार मे आने का मेरा मुंह नही है इसलिए या तो मुझे मक्का जाने की आज्ञा मिले या इसी जिले मे जागीर दी जाय, जिसमें अपना सामान ठीक कर दरवार मे आ सकूं। अकवर ने गुणग्राहकता से हिंदुस्तान की उसकी जागीर वहाल रखकर दरबार बुला लिया। इसने नये सिरे से वादशाह की असीम कृपा प्राप्त की और वहुत दिनो तक राजधानी आगरा का अध्यक्ष रहा। जब १२ वें वर्ष मे खानजमां और वहादुर खां उचित दंड को पहुंचे तब दोनों भाई के जौनपुर मे चौसा नदी तक के ताल्लुके पर यह नियत हुआ।

इसी वर्ष खानखानां ने अपनी योग्यता तथा अनुभव से वगाल और विहार के शासक सुलेमान किर्रानी से मित्रता कर वगाल प्रांत में भी वादशाही सिक्का और खुतबा प्रचलित करा दिया। वह सलीम शाह के सरदारो में से था। जिस समय बंगाल शेरशाह के हाथ में पडा तव वहां का शासन मुहम्मद खां को सौंपा गया, जो उसका पास का संवन्धी था। सलीम शाह की मृत्यु पर वह साम्राज्य के विरुद्ध स्वतंत्र वनकर मर गया। उसके पुत्र वहादुर खां ने वहां का खुतवा और सिक्का अपने नाम कर लिया और प्रसिद्ध अदली को जिसने हिंदुस्तान का दावा किया था, युद्ध मे मारडाला। इसके वहुत दिनों के अनतर वीमारी से यह मर गया। इसका छोटा भाई जलालुद्दीन उत्तराधिकारी हुआ। ताज खां किर्रानी, जो अपने भाइयो के साथ अदली के यहां से भाग कर वगाल में रहने लगा था, कभी उससे शत्रुता और विहार का राज्य ताज खां को मिल गया और उसके अनंतर उसका भाई सुलेमान खां स्वामी हुआ।

खानखानां की इस संधि के अनंतर उसने उडीसा पर भी अधिकार कर वहां के राजा को मार डाला। सन् ९७९ हि० मे (सन् १५७२ ई०) वह मर गया। उसके बड़े पुत्र वायजीद ने गद्दी पर वैठकर उद्दडता से उस प्रात का खुतवा अपने नाम करा लिया। खानखानां को उससे बिहार के पास कई युद्ध करने पड़े। घमड

तथा उद्दंडता के कारण इसने उस प्रांत के सरदारों के साथ कड़ाई का व्यवहार किया था इसलिए एमाद के पुत्र हाँसू ने, जो उसका भतीजा तथा दामाद था, रुष्ट होकर तथा कुछ लोगों को मिलाकर इस कार्य पर बाध्य किया कि वे उसको मार डालें। लोदी खाँ ने, जो उस प्रांत का प्रभावशाली व्यक्ति था, सुलेमान के छोटे पुत्र दाऊद को सरदार बनाकर उक्त हाँसू को मारडाला। गूजर खाँ किरांनी ने जो अपने को मीर शमशेर समझता था, विहार प्रांत मे बायजीद के पुत्र को खड़ाकर आपस मे शत्रुता करा दी। लोदी खाँ भारी सेना के साथ बंगाल से विहार को लेने के लिए चला और उपाय तथा कपट से गूजर खाँ को अपना अनुगामी बना लिया।

जब खानखानाँ बादशाह की आज्ञा के अनुसार विहार प्रांत पर अधिकार करने के लिए सोन नदी के पार उतरा तब दाऊद खाँ ने लोदी खाँ से सशंकित हो जाने के कारण उसको बीच में से हटा दिया और पटना दुर्ग में जा बैठा तब खानखानाँ की प्रार्थना पर घेरे में सहायता करने के लिए अकबर १९ वें वर्ष सन् ९८२ हि० में आगरे से बड़ी नावो पर सवार होकर जो नई तैयार की गई थी, पूर्व की ओर नदी से रवाना हुआ। मार्ग में कुछ नावें आँधी मे डूब गई तब भी बादशाह दो महीन आठ दिन मे पटने के पास पहुँच गए। कहते हैं कि जब बादशाह फुर्ती से पटने की ओर चले तब गंगदासपुर में सैयद मीरक इस्फहानी जफरी से इस कार्य के विषय में भविष्य का हाल पूछा। उसने जफर पुस्तक मँगाकर यह शैर का अर्थ—सौभाग्य से अकबर ने शीघ्रता से दाऊद के हाथ मे देश ले लिया। अकबर ने हाजीपुर को ले लेने पर, जो गंगा नदी के उस पार पटना के सामने स्थित है, पटना के विजय का शुभागम समझ कर उसके घेरे का प्रबंध किया। उसके टूटने पर दाऊद हारकर नदी के मार्ग से बंगाल भाग गया, उसके बहुत से सिपाही भागने में मारे गए और पटना काफी लूट के साथ अधिकार में आया। इस घटना की तारीख 'फतह बलाद पटना' (सन् ९८२ हि०, सन् १५७५ ई०) से निकलती है।

इस विजय के अनंतर खानखानाँ विहार का जागीदार नियत होकर बीस सहस्र सवारो के साथ बंगाल पर अधिकार करने और दाऊद को दंड देने पर नियुक्त हुआ। अफगानो ने विजयी सेना के प्रभाव तथा संख्या से साहस छोड दिया और बिना युद्ध किए ही दृढ़ स्थानों को छोडकर भाग गए। खानखानाँ हर स्थान को दृढ करता हुआ आगे बढता गया, यहाँ तक कि दाऊद उडीसा की ओर भागा। उक्त खाँ सेनापति ने मुहम्मद कुली खाँ बर्लास के अधीन एक सेना उसका पीछा करने को भेजी और स्वयं टाँडा पहुँच कर, जो बंगाल का केंद्र है, प्रांत का प्रबंध करने लगा। दरबार के कर्मचारियों ने विहार की जागीर के बदले में बंगाल मे इसका वेतन कर दिया। जब दाऊद खाँ बंगाल और उड़ीसा के बीच में स्थान दृढ कर

ठहर गया और महम्मद कुली खाँ बर्लास, जो पीछा कर रहा था, मर गया तब राजा टोडरमल्ल की सम्मति से खानखानाँ स्वयं टाँड़े से उस ओर रवाना हुआ। इसी वर्ष दोनो पक्ष में घोर युद्ध हुआ। गूजर खाँ ने, जो शत्रु के हरावल मे था, खानखानाँ के हरावल तथा मध्य को अस्त व्यस्त कर दिया। खानखानाँ के सेवकों मे से किसी ने भी वीरता तथा दृढ़ता नहीं दिखलाई पर इसने स्वयं कुछ सेना के साथ लड़कर चोट खाई। इस पर भी पहुँचने पर कहा कि यद्यपि सिर का घाव अच्छा है पर आँखो को हानि पहुँची और गर्दन पर घाव आ गया है कि अब इतनी शक्ति नहीं है कि पीछे देख सकूँ तथा कंधे की चोट से हाथ ऐसे हो गये है कि सिर तक नहीं पहुँचते। ऐसी चोटों के लगने पर भी यह लौटना नहीं चाहता था पर इसके हितैषी बागडोर पकड़ कर लौटा लाये। गूजर खाँ ने इस युद्ध में अपनी विजय समझ कर ऊँचे स्वर से कहा था कि खानखानाँ का काम तमाम हो गया, अब युद्ध में और प्रयत्न का क्या काम है। पर इसके अनंतर धीरे से उसने कहा कि इस विजय के कारण भी मन प्रसन्न नहीं होता और इतने ही में एका एक एक तीर उसे लगा, जिससे वह मर गया। दाऊद, जो राजा टोडरमल्ल का सामना कर रहा था, यह सुनकर साहस छोड़कर भाग गया। खानखानाँ ऐसी निराशा के अनंतर इतनी बड़ी विजय पाकर राजा को शाहिम खाँ जलायर के साथ सेना के पीछे नियत कर स्वयं भी घावों को रहते हुए आगे रवाना हुआ। उड़ीसा के अंतर्गत कटक के दुर्ग मे दाऊद खाँ जा बैठा और अंत में चापलूसी की बातचीत कर संधि की प्रतिज्ञा की और बादशाही सेवा स्वीकार करने की शर्त पर भेंट करना निश्चय हुआ। सन् ९८३ हि० के प्रथम मुहर्रम को खानखानाँ ने संधि का जल्सा बड़े समारोह के साथ तैयार कराया जिसे देखकर लोग आश्चर्य मे पड़ गए। बादशाही सरदार गण स्वागत कर दाऊद को लिवा लाए। खानखानाँ ने गालीचे के सिरे तक जाकर स्वागत किया। दाऊद ने अपनी तलवार खोलकर उसके सामने रख दिया। उसका तात्पर्य था कि कि सैनिक सरदारी को छोड़ता हूँ और अपने को बादशाही सेवा में सौंपता हूँ तथा बादशाही सरदार गण जो उचित समझें करें। तबकाते अकबरी का लेखक कहता है कि दाऊद ने तलवार रख कर खानखानाँ से कहा था कि जब तुम्हारे से मित्रो को चोट पहुँचती तो मैं सैनिक कार्य से दुखी हूँ।

खानखानाँ ने उसकी तलवार को अपने सेवकों को सौंप दिया। कुछ दिन के अनंतर दरबार से आया हुआ भारी खिलअत देकर उसके कमर में जड़ाऊ तलवार बाँध दी और कहा कि हम तुम्हारी कमर बादशाही सेवा से बाँधते हैं। उड़ीसा के कुछ महाल उसके लिए जागीर मे नियत कर तथा उसके भतीजे शेख महम्मद को साथ लेकर खानखानाँ लौट गया। इसी समय खानखानाँ ने गौड़ नगर को अपना

निवासस्थान बनाया, जो पूर्व काल में बंगाल की राजधानी थी। इसका यह कारण भी था कि घोड़ा घाट भी पास है, जो विद्रोहियों का मूल स्रोत है और इससे उपद्रव एकबार ही शांत हो जायगा। यह स्थान मनोरंजक भी है, जहाँ भारी दुर्ग तथा बड़ी इमारतें हैं पर उसने इस बात को ध्यान में नहीं रखा कि समय के परिवर्तन तथा इमारतों की दुर्दशा से वहाँ की वायु बिगड़ गई है, विशेष कर पूर्ण वर्षा ऋतु में जब बंगाल के बहुत से नगरों में बाढ़ आ जाती है। इसे समझाने वालों ने बहुत कुछ कहा पर कुछ लाभ न हुआ। अशरफ खाँ तथा हाजी मुहम्मद खाँ सीस्तानी के समान तेरह बड़े सरदार और बहुत से मध्यम तथा साधारण वर्ग के लोग मर गए पर इसने कुछ ध्यान नहीं दिया, क्योंकि लोगों की सम्मति के विरुद्ध इसने ऐसा किया था। इसके अनंतर जब यह बीमारी बहुत बढ़ गई और बिहार प्रांत में जुनैद किर्रानी के विद्रोह करने पर उसे दमन करना आवश्यक हुआ तब यह युद्ध के लिए वहाँ से बाहर निकला। टाँडा पहुँचने पर साधारण बीमारी में २० वें वर्ष सन् ९८३ हि० (सन् १५७६ ई०) में यह मर गया।

इससे विचित्रतर बात न सुनी गई होगी कि यह अपने समय का वृद्ध तथा सम्मानित सरदार इतना अनुभव तथा सम्मान का ध्यान रखते हुए भी तुर्कों सी मूर्खता कर साधारण लोगों की बात में पड़ गया और बहुत से आदमियों को मौत के मुख में डाल दिया। दरबार के खास लोगों का विश्वास यह है कि बुद्धि के प्रकाश में, जो सांसारिक कामों का करने वाला है कार्य का उद्योग करते हुए उसके फल को ईश्वर पर छोड़ दे। यह नहीं कि ऐसी दूरदर्शी बुद्धि हाने और इतना सामान देखते हुए यदि बुरे जलवायु से हटना थोड़ा है तो उसमें जाना भी मना है। खानखानाँ अकबर के पाँच हजारी बड़े सरदारों में से था तथा सेनापति था। यह सरदारी के नियमों का ज्ञाता था, युद्ध कार्य में अनुभवी तथा दरबारदारी और युद्ध के नियमों का जानकार था। यह चौदह वर्ष तक अमीरुल उमरा तथा प्रधान सेनापति रहा। इसे कोई संतान न थी, इसलिए इसका सब सामान जब्त हो गया। पहिले लिखा जा चुका है कि इसका पुत्र गनी खाँ बड़ी निराशा में काबुल से लौटकर हिंदुस्तान आया था और जब मार्ग में पिता से मिला तब खानखानाँ ने, जो उससे अप्रसन्न था, इसे निकलवा दिया। वह भाग्य के सहारे आदिलशाह बीजापुरी के यहाँ जाकर रहा और कुछ दिन बाद वहीं मर गया। खानखानाँ के बनवाए पुलों में, जो वर्तमान तथा भविष्य में स्मारक रहेंगे, जौनपुर का पुल है, जिसकी तारीख 'सिरातुल्मुस्तकीम'[1] (सीधा मार्ग) से निकलती है। यह उत्तरी भारत के बड़े पुलों में से एक है।

---

१ अबजद से सन् ९८१ हि० निकलता है, जो सन् १५७४ ई० तथा सं० १६३१ वि० होता है।

५१०. मुनौवर खाँ शेख मीरान

यह खानजमाँ शेख निजाम का दूसरा पुत्र था। २९ वें वर्ष आलमगीरी मे पिता के साथ दरबार में आया। ३१वें वर्ष मे जब इसके पिता ने शंभा जी भोंसला को कैद करने में बहुत परिश्रम किया तब इसे मंसब में तरक्की तथा मुनौवर खाँ की पदवी मिली। ३९ वे वर्ष में इसका मंसब बढकर चार हजारी २५०० सवार का हो गया। ५० वें वर्ष मे यह मुहम्मद आजमशाह के साथ नियत हुआ, जो मालवा जा रहा था। औरंगजेब की मृत्यु पर यह उक्त शाहजादे के साथ हिंदुस्तान रवाना हुआ। जो युद्ध उक्त शाहजादे तथा बहादुर शाह के बीच आगरे के पास हुआ था उसमे यह अपने बड़े भाई खानआलम के साथ हरावली में नियत था। इसने अजीमुश्शान के सामने हाथी दौडाया और जब इसका बडा भाई तीर से घायल हो गया तब संसार इसकी आँखो मे अँधेरा हो गया। इसी समय जंबूरक के गोले से इसका काम समाप्त हो गया। इसका पुत्र मुनौवर खाँ कुतबी था, जिसकी जागीर बरर प्रात के मुर्तजापुर मे थी। निजामुल् मुल्क आसफजाह के दक्षिण के राज्य के आरंभ मे इसने अपनी शक्ति के बाहर सेना एकत्र कर लिया था। उस अद्वितीय योग्य सर्दार ने उपाय कर इसे कम कर दिया। यह अपनी मृत्यु से मरा। इसके पुत्र गण इहतसाम खाँ, जिसे अंत में खानजमाँ की पदवी मिली थी, एजाज खाँ तथा अन्य थे। हर एक को पैतृक जागीर में भाग मिला था। लिखते समय ये सब मृत हो चुके थे केवल उसका अल्पवयस्क पुत्र फकीर मुहम्मद बचा हुआ था जो इनकी उनकी नौकरी कर काम चलाता था।

०

५११. मुबारक खाँ नियाजी

यह मुहम्मद खाँ नियाजी[१] के पुत्र का लड़का था। मुबारक खाँ का पिता मुजफ्फर खाँ उन्नति न कर मर गया। यह अवस्था प्राप्त होने पर जहाँगीर की सेवा मे नियत हो गया। जब शाहजहाँ के ३ रे वर्ष में बादशाह बुर्हानपुर में जाकर ठहरे तब इसका मंसब बढ़ाकर एक हजारी ७०० सवार का कर दिया और राव रत्न के साथ तेलिंगाना प्रांत को भेजा। जब उस प्रांत की सेनाध्यक्षता नसीरी खाँ खानदौराँ को फिर मिल गई, जिसके वंश की वीरता तथा साहस पैतृक था और प्रयत्न तथा

---

१. इसकी जीवनी इसी भाग में आगे दी हुई है।

परिश्रम करना जिसके बाएँ हाथ का काम था, तब मुबारक खाँ भी उक्त खाँ के साथ कंधार दुर्ग के घेरे में ब ुत प्रयत्न कर पाँच सदी ३०० सवार की तरक्की पाकर सम्मानित हुआ। थोड़े ही समय मे बराबर बढ़ने से इसका मंसब दो हजारी २००० सवार का हो गया। खानदौरा के साथ ऊदगिरी तथा ओसा दुर्गों के विजय करने मे इसने बहुत प्रयत्न कर अपनी राजभक्ति तथा वीरता दिखलाई तब उस सर्दार की प्रार्थना पर १० वें वर्ष मे इसे झंडा व डंका मिल गया। इसने एक मुद्दत बरार प्रांत में व्यतीत कर दिया। आश्टी कस्बे की बस्ती के लिए इसने बहुत प्रयत्न किया, जिसे इसके दादा ने अपना निवास स्थान बना लिया था और इसके चाचा अहमद खाँ नियाजी ने इमारतें बनवाई थी और इस कारण जो अबतक इसके नाम मे प्रसिद्ध हैं। इस्लाम खाँ मशहदी की प्राताध्यक्षता के समय किसी काम को लेकर एक दिन कडी बातें हो गईं। क्रोध तथा लज्जा से यह चुप नहीं रह सका और दरबार चल दिया। दरबार मे उपस्थित होने पर बादशाही कृपा प्राप्त कर राजधानी काबुल के सहायको में नियत हुआ। २७ वें वर्ष मे दोनो बंगश का थानेदार तथा जागीरदार नियत हुआ, जो सुलेमान शिकोह को पुरस्कार मे मिला था। जब उपद्रवियो के उस घर का यथोचित प्रबंध न हो सका तब २९ वे वर्ष मे उस पद से हटाए जाने पर उसी प्रांत मे नियत हुआ। औरंगजेब के २रे वर्ष मे हुसेन बेग खाँ के स्थान पर दूसरी बार बंगाल का फौजदार नियुक्त किया गया। इसकी मृत्यु का समय नही ज्ञात हो सका। फकीरों का मित्र था और दर्वेशो की सेवा करता। इसके बाद इस वंश मे किसी ने उन्नति नही की। अब आश्टी में खँडहरो के सिवा कोई चिह्न नही रह गया।

•

५१२. मुबारिज खाँ एमादुल् मुल्क

इसका नाम ख्वाजा मुहम्मद था और बचपन ही मे अपनी माँ के साथ यह स्वदेश बल्ख से हिंदुस्तान आकर जब पंजाब के अंतर्गत गुजरात मे ठहरा तब इसको प्रसिद्ध शाह दौला की सेवा मे ले गए, जो सूफी और फकीर था और जिस पर पंजाब के निवासियो का विश्वास था। उस ऐश्वर्य तथा भाग्य के शुभ सूचक फकीर ने इस लडके को अपने फकीरी वस्त्र का एक टुकडा दिया। इसके अनंतर अवस्था प्राप्त होने पर यह व्यवसाय की खोज मे यौवन के आरंभ मे मिर्जा यार अली के पास पहुँचा, जो छोटे मंसब पर होते भी बादशाह ने मिजाज में बहुत स्थान कर चुका था। मिर्जा ने अपने हस्ताक्षर किए हुए कागज इसे दिए और इससे काम

लेने लगा। यहाँ तक कि मिर्जा की कृपा से इसकी अवस्था बहुत अच्छी हो गई और बादशाही मसब पाने पर थोडे दिनो में यह तृतीय बख्शी का पेशदस्त नियत हो गया। इसके बाद सर्दार खाँ कोतवाल का नायब हो कर इसने नाम कमाया। इसी समय इनायतुल्ला खाँ की पुत्री से जो कश्मीर के बडे लोगो मे से था, इसने निकाह किया। इसकी सुदशा के उद्यान मे तरी आ गई और ऐश्वर्य के उपजाऊ क्षेत्र मे नई तरावट पहुंची। इसका मसब बढाकर तथा इसे शाहजादा मुहम्मद कामबख्श के सरकार का बख्शी नियत कर सम्मानित किया। पर्नाला दुर्ग के घेरे के समय शाहजादा की सेना के साथ यह मोर्चों का अध्यक्ष रहा। इसके अनंतर सगमनेर का फौजदार नियत हुआ, जो औरगाबाद का निश्चित खालसा महाल था। अपनी अच्छी सेवा तथा प्रबंध के कारण इसे अमानत खाँ की पदवी मिली। ४७ वे वर्ष मे इसके साथ बैजापुर की फौजदारी, जो औरंगाबाद से चौबीस कोस पर है, और एक हाथी मिला। बहादुरशाह के समय इसे सूरत बंदर की फौजदारी तथा मुत्सद्दीगिरी पर नियत कर वहाँ भेज दिया।

जब गुजरात का प्रांताध्यक्ष खाँ फीरोज जंग मर गया तब मुबारिज खाँ ने शीघ्रता से अहमदाबाद पहुँच कर कोष तथा कारखानों को जब्त करने और उस विस्तृत प्रांत की रक्षा तथा प्रबंध करने का साहस दिखलाया। दरबार से इसका मसब बढाया गया और यह गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत किया गया। जब जहाँदार शाह बादशाह हुआ तब उस प्रात पर सर बुलंद खाँ नियत हुआ और इसे कोकल्ताश खाँ खानजहाँ की मध्यस्थता से मालवा की सूबेदारी मिली। इसके अनतर उज्जैन पहुँचने पर, जो उस प्रात की राजधानी थी, इसने रामपुरा के जमींदार रत्नसिंह चदावत के साथ पहिले संधि की बातचीत की। इसने औरंगजेब के समय अपने देश में मुसलमान होकर इस्लाम खाँ की पदवी पाई थी पर इस समय राज्य के कुप्रबंध से उसके मूर्ख दिमाग में विद्रोह का विचार पैदा हो गया और सेना इकट्ठी कर वह बादशाही महालो पर अधिकार कर अत्याचार कर रहा था। प्रसिद्ध यह है कि जुल्फिकार खाँ ने कोकल्ताश खाँ से वैमनस्य रखने के कारण राजा को सकेत कर दिया था कि मुबारिजखाँ के अधिकार काल मे उपद्रव करे, जिससे इसकी बदनामी से इसके संरक्षक की बदनामी हो। इस्लाम में निर्बल पर उपद्रव में सबल उस विद्रोही ने घमड से संधि की बात स्वीकार न कर झगडा बढाया और दिलेर खा रुहेला को, जो उस प्रात के प्रसिद्ध जमींदारो मे से था भारी सेना के साथ कस्बा सारंगपुर पर भेजकर वहाँ के थानेदार अब्दुर्रहीम बेग को हटा दिया और बहुत से लोगों को मार डाला तथा कैद किया। साहसी वीर मुबारिज खाँ उस विद्रोही के इस अत्याचार को अधिक सहन न कर सका और अपनी सेना सहित, जो तीन सहस्र सवार से अधिक न थी, युद्ध करने के विचार

से फुर्ती से कूच कर उस कस्बे के पास, जो उज्जैन से तेईस कोस पर है, पहुँचा और युद्ध की तैयारी की। उस विद्रोही ने बीस सहस्त्र सवारों के साथ मैदान में पहुँचे कर साहस से उक्त खाँ को तीन ओर से तीन सेनाओ से घेर लिया, जिससे उसे जीवित ही कैद कर ले। इनमें बहुत से प्रसिद्ध अफगान थे, जिनमे एक दोस्त मुहम्मद रुहेला तीन चार सहस्त्र सवारो के साथ नौकरी करता था और जिसने अभी तक उस प्रांत मे कुछ जमीदारी नही जमाई थी। गोली तीर बरसाने के बाद, जो युद्ध की आग को भड़काने वाला है, खूब मारकाट हुई और प्रयत्न भी अच्छे हुए। ईश्वरी कृपा से इसी समय इसकी विजय हुई। विजय के बाद राजा को युद्ध स्थल में किसी ने पड़े हुए देखा तो उसका सिर काट लाया। प्रकट हुआ कि युद्ध काल मे रहकले की गोली उसके पांव में लग गई थी। मुबारिज खाँ ने बहुत लूट प्राप्त होने पर विचार किया कि उस विद्रोही के देश रामपुरा को लूटे पर उसकी स्त्री ने आकर रो-पीट तथा भेंट देकर इसे इस विचार से रोका। जहाँदार शाह ने प्रशंसा का फर्मान तथा शहामत खाँ की पदवी भेजी।

मुहम्मद फर्रुखसियर के राज्यकाल के आरभ में इसे दुबारा गुजरात की सूबेदारी मिली। यह दो सप्ताह भी वहाँ का प्रबध नही कर पाया था कि दाऊद खाँ पन्नी को वहाँ की सूबेदारी पर नियत कर दिया। उक्त खाँ को मुबारिज खाँ की पदवी देकर तथा हैदराबाद का सूबेदार बनाकर वहाँ भेज दिया। लगभग बारह वर्ष के यह उस विस्तृत प्रात मे प्रबंध करता रहा। उपद्रवियो का दमन कर के यह कर देने वाली प्रजा का पालन करता रहा। यह अशांति मे एकदम भी नही सुस्ताता था और पहुँच कर एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रबध करता रहा। यद्यपि यह तीन सहस्त्र से अधिक सेना नही रखता था पर मराठों की भारी भारी सेना परास्त कर भगा देता था। एक उपद्रवी जब कभी इसकी सीमा मे पैर रखता तभी हार खाता और जब इस प्रांत को लूटने का विचार करता तब इसके हाथ की चोट पाकर जान लेकर भागता।

जिस समय अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ दक्षिण का सूबेदार होकर आया तब उक्त खाँ मिलने के लिए औरंगाबाद आया। अमीरुल्उमरा ने इसका परिचय प्राप्त कर इसकी योग्यता के अनुसार इससे व्यवहार कर इसे अपने स्थान को विदा किया। जब आसफजाह मुहम्मदशाह बादशाह के प्रति स्वामिभक्ति का बीडा उठाकर मालवा से दक्षिण को चला तब उक्त खाँ मौखिक वचन मित्रता का दे चुका था इसलिए हैदराबाद से रवाना हुआ। इसके बाद जब आसफजाह शत्रुओ के युद्ध से छुट्टी पाकर औरंगाबाद मे आकर ठहरा तब वहाँ पहुँच कर इसने भेट किया। दोनो ओर से आपस मे साथ देने की फिर से बातें हुई और इसके लिए सात हजारी ७००० सवार का मसब तथा एमादुल्मुल्क की पदवी प्रस्तावित होने

से यह सम्मानित हुआ। दैवयोग से इसी समय सैयदों ने, जिनके भय से रात्रि में लोग सो नहीं पाते थे, अपने भाग्य-दिवस बीतने पर असफलता का मार्ग पकड़ा और सब उपद्रव शांत हो गए। उक्त खाँ ने पुत्र के निकाह की तयारी की और महफिल जमाया। इसी समय आसफजाह ने दरबार जाना निश्चय किया। दूरदर्शी भला चाहने वाले इस खाँ की इसमें सम्मति न थी और इसने बहुत मना भी किया था। दैवयोग से फर्दापुर की घाटी तक पहुँचने पर दक्षिण में ठहरने के लिए कुछ कारणों को पैदा कर लौट आया और खाँ को उसकी सम्मति की प्रशंसा में पत्र लिखा, जिसमें यह शैर दिया था। शैर—

जवान लोग जो आईने में देखते हैं,
वह वृद्ध पुरानी मिट्टी में देख लेते हैं॥

इसके अनंतर आपस में एक राय निश्चित कर आसफजाह फत्हजंग अर्काटी की ओर गया और दक्षिण के सरदारों तथा अफगानों से, जो बहुत दिनों से डाकूपन से धन संचित कर रहे थे, भेंट तथा कर माँगा। उक्त खाँ समय को पहिचानने वाला था और वह अपने ताल्लुके पर जाकर वहाँ से थोड़े आदमियों के साथ आकर उससे मिल गया, यद्यपि वह चाहता था कि अच्छी सेना व शक्ति के साथ आकर प्रभाव बढ़ाता। जब इसने मितव्ययिता करने का उपाय न देखा, क्योंकि उस ओर के सरदार गण प्रभुत्व के अधीन होकर जो कुछ कहते वही उन्हें 'तन' से दिया जाता था तब यह आप भी उसी जलाशय से जल पीने लगा तथा सब आपस में मिल गए। फत्हजंग की जो इच्छा थी वह सौमें एक भी पूरी न हुई। यद्यपि अवसर समझ कर उसने प्रगट में प्रसन्नता नहीं दिखलाई और न चिड़चिड़ाया पर मन में बहुत मालिन्य रख लिया। इस समय से वह तथा दक्षिण के अन्य शासकगण ने एकदम पूछताछ से मन हटा कर सिकाकोल, जो खालसा था और हाथ खींच कर वह कभी कुछ आय कोष में जमा कर देता था, तथा उस प्रांत के दूसरे महलों पर स्वामी की तरह अधिकृत हो गया। जब नवाब फत्हजंग दरबार जाकर वजीर हुआ तब मुबारिज खाँ के, इसके पुत्रों तथा साथियों के मंसबों की स्वीकृति देते समय उनमें कमी कर हानि पहुँचाई और अपने वकील के द्वारा खालसा के धन को भी माँगने का मौखिक प्रयत्न किया तथा अपने हृदय की बात प्रकट कर दी। जब काबुल के प्रबंध की बात आई तब आसफजाह ने बादशाह से कहा कि सिवा मुबारिज खाँ के कोई दूसरा इसके योग्य नहीं है। इसने मित्रता की ओट में अपना काम निकालना चाहा। इसके अनंतर जब दक्षिण प्रांत के बदले वजीरी के साथ गुजरात व मालवा की प्रांताध्यक्षता पर आसफजाह नियत हुआ तब अनजान सूबेदार के होने से यह अच्छा समझ कर कि मुबारिज खाँ उस पद पर होवे क्योंकि दोनों के स्वत्वों को समझते हुए वह अधिकारी है, इसने इसकी बादशाह से भी

प्रार्थना की। मुबारिज खाँ को भी लिख पढ उसने इस पर राजी कर लिया। परंतु इसी समय इसके ससुर इनायतुल्ला खाँ ने, जो दरबार मे खानसामाँ तथा नायब वजीर था, बादशाह के संकेत पर इसे सब्ज बाग दिखला कर इसका लालच बढा दिया और उसकी आशा बलवती कर दी। उक्त खाँ पुराना अनुभव तथा योग्यता रखते हुए अपनी बात से हट गया और नवाब फत्हजंग की कृपाओं के होते भी उसने सेवा तथा स्वामिभक्ति से बादशाही कामों को करना निश्चित किया। फूलझरी गढी के घेरे मे, जो मछली बंदर के पास है और जहाँ का उपद्रवी जमींदार आपाराव दुर्ग में बैठ कर वीरता से युद्ध कर रहा था, छ सात महीने बिना दिए थे कि दक्षिण की सूबेदारी का फर्मान आ पहुँचा। उक्त खाँ कुछ दिन घेरे मे और व्यतीत कर तथा संधि से दुर्ग पर अधिकार हैदराबाद लौट गया।

दक्खिनी अफगान भी इस काम के लिए प्रयत्न कर रहे थे। कर्नोल का फौजदार बहादुर खाँ पन्नी, कड़प्पा का फौजदार अब्दुल्गनी का पुत्र अबुल्फत्ह, अब्दुल् मजीद खाँ, जो दिलेर खाँ के पौत्र था और इसका पोष्य पुत्र अली खाँ तथा कर्णाटक के फौजदार सआदतुल्ला खाँ की ओर से अमीर अबूतालिब बदख्शी का पुत्र गालिब खाँ ने अच्छी सेना एकत्र कर ठीक वर्षाकाल में नानदेर के पास गंगा पार कर औंधिया के पास, जो बालाघाट बरार के सरकार के अंतर्गत एक पर्गना है, वर्षा व्यतीत करना चाहा। इसी समय नवाब फत्हजंग आसफजाह, जो दरबार के आदमियों के वैमनस्य के कारण शिकार के बहाने हट आया था, मालवा में मराठों के जोर का समाचार सुनकर भागीरथी गंगा के किनारे सोरो से उस प्रांत की ओर चल दिया। वहाँ के उपद्रवियों को शांत कर उज्जैन के पास से लौटते हुए पर्गना सिहोर पहुँचा था, जो सिरोंज के पास है, कि मुहम्मद इनायत खाँ बहादुर का पत्र औरंगाबाद से इसे मिला। इसका आशय था कि दूरस्थ दरबार के आदमियों के बहकाने तथा दक्खिनी अफगानों के कहने से मुबारिज खाँ दक्षिण की सूबेदारी स्वीकार कर तथा फर्मान आ जाने पर इस ओर आने का विचार कर रहा है और इनकी राय यहाँ तक बढी है कि सूबेदारी पर अधिकार करने के अनंतर दक्खिनी सेना के साथ मालवा जायँ। कुछ लोग दरबार से भी नियत हुए हैं। इस पर सेवकों से व्यर्थ की कष्टकर बात चीत हुई कि इसमे सिर मारना कठिन है। इसी आशंका के समय मुबारिज खाँ के वकील का पत्र उसके हाथ पडा जिससे इनायतुल्ला खाँ की मौखिक बातो का समर्थन हुआ और तब आशंका के निश्चित हो जाने पर वह दक्षिण लौटा। फुर्ती से कूच करता हुआ मुहम्मद शाह के छठे वर्ष के जीकदा महीने में वह औरंगाबाद पहुँचा। इसने पहिले झगड़ा तै करने के लिए एक पत्र लिखा जिसमे मुसलमानो के आपस के युद्ध के संबंध में उपदेश थे। साहसी

मुबारिज खाँ ने, जबकि काम इस सीमा तक पहुँच चुका था, हृदय छोटा करना तथा लौटना अपनी सरदारी तथा सेनापतित्व के, जो उस समय युद्ध सेवियों के अग्रणियों में से था, योग्य नहीं समझा, विशेष कर नौकरी के समय इस प्रकार के ओछे विचारों से कि जो हो नाम तथा शान के साथ हो, उसने उपदेश को नहीं माना और युद्ध को तैयार हुआ। आसफजाह भी बाजीराव आदि मराठों के साथ छ सहस्र सवार लेकर आगे बढ़ा और चार थाना पर्गना पहुँचा। मृत्यु-मुख में पड़ा हुआ मुबारिज खाँ वीरता तथा अनुभव रखते हुए अदूरदर्शियों के कहने पर जफर-नगर चला जो बहादुर खाँ का स्थान था तथा जहाँ अफगानों की बस्ती थी। शीघ्रता से दिन रात कूच कर उस कस्बे में पहुँच कर तथा वहाँ एकदम भी न ठहर कर सीधे औरंगाबाद की ओर चला। उसका विचार था कि यदि शत्रु घबड़ा कर पीछा करेगा तो जिस तोपखाने पर उसे गर्व है वह पहुँच न सकेगा और यदि उसे नहीं छोड़ेगा तो देर में पहुँचेगा। इससे दोनों अवस्थाओं में लाभ है और तबतक सरदार के परिवार व कोष, सेना का सामान तथा नगर, जो राजधानी है, अधिकार में लेकर युद्ध के लिए तैयार हो जाऊँगा। पूर्णा नदी पार कर यह दस बारह कोस दूर पर पहुँचा था कि लौट कर फिर इस पार आया। इसने यह समझा कि हिंदुस्तान में शत्रु के सामने से हट जाना भागने तथा शत्रु के विजयी होने के समान माना जाता है। उस समय इन पंक्तियों का लेखक आसफजाह के साथ था। उसी दिन मुबारिज खाँ का रोब और भय जाता रहा और विजय होने की, जो बहुधा निश्चित थी, संभावना हो गई। भयग्रस्त होना तथा भागना छोटे बड़े सबने मान लिया और लोगों ने मुबारकबादी की भेंट भी सरदार को दी। कवियों ने तारीखें कहीं। एक आदमी ने हिंदी में तारीख कही। मिसरा—डर गया मुबारिज खाँ (सन् ११३६ हि०, सन् १७२३ ई०)।

मुबारिज खाँ के नदी पार करते समय आसफजाह की ओर के कुछ अग्गल तथा करावल के सैनिक वहाँ पहुँच गए और खूब युद्ध हुआ। उसके तोपखाने का दारोगा तथा कुछ पैदल आ गए थे। उन सब ने वहाँ न रुककर कुछ मरहठों से युद्ध करते हुए धावे कर कठिनाई से कुछ कदम आगे बढ़े। निरुपाय हो शकरखीरला कस्बे में अपना सामान सुरक्षित छोड़कर स्वयं ससैन्य बाहर निकला। परंतु इन सब कामों में दो दिन रात बीत गए। बेसामानी के कारण किसी के पास केवल घोड़ा तथा चाबुक थी और इसके सैनिकों को इतना कष्ट हुआ, जो मरने से बढ़कर था। २२ मुहर्रम सन् ११३७ हि० को एक तिहाई दिन शुक्रवार बीता था कि दस सहस्र सवारों से कम सेना के साथ फतहजंग की ओर चला, जो अपनी सेना के दो भाग कर एक का स्वयं अध्यक्ष होकर और दूसरे का अध्यक्ष अजदुद्दौला एवज खाँ बहादुर को बनाकर उक्त कस्बे से दो कोस पर युद्ध के लिए तैयार था। इसने आसफजाह के दाहिने ओर स्थित एवज खाँ के दाएँ भाग

पर धावा किया। एकाएक एक नाला बीच में पड़ गया, जिसके काले दलदल में आदमी तथा जानवर छाती तक घुस जाते थे। इससे लाचारी से व्यूह टूट गया और परे बिगड़ गए। बड़ी कठिनाई पड़ी। यदि घोड़ा अलफ होता है तो स्थान की कमी से उसी प्रकार चलता है और यदि सवार गिरता है तो भूमि पर न पहुँच घोड़ों के दो सिरों तथा चूतड़ों पर रुका हुआ ऊपर ही ऊपर चला चलता है। अंत में बाएँ भाग के आदमी मार्ग में आ पड़े। बिजली तथा आग बरसानेवाले ऐसे तोपखाने के होते भी शत्रु को दाईं ओर छोड़कर दहाड़ते हुए शेर की तरह एवज खाँ के मध्य तथा अल्तमश के बीच लड़ते हुए आ पहुँचा। इसी बीच विजयी सर्दारगण घातक तोपों तथा जान लेनेवाली बंदूकों सहित सहायता को पहुँचकर उन वीरों के प्राण लेने लगे। मुबारिज खाँ अपने दो पुत्रों के साथ मारा गया और इनकी ओर के बहुत से सर्दारगण जैसे दाएँ भाग का सेना नायक बहादुर खाँ पन्नी, बाएँ भाग का अध्यक्ष मकरम खाँ खानजमाँ, हरावल का गालिब खाँ, अबुल्फतह मियान, अलीमर्दान खाँ हैदराबादी का पुत्र हुसेनी खाँ, अमीन खाँ दक्खिनी, जगदेवराव जादून (ये दोनों इसी तरफ आकर मिल गए थे) और मुहम्मद फायक खाँ कश्मीरी (जो उस मृत की सरकार का दीवान और अपने समय के गुणी पुरुषों में से था) साढ़े तीन सहस्र सैनिकों के साथ काम आए।

अनुभवियों पर प्रकट है कि उस असफल खाँ ने बिना समझे बहुत सा ऐसा काम किया जिसे न करना चाहिए था। पहिले फर्मान के मिलते ही यदि गढ़ी फूलचेरी से हाथ हटाकर इधर चला आता तो यहाँ तक काम न पहुँचता। इसके बाद भी इसे ज्ञात न था कि यह कार्य यहाँ तक तूल खींचेगा नहीं तो अधिक सेना व सामान इकट्ठा कर सकता था। यहाँ तक कि युद्ध के समय इससे बराबर वीर मराठा सर्दारों ने साथ देने का संदेश भेजा, विशेषकर कान्होजी भोसला थोड़ा धन लेकर पाँच सहस्र सवारों के साथ सहायता देने को तैयार था, पर इसने स्वीकार नहीं किया। इसने सोचा कि ये इससे पराजित तथा दमन किए गए हैं और अब इन्हें बराबरी का मानना पड़ेगा, इससे इनसे मिन्नत नहीं करूँगा। यदि बिना धन लिए आवें तो कोई हर्ज नहीं है।

संक्षेप में उसी कस्बे के पास हृदयग्राही जंगल में वह गाड़ा गया। वह वर्तमान सर्दारों का अग्रणी था, प्रत्युत् उस समय के सर्दारों से कुछ भी समानता नहीं रखता था। वह पुराने सर्दारों से मेल खाता था। वीरता तथा समझदारी थी और रईसी तथा शासन की योग्यता समान थी। दृढ़ता तथा साहस में पर्वत के समान था कि समय-परिवर्तन की तीव्र आँधी से इसकी दृढ़ता के स्तंभ हिलते न थे। ठीक विचार करने तथा उपाय निकालने में इतना सच्चा अनुमान करता कि इसके विचार का तीर निशाने से जरा भी दाएँ बाएँ नहीं जाता था। मिलने जुलने में वह कोई

रुकावट नही डालता था। यद्यपि यह मित्रो के सत्संग से वंचित न था पर नौकरों के पालन तथा मित्रो पर कृपा करने में बहुत बढकर था। अपने शरीर को आराम देने तथा आनंद करने में यह लिप्त न रहता। यह सैनिक चाल पर रहता, कार्यशील था, मामला समझनेवाला था और न्याय को शीघ्र पहुच जाता था। यह झगडे को बीच मे नही आने देता था पर शोक कि वह सब व्यर्थ गया और ऐश्वर्य की सीमा तक न पहुँचा। इनायतुल्ला खाँ की पुत्री से इसे पाँच पुत्र तथा एक पुत्री थी। इनमें से दो छोटे पुत्र असअद खाँ और मसऊद खा यौवन ही में पिता के साथ मारे गए। इनमें से एक मतलब खाँ बनी मुख्तार के पुत्र मतलब खाँ की पुत्री से ब्याहा था और दूसरा खानखानाँ बहादुर शाही के पुत्र मकरम खाँ खानजमाँ की पुत्री से। इनमें सबसे बडा ख्वाजा अहमद खाँ था, जिसे इसका पिता बराबर अपना नायब बनाकर नगर मे छोड जाता था। यद्यपि सब कार्य जलालुद्दीन महमूद खाँ की राय से होता था, जिसपर पुरानी मित्रता तथा सच्चाई के कारण मुबारिज खाँ का इतना विश्वास था कि उसके कृत्यो पर कभी उँगली न उठाता था। पिता की मृत्यु पर अपने सामान से दुर्ग मुहम्मदनगर उर्फ गोलकुंडा को ठीककर और वहाँ के किलेदार संदल खाँ को हटाकर अपने सामान, धन, परिवार आदि के साथ उसमे जा बैठा तथा बुर्ज आदि दृढ़कर एक वर्ष तक उसकी रक्षा की। यद्यपि इसको इन कार्यो से कोई संबंध न था क्योंकि यह बेचारा सदा दिन को सोता और रात्रि को जागता था पर उसने दूसरे हितैषियो की राय से यह काम किया। इसके अनंतर दिलावर खाँ के विचवई होने पर, जो इसका श्वसुर था तथा जिसकी सगी मौसी उससे ब्याही थी, इसे छः हजारी मंसब, शहामत खाँ की पदवी, उसी प्रांत में जागीर मे वेतन, सेवा-कार्य से छुट्टी तथा पिता के माल की माफी मिल गई और इसने दुर्ग दे दिया। कुछ दिन बाद हैदराबाद की जागीर के बदले इसे ओठपुर और कवाल मिल गया। अब वह बहुत दिनो से औरंगाबाद मे एकांतवास कर रहा है। वह किसी का काम नही करता और उसे खानदेश मे जागीर मिली है।

दूसरा पुत्र ख्वाजा महमूद खाँ है, जिसने युद्ध में बहुत चोट खाई थी पर अच्छा हो गया था। आसफजाह ने इसे पाँचहजारी मंसब और मुबारिज खाँ की पदवी दी। इस समय अमानत खाँ की पदवी के साथ खानदेश में आमनेरा का जागीरदार है। यह योग्य पुत्र है और पिता के समय दुर्गाध्यक्ष रहता रहा। यह वीर, अनुभवी तथा कर्मठ है। दर्वेशो का सत्संग रखता है और उनके सभी गुणों से युक्त है। यह आसफजाह का साथ कर सम्मानित है। तीसरा पुत्र अब्दुल्माबूद खाँ अपने पिता के जीवनकाल मे दरबार चला गया। मुहम्मद शाह ने इसके पिता के मारे जाने के बदले में इसे अच्छा मंसब, मुबारिज खाँ की पदवी तथा गुर्जबरदारो की दारोगागिरी दी। अब वह काम में नही है। पुत्री का निकाह इनायतुल्ला खाँ के

पौत्र से हुआ। श्वसुर के शासन में सिकाकोल का यह फौजदार था। इसके अनंतर आसफजाह ने इसे बीजापुर का सूबेदार बनाया, जहाँ इसने मराठा सर्दार ऊदा चौहान से कडी हार खाई। अंत में यह परेंदा की दुर्गाध्यक्षता करते मर गया। यद्यपि बेहूदा बोलनेवाला था पर अच्छे ढंग से कहता था। दूसरी संतान भी थी। इनमे एक हमीदुल्ला खाँ है, जिससे नवाब आसफजाह ने अपनी बहिन व्याह दी क्योंकि हिंदुस्तान में खून की शत्रुता को व्याह से नष्ट करने की प्रथा है।

•

५१३. मुबारिज खाँ मीर कुल

यह बदख्शाँ के सैयदो मे से था। शाहजहाँ के २३ वें वर्ष में अपने कुछ भाइयों तथा संबंधियो के साथ अपने वास्तविक देश से निकलकर बादशाही सेवा मे भर्ती होने की इच्छा से हिंदुस्तान आया और सौभाग्य से सेवा मे उपस्थित होने पर इसे पाँच सदी २०० सवार का मंसब तथा तीन हजार रुपए पुरस्कार मे मिले। यह योग्यता से खाली नही था इसलिए बराबर उन्नति करता रहा। २९वें वर्ष में डेढ़ हजारी १००० सवार का मंसब तथा काबुल प्रांत के अंतर्गत ऐमा व बहरा मौजो का जागीरदार नियत हुआ। ३१ वें वर्ष में अजीज बेग बदख्शी को, जो काबुल के सहायकों में नियत था, बलगैन मौजा के उपद्रवियों ने, जो महमूद एराकी की जागीर के अंतर्गत थे, धोखे से मार डाला। वहाँ के फौजदार बहादुर खाँ दाराशिकोही ने, जो पेशावर में रहता था बादशाही आज्ञानुसार मीर कुल को लिखा कि वह काबुल के नायब तथा वहाँ के नियुक्त लोगो और गिल्जई एवं सिली अफगानो के साथ उन्हें दमन करने जावे। इसने बड़ी चुस्ती व चालाकी से भारी सेना एकत्र कर चढ़ाई की। बडे साहस तथा उत्साह से इसने दुर्गम घाटी को सवारी के घोडो को हाथ से लेकर पार किया और उपद्रवियो तक पहुँच कर लड़ाई आरंभ कर दी। उनमे से बहुतेरे मारे गए। उनमें चौदह आदमी बहरा के प्रसिद्ध बलूक थे, जो सहायता को आए थे। लाचार हो बलगैन के उपद्रवी अपने पहाडी स्थानो को भागे। इसने भी उनका पीछा किया पर बर्फ तथा पत्थरो के आधिक्य से पैदल चलना पड़ा। बड़े साहस के साथ यह उनके रक्षास्थलो तक पहुँच गया। यद्यपि उन सब ने उन पहाडी स्थानो की रक्षा करने में बहुत प्रयत्न किया था पर इसने तथा इसके साथियो ने वीरता से उन सबको नष्ट कर लौटते समय उनके मकानों को जला दिया और अपने स्थान को लौट आए। इस सुप्रयत्न के उपलक्ष में इसे पाँच सदी की तरक्की, झंडा तथा मुबारिज

खाँ की पदवी मिली। आलमगीर के राज्यकाल में भी यह बहुत दिनो तक काबुल में रहा। ९ वें वर्ष मे यह कश्मीर का सूबेदार नियत हुआ। १३ वें वर्ष में लश्कर खाँ के स्थान पर मुलतान प्रांत का शासक बनाया गया। इसके अनंतर यह मथुरा का फौजदार हुआ। १९ वे वर्ष में यह उस पद से हटाया गया। बाद का हाल नही ज्ञात हुआ।

•

५१४. मुबारिज खाँ रुहेला

जहाँगीर के राज्यकाल में सर्दार बनाए जाने पर इसे तीन हजारी ३००० सवार का मंसब मिला। उस बादशाह के राज्यकाल से शाहजहाँ के राज्य के प्रारंभ तक लश्कर खाँ की सूबेदारी में यह काबुल में नियत रहा। बलख के शासक नजर मुहम्मद खाँ के सेनापति यलंगतोश उजबक के युद्ध में, जो खानजमाँ खान.जाद खाँ के साथ गजनी के पास हुआ था, मुबारिज खाँ बादशाही सेना के हरावल का अध्यक्ष था। उसमें इसने बडी वीरता तथा साहस दिखलाया। इसके बाद यह दक्षिण के सहायको मे नियत हुआ। दौलताबाद के घेरे मे इसने बडी बहादुरी दिखलाई। विशेष कर जिस दिन खानजमाँ कोष तथा रसद जफर॰गर से लेकर खिरकी मौजे में दाखिल हुआ, जो दौलताबाद से पांच कोस पर है और औरंगाबाद कहलाता है, उस दिन आदिलशाही तथा निजामशाही सेनाओ ने एक मत होकर असावधान बादशाही मध्य सेना पर धावा कर दिया। युद्धप्रिय सर्दार ने दृढता से घोर युद्ध किया। शत्रु कुछ न कर सकने पर लौटा और निकल जाने के प्रयत्न में चंदावल पर आक्रमण किया। जादोराय के पुत्र बहादुर जी की ओर से बिजली गिराने वाले बादल के समान धावा होकर अभागे शत्रु को हरा दिया और मुबारिज खाँ की ओर से, क्योंकि वह भी चंदावल में था, इसने स्वयं पहुँचकर तीव्र तलवार रूपी कैंची तथा तीर के टुकड़ों से थोड़े समय मे उस झुंड के बहुतों के सिरो को काट डाला और उन सबका रक्त, जिनपर मृत्यु के हाथ ने मनहूसी तथा दुर्भाग्य की धूल सर से पैर तक डाल रखी थी, मैदान की धूल में मिला दिया।

खानखानाँ महाबत खाँ की मृत्यु पर जब दक्षिण की सूबेदारी ८ वे वर्ष मे दो भागो में बांटी गई, तब बालाघाट खानजमाँ को और पायाँघाट खानदौराँ को दिया गया। उस समय सहायक लोग भी बाँट दिए गए। ये सब एक दूसरे की सम्मति से निश्चित किए गए थे। मुबारिज खाँ खानजमाँ के साथ दौलताबाद में नियत

हुआ और इसके मंसब में पांच सदी ४०० सवार बढ़ाए गए। इसके अनंतर दरबार में उपस्थित होने पर १५ वें वर्ष में इसका मंसब चार हजारी ४००० सवार का हो गया। काबुल में बहुत दिनों तक रहने के कारण यह अफगानों के युद्ध की चाल अच्छी प्रकार जानता था और उस प्रांत के संबंध में तथा वहाँ के युद्ध के सामान की जानकारी के कारण यह फिर वहीं सहायक नियत हुआ। १८ वें वर्ष सन् १०५६ हि० में देपालपुर की फौजदारी तथा जागीरदारी के समय घर के गिरने से यह मर गया। बड़प्पन तथा धर्म की आस्था के लिए यह प्रसिद्ध था। रोजा, निमाज तथा धार्मिक किताबों के पढ़ने मे यह समय बिताता था। इसके नौकर गण भी सवार या पैदल सभी कल्मा याद रखते थे, रास्ते चलते पढ़ते रहते और इससे पहिचाने जाते थे कि मुबारिज खाँ के नौकर हैं। कहते हैं कि यह विरक्ति तथा आचार में अब्दुल् अजीज के पुत्र उमर के समान था और उपाय तथा बुद्धिमानी में आस के पुत्र उमरू सा था। सारी अवस्था इसने सम्मान तथा विश्वास में बिता दिया।

५१५. मुर्तजा खाँ मीर हिसामुद्दीन अंजू

यह अजदुद्दौला मीर जमालुद्दीन का पुत्र था। इसके भाई मीर अमीनुद्दीन ने मिर्जा अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ की दामादी के कारण योग्यता प्राप्त की पर जवानी ही मे मर गया। इब्राहीम खाँ फत्हजंग के भतीजे अहमद बेग खाँ की बहिन मीर हिसामुद्दीन को ब्याही थी और उस संबंध के कारण इसने बहुत उन्नति की तथा यह उस साध्वी की आज्ञा तथा इच्छा को बहुत मानता था। जब बेगम नौरेजा तथा ईदों में बादशाही महल में जाती तो मीर का सामर्थ्य नहीं था कि बिना आज्ञा के अंत:पुर मे जा सके। जहाँगीर के राज्यकाल में इसे दृढ़ दुर्ग आसीर की अध्यक्षता तथा शासन मिला, जो दृढ़ता, विशालता तथा दुर्ग की अन्य विशेषताओं में बेजोड़ और साम्राज्य के प्रसिद्ध दुर्गों में से था।

जब युवराज शाहजादा शाहजहाँ ने बादशाही भारी सेना के पीछा करने की फुर्ती देखी और मांडू मे रहना उचित न समझा तब १७ वें वर्ष में बुर्हानपुर जाने की इच्छा से नर्मदा के पार उतरा तथा उतार को रोकने और कोष की रक्षा के लिए सेना नियुक्त कर उक्त दुर्ग के पास पहुँचा। इसने शरीफा नामक अपने सेवक को फर्मान के साथ मीर के पास भेजा, जिसमे लोभ तथा भय दोनों दिखलाया गया था। खानःजादी के विश्वास, पिता की प्रसिद्धि, विश्वसनीय कार्य तथा प्रयत्नों

की प्रशंसा का स्वामिभक्ति के कार्य पर दृष्टि न डालकर, दुर्ग में तोप, बंदूक, सामान तथा रसद के काफी होते, जितना किसी दूसरे बड़े दुर्ग में न होगा और उसकी दुर्गमता के होते कि एक वृद्धा भी रुस्तम का मार्ग रोक सकती थी, मीर शाहजहाँ का फर्मान पाते ही उन्नति के लोभ से, जो उसके सौभाग्य मे लिखी थी, एक दम दुर्ग शरीफा को सौंपकर स्वयं पुत्री-पुत्र के साथ शाहजहाँ की सेवा मे चला आया। शाहजादा ने उसकी प्रतिष्ठा तथा विश्वास बढ़ाकर बहुत सी कृपाएँ की।

शाहजहाँ ने राजगद्दी पर बैठने पर पहिले की सेवा के विचार से इसे चार हजारी ३००० सवार का मंसब दिया और उसी वर्ष मुर्तजा खाँ की पदवी तथा पचास सहस्र रुपए देकर शेर ख्वाजा के स्थान पर, जो ठट्टा के मार्ग से आते समय वहीं मर गया था, उस प्रांत का सूबेदार नियत किया। ईर्ष्यालु आकाश सफल पुरुषों का पुराना शत्रु है, इसलिए यह अपने स्थान पर कुछ दिन भी न रह पाया था कि दूसरे वर्ष के अंत सन् १०३९ हि० मे इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्रो मे से मीर समसामुद्दौला ने योग्यता दिखलाई। २१ वें वर्ष मे शाहजादा शुजाअ का यह दीवान नियत हुआ। २८ वें वर्ष मे शाहजादा का प्रतिनिधि होकर यह उड़ीसा प्रांत का अध्यक्ष हुआ और इसे डेढ़ हजारी ५०० सवार का मंसब मिला। इसी वर्ष के अंत मे इसकी मृत्यु हो गई।

०

५१६. मुर्तजा खाँ सैयद निजाम

यह पिहानी के मीरान सदरजहाँ का द्वितीय पुत्र था। यह ब्राह्मणी के पेट से हुआ था, जिसे मीरान बड़े प्रेम के साथ रखता था। इस कारण इसने इस पुत्र पर विशेष स्नेह रखकर उसकी शिक्षा में बहुत प्रयत्न किया। अपने जीवन ही में इसने बादशाह से इसका परिचय करा दिया और इसे अच्छा मंसब दिला दिया। मीरान की मृत्यु पर जहाँगीर ने इसे ढाई हजारी ८०० सवार का मंसब देकर सम्मानित किया। शाहजहाँ की राजगद्दी के प्रथम वर्ष मे पाँच सदी बढ़ने से इसका मंसब तीन हजारी २००० सवार का हो गया और इसे डंका मिला। मुर्तजा खाँ मीर हिसामुद्दीन अंजू की मृत्यु पर उक्त सैयद को मुर्तजा खाँ की पदवी मिली। जब महाबत खाँ खानखानाँ दक्षिण का सूबेदार नियत हुआ तब मुर्तजा खाँ भी वहाँ सहायक नियत हो साथ गया। इसके अनंतर जब सेनापति महाबत खाँ की वीरता से दौलताबाद के बाहरी दुर्ग ६ ठे वर्ष सन् १०४२ हि० में टूट गए तब महाबत खाँ ने चाहा कि एक सरदार को स्वामिभक्त,

सेवकों के साथ दुर्ग के रक्षार्थ छोड़कर स्वयं बुर्हानपुर जाय। इस कारण कि सभी बहुत दिनो तक दुर्ग के घेरे मे अनेक प्रकार के कष्ट झेल चुके थे और दिन रात बीजापुरी तथा निजामशाही सेनाओ से लड़ना पड़ता था और खाने का सामान भी नही रह गया था इसलिए जिस किसीसे कहा उसीने उन कठिनाइयो के कारण वह कार्य स्वीकार नही किया। प्रसिद्ध है कि महावत खाँ ने मुर्तजा खाँ से उसके सामान तथा सेना के स्वामी होने के कारण विशेष तर्क किया था। सैयद ने अस्वीकार पर इतना हठ किया कि महावत खाँ ने उससे स्वाधीनता का पत्र लिखा लिया।

जब खानदौराँ ने सुव्यवहार तथा दृढ सहायता के विचार से इस सेवा को स्वीकार कर लिया तब महावत खाँ ने चतुराई से सैयद मुर्तजा खाँ को दूसरो के साथ खानदौराँ की सहायता के लिए दुर्ग में छोड़कर उधर चला गया। इन्हीं कुछ दिनों में खानदौराँ के नाम दरबार से आज्ञापत्र आया कि उसने इसके पहिले बहुत कष्ट तथा परिश्रम उठाया है इसलिए वह दुर्ग मुर्तजा खाँ को सौंप कर तथा मालवा जाकर आराम करे, जहाँ का वह सूबेदार था। खानदौराँ मुर्तजा खाँ को दुर्ग मे छोड़कर तथा राजकोष का जो धन उसके पास था उसे दुर्ग के कार्य के लिए उसे देकर उस ओर चल दिया। इसके अनंतर मुर्तजा खाँ डलमऊ का जागीरदार नियुक्त किया जाकर वहाँ के उपद्रवियो को दंड देने के लिए भेजा गया। इसका देश उस स्थान के पास ही था अत इसने भारी सेना एकत्र कर उपद्रवियों को दमन करने में बहुत प्रयत्न किया। बराबर विजय प्राप्त करते हुए इसने अपनी वीरता दिखलाई। बहुत दिनों तक बैसवाड़ा तथा लखनऊ की फौजदारी में इसने दिन व्यतीत किया। अत मे वृद्ध हो जाने से निश्शक्त होकर यह विशेष सेवा कार्य नहीं कर सकता था इसलिए २४ वें वर्ष मे इसे मसब से छुट्टी देदी गई और उसके देश पिहानी की आय से बीस लाख दाम वार्षिक नियत कर दिया, जिसकी आय एक करोड दाम थी। इसके पुत्रगण मर चुके थे अतः इसके पौत्र अब्दुल्मुक्तदर तथा अब्दुल्ला के मंसब बढ़ाकर तथा दूसरे पौत्रो को योग्य मंसब देकर इस पर्गने का बचा अस्सी लाख दाम जागीर में दे दिया। इसके अनंतर बहुत दिनो तक वृत्ति पाते हुए यह समय आने पर मर गया। अब्दुल्मुक्तदर शाहजहाँ के समय में एक हजारी ६०० सवार का मंसब पाकर खैराबाद का फौजदार नियत हुआ।

५१७. मुर्तजा खाँ सैयद मुबारक खाँ

यह बुखारा का सैयद था। औरंगजेब के राज्यकाल में शिक्षित होने पर यह कुछ दिन रामकेसर दुर्ग का और कुछ दिन आसीर का अध्यक्ष रहा तथा कुछ दिन सुलतानपुर नजरबार का फौजदार रहा। इसके अनंतर सैयद मुहम्मद खाँ के स्थान पर यह दौलताबाद का अध्यक्ष नियुक्त हुआ। २९ वें वर्ष में इसे मुर्तजा खाँ की पदवी मिली तथा तीन हजारी मंसब हो गया। कहते हैं कि खानजहाँ से यह विशेष परिचय रखता था। जब इस के पुत्रों सैयद महमूद और सैयद जहाँगीर को खाँ की पदवी देने की बादशाह की इच्छा हुई तब खानजहाँ बहादुर ने प्रार्थना की कि सैयद महमूद कहता था कि उसके वंश मे कोई महमूद खाँ या फिरोज खाँ नही हुआ है। बादशाह ने कहा कि तुम्ही कोई प्रस्तावित करो। कहा कि सैयद महमूद को मुबारक खाँ और सैयद जहाँगीर को मुजतबा खाँ की दी जायँ। बादशाह ने कहा कि मुबारक खाँ तो पिता की पदवी है तब इसने प्रार्थना की कि मुर्तजा खाँ पदवी किस वंश के लिए रोक रखा गया है, इससे अच्छा कोई मनुष्य नही है। बादशाह ने स्वीकार कर लिया। मुर्तजा खाँ ४५ वें वर्ष सन् १११२ हि० (सन् १७०१ ई०) मे मर गया। 'किलेदार विहिश्त' से विशिष्ट शब्द किला हटाने से इसकी तारीख निकलती है। इसकी मृत्यु पर इसका बड़ा पुत्र सैयद महमूद मुबारक खाँ उक्त दुर्ग के महाकोट का अध्यक्ष नियत होकर मुहम्मद शाह के समय तीन हजारी मंसबदार हो गया। इसके बाद इसका पुत्र मुराद अली मुबारक खाँ हुआ, जिसका मंसब ढाई हजारी था और इसके स्थान पर इसका पुत्र सैयद जहाँगीर मुजतबा खाँ को अंबर कोट की अध्यक्षता मिली। इसके बाद इसके पुत्र सैयद अली रजा को पिता की पदवी के साथ वही कार्य मिला। इसकी मृत्यु पर इसके पुत्र सैयद अली अकबर को मुजतबा खाँ की पदवी के साथ पिता तथा दादा का पद मिला। इसके अनंतर उक्त दुर्ग सलाबतजंग के अधिकार में चला गया। उस समय तक इन स्थानों के दुर्गाध्यक्ष गण दक्षिण के सूबेदारो को जैसे हुसेन अली खाँ अमीरुल्उमरा, निजामुल्मुल्क आसफजाह तथा इसके पुत्रो को सिर नही झुकाते थे। जब उक्त सूबेदारों ने स्वतंत्र हो दुर्ग की जागीर जब्त करली तब मुहम्मद शाह ने दो लाख वार्षिक वृत्ति खजाने से इन ताल्लुकेदारो के लिए निश्चित कर दी। एक बार किसी कारण से दुर्गाध्यक्ष से क्षुब्ध होकर आसफजाह ने इस दुर्ग पर सेना भेजी। जब यह समाचार बादशाह को मिला तब फर्मान भेजा गया कि सारे दक्षिण मे केवल यही एक दुर्ग हमसे संबंध रखता है उसे भी तुम नही चाहते। आसफजाह ने बादशाही आज्ञा का विचार कर संधि कर ली और सेना लौटा ली।

५१८ मुर्तजा खाँ सैयद शाह मुहम्मद

यह बुखारा के सैयदो में से था। सुलतान औरंगजेब बहादुर की सरकार में यह खास चौकी के आदमियो मे भर्ती हो गया। जब उक्त शाहजादा पिता को देखने के बहाने दक्षिण से हिन्दुस्तान चला, तब इसे मुर्तजा खाँ की पदवी मिली। महाराज जसवत सिह के युद्ध में अग्गल का सर्दार नियुक्त होने पर इसने बडी वीरता दिखलाई। ७ वें वर्ष मे इसका मंसब बढकर पांच हजारी ५००० हजार सवार का हो गया। २१ वें वर्ष मे सन् १०८८ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। बादशाह ने ख्वाजासरा बख्तावर खाँ को हाल पूछने भेजा था। उत्तर में इसने कहा कि चाहता था कि स्वामी के कार्य में प्राण निछावर करूँ पर नही हुआ। दूसरे धन व रत्न छोड जाते हैं पर मैं अपने बदले कुछ जान छोड जाता हूँ। आशा है कि स्वामी के काम आवें।

इसकी मृत्यु पर इसके नौकरो मे से हजारी से चार सदी तक मसबदार हुए तथा प्यादे कारखानो मे भर्ती हो गए। सैयद वीर था और सेना को चुनकर तथा नियमित रखता था। इसका पुत्र सैयद हामिद खाँ था, जिसे ४ थे वर्ष मे खाँ की पदवी मिली। १५ वें वर्ष मे राद अंदाज खाँ के साथ सतनामियो के दमन करने में इसने बड़ी वीरता दिखलाई। १६ वें वर्ष मे कमायूँ के भूम्याधिकारी के पुत्र को दर्बार लिवा लाया, जिसका राज्य बादशाही सेना द्वारा पददलित किए जाने पर मुर्तजा खाँ द्वारा दोष क्षमा किया गया था। २० वें वर्ष मे सैयद अहमद खाँ के स्थान पर यह अजमेर का सूबेदार नियत हुआ। २१ वें वर्ष मे दरबार पहुंचने पर यह पिता के स्थान पर खास चौकी का दारोगा नियुक्त हुआ। २३ वें वर्ष में सोजत व जैतारण के उपद्रवियो को दमन करने और २४ वें वर्ष मे मेडता की ओर के राठौड उपद्रवियो को दंड देने मे इसने अच्छी सेवा की। इसके बाद मुजाहिद खाँ की पदवी से सम्मानित होने पर ३५ वे वर्ष में मेवाब की फौजदारी मिली और मंसब बढकर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया। मरने का वर्ष नहीं ज्ञात हुआ।

५१६. मुर्शिद कुली खाँ खुरासानी

यह सैनिक वृत्ति के तुर्कमानों में से था और अनुभवी तथा योग्य था। आरंभ में कंधार के शासक अली मर्दान खाँ जैक का सेवक था। जब उक्त खाँ ने वह दृढ़ दुर्ग बादशाही सेवकों को सौंपकर दरबार में सेवा स्वीकार कर लिया तब उसके कुछ अच्छे नौकर भी बादशाही सेवा में भर्ती हो गये। इन्हीं में मुर्शिद कुली खाँ भी अपने सौभाग्य से बादशाह का परिचित सेवक होकर कृपापात्र हो गया। शाहजहाँ के १९ वें वर्ष में कांगड़ा के नीचे के पार्वत्य स्थान का खंजर खाँ के स्थान पर यह फौजदार नियत हो गया। जब बल्ख और बदख्शाँ की सूबेदारी शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर को मिली तब यह उसके साथ की सेना का बख्शी नियत हुआ। २२ वें वर्ष में जान निसार खाँ के स्थान पर यह आख्त: बेगी नियत हुआ। २४ वें वर्ष में यह लाहौर का बख्शी नियत हुआ। जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर २६ वें वर्ष में दक्षिण का शासक नियत हुआ तब इसका मंसब बढ़ाकर डेढ़ हजारी ५०० सवार का कर दिया और बालाघाट दक्षिण का दीवान नियुक्त कर शाहजादे के साथ विदा कर दिया। उस सेवाकार्य में इसने अच्छी सफलता दिखलाकर अपनी योग्यता तथा दूरदर्शिता प्रगट की जिससे शाहजादे की प्रार्थना पर २७ वें वर्ष में पाँच सदी मंसब बढ़ा और इसे खाँ की पदवी मिली। २९ वें वर्ष में ५०० सवार और बढ़ाकर इसे मुलतफित खाँ के स्थान पर फिर बालाघाट दक्षिण का दीवान नियुक्त कर दिया।

इसके अनंतर जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब, जिसके भाग्य में विजय लिखी थी, इस कार्य में लगा कि राजधानी पहुँचकर दाराशिकोह के प्रभुत्व को कम करे, जो शाहजहाँ के स्नेह के कारण अपने किसी भाई को अपने बराबर न समझकर मनमाना कर रहा था और राज्य प्रबंध में शाहजहाँ का नाम के सिवा कुछ नहीं बच पाया था तथा कुल प्रबंध इसी विचार के अनुसार होने लगा था। थोड़े ही समय में भारी सेना तथा सुसज्जित तोपखाना तैयार हो गया। उस प्रांत में जो बादशाही सेवक थे उनमें जिनका भाग्य ने साथ दिया उन सब ने शाहजादे का साथ दिया। मुर्शिद कुली खाँ में योग्यता तथा प्रयत्नशीलता उसके कार्यों से प्रकट थी और अपने बराबर के स्वामिभक्त सेवकों से बढ़कर इसने स्वामिभक्ति के कार्य पूरे किये थे इसलिए मीर जिया'उद्दीन हुसेन इस्लाम खाँ के स्थान पर, जो शाहजादा मुहम्मद सुल्तान के साथ अगल के रूप में औरंगाबाद से बुर्हानपुर गया था, शाहजादे की सरकार के दीवान के उच्च पद पर नियुक्त किया गया और इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी हो गया। जब १० रज्जब सन् १०६७ हि० को शाहजादे की सेना अकबरपुर के उतार से नर्मदा पार कर गई और उसी महीने की २२ वीं की

महाराज जसवंत सिंह से, जो मूर्खता तथा साहस से उज्जैन के पास उस शाहजादे के मार्ग मे रुकावट बन बैठा था, युद्ध हुआ, जो उक्त विजयी शाहजादे का प्रथम युद्ध था। प्रसिद्ध राजपूत गण ने जैसे मुकुंदसिंह हाडा, रत्न राठौड़, दयालदास झाला और अर्जुन गौड़, जो उस वीर जाति के सर्दार थे, प्राणो का मोह छोड़कर धावा कर दिया और पहिले शाहजादे के तोपखाने पर आक्रमण किया, जिसका प्रबंध उस दिन मुर्शिद कुली खाँ की बहादुरी तथा साहस पर निर्भर था तथा जो वीर और विद्वान सर्दारो मे से एक था। उक्त खाँ ने हरावल के अधिनायक जुल्फिकार खाँ के साथ शत्रुओं की संख्या के अनुसार योग्य सेना न रखते हुए भी दृढता से डटे रहकर अपना प्राण गँवा दिया। खूब मार काट, प्रयत्न आदि करने पर, जो सैनिकत्व तथा कार्यशक्ति की सीमा है, वीरता से जान निछावर कर दिया और स्वामी के निमक को चुकाकर ख्याति प्राप्त की।

मुर्शिदकुली खाँ बहादुरी के जोश तथा सिपहगरी के नशे में मुत्सद्दियो सी समझ रखता था। सचाई तथा खुदा से डरने में भी अपने ही सा था। दक्षिण की की दीवानी के समय प्रजा के रंजन तथा शांति मे प्रयत्न करते हुए देश की आबादी बढाने में यह सदा दत्तचित्त रहा। काम समझने तथा न्याय की दृष्टि से इसने खेतो को बाँटकर हर एक जिन्स का नमूना लिया और दस्तूर निश्चित किया। कहते हैं कि सावधानी के लिए कि कहीं कुछ पक्षपात न हो जाय कभी कभी स्वयं जरीब अपने हाथ में लेकर जमीन नापता था। उसकी नियत का फल है कि अमर अवस्था पाई। अर्थात् इस दस्तूरुल् अमल के कारण इसका नाम जमाने के पृष्ठ पर सृष्टि के अंत तक बना रहेगा।

यह जान लेना चाहिए कि विस्तृत उपजाऊ दक्षिण प्रांत में माल विभाग की आय की जाँच बीघे, जरीब से खेतो की नाप, भूमि के भेद, अन्न के विभेद आदि को लेकर पहिले नहीं हुई थी खेतिहर एक हल दो बैल से जो कुछ जोत सकता था उसीके अनुसार हल पीछे थोडा सा हर प्रकार का जिन्स नगरो तथा पर्गनो के भेद से हाकिम को दे देता था। इसके बारे में कुछ पूछताछ नहीं होती थी। इसके अनतर यह प्रांत हिंदुस्तान के सुलतानो की चढाइयो से रौंदा गया तथा प्रजा मुगल और नए प्रबंध से डरकर अपना स्थान छोड़कर भागी। वर्षा की कमी तथा कई वर्ष के अकाल से यहाँ तक उजड़ापन आ गया कि ४ थे वर्ष मे शाहजहाँ ने खानदेश प्रांत मे चौंतीस करोड़ दाम वास्तविक आय में कम कर दिया। तब भी वह अपनी वास्तविक स्थिति मे नहीं आया और और इसके बाद मुर्शिद कुली खाँ का समय आया। उक्त खाँ ने बड़ी कर्मठता तथा सहन शीलता से अपनी ही सुसम्मति से राजा टोडरमल के भूमिकर नियमो को, जो अकबर के समय से हिंदुस्तान मे जारी किया। पहिले अस्त व्यस्त हुई प्रजा को अपने अपने स्थान पर एकत्र करने का

प्रयत्न किया और स्थान स्थान पर समझदार अमीन तथा सच्चे आमिल नियत किए कि पर्गनों के खेतों की नाप कर डालें, जिसे रकबा कहते हैं और खेती योग्य तथा पहाड नाले को, जहाँ हल नही चल सकते, अलग दिखलावें जिस गाँव में मुकद्दम नही थे या उसके उत्तराधिकारी घटनाओ के कारण अज्ञात हो रहे थे, वहाँ वैसा मुकद्दम नियत कर खेती करवाई, जो आबादी बढाने तथा प्रजा का प्रबंध करने योग्य मिला। बैल तथा खेती का सामान खरीदने के लिए सरकार से धन दिया, जिसे तकावी कहते हैं और आमिलों को आज्ञा दी कि फसल पर उसे वसूल करें। खेतिहरों से तीन प्रकार का समझौता तै किया। पहिले जांच करना, जो पहिले समय से चला आता है। दूसरा गल्ले का बँटवारा, जिसे तबाई कहते हैं और जो तीन प्रकार का है। प्रथम वह है जो वर्षा के पानी से उसीके बीच पैदा होता है, उसका आधा आधा निश्चित किया। द्वितीय वह जो कुएँ के पानी से उत्पन्न होता है उसमे गल्ले का तिहाई भाग सरकार का और दो तिहाई भाग प्रजा का तै किया। गल्ले के सिवा अंगूर, गन्ना, जीरा, ईसबगोल आदि में सिंचाई के व्यय तथा तैयारी के विचार से नवे से चौथे भाग तक सरकार का और बाकी प्रजा का। तृतीय वह है जो नालों तथा नहरों के जल से, जो नदियो को काटकर लाए गए है, खेती करते हैं और जिसे पाट कहते हैं उसमें कुएँ के विरुद्ध एक या अधिक विभिन्न प्रकार से निश्चित किया। तीसरा अमल जरीब अर्थात् हर प्रकार के अन्न शाक भाजी, मेवे तथा फल का चौथाई उनके निर्ख, थोड़े होने तथा विभिन्नता के विचार से खेती के समय से काटने तक प्रति बीघा निश्चित किया, जिसमे जरीब के बाद उसको वसूल करें। यह नियम दक्षिण के तीन चार प्रांतो मे क्योकि उस समय तक इतने ही प्रात बादशाही अधिकार में आए थे, प्रचलित होकर मुर्शिदकुली खाँ के नाम से प्रसिद्ध है।

इसके पुत्र अली बेग को औरंगजेब के ४ थे वर्ष में एहतमाम खाँ की पदवी मिली और दूसरे पुत्र फज्लअली बेग को ३२ वे वर्ष में दीवान आला की कचहरी की वकायानवीसी का पद मिला। खाँ की पदवी देने के समय बादशाह ने पूछा कि अपने नाम के साथ खाँ की पदवी चाहते हो या पिता की पदवी। फज्लबेग ने कुछ बातों के विचार से मुर्शिद कुली खाँ की पदवी स्वीकार की। औरंगजेब ने कहा कि मैंने और कुर्बान अली की माँ ने उस मूर्ख से कहा कि अली छोड़कर कुली क्यो होते हो, फज्ल अली खाँ अच्छा है। इसके अनंतर यह शाहजादा मुहम्मद मुइज्जुद्दीन का दीवन नियत हुआ, जिसे कैद से छुट्टी मिल चुकी थी। ४२ वें वर्ष मुलतान प्रान्त की दीवानी इसे मिली। उक्त खाँ के एक मित्र के मुख से सुना गया है और विश्वास से खाली नही है कि जब दक्षिण से मुलतान जाने की छुट्टी पाई तब कितनी सफलता तथा उत्साह से इसने कूच किया और आशा के हाथ न हृदय

के ताक पर इच्छा के कितने शीशे न चुन दिए पर जब लाहौर पहुँचा तब यात्रा की थकावट मिटाने को कुछ दिन आराम किया। प्रतिदिन सवेरे बाग की सैर और शाम को मजलिस होती। एकाएक इसका भाग्य फूट गया कि उस नगर के शासक के नाम बादशाही फर्मान आया कि फज्ल अली खाँ को हथकड़ी बेडी से जकड़कर दरबार भेज दे। उसने आज्ञानुसार काम किया। जब इस घटना का हाल वहाँ के अखबार लेखकों द्वारा बादशाह को सुनाया गया तब ज्ञात हुआ कि वह फर्मान जाली था। वह बेचारा बिना कारण के दंडित हुआ। उसी समय गुर्जबर्दार लोग नियत हुए कि जिस जगह पहुँचा हो वहीं कैद से छुडाकर उसका जो सामान लाहौर मे जब्त हुआ हो वह उसे सौंप दें।

•

५२०. मुर्शिद कुली खाँ तुर्कमान प्रसिद्ध नाम मुरौवत खाँ

जहाँगीर के राज्यकाल में ईरान प्रांत से आकर यह सात सदी २०० सवार के मसब के साथ बादशाही नौकरों में भर्ती हो गया। शाहजहाँ के राज्य के ३रे वर्ष मे एक हजारी मंसब पाकर यह आख्तः बेगी पद पर नियत हुआ। मीर तुजुकी की सेवा पर इसे नियत करना तथा पास रखना बादशाह को मंजूर था और मीर तुजुक खलीलुल्ला खाँ अपने स्वभाव की उद्दंडता से बादशाह की इच्छा के अनुसार कार्य कर नहीं पाता था तथा यह अपनी योग्यता तथा अनुभव प्रगट कर चुका था इसलिए ६ठें वर्ष में यह कार्य पहिले पद के साथ इसे सौंपा गया, पाँच सदी मंसब बढाया गया और इसके चाचा की पदवी मुर्शिदकुली खाँ भी इसे मिली, जो शाह अब्बास प्रथम का अभिभावक था। जिस समय बादशाह आगरे से दौलताबाद की सैर को गए और जिसकी तारीख 'बपादशाहे जहाँ ई सफर मुबारक बाद' से निकलती है उस समय मथुरा तथा महावन की फौजदारी के अंतर्गत पड़ाव से उस प्रांत के उपद्रवियो को दंड देने के लिए यह नियत हुआ। उस पर अधिकार करने के लिए अधिक सेना की जरूरत थी, इसलिए इसके मंसब में पाँच सदी १३०० सवार बढ़ाकर दोहजारी २००० सवार का मंसब कर दिया तथा झंडा देकर इसे सम्मानित किया। ११ वें वर्ष सन् १०४६ हि० में बरेली के विद्रोही मौजो पर आक्रमण करते हुए यह गोली लगने से मर गया, जहाँ शहर पनाह दीवाल के पास आग लगाकर वे उपद्रव कर रहे थे। मथुरा की फौजदारी के समय इसने बहुत सी सुन्दर स्त्रियों को कैद कर इकट्ठा कर लिया था, जो प्रत्येक एक दूसरे से सौंदर्य तथा चाचल्य में बढ़कर थी। कहते है कि गोवर्द्धन नगर मे जो मथुरा के

पास जमुना नदी के उस पार है और जिसे कृष्ण जी का जन्म स्थान मानते हैं, सावन[1] की आठवीं रात्रि को, जिसे जन्माष्टमी कहते हैं, हिन्दुओं का बड़ा मेला लगता। संयोग से उक्त खाँ हिंदुओं की चाल पर टीका लगा तथा धोती पहिर उस भीड़ में घुसकर सौंदर्य देखता हुआ घूमता रहा। जब इसने एक स्त्री को देखा कि वह चंद्रमा के समान सुन्दर है तब यह भेड़िए के समान, जो झुण्ड में आ गया हो, उसे उठाकर चल दिया। इसके आदमी नदी के किनारे नाव तैयार रखे हुए थे इससे उस पर बिठाकर यह आगरे चल दिया। हिंदुओं ने यह तनिक भी प्रकट नहीं किया कि वह किसकी लड़की है। मुर्शिद कुली खाँ शामलू लिखा इस्ताजलू का हाल वैचित्र्य मे खाली नहीं है इससे उसका विवरण लिखा जाता है।

वह खवाफ तथा बाखरज का शासक था। जब अली कुली खाँ शामलू हिरात का शासक तथा खुरासान का अमीरुल् उमरा हुआ, जो अभिभावकत्व अब्बास मिर्जा के अधीन उसके दादा शाह तहमास्प सफवी के समय से था। उक्त शाहजादे का पिता सुलतान मुहम्मद खुदावंदः ईरान का जब शाह हुआ तथा आँखों की रोशनी के जाने पर कजिल्बाशो का कार्य ठीक न चला और राज्य उपद्रवियों का घर बन गया तब दूरदर्शियों की सम्मति से खुरासान के सर्दारों को मिलाकर सन् ९८९ हि० मे अब्बास मिर्जा को गद्दी पर बिठा दिया, जो शाह अब्बास कहलाया। मुर्शिदकुली खाँ ने सबसे पहिले इस संबंध मे मेल का कमर बाँधकर इसके लिए वचन दे दिया था। पर मुर्तजा कुली खाँ दर्नाक, जो मशहद का शासक था तथा अपने को अलीकुली खाँ के बराबर समझते हुए आधे खुरासान का बेगलर बेगी बन गया था, न मिलने पर काम बिगाड़ने पर तुल गया। सुलतान मुहम्मद खुदावंदः भारी सेना के साथ खुरासान गया अलीकुली खाँ सामना करने की अपने मे सामर्थ्य न देखकर हिरात दुर्ग में जा बैठा और मुर्शिदकुली खाँ तुर्बत में दुर्गस्थित हो गया। लड़ाई के बाद संधि की बात चली। सुल्तान मुहम्मद पहिले के समान अधीनता स्वीकार करने पर हिरात शाहजादे तथा अलीकुली खाँ को पूर्ण रूप से देकर लौट गया। उक्त खाँ के विचार से मुर्तजा कुली खाँ को मशहद से बदल दिया और मुर्शिद कुली खाँ तथा इस्ताजलू लोगों की दिलजमई के लिए उन्हीं लोगो के एक भले आदमी सुलेमान खाँ को उसके स्थान पर नियत कर दिया। अभी इसने उस प्रांत मे दृढ़ता नहीं प्राप्त की थी कि मुर्शिद कुली खाँ इमामुल्जिन व अल्उन्स के रौजे के दर्शन करने के बहाने नगर मे घुस गया और अनेक प्रकार का कपट तथा फरेब करते हुए मीठी बातों तथा चापलूसी से सुलेमान खाँ की अधीनता मानते हुए वहीं रहने लगा। इसके अनंतर जब उसके आदमी झुंडो में आकर इकट्ठे हो गए तब सुलेमान खाँ के पास इसने संदेश भेजा कि तुम्हारे पास

१. भ्रम से भाद्रपद के स्थान पर सावन मूल लेखक ने लिख दिया है।

इतनी सेना सुसज्जित नहीं है कि इस प्रांत के विद्रोहियों को निकाल बाहर करो इसलिए मेरे वचन पर विश्वास कर इसे छोड़ दो और खवाफ व बाखरज जाकर आराम से वहाँ कालयापन करो। वह लाचार हो यहाँ से चला पर मार्ग में अपना साम न छोड़कर एराक को चला गया। मुर्शिद कुली खाँ ने मशहद में जमकर खुरासान के बहुत से महालों के बलवाइयों को डाँट कर तथा समझाकर अपने अधीन कर लिया और उनके हृदयों में यहाँ तक विश्वास पैदा कर दिया कि इसकी आज्ञा खुरासान भर में चल गई तथा इसका ऐश्वर्य और सम्मान बहुत बढ़ गया। इसके अनंतर अली कुली खाँ से मित्रता तथा प्रेम प्रगट कर अपने भाई इब्राहीम खाँ को उसके पास भेजा कि उसे देश विजय करने का लोभ देकर शाह के साथ मशहद लिवा लाये, जिसमें अधीनता और विश्वास पैदा किया जा सके।

संसार के बहुत से काम इस प्रकार के होते हैं कि आरंभ में सचाई तथा मित्रता प्रगट करते हैं पर अंत में शत्रुता तथा वैमनस्य में समाप्त होते हैं। शामलू के वृद्धगण इसके ऐश्वर्य को मलिन समझकर इसका विरोध करने लगे और आपस में दो सर्दार चुनकर इसके बिगाड़ने का सामान करने लगे। क्रमशः यह षड्यंत्र यहाँ तक पहुँचा कि अली कुली खाँ शाह को उभाड़कर ससैन्य मशहद आया। मुर्शिद कुली खाँ में युद्ध करने की सामर्थ्य नहीं थी अतः वह चाहता था कि किसी प्रकार संधि हो जाय। सफेद तर्शेज की ओर आकर दोनों एक दूसरे के सामने रुक गए। अली कुली खाँ किसी प्रकार संधि का प्रस्ताव न मानकर सतर्कता तथा सावधानी छोड़कर स्वयं युद्ध के लिए आगे बढ़ा और एक झुंड पर धावा कर उसे परास्त कर दिया तथा पीछा करने लगा। मुर्शिद कुली खाँ कुछ सेना के साथ अपने स्थान पर डटा रहा। इसकी दृष्टि शाही झंडे पर पड़ी। भाग्य पर भरोसा कर इसने उस पार धावा करने का साहस किया और उस उच्चपदस्थ शाह को अपने अधिकार में कर लिया। उन्हीं थोड़े आदमियों के साथ इसने शत्रु पर आक्रमण कर उसे कड़ी हार दी। इसके बाद जब अली कुली खाँ उस झुंड के पीछा करने से निपटकर लौटा तब सेना के मध्यभाग तथा शाही छत्र का उसने कुछ भी चिह्न न देखा और निराश हो आश्चर्य करता हुआ हिरात को चल दिया। मुर्शिद कुली खाँ ने इस अनसोचे हुए दैव द्वारा प्राप्त सफलता से प्रसन्नता मनाते हुए अली कुली खाँ को प्रेम से भरा हुआ पत्र अधीनों की चाल पर लिखकर मित्रता की प्रार्थना की और इस घटना को आसमानी कहकर उड़ा दिया।

संक्षेपतः मुर्शिद कुली खाँ ने शाह अब्बास के राज्य का सामान ठीक कर स्वयं दृढ़ता से प्रधान मंत्री तथा अभिभावक बन बैठा। एराक में कुप्रबंध तथा उपद्रव फैला हुआ था और वहाँ की राजधानी कजवीन को, जो सफवी वंश के राज्य का

केंद्र था, खाली सुनकर शाहजादे को ले बड़ी फुर्ती से दामगाँ के मार्ग से कजवीन पहुँचा। कजिल्बाशों के सर्दारगण हर ओर से मुबारकबादी को आए। जब यह समाचार सुलतान मुहम्मद खुदाबंद के पड़ाव में पहुँचा तब साधारण लोगों से लेकर दरबार के मर्दारो तक, जो मब कजवीन में रहते थे, सब बिना छुट्टी पाए जाने लगे। मृत्यु आ पहुँची थी इसलिए अच्छे सर्दारगण ने भी, जो राज्य के स्तंभ थे, अच्छी सम्मति छोडकर कजवीन में जाना निश्चय कर लिया और मुर्शिद कुली खाँ से वचन लेकर सुचित्त हो गए। जब ये सब उस नगर में घुस आए तब सुलतान मुहम्मद खुदाबदः, जो संसार के असमान चालों तथा नश्वर जगत के उपद्रव से क्षुब्ध होकर एकांतवास करना चाहता था, अपने पुत्र शाह अब्बास से प्रसन्नता से मिलकर अपनी बादशाही छोडकर पुत्र के सिर पर राजमुकुट रख दिया। दूसरे दिन मुर्शिद कुली खाँ ने चालीस स्तंभ के महल में सिंहासन सजाकर शाह को उस पर बिठा दिया और सर्दारों को सुलतान हम्जा मिर्जा के खून में पेश किया। राज्य के प्रधान स्तंभ कुछ बडे सर्दारो को प्राणदंड देकर बाकी सबको क्षमा कर दिया। इसके अनंतर घोषणा निकाली कि जो कोई वीर तथा साहसी बादशाही राज्य की स्थिरता तथा उसके विस्तार के लिए प्रयत्न करने मे परिश्रम उठावेगा वह कभी आराम के बिछौने पर नही पडा रहेगा और न साकी के हाथ कडुई घूंट के सिवा कुछ और पीयेगा। वह सब मित्रता तथा मेल शत्रुता तथा विरोध में बदल जाता है और स्वत्व नष्ट हो जाता है। अंत मे सिर से खेलते हैं। स्यात् इसका यही कारण है कि ऐश्वर्यशाली दूरदर्शी बादशाह उच्च विचार तथा ऐश्वर्य के चिह्न देखकर बड़े कामो मे उसकी पूर्ति होने को अपने लिए उचित समझकर प्रयत्नशील होते है। यद्यपि प्रकट है कि बहुतों की प्रकृति सेवा तथा काम सजाने को भूलने की होती है और अहंता दिखलाने के लिए की जाती है, जिसे राज्य की मर्यादा सहन नही कर सकती। जब मुर्शिद कुली खाँ का पद तथा सम्मान पूर्णता को पहुँचा और राज्य का कुल प्रबंध उसके हाथ में आ गया तब उसके बराबरवालों के हृदयों में द्वेषाग्नि भडक उठी। शाह का लालन पालन शामलू लोगो के बीच हुआ था और मुर्शिद कुली खाँ का अभिभावकत्व तथा इस्ताजलू के बीच में होना उसे रुचिकर नही था। इसी बीच इसने जो व्यवहार उस समय किया वह भी शाह को पसंद नहीं आया इसलिए अपने राज्य के २ रे वर्ष सन् ९९७ हि० मे, जब वह खुरासान की ओर गया था तब एक झुंड को संकेत कर दिया, जिसने एकाएक उसके शयनागार में जाकर उसे सोते में मार डाला।

•

५२१. मुल्तफित खाँ

जहाँगीर के समय के आजम खाँ का यह बड़ा पुत्र था। यह विद्वान तथा गुणवान था। जहाँगीर के राज्यकाल में बादशाह का परिचित होने तथा प्रसिद्धि प्राप्त करने से यह बढ़ गया था। जब इनका पिता शाहजहाँ के राज्य के दूसरे वर्ष के आरंभ में दक्षिण का शासक नियत हुआ तब इसका मंसब चार सदी १५० सवार बढ़ने से एक हजारी २५० सवार का हो गया। इसके अनंतर पिता के साथ खानजहाँ लोदी को दंड देने के लिए यह दक्षिण के बालाघाट की ओर गया और इसका डेढ़ हजारी ५०० सवार का मंसब हो गया। जब खानजहाँ निजामशाहियों के साथ कई बार विजयी (बादशाही) सेना द्वारा दंडित हुआ तब दोनो ओर की सेनाएँ दूर दूर तक दौड़ती रही और कभी कभी युद्ध भी भागते हुए हो जाता था। इस कारण साहसी वीर लोग भी उनसे पार नही पा रहे थे। दैवयोग से एक दिन, जब मुल्तफित खाँ चंदावल मे प्रसिद्ध राजपूतों के साथ नियत था, यह सेना मध्य की सेना से प्राय. दो कोस दूर पड गई थी। शत्रु अवसर देख रहा था और उसने दस सहस्र सवारों के साथ पहुँच कर युद्ध आरंभ कर दिया। कुछ परिचित मुगल तथा राजपूत खानजाद: लोग वीरता दिखला कर मारे गए। मुल्तफित खाँ राव दूदा चंद्रावत के साथ दृढता से जमा न रहा और युद्ध से हट गया। १० वें वर्ष में यह अर्ज मुकर्रर नियत हुआ। १३ वें वर्ष में यह बंगाल की दीवानी पर नियत किया गया। १९ वें वर्ष मे उस सेना का बख्शी बनाया गया, जो शाहजादा मुरादबख्श के सेनापतित्व मे बल्ख व बदख्शाँ पर भेजी गई थी। २२ वें वर्ष में जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब विजयी सेना के साथ कंधार की चढाई पर नियत हुआ। इसी वर्ष इसके पिता की मृत्यु हो गई और यह दूर सेना के साथ था। इसके मंसब में पाँच सदी की तरक्की हुई। २३ वें वर्ष मे पांच सदी और बढ़ने पर यह दक्षिण मे नियुक्त किया गया। उस समय दक्षिण का प्रांताध्यक्ष शायस्ता खाँ था। पुराने परिचय, योग्यता तथा अनुभव के कारण यह बुर्हानपुर का नायब नियत हो गया और इसने उस प्रांत के प्रबंध में अच्छा प्रयत्न कर प्रसिद्धि प्राप्त की तथा अपने अच्छे व्यवहार से सबको प्रसन्न रखा। २५ वें वर्ष मे दरबार से इसे पायाँघाट दक्षिण की दीवानी मिली, जिसमे तात्पर्य खानदेश तथा आधे बरार से था। २६ वें वर्ष में दक्षिण के सूबेदार शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर की प्रार्थना पर इसका मंसब पांच सदी ५०० सवार से बढ़ाया गया और शाह बेग खाँ के स्थान पर इसे अहमद नगर की दुर्गाध्यक्षता दी गई।

उक्त शाहजादे की कृपा इस पर बराबर बनी रही थी इसलिए औरंगजेब के साम्राज्य के लिए रवान. होने पर इसने भी उसका साथ दिया। जब शाहजादा बुर्हानपुर से इच्छित स्थान की ओर चला तब इसे डका पुरस्कार मे मिला। महाराज जसवंतसिह के अनंतर रज्जब महीने के अत में मुर्शिद कुली खाँ के स्थान पर, जिसने उस युद्ध में वीरता से लडकर जान दे दी थी; इसे प्रगट में उज्जैन नगर मिला और साथ मे सरकारी दीवानी, आजम खाँ की पदवी और तोग झंडा भी मिला। इसका मसब बढकर चार हजारी २५०० सवार का हो गया। अत्याचारी आकाश और कष्टदायक संसार मे प्रसन्नता दुख भरी हुई और शर्बत विषपूरित है तथा वह जिसे बढाता है उसे गिराता है एवं जिसे चाहता है नहीं बनाता। इस ईर्ष्या योग्य भाग्यवान ने अपनी सफलता से अभी कुछ आनंद नहीं उठा पाया था कि इसके जीवन का प्याला भर गया। डेढ महीने भी नही बीते थे कि दाराशिकोह के युद्ध के दिन विजय के अनंतर ग्रीष्म ऋतु की तीव्रता, लू तथा कवच की दृढता से इसके प्राण निकल गए।

यह बुद्धिमानी और विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध था तथा सुव्यवहार और उदारता भी इसमे काफी थी। सभाचातुर्य भी इतना था कि जो इससे मिलने आता वह प्रसन्न होकर ही जाता था। इसके एक शैर का उर्दू रूपातर यह है।

ख्वाब में देखा उस तुर्रए परेशाँ को।
तमाम उम्र रही जिक्र ख्वाब मे परेशाँ (सी)॥

इसके घर मे असदुल्ला खाँ मामूरी की पुत्री थी। इसके पुत्र होशदार खाँ का जीवन वृत्तांत अलग दिया गया है, जो औरंगजेब के समय का एक सर्दार था।

५२२. मुल्तफित खाँ मीर इब्राहीम हुसेन

यह असालत खाँ मीर वख्शी का द्वितीय पुत्र था। २६ वे वर्ष शाहजहानी में यह अहदियो का बख्शी नियत हुआ और इसके बाद पेशकश (भेट) का दारोगा नियत हुआ। उस राज्यकाल मे यद्यपि इसका मसब सात सदी से अधिक नही बढा था पर खान.जादी के विश्वास के कारण, जो गुणग्राहक सुलतानो की दृष्टि में अन्य विश्वासो से बढ़कर है, अपने बराबर वालो से यह बढ गया था। औरंगजेब के जलूस के अनंतर, जब इसका बडा भाई मीर सुलतान हुसेन इफ्तखार खाँ एक अमीर हो गया तब इसे भी दरबार से अन्य कृपाओ के साथ मंसब मे तरक्की तथा मुल्तफित खाँ की पदवी मिली और यह अहदियो का मीर बख्शी नियत हुआ।

२३ वें वर्ष अपने भाई इस्तखार खाँ के स्थान पर नियुक्त किया गया था, यह आख्ताबेगी बनाया गया। इसी वर्ष आकः.खार खाँ के स्थान पर यह गुर्जबर्दारों तथा जिलौ के सेवकों का दारोगा नियुक्त किया गया, जिस पद पर सिवा विश्वासपात्रों के कोई दूसरा नहीं रखा जाता। इसके साथ साथ यह मीर तुजुक भी बनाया गया। जब १३वें वर्ष में इसका भाई दंडित होकर अटक नदी से निष्कासित कर दिया गया तब यह भी पदवी और मंसब छिन जाने पर कड़े रक्षकों के अधीन रखा गया कि इसको लाहौर पहुँचा दें। इसके अनंतर भाई के साथ इसका भी दोष क्षमा किया गया और यह मोतमिद खाँ के स्थान पर दिल्ली का अध्यक्ष बनाया गया। १५ वें वर्ष में दूसरी बार यह जिलौ के सेवकों का दारोगा नियुक्त हुआ। १८ वें वर्ष सफ शिकन खाँ मुहम्मद ताहिर के स्थान पर यह तोपखाने का दारोगा बनाया गया। इसके अनंतर किसी कारण वश यह मंसब से हटा दिया गया। २२ वें वर्ष में एक हजारी १००० सवार का मंसब बहाल हुआ और इसे गाजीपुर जमानिया की फौजदारी मिली। उस फौजदारी के छूटने के बाद आगरे के पास आराम करने लगा। २४ वें वर्ष में एकदिन किसी ग्राम पर आक्रमण करने में घायल हो गया। १९ जमादिउल् आखिर सन् १०९२ हि० (सन् १६८२ ई०) को इसकी मृत्यु हो गई। विचित्र संयोग यह हुआ कि इसी वर्ष इसके भाई की भी जौनपुर में मृत्यु हो गई।

५२३. मुल्ला मुहम्मद ठट्टा

इसका पिता मुल्ला मुहम्मद यूसुफ फकीरी में दिन व्यतीत करता था और सिधाई तथा विरक्ति से खाली नहीं था। इसका योग्य पुत्र मुल्ला मुहम्मद यौवन के आरंभ में अपने देश में धार्मिक विद्याओ को तर्क वितर्क द्वारा खूब समझते हुए उनके अध्ययन मे दत्तचित्त रहा। थोड़े ही समय में हर एक में कुशल होकर यह विद्वता के लिए प्रसिद्ध हो गया। इसने गणित विद्या में भी योग्यता प्राप्त की। इस योग्यता के अतिरिक्त इसमे दृढ़ता, धार्मिकता, अनुभव तथा आचार विचार भी था। इसके अनंतर इसने विद्यार्थियों को लाभ पहुँचाया तथा उनके पढ़ाने में लग गया। आदमी की प्रतिष्ठा उसकी विद्या से है और विद्या की शिष्य की योग्यता से। यमीनुद्दौला आसफजाही मुल्ला का योग्य शिष्य था। ऐसे उच्चपदस्थ सर्दार का गुरु होने से यह प्रसिद्ध होकर ऐश्वर्य को पहुँचा।

इस वंश को जहाँगीर के समय में बहुत सम्मान प्राप्त हुआ और इसने बहुत उन्नति की यहाँ तक कि इसके संबंधवालों को बहुत सफलता मिली। वंश के दामों तथा नौकरों को खाँ तथा तर्खान की पदवियाँ प्राप्त हुईं। आसफजाही भी इसी बड़े आदमी की शिक्षा को अपने विद्या की योग्यता का कारण समझता था तथा अपनी भाग्योन्नति को भी इसी की प्रार्थना से हुआ जानता था, इससे इसकी सम्मान बराबर बढ़कर करता था। उसने इसे कुल साम्राज्य का मदर मानकर इसकी इच्छा पूरी की, इसके सौभाग्य का सितारा चमका, भलाई हुई और एश्वर्य प्राप्त हुआ। कुल अचल संपत्ति, बाग, इमारतें तथा महाल, जो ठट्टा के सुलतान अर्गूनो तथा तर्खानों के थे, क्रय या दान द्वारा बादशाही सरकार से प्राप्त कर उनपर अधिकृत हो गया। एक प्रकार यह कुल ठट्टा का स्वामी होगया और धार्मिक विचारों के अनुसार मुल्ला के भाइयों के मंसब नियत हुए। ये सब मुल्ला के प्रभाव तथा विश्वास के कारण शासकों का ध्यान न कर काम करते थे और जैसा चाहते वैसा ही करते थे।

जिस समय शाह बेग खाँ ठट्टा का सूबेदार नियत हुआ उस समय वह आसफ-जाही से विदा होने गया। उसने मुल्ला मुहम्मद के भाइयों की सिफारिश की। उस सीधे तर्क ने उनका हाल सुन रखा था, जो मुल्ला के बलपर शासको की परवाह नही करते थे इसलिए उसने कहा कि यदि नियम से रहेगे तो सम्मान से रहेंगे नही तो चमडा उधडवा लूँगा। इस बात पर उसका काम बिगड गया और वह मंसब तथा जागीर से भी गया। महावत खाँ के उपद्रव के समय यदि मुल्ला चाहता तो वह निकल जाता और कोई उसका रास्ता न रोकता पर उसके जीवन की अवधि पूरी हो चुकी थी इसलिए काजी तथा मीर अदल की धार्मिक मित्रता पर भरोसा कर वह महावत खाँ के पास गया। विद्वत्ता गुण आदि की इसने व्याख्या बहुत की पर उस पर कुछ प्रभाव नही हुआ।

इसके पहले ज्योतिषी शेख चाँद के दौहित्र मुल्ला अब्दुस्समद और ख्वाजा शम्सुद्दीन मुहम्मद ख्वाफी के भतीजे मिर्जा अब्दुल खलिक को आसफ खाँ की मुसा-हिबी तथा कृपा के कारण इसने मरवा डाला था। उसने कहा कि ये तीनो कुल उपद्रव के कारण थे। मुल्ला को राजपूतो को सौंप दिया और कुछ दिन कैद रखकर बिना दोष के मरवा डाला, यद्यपि मुल्ला से उस उपद्रव से कोई संबंध नही था। वास्तव मे मुख्य कारण उसका आसफ खाँ का गुरु होना था। दैवयोग से जिस समय उसके पैरो में बेडी डाली गयी और वह दृढ़ता से नही बंद की गई इसलिए थोडा हिलने से खुल कर निकल गई, जिसको जादू से हुआ समझा गया। मुल्ला ने अंतिम अवस्था मे कुरान को कंठाग्र कर लिया था और तलावत में पहुँचते ही पढने लग गया था, जिससे उसके ओठ हिल रहे थे। इस हिलने को देखकर यह निश्चय किया

कि वह शाप दे रहा है। इस शंका के कारण उसे मारने की आज्ञा दे दी। ऐसे प्रिय मनुष्य की प्रतिष्ठा न कर उसे नष्ट कर डाला। कहते हैं कि आसफजाही को ऐसे तीन अनुपम प्रिय मित्रों की मृत्यु से ऐसा शोक हुआ कि बहुधा रात्रि में पीडित हृदय से उन्हें इस प्रकार याद करता वा मुहम्मदा, वा खलिफा, वा समदा।

•

५२४. मुसाहिब बेग

यह ख्वाजा कलाँ बेग का पुत्र था, जिसका पिता मौलाना मुहम्मद सदर मिर्जा उमर शेख के बडे सर्दारों मे से एक था। इसके छ पुत्रों ने बाबर की सेवा मे अपने प्राण निछावर कर दिए थे। ख्वाजा इन स्वत्वों के कारण तथा अपनी योग्यता, बुद्धिमानी, गंभीर चाल तथा विद्वत्ता के कारण बाबर का कृपापात्र होकर उसके सर्दारो का अग्रणी हो गया। इसका दूसरा भाई कुचक ख्वाजा भी विश्वासपात्र तथा शुल्कदार था। हिंदुस्तान के विजय के अनतर, जो शुक्रवार २० रज्जब सन् ९३२ हि० को प्राप्त हुआ था और आगरे में बाबर ने पडाव डाला हुआ था, चगत्ताई सैनिकों को यहाँ के निवासियों से स्वजातीयता तथा मित्रता का अभाव खलता था। उस पर यहाँ की गर्म हवा की अधिकता, लू और रोग भी बहुत थे। इसी बीच मार्गो की अगम्यता तथा सामान के देर से पहुँचने मे खानपान तथा अन्न का का कष्ट होने लगा, जिससे सर्दारगण लौटने का विचार निश्चय कर बहुत से एक एक कर बिना आज्ञा ही के काबुल चले गये। ख्वाजा कलाँ बेग भी, जो सभी युद्धों तथा चढाइयो मे, विशेष कर इसमें बराबर उत्साहवर्द्धक बातें कहा करता था, लौटने को चाहने लगा। बाबर यहाँ ठहरना चाहता था इसलिए उसने कहा कि ऐसा देश; जो थोड़े प्रयत्न तथा प्रबंध से हाथ मे आ गया है, तनिक से कष्ट तथा दुःख के कारण त्याग देना बुद्धिमान बादशाहों का काम नही है परन्तु ख्वाजा के हठ को देख कर उसके विचार से गजनी तथा गर्देज की जागीरदारी उसके नाम करके वहाँ भेज दिया। वाकेआते बाबरी में उस बादशाह ने लिखा है कि हिंदुस्तान की विजय ख्वाजा ही के कठिन प्रयत्नो से प्राप्त हुई है हुमायूँ को उपदेश देते समय ख्वाजा के साथ अच्छा व्यवहार करने तथा उसके दोषो को क्षमा करने के लिए कह दिया था। बाबर की मृत्यु पर ख्वाजा मिर्जा कामराँ का पक्ष ग्रहण कर उसकी ओर कंधार का शासन करता था। सन् ९४२ हि० मे शाह तहमास्प सफवी का भाई साम मिर्जा कंधार पर चढ़ आया और उसे घेर लिया। इसने आठ महीने तक

इसकी रक्षा की पर जब दूसरी बार शाह स्वयं आया तब निरुपाय होकर दुर्ग उसे सौंप लाहौर में मिर्जा कामराँ के पास पहुँचा। चौसा की घटना के बाद ख्वाजा ने हुमायूँ के साथ रहना निश्चय किया पर जब समय के फेर से वह बादशाह सिंध की ओर चला तब ख्वाजा स्यालकोट से लौटकर फिर मिर्जा कमराँ से जा मिला।

जब ख्वाजा की मृत्यु हो गई तब उसका पुत्र मुसाहिब बेग अपने पूर्वजों की अच्छी सेवाओं के कारण सामीप्य तथा विश्वास का पात्र हो गया। परन्तु इसकी प्रकृति मे कुप्रवृत्ति बहुत थी और इसके स्वभाव मे बुराई तथा बदचलनी भी भरी हुई थी, इस कारण बार बार इससे ऐसे कार्य हुए जो बादशाह को पसंद नही आए। तब हुमायूँ ने इसका नाम मुसाहिब 'मुनाफिक्' (झगड़ालू, कुविचारी) रखा। इसके अनन्तर जब अकबर बादशाह हुआ तब यह कुसम्मति तथा मूर्खता से शाह अबुल्मआली तर्मिजी के साथ रहकर कालयापन करने लगा और कुछ समय पूर्व की सीमा पर खानजमाँ के मुसाहिबों में रहा। ३ रे वर्ष किसी बुरे विचार से यह दिल्ली आया। बैराम खाँ ने उसे कैद कर हज्ज को बिदा कर दिया। नासिरुल्मुल्क ने बहुत कुछ कह सुनकर बैराम खाँ को इस बात पर राजी किया कि एक कागज पर प्राणदंड और एक पर क्षमा लिखकर पासा डाला जाय और जो दैवेच्छा से निकले वही किया जाय। दैवयोग से इसका भाग्य उपाय के अनुसार निकला तब उसी घडी आदमियो को भेजकर इसे दंड को पहुँचवा दिया। कहते हैं कि इस घटना से सभी चगत्ताई सर्दार तथा उनके लड़के बैराम खाँ से भयभीत होकर उससे प्रतीकार लेने के इच्छुक हो गए।

०

५२५. मुस्तफा खाँ काशी

यह अफगान जाति का शीआ था। इसका पिता इतना असावधान था कि मरने पर कठिनाई से कफन व दफन का काम पूरा हो सका। उक्त खाँ चौदह वर्ष की अवस्था में माँ से बिदा होकर कमाने की चिंता में निकला। क्रमश. मुहम्मद आजमशाह की नौकरी मे पहुँचने पर इसका सब सामान ठीक हो गया। यह शाहजादे का विश्वसनीय पार्श्ववर्ती तथा रहस्य जाननेवाला साथी हो गया। शाहजादे की सरकार में सैनिक व्यय के बढाने की बराबर प्रार्थना रहा करती थी इसलिए उक्त खाँ ने सब समझकर निश्चय किया कि छ सहस्र सवारो से अधिक न रखे जायँ। यदि सिफारिश से या अच्छे आदमी के आ जाने से या चढाई के कारण अधिक रखे जायँ तो स्थायी सेना के मरे हुए या भागे हुए के स्थान जब तक पूरे न

हो तब तक उनका वेतन जारि न किया जाय। इसके प्रयत्नों से शाहजादे के सरकार का काम ठीक होने लगा और सेना भी दस बारह सहस्र सवार सदा रहने लगी। इसने शाहजादे के हृदय मे इतना स्थान प्राप्त कर लिया था कि कोई काम वह इससे बिना राय लिए नही करता था। शाहजादे से बादशाह के मिजाज के विरुद्ध जो कुछ भी होता उसे वह इसी की कृति समझता था। इसका अफगानो पर विश्वास न था इसलिए शाहजादे की सरकार में इसका प्रभुत्व उसे विशेष खलता था, जिससे इस बारे में कई बार बादशाह ने शाहजादे से कहा। अंत में बहाने से इसे दंडित तथा बिना मंसब का कर दिया और गुर्जबरदार नियत किए कि शाहजादे की सेना से हटाकर सूरत बंदर पहुँचा दें तथा वहाँ के मुत्सद्दी को आज्ञा भेजी गई कि इसे जहाज पर चढ़ाकर मक्का भेज दे। उक्त खाँ मक्का का दर्शन कर लौट के सूरत पहुँचा। यद्यपि इसके बुलाने की आज्ञा निकली पर उससे इसके क्षमा किए जाने की ध्वनि नही निकली इसलिए उक्त खाँ ३९ वें वर्ष मे औरंगाबाद पहुँचकर बादशाह की प्रकृति समझते हुए फकीरी पोशाक मे सेवा में पहुँचा। बादशाह ने यह मिसरा पढा—जिस सूरत मे आवे मैं पहिचान जाता हूँ।

कहते हैं कि मुहम्मद आजमशाह ने बहुत चाहा कि इसे क्षमा दिलाकर साथ में रखे पर यह न हो सका। उक्त खाँ विद्वान था इससे उसने 'इमारातुल्कलम' नामक पुस्तक कुरान, के आयतो पर टीका लिखी। शाहजादे ने उसे बादशाह को दिखलाते हुए कहा कि मुस्तफा खाँ की यह रचना है। पढने के अनंतर बादशाह ने कहा कि रचना मत कहो, संकलन कहो। शाहजादे ने प्रार्थना की कि अब तक किसी के ध्यान मे ऐसा नही आया था इससे रचना कह सकते हैं। बादशाह ने क्रुद्ध होकर पुस्तकालय के दारोगा को आज्ञा दी कि इसी विषय की लिखी हुई पहिले की पुस्तकें लाकर शाहजादे को देवे। उक्त खाँ ने बची अवस्था घर बैठे बिता दी। औरंगाबाद के सुल्तानगंज मुहल्ले में एक बड़ा मकान इसके नाम प्रसिद्ध है। यद्यपि औरंगजेब अन्य पुत्रो से मुहम्मद आजमशाह पर विशेष ध्यान रखता था पर दोनों ओर के स्वभाव के विरोधी होने से विचित्र संघर्ष बीच मे आ पडा था। कहते हैं कि ३६ वें वर्ष में सुलतान मुहम्मद मुअज्जम के छुटकारा पाने का समाचार प्रसिद्ध होने पर मुअज्जमशाह की ओर से कुविचार की सूचना लोगो के मुँह से सुन पडी। बादशाह ने उचित समझ मुहम्मद आजमशाह को बंकापुर के पास से बाकिनकीरा जाने की आज्ञा दी। बादशाही सेना मार्ग मे थी इसलिए बादशाह की ओर की विरोधी बातें मुहम्मद आजमशाह को सुनाई पडने लगी। शाहजादे ने बादशाही सेना के पास पहुँचने पर प्रार्थना की कि यद्यपि सेवा में उपस्थित हो कुछ कहने की बहुत इच्छा है पर नियत किए हुए कार्य पर जाना आवश्यक है पर शंका है कि साथ के आदमी सेना तक पहुँचने पर आगे बढने में सुस्ती करें इससे जो आज्ञा हो वैसा किया जाय। उत्तर दिया गया कि मैं भी उस

पुत्र को देखने की बहुत इच्छा रखता हूँ पर इस कारण कि सेना में आने की सम्मति नहीं है अतः हम फुर्ती से शिकार के लिए निकलते हैं, तुम भी पाँच सौ सवारो तथा अपने दोनों पुत्रों के साथ आओ क्योकि उसी समय बिदा मिल जायगी। यह भी आज्ञा हुई कि साधारण खेमा सेना से हटकर नीची जमीन पर लगावें कि दूर से दिखलाई न दे। गुप्त रूप से बख्शियों तथा खास जिलौ के दारोगा गुर्जबर्दारों तथा खास चौकी के आदमियो के दारोगा को कह दिया गया कि चुने हुए बहुत थोडे सहस्त्र आदमी साथ लें पर प्रकट मे कह दिया गया कि ज्यादा आदमी न आवें। बारहा के आदमी तथा मीर तुजुको को भीड रोकने तथा दौलतखाने के चारों ओर का प्रबध करने के लिए नियत किया कि कोई बिना आज्ञा के भीतर न आ सके। शिकारगाह मे पहुँचने पर शाहजादे के नाम बारबार आज्ञा भेजी गई कि दौलतखाने मे स्थान कम है अतः थोडे आदमी आवें। शाहजादे के पास पहुँचने पर जमाल चेला ने आज्ञा पहुँचाई कि जिस शिकार को तीर के सिर पर ला चुके है वह उसे खाएगा और जिलौखाने का मैदान छोटा है इसलिए तीन जिलौदार साथ लाइए। जब शाहजादा अपने दो पुत्रो बालाजाह व आलीतबार के साथ जिलौखाने में पहुँचा तब अन्य लोगो के प्रबंध के कारण सिवा दो जिलौदार के कोई साथ न था। ऐसी अवस्था मे शाहजादे के चेहरे का रंग उड़ गया और उसने अपने को बला में फँसा देखा। मुख्तार खाँ ने आज्ञा पहुँचाई कि तीनों शस्त्र रखकर आवे। सेवा में पहुँचने और अभिवादन करने पर बादशाह ने स्नेह से बगल में लेकर शाहजादे के हाथ में बंदूक दिया कि शिकार पर गोली चलावे। इसके बाद तसबीहखाने मे लिवा जाकर बैठने का आदेश दिया तथा गर्मी से हाल चाल पूछा। यह सुनने पर कि शाहजादा जामे के नीचे कवच पहिरे हुए है, अरगजा का प्याला मँगाकर तथा जामे का बंद खोलकर अपने हाथ से लगाया। बादशाह ने अपने आगे रखी हुई खास तलवार को म्यान से निकालकर शाहजादे के हाथ में दिया। उसने काँपते हाथों से लेकर देखने के अनंतर चाहा कि रख देवे पर वह उसे प्रदान कर दी गई। कुछ उपदेशप्रद बातें, जिसमे इस बात का भी संकेत था कि कैद कर छोड़ देता हूँ, कह कर बिदा कर दिया।

५२६. मुस्तफा खाँ खवाफी

इसका नाम मीर अहमद था। इसका पिता मिर्जा अरब खवाफ़ के शुद्ध सैयद वंश से था और वह हिंदुस्तान चला आया। इसने जहाँगीर की सेवा की और थोड़े ही समय में दरबार का 'वकायानिगार' नियत हुआ। इसके बाद भाग्य से अमीरी पद तक पहुँच कर इसने अपना जीवन प्रतिष्ठा तथा विश्वास के साथ व्यतीत कर दिया। इसके पुत्रगण मिर्जा शम्सुद्दीन तथा मीर अहमद थे। पहिला पिता के जीवनकाल ही में नौकर को कोड़ा मारते समय उसीके हाथ मारा गया। दूसरा शाहजहाँ के समय कुछ दिन के लिए लखनऊ का बख्शी नियत हुआ। २१ वें वर्ष में जब शाहजादा मुरादबख्श कश्मीर का प्रांताध्यक्ष नियत होकर वहाँ गया तब यह उसका दीवान नियत हुआ। इसके बाद यह दक्षिण में नियुक्त हुआ तथा इसे सात सदी २५० सवार का मंसब मिला। ३ रे वर्ष में यह बालाघाट बरार के अंतर्गत जफर नगर का अध्यक्ष नियत हुआ, जो औरंगाबाद से अट्ठाईस कोस पर है।

सचाई, भलाई, अनुभव तथा समझदारी में विशेषता रखने के कारण दक्षिण का सूबेदार शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर इस पर बहुत प्रसन्न था। इसके सेवाकार्य तथा स्वामिभक्ति से इस पर विशेष विश्वास हो गया। औरंगजेब की राजगद्दी होने पर इसका मंसब बढ़ाकर इसे सम्मानित किया गया। बालाघाट कर्णाटक प्रांत को मुअज्जम खाँ मीर जुमला ने हैदराबाद अब्दुल्ला कुतुबशाह के यहाँ रहते समय विजय किया था और बादशाह को शाहजहाँ के यहाँ आते समय उसे बादशाह को भेंट कर दिया था। दरबार से इसके अनंतर यह उसे ही पुरस्कार में दे दिया गया। उस प्रांत के कुछ दुर्ग जैसे कुंजी कोठा,[1] जो उस प्रांत के बड़े दुर्गों में से था, भारी तोपखाने तथा बहुत से सामान के साथ उसके आदमियों के हाथ में था। इस कारण कि कुतुबशाह को उस प्रांत पर अधिकार करने का बहुत लोभ था इसलिए वहाँ का प्रबंध ठीक नहीं हो रहा था। २ रे वर्ष में मीर अहमद को भी उस प्रांत के प्रबंध पर नियत किया गया और इसे मुस्तफा खाँ की पदवी, घोड़ा, हाथी देकर इसका मंसब डेढ़ हजारी १४०० सवार बढ़ाकर तीन हजारी २००० सवार का कर दिया। इसके अनंतर अनुभवी तथा गंभीर प्रकृति का होने के कारण यह दरबार से राजदूत होकर तूरान भेजा गया। दानिशमंद खाँ का लिखा हुआ पत्र तथा डेढ़ लाख रुपए का जड़ाऊ बर्तन व अलभ्य वस्तु बुखारा के शासक अब्दुल्अजीज खाँ के लिए और एक लाख रुपये का सामान उसके भाई बल्ख के शासक सुबहान कुली खाँ के लिए भेजा गया, जिनमें प्रत्येक बराबर भेंट आदि भेजकर मंत्रत्व बनाए हुए था। इसका और कुछ हाल नहीं ज्ञात हुआ। इसका

---

१. पाठांतर कंची कोठा भी मिलता है।

भांजा तथा पोष्यपुत्र मीर वदीउज्जमाँ था। इसका पुत्र मीर अहमद मुस्तफा खाँ द्वितीय कुछ दिन निजामुल्मुल्क आसफजाह के यहाँ दीवान रहा। इसका पुत्र मीर सैयद मुहम्मद अली मकरम खाँ बहादुर था। विद्याध्ययन कर इसने हर विषय में योग्यता प्राप्त की। इसके पहिले निजामुद्दौला आसफजाह के पुत्र आलीजाह की सरकार का दीवान था। इन पृष्ठों के लेखक से बड़ी मुहब्बत रखता था।

५२७. मुस्तफा बेग तुर्कमान खाँ

जहाँगीर के समय का एक सर्दार था और उस राज्यकाल के अंत तक दो हजारी १४०० सवार के मंसब तक पहुँचा था। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने पर १म वर्ष में इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया तथा इसे खिलअत, जड़ाऊ खंजर, झंडा और चाँदी के साज सहित घोड़ा मिला। ३ रे वर्ष इसे डंका देकर सम्मानित किया। इसके बाद दक्षिण की चढ़ाई पर नियत होकर ६ ठे वर्ष में, जब महाबत खाँ दौलताबाद दुर्ग घेरे हुआ था, यह जफर नगर का थानेदार नियत हुआ। इस चढ़ाई पर नियत मंसबदारों की अधीनता के बहुत से आदमी अन्न लदे बैलों के साथ वहाँ एकत्र हो गए थे और दक्षिण की सेना के आने जाने से वे खानखानाँ की सेना तक नहीं पहुँच पाते थे इसलिए इसने खानखानाँ को यह हाल लिखा। उसने खानजमाँ को ससैन्य नियत किया कि अन्न तथा आदमियों को लिवा लावे। ७ वें वर्ष सन् १०४३ हि० (सन् १६३३ ई०) में यह मर गया। इसका पुत्र हसन खाँ आठ सदी ३०० सवार का मंसब पा चुका था। इसका भाई अलीकुली नौसदी ४५० सवार का मंसब पाकर शाहजहाँ के जलूस के १५ वें वर्ष में मर गया।

५२८. मुहतशिम खाँ बहादुर

यह मुहतशिम खाँ शेखमीर का पुत्र था तथा इसका नाम मीर मुहम्मद जान था। यह अपने सब भाइयों से योग्यता तथा अनुभव में बढ़कर था। मुहम्मद आजमशाह की सौतेली बहिन नवाब जीनतुन्निसा बेगम ने, जो अपने माननीय पिता की सेवा में रहती थी और बहादुर शाह की राजगद्दी पर बेगम साहिबा कहलाई,

मगऊद की पुत्री को स्वयं पालकर इससे विवाह कर दिया था, जिससे इनपर पुत्र सा विश्वास था। बेगम के कहने से इसे औरंगजेब के समय में सात सदी का मंसब मिला। विद्या की योग्यता काफी थी और इसने अमेठीवाले मुल्ला जीदन का, जो अपने समय के प्रसिद्ध विद्वानो मे से था तथा बहुत दिनो तक शाहजहाँ तथा औरंगजेब के साथ रहा था, शिष्य होकर उससे विद्या अर्जित किया था। इसने बहादुर शाह के समय पिता की पदवी पाई। जब साम्राज्य के प्रबंध का निजाम के साथ पट्टा हो गया और खान जादी का विश्वास तथा नौकरी का ढंग घेरे के बाहर चला गया तब अमीरों के वंशधर तथा अच्छे परिवार के संतान लोग धनी होने के कारण काम छोड बैठे। उक्त खाँ भी बेगम की मृत्यु पर नवाब आसफजाह फत्हजंग के साथ मालवा चला आया और डेढ सौ रुपया वेतन व्यय के लिए पाता रहा। जब उस उच्चपदस्थ सरदार ने समयानुकूल समझ कर नर्मदा नदी पार किया और साहसी शत्रुओ को भागी सेना से नष्ट कर तथा सौभाग्य के बल पर विस्तृत दक्षिण प्रांत पर अधिकार कर लिया तब इसको तीन हजारी २००० सवार का मंसब तथा दक्षिण के कुछ मंसबदारों के बख्शी का पद प्रदान किया। जब आसफजाह हिंदुस्तान का प्रधान मंत्री बनने के लिए दरबार बुलाया गया तब मुहतशिम खाँ के साथ जाना अस्वीकार करने पर यह पद से हटा दिया गया। कुछ दिन बाद यह राजधानी से दक्षिण मे नियत होकर लौट आया। मुबारिज खाँ के युद्ध के अनंतर, जिस युद्ध मे इसने चोट खाए थे, यह उक्त पद पर फिर नियत हो गया, जिसे वह स्वयं अपना प्रिय, प्रेमिका तथा मनवांछित कहता था। प्रायः बीस वर्ष तक यह नियमपूर्व कार्य करता रहा और बहादुर की पदवी के साथ पाँच हजारी मंसबदार हो गया।

यह सच्चा तथा धोखाधडी से अनभिज्ञ था। निष्पक्षता तथा दृढता मे यह अद्वितीय था। सुव्यवहार तथा विश्वास का दृढ़ था, जैसा कि सर्दारो को होना चाहिए। दरबार के नियमो का यह कभी उल्लंघन नही करता था। सेवा कार्य को भी यह अच्छी प्रकार पूरा करता था। राज्य कार्य मे उच्चपद तथा विश्वास के होते भी पूछताछ में जरा भी दखल न देता था। आरभ से अंत तक इसने एक चाल से बिता दिया और कभी आगे पैर न निकाला। प्रगट में यह कठोरता दिखलाता था पर लोगो का कार्य कर देने मे कुछ उठा न रखता था और आवश्यकतानुसार प्रयत्न करता। यद्यपि मंसब के अनुसार सेना और सामान नही रखता था पर तब भी ऐश्वर्य तथा हाथी का स्वामी था। अंत मे बिना डाढीवालो की उपासना मे लग गया और इस तृष्णा मे सुंदर तथा मसें भीजनेवाले युवको को एकत्र कर उनके सजाने तथा आदर करने ही मे समय बिताता तथा इसी को सर्वस्व समझता था। जिस समय नवाब आसफजाह त्रिचिनापल्ली दुर्ग घेरे हुए था

उसी समय १६ जमादिउल् अव्वल सन् ११५६ हि० को यह मर गया। इसका पुत्र इनामतुल्ला खाँ पिता की मृत्यु पर बख्शी हुआ तथा उसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी हो गया। यह बराबर सलूक करने वाला तथा अपना कार्य जानने-वाला है।

•

५२६. मुहतशिम खाँ मीर इब्राहीम

यह शेख मीर खवाफी का बड़ा पुत्र था, जो आलमगीर बादशाह के शाहजादगी के समय उसके मुसाहिबों का अग्रणी था। यदि मृत्यु उसे छुट्टी दिए होती तो वह उसके साम्राज्य में सर्दारों का सर्दार तथा बादशाही अमीरों का प्र ान हो जाता। राज्य के आरंभ मे बड़े बड़े काम कर यह अपनी सेवा का स्वत्व राज्य पर छोड गया। गुणग्राहक बादशाह ने इसके पुत्रो के, जो नई अवस्था के थे, पालन पोषण का भार लेना स्वीकार कर सबको उचित मंसब दिया। वे सब अपने दुर्भाग्य से बादशाह की इच्छा के अनुसार योग्य नहीं हुए पर तब भी उनके मंसब बढ़ते हुए अंतिम सीमा तक पहुँच गए। परंतु इसके लिए उस मृत के स्वत्व का उचित उपयोग हुआ। इस पर जो कुछ कृपा हुई वह उसके मर्यादा के अनुसार ही हुआ। मीर इब्राहीम को एक हजारी ४०० सवार का मंसब मिला तथा शाही सेवा मे सदा उपस्थित रहने की आज्ञा के साथ इसके मंसब में बराबर उन्नति होती रही। इसके उपरात किसी कारण से यह हिजाज की यात्रा को गया। १८ वें वर्ष में हज्ज से लौटने पर यह दरबार में उपस्थित हुआ और डेढ़ हजारी मंसब बहाल हुआ। मुहतशिम खाँ की पदवी के साथ यह हसन अब्दाल से लंगरकोट की फौजदारी पर, जो पेशावर से बीस कोस पर है, भेजा गया तथा इसे झंडा मिला। हसन अब्दाल से लौटने पर यह सारंगपुर का फौजदार नियत हुआ। २० वें वर्ष में यह मेवात का फौजदार बनाया गया। जब शाहजादा मुहम्मद अकबर ने विद्रोह किया तब सहायक सर्दारों मे से कितनो ने लोभ से तथा बहुतो ने बाध्य होकर उसका साथ दिया। उक्त खाँ ने कुछ लोगो के साथ अपने विश्वास तथा सुव्यवहार से राजभक्ति का मार्ग न छोडकर शाहजादे को अधीनता का वचन भी नहीं दिया। कुछ दिन कैद में भी इस कारण रहा। शहजादे के भागने पर यह दरबार में उपस्थित होने पर प्रशंसित हुआ। इसके अनंतर यह आगरे का सूबेदार बनाया गया। २८ वें वर्ष मे सैफ खाँ के स्थान पर यह इलाहाबाद का सूबेदार हुआ। इसके अनंतर मंसब छिन जाने पर बहुत दिनों तक यह एकांतवास करता रहा।

४२ वें वर्ष में इसने दो हजारी १००० सवार का मंसब पाया और कुछ दिन बाद १००० सवार, जो कम थे, बढ़ाए गए और यह औरंगाबाद का शासक नियत हुआ पर कब नियत हुआ, इसका ठीक पता नहीं मिला। ४७ वें वर्ष में यह नल दुर्ग का अध्यक्ष हुआ। फिर बिना मंसब का होकर यह दरबार पहुँचा। ४९ वें वर्ष में बादशाह वाकिनकीरा दुर्ग पर अधिकार करने में व्यस्त थे और बहुत मारकाट के अनंतर दुर्गाध्यक्ष पीरिया नायक ने कपट से संधि की बातचीत आरंभ की। उसने अबुलगनी कश्मीरी को, जो पड़ाव का 'दस्त फरोश' था और जो धूर्तता तथा कपट से उस उपद्रवी से परिचित हो गया था, अपने लिखे हुए कई प्रार्थनापत्र दिए। उसने 'वाकेआख्यान्' के द्वारा उन पत्रों को पेश कराकर स्वीकृति प्राप्त कर ली। इसके बाद मुहतशिम खाँ को, जो बिना मंसब का होने से कष्ट में पड़कर उसी कश्मीरी का ऋणी हो रहा था, नायक के प्रस्ताव पर मंसब बहाल कर तथा वहाँ का दुर्गाध्यक्ष नियतकर भेज दिया। उस उपद्रवी ने उक्त खाँ को कुछ आदमियों के साथ दुर्ग में पकड़ लिया। यहाँ बादशाही पड़ाव में विजय का नगाड़ा बजा और मुबारकबादी दी गई। यहाँ तक कि उस कश्मीरी ने अपनी माँ से संदेश कहलाया कि पीरिया पागल होकर चला गया। इसपर उसके भाई सोमसिंह को, जो संधि के लिए दरबार आया था, छुट्टी मिली कि जाकर दुर्ग खाली करे। यह आज्ञा भी कार्यान्वित हुई। उसने समझा था कि इस कपटाचरण तथा धोखे से बादशाह कूचकर चल देंगे पर जब वह नहीं हुआ तब पुनः युद्ध होने लगा। मुहतशिम खाँ कैद में पड़ा रहा। वीरों के प्रयत्नों से दुर्ग पर जिस दिन अधिकार हुआ उसी दिन उस उपद्रवी ने मुहतशिम खाँ को एक दृढ़ कोठरी में बंदकर घरों में आग लगा दी। यदि बादशाही मनुष्य एक घड़ी देर कर पहुँचते तो खाँ उस आग में जल मरता। कहते हैं कि उक्त खाँ ने कोई ऐसी वस्तु खा ली थी कि जाड़े में उसके शरीर से पसीना टपकता था। यह सदा स्त्रियों का मुहताज रहा और शक्ति तथा स्त्रियों की अधिकता के लिए प्रसिद्ध था। सिवा भोग विलास, खाने व सोने के उसे और कोई काम नहीं था। कई बार नौकरी छूटने से इसका हाल खराब हो गया था। खेलना से लौटने के समय मार्ग में अच्छे लोगों को अनेक प्रकार की कठिनाई तथा कष्ट उठाने पड़े। हर एक नाला वर्षा के अधिक होने से भारी नदी बन गया और हर कदम पर पुल बनाना पड़ा। मजदूरों तथा बोझ ढोनेवालों का नाम भी न था। चौदह कोस का मार्ग एक महीना सत्रह दिन में पूरा हुआ। उक्त खाँ बिना स्त्री के नहीं रह सकता था इसलिए स्वयं पैदल अनेक स्त्रियों के साथ डंडा पकड़े पहाड़ों के नीचे नीचे गिरते पड़ते कुछ कदम चलता था। इसे बहुत संतान थीं पर पुत्रों में से किसी ने उन्नति नहीं की। केवल मीर मुहम्मद खाँ को पिता की पदवी मिली थी, जिसका वृत्तांत अलग लिखा गया है।

५३०. मुहतशिम खाँ शेख कासिम फतहपुरी

यह इस्लाम खाँ शेख अलाउद्दीन का भाई था। जहाँगीर के राज्यकाल के ३ रे वर्ष मे इसने एक हजारी ५०० सवार का मसब पाया। ५ वें वर्ष मे २५० सवार मसब मे बढाए गए। इस्लाम खाँ की मृत्यु पर भी इसका मंसब बढा। ७ वें वर्ष मे यह बंगाल प्रांत का शासक नियत हुआ। ९ वे वर्ष मे इसका मंसब बढकर चार हजारी ४००० सवार का हो गया। सर्दारी की योग्यता रखते हुए भी यह सासारिक व्यवहार नही जानता था इसलिए उस प्रांत के आदमी इससे प्रसन्न नही थे। इसने अच्छी सेना विना उचित प्रबंध के आसाम देश विजय करने भेज दिया, जिसका यही फल हुआ कि उसने तीन चार पडाव ही तै किया था कि आसामियो ने उस पर रात्रि में आक्रमण कर दिया और उसकी वहुत हानि हुई। जब यह बात बादशाह से कही गई तब यह उक्त पद मे हटाया जाकर कृपादृष्टि से गिरा दिया गया। यह ऐसे ही समय में मर गया।

०

५३१. मुहम्मद अनवर खाँ बहादुर, कुतुबुद्दौला

यह शाह ईसा जिदुल्ला के दौहित्रो मे से था, जो शाह लश्कर मुहम्मद आरिफ का शिष्य था और जिसका मकबरा बुर्हानपुर नगर मे था। शाह लश्कर मुहम्मद का गुरु शाह मुहम्मद गौस ग्वालिअरी था और जिसका मकबरा उक्त नगर के बाहर है। आरंभ मे शाह मुहम्मद अनवर शाह नूरुल्ला दरवेश की कृपादृष्टि मे था, जिस पर कुतुबुल्मुल्क तथा हुसेन अली खाँ की पूरी श्रद्धा तथा विश्वास था और दरवेश की सिफारिश से उक्त सैयदो ने इसे आसरा देकर फर्रुखसियर बादशाह के राज्यकाल मे इसे नौकरी दिला दी। इसे अच्छा मंसब तथा खाँ की पदवी मिल गई। जिस समय आलम अली खाँ प्रतिनिधि रूप मे औरंगाबाद मे रहता था उस समय यह दक्षिण की बख्शीगिरी तथा बुर्हानपुर की नायब सूबेदारी पर नियत था। इसका मौसेरा भाई मुहम्मद अनवरुल्ला खाँ, जो उस प्रांत का दीवान था, इसकी ओर से उक्त नगर का प्रबध देखता था।

जब निजामुल्मुल्क फतहजंग बहादुर के नर्वदा पार करने का समाचार सुनाई पड़ा तब आलम अली खाँ ने इसको शंकर मल्हार नामक ब्राह्मण के साथ बुर्हानपुर की रक्षा को भेजा। निजामुल्मुल्क के बुर्हानपुर के पास पहुँचने पर इसने निकलकर उससे भेंट की और उसके बाद बराबर उसके साथ रहा। नासिरजंग शहीद के समय यह दक्षिण का बख्शी था। सलाबतजंग के समय कुतुबुद्दौला की पदवी पाकर

यह सम्मानित हुआ। बाद को सन् ११७१ हि०, सन् १७५८ ई० में बुर्हानपुर में इसकी मृत्यु हो गई। यह दयावान था तथा नित्य की उपासना में दत्तचित्त रहता था पर सासारिकता में भी एक ही था। इसे संतान न थी। इसका मौसेरा भाई अनवरुल्ला खाँ बहुत दिनो तक नवाब आसफजाह का दीवान रहा। यह सचाई से खाली न था और भले लोगो की चाल के लिए प्रसिद्ध था। इसके अन्य भाइयो की संतानें हैं।

•

५३२. मुहम्मद अमीन खाँ मीर मुहम्मद अमीन

यह मुअज्जम खाँ मीर जुम्ला अर्दिस्तानी[1] का पुत्र था। जब इसके पिता के वृत्तात को जानकर बादशाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के प्रयत्न से तिलंग के सुलतान कुतुब शाह का अत्याचार बंद हो गया तब उसने इसको कैद से छोड़कर सुलतान मुहम्मद की सेवा मे भेज दिया, जो अग्गल रूप में उस प्रांत मे आ चुका था। यह हैदराबाद से बारह कोस पर सुलतान की सेवा मे उपस्थित हुआ और इसे भय तथा आशंका से छुट्टी मिल गई। ३१ वें वर्ष शाहजहानी में यह पिता के साथ बादशाही सेवा मे चला। जब बुर्हानपुर पहुँचा तब वर्षा के आधिक्य और बीमारी के कारण यह कुछ दिन साथ न दे सका। इसके अनंतर दरबार पहुँचने पर इसे खिलअत तथा खाँ की पदवी मिली। उसी वर्ष मुअज्जम खाँ को छुट्टी मिली कि शाहजादा मुहम्मद औरगजेब के साथ रहकर आदिलशाही राज्य को लूटमार करते हुए उस कार्य को शीघ्र समाप्त करे। मुहम्मद अमीन खाँ भी एक सहस्त्र जात बढने से तीन हजारी १००० का मंसब पाकर पिता के प्रतिनिधि रूप मे वजीर का काम करने पर नियुक्त हुआ। ३१ वें वर्ष मे बादशाह की इच्छा के विरुद्ध कुछ काम करने के कारण जब मुअज्जम खाँ दीवान आला के पद से हटाया गया तब मुहम्मद अमीन खाँ भी इस कार्य से रोक दिया गया पर इसकी योग्यता तथा अनुभव शाहजहाँ समझ गया था इसलिए पाँच सौ सवार मंसब मे बढाकर तथा जड़ाऊ कलमदान देकर दानिशमद खाँ के स्थान पर जिसने स्वय त्यागपत्र दे दिया था, इसे मीर बख्शी बना दिया।

जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर ने मुअज्जम खाँ को जो बादशाही फर्मान के आनेपर सेना सहित दरबार चल चुका था और जिसने किसी कारण आज्ञा पालन मे कमी न की थी, कैद कर दक्षिण मे रोक लिया तब दारा शिकोह

---

१ इसी भाग मे देखिए।

ने यह समाचार पाकर इसमें मुअज्जम खाँ की शाहजादे के साथ षड्यंत्र समझ कर शाहजहाँ को इसके संबंध में डरावनी बातें समझाईं और मुहम्मद अमीन खाँ पर असंभव बातें लगाकर उसे कैद करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। इसे अपने घर बुलाकर कैद कर लिया पर तीन चार दिन बाद ही उक्त खाँ की निर्दोषिता बादशाह पर प्रकट हो गई जिससे यह कैद से छूट गया। दारा शिकोह के पराजय के बाद दूसरे दिन औरंगजेब के विजय का झंडा फहराने लगा और सामूगढ़ के शिकारगाह में, जो जमुना नदी के किनारे है, जब वह विजयी बादशाह ठहरा हुआ था उस समय मुहम्मद अमीन खाँ सबसे पहिले उसकी सेवा में पहुँच गया। इस पर बादशाही कृपा हो जाने से इसे चार हजारी ३००० सवार का मंसब मिला। इसी महीने में यह मीर बख्शी का पद पाकर सम्मानित हुआ। जब शुजाअ के युद्ध में महाराज जसवंत सिंह ने उपद्रव कर औरंगजेब की सेना से हटकर अपने देश का मार्ग लिया और दारा शिकोह के पास पहुँचने की इच्छा की तब शुजाअ के युद्ध से छुट्टी पा लौटने पर मुहम्मद अमीन खाँ को भारी सेना के साथ उस काफिर सर्दार को दंड देने के लिए भेजा। उक्त खाँ दाराशिकोह के पास पहुँचने पर जो अहमदाबाद से अजमेर आ रहा था, पुष्कर के पास से लौटकर बादशाह के यहाँ चला आया। २ रे वर्ष इसका मंसब पाँच हजारी ४००० सवार का हो गया। ५ वें वर्ष में इसके मंसब में एक सहस्त्र सवार बढ़ा दिए गए।

जब ६ ठे वर्ष के आरंभ में मीर जुम्ला बंगाल में मर गया तब शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम ने इसके घर जाकर इसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई और इसे सांत्वना दी। इसे वह अपने साथ बादशाह के पास लिवा गया और बादशाह ने कृपा कर इसे खास खिलअत देकर शोक से उठाया। १० वें वर्ष में यूसुफ जई झुंड ने ओहिंद मौजा में, जो पार्वत्य स्थान के मुख पर है, फिर इकट्ठे होकर उपद्रव आरंभ कर दिया था इसलिए मुहम्मद अमीन खाँ भारी सेना के साथ उन्हें दंड देने के लिए भेजा गया। उक्त खाँ के पहुँचने के पहिले शमशेर खाँ तरीं के धावों से वे उपद्रवी पूरा दंड पाकर पराजित हो चुके थे। इसने भी उनके देश में घुसकर उन विद्रोहियों को धावे कर तथा उनके मकानों को यथासंभव नष्ट कर दमन कर दिया। बादशाही आज्ञानुसार लौटने पर इब्राहीम खाँ के स्थान पर यह लाहौर का सूबेदार नियत हुआ। १३ वें वर्ष में महाबत खाँ के स्थान पर काबुल के शासन का फर्मान इसे मिला। इसी वर्ष जाफर खाँ प्रधान मंत्री संसार से उठ गया और कुछ दिन असद खाँ प्रतिनिधि होकर उसका कार्य करता रहा। बादशाह की सम्मति थी कि इस उच्चपद का कार्य बड़े सर्दारों के सिवा दूसरा नहीं कर सकता इसलिए इसे दरबार बुलाया। १४ वें वर्ष में यह सेवा में पहुँचा और बादशाही कृपाओं से सम्मानित हुआ। यद्यपि यह विचार शीलता तथा सुसम्मति देने में प्रसिद्ध था पर

यौवन के कारण निर्भीकता भी इसमें थी। इसने मंत्रित्व स्वीकार करने मे कुछ शर्तें लगाईं, जो बादशाह की प्रकृति के बिलकुल विरुद्ध थी और कुछ कष्टों का उल्लेख कर आपत्ति भी की।

इसके भाग्य में दुर्दशा होना लिखा था इसलिए यह काबुल के शासन पर भेजा गया और इसे बादशाही अनेक भेंट तथा चाँदी के साज सहित आलमगुमान हाथी भी मिला। घमंड का कुनकुना मुवार सिवा पीलापन के और रग नही लाता और अहंकार मिना अप्रतिष्ठा की धूल के और कुछ नही उड़ाता। झंडे के गर्दन की रग, जिसे वह फहराता है, असफलतारूपी शत्रु है और कुमंत्रणा विचित्र असफलता तथा असम्मान पैदा करता है। मुहम्मद अमीन खाँ भी अपनी शान शौकत दिखलाने में बहुत सा सामान तथा वैभव इकट्ठा कर इस विचार मे था कि पेशावर से काबुल में पहुँच कर विद्रोही अफगानो को दमन कर उस देश से इस उपद्रव के काँटे को खोद कर निकाल फेंके। १५ वें वर्ष में ३ मुहर्रम सन् १०८३ हि० को खैबर घाटी के पार करने के पहिले यह समाचार मिलने पर भी कि अफगानो ने यह विचार जानकर मार्ग रोक दिया है और चीटी और टिड्डी की तरह उमड़ पड़े हैं इसने, जिसपर ईश्वरीय कोप पड़ चुका था, साहस कर उनको कुछ न समझा तथा उन्हें भगा देना सहज समझ कर आगे बढ़ा। जैसा कि अकबर के समय जैन खाँ कोका, हकीम अबुल्फतह तथा राजा बीरबल पर बीत चुका था उसी प्रकार घाटी पार करते समय असतर्कता तथा उपद्रवियो के झगड़े से इस पर भी बीता। अफगानो ने चारो ओरसे उमड कर तीर व पत्थर बरसाना आरंभ किया, जिससे सेना अस्त व्यस्त हो गई और हाथी, घोड़े तथा आदमी एक दूसरे पर गिरने लगे। इस घटना मे सहस्रो मनुष्य पहाड़ों पर से खड्डो में गिर कर मर गए। मुहम्मद अमीन खाँ लज्जा को मारे जान देना चाहता था पर नौकरो ने उसे पकड़ लिया और बाहर लाए। अपनी स्त्रियों का हाल बिना लिए ही दुर्दशाग्रस्त अवस्था मे भागता हुआ पेशावर पहुँचा। इसका योग्य जवान पुत्र अब्दुल्ला खाँ उस आपत्ति में मारा गया। सेना का कुल सामान लूट गया। बहुत सी स्त्रियाँ पकड ली गईं। मुहम्मद अमीन खाँ की छोटी पुत्री को बहुत सा धन लेकर अन्य पर्देवालियो के साथ छोड़ा।

कहते हैं कि उक्त खाँ ने इस घटना के अनंतर बादशाह से प्रार्थना की कि जो कुछ भाग मे लिखा था वह बीत गया पर अब पुन यह कार्य मुझे दिया जाय तो मैं इसका पूर्ण प्रयत्न तथा प्रायश्चित करूँ। बादशाह ने इस बारे मे सम्मति ली। अमीर खाँ ने कहा कि घायल भेड़िया कारण अकारण चोट करता है। इसपर इसका मंसब छ हजारी ५००० सवार से पाँच हजारी ५००० सवार का कर इसे अहमदाबाद गुजरात का सूबेदार नियत कर भेज दिया। यह आज्ञा हुई कि दरबार

न आकर सीधा वहाँ चला जावे। इसने वहाँ बहुत दिन व्यतीत किया। २३ वें वर्ष में जब बादशाह अजमेर मे थे तब यह बुलाए जाने पर दरबार में आया और उदयपुर तक राणा के साथ था। चित्तौड़ में बादशाही भारी कृपाओं को पाकर यह विदा हुआ। २५ वें वर्ष में ८ जमादिउल् आखिर सन् १०९३ हि० को यह अहमदाबाद में मर गया। सत्तर लाख रुपया, एक लाख पैंतीस सहस्र अशरफी तथा इब्राहीमी और छिहत्तर हाथी के सिवा और बहुत सा सामान जब्त हो गया। इसे पुत्र न थे पर सैयद महमूद नामक एक भांजा था। इसका दामाद सैयद सुल्तान करबलाई, जो उक्त स्थान के सैयदो मे से था, पहिले हैदराबाद आया और वहां के सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह ने इसे अपनी दामादी के लिए चुना। दैवयोग से जिस दिन विवाह होने को था उस दिन इससे तथा मीर अहमद अरब से, जो बड़ा दामाद तथा राज्यकार्य का सर्वेसर्वा और इस संबंध का कर्ता था, किसी बात पर झगड़ा हो गया। यह यहाँ तक बढ़ा कि वह बेचारा सैयद घर मे आग लगाकर बाहर चला गया। यद्यपि मुहम्मद अमीन खाँ शान व सजावट मे व्यय करता था पर सचाई व ईमानदारी मे एक था। दूसरो की भलाई करने मे यह सदा प्रयत्नशील रहता। स्मरण शक्ति इसकी तीव्र थी। अवस्था के अंत मे अहमदाबाद गुजरात की सूबेदारी के समय अधिक या कम समय मे खुदा के संदेश को स्मरण कर विदा लिया करता। इसीपर औरंगजेब बादशाह ने इसे हाफिज मुहम्मद अमीन खाँ की पदवी दी। यह इमामिया मजहब का कट्टर पक्षपाती था। इसके एकांत स्थान में हिंदू नही जा पाते थे। यदि कोई बड़ा राजा इसे देखने जा पहुँचता जिसे रोक नही सकते थे तो घर को पानी से धुलवाता और फर्श तथा कपड़े बदलता।

•

५३३. मुहम्मद अली खाँ खानसामा

यह तकर्रुब खाँ हकीम दाऊद का पुत्र था तथा विलायत का पैदा था। इसका पिता हकीमी में अत्यंत कुशल था और शाहजहाँ की सेवा में आकर अपनी औषधि तथा कुशलता से बादशाही कृपापात्र होकर शीघ्र एक सर्दार हो गया और इसे भी एक हजारी मंसब मिला। औरंगजेब की राजगद्दी पर जब बादशाह पंजाब से राजधानी लौटे तब इसे खाँ की पदवी मिली। तकर्रुब खाँ को शाहजहाँ की दवा करने के लिए गद्दी से उतारे हुए उस बादशाह के पास छोड रखा था इसलिए औरंगजेब का मन उससे फिर गया और वह दंडित हुआ। यह भी पिता के कारण

मंसब छिन जाने पर बादशाही कृपादृष्टि से गिर गया। जब ५ वें वर्ष में इसका पिता मर गया तब बादशाह ने इस पर कृपाकर खिलअत देकर इसे शोक से उठाया और मनसब बढ़ाकर डेढ़ हजारी २०० सवार का कर दिया। १७ वे वर्ष में हकीम सालिह खाँ के स्थान पर करकराकखाना[1] का दारोगा का पद देकर इसका मंसब दो हजारी १००० सवार का कर दिया। बाद में चीनीखाना की दारोगागिरी भी साथ में मिल गई।

इसकी सचाई, मितव्ययिता, अनुभव तथा कार्यशक्ति बादशाह पर अच्छी प्रकार प्रकट थी इसलिए अजमेर जाते समय रुहुल्ला खाँ के स्थान पर खानसामाँ का पद इसे दिया। इसने अपनी चाल की दृढ़ता, सचाई, सुसम्मति आदि से औरंगजेब के हृदय में इतना विश्वास पैदा कर लिया कि यह अपने बराबरवालों से बढ़ गया और एक अच्छा सर्दार हो गया। गोलकुंडा के घेरे मे, जो अभी साम्राज्य के अधिकार में नहीं आया था, १८ रजब सन् १०९८ हि० को इसकी मृत्यु हो गई। बुद्धिमानी, विद्वता, बड़प्पन आदि मे यह प्रसिद्ध था तथा सत्यनिष्ठा और सचाई से बादशाही माल की निगरानी में प्रयत्न करता रहा। यह दयावान भी था और जो इसके पास पहुँचा सफल रहा। धार्मिक बातों को मानता था और निमाज तथा रोजा रखता था। धार्मिक पुस्तकें भी पढ़ता था। नेअमत खाँ हाजी अपने हजलों[2] में इस पर सूखा विरक्त तथा उपासक का व्यंग्य करता था। खानसामानी से संबधित दारोगागिरियो पर इसका अधिकार था इसलिए यह उनकी रक्षा के लिए कि लूट न हो मना करने के कारण उसके हृदय को रिक्त कर दिया था। उक्त खाँ काजियों की तरह बड़ी पगड़ी बाँधता था, जिस पर नेअमत खाँ ने संकेत किया है—शैर

सिर पर रखना है बड़ी बुजुर्गी।
हमने सिवा पगड़ी के कुछ न देखा॥

●

---

१ इसका पाठांतर करकराकीखाना, करकोराक खाना आदि मिलता है पर इसका अर्थ ज्ञात नहीं हो सका।

२. वैसी गजल जिसमे किसी की हजो की जाय या हँसी उड़ाई जाय।

५३४. मुहम्मद अली खाँ मुहम्मद अली बेग

यह शाहजादा दाराशिकोह के साथ के मन्सबदारों में से कुलीज खाँ का दामाद था। यह साधारण नियम था कि सरकार हिसार युवराज शाहजादों को मिला करता था जैसे बाबर के समय हुमायूँ को, हुमायूँ के समय अकबर को और इसी प्रकार जहाँगीर के समय भी बड़े शाहजादे को जब वह मिला तब यह उसका फौजदार नियत हुआ। प्रत्येक काम का पूरा होना समय के अनुसार है और काम करने वाले साधारण कारण से प्याले को काम में उलेंड़ देते हैं। इसी समय दीपक की लपट दामन में लगने से बेगम साहबा का शरीर कई जगह जल गया और हकीमों के बहुत दवा करने पर अच्छा हो गया था पर वे घाव कभी कभी बढ़ जाते थे। इस पर इसने प्रार्थना की कि उक्त सरकार में हामूँ नाम का एक विरक्त फकीर है और उसका मलहम ऐसे घावों के लिए बहुत लाभदायक है। आज्ञा मिलने पर वह लाया गया और उसके मलहम ने बहुत लाभ पहुँचाया। बादशाह ने उस फकीर को धन, खिलअत, घोड़ा, हाथी और गाँव उसी के देश में पुरस्कार में दिया। मुहम्मद अली खाँ पर भी इस कारण कृपा हुई और १८ वें वर्ष में खाँ की पदवी इसे मिली। २६ वें वर्ष में जब मुलतान प्रांत गुजरात प्रांत के बदले में शाहजादे को मिला तब इसे खिलअत देकर वहाँ के शासन पर नियत किया। जब उक्त प्रांतों के साथ ठट्टा प्रांत भी शाहजादे को मिला तब यह उस प्रांत की रक्षा पर नियत हुआ। ३० वें वर्ष सन् १०६६ हि० में इसकी मृत्यु हो गई।

●

५३५. मुहम्मद असलम खाँ

यह मीर जाहिद हरवी का पुत्र था, जिसका वृत्तांत अलग लिखा गया है। औरंगजेब के समय यौवन प्राप्त करने पर इसे योग्य मंसब तथा खाँ की पदवी मिली। बहुत दिनों तक काबुल प्रांत का दीवान रहा और इसके बाद साथ साथ में शाह आलम की सरकार का दीवान भी रहा। ३८ वें[1] वर्ष में इन कामों से हटाया जाकर सैयद मीरक खाँ के स्थान पर लाहौर का दीवान हुआ। ४१ वें वर्ष में यह उस पद से हटाया गया और बाद में कुछ वर्ष तक लाहौर का अध्यक्ष रहा।

---

१. इस वर्ष में कुछ शंका है। यहाँ अड़तालीसवाँ वर्ष लिखा हुआ था आगे इकतालिसवाँ वर्ष आया है इसलिए यही रखा गया है।

बहादुरशाह के समय वहीं इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र मुहम्मद अकबर और मुहम्मद आजम के बादशाही सेवा कर लेने पर शाहजादों के नाम के विचार से इनके नाम मुहम्मद अकरम और मुहम्मद असगर कर दिए गए। प्रथम ने खाँ की पदवी पाकर हिंदुस्तान में अपना जीवन बिता दिया और दूसरा पिता की पदवी पाकर नादिरशाह की चढ़ाई के बाद निजामुल्मुल्क आसफजाह के साथ दक्षिण चला गया। कुछ दिन वहाँ के प्रांतों का दीवान रहा और फिर मीर आतिश हो गया। सलाबतजंग के राज्यकाल में यह दक्षिण का बख्शी हुआ। इसके अनंतर यह हशमतजंग बहादुर की पदवी पाकर बुर्हानपुर का शासक नियत हुआ। निजामुद्दौला आसफजाह के समय जियाउद्दौला इसकी पदवी में बढ़ाया गया। लिखने के कुछ वर्ष पहिले इसकी मृत्यु हो गई। यह छ हजारी ६००० सवार के मंसब तक पहुँचा था। इसके संतान थी।

●

५३६. मुहम्मद काजिम खाँ

यह इन पंक्तियों के लेखक का बिना संबंध[1] का बड़ा दादा था। जब इसका पिता मीरक मुईनुद्दीन अमानत खाँ मर गया तब गुणग्राहक बादशाह औरंगजेब ने इस सुशील सदाचारी के योग्य पुत्रों के उनके हाल के अनुसार मंसब बढ़ाए तथा पद देकर सफल बनाया। यह सत्यनिष्ठा के बाग का वृक्ष युवावस्था ही में मंसब की उन्नति के साथ पहिले बीजापुर की बयूताती पर और फिर औरंगाबाद प्रांत के अंतर्गत जालनापुर की अन्य पर्गनों के साथ फौजदारी पर नियत हुआ। जिस समय ब्रह्मपुरी के पास बादशाही पड़ाव पड़ा हुआ था उसी समय यह राजधानी लाहौर का दीवान नियुक्त हो वहाँ भेजा गया। उन दिनों खानाजाद सेवकों पर बहुत कृपा रहती थी। कहते हैं कि उन दिनों उक्त खाँ मदिरापान तथा मदिरा उतारने में व्यस्त था और वजीर खाँ शाहजहानी के एक पौत्र ने, जो राजधानी का वाके-आनवीस था, अपनी परतों में यह हाल प्रगट कर दिया और डाक के दारोगा ने

---

१. इसका तात्पर्य क्या है, यह समझ में नहीं आया। ग्रंथकर्ता नवाब शाहनवाज खाँ का यह पितामह था। स्यात् काजिम खाँ ने पुत्र की मृत्यु के अनंतर इसका जन्म होने से इसे त्याग दिया रहा हो और इसी कारण इसने ऐसा लिखा हो।

ज्यों का त्यों बादशाह के आगे सुना दिया। यह देखकर उसके बहनोई अर्शद खाँ ने, जो खालसे, का दारोगा था, यह हाल पूछते हुए बादशाह ने कहा कि अमानत खाँ के पुत्रों से इस प्रकार के काम अनुचित तथा असंभव हैं पर लिखनेवाला भी खानजाद है। कुछ ठहर कर, यद्यपि वैसी आशंका तथा विचार रखते हुए, इसके पिता की बुद्धिमत्ता तथा उस मृत की अच्छी सेवाओं का स्वत्व ध्यान में रखकर दारोगा से कहा कि उत्तर में लिखो कि दोनों खानजाद हैं और एक खानाजाद को दूसरे खानजाद के संबंध में ऐसी घृणित तथा बुरी बात दरबार को सूचित न करना चाहिए।

जब बादशाहजादा मुहम्मद मुअज्जम बहादुरशाह के प्रथम पुत्र शाहजादा मुइज्जुद्दीन मुलतान प्रांत जाते हुए नगर में आया तब उक्त खाँ सेवा में उपस्थित होकर अनेक कृपाओं से सम्मानित किया गया। तीन दिन तक सत्संग रहने पर इन दोनों का ऐसा मन मिल गया कि शाहजादे की दृढ़ इच्छा हो गई कि यह साथ रहे और इसके अनुसार उसने दरबार को प्रार्थनापत्र भेजा। इस पर मुलतान तथा ठट्टा प्रांतों की और भक्कर व सिविस्तान की दीवानी इसे मिली तथा साथ में सेना की दीवानी भी इसे दे दी गई। जब यह मुलतान गया तब वहीं से दोनों की प्रकृति इस प्रकार से एक सी होने के कारण दोनों में खूब मेल हो गया। खास मजलिस में तथा एकांत में इसका साथ रहता। उस मन के होते उस सरकार के अन्य सर्दारों की चाल पर, कि अपनी स्त्रियों का शाही महल में आना जाना अपनी अमीरी समझते थे और एक दिन रात शाहजादा इस सर्दार की हवेली के बाग में अपनी खास रखेलियों के साथ सैर करते हुए रहने पर भी इसने उस अप्रशंसनीय चाल को नहीं अपनाया। बलूच की चढ़ाई में, जो शाहजादे ही के कार्यों में से था और जिस पर औरंगजेब को गर्व भी था, सफलता प्राप्त करने पर, कि सेनाओं ने उस देश को दमन कर दिया था तथा उस जाति की शक्ति तोड़ दी थी, शाहजादे ने चाहा कि एक सेना किसी पार्श्ववर्ती सर्दार के अधीन उनके निवासस्थान पर नियत करे पर बहुतों ने स्वीकार नहीं किया। इस सच्चे सर्दार ने अपने स्वामी के कार्य से बिना सोचे मुख न मोड़ा और फुर्ती से चला गया। अच्छे विश्वासवाली वह जाति शक्ति रखते हुए भी केवल मैदान की मर्यादा के विचार से अपना मालमता छोड़कर भाग गई। शाहजादे के लिखने पर इसका मंसब बढ़ा तथा इसे खाँ की पदवी मिली।

औरंगजेब की मृत्यु पर शाहजादा अपने पिता के साथ, जो पेशावर से अपने भाई मुहम्मद आजमशाह से लड़ने की तैयारी कर रहा था, जिसमें प्रत्येक ने समयानुकूल अपने अपने नाम सिक्का तथा खुतबा कर दिया था, मुलतान पहुँचने पर उक्त खाँ को अपना नायब सूबेदार बनाकर वहाँ छोड़ा। यहाँ से हटने पर जब

यह लाहौर पहुँचा और बहादुरशाह दक्षिण जा रहा था तब यह दूर की यात्रा में अशक्त होने से वहीं रुक गया। इसने दो तीन वर्ष के लगभग वहीं बेकारी में व्यतीत किया क्योंकि आय न होते भी व्यय बढ़ गया था, जैसा कि धनाढ्यों के यहाँ होता है। इसमें सचाई तथा विश्वस्तता पूर्ण रूप से थी और इसकी जागीर की अधिकतर आय कला-कुशलों में व्यय हो जाती थी, जिनमें हर एक गुणी के लिए वेतन बँधे हुए थे, इसलिए उस समय सभी पुत्रों की जागीर तथा नगद, जिन सबको बादशाह तथा शाहजादों की ओर से मंसब मिल चुके थे, इकट्ठा कर व्यय चलाता था। सरहिंद के अंतर्गत साध़ौरा में यह बादशाह तथा शाहजादे की सेवा में उपस्थित हुआ तब इसे पंजाब प्रांत में आबाद जागीर मिली और शाहजादे के द्वितीय बख्शी का पद पाया, जो अब जहाँदारशाह की पदवी से प्रसिद्ध हो चुका था। इसके अनंतर जब जहाँदारशाह बादशाह हुआ तब इसे चार हजारी मंसब मिला परंतु आलस्य, वेपर्वाही तथा दुनियादारी की चालों को न समझने से नवागंतुकों के आने और कोकल्ताश खाँ की ईर्ष्या से, जो सदा मित्रता की ओट में इसका काम बिगाड़ता रहता था, इसका ऐश्वर्य बढ़ने नहीं पाया प्रत्युत् गुणग्राहकता के अभाव तथा विमनसता से दरबार में आना जाना और मुजरा सलाम सब बंद हो गया। एक दिन दैवयोग से इसका सवारी के समय बादशाह का सामना हो गया और पुरानी कृपा के कारण पूछताछ हुई। इसकी बेकारी तथा दुर्दशा पर शोक भी प्रगट किया गया। कोकल्ताश खाँ की उचित भर्त्सना की गई जिसपर गुजरात या लाहौर की सूबेदारी का प्रस्ताव बीच में आया। घूसखोरी व चालाकी का दुनियादारी से व मीर तथा वजीर का न्याय से सरोकार था। इसका स्वभाव इन बातों से बिलकुल अपरिचित था। अंत में लाहौर दुर्ग की अध्यक्षता इसे पसंद आई पर कुछ महीने नहीं बीते थे कि दूसरा फूल खिल उठा और फर्रुखसियर की राजगद्दी हो गई। जहाँदार शाह की पुरानी मित्रता के कारण यह बादशाही कोप में पड़ने ही को था कि यह कुतुबुल्मुल्क के पास प्रार्थना लेकर पहुँचा, जो कुछ दिन मुलतान में नियत था और कुल ठीक हाल जानता था। उसने प्रार्थना की कि यह लेने, देने, शोक, इच्छा से दूर रहता है और शाहजादे की इच्छानुसार कोकल्ताश खाँ के हाथ में सब कामों को छोड़कर यह नाम से प्रसन्न रहता था। इस पर यह बला इसके सिर से टल गई। इस बादशाह के राज्यकाल के अंत में जब एतकाद खाँ फर्रुखशाही बादशाह के पार्श्ववर्ती होने तथा सम्मान पाने से बढ़ गया तब पुरानी मित्रता तथा एक साथ काम करने से, क्योंकि यह भी जहाँदार शाही था, इसे कश्मीर प्रांत की दीवानी मिली, जो आराम पसंदों के लिए बहुत ही आकर्षक तथा आराम देने वाला स्थान है। जब मुहवी खाँ का उपद्रव उस प्रांत में हुआ, जिसका विवरण वहाँ के नायब सूबेदार मीर अहमद खाँ द्वितीय के जीवन वृत्तांत

में लिखा जा चुका है, तब यद्यपि इसके वृत्त की छोटी नाव उस उपद्रव की नदी मे कुशलपूर्वक रही, जब कि बादशाही मुत्सद्दियों की नावें बहुधा अप्रतिष्ठा तथा खराबी के भँवर मे डूब गईं, पर दरबार के कार्यकर्ताओं ने वहाँ के कार्यों से इसे हटा दि ग। इसके अनंतर इसने दिल्ली आकर कई साल तक बेकारी तथा दुर्दशा में व्यतीत किया और सन् ११३५ हि० में इसकी मृत्यु हो गई, जिसकी अवस्था ६० वर्ष से अधिक हो चुकी थी।

इसका बड़ा पुत्र मीर हसन अली, जो इन पृष्ठों के लेखक का पिता था, यौवनकाल ही में लाहौर मे सन् ११११ हि० में मर गया, जब कि वह उन्नीस वर्ष से अधिक नही हुआ था और उसकी इच्छा के वृक्ष में फल नही लगे थे। मृत्यु के पंद्रह दिन बाद २८ रमजान[1] को इस लेखक का जन्म हुआ। यद्यपि इसके चाचा-गण तथा इस वंश के कुछ अन्य लोग लाहौर ही में थे पर दादा की जीवित अवस्था ही में, जिस वर्ष[2] अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ दक्षिण गया उसी वर्ष खानपान की कमी तथा दरिद्रता के कारण यह औरंगाबाद चला आया और यहीं रहने लगा। इसमें बहुत दिन बीतने से यह लौटा नहीं और मित्रों तथा देश से हाथ खींच लिया। अन्त में निरुपाय हो सेवा करने का निश्चय किया। सन ११४५ हि० मे नवाब आसफजाह से बरार प्रांत की दीवानी इसे मिली। बिखरी हुई इस पुस्तक को फिर से लिख डाला और उस मुर्झाए हुए फल में निजी प्रयत्नों द्वारा सींचकर नया रंग व सुगन्ध पैदा किया गया। अच्छी सेवा तथा कार्य करने का फल प्रकट होने पर आसफजाह के दुभाषिए के मुख से निकला कि अमुक के काम अच्छे होते हैं।

जब उस समय कि उच्चपदस्थ सर्दार निजामुद्दौला बहादुर नासिरजंग समय देखकर दक्षिण के प्रबंध को निकला तब दैवयोग ने समाचार लेखक को भी औरंगाबाद खींच लिया। इस साहसी तथा भाग्यवान युवक पर ईश्वरेच्छा से उसने बहुत कृपा की। जब ईश्वरी कृपा ने एक पार्श्ववर्ती की सहायता से गुमनामी के कोने को दूर किया तथा भाग्य खोलनेवाले के द्वारा जमे हुए गुमनामी धब्बे को परिचय के दर्पण से हटा दिया तब इस प्रकार बिना किसी प्रयत्न के उस सर्दार ने इस अयोग्य को अपनी सेवा मे लेकर विश्वासपात्र बना दिया और इस विश्वास तथा परिचय से बिना किसी साथी के अपना मुसाहिब तथा अंतरग मित्र बना लिया।

---

१ २८ रमजान सन् ११११ हि० अर्थात् ९ मार्च सन् १७०० ई० को लाहौर में मीर अब्दुर्रजाक नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज खाँ का जन्म हुआ था।

२ सन् १७१५ ई० में यह औरंगाबाद गए जहाँ इनके अन्य परिवार वाले रहते थे तथा ननिहाल भी था।

हर एक काम समय के अनुसार ही होता है अतः कुछ समय बाद दक्षिण की दीवानी इसे मिली तथा उस राज्य के अंतर्गत आसफजाह के सरकार का नायब दीवान और खानसामाँ नियत हुआ। स्वामिभक्ति तथा हितैषिता को अनुभव तथा कार्यशक्ति से मिलाकर यह करने लगा। अपने पूर्वजों की चाल पर घूसखोरी व भेंट लेने की प्रथा को, जिसे अपने प्रान्त का स्वत्व माँ के दूध से बढकर दुनियादार लोग समझते हैं, राज्य से एक दम बदकर हराम बना दिया। प्रकट है कि ईश्वर के भय से इस प्रथा को काम मे लाना अलभ्य है। अधिकतर ऐसा करने मे सिवा स्वामी को प्रसन्न करने तथा नई कृपा प्राप्त करने के और कुछ नही है, जो ऐश्वर्य तथा सम्मान को बढानेवाली है। यह भी उस समय कल्पना के पक्षी के समान था। सौ मे से एक मे भी यदि यह गुण हो तो सासारिक लोगो मे वह नादानी और मूर्खता समझा जाता था। ईश्वर की स्तुति है कि यहाँ यह अंतिम इच्छा न थी। यह हमारा भाग्यशाली सर्दार, जिसकी पैरवी कर भले लोग नेकी का कोप सचित करते हैं, ऊँचे साहस मे प्रकाशमान सूर्य था, जो जनसाधारण का पालक था और उदारता मे अद्वितीय बादल था, जो पुरस्कारो का पूर्ण दाता था परतु विचारिणी बुद्धि केवल लज्जा के विचार मे, कि उससे चार आँखें न हो तथा सिर ऊँचा न हो सके, दूर रहना उचित समझा। कहा है शैर—

किसी को लज्जित करने को सिर ऊँचा न करे।
छल्ले के समान किसी को पकडना गुण है।।

इसके अनतर जब समय ने दूसरा रंग पकडा और उस उच्चवंशस्थ सर्दार ने अवसर समझकर एकांतवास किया, जिसका विवरण सक्षेप मे नीचे दिया गया है तब इसने भी प्रेम के कारण इन सब कामो से हाथ हटाकर साया के समान उसका साथ दिया तथा शीराजी मदिरा के घूट से समय की इच्छा तथा मुख को स्वादिष्ट बनाया। शैर—

राजसिंहासन तथा जमशेद के अफसर हवा में मिल जाते हैं।
यदि गम खाएँ तो अच्छा न था इसलिए अच्छा है कि खाता हूँ।।

इस प्रकार कुछ दिन एकात के कुंज मे आराम तथा छुट्टी मे व्यतीत किया। मैंने कहा है। शैर—

संतोष के कारण मैंने कोना अख्तियार नही किया है।
कोने मे शरीर-पालन के लिए यह विचार किया है।।

संयोग से ईर्ष्यालु आकाश ने इस हालत में भी न छोडा और आँचल से पैर पोंछनेवालो को पर्वत तथा जंगल का मार्ग दिखलाकर अबुहर के रौजे से भी लिवा गया। बहुतो का इस परिवर्तन तथा दुर्दशा से साहस का हाथ सुस्त हो गया है तथा इच्छा का पैर पत्थर से टकरा गया। कुछ स्वाँस न ले पाया था कि आकाश के

कुमार्ग प्रदर्शन से युद्ध के झगड़े में पड़ गया। उस दिन भी पहिले की तरह सर्दार[1] के पीछे हाथी पर था। जब मामला बढ़ा और पराजय हुई तब सर्दारगण तथा सेनापति लोग सुरक्षित स्थान में चले गए, जो युद्धस्थल के पास था। सिवा उस सर्दार की हाथी के, जो उस चार दीवारी के फाटक के पास पहुँच गया था, कोई वहाँ न था। भाग्य के ऐसे खेल पर प्रश्न हुआ कि क्या करना चाहिए। मैंने कहा कि वैसे सुरक्षित स्थान से अरक्षित रहना ही अच्छा है, जहाँ गोले गोलियों का अपने को हर ओर निशाना बनाया जाय और मुफ्त में जान दी जाय। इसके सिवा कोई लाभ नहीं समझा जा सकता। उस दृढ़ हृदय ने यह सुनकर मैदान का मार्ग लिया और देखा कि विपक्षी हाथी सवार उसे अकेला देखकर पीछा कर रहे हैं। उसने साहस से अकेले ही प्रशंसा करते हुए आक्रमण से हट गए पर उसे घेरकर उसी प्रकार आसफजाह के सामने ले चले। कुछ ही कदम बाकी था कि उस सुरक्षित स्थान से कुछ वीर तलवार खींचे हुए बिजली के समान आ पहुँचे। अवसर हाथ से निकल गया था इसलिए उस सर्दार तथा इन पृष्ठों के लेखक ने कड़ाई से उन्हें बहुत मना किया पर सिवा विपक्षियों के आक्रमण के और कुछ न हुआ। निरुपाय हो रक्षा व सतर्कता के लिए उधर दाएँ बाएँ ओर तीर बरसाकर वहाँ से उन्हें दूर रखा। भाग्य का खेल था कि युद्ध में घायल न हो संधि के समय घायल हो गया। एकाएक उस उपद्रव में कुछ लुच्चे तलवार खींचे हुए मेरी ओर चढ़े और धावा किया। अच्छी आवाज में (यह सुनकर) कि क्यों अपने को मारने को देता है सशंकित हो कर हाथी से कूद पड़ा। ईश्वर की रक्षा थी इससे हाथियों के घेरे की ओर जो एक साथ वहाँ पहुँचे थे, गिरा। उसी समय दूसरे सर्दार ने उस प्रभावशाली को अपनी हाथी पर चढ़ा लिया और उस उपद्रव स्थल से निकाल ले गया। ऊँचे उठे गोले शांत हो गये। उस उपद्रव तथा निस्सहाय अवस्था में मित्र[2] के मिलने से मृत मुनव्वर खाँ[3] के घर गया, जिसकी विवरण अलग दिया हुआ है। बिना इच्छा के इस घटना में सम्मिलित होने से बहुत दंड पाने की आशंका थी परंतु नवाब आसफजाह की उदारता से, जो खुदा की आयता में एक है, केवल मंसब व जागीर जब्त होकर रह गई और कुछ आदमी घर जब्त करने को हम पर बढ़ाए गए।

---

१. नवाब आसफजाह के पुत्र नवाब निजामुद्दौला नासिरजंग।

२. सादुल्ला खाँ वजीर के पौत्र हजुब्बुल्ला खाँ ने उन्हें उक्त बात कहकर रोक लिया था नहीं तो उस अवस्था में नवाब आसफजाह के सामने पहुँचने पर प्राण न बचते।

३. इसी पुस्तक में देखिए।

यद्यपि संसार मे शंका तथा कुविचार बहुत थे पर ईश्वर को धन्यवाद है कि एकांत के कोने से संतुष्ट हूँ कि न सुनने योग्य बातें सुनाई नही पड़ती और न देखने योग्य बातें दृष्टि में नहीं आती। शैर—

ऐ एकांत के कोने तुझी से नम्रता का जल बहता है,
नही पहिचानता हूँ यदि तेरी कद्र दर दर हो।

यहीं एकांतवास इस ग्रन्थ के प्रणयन का कारण हुआ, जिसका संकेत भूमिका[1] में है और जिसमें दैवी कथाएँ खिली, शंकाहीन कृपा ने मुख खोला तथा इच्छित काम में बेकारी दूर करने का प्रयत्न करता रहा। जानना चाहिए कि इसमें निरर्थक तथा व्यर्थ की बातें अधिक नही हैं। इस बलात् की छुट्टी से मन को दृढ़कर और व्यर्थ की चिंताओ को दूर कर समय का आबद्ध हो मैं जो कर सका उसे किया, जिससे बेकारी नहीं खली। छः साल में यह रचना समाप्त हुई। शैर का अर्थ—

अँगड़ाई से भरे ऐश के कलंक से भागा हूँ।
शराब इतनी न थी कि खुमारी का दुःख हो।

यद्यपि थोड़े समय इसके कारण संसार की खीचाखीची से आराम पाया। शैर का अर्थ—

जो आवश्यक है उसे आकाश एक दूसरे पर पटकता है। वह समय आया कि बेकारी मेरे काम आई॥

फिर भी तात्विक प्रकृति के अनुसार, कि उसके हृदय का बड़ा होना कंपन से संबद्धित है क्योकि जितना ही कंपन बढ़ता है उसका चिह्न भी बढ़ता है और उतने स्वाद का जल बहुत देर तक स्थिर पड़ा रहने से खराब हो जाता है तब हृदय क्यो न वैसा हो जाय, प्रकट करने की इच्छा नही रखता। शैर का अर्थ—

मुझको अत्याचारी आकाश से कोई उलाहना नहीं है। मुझ से एक पत्र चुप रहने को मुह सहित ले लिया गया है।

जब संसार आशा से भरा है तब इच्छा करना दोष नही है। मिसरा का अर्थ—

स्यात् हमारी रात्रि का भी प्रातःकाल होने को है।

दो सुगमताओ के बीच एक कठिनाई आ जाती , और रात्रि की स्याही के पीछे सुबह की सफेदी लगी रहती है। शैर—

आशा के मुख का नकाब निराशा से घिरा होता है।
याकूब की आँख की धूल अंत मे सुर्मा हो जाती है॥

---

1. यह भूमिका तथा ग्रन्थकर्ता की जीवनी मुगल दरबार के प्रथम भाग के आरंभ मे दी हुई है।

भाई, काम करने का उत्साह ही साधन नहीं है और बिना साधन के कोई काम पूरा नहीं हो सकता। इस बेचारे का थोड़ा काम भी साधन के बाहर नहीं था। यदि कारण के अभाव में न करे तो कारण को हमारे लिए सहज करो और मुझे मूर्खों पर न छोड़ो। जो तू उचित समझे वही करने कर। ऐ खुदा, मुझसे तुमको जो पहुँचे उसके लिए क्षमा माँगता हूँ और जो तुमसे मुझे मिले उसके लिए मेरा धन्यवाद है।

५३७. मुहम्मद क़ासिम खाँ बदख़्शी

इसका उपनाम मौजी था और यह मीर मुहम्मद जालःबान का दामाद था। बदख्शाँ में यह जाल बनाने का काम करता था। जब हुमायूँ अपने स्वर्गवासी पिता के आज्ञानुसार हिंदुस्तान से बदख्शाँ जाकर वहाँ कुछ दिन रहा था तभी इस पर कुछ कृपा हुई थी। यह उस स्वर्गनिवासी की सदा सेवा करने में अपना काम तथा भलाई समझ कर बराबर साथ रहने लगा। कुछ लोग कहते हैं कि छोटी उम्र में बराबर की सेवा में पहुँच कर यह बाल्यकाल से बड़े होने के समय तक हुमायूँ की नौकरी में रहा। तात्पर्य यह कि ऐराक की यात्रा में जो संसार की दुष्कृता तथा आकाश की कठोरता से पूरी असफलता तथा बेसामानी के साथ कटनी रही थी और जो सच्चे साथियों की परीक्षा थी, यह बराबर बादशाह के साथ रहा और कभी विरुद्ध नहीं हुआ। ऐराक से लौटने और काबुल-विजय के अनंतर सन् ९५४ हि० में हुमायूँ राजनैतिक कारणों से बदख्शाँ में ठहर गया था। मिर्ज़ा कामराँ अवसर देख रहा था और हुमायूँ की अनुपस्थिति को अनुकूल समझकर कपट से काबुल में घुसकर उस पर अधिकृत हो गया। हुमायूँ ने शीघ्र लौटकर काबुल घेर लिया। मिर्ज़ा मूर्खता से निर्दोष बच्चों को दंड देने तथा पतिव्रताओं को भ्रष्ट करने में लग गया और निर्दयता तथा कठोरता से शाहज़ादा अकबर को, जो चार वर्ष का था काबुल में उपस्थित था, तोपों के बराबर ला बिठाया। वह ईश्वर की कृपा से जिसकी रक्षा में वह था, बच गया। एक दिन कासिम खाँ मौजी की स्त्री को स्तनों से बँधवा कर लटकवा दिया था। इस कुकर्म से इसकी भक्ति तथा शुभचिंतना के कारण इसकी सेवा में कुछ भी कमी नहीं आई और इसने अपनी स्वामिभक्ति से मर्तबे को ऊँचा कर लिया।

इसके अनंतर अकबर के राज्यकाल में जाल,बानी की पुरानी सेवा के कारण यह हिंदुस्तान का मीर बह्र नियत कर दिया गया। इसने जमुना नदी के किनारे

दिल्ली मे एक अच्छा मकान वनवाया। अत मे नौकरी से त्यागपत्र देकर उसी में एकातवास करने लगा। सन् ९७९ हि० के अंतिम महीना में इसकी मृत्यु हुई। यूसुफ जुलेखा के ऊपर इसने छ सहस्र शैरो का एक ग्रंथ तैयार किया था, जिसमें के दो शैरों का अर्थ दिया जाता है—

१—उसकी कारीगरी के हाथ ने नए तौर से नख के एक ही ओर को नया चंद्र तथा पूर्णचंद्र दोनो बना दिया।

२—उसकी कमर वर्णन की सीमा के बाहर है क्योंकि उसी मे कुछ नजाकतें भरी है।

यह शैर भी उसी का है, जिसका उर्दू रूपांतर नीचे दिया जाता है—

साकिया कब तक करूँ तफसीर बदहाली का मै।
शीश: पुर कर एक साअत तो करूँ दिल खाली मैं॥

●

५३८. मुहम्मद कुली खाँ तर्कबाई[1]

यह अकबर बादशाह के राज्यकाल का एक हजारी मंसबदार था। ५ वें वर्ष के अंत में अदहम खाँ कोका के साथ मालवा विजय करने भेजा गया। ८ वें वर्ष मे यह हुसेन कुली खाँ की सहायता पर नियत हुआ, जो मिर्जा शरफुद्दीन हुसेन के अपने जागीर से भागने पर वहाँ नियुक्त किया गया था। १७ वे वर्ष में मीर मुहम्मद खान कलाँ के साथ अग्गल की सेना मे नियत किया जा कर गुजरात की ओर भेजा गया। गुजरात के धावे में यह आगे भेजे गए लोगो में से था। इसके बाद खानखानाँ मुनइम बेग के साथ बंगाल प्रांत की चढ़ाई पर गया। इसका आगे का वृत्तात ज्ञात नही हुआ।

○

---

१. पाठांतर तौकबाई भी मिलता है।

५३९. मुहम्मद कुली तुर्कमान

यह अकबर का एक सर्दार था। पहिले यह बगाल मे नियत हुआ। जब बंगाल के विद्रोहियों के उपद्रव से मुजफ्फर खाँ का काम बिगड गया तब इसने कुछ दिन बलवाइयों का साथ दिया। इसके अनंतर दोष क्षमा होने पर ३१ वें वर्ष में यह कुँअर मानसिह के साथ काबुल प्रात भेजा गया और अफगानो के युद्ध में इसने बहुत प्रयत्न किया। ३९ वे वर्ष में जब काबुल की अध्यक्षता कुलीज खाँ को मिली तब कश्मीर मिर्जा युसुफ खाँ के स्थान पर इसको, इसके भाई हमजाबेग तुर्कमान तथा कुछ अन्य लोगों को जागीर मे मिली। ४५ वें वर्ष में बादशाह के दक्षिण ओर जाने पर कश्मीर के कुछ आदमी हुसेन के पुत्र अब्बा चक को सर्दार बना कर उपद्रव करने लगे। इसके पुत्र अली कुली ने सेना के साथ आक्रमण कर उन्हे परास्त कर दिया। ४७ वे वर्ष में इसे डेढ हजारी ४०० सवार का मंसब तथा हाथी मिला और हमजा बेग को सात सदी ३५० सवार का मंसब मिला। ४८ वें वर्ष मे छोटे तिब्बत के जमीदार अलीराय ने कश्मीर पर चढाई की और यह सेना सहित सामना करने गया पर वह बिना युद्ध किए रोब मे आकर भाग गया। इसी समय कुलीज खाँ का पुत्र सैफुल्ला आज्ञानुसार लाहौर से सहायता को पहुँचा और जहाँ तक घोडो के उतरने का स्थान मिला वहाँ तक पीछा किया। ४९ वें वर्ष मे मर्व के जमीदार ईदर तथा अब्बा चक को दंड देने का साहस किया और यद्यपि शत्रुगण पहाडियों का ओट लेकर पत्थरो तथा तीरो से लडते रहे पर इसने पहाड़ पर पहुँच कर उन्हें परास्त किया। जहाँगीर के राज्य के २ रे वर्ष में यह शासन से हटाया गया। इसके बाद का वृत्तात नही ज्ञात हो सका। हमजा बेग ४९ वें वर्ष अकबरी में एक हजारी मंसब तक पहुँचा था।

•

५४०. मुहम्मद कुली खाँ नौमुस्लिम

यह पहिले नेतूजी भोंसला था, जो प्रसिद्ध शिवाजी का पास का संबंधी तथा उसके सर्दारों का अग्रणी था। जब मिर्जा राजा जयसिह के सफल प्रयत्नो से औरंगजेब के ८ वें वर्ष मे शिवाजी ने अधीनता स्वीकार करली और अपने अष्ट-वर्षीय पुत्र शंभाजी को सेवा मे भर्ती करा दिया तब यह भी निश्चय हुआ कि यह मिर्जा राजा के संग रहा करे और इसके सैनिक तथा सेवक शाही सेवा किया करें। शिवाजी स्वयं जब उस प्रांत में काम पड़े तब वह सेवा मे तैयार रहा करे। उसी

समय नेतू जी को, जो विश्वासपात्र तथा सेनापति था, मिर्जा राजा के प्रस्ताव पर पाँच हजारी मंसब मिला। शिवाजी की चढ़ाई के कार्यों से छुट्टी पाकर जब राजा जयसिंह बीजापुर की चढ़ाई पर नियत हुआ तब इस चढ़ाई के आरंभ में नेतू जी ने शिवाजी की सेना की सर्दारी करते हुए अच्छी सेवा की। मंगल वीड़ा दुर्ग तथा बीजापुर की सीमा पर के कई अन्य गढ़ों को अकेले अपने प्रयत्न से आदिलशाहियों के अधिकार से निकाल कर उनमें थाने बैठा दिए।

राजा जयसिंह का बीजापुर घेरने का विचार नहीं था और दुर्ग तोड़ने का सामान भी साथ में नहीं था इसलिए बीजापुर से पाँच कोस इधर ही से उन बीजापुरी सर्दारों को दमन करने लौटा, जो बादशाही राज्य में घुसकर उपद्रव मचा रहे थे। शिवाजी को पर्नाला दुर्ग की ओर भेजा, जो आदिलशाह के बड़े दुर्गों में से था, कि इससे शत्रु घबड़ाकर कुछ सेना उस ओर भेजेगा और यदि हो सके तो दुर्ग पर भी अधिकार कर ले। शिवाजी ने उक्त दुर्ग के नीचे पहुँचकर उसपर अपनी सेना सहित चढ़ाई की। दुर्गवाले सतर्क थे इसलिए युद्ध होने लगा शिवाजी अपने कुछ सैनिक कटाकर वहाँ से असफल हो खेलना दुर्ग की ओर जाकर ठहरा, जो वहाँ से बीस कोस पर तथा इसके अधिकार में था। इसी समय इसके तथा सेनापति नेतूजी के बीच वैमनस्य हो गया। इसपर यह अलग होकर बीजापुर वालों के पास चला गया और उस राज्य के सर्दारों से मिलकर बादशाही साम्राज्य में उपद्रव मचाने में कुछ उठा न रखा। मिर्जा राजा ने समयानुकूल तथा उचित समझकर इसे समझा बुझाकर पुरानी सेवा में आने के लिए सम्मति दी। यह ९ वें वर्ष के आरंभ में सौभाग्य से अपने कुकर्म से दूर हटकर शत्रु से अलग हो गया और राजा के पास पहुँचा। जब राजा औरंगाबाद लौटा तब इसे फतेहाबाद धारवार में सुरक्षित रखा।

दैवयोग से इसी समय शिवाजी, जो अपनी खुशी से दरबार गया था, आगरे से जहाँ बादशाह थे, अपनी उपद्रवी प्रकृति से भाग गया। इस पर राजा के नाम आज्ञा पत्र आया कि नेतू जी को उपाय से कैद कर राजधानी भेज दे जिसमें उपद्रव के विचार से यह भी भाग न जाय। राजा ने कुछ सेना भेजकर उसे पुत्र के साथ धारवर से बुलाकर बीड़ के पास दिलेर खाँ को सौंपवा दिया, जो आज्ञानुसार दरबार जा रहा था। उक्त खाँ नर्बदा के किनारे ही से आज्ञानुसार चादा की ओर नियत हुआ। यह दरबार पहुँचने पर फिदाई खाँ मीर आतिश को सौंपा गया। उसने तोपखाने के कुछ आदमियों को इसकी रक्षा पर रखा। इसके कुछ दिन बाद समझाए जाने पर इसने मुसलमान होना स्वीकार कर लिया। यह बात उक्त खाँ द्वारा बादशाह से कही गई तब इस पर क्षमा कर कृपा हुई। इस भाग्यवान् ने,

जो बहुत अवस्था अंधकार तथा मूर्तिपूजन में बिता चुका था, मुसलमान होकर अपने हृदय के कोने को प्रकाशित किया। इस्लाम धर्म ग्रहण करने पर इस पर शाही कृपा हुई और इसे तीन हजारी २००० सवार का मंसब, मुहम्मद कुली खाँ की पदवी तथा दूसरे पुरस्कार मिले। इसके बाद काबुल के सहायकों में नियुक्त होने पर इसे हाथी मिला। इससे मिलकर इसका चाचा कोदाजी भी मुसलमान होने पर एक हजारी ८०० सवार का मंसबदार हो गया।

•

५४१. मुहम्मद कुली खाँ बर्लास

यह बरंतक के वंश मे से था। यह उच्चपदस्थ वंश सदा चगताई सुलतानों के यहाँ विश्वासपात्र तथा संपत्तिवान रहा। इसका बड़ा दादा अमीर जाकूए बर्लास अमीर तैमूर साहिबकिराँ के बड़े सर्दारो में से था। उक्त खाँ उचित वक्ता विद्वान तथा अच्छी चाल का पुरुष था और साहस तथा सर्दारी मे अपने समय का अग्रगी था अपनी सेवा तथा प्राचीन राजभक्ति के कारण हुमायूँ के राज्यकाल में उन्नति कर यह एक सर्दार हो गया और इसे मुलतान जागीर में मिला। अकबर के राज्यकाल के आरंभ मे शमसुद्दीन खाँ अतगा के साथ बेगमों तथा सर्दारों और सभी सेवकों के परिवार वालों को लाने के लिए काबुल गया क्योकि गृहहीनता तथा परिवार की जुदाई से वे उदासीन हो रहे थे और ऐसा हो जाने पर स्यात् वे हिंदुस्तान मे रहना निश्चित कर काबुल लौट जाने का विचार स्थगित कर दें। इसके अनंतर इसे नागौर तथा उसके आसपास की भूमि जागीर में मिली। यह कुछ दिन मालवा के शासन पर भी नियत रहा। यह स्वयं बादशाह के दरबार मे उपस्थित रहता था इसलिए इसका दामाद ख्वाजा हादी प्रसिद्ध नाम ख्वाजा कलाँ इसका प्रतिनिधि होकर उस प्रांत का कार्य संपादन करता था। विद्रोही मिर्जों ने इस पर आक्रमण कर प्रांत को लूट लिया पर ख्वाजा के उच्च वंश के कारण उसकी जान पर जोखिम नही पहुँचाई। १२ वें वर्ष मे इसकंदर खाँ उजबक पर यह भेजा गया, जिसने अवध में घमड के कारण विद्रोह मचा रखा था। जब इसी समय खानजमाँ और बहादुर खाँ शैबानी ने, जो इन विद्रोहियो के सरदार थे, अपने कर्मों का बदला पा लिया तब इसकदर खाँ भी भाग गया। अवध की सरकार मुहम्मद कुली खाँ बर्लास को जागीर मे मिली। बिहार तथा बंगाल के विजय मे इसने खानखानाँ मुनइम बेग के साथ रहकर अच्छे कार्य किए। जब ईश्वरेच्छा से १९ वें वर्ष मे बंगाल विजय हो गया और दाऊद खाँ किरानी सात गाँव तथा

उडीसा की ओर चला गया तब खानखानाँ राजा टोडरमल के साथ टाँडे में रहना निश्चय कर जो उस प्रांत की राजधानी थी, राजनीतिक तथा माली काम देखने लगा। उसने मुहम्मद कुली खाँ बर्लास की अधीनता में कुल सर्दारो को सातगाँव की ओर भेजा कि दाऊद खाँ को तैयारी का अवसर न देकर कैद कर ले। जब उक्त खाँ सातगाँव से बीस कोस पर पहुँचा तब दाऊद खाँ का धैर्य छूट गया और वह उडीसा की ओर भागा। सेना के सर्दारो ने चाहा कि यहाँ ठहरकर इस ओर के तंत्र की विशृंखलता को दूर करें कि राजा टोडरमल मुहम्मद कुली खाँ के पास पहुँच गया और उसे उडीसा प्रांत में पहुँचकर दाऊद खाँ को दमन करने के लिए विदा कर दिया। सन् ९८२ हि०, सन् १५७५ ई० के रमजान महीने मे मंडलपुर कस्बा में इसकी मृत्यु हो गई। रोजे के दिनों में इसने रोटी खाई थी और उसीसे ज्वर हो आया था तथा उसके सिवा कोई दूसरा कारण नहीं ज्ञात हुआ। कुछ दूरदर्शी लोग इसकी मृत्यु का कारण इसके अशुभैषी दास ख्वाजासराओं को बतलाते हैं। मुहम्मद कुली खाँ उस साम्राज्य का सपत्तिशाली पाँच हजारी मसबदार था। इसकी दृढता तथा गंभीर अनुभव विश्वविख्यात थे। इसका पुत्र फरेदूँ खाँ बर्लास था, जिसका वृत्तांत अलग दिया हुआ है।

•

५४२. मुहम्मद खाँ नियाजी

यह अकबर के समय का एक सर्दार था और इस भारी दरबार की सेवा में रहने के कारण अफगानो में इसका सम्मान तथा विश्वास बहुत बढ गया। तबकाते अकबरी के लेखक ने लिखा है कि यह दो हजारी मंसब तक पहुँचा था परंतु शेख अबुल् फजल ने ४० वे इलाही वर्ष में इसे पाँच सदी से अधिक नही माना है। जहाँगीर के समय में इसने अच्छा मसब प्राप्त किया और बडे ऐश्वर्य के साथ नाम कमाया। कहते है कि जहाँगीर के दरबार मे तीन आदमियो को पदवियो से कष्ट हुआ और उन्होने स्वीकार नही किया। ये मिर्जा रुस्तम सफवी, ख्वाजा अबुल् हसन तुरबती और मुहम्मद खाँ नियाजी थे। इसने कहा कि मेरे नाम मुहम्मद से बढ़कर कौन नाम ऐसा है कि उसे चुनूँ। आरंभ मे शहबाज खाँ कंबू के साथ इसने बंगाल में वीरता दिखलाई। विशेषकर ब्रह्मपुत्र के युद्ध में साहस तथा वीरता में इसने प्रसिद्धि पाई। कहते हैं कि शहबाज खाँ इसकी मित्रता तथा प्रयत्नों के कारण इसे अपने पास से एक लाख रुपया वार्षिक देता था। यह ठट्टा की चढाई मे खानखानाँ[१] का सहायक था।

---

१ नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ से तात्पर्य है।

जब सन् १००० हि० में सिंध के शासक मिर्जा जानी बेग दुर्ग के बाहर, जिसमें वह घिरा हुआ था, निकल कर सिविस्तान की ओर शीघ्रता से चला कि किश्तियों से विजयी सेना को रोक दे तब खानखानाँ ने एक सेना को, जिसमें मुहम्मद नियाजी भी था, उस ओर आगे भेजकर आप भी उधर चला। भेजे हुए लोग जब नावों तक पहुँच गए तब कुछ ने आशंका से सोचा कि लक्खी को दृढ कर सहायता की प्रतीक्षा करें पर वीरो की राय पर आक्रमण करना निश्चित हुआ। मुहम्मद खाँ नियाजी की सर्दारी में लक्खी पार कर शत्रु से युद्ध करने पहुँच गए। शत्रु बादशाही सेना के दाएँ, बाएँ भागो तथा हरावल को भगाकर विजय से उन्मत्त हो गए। मुहम्मद खाँ ने बची हुई सेना के साथ पहुँचकर कड़े धावो मे उन्हें परास्त कर दिया। उस समय शत्रु सेना पाँच सहस्त्र से अधिक थी तथा बादशाही सेना बारह सौ से अधिक नही थी। मिर्जा जानी बेग ने भागते हुए भी कई बार लौटकर आक्रमण किया पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ। कहते हैं कि उस दिन से खानखानाँ को इसकी सेनाध्यक्षता तथा सर्दारी पर पूरा विश्वास हो गया। जहाँगीर के राज्यकाल मे खिरकी के युद्ध में, जो दक्षिण की प्रसिद्ध लड़ाइयो मे से है, खानखानाँ ने अपने पुत्र शाहनवाज खाँ के अधिकार को इसके तथा याकूब खाँ बदख्शी के हाथ में दिया क्योकि दोनो ही पुराने सैनिक थे। उस दिन मुहम्मद खाँ ने बड़ी अच्छी चाल दिखलाई। इसने युद्धस्थल के बीच में स्थित पानी के नाले को बीच में देकर उतारो को बंद कर दिया और नाले के सिरे पर स्वयं डटकर उसे नही छोड़ा, जिससे शाहनवाज खाँ फुर्ती करे। मलिक अंबर ने इतने साज व सामान के रहते हुए चाहा कि किसी से सिरे निकल जाय पर उनपर तीर व गोली की खूब वर्षा हुई। निरुपाय हो मलिक अंबर बहुतों के मारे जाने पर परास्त हो भागा। वीरों के पीछा करने पर वह अपने स्थान तक बीच में न रुक सका।

जब शाहजादा शाहजहाँ दक्षिण की चढ़ाई पर गया तब मुहम्मद खाँ नियाजी ने अपने परिश्रम तथा प्रयत्न मे कमी न कर अच्छा काम किया। वास्तव मे मुहम्मद खाँ बड़ा सर्दार तथा मिलनसार था। कहते है कि इसने जो जीवनचर्या दिन रात्रि की निश्चित की उसमें पचासी वर्ष की अवस्था तक कभी फर्क नही डाला। कभी कभी सवारी या चढ़ाई मे इसमे भेद पड़ जाता था। एक घडी रात्रि से सवेरे तक कुरान पढ़नेवालों के साथ व्यतीत करता। दो घड़ी व्याख्या तथा सैर की पुस्तको के पढने मे व्यतीत करता और अफगानों की वंश परंपरा का विशेष ज्ञान रखता था। इसके बाद खानपान तथा आराम करने में व्यतीत कर दिनके अत मे काम देखता था। रात्रिके पहिले भाग मे सैनिको, विद्वानो तथा फकीरो का साथ करता। बीच की रात्रि महल मे व्यतीत होती। खाने में बड़ा तकल्लुफ रखता और केवल इसी के लिए चौकी नियत की थी। इसके सैनिक अधिकतर इसीकी

जाति के थे और यदि एक मरता तो उसका पूरा वेतन उसके पुत्र को मिलता। यदि कोई निस्संतान होता तो आधा उसके उत्तराधिकारी को मिलता। धार्मिकता तथा संतोष भी इसमें बहुत था। बिना स्नान के एक दम न रहता और जो लोग ऐसे न थे वे इसकी नकल करते। सन् १०३७ हि० में इसकी मृत्यु हुई। 'बेमुर्द औलिया मुहम्मद खाँ' इसकी तारीख है।

इसका अधिक समय दक्षिण मे बीता था और बरार प्रांत के अंतर्गत परगना आश्ती, जो वर्धा नदी के उस पार है, इसे जागीर मे मिली थी। उस बस्ती को अपना निवासस्थान निश्चित कर उसमें इमारत बनवाने तथा उसे बसाने में साहस कर बहुत काम किया। उसी कस्बे में यह गाड़ा गया। इसके बड़े पुत्र अहमद खाँ ने मकबरा मस्जिद तथा बाग बनवाया, जो देखने योग्य थे। इस समय वह बस्ती तथा परगना प्रत्युत् वह प्रांत ही उजाड़ पडा है। सौ घर मे से एक मे दीप जलता है और दस ग्रामो मे से एक से कर वसूल होता है। इस वंश परंपरा मे कोई ऐसा नहीं हुआ, जिसने उन्नति की हो।

५४३. मुहम्मद खाँ बंगश

यह पहिले जमाअतदारी का कार्य करता था। बारहा के सैयदो ने इसे बादशाही सेवा में भर्ती और परिचित भी करा दिया। मुहम्मदशाह के राज्य के ३ रे वर्ष के उस युद्ध मे, जो सुलतान इब्राहीम के नाम से कुतुबुल्मुल्क से हुआ था, यह कुतुबुल्मुल्क की ओर था। यह अपनी सेना के साथ बादशाह की सेवा में चला आया और अच्छे प्रयत्न करने के कारण इसने अच्छा मंसब तथा कायमजंग की पदवी पाई। १३ वें वर्ष सन् ११४३ हि० मे राजा गिरिधर बहादुर के स्थान पर यह मालवा का सूबेदार नियत हुआ। इसी बीच यह शत्रुसाल बुंदेला पर सेना चढा ले गया। एक वर्ष तक उससे युद्ध करते हुए इसने उन बादशाही महालों को छुडा लिया, जिसपर उसने अधिकार कर लिया था। शत्रुसाल अवसर देख रहा था और जब मुहम्मद खाँ ने बढाई हुई सेना को छुडा दिया तब मराठो से मिलकर उसने एकाएक इसपर धावा कर गढी मे घेर लिया। चार महीने के घेरे में वायु में महामारी का प्रभाव देख कर मराठा सेना हट गई। शत्रुसाल अभी घेरा डाले हुए था कि इसका पुत्र कायम खाँ सेना सहित आ पहुँचा। तब शत्रुसाल ने मि[illegible] कर ली और यह छुट्टी पाकर दरबार आया। नादिरशाह के युद्ध मे यह चंदावल में नियत था। समय आने पर इसकी मृत्यु हुई।

इसकी मृत्यु पर इसका बडा पुत्र कायम खाँ फर्रुखाबाद आदि महालों का, जो आगरा प्रांत के अंतर्गत थे, फौजदार हो गया। इसके अनंतर सफदरजंग के मंत्री होने पर उसके कहने से इसने अली मुहम्मद खाँ रुहेला के पुत्र सादुल्ला खाँ पर चढ़ाई कर उसे बदाऊँ में घेर लिया। उसने बहुत समझाया पर कुछ लाभ नहीं हुआ। निरुपाय हो उसने बाहर निकल कर युद्ध किया, जिसमें कायम खाँ भाइयो के साथ मारा गया। सफदरजंग ने अहमदशाह बादशाह को उभाड़ कर चाहा कि कायम खाँ के ताल्लुको को जब्त कर ले। कायम खाँ की माँ दुपट्टा ओढ कर आई और साठ लाख रुपए पर मामला तै किया। सफदरजंग ने उसके कुल परगनो को जब्त कर फर्रुखाबाद को बारह मौजों के साथ, जो फर्रुखसियर के समय से कायम खाँ की माँ को पुरस्कार मे मिले थे, छोड दिया और नवलराय को तहसील करने के लिए वहाँ नियत कर स्वयं बादशाह के पीछे दिल्ली पहुँचा। कायम खाँ के भाई अहमद खाँ ने अफगानों को इकट्ठा कर नवलराय को युद्ध में मार डाला। सफदरजंग नवलराय की सहायता को दिल्ली से रवाना हो चुका था और यह समाचार पाकर साली व सहावर कस्बो के बीच पहुँच कर सन् ११६३ हि० मे अहमद खाँ से सामना किया। सफदरजंग ने गहरी हार खाई और यद्यपि यह पीतल की अमारी में बैठा हुआ था पर यह घायल हुआ और इसका महावत तथा खवासी का सवार दोनो मारे गए। दैवयोग से अफगानो से बच कर यह दिल्ली पहुँचा। अहमद खाँ अपने पुत्र महमूद खाँ को अवध प्रांत पर अधिकार करने भेजकर स्वयं इलाहाबाद की ओर चला और सैन्य संचालन आदि मे किसी प्रकार असावधानी न की। सन् ११६४ हि० में सफदरजंग ने पुनः सेना एकत्र कर ·था मल्हारराव होलकर और जयप्पा सीधिया को साथ लेकर चढाई की।

मराठो ने पहिले अहमद खाँ की ओर के कोल जलेसर के अध्यक्ष शादी खाँ को भगा दिया। जब यह समाचार पाकर अहमद खाँ ने इलाहाबाद के घेरे को उठा कर फर्रुखाबाद का मार्ग लिया तब मराठों ने उसका पीछा कर उसे वहीं घेर लिया। अवसर पाकर यह हुसेनपुर चला आया, जो उससे अधिक दृढ था। जिस दिन अली मुहम्मद खाँ का पुत्र सादुल्ला खाँ इसकी सहायता को आया और युद्ध हुआ उस दिन यह परास्त होकर मदारिया पहाड़ के नीचे भाग गया तथा इसका राज्य लुट गया। अंत में शरण आने पर सफदरजंग ने अपनी इच्छा के अनुसार संधि कर ली। बहुत दिनों तक यह प्रसिद्ध था। राजधानी दिल्ली के नष्ट होने पर जो भी अच्छे वंश के स्त्री या पुरुष इसके यहाँ आए उन सबकी इसने अच्छी से अच्छी सेवा की और बिना नौकरी लिए हर एक के गृह पर वेतन भेज दिया करता था। सबसे यह अच्छा व्यवहार करता था। इस कारण भलाई के साथ अपनी अवस्था व्यतीत की। बिना किसी प्रकार के प्रत्युपकार की इच्छा के ऐसा करने की प्रथा अपने स्मारक में छोड़ गया। इसके वंशजो का वृत्तांत ज्ञात नहीं हुआ। ●

५४४. मुहम्मद गियास खाँ बहादुर

इसका नाम गियास बेग था और इसका पिता गनी बेग खाँ फीरोजजंग की सरकार में नौकर था। निजामुल्मुल्क आसफजाह् बहादुर की शरण लेकर यह उसके साथ हो गया। पहिले तोपखाने का दरोगा हुआ और फिर मुरादाबाद की ताल्लुकेदारी मे नायब फौजदार हुआ। यह विचारवान तथा दृढ़ आशय का मनुष्य था और साहस के साथ अनुभवी भी था इसलिए विश्वासी सम्मतिदाता बन बैठा। बड़े कार्य बिना इसकी राय के नही होते थे। जब आसफजाह मालवा प्रांत से दक्षिण को चला तब इसने दिलावर अली खाँ के युद्धो में विजयी के साथ रहकर हर बार बहुत प्रयत्न किया। एक आँख से यह पहिले ही नही देख सकता और दूसरी आँख भी अंतिम युद्ध में तीर लगने से फूट गई। आसफजाह ने इसकी सेवा का विचार कर इसका मंसब पाँच हजारी ५००० सवार का कर दिया और बहादुर की पदवी देकर खानदेश के अतर्गत बगलाने का फौजदार बना दिया। इसके अनंतर औरंगाबाद प्रांत के महालों की मुत्सद्दीगिरी पर नियत कर दिया। बहुत दिनों तक यह वहाँ रहा। सन् ११४८ हि० में इसकी मृत्यु हुई। औरंगाबाद के मुगलपुरा के पास इसके बनवाए मदरसे के चौक में इसे गाड़ दिया। यह मित्रता, प्रेम तथा उदारता में प्रसिद्ध था। इसका पुत्र रहीमुल्ला खाँ बहादुर आसफजाह् की गुणग्राहकता से अच्छा मंसब पाकर बरार के पास परगना सिउना का जागीरदार नियत हुआ कुछ दिन खानदेश के बगलाना सरकार का फौजदार कुछ दिन औरंगाबाद के पास महालों का जिलेदार रहा। सलाबतजंग बहादुर के राज्य में इसने अच्छा मंसब तथा मंजूरुद्दौला मुतहौवरजंग की पदवी पाई। कुछ वर्ष पहिले इसकी मृत्यु हो गई। इसने पिता से वीरता रिक्थक्रम मे पाई थी। इसके कुछ लडके थे। सबसे बड़ा फजलुल्ला खाँ है, जिसे पिता की पदवी तथा जागीर मिली है।

●

५४५. मुहम्मद जमाँ तेहरानी

यह जहाँगीर के समय का एक मंसबदार था और बहुत दिनों तक बंगाल में नियत रहकर सिलहट का फौजदार तथा जागीरदार रहा। इसके अनंतर जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा तब १म वर्ष में इसका दो हजारी १००० सवार का मंसब बहाल रहा, जो पहिले का था। ४थे वर्ष में २०० सवार बढ़े और ५वें वर्ष मे भी उन्नति हुई। ८वें वर्ष में यह दरबार में उपस्थित हुआ और कुछ दिन बाद इसलाम

खाँ के साथ, जो आजम खाँ के स्थान पर बंगाल का सूबेदार नियत हुआ था, उस प्रांत को भेजा गया। आसाम की प्रजा के उपद्रव मे, जो कूच हाजू के जमींदार परीछित के भाई बलदेव की सहायता से बलवा कर रही थी, इसलाम खाँ के भाई मीर जैनुद्दीन अली के साथ, जो सयादन खाँ कहलाता था, यह बहुत प्रयत्न कर प्रशंसित हुआ। इससे ११ वें वर्ष में २०० सवार बढ़ने से जात तथा सवार बराबर हो गए। जब इस वर्ष उड़ीसा शाहजादा मुहम्मद शुजाअ को बंगाल की सूबेदारी के साथ मिल गया तब यह वहाँ के प्रबंध पर आज्ञानुसार नियत हुआ। १९ वें वर्ष मे शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के पास भेजा गया, जो बलख आदि का प्रबंध करने के लिए गया था। जब शाहजादा बल्ख को नज्र मुहम्मद खाँ के आदमियों को सौंपकर २१ वें वर्ष मे लौटा तब यह आज्ञानुसार शाहजादे से पहिले दरबार पहुँचा। इसके बाद का हाल नहीं ज्ञात हुआ।

•

५४६. मुहम्मद तकी सीमसाज शाह कुली खाँ

यह यौवन ही मे शाहजादा शाहजहाँ के सेवकों मे भर्ती हो गया और इसका विश्वास तथा सम्मान बढ गया। सौभाग्य से शाहजहाँ के सरकार का बख्शी हो जाने से यह अच्छा सरदार हो गया। जब काँगड़ा की चढ़ाई का कार्य शाहजादे के वकीलों को मिला तब यह सूरज मल्ल के साथ उस चढ़ाई पर नियत हुआ। जब ये दोनों वहाँ पहुँचे तब राजा ने भागने के विचार से इससे वैमनस्य आरंभ कर इसकी बहुत सी बुराई शाहजादे को लिख भेजी। राजा स्वामिद्रोह तथा उदंडता से बराबर बुरी इच्छा अपने मन में रखता था और मुहम्मद तकी के साथ रहने से वह सफल नहीं हो सकता था अंत मे उसने खुल कर प्रार्थनापत्र लिख भेजा कि मेरा शाह कुली से साथ नहीं पटता और इस सेवा को वह पूरा नहीं कर सकता इसलिए कोई दूसरा सर्दार भेजा जाय जिससे यह कार्य सुगमता से हो जाय। इस पर मुहम्मद तकी बुला लिया गया और बाद मे मलवा की फौजदारी तथा मांडू दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ, जो शाहजादे की जागीर में थे। जिस समय शाहजादा तैलंग के मार्ग से उड़ीसा मे आया उस समय वहाँ का नायब सूबेदार अहमद बेग खाँ अपने में शाहजादे की सेना से सामना करने की शक्ति न देखकर अपने चाचा इब्राहीम खाँ फतहजंग के पास अकबर नगर चला गया। शाहजादे ने उस प्रांत की अध्यक्षता

शाह कुली खाँ को देकर उसे वही छोडा। इसके अनंतर वे घटनाएँ हुई जिनके कारण शाहजहाँ बंगाल से लौट कर दक्षिण में रोहनखीरा घाटी के ऊपर देवल गाँव मे सेना सहित आ डटा तब मलिक अंबर के कहने से, जिसकी ओर से याकूत खाँ हब्शी बुर्हानपुर के पास रहकर चारो ओर लूटमार कर रहा था, शाहजादे ने भी अब्दुला खाँ को शाहकुली खाँ के साथ भेज दिया कि वह नगर बादशाही अच्छी सेना से खाली है, जिससे सहज मे उसपर अधिकार हो जाएगा।

वहाँ का अध्यक्ष राव रत्न हाड़ा नगर के बुर्ज आदि को दृढ़ कर किसी कार्य में असावधानी नही कर रहा था इसलिए इसने यह वृत्त शाहजादे को लिख भेजा इसके अनंतर शाहजादा बुर्हानपुर के लालबाग मे आकर ठहरा और इन दोनों सर्दारो को दो ओर से आक्रमण करने की आज्ञा दी शत्रु का जोर अब्दुल्ला खाँ की ओर अधिक था और दोनों पक्ष के एक एक जवान युद्ध मे मारकाट कर रहे थे। उसी समय शाह कुली खाँ ने अवसर पाकर दुर्ग की दीवाल तोड़ डाली तथा लड़ते हुए नगर में घुस गया। कोतवाली के चबूतरे पर बैठकर इसने मुनादी करा दी कि शाहजहाँ गाजी का राज्य है।

जब राव रत्न का पुत्र इससे युद्ध कर परास्त हो गया तब राव रत्न काफी सेना अब्दुल्ला खाँ के सामने छोड़ कर स्वय लौटा और चौक में युद्ध करने लगा। शाह कुली खाँ के बहुत से आदमी लूटपाट करने में हट बढ़ गए थे, इसलिए यह थोड़े सैनिको के साथ साहस कर लड़ने लगा। जब इसके बहुत से साथी मारे गए तथा सहायता की आशा न रह गई तब निरुपाय हो यह नगर दुर्ग मे जा बैठा। कहते हैं कि अब्दुल्ला खाँ ने इससे वैमनस्य माना और नही तो यदि वह सहायता भेजता तो काम पूरा हो चुका था। इसी स्वार्थ के कारण शाहजहाँ में इसकी ओर से मनोमालिन्य आ गया और अब्दुल्ला खाँ के अलग होने का सबब हो गया। संक्षेपतः काम न होकर और मामला बढ गया। राव रत्न ने नए सिरे से मोर्चो को दृढ कर तथा दुर्ग के चारों ओर के स्थानो का प्रबंध कर शाह कुली खाँ को वचन देकर अपने पास बुला लिया और कैद कर रखा। इसके अनतर इसके साथियो को बुर्हानपुर मे रक्षा में रख कर इसे दरबार भेज दिया। जिस समय महावत खाँ टोंस के युद्ध के बाद बुर्हानपुर पहुँचा तब कुछ 'यक' जवानो को मरवा डाला और कुछ को चिरवा डाला। दैवयोग से सन् १०३५ हि० में व्यास नदी के किनारे उक्त खाँ का काम पूरा हुआ। अपने दृढ समय में जिस दिन, ख्वाजा अब्दुल्खालिक खवाफी को मरवा डाला था, उसी दिन इस साहसी जवान को भी मरवा डाला।

•

५४७ मुहम्द बदीअ सुलतान

यह नजर मुहम्मद खाँ के पुत्र खुसरू का पुत्र था। शाहजहाँ के राज्य के १९ वें वर्ष में यह पिता के साथ हिंदुस्तान आया। २० वें वर्ष में उपस्थित होने पर इसे खिलअत, जड़ाऊ जीगा तथा सुनहले साज सहित घोड़ा मिला। २७ वें वर्ष में इसे बारह सहस्र रुपए की वार्षिक वृत्ति मिली और इसके बाद इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी हो गया। २८ वें वर्ष में पाँच सदी मंसब बढ़ा। ३१ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी ३०० सवार का हो गया। इसके अनंतर जब औरंगजेब बादशाह हुआ तब यह पिता व चाचा के साथ आगरे से सेवा में पहुँचा। शुजाअ के युद्ध मे तथा दाराशिकोह के द्वितीय युद्ध में यह औरंगजेब के साथ रहा। सर बलंद खाँ मीर बख्शी और राद अंदाज खाँ मीर आतिश के साथ यह कामों पर नियत हुआ। इसके बाद कारणवश इसका मंसब छिन गया। ३६ वें वर्ष में पुनः कृपापात्र होकर यह तीन हजारी ७०० सवार का मंसबदार हुआ। इसके बाद का हाल नही ज्ञात हुआ।

●

५४८ मुहम्मद बुखारी, शेख

यह हिंदुस्तान के दो हजारी सर्दारो तथा बड़े सैयदो में से था और शेख फरीद बुखारी का मामा था। बुद्धिमान तथा अनुभवी था। बहुत दिनो तक अकबर की सेवा मे रहकर इसने विशेषता प्राप्त की। फत्तू खाँ अफगान खास खेल ने चुनार दुर्ग पर अधिकार कर उसे अपना शरण स्थान बना लिया था और जब उस पर अधिकार करने को सेना नियत हुई तब उसने उक्त शेख की मध्यस्थता में दुर्ग सौंप दिया। १४ वें वर्ष में जब ख्वाजः मुईनुद्दीन की दर्गाह के सेवकों मे भेंट आदि के लिए झगड़ा हो गया और संतान होने का उनका दावा साबित न हो सका तब यह उक्त दर्गाह का वली (प्रबंधक, सेवायत) नियत किया गया। १७ वें वर्ष में गुजरात प्रांत में खान आजम कोका के सहायकों मे यह नियत हुआ। बाद को वहाँ से यह बुलाया गया। जब मुहम्मद हुसेन मिर्जा के उपद्रव की खबर उड़ी, जो शेर खाँ फौलादी से मिलकर विद्रोह कर रहा था, तब खान आजम ने इसको, जो बादशाह के पास सूरत जाने के लिए दोलका मे सामान ठीक कर रहा था, लौटा लिया और सेना के बाएँ भाग में स्थान दिया। इसके अनंतर जब युद्ध हुआ तब बादशाही सेना के प्राय: बहुत से आदमी पराजित हुए। शेख भी वीरतापूर्ण प्रयत्न कर घायल हो गया और घावों में घोड़े से अलग हो कर भूमि पर आ गया। भाले की चोट से सन् ९८० हि० मे यह मर गया। गुण ग्राहक बादशाह ने इस प्राण निछावर करनेवाले के जिम्मे जो बाकी था, उसे राजकोष से महाजनों को दिलवा दिया।

●

५४६ मुहम्मद मुराद खाँ

यह मुर्शिदकुली खाँ मुहम्मद हुसेन का पुत्र था। इसकी नानी का नाम माह-बानू था, जिसे औरंगजेब की मौसी नजीब: बेगम ने पाला था। अंत में शाही महल मे इसका बहुत विश्वास हो गया। इस संबंध से उक्त खाँ तथा उसका भांजा मीर मलंग, जो काम बख्श का मीर बख्शी था, अहसन खाँ की पदवी से महल में पालित होकर अवस्था को पहुँचे। इसके पिता को मुर्शिदकुली खाँ की पदवी मिली थी। इसका भाई मिर्जा मुहम्मद आरंभ में गुसलखाने का प्रधान लेखक था। २७ वें वर्ष में वह जब अबुल्हसन के भेंट के बचे भाग को उगाहने के लिए भेजा गया तब आज्ञा हुई कि तू अपने को (बादशाही) मर्जी पहिचाननेवाले खान:जादो में समझता है तो तुझे चाहिए कि उन लोगों के समान जो धन की लालच में पड़कर खुशामद करते हैं, खुशामद न करे परन्तु निधड़क बर्ताव करते हुए कड़ाई से बातें करे, जिससे उसे दमन करने के लिए कारण मिल जाय। इस कारण इसने जाकर बादशाही इच्छानुसार बातचीत में बड़ी निर्द्वंद्वता दिखलाई तथा उस-पर दोष लगाए। अबुल्हसन ने बहुत बचाया। एक दिन अबुल्हसन के मुख से निकल गया कि हम इस देश के बादशाह कहे जाते हैं। मिर्जा मुहम्मद ने क्षुब्ध होकर कहा कि बादशाह शब्द आपके लिए उपयुक्त नही है और यही सब बातें औरंगजेब बादशाह को अच्छी नही लगती। अबुल्हसन ने उत्तर दिया कि मिर्जा मुहम्मद, तुम्हारी यह आपत्ति ठीक नही है यदि हम बादशाह नही है तो आलम-गीर को बादशाहों का बादशाह भी न कहलाना चाहिए। सक्षेपत उक्त खाँ इस हाल पर सआदत खाँ की पदवी प्राप्त कर कुल दक्षिण का 'वाकेआनिगार' नियत हुआ। २८ वें वर्ष में बादशाह ने जब सुलतान मुहम्मद मुअज्जम को रामदर्रा की चढ़ाई पर नियत किया तब शाहजादे की सेना का भी इसे वाकेआनिगार साथ में बना दिया। इसके बाद जब उक्त शाहजादा अबुल्हसन पर भेजा गया तब खान-जहाँ बहादुर की सेना की दीवानी भी उक्त पदों के साथ इसे मिली। वहाँ के एक युद्ध में यह घायल हो गया। इसके अनंतर जब शाहजादो ने अबुल्हसन पर चढ़ाई कर कई युद्धों के बाद संधि कर ली तब पहिले तथा वर्तमान के करो के बकाया को वसूल करने के लिए इसे यही छोड दिया। जब बादशाह ने इस संधि को पसंद नही किया तथा बीजापुर के विजय के अनंतर २९ वें वर्ष में गोल्कुंडा की ओर चला तब उक्त खाँ को स्वत: पुराने कर को शीघ्र उगाहने के लिए ताकीद लिखी। अबुल्हसन ने शंका सहित आशा से नौ थाली रत्न उसकी सूची के साथ उक्त खाँ के पास अमानत मे सौंप कर तै किया कि जो कुछ नगद मिल जाता है वह उक्त रत्नो के साथ दरबार भेज दे। दैवयोग से इसीके पीछे पीछे बादशाह के

लिए कुछ बहँगी मेवे भी भेजे। मआदन खाँ ने भी अपनी ओर से कुछ कँहार तथा डाली साथ भेज दिया। इसी बीच बादशाह के इस ओर आने का निश्चय होने पर अब्दुर्रहमान ने उक्त खाँ से वे रत्न माँगे और सेना उसके घर पर नियत किया, जिससे दो दिन युद्ध हुआ। उक्त खाँ ने स्वामिभक्ति न छोड़कर उत्तर में कहलाया कि हक तुम्हारी ओर है पर जब बादशाही फर्मान से ज्ञात हुआ कि विजयी सेना इसी ओर आ रही है तब अपना बचाव इसीमें देख कर रत्नों के खाँचों को बहँगियों में रखकर भेजवा दिया। सिर मेरा उपस्थित है, निरुपाय हो मुझे ही मारना चाहिए। परंतु बादशाह को दस्तावेज के लेखक को मारने से बढ़कर तुम्हें दमन करना न होगा। इसपर अब्दुर्रहमान ने इससे हाथ उठा लिया।

गोलकुंडा की विजय के बाद इसलिए कि यह भलाई से नहीं चाहता था कि यही आग बढ़ाने का कारण हो दो तीन बातें दरबार को नहीं लिखीं और उनका बाहर ही बाहर पता लग गया, जिससे इसे दंड मिला। इसके मंसब से दो सदी २०० सवार घटाए गए और पदवी ले ली गई। उस समय इसने बहुत चाहा कि उक्त खाँ के खाँचों को, जो दस लाख रुपयों की मालियत के थे, कारखानादारों को सौंप दे पर किसी ने हाथ नहीं लगाया। एक वर्ष बाद मुत्सद्दियों ने बादशाह से यह बात कही तब उसने गुणग्राहकता से आज्ञा दी कि हमारे लिए बिना खयानत के उसके पास जमा है इसलिए लेकर उसे रसीद दे दें। इसी समय मंसब की कमी फिर बहाल कर चाहा कि पिता की पदवी भी दी जाय पर इसने केवल अपने नाम के साथ खाँ की पदवी माँगी, जिससे मुहम्मद मुराद खाँ की पदवी पाई। औरंगजेब के राज्य के अंत तक बख्शीगिरी के मुत्सद्दियों से मेल न होने के कारण सात सदी ४०० सवार के मंसब तक पहुँचा था। अनियमित रूप में केवल कृपा के कारण अहमदाबाद के नगरों तथा परगनों की वाकेआनिगारी तथा घटना-लेखन के कार्य कुछ लोगों के स्थान पर तथा उक्त प्रांत के अंतर्गत कोदर; और थासरः की फौजदारी के साथ करता रहा। इसके अनंतर जब बहादुरशाह बादशाह हुआ तब यद्यपि शाहजादगी के समय से हैदराबाद की चढ़ाई तक, जब यह औरंगजेब के दरबार में शाहजादे की सेना का वाकियानिगार नियत था, यह अच्छी सेवा करने के कारण पूरा स्वत्व रखता था पर उस समय इसकी पदवी सआदत खाँ थी जिससे एतमाद खाँ ने जुल्फिकार खाँ के द्वारा, जो इस पदवी के बदलने के वृत्त को नहीं जानता था, प्रार्थना कराई कि मुहम्मद मुराद खाँ काम बख्श के बख्शी से संबंध रखता है और अहमदाबाद प्रांत में नियत है, जो सैनिक पैदा करने वाला देश है, इस पर यह नौकरी से हटाकर दरबार बुला लिया गया।

यद्यपि खानखानाँ ने इसका पता पाते ही इसकी निर्दोषिता, जो वास्तव में इसके शत्रुओं ने उठा रखा था, बादशाह को समझाकर उक्त पदों की बहाली का

फर्मान भेजवा दिया पर यह अपने दाय के सब कार्यों को मुत्सद्दियों को सौंप कर २२ रे वर्ष में दरबार चला आया। सेवा मे उपस्थित होने पर इसे खिलअत तथा जड़ाऊ सिरपेच मिला और मंसब बढ़ कर डेढ़ हजारी १०० सवार का हो गया। दूसरी प्रार्थना पर दो हजारी १४०० का मंसब हो गया और दाग का कार्य इसे मिला। ३ रे वर्ष जब बादशाह कामबख्श की लड़ाई से निपटकर हैदराबाद से हिंदुस्तान चला तब इसका मंसब तीन हजारी २००० सवार का हो गया और डंका पाकर यह बीजापुर का सूबेदार नियत हुआ। परन्तु जुल्फिकार खाँ बहादुर नसरतजंग के सहायता करने पर भी बेनामानी के कारण यह अपने पद न जा सका तब औरंगाबाद की सूबेदारी का नायब होकर, जो उक्त बहादुर को व्यक्तिगत रूप से मिला था, उस प्रांत को चला गया। उसी वर्ष यह वहाँ से हटाया गया। ४ थे वर्ष सन् ११२२ हि० में यह मर गया। साहस तथा काम करने मे यह एक था। अंतिम काल मे जब औरंगजेब बादशाह को सेना इकट्ठी करने की इच्छा हुई तब प्रांतो के शासको को फर्मान भेजा गया कि बेकार अच्छे वंशवालो को नौकरी की आशा देकर दरबार भेजें। मुहम्मद मुराद खाँ उस समय कोदरा तथा कामरा का फौजदार था और यह सूचना पाकर उसने प्रार्थना की कि जब हजरत स्वयं काफिरो को दमन करने आवें तब इन बंदो को दीवार का साया लेना तथा आराम से बैठना गवारा नही है। जितनी आज्ञा हो उतने अच्छे आदमियो को लेकर यह दास दरबार में उपस्थित हो। बादशाह ने उत्तर में प्रशंसा करते हुए इसे सेना सहित आने को लिखा। अहमदाबाद के सूबेदार शुजाअत खाँ मुहम्मद बेग के नाम भर्त्सना का पत्र गया, जिसने पहिले ही योग्य पुरुषों का अभाव होना लिख भेजा था और उसमे मुहम्मद मुराद खाँ के पत्र का हवाला भी दिया गया था। शुजाअत खाँ ने इस फर्मान के पाते ही नगरवासियों से कहला दिया कि कोई मुहम्मद मुराद खाँ का साथ न दे। इसने यह हालत देखकर लाचार हो उस आदमी से, जो पहिले शुजाअत खाँ के घर का बख्शी था और कुछ दिन से अप्रसन्न हो उसके यहाँ का काम छोड़ दिया था, मिलकर उसे उसके लाए हुए सैनिको का अधिनायक बनाने का वचन देकर कुछ आदमी इकट्ठे किए तथा दरबार चला। शाही पड़ाव मे पहुँचने पर दुर्ग पर्नाला के घेरे में एक मोर्चे का अध्यक्ष हुआ।

एक दिन इसका एक पुत्र मोर्चे से सैर के लिए निकला और हाथ मे तीर कमान लेकर जगल मे चरते हुए गायो भेड़ों के पीछे जाने लगा। ये पशु दुर्ग के थे और निश्चित मार्ग से पहाड़ के ऊपर चले आए थे। उसने यह बात अपने पिता से कही और उक्त खाँ ने अपने साथियों को लेकर पहाड़ के मध्य मे मोर्चा स्थापित किया। इसके अनंतर इसने बादशाह के पास प्रार्थनापत्र भेजकर सहायता माँगी। बादशाह ने रुहुल्ला खाँ तथा तरबियत खाँ को सहायता के लिए आज्ञा दी पर उन

दोनों ने जानबूझकर आलस्य किया और इसके पास संदेश भेजा कि हमलोग कभी तुम्हारी सहायता न करेंगे इससे अच्छा है कि फिर प्रार्थनापत्र दो कि स्थान ठहरने योग्य नही है, गलती से यहाँ पहुँच गया हूँ। जब यह अर्जी पेश की गई तब बादशाह ने कहा कि यह कैसी झूठी चाल है, अपने मोर्चे मे चला आवे। परंतु बादशाह को हरकारों से पूरा विवरण ज्ञात हो गया। दूसरे दिन जब उक्त खाँ नियम विरुद्ध अकेले मुजरा को गया तब बादशाह ने पूछा कि तुम्हारे साथी क्यों नही आए। इसने उत्तर दिया कि कल के दिन की झूठी चाल के कारण ही थक जाने से नही आ सके।

यह किसी बात को समझाने मे अच्छी योग्यता रखता था। कहते हैं कि हैदराबाद मे रहते समय एक दिन अबुल्हसन की मजलिस में, जब वहाँ के सभी विद्वान इकट्ठे थे, औरंगजेब के गुणो की चर्चा होने लगी। बात यहाँ तक पहुँची कि जब तरबियत खाँ राजदूत के मोजा खींचने से बादशाह तथा ईरान के शाह के बीच वैमनस्य हो गया तब आज्ञा हुई कि उक्त शाह के भेजे हुए घोड़ों को काटकर फकीरों मे बाँट दो। पर्हेजगारी के ये सब दावे ऐसे काम को किस प्रकार सिवा अहना की दासता के और कुछ सिद्ध कर सकेंगे। चाहिए था कि विद्वानो या भले लोगो मे बाँट देते। उक्त खाँ ने कहा कि इस कार्य में ईरान के शाह का किसी प्रकार का हाथ नही था। वास्तव में बात यह थी कि उक्त घोडों को आख्ताबेगी ने जिस समय बादशाह कुरान पढ रहे थे सामने लाकर निरीक्षण को कहा। बादशाह ने चाहा कि बचे हुए पाठ को दूसरे दिन के लिए छोड़कर निरीक्षण को जाय। इसी समय सुलेमान के हाल का कुरान का आयत पढा गया, जिसमे भेंट के घोड़ो का निरीक्षण करने के कारण सुन्नत की निमाज या फर्ज की निमाज का समय बीत गया और इस पर उसने उन घोडो को हलाल कर डाला था। इस पर आँखो में आँसू भरकर अपने चचल स्वभाव को दंड देने के लिए वही अमल में लाए। उन सब ने कहा कि ऐसी सूरत में ईरान के सर्दारों के घर पर घोड़ो के भेजने का क्या कारण था। इसने कहा कि यह झूठी गप्प फैल गई है। वास्तव मे शाहजहानाबाद नया बसा हुआ है और ऐसा कोई मुहल्ला नही था जहाँ ईरान के एक न एक सर्दार का मकान न हो तथा वह मुहल्ला उस सर्दार के नाम पर प्रसिद्ध हो गया था। फकीरों मे बाँटने के लिए एक स्थान पर हलाल करना कठिन था इसलिए आज्ञा हुई कि हर मुहल्ले में एक दो घोडे जबह कर बाँटे जायँ। यह कथोपकथन वाकियाअनिगार ने बादशाह के पास लिख भेजा, जिससे उक्त खाँ की बडी प्रशंसा हुई।

कहते हैं कि जिस समय इब्राहीम खाँ जैक गुजरात का सूबेदार नियुक्त होकर वहाँ पहुँचा और शाहजादा बेदारबख्त दरबार गया उस समय मुहम्मद मुराद खाँ,

जो कौदरः तथा थासर. का फौजदार था, रात्रि मे शाहजादे से खिलअत पाकर अपने काम पर गया। गृह आने पर तथा इब्राहीम खाँ के बुलाने पर यह उसके यहाँ गया। उसने शाहजादे का हाल पूछ कर औरंगजेब की मृत्यु का समाचार सुनाया, जो उसे मिल चुका था, और कहा कि इसी समय जाकर शाहजादे को सूचित कर आओ। उक्त खाँ आधी रात को दरबार पहुँचा। ख्वाजासरा ने करवट बदलते समय कहा कि मुहम्मद मुराद खाँ उपस्थित है। शाहजादा ने पूछा कि इनायती कपड़े पहिरे है या बदल कर आया है। ख्वाजासरा ने कहा कि श्वेत वस्त्र पहिरे हुए है। शाहजादे ने उसे बुलाकर हाल पूछने के बाद शोक प्रकट किया। खाँ ने भी शोक दिखलाते हुए राजगद्दी के लिए बधाई दी। शाहजादे ने कहा कि कुछ लोग आलमगीर बादशाह की कद्र नही जानते। क्या हुआ कि जमाना हमारे काम आया। अब देखेगा कि कैसे दीवाने से काम पड़ता है।

मुहम्मद मुराद को बहुत से बेटा बेटी थे। बड़ा पुत्र जवाद अली खाँ नस्ख तथा सुल्स लिपियाँ बहुत अच्छी लिखता था। वार्द्धक्य मे आँखो के निर्बल होने से एकात में औरंगाबाद मे रहने लगा। बड़ी पुत्री अमानत खाँ मीर हुसेन के पुत्र मीर हसन को व्याही थी। अन्य पुत्रो के वंशज गुजरात तथा औरंगाबाद में हैं।

•

५५०. मुहम्मद मुराद खाँ

यह अकबर के एक तीन हजारी मंसबदार अमीर बेग का पुत्र था। ९ वें वर्ष मे यह आसफ खाँ अब्दुल मजीद के साथ गढा कंटक प्रात विजय करने गया। १२ वें वर्ष में मालवा में जागीर पाकर यह शहाबुद्दीन अहमद खाँ के साथ इब्राहीम हुसेन मिर्जा तथा मुहम्मद हुसेन मिर्जा के उपद्रव को शांत करने के लिए बिदा हुआ। इसके अनंतर जब मिर्जाओं के होश हवास बादशाही सेना को देखकर उड़ गए तथा वे गुजरात की ओर भाग गए और जब सब सर्दार अपनी अपनी जागीरो पर रुक गए तब उक्त खाँ भी उज्जैन मे ठहर गया, जो उसकी जागीर मे था। १३ वें वर्ष मे जब मिर्जे फिर खानदेश की ओर से मालवा प्रात में चले आए और उज्जैन के पास उपद्रव आरंभ किया तब मुराद खाँ मालवा के दीवान मीर अजीजुल्ला के साथ उपद्रवियो के विद्रोह के आरंभ होने के दो दिन पहिले ही से सूचना पाकर उज्जैन दुर्ग के बनाने तथा दृढ करने में धैर्य से लग गए। यह समाचार बादशाह तक पहुँचा और एक सेना कुलीज खाँ की सर्दारी मे भेजी गए। मिर्जे विजयी सेना के इस दबदबे को देखकर

मांडू की ओर भाग गए। उक्त खाँ ने सर्दारों के साथ पीछा किया और मिर्जे नर्मदा नदी के पार चले गए। १७ वें वर्ष में जब मिर्जों का उपद्रव गुजरात में हुआ और मालवा के जागीरदारों के आज्ञानुसार मिर्जा अजीज कोका खानआजम के पास पहुँचे तब युद्ध के दिन मुराद खाँ सेना के बाँए भाग में नियत था। इसके अनंतर जब शत्रु-सेना ने प्रबल होकर सेना के दोनों भागों को अस्तव्यस्त कर दिया तब यह एक ओर होकर तमाशा देखता रहा। इसके बाद आज्ञा मिलने पर कुतुबुद्दीन मुहम्मद खाँ अतगा के साथ यह मुजफ्फर का पीछा करने गया। इसके उपरांत मुनइम खाँ खानखानाँ ने इसको फतेहाबाद तथा बगलाना भेजा कि उस जिले में शांति स्थापित करे। जब खानखानाँ की मृत्यु हो गई और दाऊद आदि उपद्रवियों ने वहाँ अशांति मचाई तब मुराद खाँ जलेसर नगर से स्वेच्छा से टाँडा चला आया। २५ वें वर्ष सन् ९८८ हि० में उसी जिले में मर गया।

०

५५१. मुहम्मद यार खाँ

यह मिर्जा बहमन यार एतकाद खाँ का पुत्र था। उस पिता को ऐसा पुत्र, स्यात् बेपरवाही तथा दुष्कृता में उससे बढ़ गया था। सांसारिक लोगों से कुछ भी समानता नहीं रखता था। इसने कितना भी दुनिया को पीठ तथा पैर दिखलाया पर इच्छा का हाथ बढ़ाया पर हाथ पीटते हुए मुख चौखट ही पर रह गया। यद्यपि पिता के जीवन-काल में इसने केवल खेल कूद में जीवन व्यतीत किया था पर होशियारी, कायदे की जानकारी तथा उनकी मर्यादा रखने में उससे बढ़कर था। नौकरी करने की कम इच्छा रखता था। औरंगजेब के राज्य के १ वें वर्ष के आरंभ में, जब इसका पिता जीवित था, इसे चार सदी का नया मंसब मिला और इसके चाचा मिर्जा फर्रुखफाल की पुत्री से इसका निकाह हुआ, जो यमीनुद्दौला आसफजाह का छोटा पुत्र था और मुटाई तथा ऊँचाई के कारण एकांतवास करता था। मजलिस के दिन बादशाही दरबार में उपस्थित होने पर बादशाही पुरस्कार पाकर सम्मानित हुआ। २१ वें वर्ष में यह बादशाही सुनारखाने का दारोगा हुआ। बाद को इसके साथ कोरखाने का भी दारोगा नियत हो गया। क्रमशः मीर तुजुक होते हुए अर्ज मुकर्रर नियत हो गया। इसके अनंतर यह गुसुलखाने का दारोगा बनाया गया। परंतु अपने आराम की धुन में यह महीने दो महीने दरबार नहीं जाता था। यहाँ तक कि जुल्फिकार खाँ नसरतजंग के मंसब के बहुत बढ़ने से, जिसने सैन्य

संचालन में नाम कमाकर दक्षिण के विद्रोहियों को दंड देने तथा दुर्गों को विजय करने के पुरस्कार में तरक्कियाँ पाई थी, यह उसकी बराबरी सहन न कर सका यद्यपि इसका मंसब भी कई बार बढ़ने से ढाई हजारी १५०० सवार का हो गया था। अपने स्थान से हट कर इसने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और उसके लिए हठ किया। शाहजादा मुहम्मद आजमशाह को आज्ञा हुई कि उसे समझावे। शाहजादे ने बहुत कुछ समझाया पर इसका कुछ असर नहीं हुआ। प्रत्युत् इसने शाहजादे को कहला भेजा कि मेरी नौकरी उस दर्जे की नहीं है कि तुम्हारे समझाने से ठीक हो जावे। शाहजादे ने कहा कि इच्छा होनी है कि उसे दुर्ग के मकान में भेज दूँ। जब यह समाचार इसे मिला तब प्रार्थना की कि मैंने सब आदमी हटा दिए हैं, बीजापुर पास में है, यदि दुर्ग के मकानों में से एक मकान मिल जाय तो उसी में सुरक्षित बैठूं। आज्ञानुसार कुलकुला से वहाँ जाकर बैठ रहा। बादशाह भी पीछे से वहाँ पहुँचे और जब ज्ञात हो गया कि किसी प्रकार नौकरी करने की इच्छा नहीं रखता तब दिल्ली जाने की छुट्टी दे दी।

दैवयोग से उसी समय शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम भी आगरा जाने की छुट्टी पाकर उस ओर जा रहा था इससे यह भी साथ हो लिया पर मार्ग में कहीं भी शाहजादे से न मिला। यहाँ तक कि उसके खेमे के आगे से निकलने पर भी बाहर न आया। दिल्ली पहुँचने पर स्वतंत्रता तथा संतोष के साथ दिन व्यतीत करने लगा। कुछ महीने इस प्रकार बेकारी में नहीं बीते थे कि भाग्य ने सहायता की। ४० वें वर्ष सन् १००८ हि० में दरबार से इसे आकिल खाँ खवाफी के स्थान पर दिल्ली की सूबेदारी का फर्मान आया, जिससे इसकी इच्छा पूरी हुई। साथ ही पाँच सदी ५०० सवार का मंसब बढ़ने पर इसका मंसब तीन हजारी २०० सवार का हो गया। ४६ वें वर्ष में इसका मंसब साढ़े तीन हजारी ३००० सवार का हो गया, इसे डंका मिला तथा उक्त सूबेदारी के साथ मुरादाबाद की फौजदारी भी मिली, जो उच्चपदस्थ सर्दारों के सिवा दूसरों को नहीं मिलती। औरंगजेब की मृत्यु पर जब बहादुरशाह पेशावर से चलकर दिल्ली से तीन पड़ाव पर पहुँचा तब मुनइम खाँ को, जिसे उस समय तक खानजमाँ की पदवी मिली थी, उक्त खाँ को समझाने के लिए आगे भेजा। मुहम्मद यार खाँ ने अधीनता तथा सेवा की दृष्टि से अपने पुत्र हसन यार खाँ को दुर्ग की ताली तथा साम्राज्य की बधाई की भेंट सहित खानजमाँ के साथ भेज दिया। तीस लाख रुपया नकद और अस्सी लाख रुपए का चाँदी का सामान भी दिया, जिसे आवश्यक समझ कर लेना पड़ा। परंतु यह स्वयं पागलपन की बीमारी के बहाने दुर्ग ही में रह गया। बहादुरशाह की राजगद्दी के बाद आसफुद्दौला असद खाँ के दिल्ली में रहने का निश्चय होने पर भी

दुर्ग का प्रबंध तथा रक्षा का भार उक्त खाँ ही के हाथ में बहाल रहा। जब जहाँदारशाह का राज्य हुआ और लाहौर से वह दिल्ली की ओर चला तब यह अगराबाद तक स्वागत को आकर उसी दिन नीमदत्त मे आसफुद्दौला को देखा और फिर अपनी हवेली मे आकर बैठा। जुल्फिकार खाँ उस समय हिंदुस्तान का प्रधान मंत्री था और वह कई बार इसे देखने गया और इसके सामने शस्त्र लेकर कोई नही जा सकता था इस कारण इसके विचार मे जमघर खोल कर तब जाता था। जिस दिन बादशाह मुहम्मद फर्रुखसियर विजय के साथ दिल्ली में गया उस दिन नगर के बीच सवारी में बादशाह से मिलकर दुर्ग के बाहर ही से अपने घर को लौट गया। यद्यपि यह दरबार मे आना जाना नही रखता था पर कभी कभी सूबेदारी के नाम से मुकद्दमे इनके पास भेजे जाते थे। जब मुहम्मद फर्रुखसियर बारहा के सैयदो के प्रभुत्व से घबडा कर आलमगीरी अमीरों की खोज मे था तब तकर्रुब खाँ शीराजी के स्थान पर खानसामानी पर इसे बहुत समझा कर नियत किया। इसने दरबार मे आने जाने से छुट्टी रहने की शर्त पर स्वीकार किया। कभी यह स्यात् ही बादशाह के सामने गया हो और खानसमानी के दफ्तर में भी जब जाता तो उतरता न था और पालकी में बैठे बैठे हस्ताक्षर कागजो पर कर देता था। पालकी के लिए खंभे खड़े किए गए थे। यह सच्चा तथा समय का प्रभावशाली पुरुष था। फर्रुखसियर के बाद यद्यपि इसे कोई काम नही मिला पर जागीर बराबर जीवन भर बहाल रही। मुहम्मदशाह बादशाह के समय दो तीन बार दरबार में बुलाया गया। समय पर इसकी मृत्यु हुई। हसन यार खाँ के सिवा, जो जवानी ही में मर गया, दूसरा पुत्र नही था। इसके पास अच्छा कोष तथा अचल संपत्ति थी। दिल्ली मे हवेली तथा दूकानें बहुत सी इसकी थी। बहुतों के पास किराया बाकी रह गया।

•

५५२. मुहम्मद सालिह तरखान

यह मिर्जा ईसा तरखान का द्वितीय पुत्र था। २४ वें वर्ष शाहजहानी में इसका पिता सोरठ की फौजदारी से दरबार बुलाया गया और उक्त सरकार का प्रबंध इसे प्रतिनिधि रूप मे मिला। जब इसी वर्ष इसका पिता मर गया तब इसका मंसब पाँच सदी बढने से दो हजारी १५०० सवार का हो गया। ३१ वें वर्ष में मिर्जा अबुल्मआली के स्थान पर यह सिविस्तान का फौजदार नियत हुआ और पाँच सौ सवार बढने से इसका मंसब दो हजारी २००० सवार का हो गया।

भ्रातृयुद्ध में दैवयोग से दाराशिकोह आलमगीरी सेना के पीछा करने पर जब कहीं नहीं ठहर सका तब ठट्टा जाने के विचार से वह सिविस्तान की ओर चला और आलमगीरी तोपखाने का दारोगा सफ शिकन खाँ भी, जो उसका पीछा करने पर नियत था, पीछे पीछे पहुँचा। इसी समय मुहम्मद सालिह का पुत्र उक्त खाँ को मिला कि दाराशिकोह दुर्ग से पाँच कोस पर पहुँच गया है इसलिए चाहिए कि शीघ्र आकर उसके कोष की नावों को रोके। उक्त खाँ ने अपने दामाद मुहम्मद मासूम को ससैन्य आगे भेजा कि दाराशिकोह की नावों से आगे बढ़कर नदी के किनारे मोर्चा बाँधे। स्वयं रातों रात चलकर दाराशिकोह की सेना के पास से आगे दो कोस बढ़कर शत्रु-नावों की प्रतीक्षा करने लगा। यह भी इच्छा थी कि नदी उतर कर शत्रु को दमन करे। जब शत्रु की नावें आगे आकर उक्त खाँ की नावों के पहुँचने में बाधक हुईं तब इसने मुहम्मद सालिह को संदेश भेजा कि उस ओर नावें भेजे और स्वयं आकर रोकने की शर्तें ठीक करे। दाराशिकोह के धायभाई का पुत्र मुहम्मद सालिह के घर में था पर कुछ भी उससे सेवा न हो सकी प्रत्युत उसकी हितैषिता का विचार कर उक्त खाँ को संदेश भेजा कि इस किनारे पानी कमर तक है इसलिए उस तट से पार करे। सफ शिकन खाँ ने यह ठीक समझ कर भी आवश्यकतावश नदी पार नहीं किया। दूसरे दिन उस ओर धूल उड़ने से प्रकट हुआ कि दाराशिकोह ने कूच कर दिया और शत्रु नावों को उसी ओर ले गए। इस कारण कि ऐसा विजय का अवसर मुहम्मद सालिह की चाल से हाथ से निकल गया, यह मंसब तथा पदवी छिन जाने से दंडित हुआ। आलमगिरी २ रे वर्ष मे फिर डेढ़ हजारी १००० सवार का मंसब बहाल हुआ और बहादुर खाँ के साथ बहादुर बछगोती को दंड देने पर नियत हुआ, जिसने बैसवाड़े मे उपद्रव मचा रखा था। इसके अनंतर दक्षिण की चढ़ाई पर नियत होकर मिर्जाराजा जयसिंह के साथ शिवाजी भोसला के दुर्गों को लेने तथा उसके राज्य मे लूटमार करने मे इसने अच्छा काम किया। इसकी मृत्यु की तारीख नहीं मालूम हुई। इसका पुत्र मिर्जा बहुरोम शाहजहाँ के समय पाँच सदी मंसबदार था।

५५३. मुहम्मद सुल्तान मिर्जा

यह मिर्जा वैस का पुत्र था, जो बायकरा के पुत्र मंसूर के पुत्र बायकरा का पुत्र था। सुलतान हुसेन मिर्जा बायकरा के राज्यकाल में, जो इसका मातामह था, यह विश्वासपात्र तथा सम्मानित व्यक्ति था। उक्त सुलतान की मृत्यु पर जब खुरासान में बड़ी अशांति मच गई तब यह बाबर बादशाह की सेवा में पहुँच कर उसका कृपापात्र हुआ और इसी प्रकार हुमायूँ बादशाह के समय तक रहा। इतने पर भी इसमें उपद्रव करने के चिन्ह कई बार प्रकट होने पर हुमायूँ ने मुरौव्वत से बदला लेने की शक्ति रखते हुए भी इसे क्षमा कर दिया। इसके दो पुत्र थे—उलुग मिर्जा और शाह मिर्जा। इन दोनो ने भी हुमायूँ के विरुद्ध कई बार विद्रोह किया पर वे कृपापात्र बने रहे यहाँ तक कि उलुग मिर्जा हजारा की चढ़ाई में मारा गया और शाह मिर्जा अपनी मृत्यु से मर गया। उलुग मिर्जा को लड़के थे—सिकन्दर और महमूद सुलतान। हुमायूँ ने प्रथम को उलुग मिर्जा और द्वितीय को शाह मिर्जा की पदवी दी। जब अकबर का समय आया तब मुहम्मद सुलतान मिर्जा पर पौत्रों तथा कुटुंबियो के साथ विशेष कृपा हुई। अवस्था के आधिक्य के कारण सेवा इसे क्षमा कर दी गई और संभल सरकार में आजमपुरा पर्गना इसे व्यय के लिए मिला। यहीं बुढ़ौती में इसे कई पुत्र हुए—इब्राहीम हुसेन मिर्जा और आकिल हुसेन मिर्जा। बादशाह ने इन सब पर भी कृपा की और सरकार संभल में अच्छी जागीरें इन्हें मिलीं। ११ वें वर्ष में अकबर मिर्जा मुहम्मद हकीम को दमन करने गया, जो काबुल से जाकर लाहौर के घेरे हुए था। उलुग मिर्जा और शाह मिर्जा इब्राहिम हुसेन मिर्जा तथा मुहम्मद हुसेन मिर्जा के साथ विद्रोह का झंडा खड़ाकर लूटमार करते हुए दिल्ली की सीमा पर पहुँचे। इसके अनंतर मालवा जाकर उसपर अधिकृत हो गए, जिसका अध्यक्ष मुहम्मद कुली खाँ बर्लास उस समय दरबार में उपस्थित था। इस कारण मुहम्मद सुलतान बयाना दुर्ग में कैद हुआ और वहीं कैद से मर गया। १२ वें वर्ष में अकबर खानजमाँ के दमन के अनंतर चित्तौड़ गढ़ लेने के विचार से उधर गया और शहाबुद्दीन अहमद खाँ को मालवा की अध्यक्षता देकर मिर्जाओं का दमन करने भेजा। इसी समय उलुग मिर्जा माडू में मर गया और दूसरे सामना करने का अपने में सामर्थ्य न देखकर चगेज खाँ के पास चले गए जो सुलतान महमूद गुजराती का दास था और बाद में उससे उस प्रांत के कुछ नगरों पर अधिकार प्राप्त कर दृढ़ता से जम गया था। वह उस समय एतमाद खाँ गुजराती से लड़ने को रवाना हुआ, जिसने अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया था। मिर्जाओं के मुकद्दम ने इसे गनीमत समझा। उस युद्ध में इन लोगों ने अच्छा कार्य दिखलाया इस लिए चगेज खाँ ने भड़ोच मिर्जाओं को जागीर में दे दिया। परंतु ये स्वभावतः उपद्रवी थे इस कारण वहाँ पहुँचते ही इतना उपद्रव तथा अत्याचार

किया कि अंत में निरुपाय होकर चंगेज खाँ ने भड़ोच सेना भेजी। यद्यपि इन सब ने सैनिकों को परास्त कर दिया पर चंगेज खाँ का सामना करने में अपने को असमर्थ देखकर खानदेश की ओर चले गए और वहाँ से पुनः मालवा जाकर उपद्रव मचाने लगे। मुजफ्फर खाँ और सादिक खाँ आदि सर्दार गण ने, जो रणथंभोर विजय करने पर नियत हुए थे, आज्ञानुसार १३ वें वर्ष में इनका पीछा किया। मिर्जे भागकर नर्मदा के उस पार चले गए। इनके बहुत से साथी नष्ट हो गए। जब इन्हें ज्ञात हुआ कि चंगेज खाँ झुझार खाँ हब्शी के विद्रोह में मारा गया और गुजरात में कोई स्थायी अध्यक्ष नहीं रह गया है तब ये फिर उस प्रांत में गए और चांपानेर, भड़ोच तथा सूरत पर बिना युद्ध और कुछ युद्ध और कुछ युद्ध कर अधि-कृत हो गए।

जब अहमदाबाद बादशाही साम्राज्य में मिल गया और प्रकाश फैलानेवाला अकबरी झंडा उस प्रांत में पहुँचा तब मिर्जाओं के दल में फूट पड़ गई। इब्राहीम हुसेन भड़ोच से निकल कर बादशाही पड़ाव से आठ कोस पर आकर ठहरा। इसके एक दिन पहिले बादशाही सर्दारगण मुहम्मद हुसेन मिर्जा को दमन करने के लिए सूरत की ओर भेजे जा चुके थे इसलिए यह समाचार पाते ही अकबर ने शाहबाज खाँ को सर्दारों को लौटाने को भेजकर स्वयं आक्रमण किया। जब महीदी नदी के किनारे, जो सरनाल के पास है, पहुँचा तब केवल चालीस सवार इसके साथ में थे, जिनमें बहुतों के पास कवच न थे। इतनी देर रुकना पड़ा कि साथ कवच लोगों में बाँटे गए। इसी बीच कुछ सर्दार भी लौट आए, जो सब मिलकर दो सौ हुए। सरनाल कस्बे मे घोर युद्ध हुआ। इब्राहीम हुसेन परास्त होकर आगरे की ओर भागा और उसकी स्त्री गुलरुख बेगम, जो कामराँ की पुत्री थी, अपने पुत्र मुजफ्फर हुसेन के साथ सूरत होती दक्षिण चली गई। उसी वर्ष अकबर ने सूरत विजय करने का विचार कर मिर्जा अजीज कोका को अहमदाबाद में छोड़ा और कुतुबुद्दीन खाँ आदि सर्दारों को मलवा से बुलाकर सहायता पर नियत किया मुहम्मद हुसेन मिर्जा और शाह मिर्जा पत्तन के पास थे और इन्होंने शेर खाँ फौलादी से मिल कर उस कस्बे को घेर लिया, मिर्जा कोका युद्ध के लिए रवानः हुआ और युद्ध भी घोर हुआ। विद्रोहियों के कार्यों का फल असफलता ही है इसलिए मिर्जे प्रायः विजयी होते होते परास्त हो गए। मुहम्मद हुसेन मिर्जा दक्षिण भागा और इब्राहीम हुसेन मिर्जा मसऊद हुसेन मिर्जा के साथ, जिसे नागौर में विद्रोह करने के कारण दंड दिया जा चुका था, [illegible] ओर चला। उस समय वहाँ का प्रांत [illegible] कुली खाँ नगर को [illegible] इसलिए राजा से संधि कर वह [illegible] करने आया। म [illegible] युद्ध में कैद हो गया और [illegible] तान की ओर [illegible] हाथ घायल होकर पक [illegible] के

सूबेदार सईद खाँ चगत्ता ने यह सुन कर इसे अपनी कैद मे ले लिया। इसी घाव से इसकी मृत्यु हो गई। मुहम्मद हुसेन मिर्जा बादशाह के गुजरात से आगरा लौटने पर दक्षिण के दौलताबाद से गुजरात आया और के कुछ महालो पर फिर से अधिकृत हो गया। खंभात के पास कुतुबुद्दीन खाँ के पुत्र नौरंग खाँ आदि बादशाही सर्दारो मे परास्त होकर इख्तियारुलमुल्क तथा शेर खाँ फौलादी के पुत्रो के पास पहुँचा, जो विद्रोही हो चुके थे। इन सबने मिलकर अहमदाबाद मे मिर्जा अजीज कोका को घेर लिया। अकबर यह समाचार सुनते ही आगरे से धावा कर नौ दिन में, जिनमे अधिकतर लोग शीघ्रगामी साँडनियो पर सवार थे, ५ जमादिउल् अव्वल सन् ९८१ हि० को अहमदाबाद से तीन कोस पर एक सहस्र सवारो से कम के साथ पहुँच गया। मुहम्मद हुसेन मिर्जा के साथ घोर युद्ध हुआ, जो इख्तियारुल्मुल्क को नगर के घेरे पर छोडकर स्वयं युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ था। बादशाह ने स्वयं अग्गल होकर सौ सवारो के साथ खूब प्रयत्न किया मुहम्मद हुसेन मिर्जा घायल होकर भागा पर उसके घोडे का पैर कुहरे के कारण थूहड़ वृक्ष से लगने से यह पृथ्वी पर आ गिरा। बादशाही दो सैनिकों ने सामने लाए। हर एक इसके पुरस्कार के लोभ मे इस सेवा का कर्ता अपने को बतलाता। आज्ञानुसार राजा बीरबल ने मिर्जा से पूछा कि उसे पकड़ा था। उत्तर दिया कि मुझे बादशाह के निमक ने पकडा है। सत्य ही, ये क्या शक्ति रखते हैं। इसके अनंतर लूट के लिए लोग अस्त व्यस्त हो गए। प्रतापी बादशाह के पास कुछ ही मनुष्य बच गए थे कि इख्तियारुलमुल्क पाँच सहस्र सैनिको के साथ होते भी मिर्जा के कैद होने का समाचार सुनकर भाग खड़ा हुआ। लोगो का ध्यान था कि युद्ध होगा इस लिए बड़ा उपद्रव मचा था। भय से नक्कारची लोग घबडा कर कभी युद्ध का कभी आनद का नगाड़ा बजाते थे। परंतु शत्रु ऐसा घबडाते हुए भागे कि बादशाही सेना के बहादुरो ने पीछा कर उन्ही के तरकश से तीर निकालकर बहुतो को मार डाला। इख्तियारुल् मुल्क अपनी सेना से अलग होकर थूहड़ की टट्टी मे जा निकला। इसने चाहा कि घोडे को कुदावे पर भूमि पर गिर पडा। तुर्कमान सुहराब इसका सिर काट कर ले आया, जो उसका पीछा कर रहा था। इसी गड़बडी मे मुहम्मद हुसेन मिर्जा को उसके रक्षक रायसिंह ने मार डाला। शाह मिर्जा युद्ध के आरंभ ही मे भाग गया था।

इसके अनंतर २२ वें वर्ष मे मुजफ्फर हुसेन मिर्जा ने, जिसे उसकी माँ दक्षिण लिवा गई थी, विद्रोहियो के एक झुंड के प्रयत्न से गुजरात पहुँच कर विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। राजा टोडरमल इसके पहिले ही उस प्रात के प्रबंध को ठीक करने के लिए बजीर खाँ की सहायता को आ चुके थे इससे उक्त खाँ के साथ उस पर आक्रमण कर उसे कड़ी पराजय दिया। मिर्जा जूनागढ़ की ओर

भागा। जब राजा दरबार को रवान: हुआ तब मिर्जा ने अहमदाबाद को आकर फिर घेर लिया और उसके आदमियों को मिलाकर नगर मे घुसने का प्रबंध करने लगा। इसी समय एकाएक मेहू अली कोलावी गोली लगने से मर गया, जिसने इस अल्पवयस्क मिर्जा को उपद्रव की जड बनाकर यह विद्रोह कर रखा था। मिर्जा यह हाल देखकर ठीक विजय के समय अपना स्थान छोडकर दरबार की ओर भागा। जब यह खानदेश पहुँचा तब वहाँ के शासक राजा अली खाँ ने इसे कैद कर लिया और अकबर के पास भेज दिया। यह कुछ दिन कैद मे रहा। जब मिर्जा को हालए से लज्जा और सुव्यवहार प्रगट हुआ तब इस पर कृपा हुई। ३८ वें वर्ष मे अकबर ने अपनी बड़ी पुत्री ख नम सुल्तान का मिर्जा से निकाह कर दिया और कन्नौज सरकार उसे जागीर में दिया। जब उपद्रव तथा विद्रोह के इसके पैतृक विचारों की सूचना मिली तब यह जागर पर मे बुलाया जाकर कैद कर दिया गया। ४५ वे वर्ष सन् १००८ हि० मे आसीरगढ के घेरे मे मिर्जा को सेना के साथ ललंग दुर्ग लेने में सहायतार्थ भेजा। मिर्जा पहिले की असफलताओं का लाभ न उठाकर उपद्रवी तथा घमंडी प्रकृति से ख्वाजगी फतहुल्ला से लड़ गया और एक दिन अवसर पाकर गुजरात को चल दिया। इसके साथवाले इससे अलग हो गए। इस बेकार ने सूरत तथा बगलाना के बीच विरक्ति का वस्त्र पहिरा। उसी घबड़ाहट के समय ख्वाजा वैसी ने, जो पीछा कर रहा था, पहुँचकर तथा कैद कर दरबार में ले आया। बादशाह ने इसको क्षमाकर शिक्षा के कारागार मे रखा। ४६ वें वर्ष मे इसे पुन: कैद से निकाल कर इस पर कृपा की। इसके अनन्तर यह अपनी मृत्यु से मरा। मिर्जा की बहिन नूरुन्निसा बेगम शाहजादा सुल्तान सलीम से व्याही थी। कहते हैं कि गुलरुख बेगम, जो जहाँगीर की सास थी, अजमेर में सन् १०२३ हि० मे बीमार हुई। जहाँगीर बादशाह देखने के लिए उसके घर पर गए। बेगम ने खिलअत भेंट किया। बादशाह ने तोर. की रक्षा मे सम्राट् होने का ख्याल न कर उसे स्वीकार किया और उसे पहिर लिया।

•

५५४. मुहम्मद हाशिम मिर्जा

यह दो नाते से खलीफा सुलतान का पौत्र तथा तीन नाते से शाह अब्बास प्रथम का नाती लगता था। बहादुरशाह के ४ थे वर्ष मे यह गरीबी के कारण सूरत बंदर आया। बहादुरशाह बड़ा दयालु था और समाचार पाकर गुणग्राहकता से तथा कृपा करके तीन सहस्र रुपया वेतन तथा मेहमानदार नियत करके उसको

प्रतिष्ठा बढाई। गुजरात के प्रांताध्यक्ष फीरोजजंग के नाम फर्मान गया कि जब वह अहमदाबाद पहुँचे तब पहिले के गुजरात के सूबेदार मुहम्मद अमीन खाँ की चाल पर, जिसने खलीफा सुलतान के भाई कियामुद्दीन की ईरान से मुहताज आने पर आज्ञानुसार किया था, उसकी सब आवश्यकताएँ पूरी कर दरबार भेज दे। खाँ फीरोजजंग ने अपने छोटे पुत्र को स्वागत के लिए भेजा और आने पर स्वयं कुछ कदम आगे बढकर इससे मिला। पंद्रह सहस्र रुपया नगद, हाथी व घोडा इसे दिया। इसके अनंतर जब मिर्जा बादशाह के पडाव के पास पहुँचा तब कोका खाँ, जिसकी माँ बादशाह को मुसाहिब थी, इसकी मेहमानी करने पर नियत हुआ। सेवा मे उपस्थित होने पर इसे अनेक प्रकार की भेंट मिली। गर्मी के कारण इसके मुँह पर थकावट मालूम हो रही थी, इसलिए आज्ञा हुई कि इसे खसखाने मे लेजाकर यख का पानी पिलावें।

इसी समय खानखानाँ की मृत्यु से मंत्री की नियुक्ति की बातचीत चल रही थी। बादशाह का द्वितीय पुत्र मुहम्मद अजीमुश्शान का जिसका साम्राज्य के कार्यों में पूरा अधिकार था, हठ था कि जुल्फिकार खाँ मंत्री बनाया जाय और मृत खानखानाँ के पुत्रों को मीर बख्शी तथा दक्षिण का सूबेदार नियत किया जाय। जुल्फिकार खाँ का कथन था कि जबतक उसका पिता जीवित है, तबतक मंत्रित्व पर उसी का स्वत्व है। उसका विचार था कि इस बहाने तीनो कार्य उसी के हाथ रहेंगे। इस बातचीत मे बहुत समय बीत गया। एकांत स्थान में कई बार बादशाह के मुख से निकला कि इन बातो से मैं तंग आ गया, चाहता हूँ कि मंत्री पद पर ईरान के शाहजादे को नियत कर तन या खालसा के दीवानो मे से किसी एक को उसका स्थायी नायब बना दूँ और नायब ही से काम लूँ। परंतु मिर्जा के आने के पहिले तथा बाद शाहजादों की ओर से बादशाह तक इसके बारे में बहुत सी बातें कहलाई गई थी, विशेष कर इसके अहंकार तथा निरंकुशता की। मिर्जा शाहजादो के सामने भी सिर नही झुकाता था और इससे सभी सर्दार क्षुब्ध रहते थे, यहाँ तक मिर्जा शाहनवाज खाँ सफवी के संकेत पर, जो इससे बहुत द्वेष रखता था और उसकी छाती मे इतनी ईर्ष्याग्नि जल रही थी, कि मेहमानदार से बादशाह को प्रार्थनापत्र लिखवाया कि शाहजादो को सवारी में तथा दरबार मे किस प्रकार आदाब करे और सर्दारो से कैसा बर्ताव करे। बादशाह के आने के पहिले यदि वह दरबार में पहुँच जाय तो किस स्थान पर बैठे। बादशाह ने उसी प्रार्थनापत्र लिख दिया कि शाहजादों को सवारी के समय घोडे से उतर कर आदाब करे और दरबार में सर्दारो की तरह करे। तीन हजारी तक, जो पहिले सलाम करते हैं, हाथ सिर पर लगावे। तीसरी बात पर पहुँचते ही बादशाह ने मिर्जा शाहनवाज खाँ की ओर घूमकर पूछा कि क्या लिखना चाहिए। उसने प्रार्थना की कि बादशाह

के आने तक खान·जाद खाँ के घर मे बैठे। दूसरे दिन बादशाह के आने के पहिले यह दरबार पहुँच गया और मजावल ने शाहनवाज खाँ के कहने के अनुसार इसे उक्त खाँ के घर लिवा जाकर बैठा दिया। मकान के मालिक ने मिर्जा की इच्छा के अनुसार उससे तपाक के साथ व्यवहार नही किया। यद्यपि दूसरे दिन मिर्जा शाहनवाज खाँ ने इसके घर आकर क्षमा याचना की पर यह प्रार्थना पत्र तथा इस प्रकार आना हलकेपन का कारण बन मजलिसो मे बातचीत का एक साधन बन गया। अंत में इसे पाँच हजारी ३००० सवार का मंसब तथा खलीफा सुलतान की पदवी मिली, जिसके लिए इसने स्वयं प्रार्थना की थी। इसकी प्रकृति दुनियादारी की न थी। दरबार के सरदार गण इससे कितनी भी बेरुखी और कुव्यवहार करते थे पर इसके अहंकार पर कुछ प्रभाव नहीं पडा। अभी वेतन मे इसे जागीर नहीं मिली थी कि बहादुर शाह की मृत्यु हो गई। फिर किसी ने इसकी बात भी न पूछी। बहुत दिनो तक यह राजधानी में रहा और समय आने पर मर गया।

मुंतखबुल्लुबाब इतिहास के लेखक खवाफी खाँ, जो इस ग्रंथ के लेखक से बहुत प्रेम रखता था और दैवयोग से खाँ फीरोजजंग ने अहमदाबाद मे अपनी ओर से इसे शाहजादे का मेहमानदार नियत किया था तथा शाहजादे ने मार्ग में इसे अपनी दीवानी का कार्य सौंपा था, लिखता है कि मिर्जा का वंश आकाश-सा ऊँचा था और सिवा पूर्वजो की हड्डी बेचने तथा वंश की पूजा करने के इसने और कुछ अभ्यास नही किया था। वंश की बाते इतनी उड़ाता कि मानो जमीनवालो से कोई संबंध न था और इससे अपरिचित था कि कहा गया है। शैर—

मोती के ऐब से बढकर वंश का घमंड है व मूर्खता है।
नगीने की तरह दूसरे के नाम से कुछ दिन जी सकना है॥

जब यह अहमदाबाद से राजधानी दिल्ली पहुँचा तब साथियो ने, जो उन्नति की आशा से साथ हो गए थे, बहुत कह सुनकर इसे आसफुद्दौला से मुलाकात करने को लिवा गए। आसफुद्दौला ने अपनी मसनद के पास दूसरी गद्दी इसके लिए बिछवा रखी थी। यह बात इसे बहुत बुरा लगी और इसके बाद आसफुद्दौला ने बहुत उत्साह दिखलाया पर यह टस से मस न हुआ। प्रसन्न करने के लिए एक बार आसफुद्दौला के मुख से निकल पडा कि जिस दिन बादशाही सेवा में उपस्थित होगा उसी पहले दिन सात हजारी मंसब दिलवाऊँगा, जो हिंदुस्तान के ऐश्वर्य की सीमा है। इस पर इसने एक बार ही खफा होकर कहा कि यहाँ हरएक पाजी सात हजारी हैं, हमारे लिए यह कोई प्रतिष्ठा नही रखता। ईश्वरेच्छा कि इसी के बाद ईरान मे उपद्रव हुआ और सफवी राज्य का अंत हो गया, जिससे इस वंश के बहुत से लोग हिंदुस्तान की शरण में चले आए। जब यहाँ के साम्राज्य की भी शोभा कम हो गई और प्रबंध बिगड गया तब कुछ भी पहिले की प्रतिष्ठा तथा

विश्वास नही रह गया, जिसका कुछ भी गुमान न करने थे। हर एक इधर उधर छिपकर रोजगार करने लगे। आश्चर्य है कि कुछ लोग इम वंश को अपनी पुत्री देकर उसे खलीफा-सुलतानी प्रकट करते थे। इमी प्रकार वंगाल के एक हाकिम ने ऐसे ही एक 'आदमी से संबंध किया पर बाद मे ज्ञात हुआ कि वह झूठा है। इमी प्रकार इनमें से कुछ दक्षिण आए और वंश के नाम पर सम्मान भी प्राप्त किया। इसके अनंतर जब वास्तविक मिर्जे इस वश के पहुँचे तब मालूम हुआ कि वे उस वंश से कुछ भी संबंध नही रखते।

●

५५५. मुहम्मद हुसेन ख्वाजगी

यह कासिम खाँ मीर बहर का छोटा भाई था। उसका वृत्तांत अलग लिखा गया है। अकबर के राज्य के ५ वें वर्ष मे मुनइम वेग खानखानाँ के साथ काबुल मे आकर सेवा में भर्ती हुआ तथा बादशाही कृपा से बड़ा सम्मान पाया। जब खानखानाँ का पुत्र मियाँ गनी खाँ और हैदर मुहम्मद खाँ आख्तः वेगी जिन दोनों को खानखानाँ काबुल में छोड आया था, असफल हो गए तब बादशाह ने हैदर मुहम्मद खाँ आख्त. वेगी को लौट आने का आज्ञा पत्र भेजा और खानखानाँ के भतीजे अबुल् फतह को गनी खाँ की सहायता के लिए भेजा। यह भी उसके साथ काबुल मे नियत हुआ। कुछ दिन वहाँ व्यतीत कर यह दरबार चला आया और कश्मीर की यात्रा मे बादशाह के साथ गया। सचाई तथा औचित्य के विचार मे साहसी था, इसलिए बादशाह के स्वभाव से इसका मेल खा गया और अंत मे एक हजारी मसब और बकावल वेग का पद इसे मिला। जहाँगीर के राज्य के ५ वें वर्ष मे जब कश्मीर की अध्यक्षता इसके भतीजे हाशिम खाँ को मिली, जो उड़ीसा का शासक था, तब इसको हाशिम खाँ के पहुँचने तक उक्त प्रांत का प्रबंध करने को भेजा। ६ ठे वर्ष दरबार पहुँच कर यह सेवा मे उपस्थित हुआ। इसी वर्ष के अंत मे सन् १०२० हि० मे इसकी मृत्यु हुई। इसे पुत्र न थे। बादशाह ने जहाँगीर नामा में लिखा है कि वह कोसा था और इसकी डाढी मूछ पर एक बाल भी न थे। बोलते समय इसकी आवाज ख्वाजा सराओ तक पहुँचती थी।

●

५५६. मुहिब्ब अली खाँ

यह बाबर बादशाह के साम्राज्य-स्तंभ मीर निजामुद्दीन अली खलीफा का पुत्र था, जो पुरानी सेवा, विश्वास की अधिकता, बुद्धि की कुशाग्रता, अनुभव, विशेष साहस तथा प्रत्युत्पन्नमति के कारण उस बादशाह के यहाँ ऊँचा पद रखता था। गुणों तथा विद्याओं मे विशेषतः हकीमी में बहुत योग्य था। संसार के कुछ अवश्यभावी कार्यों के कारण यह हुमायूँ ने शंका तथा भय रखते हुए उसके बादशाह होने मे प्रसन्न न था। बाबर की मृत्यु के समय यह चाहता था कि हुमायूँ के अपने उत्तराधिकार के अनुसार राजगद्दी का स्वत्व रखते हुए भी बाबर के दामाद मेहदी ख्वाजा को जो बडा उदार था तथा इससे मुहब्बत प्रकट करता था, गद्दी पर बैठावे। जब इनका यह निश्चय लोगो को ज्ञात हुआ तब ख्वाजा ने भी शाही चाल पकडी। दैवयोग से उन्ही दिनो एक दिन मीर खलीफा मेहदी ख्वाजा के साथ खेमे मे था। जब मीर बाहर आया तब ख्वाजा, जो पागलपन से खाली न था, इससे असावधान होकर कि वहाँ दूसरा भी उपस्थित है डाढी पर हाथ फेरते हुए कहा कि यदि ईश्वर ने चाहा तो तेरी खाल निकलवाऊँगा। एकाएक उसकी दृष्टि ख्वाजा निजामुद्दीन बख्शी के पिता मुहम्मद मुकीम हरवी पर पडी, जो उस समय बयूतात का दीवान था तथा खेमे के कोने में खडा था। ख्वाजा का रंग उड गया और उसका कान उमेठते हुए कहा कि ऐ ताजीक[1]। मिसरा—

लाल जबान और हरा सिर बर्बाद कर देता है।

उसी समय मुहम्मद मुकीम ने यह बात मीर खलीफा से जा सुनाई और कहा कि स्वामिद्रोह का यही फल है तथा किसलिए चाहता है कि खान्दानी राज्य गैर को दे दे। मीर खलीफा ने इस अनुचित विचार से अलग होकर लोगो को ख्वाजा के घर पर जाने से मना कर दिया। इसके अनंतर इसने बाबर की मृत्यु पर हुमायूँ को राजगद्दी पर बिठा दिया।

मुहिब्ब अली खाँ ने भी बाबर और हुमायूँ के समय मे युद्धो में बहुत प्रयत्न किया था। इसकी स्त्री नाहीद बेगम थी। यह नाहीद बेगम कासिम कोका की पुत्री थी, जिसने स्वामिभक्ति से अब्दुल्ला खाँ उजबक के युद्ध मे जब बादशाह शत्रुओ के हाथ मे पड़ गए तब आगे बढ़कर कहा कि बादशाह तो मैं हूँ पर इस नौकर ने कैसे बहाने से अपने को पकडवा दिया है। शत्रुओ ने उसे छोड दिया। बादशाह उस घातक स्थान से छूटकर इसके परिवार वालो पर बराबर कृपा करते रहे। सन् ९८५ हि० में नाहीद बेगम अपनी माँ हाजी बेगम से मिलने के लिए

१. वह मनुष्य जो अरब में पैदा हो तथा फारस मे पलकर बडा हो और व्यापार आदि करे।

ठट्टा गई, जो अमीर जुल्नून के पुत्र मिर्जा मुकीम की पुत्री थी और कासिम कोका की मृत्यु पर मिर्जा हसन के यहाँ पहुँची तथा उसके बाद जिसने टट्टा के शासक मिर्जा ईसा तर्खान के साथ शादी की। दैवयोग से बेगम के पहुँचने के पहिले मिर्जा मर गया और उसका पुत्र मुहम्मद बाकी उस प्रांत का प्रबंधक हुआ। इसने नाहीद बेगम का स्वागत नही किया और हाजी बेगम के साथ भी बुरा सलूक करने लगा। हाजी बेगम ने कुछ उपद्रवियों के साथ मुहम्मद बाकी को पकड़ लेना चाहा पर उसने सूचना पाकर इसे कैद कर दिया, जहाँ वह मर गई। नाहीद बेगम वीरता तथा उपाय से उस प्रात से निकलकर भक्कर पहुँची तब वहाँ के शासक सुलतान महमूद से मेल की बातें कर कि यदि मुहिब्ब अली खाँ इस ओर आवे तो मैं ठट्टा विजय कर दे दूंगा। बेगम ने समय के अनुसार उसे सच्चा समझकर हिंदुस्तान आने पर अकबर से इसके लिए बहुत हठ किया। बादशाह ने १६ वें वर्ष मे सन् ९७८ हि० में मुहिब्ब अली खाँ को, जो एक मुद्दत से काम छोडकर बैठा हुआ था, झंडा व डंका देकर मुलतान और वहाँ के जागीरदार से पाँच लाख तनका व्यय के लिए वेतन करा दिया। उसके दौहित्र मुजाहिद खाँ को भी, जो साहसी युवक था, साथ कर दिया। मुलतान के प्रांताध्यक्ष सईद खाँ को आदेश लिख भेजा कि इसकी सहायता करे। उक्त खाँ मुलतान पहुँचने पर सुलतान महमूद के वचन पर विश्वास कर सहायता की प्रतीक्षा न कर कुछ सेना के साथ, जिसे एकत्र कर सका था, भक्कर चल दिया। जब यह पास पहुँचा तब सुलतान महमूद ने संदेश भेजा कि वह एक बात थी जो मुँह से निकल गई थी पर मैं ऐसे कार्य मे साथ नही दे सकता इसलिए या तो वह लौट जाय या जैसलमेर के मार्ग से उस प्रात मे जाय।

मुहिब्बअली खाँ लौटने का मुख नही रखता था इसलिए कुछ साथियो के साथ, जो दो सौ से अधिक नही थे, भक्कर विजय करने का विचार किया। सुलतान महमूद ने दस सहस्र सेना सजाकर दुर्ग मान्हीला की सीमा के आगे भेज दिया। खुदा की कृपा से इस छोटे झुंड ने उसे हरा दिया। पराजित उक्त दुर्ग में जा बैठे। घेरे के अनतर वह दुर्ग टूटा और इस सेना का कुछ सामान ठीक हो गया तब यह भक्कर गया। संयोग से शत्रुओं में फूट पड गई। सुलतान महमूद का खास खेल मुबारक खाँ, जो उसका प्रधान कार्यकर्ता था, डेढ सहस्र सेना के साथ मुहिब्ब-अली खाँ के पास चला आया। प्रकट मे इसका कारण यह था कि उस प्रांत के उपद्रवियो ने इसके पुत्र बेग ओगली का सुलतान के एक पार्श्ववर्ती से मनोमालिन्य करा दिया। उस मूर्ख ने बिना जाँच किए ही इसके वंश दमन करने का निश्चय किया। इससे उसकी मित्रता नही थी इसलिए सम्मान की रक्षा की आशंका से यह अलग हो गया। मुहिब्बअली खाँ ने उसके सामान आदि के लोभ में उसे अपने यहाँ

रख लिया और दूसरी शक्ति बढ़ाकर भक्कर का घेरा करता रहा। यह तीन वर्ष तक चलता रहा। दुर्ग में अन्नकष्ट हो गया और महामारी फैली। विचित्र संयोग था कि उसी ओर सूजन की बीमारी भी आ पहुँची। जो कोई सिरिस के वृक्ष की छाल का काढ़ा पीता अच्छा हो जाता। वह सोने की तरह बिकता था। अंत में सुलतान महमूद ने अकबर से प्रार्थना की कि दुर्ग शाहजादा सलीम को भेंट कर दूँगा पर मेरे तथा मुहिब्बअली खाँ के बीच वैमनस्य हो गया है इसलिए उससे हानि पहुँचने के भय से निश्चित नहीं हूँ किसी दूसरे को नियत करें कि उसे सौंप कर दरबार में उपस्थित होऊँ। अकबर ने सुलतान की प्रार्थना पर उस प्रांत के शासन पर मीर गेसू बकावलबेगी को नियत किया और वह अभी वहाँ पहुँचा भी न था कि सुलतान बीमार होकर मर गया। कहते हैं कि मुहिब्बअली खाँ ने सुलतान महमूद की बीमारी का समाचार पाते ही पत्र लिखा कि योग्य हकीम साथ में है और यदि कहे तो दवा करने को भेज दूँ। सुलतान ने उसी पत्र पर यह लिखा। शैर—

शत्रु के हकीमों से पीड़ा का छिपा रहना ही अच्छा है।
गैब के कोषागार से कहीं दवा न हो जाय।

जब मीर गेसू उस सीमा पर पहुँचा तब मुजाहिद खाँ दुर्ग गजाव के घेरे में दत्तचित्त था। इसकी माँ तथा मुहिब्बअली खाँ की पुत्री सामेआ बेगम ने मिर्जा का आना सुनकर क्रुध हो युद्ध के लिए कुछ नावें भेज दी जिससे इसे बहुत कष्ट हुआ और नजदीक था कि मीर कैद हो जावे। ख्वाजा मुकीम हरवी ने, जो अमीनी के काम से उस ओर गया था, मुहिब्बअली खाँ को इस अनुचित युद्ध से रोका। मीर गेसू सन् ९८१ हि० में दुर्ग में पहुँचा और वहाँ के आदमियों ने, जो प्रतीक्षा ही में थे, दुर्ग की कुंजी सौंप दी। मुहिब्बअली खाँ तथा मुजाहिद खाँ लालच के मारे उस प्रांत से मन न हटा सके और विना आज्ञा वहाँ ठहरना भी कठिन था इसलिए सुलह की बातचीत करने लगे। अंत में मीर गेसू ने निश्चय किया कि मुजाहिद खाँ ठट्टा की ओर जाय और मुहिब्बअली खाँ अपने सामान के साथ लोहरी कस्बे में ठहरे। जब यह काम हो गया तब मीर ने काफी सेना नावों में बैठाकर मुहिब्बअली खाँ पर भेजी, जिसका सामना करने का साहस न कर वह मन्हीला की ओर चला गया। सामेआ बेगम हवेली दृढ़ कर एक दिन रात्रि सामना करती रही। इसी बीच मुजाहिद खाँ धावा करता हुआ आ पहुँचा और शत्रुओं को परास्त कर तीन मास और नदी के इस पार अधिकृत रहा।

जब तर्सून खाँ भक्कर में नियत हुआ तब मुहिब्बअली खाँ दरबार चला आया। २१ वें वर्ष में बादशाह ने मुहिब्बअली खाँ को अनुभवी तथा योग्य समझकर अच्छा खिलअत देकर आज्ञा दी कि वह बराबर प्रजा की आवश्यकताएँ तथा

दरबार में जो कुछ मसलहतपूर्ण विचार होते हों उन्हें अपने स्थान से सुनाया करे। मुहिब्बअली योग्य मुसाहिब तथा अनुभवी था अतः बादशाह ने २३ वें वर्ष में चुने हुए चार बड़े कामों में से एक पर इसे नियत किया। ये चार काम दरबार के मीर अर्ज का मसब, खिल्वत खाने की सेवा, दूर के प्रांतों की अध्यक्षता तथा दिल्ली नगर का शासन थे। परिश्रम करने की शक्ति उसके शरीर में कम थी इसलिए न्यायपूर्ण तथा आज्ञाकारिता के मार्ग से हटकर आराम के कामों में लगा रहता। यह सन् ९८९ हि० में दिल्ली का शासन करते हुए मर गया यद्यपि तबकाते अकबरी के लेखक ने इसे चार हजारी मंसबदारों में लिखा है पर शेख अबुल्फज्ल ने इसे चार हजारी की सूची ही में रखा है।

भक्कर नाम एक दुर्ग का है जो पुराने समय का है। पुराने लेखों में इसका नाम मंसूरा लिखा मिलता है। उत्तर की छहों नदियाँ मिलकर इसके बस्ती में जाती है। बस्ती का दो भाग दक्षिण का और एक उत्तर का सक्खर के नाम से नदी के किनारे पर बसा है। दूसरी बस्ती लोहरी के नाम से प्रसिद्ध है। ये मिले सिंध प्रांत में हैं। ठट्टा के स्वामी मिर्जा शाह हुसेन अर्गून ने नए सिरे से इसे अच्छा दुर्ग बनवा कर अपने धायभाई सुल्तान महमूद को वहाँ का अध्यक्ष नियत किया। सुल्तान महमूद की भक्कर में मृत्यु पर, जो अत्याचारी तथा दीवान था, मिर्जा ईसा तर्खान ठट्टा में अपने नाम खुतबा तथा सिक्का प्रचलित कर कभी संधि से और कभी शत्रुता से समय व्यतीत करता था। जब ठट्टा के पहिले भक्कर अकबर के अधिकार में चला आया तब वह मुल्तान प्रांत में मिला दिया गया।

•

५५७. मुहिब्बअली खाँ रोहतासी

यह अकबर के राज्यकाल का चार हजारी मंसबदार था। यह उदारता तथा साहस में प्रसिद्ध था और सैन्य-संचालन तथा सेनापतित्व में विख्यात था। यह बहुत दिनों तक रोहतास दुर्ग का अध्यक्ष रहने से रोहतासी प्रसिद्ध हो गया। यह दुर्ग बिहार प्रांत में हिंदुस्तान के उच्चतम दुर्गों में से है, कारीगरी की दृष्टि से प्रशंसनीय, टूटने की शंका से सुरक्षित, पर्वत की ऊँचाई आकाश तक दुर्गम, घेरा चौदह कोस और लंबाई चौड़ाई पांच कोस से कम नहीं है। समतल भूमि से दुर्ग की सतह तक एक कोस ऊँचा है, जिसपर युद्ध होता है। उसपर बहुत से तालाब हैं। विचित्र यह है कि ऊँचाई पर चार पांच गज खोदने पर मीठा पानी निकल आता है। इस दुर्ग के बनने के आरंभ ही से कोई भी बादशाह उस-

पर अधिकृत न हो सका था। राजा चिंतामणि ब्राह्मण के समय में सन् ९४५ हि० में जब हुमायूँ ने बंगाल पर विजय प्राप्त किया तब शेरशाह सूर बंगाल के सभी अफगानों तथा कोष को लेकर झारखंड के मार्ग से रोहतास आया और राजा से पुराने उपकारों का स्मरण दिलाकर मित्रता कर ली। साथ ही प्रार्थना किया कि आज हम पर आपत्ति पड़ गई है इसलिए चाहता हूँ कि मनुष्यता दिखलाओ और मेरे परिवार तथा साथियों को दुर्ग में स्थान दो तथा मुझे अपना कृतज्ञ बनाओ। इस प्रकार चापलूसी तथा चालाकी से उस सीधे राजा से अपनी बात स्वीकार करा लिया। दूसरों के राज्य के भूखे (शेरशाह) ने छ सौ डोली तैयार कराई और प्रत्येक में दो सशस्त्र जवानों को बैठा दिया। डोलियों के चारों ओर दासियाँ घूमती रहीं। इस बहाने सेना भीतर पहुँचा कर उसने दुर्ग को अधिकार में ले लिया। अपने परिवार तथा सेना को दुर्ग में छोड़कर उसने युद्ध की तैयारी की तथा बंगाल का मार्ग बंद कर दिया। इसके बाद फिर यही दुर्ग फत्ह खाँ टूनी के हाथ पड़ा, जो उसके तथा उसके पुत्र सलीमशाह के बड़े सर्दारों में से था। इसने दुर्ग की दुर्भेद्यता के कारण सुलेमान खाँ किर्रानी से, जो बंगाल का शासक बन चुका था, सामना तथा युद्ध किया। कुछ दिन बाद जुनैद किर्रानी ने इसपर अधिकार कर अपने एक विश्वासी सर्दार सैयद मुहम्मद को सौंप दिया। जब उसका काम पूरा हुआ तब उस सैयद ने कैद की डर से वहाँ का प्रबंध किया परंतु उचित सहायता के अभाव में अपने ऊपर आशंका करने लगा कि दर्बार के किसी विश्वासी सर्दार के द्वारा यह दुर्ग भेटकर उस साम्राज्य का सर्दार बन जावे। इसी समय बिहार प्रांत की सेना के साथ मुजफ्फर खाँ ने चढ़ाई की। इसने मेल की इच्छा से शहबाज खाँ कंबू से प्रार्थना की जिसने उस समय राजा गजपति को बहुत दंड देकर भगा दिया था और उसके पुत्र श्रीराम को दुर्ग शेरगढ में घेर लिया था। उसने फुर्ती से आकर सन् ९८४ हि० २१ वें वर्ष में दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उसी वर्ष वह आज्ञानुसार वहाँ की अध्यक्षता मुहिब्बअली खाँ को सौंपकर दर्बार चला गया। तब से यह बराबर वर्षों तक वहाँ का योग्यता से तथा न्यायपूर्वक प्रबंध करता रहा और सदा योग्य सेना के साथ बंगाल के सहायकों में रहा। वहाँ के उपद्रव को जड़ से खोद डालने में यह बराबर प्रयत्नशील रहता था। इसका पुत्र हबीब अली खाँ साहसी युवक था और पिता का प्रतिनिधि होकर रोहतास तथा आस पास के प्रांत का प्रबंध करता था। जब बिहार प्रांत के अधिकतर जागीरदार बंगाल में सेवा के लिए चले गए तब ३१ वें वर्ष में यूसुफ मत्ता ने कुछ अफगान एकत्र कर लूटमार आरंभ कर दिया। हबीबअली खाँ ने यौवन के उत्साह में ठीक प्रबंध न होते युद्ध की तैयारी की और बहुत वीरता दिखला कर मारा गया। मुहिब्बअली खाँ यह अशुभ समाचार सुनकर पागल हो गया। इसने बहुत घबड़ाहट

दिखलाई पर बंगाल के सर्दारों ने नहीं छोड़ा। जब शाहकुली खाँ महरम दरबार को जा रहा था उसी समय उस उपद्रवी को दंड देने के लिए नियत होकर उसने थोड़े समय में उस अशान्ति को मिटा दिया। जब ३१ वें वर्ष में हर प्रांत के शासन पर दो अच्छे सर्दार नियत किए गए कि यदि एक दरबार आवे या बीमार हो जावे तो दूसरा वहाँ का कार्य देखे तब बंगाल के अध्यक्ष वजीर खाँ तथा मुहिब्बअली खाँ नियत हुए। ३३ वें वर्ष में विहार प्रांत पर राजा भगवंतदास नियत हुआ तब इसकी जागीर कछवाहा को वेतन में मिल गई। मुलतान इसे जागीर में देने के विचार से इसे आज्ञापत्र लिखा गया। ३४ वें वर्ष के आरंभ में दरबार पहुँचने पर इसकी इच्छा पूरी हुई और इसपर कृपाएँ हुईं। जब इसी वर्ष सन् ९९७ हि० में बादशाह पहिली बार कश्मीर गए तब यह भी साथ गया। उस नगर में इसके मिजाज में कुछ फर्क आ गया और लौटते समय कोह सुलेमान के पास इसकी मृत्यु हो गई। एक दिन पहिले अकबर ने इसके पड़ाव पर जाकर इसका हाल भी भी पूछा था। कहते हैं कि उसी हालत में जब प्राण निकल रहा था और बोलने मे कष्ट हो रहा था तब किसी ने कहा कि 'लाइल्ला अल्लल्लाहो' कहो। इसने उत्तर दिया कि अब समय लाइल्ला कहने का नहीं है, समय वह है कि कुल हृदय अल्लाह में लगा दे।

•

५५८. मूसवी खाँ मिर्जा मुइज

यह सैयदुस्सादात मीर मुहम्मद जमाँ मशहदी का दौहित्र था, जो उस स्थान के विद्वानो का अग्रणी था। यह यौवनकाल मे अपने पिता मिर्जा फखरा से, जो कुम के मूसवी सैयदो में से था, क्रुद्ध होकर राजधानी इस्फहान चला आया, जो विद्वानों तथा गुणियो का केंद्र है। अल्लामी आका हुसेन ख्वानसारी की सेवा में रहकर यह विद्याध्ययन करते हुए अपनी बुद्धिमानी तथा प्रतिभा से शीघ्र विद्वान हो गया। सन् १०८२ हि० मे यह हिंदुस्तान चला आया।

इसका भाग्य इसके अध्यवसाय के समान ऊँचा था इसलिए औरंगजेब की कृपा हो जाने से यह योग्य मंसब पाकर सम्मानित हो गया तथा शाहनवाज खाँ सफवी की पुत्री से, जो शाहजादा मुहम्मद आजमशाह की मौसी थी, निकाह हो गया। कहते हैं कि हसन अब्दाल मे ठहरने के समय एक दिन मिर्जा को शेख अब्दुल् अजीज से विद्या तथा वैद्यक संबंधी वाद विवाद करने का सौभाग्य मिला और खूब देर तक होता रहा। शेख ने कहा कि तुम्हारे पास इन पर किसका प्रमाण

है। इसने कहा कि शेर बहाउद्दीन मुहम्मद का है। उसने कहा कि मैंने शेर पर कई स्थानों पर आक्षेप किया है। मीर ने उत्तर दिया कि वर्णमाला उसका सेव्य होगा। यहाँ तक विवाद बढ़ा कि शेख आपे से बाहर होकर बोला कि तुम सुन्नी लोग लोथ को नहलाते समय गज करते हो, इसका क्या कारण है? मीर ने मुस्किरा कर कहा कि लाहौर में इस बात को एक कंचनी के भँडुए ने पूछा था या आज तुमने पूछा है। संक्षेपतः आरंभ में यह पटना-विहार प्रांत का दीवान नियत हुआ पर वहाँ के प्रांताध्यक्ष बुजुर्ग उम्मेद खाँ से मेल ठीक न बैठा और आपस में कहा सुनी हो गई। उक्त खाँ अपने उच्च वंश तथा अमीरुल्उमरा शायस्ता खाँ के संबंध से तना था और दूसरे में रक्षा कम से कम देखता था। मीर बादशाह से संबंध रखते और अपनी विद्वत्ता के कारण अपने को कुछ समझकर तना रहता। कोई दबना नहीं चाहते थे और एक दूसरे की बुराई बादशाह को लिखता। मिर्जा मुइज दरबार बुला लिया गया। ३२ वें वर्ष में इसे मूसवी खाँ की पदवी मिली और मोतमिद खाँ के स्थान पर दीवान नियत हुआ। उक्त खाँ मितव्ययिता की दृष्टि से नए भर्ती हुए मंसबदारों से मुचलका लेता कि याददाश्त बनने के बाद जागीर पाने तक के समय का वेतन न माँगें और जागीर बदली जाने पर दूसरी के मिलने तक के बीच का हिसाब लिखा रहे। जब इसकी यह बदनामी प्रसिद्ध हुई तो उसे दूर करने के लिए यह प्रयत्न किया कि जागीरी वेतन मिलने तक यह नए सेवक को बिना उसके प्रार्थनापत्र दिए कहीं नियत नहीं करता था। कहते हैं कि पुराने समय में बहुधा जागीरदारी के हिसाब में भी मन्सबदारों के जिम्मे सरकारी रुपया निकलता था, जिसके लिए सजावल नियत होते थे और उन्हें कुछ देकर बहाने करते थे। दक्षिण की चढ़ाई में कोष की कमी, राजकर के कम वसूल होने तथा वेतन देने की अधिकता से, विशेषकर नए दक्खिनी नौकरों को, यहाँ तक काम पहुँचा कि मूसवी खाँ के मुचलकों के होते भी बहुत सा वेतन मंसबदारों का सरकार में निकला। इस कारण मंसबदारों ने हिसाब माँगा पर किसी ने कुछ नहीं दिया। इसी समय यह जाब्ता नष्ट हो गया। ३३ वें वर्ष में मूसवी खाँ हाजी शफीअ खाँ के स्थान पर दक्खिन का दीवान हुआ। ३४ वे वर्ष सन् ११०१ हि० में यह मर गया। 'कुजा शुद मूसवी खाँ' (मूसवी खाँ कहाँ हुआ) में मृत्यु की तारीख और 'अफजल औलाद जमान.' (समय का बड़ा संतान) से पैदा होने की तारीख निकलती है। अच्छी कल्पना तथा सुकुमार भाव में कुशल और अच्छे लेखन कला तथा मर्मज्ञता में निपुण था। आरंभ में अभ्यास करते समय 'फितरत' उपनाम रखता पर बाद में 'मूसवी' रखा। उसके एक शेर का आशय निम्नलिखित है—

> हमारी घबड़ाहट दोषों के मार्ग में रुकावट हो गई।
> नंगेपन ने दामन के कलुषित होने पर निगाह रखी॥

५५९. मूसवी खाँ सदर

कहते हैं कि यह मशहद के सैयदों मे से था तथा सैयद यूसुफ खाँ रिजवी के पास का संबंध रखता था। जहाँगीर के समय मे बादशाही परिचय प्राप्त कर १५वें वर्ष मे आबदार खानः का दारोगा नियत हो गया। क्रमशः सदर कुल के पद तथा दो हजारी ५०० सवार के मसब तक पहुँच गया। जहाँगीर की मृत्यु पर यमीनुद्दौला का साथ देने के कारण शाहजहाँ के प्रथम वर्ष में वह सदरकुल के पद पर बहाल हो गया और इसका मंसब तीन हजारी ७५० सवार का हो गया। ५ वें वर्ष चार हजारी ७५० सवार का मसब हो गया। १६ वें वर्ष जब बादशाह से प्रार्थना की गयी कि जैसा चाहिए यह कोई सामान उपयुक्त नही रखता है तब यह पद से गिरा दिया गया। १७–१८ वें वर्ष सन् १०५४ हि० में यह मर गया। इसके दो पुत्रों पर योग्य कृपा हुई। कहते हैं कि वे कुछ भी योग्यता न रखते थे। गुणियो का साथ करने तथा बातचीत से योग्यता प्राप्त कर ली थी।

•

५६०. मेहतर खाँ

हुमायूँ का एक दास अनीस नाम का था, जो कड़ा मानिकपुर से पकड़कर आया था और महल में दरबानी की सेवा पर नियत था। एराक जाते समय साथ और खजीनःदारी की सेवा इसे मिली थी। अकबर के १४वें वर्ष मे रणथम्भोर दुर्ग अधिकृत होने पर इसे सौपा गया। जब २१ वें वर्ष में कुंवर मानसिंह मेवाड़ नरेश राणा प्रताप को दमन करने गया तब मेहतर खाँ भी साथ मे नियत हुआ। युद्ध के दिन यह चंदावल नियुक्त किया गया। इसके बाद पूर्वी प्रांत सर्दारों की सहायता को नियत होकर इसने वहाँ अच्छी सेवा की। कुछ दिन बाद यह राजधानी आगरा में नियत हुआ। तीन हजारी ३००० सवार का मंसब पाकर जहाँगीर के ३रे वर्ष सन् १०१७ हि० में यह मर गया। इसकी अवस्था चौरासी वर्ष की थी। इसकी सिधाई बहुत प्रसिद्ध है। कहते हैं कि आगरे के शासन के समय सौदागरो का एक काफला नगर के बाहर उतरा हुआ था, जिनके ऊँटों को चोर ले गए। जब यह बात खाँ ने सुनी तब उस स्थान पर आकर दाएँ बाँएँ देखा और कहा कि मिल गया, एक दिन बाद कुछ लोगों ने पूछा कि क्या पाया? उत्तर दिया कि यह काम चोरों का है। पड़ोसियों को इकट्ठा कर बक झक करते हुए कहा कि आज रात्री की मुहलत देता हूँ। इसी कुंजखाने में रहो और यदि कल ऊँट न मिले तो दंड

दिया जायगा। सादगी के साथ प्रकृति भी अच्छी थी। सैनिकों को प्रतिमास वेतन दे देता था। साहस तथा वीरता से खाली नहीं था। वास्तव में यह कायथ जाति का था इससे उस जाति की पक्षपात करता था। इसके पुत्र मूनिस खाँ को जहाँगीर के राज्यकाल में पाँच सदी १३० सवार का मंसब मिला था। मेहतर खाँ का पौत्र अबूतालिब उसी राज्यकाल में बंगाल का कोषाध्यक्ष था। कहते हैं कि वहाँ के सूबेदार कासिम खाँ से एक दिन दरबार में अबूतालिब ने बहाने से कहा कि नवाब को मेरे पद का हाल ज्ञात है। आरंभ में काशिम खाँ भी उस प्रांत का खजांची था इससे यह सुनकर परेशान हो दरबार से उठ गया। आदमियों ने अबूतालिब से कहा कि यह बात तूने क्यों कही, नहीं जानता कि पहिले नवाब भी इसी पद पर रहे। दूसरे दिन आकर दरबार मे प्रार्थना की कि बंदे को कुछ भी नहीं मालूम था कि नवाब भी पहिले इसी पद पर रहे। काशिम खाँ ने खिजलाकर कहा कि यह तुम्हारे दादा का असर है।

●

५६१. मेहदीकासिम खाँ

यह पहिले बाबर के तृतीय पुत्र मिर्जा अस्करी की सेवा में नियत था, और विश्वसनीय तथा सम्मानित भी था। एक ही स्त्री का दूध पीने के कारण मिर्जा इस पर कृपा रखता था। इसका भाई गजनफर कोका था। हुमायूँ गुजरात विजय के अनंतर मिर्जा अस्करी को अहमदाबाद देकर माडू लौट गया तब एक दिन मिर्जा ने शराब की मजलिस में मस्ती से कहा कि हम बादशाह हैं और ईश्वर की यही कृपा है। गजनफर ने धीरे से कहा कि मस्ती और अपने आप नष्ट होना। साथ बैठने वाले मुस्किराने लगे। मिर्जा ने क्रोध से गजनफर को कैद कर दिया। जब इसे छुट्टी मिली तब यह गुजरात के शासक सुल्तान बहादुर के पास पहुँचा, जो दीप बंदर को चला गया था और उससे कहा कि हम मुगलों के विचार से अभिज्ञ हैं, वे भागने को तैयार हैं। इस बहाने से अहमदाबाद जाना हुआ और सुल्तान ने सेना एकत्र कर पुनः उस प्रांत पर अधिकार कर लिया।

साथही इसके अनंतर मेहदी कासिम खाँ ने हुमायूँ की सेवा मे नियत होकर बहुत सा अच्छा सेवा कार्य किया। अकबर के राज्यकाल में अच्छे पद का सर्दार हो गया और चार हजारी मंसब पाकर सम्मानित भी हुआ। १० वें वर्ष में आसफ खाँ अब्दुल्मजीद, जो खानजमाँ का पीछा करने पर नियत हुआ था, सशंकित होकर विद्रोही हो बैठा और गढ़ा कंटक से, जहाँ का शासक नियत हुआ था,

भाग, गया। अकबर ने ग्यारहवें वर्ष के आरंभ सन् ९७३ हि० में जौनपुर से आगरा लौटने पर मेहदी कासिम खाँ को उस प्रांत का शासक नियत किया कि वहाँ का प्रबंध ठीक कर आसफ खाँ को हाथ में लावे, जिसने ऐसा बड़ा दोष किया। उक्त खाँ ने बड़ी दृढता तथा धैर्य के साथ इस कार्य मे हाथ लगाया। आसफ खाँ ने बादशाही सेना के पहुँचने के पहिले ही सहस्रो शोक तथा पश्चात्ताप के साथ उस प्रांत को छोड़कर जंगलो में भाग गया। मेहदी कासिम खाँ ने वहाँ पहुँच कर आसफ खाँ का पीछा किया। वह अदूरदर्शिता से खानजमाँ के पास पहुँचा तब मेहदी कासिम खाँ वहाँ से लौटकर अपने प्रांत का शासन करने लगा। यद्यपि बिना किसी झंझट या कष्ट के उस प्रांत का शासन इसे मिल गया था पर उसकी विशालता तथा खराबी के कारण यह कुछ कार्य नही कर सका। दु:ख और अधैर्य के कारण इसी वर्ष के बीच में यह अप्रकृतिस्थ हो उठा और इसका मस्तिष्क बिगड गया। बादशाही आज्ञा बिना लिए ही यह दक्षिण प्रात छोडकर हज्ज को चला गया और वहाँ से एराक होता कंधार आया। १३ वे वर्ष के अत में रतभँवर दुर्ग के घेरे मे यह लज्जा तथा पश्चात्ताप करता हुआ सेवा में पहुँचा और एराक का सामान तथा क्रीत वस्तुएँ भेट मे दी। इसकी पुरानी सेवाएँ विश्वास का कारण थी इसलिए बादशाह अकबर ने शील से इस पर बहुत कृपा की और वही ऊँचा पद तथा लखनऊ और उसकी सीमाओ की जागीरदारी देकर सम्मानित किया। इसके बाद का हाल मालूम नही हुआ।

●

५६२. मेह अली खाँ सिल्दोज

यह एक हजारी सर्दार था। अकबरी राज्य के ५ वे वर्ष के अंत मे अहमद खाँ के साथ, मालवा विजय करने पर नियत होकर बाज बहादुर से युद्ध करने में इसने बहुत प्रयत्न किया। १७ वें वर्ष में मीर मुहम्मद खाँ खानकलाँ के साथ गुजरात को आगे भेजी गई सेना मे यह भी गया था। मुहम्मद हुसेन मिर्जा के युद्ध मे यह हरावल के सर्दारो में से था। इसके अनंतर कुतुबुद्दीन मुहम्मद खाँ के साथ उक्त मिर्जा का पीछा करने गया। २२ वें वर्ष मे जब अकबर शिकार खेलने के लिए हिसार को चला तब इसने पड़ाव की कुल तैयारी की थी। २३ वें वर्ष मे सकीना बानू बेगम के साथ, जो मिर्जा हकीम की प्रार्थना पर काबुल जा रही थी, यह भेजा गया था। २४ वें वर्ष में राजा टोडरमल की अधीनता में अरब बहादुर को दंड देने पर नियत हुआ, जिसने पूर्व के प्रांत मे उपद्रव मचा रखा था। अच्छी सेवा के कारण इसका सम्मान भी हुआ। आगे का हाल ज्ञात नही हुआ।

●

६३. मोतकिद खाँ मिर्जा मक्की

यह दफ्तरखार खाँ का पुत्र था, जो बंगाल में जहाँगीर के समय ६ठे वर्ष में उसमान खाँ लोहानी के युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाकर मारा गया था। मिर्जा ने भी इस युद्ध में बहुत प्रयत्न किया था। ये दोनों पिता-पुत्र तीर चलाने में प्रसिद्ध थे। पिता की मृत्यु पर सौभाग्य से इसने युवराज शाहजहाँ का साथ दिया और अपनी सेवा तथा बराबर साथ रहने से कृपापात्र होकर उसका विश्वासपात्र हो गया। कहते हैं कि शाहजहाँ का इसका एक स्त्री के दूध पीने का संबंध था।

जब शाहजादा पहिली बार दक्षिण का प्रबंध ठीक करने गया और अफजल खाँ तथा विक्रमाजीत, जो शाहजहाँ के अच्छे सर्दारों में से थे, आदिलशाह बीजापुरी को समझा कर मार्ग पर लाने के लिए भेजे गए तब मोतकिद खाँ वयूतात के दीवान जादोदास के साथ हैदराबाद भेजा गया कि वहाँ के सुल्तान कुतुबशाह को समझाकर शाहजादे की अधीनता स्वीकार करने को कहें। यह शीघ्रता से अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच कर कुतुबशाह से बड़ी नम्रता तथा विश्वास से मिलकर और पंद्रह लाख रुपए भेंट रत्न, प्रसिद्ध भारी हाथी और अच्छे सामान लेकर लौट आया। इसकी इस अच्छी सेवा के कारण दरबार से प्रशंसा हुई और विश्वास बढ़ा। शाहजहाँ की असफलता के समय, जो संसार की अकृपा से किसी प्रकार लाभदायक नहीं होता, यह अपने हार्दिक सत्यता तथा स्वामिभक्ति से, जो अच्छे गुणों के सिरमौर हैं, अपने वास्तविक स्वामी का साथ छोड़ना उचित न समझकर शाहजहाँ का कभी साथ नहीं छोड़ा। यहाँतक कि आश्चर्यजनक जमाने ने शीघ्र ही दूसरा बाग सजा दिया और शाहजहाँ के ऐश्वर्य के बहार में फूल खिल उठा। सन् १०३७ हि० में जहाँगीर की मृत्यु हो गई और शाहजहाँ दक्षिण जुनेर से आकर १७ रबीउल् आखिर को काँकड़िया तालाब पर उतरा, जो अहमदाबाद गुजरात के बाहर है। उस प्रांत का प्रबंध उस समय शेर खाँ तोनूर को सौंपा गया। राजधानी में पहुँचने और राजगद्दी पर बैठने के पहिले ही मोतकिद खाँ को चार हजारी २००० सवार का मंसब देकर औरों के साथ अहमदाबाद में छोड़ा। २ रे वर्ष यह अजमेर का फौजदार नियत हुआ। इसके अनंतर यह मालवा का सूबेदार बनाया गया। ५ वें वर्ष उस प्रांत का शासन नसरत खाँ खानदौराँ को मिला और यह राजधानी के चारों ओर की भूमि का फौजदार नियत हुआ। उसी वर्ष उड़ीसा के प्रांताध्यक्ष बाकर खाँ नजमसानी के विरुद्ध दोष लगाया गया कि वह प्रजा के साथ अच्छा सलूक नहीं करता। मोतकिद खाँ मंसब में सवारों के बढ़ाए जाने पर उड़ीसा का सूबेदार बनाकर भेजा गया।

विचित्र घटना यह है कि बाकर खाँ ने कुछ काम कर बहुत धन वसूल कर लिया था, जिसमें प्रत्येक बदनामी के लिए काफी था। वह चाहता था कि सब को

छिपा डालें। उस ओर के जमींदारों को देशमुखो, देशपांडों तथा मुकद्दमों द्वारा इकट्ठा कर जिनसे उपद्रव होने की आशंका हुई उन्हें कैद कर दिया। इनमें से एकबार ही सात सौ आदमियों को मारने की आज्ञा दे दी। दैवयोग से इन दंडितों में से एक भाग कर दरबार पहुँचा और वाकर खाँ के नाम चालीस लाख रुपया निकाल कर सूची दिया। इसी समय इस मुकद्दमे की जाँच भी मोतकिद खाँ को दी गई। संयोग से वाकर खाँ का दामाद मिर्जा अहमद, जो उस प्रांत का बख्शी होकर उसके साथ था, एक दिन इलाहाबाद से नाव में बैठ कर जा रहा था और इसने बहाने से उक्त सूची निकाल कर उस जमींदार से पूछना आरंभ किया। सूची देखने के बहाने उसके हाथ से लेते समय मिर्जा अहमद ने फुर्ती से उस जमींदार पर तलवार का ऐसा हाथ मारा कि उसका सिर कट कर नदी में जा गिरा और सूची को फाड़ कर जल में डाल दिया। इसके बाद मोतकिद खाँ से कहा कि तुम्हारी राजभक्ति के कारण ऐसा कार्य हुआ क्योंकि तुम्हारे नाम भी इसी प्रकार की सूची यह तैयार करता। मोतकिद खाँ ने इसे पसंद किया पर कुछ दिन बादशाह की ओर से दंडित रहा।

मोतकिद खाँ एक मुद्दत तक उस प्रांत मे न्याय करने, अधीनों पर कृपा तथा उपद्रवियों को दमन करने में व्यतीत कर दरबार आया और फिर १९ वें वर्ष में उसी प्रांत का शासक नियत हुआ। २२ वें वर्ष में यह दरबार बुला लिया गया। इसी समय जब जौनपुर का हाकिम आजम खाँ मर गया तब उस सरकार का प्रबंध मोतकिद खाँ को मिला। उक्त खाँ मार्ग ही मे लौट कर अमरसर की ओर रवान' हुआ। वृद्धता के कारण काम न कर सकने से २५ वें वर्ष १२ जीकदा सन् १०६१ हि० को शाहजहाँ को सूचना मिली कि वह जौनपुर के इर्द गिर्द अधिकार नहीं रख सकता। इसपर वह ताल्लुका मुराद काम सफवी के नाम लिख गया। दैवयोग से वह भी उसी तारीख को जौनपुर मे मर गया।

•

५६४. मोतमिद खाँ मुहम्मद सालह खवाफी

यह आरंभ में बादशाही तोपखाने का अध्यक्ष था और योग्य मंसब पा चुका था। शाहजहाँ ने कामों में इसकी योग्यता तथा सुप्रबन्ध देख कर २४ वें वर्ष इसे सेना का कोतवाल नियत किया तथा मंसब बढा दिया। २५ वें वर्ष में यह लाहौर का कोतवाल नियत हुआ। इसके बाद सुलतान मुहम्मद औरंगजेब के साथ कंधार की चढाई पर गया। २६ वें वर्ष में सुलतान दाराशिकोह के साथ फिर उसी चढाई

में इसने अच्छा प्रयत्न किया था इसलिए २८ वें वर्ष में राय मुकुंद के स्थान पर, जो अवस्था अधिक होने से यथोचित कार्य नही कर सकता था, इसे बयूतात का दीवान नियत कर दिया तथा इसे मंसब मे तरक्की, खिलअत और सोने का कलमदान भी दिया। इसी वर्ष के अंत में इनका मंसब बढ़कर एक हजारी २०० सवार का हो गया और मोतमिद खाँ की पदवी पाकर बयूतात की दीवानी से हटाए जाने पर सुलतान दाराशिकोह का दीवान शेख अब्दुल्करीम के स्थान पर नियत हुआ, जो वृद्ध होने के कारण काम नहीं कर सकता था। २९ वें वर्ष में मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी २०० सवार का हो गया। इसके अनंतर जब जमाना बदल गया और सुलतान मुहम्मद औरंगजेब बहादुर दक्षिण से अपने पिता से मिलने के लिए दरबार चला तथा सामूगढ़ के पास उससे तथा सुलतान दाराशिकोह से युद्ध हुआ तब उसी मारकाट में यह, जो दाराशिकोह की ओर से वजीर खाँ की पदवी पा चुका था, सन् १०६८ हि० में मारा गया।

•

५६५. मोतमिनुद्दौला इसहाक खाँ

इसका पिता शुस्तर से हिंदुस्तान आकर दिल्ली में रहने लगा और बादशाह मुहम्मद शाह के समय में बादशाही सेवा में भर्ती होकर गुलाम अली खाँ की पदवी से सम्मानित हुआ। यह बकावल के पद पर नियत हुआ। उक्त सज्जन हिंदुस्तान में पैदा हुआ था और अवस्था प्राप्त होने पर योग्य भी हुआ। मुहम्मद शाह के समय यह खानसामाँ नियत हुआ और विश्वासपात्र हो गया। २२ वें वर्ष सन् ११५२ हि० में यह मर गया। शैर कहता था। इसके एक शैर का अर्थ इस प्रकार है—

इस कारण कि हमारे तंग दिल में उस गुल का ख्याल था।
आज की रात स्वप्न हमारा नकीर और बुलबुल दूत था॥

इसने तीन पुत्र छोड़े। पहिला मिर्जा मुहम्मद अपने पिता के समान ही मुहम्मद शाह का विश्वास-पात्र होकर अपने बराबर वालों की ईर्ष्या का पात्र हो गया था। इसे पहिले इसहाक खाँ और अंत में नज्मुद्दौला की पदवी मिली। यह चौथा बख्शी नियत हुआ। मुहम्मद शाह ने इसकी बहिन का निकाह सफदर जंग के पुत्र शुजाउद्दौला से करा दिया। मुहम्मद शाह की मृत्यु के बाद अहमद शाह के समय भी यह बख्शी रहा। साथ में यह दिल्ली का करोड़ी भी हुआ, जो सीर से प्राप्त होती थी। जब सफदर जंग का बंगश अफगानों से, जो दिल्ली प्रांत के उत्तर-

पूर्व में थे, झगडा हुआ और माली तथा सन्नावर कस्बों के बीच में युद्ध ; तथा सफदर जंग हार गया तब नज्मुद्दौला उसके साथ रहकर सन् ११६३ हि० में ता दिखलाते हुए मारा गया। मोतमिनुद्दौला के अन्य दो पुत्र मिर्जा ी इफ्तखारुद्दौला और मिर्जा मुहम्मद अली सालारजंग आलमगीर द्वितीय के साथ दिल्ली से सफदर जंग की सेना की ओर चल दिए। दैवात् इसी समय सफदर जंग की मृत्यु हो गई और ये दोनो भाई सन् ११६८ हि० में अवध नगर में शुजाउद्दौला के पास पहुँचे। इसके बाद सालारजंग को शाह आलम की ओर से बख्शी तन का पद मिला।

०

५६६. यक्कः ताज खाँ अब्दुल्ला बेग

यह बल्ख के हाजी मंसूर का पुत्र था, जो बुद्धिमान तथा अनुभवी था और बल्ख-बदख्शां के शासक नज्र मुहम्मद खाँ का एक सर्दार था। उक्त खाँ ने १२ वें वर्ष मे इसको कुछ भेंटो के साथ शाहजहाँ के पास राजदूत बनाकर भेजा। दरबार से इसे पचास सहस्र रुपए नगद तथा अन्य वस्तुएँ पुरस्कार मे मिली और इस शाही कृपा के साथ इसे जाने की छुट्टी मिली। इसके पुत्र गण भी साथ में थे और प्रत्येक योग्य उपहार पाकर अपने देश लौटे। जब शाहजादा मुराद बख्श के प्रयत्नों से बदख्शाँ और बलख बादशाही अधिकार में चला आया और नज्र मुहम्मद खाँ जंगल मे भटकने लगा उस समय हाजी मंसूर तर्मिज दुर्ग का अध्यक्ष था। अपने पुत्रों की भलाई तथा सौभाग्य के लिए इसने मुहम्मद मंसूर तथा अब्दुल्ला बेग को शाहजादे की सेवा मे भेजकर अधीनता प्रकट की। उस समय बादशाह की ओर से एक पत्र खिलअत के साथ एक विश्वासी आदमी द्वारा भेजा गया और जैन खाँ कोका का पौत्र सआदत खाँ तर्मिज की रक्षा पर नियत हुआ। इसने दुर्ग को उक्त खाँ को सौंपा दिया और दरबार पहुँचा। इसे एकाएक दो हजारी १००० सवार का मंसब तथा बल्ख के सदर का पद मिला। इसके पुत्रो को भी योग्य मंसब मिले। इसी समय इसका बडा पुत्र मुहम्मद मुहसिन बादशाही दरबार मे पहुँच गया। २१ वे वर्ष मे इसे एक हजारी ४०० सवार का मंसब मिला और यह बंगाल मे खाँ की पदवी के साथ नियत हुआ। २३ वे वर्ष में बहुत मदिरा पीने से इसकी मृत्यु हो गई। अब्दुल्ला बेग २१ वें वर्ष मे बल्ख से आकर सेवा मे उपस्थित हुआ और इसे खिलअत, जडाऊ खजर, मंसब मे उन्नति तथा पांच सहस्र रुपया पुरस्कार मे मिला। २४ वें वर्ष में पांच सदी बढने से इसका मंसब डेढ़ हजारी

५०० सवार का हो गया। २७ वें वर्ष मे मीर तुजुक का पद और मुखलिस खाँ की पदवी मिली तथा इसका मंसब बढ़ कर दो हजारी ८०० सवार का हो गया। शाहजहाँ के राज्य के अंत में महाराज जसवंत सिंह के साथ मालवा में नियत हुआ। दाराशिकोह की ओर से, जिसके हाथ मे साम्राज्य का सारा अधिकार था, संकेत मिला कि दक्षिण तथा गुजरात के शासक गण यदि दरबार जाने की इच्छा करें तो उन्हें आगे बढ़ने से रोके। जिस समय औरंगजेब की सेना नर्मदा पार कर आगरे की ओर बढ़ी तब राजा ने सेना का व्यूह ठीककर उज्जैन से सात कोस पर रास्ता रोका। घोर युद्ध हुआ। मुखलिस खाँ तूरान के नामी सैनिकों के साथ करावली में था। जब राजपूत सेना मारी गई तब राजा भागना ठीक समझ कर तथा लज्जा की कालिमा अपने मुख पर लगा कर घायल राजपूतो के साथ चला गया। बादशाही सर्दारो मे बहुतरे धीरे धीरे बाहर निकल गए। मुखलिस खाँ अन्य झुंड के साथ शत्रुओ से अलग होकर सौभाग्य से औरंगजेब की सेवा में चला आया।

इसके पहिले औरंगजेब के दक्षिण से रवान: होने के समय मुखलिस खाँ की पदवी काजी निजामाई कुर:रोदी को मिल चुकी थी इसलिए इसको यक. ताज खाँ की पदवी, तीन हजारी १५०० सवार का मंसब और बीस सहस्र रुपए पुरस्कार मे मिले। खजवा युद्ध के अनंतर जब शुजाअ परास्त होकर बंगाल की ओर भागा तब यह शाहजादा सुलतान मुहम्मद के साथ पीछा करने पर नियत हुआ। जब शाहजादा अदूरदर्शिता तथा मूर्खता से शुजाअ से जा मिला तब मुअज्जम खाँ ने जो इस चढ़ाई का प्रधान तथा बादशाही सेना का अध्यक्ष था, बरसात के बीतने पर पुराने पुल के पास, जो अकबर नगर (राजमहल) से चौबीस कोस पर है, गहरे नाले के पीछे ठहरना निश्चय किया और आध कोस की दूरी पर दो पुल उस नाले पर बाँधा। पुलो के उस ओर मोर्चे लगाकर उन्हें तोपो बंदूको आदि से दृढ किया। शुजाअ २रे वर्ष के रबीउल् आखिर में आकर सामने डट गया और गोले गोलियों की लड़ाई करने लगा। जब उसने देखा कि मुअज्जम खाँ के पास का पुल आग्नेयास्त्रों की अधिकता से दृढ है तब सुलतान मुहम्मद की हरावली मे दूसरे पुल की ओर बढा। यक: ताज खाँ अपने साथियो सहित वीरता तथा साहस से मोर्चा की रक्षा करने के लिए नदी के इस ओर आया। मुअज्जम खाँ ने यह सूचना पाकर जुल्फिकार खाँ को रुजानियो तथा रोजबिहनियो के साथ सहायता को भेजा। शुजाअ की ओर मकसूद बेग कदर अंदाज खाँ और सरमस्त अफगान मारे गए। इस ओर के यक: ताज खाँ अपने छोटे भाई के साथ मारा गया। अन्य बहुत से लोग भी इसमें मारे गए तथा घायल हुए।

५६७. यलंगतोश खाँ

औरंगजेब के राज्य के १४ वें वर्ष में तल्वार, जमधर और बर्छी पाकर सम्मानित हुआ। १९ वें वर्ष में विवाह के दिन इसे खिलअत, हीरे का सिरपेच, सोने के साज सहित घोड़ा और चाँदी के साज सहित हाथी मिला। २० वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी ७०० सवार का होगया। २५ वें वर्ष में अबू नस्र खाँ के स्थान पर कोरबेगी नियत हुआ। इसके अनंतर दंडित होकर २८ वें वर्ष में इसका मंसब फिर से बहाल हुआ और यह बख्तावर खाँ के स्थानपर खवासो का दारोगा नियुक्त हुआ। २९ वें वर्ष मे इसका पद व मंसब फिर छिन गया। इसके बाद का हाल नहीं मिला।

•

५६८. याकूत खाँ हब्शी

खुदावंद खाँ की दासता के कारण यह याकूब खुदावंद खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। योग्यता तथा साहस के कारण यह निजामशाही सरकार का एक उच्चपदस्थ सर्दार हो गया और मलिक अंबर के बाद इससे बढ़कर कोई सर्दार नहीं था प्रत्युत् चढ़ाई तथा सेना के प्रबंध में अंबर के जीवनकाल ही मे इसीका अधिकार रहता था। बादशाही साम्राज्य में कई बार इसने लूटमार किया और बुर्हानपुर को घेरा था। निजामशाह ने हमीद खाँ नामक हब्शी दास को अपना पेशवा बनाकर राज्य तथा कोष का कुल प्रबंध उसे सौंप दिया। अपनी स्त्री की चतुराई से जो प्रतिदिन लोगों की स्त्रियों को अपनी वाक्पटुता से भुलाकर उसके पक्ष में लाती थी, वह इतना आकर्षित तथा आसक्त हो गया था कि स्वयं नाम-मात्र के अधिकार से प्रसन्न होकर उसने कुल राज्यकार्य उस दल्लालः के हाथ में छोड़ दिया। एक बार आदिल शाह ने एक सेना निजामशाह की सीमा पर भेजी। उस स्त्री ने साहस तथा वीरता से सेना की सर्दारी की प्रार्थना कर नकाब डाल घोड़े पर सवार हुई और सामना कर बहुत से शत्रु पक्ष के सर्दारों तथा सैनिकों को मारकर तथा घायल कर सही सलामत लौट आई। आदमियों को बहुत सा धन बाँटा और क्रमशः यहाँ तक हो गया कि सेना के अध्यक्षगण तथा राज्य के अच्छे सर्दार लोग पैदल उसके साथ चल कर अपनी आवश्यकताओं को उससे कहते थे। याकूत खाँ प्रसिद्ध तथा अच्छी सेना रखने वाला सर्दार था, इसलिए इसने क्षुब्ध होकर निजामशाह की नौकरी छोड़कर बादशाही सेवा में आना उचित समझा। २१ वें वर्ष जहाँगीरी में पाँच सौ सवारों

के साथ जालनापुर के पास आकर राव रत्न हाड़ा को लिखा, जो बालाघाट का शासक था, कि मैं मलिक अंबर के पुत्र फत्हखाँ तथा अन्य निजामशाही सर्दारो से पहिले बादशाही सेवा का निश्चय कर आया हूँ। रावरत्न ने इसको सान्त्वना देकर इसका प्रबंध किया और दक्षिण के तत्कालीन सूबेदार खानजहाँ लोदी को सूचना दी। उक्त खाँ ने इसके लिए पाँच हजारी जात या सवार का मंसब प्रस्तावित कर, जो सब मिलाकर बीस हजारी १५००० सवार का होता था, बादशाही सेवा में भर्ती कर लिया। शाहजहाँ के राज्य के आरंभ मे यह झंडा व डंका पाकर सम्मानित हुआ। यह दक्खिनी सर्दारो का मुखिया था इसलिए इस दरबार में इसका सिक्का जम गया था और यहाँ सूबेदार लोग बिना इसकी सम्मति के बड़े काम नही करते थे। ६ ठे वर्ष में महाबत खाँ खानखानाँ ने दौलताबाद दुर्ग को भारी सेना के साथ घर लिया, मोर्चे बाँधे गए और खान खोदने, रक्षित गली बनाने तथा दुर्ग तोड़ने के अन्य प्रबंध किए जाने लगे। वृद्ध याकूत खाँ बादशाही सेवा मे होते हुए भी निजामशाह की भलाई चाहना नही छोड़ सका था और दुर्ग के शीघ्र टूटने की संभावना देख कर समझा कि इसके बाद उस राजवंश का बिल्कुल अंत हो जाएगा और वह सारा राज्य बादशाही अधिकार मे चला जावेगा। इस विचार से इसने दुर्गवालो की गुप्त रूप से सहायता करना निश्चय किया इसने बहुत कुछ प्रयत्न किया कि रसद, बंदूकची तथा अन्य युद्धीय सामान दुर्ग मे पहुँचावे पर मोर्चेवालो की सावधानी से यह कुछ न कर सका। यद्यपि अन्न इस विद्रोही के बाजार से होकर कई बार दुर्ग मे गया पर इसे जिसकी आशंका थी वह दिन आया ही। यह द्रोही डर कर आदिलशाहियों के यहाँ भाग गया, जैसी कि दासो की प्रकृति है। बादशाह का सौभाग्य उन्नति पर था और जो कार्य प्रकट मे शक्ति की निर्बलता का कारण हो सकता था वह वास्तव में शत्रु के पराजय का सबब बन गया। यह कि इस स्वामिद्रोही ने बीजापुर के सर्दारो से बहुत डींग हाँका। दौलताबाद दुर्ग की नगर दीवाल अंबर कोट के विजय के बाद एक दिन रनदौला खाँ और साहू भोसला खानजमाँ के सामने थे, जो काफजीवाड़ा घाट पर था, कि याकूत खाँ आदिलशाही सेनापति मुरारी दत्त के साथ भारी सेना लेकर आ पहुँचा। खानखानाँ ने अपने पुत्र मिर्जा लहरास्प को सेना सहित उसपर नियुक्त किया और स्वयं भी कुछ सेना के साथ रवानः हुआ। लहरास्प की सहायता करने के पहिले ही घूमते हुए शत्रु के एक टुकड़ी से सामना हो गया। वे भाग खड़े हुए। इसी बीच एक दूसरा झुंड बीच मे आ पड़ा और यह ज्ञात हुआ कि याकूत खाँ भी इसी मे है। इसके पीछे मुरारी ने सेना सजाकर हरावल को लहरास्प पर भेजा कि उसे भागती लड़ाई लड़ते हुए इसी ओर खीच लावे। प्रधान सेनापति ने सिवा युद्ध के दूसरा उपाय न देखकर सेना के कम होते भी ईश्वर की कृपा पर भरोसा कर युद्ध का साहस किया और तलवार खीच कर शत्रु पर धावा कर दिया। शत्रु दृढ़ न रहकर भागे। दैवात् भागते

समय बीच में पुल के आजाने से मार्ग की तगी होने से शत्रु सेना अस्त व्यस्त हो गई और इधर के बहादुर पीछे से याकूत खां पर जा पड़े। अपने सर्दार की रक्षा के लिए हब्शियो ने रुक कर बहुत मारकाट की पर इधर के वीर सैनिको ने उनमे से बहुतो को मारडाला और दूसरो ने याकूत खां पर आक्रमण कर भाले तथा तलवार के सत्ताईस चोट दे उसे समाप्त कर दिया। चीटी तथा मक्खियो की तरह हब्शियो ने इकट्ठे होकर चाहा कि उस कृतघ्न के शव को उठा ले जायँ पर इस ओर के लोगो ने उस झुंड को सफल न होने देकर उस शव पर अधिकार कर लिया। ऐसे सर्दार के मारे जाने पर जिसका सैन्य सचालन तथा सेनापतित्व मे कोई जोड नही था उस समय शत्रु सर्दारों में बड़ा निरुत्साह फैला और दुर्गवालों मे भी हतोत्साह पैदा होने का कारण होने से दुर्ग टूटने का कारण बन गया।

इसका पुत्र फख्रुलमुल्क भी साम्राज्य में तीन हजारी २००० सवार का मसब पाकर सेवा मे भर्ती हो चुका था। पिता के भागने के पहिले ५ वें वर्ष में मर चुका था। फख्रुलमुल्क के हसन खां आदि पुत्रगण याकूत खां के मारे जाने पर आदिल्शाह के यहाँ नौकर हो गए। हसन खां का पुत्र सौभाग्य से शाहजहां की सेवा में अधीनता दिखला कर भर्ती हो गया। ९ वें वर्ष एक हजारी ५०० सवार बढ़ने से इसका मसब तीन हजारी २०,० सवार का हो गया और दक्षिण मे वेतन रूप जागीर पाकर सुचित्त हो गया।

●

५८६. याकूत खाँ हब्शी, सीदी

शाहजहां के समय मे जब निजाम शाही कोकण सम्राट् के अधिकार मे चला आया तब नए विजित महालो के बदले मे बीजापुर के शासक का ताल्लुका उसको दिया गया, जिसकी ओर से फतह खां अफगान वहाँ का अध्यक्ष नियत हुआ और उसने डडा राजापुरी दुर्ग को, जो आधा स्थल और आधा जल मे स्थित है, अपना निवासस्थान बनाया। औरंगजेब के समय में शिवाजी भोसला ने बीजापुरियो को निर्बल देखकर उपद्रव कर पहले राजगढ दुर्ग को अपना निवासस्थान बनाया और फिर राहिरीगढ को, जो डडा राजपुरी से बीस कोस की दूरी पर था, दृढ कर वही रहने लगा बहुत प्रयत्न कर वही के आस पास के कई अन्य दुर्गो पर उसने अधिकार कर लिया। फतह खां ने उससे डर कर डंडा राजपुरी छोड दिया और जजीरा दुर्ग में जो कोस भर पर पानी में बना हुआ था, जाकर इस विचार में था कि अमान लेकर उसे सौंप दे और जान बचा ले। सीदी संभल, सीदी याकूत

और सीदी खैर ने जो तीनों उक्त अफगान के दास थे, इस विचार से अवगत हो कर कैद कर उसके पैरों में बेड़ी डाल दिया और इस वृत्तांत की सूचना बीजापुर के सुल्तान और दक्षिण के सूबेदार खानजहाँ बहादुर को लिख कर भेज दिया। खानजहाँ बहादुर ने कृपापात्र के साथ खिलअत तथा पाँच सहस्र रुपया भेजा और प्रथम के लिए चार सदी २०० सवार, द्वितीय के लिए तीन सदी १०० सवार तथा तृतीय के लिए दो सदी १०० सवार के मंसब पुरस्कार में देने के निश्चय की प्रार्थना की। वेतन में सूरत बंदर के पास मीर हासिल जागीर दिया। उन सब ने प्रसन्न हो शिवाजी को दमन करने लिए साहस की कमर बांधी। सीदी संभल नौ सदी मंसब तक पहुँच कर मर गया। सीदी याकूत ने, जो उसका स्थानापन्न था, नावों को एकत्र करने में बहुत प्रयत्न किया और डंडा राजपुरी लेने की हिम्मत बाँधी होली की रात्रि में, जब हिंदू थककर सोए पड़े थे, एक ओर से याकूत खाँ और दूसरी ओर से सीदी खैरियत पहुँच कर कमंद के सहारे दुर्ग में घुस गए। इसी समय दुर्ग का बारूदघर आग के पहुँच जाने से सर्दार के साथ उड़ गया। उस समय शिवाजी की सेना लूटमार के लिए दूर चली गई थी और सहायता पहुँचाने की शक्ति उसमें नहीं थी इसलिए आसपास के दुर्ग भी छीन लिए गए। इस वृत्त की सूचना का प्रार्थनापत्र दक्षिण के सूबेदार सुलतान मुहम्मद मुअज्जम के पास पहुँचने पर सीदी याकूत तथा सीदी खैरियत के मसब बढ़े और खाँ की पदवी मिली। जब ३९ वें वर्ष में सीदी खैरियत मर गया तब उसका माल याकूत खाँ को मिल गया और उन मृत के सिपाहियों का वेतन उसी के जिम्मे नियत किया गया। ४७ वें वर्ष (सन् १७०३ ई०) में यह भी मर गया। सीदी अंबर को जिसे अपना स्थानापन्न बनाया था, इस कारण कि इस जाति ने उस ओर की अमलदारी में नाम कमाया था और हज्ज को जानेवाले जहाजों के मार्ग जारी रखने में बहुत पुण्यकार्य किया था, उक्त ताल्लुका बहाल रखा और उसे सीदी याकूत खाँ की पदवी देकर सम्मानित किया। लिखते समय इस जाति के बाकी लोग डंडा राजपुरी पर अधिकृत थे और मरहठों से लड़ते भिड़ते कालयापन करते थे।

उक्त खाँ प्रशंसनीय वीरता तथा प्रजापालन के साथ साथ कार्यों का बहुत अनुभव रखता था सवेरे से एक पहर रात्रि तक शस्त्र धारण किए दीवानखाने में बैठता था। इसके बाद जनाने में जाकर एक प्रहर वहाँ उसी प्रकार व्यतीत करता और तब कमर खोलकर आवश्यकता पूरी करता। राज्य के अंत में बादशाह ने उसे दरबार बुलाया। इसके पहिले सीदी खैरियत खाँ बादशाही दरबार में जाकर वहाँ के आदमियों की शकल व शान के आगे अपने को कुछ न पाकर उसका कार्य लज्जा से बीमार हो जाने तक पहुँचा था और सीदी या याकूत खाँ के प्रयत्न से वहाँ से निकल आया था इसलिए यह आशंका कर अंत में भेंट की स्वीकृति तथा काम की अधिकता बतला इस कष्ट से छुटकारा पा गया।

५७०. याकूब खाँ बदख्शी

आरंभ में इसे नौ सदी ५० सवार का मंसब मिला था और यह अब्दुर्रहीम खानखानाँ के साथ दक्षिण में नियत था। जिस युद्ध में शाहनवाज खाँ मिर्जा एरिज ने मलिक अंबर को परास्त किया था और अच्छा कार्य हुआ था, उसमें पुत्र के अधिकार की बागडोर इसी को खानखानाँ ने दिया था। इसके द्वारा अच्छे कार्य दिखलाए गए थे इसलिए जहाँगीर के ८ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी १५०० सवार का हो गया। अंत में काबुल प्रांत मे होने पर शाहजहाँ के राज्य के १ म वर्ष में जब बलख के शासक नज्रमुहम्मद खाँ ने काबुल आकर उसे घेर लिया और चाहा कि कपटपूर्ण संदेशों से उस नगर पर अधिकार कर ले तब यह काबुल ही में था। स्वामिभक्ति सबके ऊपर समझ कर यह ठीक ठीक उत्तर देता रहा। समय पर इसकी मृत्यु हो गई।

५७१. मिर्जा यार अली बेग

यह सच्चा और ठीक आदमी था और घूसखोरी जानता भी न था। इस कारण औरंगजेब का कृपापात्र होने से इसका विश्वास बढ़ा। आरंभ में यह रुहुल्ला खाँ बख्शी का पेश्दस्त था। यह कटु बोलने मे प्रसिद्ध था। इसके बाद डाक तथा कचहरी का दारोगा नियुक्त होने पर प्रजा के कार्य में इसने बहुत प्रयत्न किया। ३० वें वर्ष मे इसे चार सदी ४० सवार का मंसब मिला तथा ३१ वें वर्ष में १५ सवार और बढ़े। बादशाह बहुत चाहते थे कि इसका मंसब बढ़ावें पर यह स्वीकार नही करता था। प्रार्थना करने में उद्दंडता रखता था। कहते हैं कि यह सादगी को मंसब से बढ़कर मानता था। बादशाह ने कहा कि यह अल्पवयस्क है। इसने उत्तर दिया कि जागीर पाने तक 'नीमटर' हो जाएगा। हिंद की भाषा मे नीमटर से तात्पर्य उस मनुष्य से है जो अवस्था की अंतिम सीमा तक पहुँच चुका हो। और भी कहते हैं कि एक दिन इसे बचा हुआ खास खाना इनायत हुआ पर दरबार की उपस्थिति के कारण यह भूल गया। बादशाह ने स्वाद पूछने के बहाने से इसे याद दिलाया। इसने सावधान होकर भोजन प्राप्ति के उपलक्ष मे चहार तसलीम किया और दुबारा फिर चहार तस्लीम किया, जिसे 'सहो सिजदा' कहते हैं। यह भी कहा कि एक दिन शरई मुकद्दमे में एक तूरानी के गवाही के बहाने कहा गया कि यह तूरानी है, इसकी गवाही का क्या विश्वास? पर इसने इस बात पर ध्यान

नहीं दिया कि बादशाह भी तूरानी थे। गोलकुंडे के घेरे में अन्न का बड़ा अकाल पड़ा। बादशाह ने इसकी सचाई पर चाहा कि इसे रसद का दारोगा नियत करे पर इसने बदनामी के भय से स्वीकार नहीं किया। मुहम्मद आजमशाह इससे अप्रसन्न था। इसलिए उसने प्रार्थना की कि इस पाजी की कैसी हिम्मत कि स्वामी की आज्ञा से सिर हटाए। बादशाह को भी यह बात अनुचित ज्ञात हुई इसलिए आज्ञा हुई कि इस दंडित को दीवान खाने से बाहर निकाल दो। औरंगजेब की मृत्यु पर आजमशाह से विदा हो मक्का चला गया। बहादुरशाह के राज्य के ३ रे वर्ष लौट कर सेवा में पहुँचा। इसी वर्ष सन् ११२१ हि० में मर गया।

•

५७२. यूसुफ खाँ

यह हुसेन खाँ टुकड़िया का पुत्र था और पिता की मृत्यु पर अकबर बादशाह का कृपापात्र होने पर इसे योग्य मंसब मिला। ५० वें वर्ष मे दो हजारी २०० सवार का मंसब मिला। जहाँगीर की राजगद्दी पर ५०० सवार इसके मंसब में बढ़े। ५ वें वर्ष में खानजहाँ के साथ यह दक्षिण की चढ़ाई पर गया। जब इस प्रांत मे इसके उद्योगों की सूचना मिली तब ८ वें वर्ष में इसे झंडा प्रदान किया गया। १२ वें वर्ष मे शाहजादा सुलतान खुर्रम की प्रार्थना पर इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया, गोंडवाना की फौजदारी मिली और खिलअत तथा हाथी दिया गया।

•

५७३. यूसुफ खाँ कश्मीरी

इसका पिता अली खाँ चक कश्मीर का शासक था। चौगान खेल की दौड़ धूप में जब वह मर गया तब आदमियों ने इसको बड़े होने के कारण शासक बनाया। इसने पहिले अपने चाचा अब्दाल के घर को घेर लिया, जिसपर उपद्रव करने की आशंका हो गई थी। मारकाट में गोली से उक्त अब्दाल मारा गया। वहाँ के आदमियों ने सैयद मुबारक को खड़ा कर ईदगाह के मैदान में लड़ाई की तैयारी की। युद्ध में यूसूफ खाँ का हरावल मारा गया। यूसुफ खाँ उस जगह न पहुँच कर भागा और अकबर के राज्यकाल के २४ वें वर्ष में दरबार पहुँच कर कृपापात्र हुआ। जब दो महीना न बीतते हुए कश्मीर प्रांत के उपद्रवियों ने मुबारक

खाँ को हटा कर उक्त खाँ के भतीजे लोहर चक को सर्दार बनाया तब २५ वें वर्ष मे इसे दरबार से जाने की छुट्टी मिली। पंजाब के सर्दारों को आज्ञा मिली कि इसके साथ सेना भेजें। यह समाचार पाकर कश्मीरियो ने चापलूसी इसे अकेले ही बुलाया। यह सर्दारों को बिना सूचित किए ही उस ओर चल दिया। बिना अच्छी लड़ाई के लोहर चक को कैद कर वहाँ अधिकृत हो गया। जब स.न्हि दीवान. ने यह वृत्तांत बादशाह को सुनाया तब २७ वें वर्ष मे बादशाह ने शेख याकूब कश्मीरी नामक एक विश्वासपात्र सरदार को उसके पुत्र हैदर के साथ सांत्वना के लिए भेजा। २९ वें वर्ष मे इसने अपने पुत्र याकूब को उस प्रांत के सौगात के साथ दरबार भेजा ३१ वें वर्ष मे जब बादशाह पंजाब गए तब इसको भी दरबार में बुलाया। याकूब सशंकित हो कर भागा। हकीम अली और बहाउद्दीन कंबू वहाँ भेजे गए। जब वहाँ से लौटकर इन्होने उसके घमंड की बात कही तब मिर्जा शाह-रुख भारी सेना के साथ उस प्रांत पर अधिकार करने भेजा गया। इसके अनंतर जब पखली के मार्ग से सेना बलबास के पास पहुँची तब सिवा शरण आने के कोई उपाय न देखकर यह सर्दारों से आकर मिला। इन लोगों ने चाहा कि उसे पकड़ कर लौट आवें पर बादशाह को यह बात पसंद नहीं आई और उस प्रांत पर अधि-कार करने की आज्ञा हुई। इस पर कश्मीरियो ने पहिले हुसेन खाँ चक को और फिर यूसुफ खाँ के पुत्र याकूब खाँ को सर्दार बनाकर युद्ध किया और हारे अंत मे संदेश भेजा कि यहाँ का शासक दरबार मे उपस्थित होगा और अशर्फियो पर बाद-शाह का नाम रहेगा टकसाल, केशर, रेशम तथा शिकारी जानवर बादशाही सरकार के हो जायेंगे वर्षा तथा बर्फ मे सर्दार गण घबड़ा गये थे इसलिए उक्त कार्यों पर दारोगे नियत कर तथा स्वीकृति दरबार से आने पर यूसुफ खाँ के साथ लौटे और ३१ वें वर्ष में दरबार पहुँचे। यूसुफ खाँ टोडरमल्ल के हवाले किया गया। जब याकूब खाँ आदि कश्मरियो ने संधि के विरुद्ध कार्य किए तब कासिम खाँ को भारी सेना के साथ उधर भेजा, जिसने अच्छे उपायो से उस प्रांत पर अधिकार कर लिया। यूसुफ खाँ के पुत्र याकूब खाँ तथा अन्य कश्मीरियो ने आक्र-मण किए पर हार गए। ३२ वें वर्ष में इसे कारागार से निकालकर बिहार की सीमा पर जागीर दी गई और बंगाल प्रांत में नियत किया गया। ३७ वें वर्ष तक उसी प्रांत मे काम करता रहा। इसका पुत्र याकूब खाँ था, जिसे पिता के दरबार चले आने के बाद कश्मीरियो ने उपद्रव का नेता बनाकर बहुत दिनों तक सर्दार माना था। जब मीर बह्र कासिम खाँ उस प्रांत पर अधिकार करने के लिए भेजा गया तब उस झुंड में विरोध पड़ गया। इस कारण उक्त खाँ श्रीनगर चला आया। बाद को यह भी उपद्रव करता रहा ३४ वें वर्ष जब बादशाह कश्मीर मे थे और उसके संतोष के लिए खास जूती भेजी गई तब यह सेवा में चला आया। ●

५७४. मिर्जा यूसुफ खाँ रिजवी

यह पवित्र मशहद के अच्छे वंश का सैयद था। अकबर की सेवा मे इसने बहुत उन्नति की और अच्छा विश्वास पैदा किया। ३१ वे वर्ष मे इसने ढाई हजारी मंसब पाया। जब शहबाज खाँ बिहार से बंगाल गया तब मिर्जा अवध से उस प्रांत की रक्षा को भेजा गया। ३२ वें वर्ष सन् ९९५ हि० में जब कश्मीर के प्रांताध्यक्ष कासिम खाँ ने वहाँ के निरंतर उपद्रव से घबड़ा कर त्यागपत्र लिखा तब मिर्जा ने उस प्रांत का शासक नियत होकर अपने उपायो से वहाँ के आदमियो को शांत कर दिया और शम्स चक को, जो उस प्रांत के राज्य का दावा कर रहा था, मिला कर दरबार भेज दिया। ३४ वें वर्ष सन् ९९७ हि० मे अकबर कश्मीर की सैर को गया, जिसके ऐसे सैर के स्थान का किसी यात्री ने पता अब तक नही दिया है। अनुभवी योग्य आदमियो को आज्ञा हुई कि महाराज तथा कामराज अर्थात् व्यास नदी के ऊपर तथा नीचे के स्थानों मे जाकर चौथ उगाहें। उस प्रांत में भूमि के हरएक टुकड़े को पट्टा कहते हैं और वह इलाही गज से एक बीघा तथा एक बिस्वा होता है। कश्मीरी लोग ढाई पट्टे तथा कुछ को बीघा जानते हैं और दीवान को निश्चय के अनुसार तीन तोदा जिन्स देते हैं। इनमे से हर एक गाँव कुछ नाप धान देते थे। यह खरवार तीन मन आठ सेर अकबर शाही होता था। कुछ को तर्क से नापते थे, जो आठ सेर का होता है। रबीअ में एक पट्टा से गेहूँ तथा मसूर दो तर्क लगान मे दिए जाते थे। इस समय मुंशियो ने प्रयत्न कर फर्क भी निकाल लिया पर जमींदारों के रंज होने से काम ठीक न हुआ। अधिकतर जरगर सिपाही थे और प्रांताध्यक्ष की बेपरवाही तथा आलस्य था। इस पर जमा बढ़ाने से कृषको मे अस्तव्यस्तता आ गई। इससे खास. की आय न हुई। तब जमा वास्तविक निश्चित की गई। बीस लाख खरवार धान पर दो लाख बढ़ाकर हर खरवार का सोलह दाम निर्ख काट कर मिर्जा यूसुफ खाँ को सौंप दिया।

३९ वें वर्ष में दैवयोग मे मिर्जा का एक मुत्सद्दी भाग कर दरबार मे आया और कहा कि खरवार दस पंद्रह बढ़ गया है और प्रत्येक अट्ठाइस दाम का हो गया है। जब मिर्जा से पुछवाया गया तब इसने जमा का बढ़ना स्वीकार नहीं किया। इस पर काजी नूरुल्ला तथा काजी अली पता लगाने भेजे गए। मिर्जा के आदमी लोग बेईमानी से कुविचार में पड़ गए। काजी नूरुल्ला ने लौटकर सब कह सुनाया। हुसेन बेग शेख उमरी को सहायता को भेजा। पहिला दीवानी और दूसरा तहसीलदारी के कार्य पर नियत हुआ। मिर्जा के कुछ नौकरो ने मिलकर वहाँ के कुछ उपद्रवियो के बहकाने से मिर्जा के भतीजे यादगार को सर्दार बनाया।

दो एक बार युद्ध भी हुआ पर संधि हो गई। इन दोनों के आलस्य से थोडे समय में उपद्रवियो का हंगामा बहुत वढ गया। लाचार हो काजी अली और हुसेन वेग नगर से निकलकर हिंदुस्तान को चल दिए। शत्रुओं ने इसके पहिले ही घाटियों तथा दर्रों के मार्ग रोक लिए थे इसलिए कुछ ही युद्ध के वाद काजी अली कैद हो मारा गया और हुसेन वेग किसी प्रकार जान बचा कर निकल गया। कहते हैं कि जब यादगार ने सर्दारी का विचार किया और मुह्र खोदने वाले को बुलाया कि नगीना उसके नाम बनावे। खोदते समय फौलाद का चूर उडकर उसकी आँख में चला गया और सीने में कँपकँपी के ज्वर ने उसे धर दवाया। जब मजलिस सजाकर तख्त पर बैठा उस समय पंखा लेकर एक फर्राश ने जो वहाँ खड़ा था, तुरंत यह शैर पढा। शैर—

वडो के स्थान पर झूठ भी कोई बैठ नही सकता।
पर वडप्पन का सामान इस प्रकार तू तैयार करता है॥

यादगार को आश्चर्य हुआ और उससे पूछा कि क्या तू पढा हुआ है। उसने कहा नही। तब यह शैर कहाँ से याद किया है। कहा यह भी नही मालूम। आश्चर्य तो यह है कि अभी तक अकबर को इन विद्रोह की सूचना सही थी। सुल्तान तथा राज्यकर्मचारी गण को दैवी सूचना होती है इसलिए ३७ वें वर्ष सन् १००० हि० में लाहौर से कश्मीर की चढाई की आज्ञा हुई। यद्यपि लोगो ने मार्ग की कठिनाई कहकर रोकना चाहा और कुछ ने कहा कि वादशाही राज्य हर ओर एक वर्ष की राह तक फैला हुआ है इसलिए किनारे तक पहुँचता है तथा उस पार्वत्य प्रात मे जाना उचित नही है पर वादशाह ठीक वर्षाकाल में उस ओर चल दिए। दैवयोग से यह वही दिन था जब यादगार कुल ने कश्मीर मे विद्रोह किया था। इसमे विचित्र तर यह है कि वादशाह ने रावी नदी के पार करने पर पूछा कि यह शैर किसके बारे में है। शैर—

वादशाही टोपी तथा शाही ताज
हर कुल को कैसे पहुँची।

अभी कुछ पडाव यात्रा हुई थी कि कश्मीर का उपद्रव शांत हो गया और दैहीम खदीव की भविष्य वाणी प्रकट हुई। शेख फरीद बख्शी बेगी को ससैन्य आगे भेजकर स्वयं भी पहिले से अधिक फुर्ती से आगे बढा। मिर्जा यूसुफ खाँ शेख अबुल् फजल को दिया गया। जब इसके पुत्र मिर्जा लश्करी ने उस विद्रोही की इच्छा से अवगत होकर बाल बच्चो को लाहौर लिवा जाने को बाहर निकाला पर उस बलवाई ने मिर्जा के कैद होने का समाचार सुनकर झट उन सबको हटा दिया। मिर्जा के सम्मान की रक्षा के लिए इसे छुट्टी मिल गई। यादगार ने बादशाह के आने का समाचार पाते ही बहुतो को घाटी में भेजकर उसे दृढ कर लिया परन्तु बीर गण

थोड़े युद्ध पर शत्रुओं को हटा उस प्रांत में घुस गए। यादगार कश्मीर की राजधानी श्रीनगर से निकलकर हीरापुर चला आया। मिर्जा के नौकरों का झुंड घात में लगा हुआ था और अर्द्ध रात्रि में बादशाह के पहुँचने का शोर कर इसके पड़ाव पर धावा कर दिया और लूटने लगे। वह घबड़ा कर कनात से निकलकर जंगल में भागा तथा यूसुफ परस्तार के सिवा किसी ने साथ नहीं दिया। इसको घोड़ा लाने को भेजा। इसकी अनुपस्थिति से चकित होकर आदमियो ने यूसुफ को शिकंजे में डाल दिया। अंत में इसके बतलाने से वह पकड़ा गया तथा मार डाला गया। शैर—

बाग मे कद्दू सरो के साथ सिर उठावे,
अर्थात् इस प्रकार सर उठाना सर्दारी हो।
आकाश जानता है कि सरो और कद्दू क्या हैं।
स्वयं सिर सर्दारी का दंड है।

कहते हैं कि एक दिन जब इस दुष्ट के उपद्रव का समाचार मिला और उसकी माँ नुकरा अपने पुत्रों की बदकारी से साहस नहीं रखती तब अकबर ने यह शैर पढ़ा। शैर—

यह हराम का बच्चा मेरा द्वेषी हो, यह मेरा भाग्य है।
हराम के बच्चे को मारने वाला यमन के सितारा सा आया।

कहा कि मेरे विचार मे आता है कि ऐसे उपद्रवी का मारा जाना और यमन के सुहेल सितारे का निकलना सबन्ध रखता है। ज्योतिषियो ने कहा कि तीन महीने मे दंड को पहुँचेगा। कहा कि चालीस दिन से कम और दो महीने से अधिक न चलेगा। कुल इक्यावन दिन बीते थे और जिस दिन वह मारा गया उस दिन यह यमन का सितारा निकला। बादशाह जब कश्मीर पहुँचे तब मिर्जा यूसुफ ने जमा बट् ए जाने पर भी उस प्रांत को स्वीकार नहीं किया। इसपर खालसा का ख्वाजा शम्सुद्दीन खाफी को तीन सहस्र सवारों के साथ उस शासन पर नियत किया। उसके अनंतर शाहजादा सुल्तान सलीम की प्रार्थना पर फिर मिर्जा यूसुफ को जागीर में मिला। ३९वें वर्ष में मिर्जा तोपखाने का दारोगा नियत हुआ। उसी वर्ष सन् १००२ हि० में कुलीज खाँ के स्थान पर जौनपुर की जागीर पर नियत हुआ। ४1वें वर्ष मे गुजरात प्रांत जागीर-तन मे पाकर दक्षिण का सहायक नियत हुआ। जब सादिक खाँ हरवी ४२ वें वर्ष में मर गया तब मिर्जा शाहजादा सुल्तान मुराद का अभिभावक नियत होने पर फुर्ती से अपने जागीर के महाल से बरावर के अंतर्गत बालापुर आकर शाहजादे की सेवा में पहुँच गया। उक्त सुलतान की मृत्यु पर अल्लामी शेख अबुल्फजल के साथ दक्षिण में अच्छी सेवा की और अहमद नगर के घेरे तथा अधिकार करने में शाहजादा सुलतान दनियाल के साथ सबसे बढ़कर किया। यह बराबर दक्षिण मे मन न लगने की प्रार्थना किया करता था अतः ४६वें

वर्ष के आरम्भ में आज्ञा मिलने पर बुर्हानपुर मे बादशाह की सेवा में पहुँचा जब बादशाह आगरे को लौटे तब शाहजादा दनियाल बड़े २ सर्दारों के साथ नर्मदा से विदा हुआ। मिर्जा भी उसके साथ नियत हुआ। इसी वर्ष सन् १०१० हि० मे शाहजादे ने मिर्जा को मिर्जा रुस्तम सफवी के साथ शेख अबुल्फजल तथा खानखानाँ की सहायता को बालाघाट मे नियत किया। मिर्जा जमादिउल् आखिर महीने में शूल की पीड़ा मे जालनापुर मे मर गया। इसके शव को मशहद ले गए। मुल्तानपुर इसके देश के समान था। बहुधा रुहेले नौकर रखता था। वेतन महीने देता था। जब महीना बढ़ाता था तब ड्योढा कर देता था और इसको बराबर एक वर्ष का जोड़कर देता था। इसके पुत्रों मे मिर्जा सफशिकन खाँ लश्करी था, जिसका वृत्तान्त अलग दिया गया है। दूसरा मिर्जा एवज था, जो गद्य बहुत अच्छा लिखता था। संसार का हाल लेकर एक इतिहास लिखा, जिसका नाम चमन रखा। तीसरा मिर्जा अफलातून अपने भाई के साथ रहता था। अवस्था के अंतिमकाल मे यह बिहिश्ताबाद सिकंदरा के मुतवल्ली का पद पाकर वहीं मर गया। इसका दामाद मीर अब्दुल्ला शाहजहाँ के समय मे डेढ़ हजारी ५०० सवार का मंसब पा चुका था। कुछ दिन धर्म का अध्यक्ष भी था। ८वें वर्ष मे मर गया।

•

५७५. हाजी यूसुफ खाँ

पहिले यह मिर्जा कामराँ का अनुयायी था। अकबर के राज्य काल के १६वें वर्ष में यह किया खाँ के साथ मिर्जा यूसुफ खाँ की सहायता को भेजा गया, जो कन्नौज दुर्ग में मे घिर गया था और जिसके आस-पास अली कुली खाँ विद्रोह मचाए हुए था। १७ वें वर्ष में गुजरात पर अधिकार हो जाने के बाद यह इब्राहीम हुसेन मिर्जा को दंड देने के लिए खान आलम के साथ नियत हुआ। जब बादशाह की आज्ञा सेनाओं को लौटने की हुई तब सरनाल युद्ध मे यह भी शाही सेना मे आ मिला और १९वें वर्ष में खानखानाँ मुनइम खाँ के साथ बंगाल भेजा गया। गुजर युद्ध में इसने अच्छा प्रयत्न किया। २० वें वर्ष मे बंगाल के गौड़ नगर में, जो अपने खराब जलवायु के लिए प्रसिद्ध है, उस समय जब खानखानाँ मुनइम खाँ वहाँ छावनी डाले हुए था और महामारी फैल रही थी तथा बहुत से सरदार मर गए थे यह भी सन् ९८३ हि० (स० १६३३) में काल कवलित हो गया। यह पाँच सदी मनसबदार था।

•

४७६. यूसुफ मुहम्मद खाँ कोकल्ताश

यह खान आजम अतगा का बड़ा पुत्र था। यह अकबर के साथ दूध पीने का संबंध रखता था। जब इसका पिता सेना सहित दरबार भेजा गया कि पंजाब की ओर जाते हुए बैराम खाँ को मार्ग मे पकड़ ले तब यह भी बारह वर्ष का होते हुए पिता के साथ नियत हुआ। युद्ध के दिन सैनिको के साथ अगल तथा मध्य में इसे भी स्थान मिला। जब अतगा खाँ ने दाहिने और बाएँ की सेनाओं के अस्त व्यस्त होने पर अवसर पाकर बैराम खाँ की सेना पर धावा किया तब यह भी पिता के आगे रहकर उद्योग करता रहा। इसे खाँ की पदवी मिली। जब इसका पिता अदहम खाँ कोका के हाथ मारा गया तब यह अपने साथियो के साथ सशस्त्र हो कर अदहम खाँ और माहम अतगा को पकड़ने गया पर बादशाह के द्वारा अदहम खाँ को जो दंड मिला उसे सुनकर इसे कुछ सांत्वना मिली। इसके अनंतर यह तथा इसका भाई अजीज मुहम्मद कोकलताश बराबर बादशाही कृपापात्र रहकर युद्ध तथा रागरग मे सेवा मे रहे। १०वें वर्ष जब स्वामिद्रोही अली कुली खाँ खानजमाँ, बहादुर खाँ व इसकंदर खाँ के उपद्रव का समाचार मिला तब बादशाह उसे दमन करने के लिए साहस कर आगरे से बाहर निकले। गंगापार करने पर सूचना मिली कि अभी इसकंदर खाँ लखनऊ में अपने स्थान ही पर है इसलिए बादशाह ने उस प्रांत के प्रबन्ध का निश्चय किया। आज्ञा हुई कि उक्त खाँ सुजाअत खाँ आदि कुछ वीरों के वीरो के साथ एक पड़ाव अगल रहकर आगे आगे चले। अकबरी कृपा की छाया में रहते हुए यह पाँच हजारी मंसब तक पहुँचा था कि यौवन ही में मदिरापान की अधिकता से बीमार हो ११ वें वर्ष सन् ९७३ हि० मे मर गया।

यद्यपि अंगूर के (उनदेग) पानी को हकीमों ने मानव मस्तिष्क की शक्ति को बढानेवाला तथा अन्य बहुत से गुणो से युक्त पाया है और उसके सेवन के लिए उसकी मात्रा आदि निश्चय कर दी है पर वह बुद्धि को आच्छादित करने वाला तथा अनेक बीमारियों का पैदा करने वाला भी है इसलिए उसके बहुत पीने को कड़ाई के साथ मना भी किया है। इसलिए यह सब अर्थ पुस्तको में स्पष्ट लिखा हुआ है। इस्लाम की शरीअत में (अरबी मे एक कलमा उनदेग का आया है) इसी हानि को दृष्टि में रखकर इसके थोड़े या अधिक सेवन की आज्ञा नही दी है और थोड़े लाभ के लिए अधिक हानि को नियमित नही माना है। फिर एक कलमा है।

५७७. यूसुफ मुहम्मद खाँ ताशकंदी

ताशकंद फर्गानः प्रांत का एक नगर है, जो पाँचवी इकलीम में है और आबाद संसार की सीमा पर स्थित है। इसके पूर्व में काशगर, पश्चिम में समरकंद, दक्षिण में बदख्शाँ के पार्वत्य प्रांत की सीमा और उत्तर में यद्यपि इसके पहिले कई नगर थे जैसे अलमालीग, अलमातू और बानकी, जो अतरार के नाम से प्रसिद्ध था पर अब उजबेगों के उपद्रव से रस्म रिवाज आदि का कुछ चिन्ह नहीं रह गया। पश्चिम ओर के सिवा, जिधर पहाड़ न थे, अन्यत्र कोई उतार नहीं है। सैहून नदी, जो खुजंद नदी के नाम से प्रसिद्ध है, उत्तर-पूर्व के बीच से इस प्रांत में आकर पश्चिम की ओर बहती है। खुजंद के उत्तर तथा फनाकत, जो शाहरुखी प्रसिद्ध है, के दक्षिण होती हुई तुर्किस्तान के नीचे बालू में गुम हो जाती है। इस प्रांत में सात बस्तियाँ हैं। दक्षिण में पाँच अंदजान, ओश, मार्गीनान, असफरा और खुजंद है तथा उत्तर में आखसी और शाश। ये दोनों पुराने नगरों में से हैं, पहिले ये प्रसिद्ध थे और अब ताशकंद तथा ताशकनीयत नामों से प्रसिद्ध हैं। यहाँ का लालः पुष्प बुखारा के गुलेपुर्ख की तरह प्रसिद्ध है और विशेष कर सदरंगी लालः इस ओर का खास फूल है।

जब यूसुफ मुहम्मद खाँ अपने देश से हिंदुस्तान में आया तब कुछ दिन अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग के साथ व्यतीत किया। अंत में भलाई तथा सौभाग्य से शाहजादा शाहजहाँ की सेवा में पहुँचा और अपनी सेवा तथा बराबर की हाजिरी से सम्मानित हुआ। यात्रा या दरबार में सेवा कार्य करता रहा। शाहजहाँ की राजगद्दी पर दो हजारी १००० सवार का मंसब, डंका, झंडा, घोड़ा, हाथी और पंद्रह सहस्र रुपए पाकर प्रसन्न हुआ। माडू के पास इसे जागीर भी मिली। ४ थे वर्ष दक्षिण की चढ़ाई में दैवयोग से विशेष घटना में यह पड़ गया अर्थात् बहादुर खाँ रुहेला के साथ आदिलशाही सर्दार रनदौला खाँ के युद्ध में बड़ी वीरता दिखला कर घायल हो युद्धस्थल में गिर पड़ा शत्रु भारी सफलता समझ इसको बहादुर खाँ के साथ उठा ले गए। बहुत दिनों तक यह बीजापुर में कैद रहा। जब ५ वें वर्ष यमीनुद्दौला आसफ खाँ ने बीजापुर तक धावा करते और लूटते हुए वहाँ पहुँच कर उसे घेर लिया तब आदिलशाह ने दोनों को यमीनुद्दौला के पास दिया। जब ये सेवा में पहुँचे तब गुणग्राही बादशाह ने शाही कृपा से, जो स्वामिभक्त सेवकों के लिए सुरक्षित थी, जाँच करना छोड़ दिया। हर एक को खिलअत, सुनहले मीनाकारी के साज सहित तलवार तथा ढाल, घोड़ा और हाथी दिया। यूसुफ मुहम्मद खाँ का मंसब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया और डंका तथा बीस सहस्र रुपए पाकर सम्मानित हुआ। इसके बाद ठट्टा का सूबेदार नियत हुआ।

पहिले यह तूरान के मुगलों को नौकर रखता था पर जब इस घटना में आशा के विरुद्ध इनकी कृतघ्नता तथा बेवफाई देखी कि अपने स्वामी को शत्रु के हाथों में छोड़ कर युद्ध से साफ निकल कर अपने जागीर के महालों को चले गए और इसके पिता के विरुद्ध, जो काम छोड़ कर फकीर की तरह रहता था, उपद्रव कर बहुत सा धन वेतन मे ले लिया। इस कारण यह मुगल को हेय दृष्टि से देखता और हिंदुस्तानियों को बहुधा नौकर रखता। इसके बाद यह भकूर का फौजदार नियत हुआ। जब ११ वें वर्ष कंधार दुर्ग बादशाह के अधिकार में चला आया तब उसके प्रबंध होने तक यह सिविस्तान के फौजदार के साथ वहाँ की रक्षा पर नियत हुआ। वहाँ सूबेदार कुलीज खाँ के साथ यूसुफ खाँ ने बुस्त दुर्ग लेने में बहुत प्रयत्न किया। १२ वें वर्ष मे भक्कर की फौजदारी से बदल कर यह मुलतान का सूबेदार हो गया और इसके मसब में एक सहस्र सवार बढ़ाए गए। इसी वर्ष सन् १०४९ हि० में इसकी मृत्यु हो गई।

इसके दो पुत्र मिर्जा रूहुल्ला और मिर्जा बहराम थे। पहिले को २८ वें वर्ष के अंत मे डेढ़ हजारी ८०० सवार का मंसब और मांडू की फौजदारी मिली। किसी कारण से दंडित होने पर एक हजारी मंसब बहाल रहा। इसके बाद कांगड़ा का यह फौजदार तथा दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। औरंगजेब की राजगद्दी के आरंभ में शत्रु के कुछ कार्यो पर बादशाही इच्छा से मंसब तथा जागीर से हटाए जाने पर यह एकांत में रहने लगा।

इसके पुत्रगण खानःजादी के होते हुए भी बादशाह औरंगजेब के मिजाज बिगड़ने से मंसब न पा सके और कुछ दिन खानजहाँ बहादुर कोकल्ताश के साथ व्यतीत किया। इसके बाद मिर्जा अब्दुला शाहजादा की सरकार में कोरबेगी नियुक्त हुआ और अपना सम्मान तथा विश्वास बढ़ाया। मीर आतिश होने पर जाजऊ के युद्ध में निमक का हक अदा करता हुआ शाह के साथ रह कर मारा गया। इसका पुत्र मिर्जा फतहुल्ला छोटा था। आजमशाही सर्दार बसालत खाँ सुलतान नज्र ने मित्रता तथा एक स्वामी के नौकर होने के नाते इसके पालन करने का भार उठाया। मृत्यु पर आसफजाह निजामुल्मुल्क की सरकार मे नौकर होकर दीवानखानः तथा दर० कारों का दारोगा नियत हुआ। ऐसी ही कृपा से उस बड़े सर्दार ने इसे पिता का मंसब तथा पदवी देकर सम्मानित किया। लिखते समय जीवित था और इसके लेखक से मित्रता तथा प्रेम था।

●

५७८. रनदूलह खाँ गाज़ी

यह बीजापुरी सर्दार था। सुल्तान औरंगजेब बहादुर के दक्षिण से हिन्दुस्तान की ओर आते समय यह भी उसके साथ आया और युद्धों में उसने अच्छा कार्य दिखलाया। महाराज यशवंतसिंह के युद्ध के अनंतर इसे रनदूल्हखाँ की पदवी मिली और इसका मंसब बढ़कर चार हजारी ४००० सवार का हो गया, जिसके १००० सवार दो अस्प. सेह अस्प. थे। दाराशिकोह के प्रथम युद्ध के बाद इसे दस सहस्र रुपये पुरस्कार में मिले। इसके अनंतर यह शेख मीर ख्वाफी के साथ सुलेमान शिकोह का मार्ग रोकने के लिए नियत हुआ। इसके बाद दक्षिण में बादशाही काम से नियत किया गया। ९वें वर्ष दिलेर खाँ दाऊदज़ई के साथ चांदा के जमींदार को दंड देने भेजा गया। २७ वें वर्ष सन् १०९४ हि० में मर गया।

५७९. रशीदखाँ अन्सारी

इसका नाम इल्हदादखाँ था और यह जलालुद्दीन रोशानी का पुत्र था, जो अफगानों में सर्दारी का झंडा ऊँचाकर उपद्रव मचा रहा था। अकबर के राज्य-काल से शाहजहाँ के समय तक काबुल प्रांत के अध्यक्ष का बराबर काम इसी फिरके को दमन करने का रहा। अकबर के समय इस फिरके का नाम तारीकी हो गया था। इसके पूर्वजों का और इसके अनंतर इनमें से एक का, जो उपद्रव और विद्रोह बराबर करते रहे कुछ विवरण बराबर लिखा मिलता है। जलालुद्दीन का पिता प्रसिद्ध जलाल. शेख बायजीद उर्फ पीर रोशान या रोशानी था, जो शेख अब्दुल्ला का पुत्र था और जिसका सम्बन्ध सातवीं पीढ़ी में शेख सिराजुद्दीन अन-सारी तक पहुँचा है। जिस वर्ष बाबर हिन्दुस्तान में आया, उसके एक वर्ष पहिले जलंधर कस्बे में यह पैदा हुआ। विद्या प्राप्त करने के अनंतर जब मुगलों का साम्राज्य यहाँ बढ़ता हुआ देखा तब यह अपनी माता बेहबीन के साथ जो उसी कबीले की थी, रुह पहाड़ी में स्थित कालीकरम गाँव को चला गया, जहाँ इसका पिता बस गया था। सन् ९४९ हि में प्रसिद्ध होकर इसने अपनी करामात दिखाकर अफगानों के कई कबीलों को अपना शिष्य बना लिया। खैरुल् बयान नामक पुस्तक पश्तो भाषा में ईश्वर की एकता पर इसने लिखा था।

कहते हैं कि यह पुस्तक बड़ी-बड़ी उक्तियों का चुना हुआ संग्रह है परन्तु रुह के रहनेवालों में से बहुतों ने इलहाद व जिन्दकः से इसका सम्बन्ध देकर इसमें रुचि

नहीं रखी। कहते हैं कि जब इसको मिर्जा महम्मद हकीम की मजलिस में ले गए तब विद्वान गण इसको देखकर चुप रह गए। वह अपनी मृत्यु से मरा और भतःपुर मे, जो पहाडो में है, गाडा गया। इसे चार पुत्र और एक पुत्री थी—शेख उमर नूरुद्दीन (जो इसका पुत्र मिर्जाई नाम का था तथा बादशाही सेवको मे भर्ती होकर दौलताबाद के युद्ध मे मारा गया), जमालुद्दीन, जलालुद्दीन और कमालखातून। जमालुद्दीन कुलीज खाँ अकबरशाही की कैद मे मरा परन्तु पिता का उत्तराधिकार जलालुद्दीन को मिल गया। १४ वर्ष की अवस्था में सन् ९८९ हि० में जब अकबर बादशाह काबुल की सैर करने के अनंतर लौटते समय यूलम उतार मे ठहरे हुए थे तब यह सेवा में पहुँचकर बादशाही कृपा का पात्र हुआ परन्तु अपने योग्य सरकार का प्रबन्ध न देखकर बिना छुट्टी लिए चल दिया और अपने पिता के शिष्यो के यहाँ जाकर समय व्यतीत करने लगा, जिनमे अधिकतर बर्कजई, अफरीदी तथा गर्दाद लोग थे और जिनसे संबंध भी हो चुका था।

३१ वें में मोहम्मद और गरीह खेल जाति वालों ने, जो पेशावर के आस-पास दस सहस्र घर बसे हुए थे, वहाँ के जागीरदार सैयद हामिद बोखारी के कर्मचारियों के अत्याचार से क्रुद्ध होकर जलाल को अपना सरदार बनाया और विद्रोह करके सैयद हामिद को मार डाला। इसके अनंतर तीराह के मार्ग से, जो एक पहाड़ी स्थान बत्तीस कोस लंबा और बारह कोस चौडा है और जिसके पूर्व पशावर, पश्चिम की ओर मैदान, उत्तर की ओर बाहर और दक्षिण की ओर कंधार है तथा जिसमे ऊँची-नीची बहुत सी घाटियाँ हैं, जाकर खैबर के मार्ग को बंद कर दिया। काबुल के शासक राजा मानसिंह नारवाँ से तीराह आकर अफरीदियो पर, जो सारे उपद्रव की जड थे, धावा कर अली मसजिद पहुँच गए। जलाल: कुछ दंड पा चुका था कि इसी बीच जैन खाँ कोका ने दरबार से नियत होकर, इस उपद्रव को जड से खोदने मे बहुत प्रयत्न किया। जब यह बहुत तंग हुआ तब ३२वें वर्ष मे इसने तीराह की घाटी से निकल कर सवाद और बजोर में शरण लिया, जो यूसुफजई जाति का निवासस्थान था। उन सबने बादशाही सेना से काफी दंड पाने पर भी उपद्रव से हाथ न खींच कर उन सबको स्थान दे दिया। जैनखाँ इस पहाडी स्थान में भी पहुँचा और कई धावो के अनंतर पास ही था कि जलाल. कैद हो जावे पर वह दर्रा से फिर तराह लौट गया, जिसका इसमाइल कुलीखाँ रक्षक था और जिसे सादिक महम्मद खाँ के आने के लिए खुला छोड़ रखा था। सादिक मुहम्मद खाँ ने पीछा करते हुए अपने सुप्रयत्नो से अफरीदी तथा बर्कजई जातिवालो को मिला लिया, यहाँ तक कि मुल्ला इब्राहिम को, जिसको जलाल. अपने पुत्र के समान समझता था, अपने हाथ मे कर लिया। इन सब के विश्वास का खोखलापन समझ कर वह तूरान की ओर रवाना हो गया। अफगानों ने उसके लडकों बच्चों को पकड़कर

बादशाही आदमियों को सौंप दिया। ३७ वे वर्ष में तूरान से लौटकर उसी जाति की सहायता से इसने फिर उपद्रव आरम्भ कर दिया। आसफखाँ जाफर दरबार से भेजा गया। अफगान लोग उपद्रव से हाथ खींचकर अलग बैठ रहे और इन सब पर छोड़ दिया कि उसे अपने परिश्रम से बाहर निकालें। आसफखाँ ने उसके परिवार को वहदत अली नामक पुरुष के साथ कैद कर लिया। सन् १००७ हि० में जलाल: ने गजनी ले लिया पर उसकी रक्षा न कर सका। ४५वें वर्ष सन् १००९ हि० में जलाल. लोहानी जाति की सहायता से शादमान हजार: के आक्रमण पर गया था, जो गजनी के पास है, और वहाँ से घायल होकर रबात पहाड़ी में चला गया। शरीफ खाँ अतगा के नौकरों के साथ मुराद बेग ने उसका पीछा कर उसका काम तमाम कर दिया। इस प्रकार आसानी के साथ वह उपद्रव का जड़ नष्ट हो गया, जिसके पीछे-पीछे बादशाही बहुत सी सेना बहुत दिनों तक घूमती रही और परेशान रही। इसके अनंतर शेख उमर के पुत्र अहदाद ने, जो शेख जलालुद्दीन का भतीजा और दामाद था, शेख जलाल. का उत्तराधिकारी होकर उपद्रव आरम्भ कर दिया। इसकी वीरता तथा साहस रुस्तम और अफरासियाब की कहानियों को काटने वाली थी। जहाँगीर के समय बादशाही सेना से घोर युद्ध कर कभी हारता और कभी विजय प्राप्त करता था। सन् १०३५ हि० मे ख्वाजा अबुल् हसन तुरबती का पुत्र जफर खाँ अपने पिता का प्रतिनिधि होकर काबुल प्रांत का प्रबन्ध करता था। जब उसने उसे बहुत तंग किया तब वह नवाक दुर्ग में जा बैठा पर आक्रमण के दिन लगने से मारा गया। कहते हैं कि एक दिन पहले खैरुल बयान पुस्तक पढ़ते हुए कहा था कि कल मेरा अन्तिम दिन है और वैसा ही हुआ। इसके बाद इसका पुत्र अब्दुल् कादिर इसका उत्तराधिकारी हुआ और जफर खाँ पर धावा कर उसका सब सामान लूट लिया। अंत मे काबुल के प्रांताध्यक्ष सईदखाँ बहादुर के प्रयत्नों से अब्दुल्कादिर ने बादशाह की सेवा स्वीकार कर ली और शाहजहाँ की सेवा मे पहुँच कर इसने एक हजारी मनसब पाया। सन् १०४३ हि० में काबुल में नियुक्त होकर वहीं कालयापन करने लगा। सईदखाँ बहादुर ने अहदाद की स्त्री बीबी अलाई को, जो जलाला की पुत्री थी, उसके दो दमादो महम्मद जमाँ और साहेबजाद तथा महम्मद जमाँ के पुत्र करार दाद को अब्दुल् कादिर के दूसरे साथियों के साथ ११वें वर्ष के आरम्भ में सन् १०४७ हि० मे पकड़ कर दरबार भेज दिया। शाहजहाँ ने उन सबको दया करके रसीदखाँ के यहाँ भेज दिया, जो तेलिंगाना प्रांत में नियत था। उसी वर्ष जलालुद्दीन के छोटे पुत्र अंधे करीमदाद को, दुर्भाग्य के फेर में पड़ा हुआ लोहानी सीमा के भीतर कालयापन कर रहा था, नगर के कुछ जातिवाले बुरे विचार से बुलाकर घात में बैठ रहे कि अवसर पाते ही तीराह चले आवें और वहाँ उपद्रव मचावें। सईदखाँ ने इस षड्यंत्र का पता पाकर उस प्रांत के अफगानो मे से

पैदल सैनिको तथा धनुर्धारियों को, जिन्होने अधीनता स्वीकार करली थी, एकत्र कर राजा जगतसिंह के साथ उन सबको दंड देने के लिए नियत किया। नगर पहुँचने पर बहुत से अफगान भाग गए। लकन और अन्य दो कबीले वालो ने, जिनके बीच में करीमदाद पडा हुआ था, जब अंत में उसे सौंप देने ही पर अपनी रक्षा देखी तब उसे उसके नौकरो के साथ पकड़ कर बादशाही मनुष्यों के हवाले कर दिया। सईद खाँ ने उसको आज्ञा के अनुसार सजा को पहुँचा दिया। इसके अनंतर इसी बीच जुम्लतुल् मुल्क सादुल्ला खाँ आया और करीम दाद की पुत्री का इसके साथ विवाह कर दिया। लुत्फुल्ला खाँ आदि इसीसे पैदा हुए थे।

जलालुद्दीन के मरने के अनंतर उसके पुत्रगण आलहदाद तथा अन्य आँखों की कमजोरी तथा अफगानों की शत्रुता के कारण रूह में रहना कठिन देख कर हिन्दुस्तान चले आए और जहाँगीर के सेवको में भर्ती हो गए। आलहदाद ने थोड़े समय मे योग्यता तथा कार्य दिखला कर ऊँचा मनसब तथा रशीद खाँ की पदवी पाई और अच्छी सेवा पर नियत हुआ। शाहजहाँ के राज्य काल मे कृपा होने के कारण इसका मनसब चार हजारी ३००० सवार का हो गया और यह दक्षिण में नियत किया गया। शाहजहाँ के ४ थे वर्ष में दक्षिण के सूबेदार आजम खाँ के साथ एक दिन मानजरा नदी के किनारे आदिलशाही और निजामुल्मुल्क की सेनाओ का घोर युद्ध हुआ, जिसमें चार हजारी सरदार शहबाज खाँ रुहेला पुत्र के साथ मारा गया तथा बहादुर खाँ रुहेला और यूसुफ महम्मद खाँ ताश कंदी भारी चोट खाकर मैदान में गिर पडे। रशीद खाँ, जिसका भाई बहुत से संबधियो के साथ मारा गया था, घायल होकर भी युद्ध स्थल से निकल कर आजम खाँ के पास पहुँच गया।

संक्षेपत: रशीद खाँ बहुत अच्छे चित्त वाला था। यह अच्छे विचार वाला, दूरदर्शी, बुद्धिमान, साहसी तथा दयालु था और वीरता, साहस, मुरौव्वत, बहादुरी मिलनसारी तथा आचार मे अपना जोड नही रखता था। इसने बहुत दिनो तक दक्षिण में काम किया और अपने अच्छे उपायो तथा वीरता से उस प्रात के सूबेदारों का साथ देता रहा। वे बिना इसकी राय लिए कोई भारी काम नही करते थे। यह अपनी सेना पर अच्छी दृष्टि रखता था और वे सब इसपर बड़ी स्वामिभक्ति रखते तथा शिष्यों की चाल पर इससे व्यवहार करते थे। महाबत खाँ ने दरबार को लिख भेजा था कि वे सब आदमी रशीद खाँ के आय का काम इतनी सतर्कता तथा मन लगाकर करते हैं हैं कि यह उद्दंडता का विचार भी नही करना इसलिए दक्षिण से इसका वेतन उसे दिया जाना उचित है। परन्तु खानजमाँ को, जो इसका सच्चा मित्र है, सीमा पर की सेवा न दें क्योंकि दोनो मिलकर जो काम करेंगे, उसका प्रतीकार होना कठिन हो जायगा। रशीद खाँ ने बुर्हानपुर की सूबेदारी करते समय प्रबंध में ऐसा रोब बढ़ाया कि पहाड़ी उपद्रवियो ने अपना जीवित

रहना ही बहुत समझ लिया, जिनके लूट और चोरी के कारण शहर के निवासी रात्रि आराम से नहीं बिता पाते थे। अंत के समय बहुत दिनों तक यह तिलिंगाना की जब्ती मे लगा रहा और नानदेर मे निवास करता रहा। वर्तमान समय तक उसी मकान मे उसके संतान और उसका भाई हादीदाद खाँ[1] रहा करते थे। शाहजहाँ के २२ वें वर्ष सन् १०५८ हि० में नानदेर की सूबेदारी के समय इसकी मृत्यु हो गई। इसने शम्साबाद मऊ नामक ग्राम बसा कर एक अच्छे बाग की नीव डाली थी। इसके शव को वहीं ले जा कर गाड दिया।

कहते हैं कि इसने विद्या नही सीखी थी पर बहुश्रुत था। इतिहास ज्ञान में अद्वितीय था। यह हनफी धर्म का कट्टर मानने वाला था। इसने बहुत से शेर अपनी बुद्धि से बाग के बारे में कहे हैं जो इल्हाक हैं और जिन्हे विद्वानो ने स्वीकार कर लिया है। इसकी बहुत सी आदतें ईरानियो के चाल की थीं। इसका खाना-पीना बहुत अधिक था। इसके महल का खर्च इतना अधिक था, जितना उस समय किसी सरदार का न था बुर्हानपुर का ईदगाह छोटा था उसे इसने बड़ा बना कर उसमें नाली से पानी खिंचा लाया। इसके पुत्र इल्हामुल्ला[2] को डेढ़ हजारी १५०० सवार का और असदुल्ला को डेढ हजारी १००० सवार का मनसब शाहजहाँ के शाहजहाँ के ३० वें वर्ष तक मिल चुका था।

●

५८०. रसीद खाँ इलहामुल्ला

यह रशीद खाँ अनसारी का द्वितीय पुत्र था। जब इसका पिता शाहजहाँ के २२ वें वर्ष मे मर गया तब बादशाह ने इस पर तथा इसके बडे भाई असदुल्ला पर मंसब बढाकर कृपा की। २८ वें वर्ष मे जब असदुल्ला का जो उस समय चंदोर का थानेदार था, मंसब बढ़ाया जाकर डेढ हजारी १००० सवार का किया गया और वह एलिचपुर का जागीरदार तथा शासक नियत हुआ। ३० वें वर्ष में जब इसका चाचा हादीदादखाँ मर गया और उसके वंश में कोई न रहा तब इसका मंसब बढाकर डेढ हजारी १५०० सवार का कर दिया, जिसमें हादीदाद खाँ के आदमी अस्तव्यस्त न हो जायँ। जिस समय मुहम्मद औरंगजेब बहादुर ने अपने इच्छा रूपी घोडे को दक्षिण से हिन्दुस्थान की ओर दौडाया तब इसने शाहजादे का साथ दिया। महाराज जसवंत सिंह के युद्ध के अनंतर इसे खिलअत, झंडा और पिता

---

१. इसकी जीवनी इसी भाग मे आगे दी गई है।

२ इसकी जीवनी रशीद खाँ इलहामुल्ला शीर्षक से इसीके अनंतर दी गई है।

की पदवी मिली तथा इसका मंसब बढ़ाकर तीन हजारी ३००० सवार पाच सौ सवार दो अस्प: सेह अस्प: का कर दिया गया। दाराशिकोह के प्रथम युद्ध के अनंतर इसे बीस सहस्र रुपया पुरस्कार मे मिला। सुलतान शुजाअ के युद्ध के अनंतर सेनापति मुअज्जम खाँ के साथ शाहजादा मुहम्मद सुलतान के अधीन नियत होकर यह बंगाल गया और उस प्रान्त के युद्धो तथा कार्यो में अपने सर्दार का बराबर साथ देकर इसने शत्रुओ के दमन में बहुत प्रयत्न किया। ४ थे वर्ष सेनापति के साथ कूच बिहार तथा कूच आसाम मे भी बहुत काम किया। ५ वे वर्ष जब यह वहाँ से लौटा तब बादशाह की आज्ञा से कामरूप सरकार का फौजदार नियत हुआ। कुछ दिनो तक यह उडीसा का सूबेदार रहा। १९ वें वर्ष मे वहाँ से हटाया जाकर यह दक्षिण की चढ़ाई पर भेजा गया। कुछ दिन यह नानदेर का फौजदार रहा। समय आने पर यह मर गया।

५८१. रहमत खाँ

यह हकीम रुक्नाय के भाई हकीम कुनवा का पुत्र हकीम जिआउद्दीन था, जो अपने समय का प्रसिद्ध हकीम और कवि था। गत शाह अब्बास को इसका सत्संग बहुत पसंद था और शाह कई बार इसके घर पर आया था। बाद को शाह की कृपा न देखकर अकबर के राज्य-काल मे यह हिंदुस्तान चला आया। इसके बारे में इसने यह शैर कहा—उर्दू रूपांतर

गर फलक एक सुबह को मुझसे गिरां होवे सरग।
शाम को बाहर चला चूं आफताब है किश्वरश॥

अकबर तथा जहाँगीर के समय मे इसने आराम से दिन व्यतीत किए। हकीम रुक्नाथ के भाई नसीरा की स्त्री सती खानम ने तालिबाए-आमिली की छोटी पुत्री का पालन पोषण किया था और उससे उक्त खाँ का निकाह हुआ था इसलिए शाहजहाँ के समय इस पर विशेष कृपा हुई। १४ वें वर्ष मे मीर खाँ के स्थान पर यह किरकिराकखाने का दारोगा नियत हुआ और पदवी तथा हथिनी पुरस्कार मे पाया। १८ वें वर्ष मे इसका मंसब बढकर एक हजारी १५० सवार का हो। २२ वे वर्ष मे दाग का दारोगा नियत हुआ और २४ वे वर्ष में इसके मंसब में १०० सवार बढाए गए। २७ वें वर्ष मे मीरबख्शी पद से हटाया जाकर अहमदाबाद प्रात का दीवान तथा किरकिराक खाना का दारोगा नियुक्त किया गया। २९ वें वर्ष में इसका मंसब बढकर डेढ़ हजारी सवार का हो गया। शाहजहाँ की बिमारी के समय जब सुलतान मुराद बख्श ने साम्राज्य का ढंग फैला कर सिक्का और खुतबा अपने नाम कराया तब उक्त खाँ शाहजादा की मित्रता से हट गया और शाहजादा

मुराद बख्श के गिरफ्तार होने पर इसने औरंगजेब की सेवा में पहुँच कर दो हजारी ३०० का मसब पाया और गुजरात प्रांत के दीवान की नियुक्ति पाकर सम्मानित हुआ। दाराशिकोह के अहमदाबाद पहुँचने पर यद्यपि सूबेदार के साथ यह उसके पास गया पर साथ देने से दूर रहा। दारा के अजमेर के पास से भागने पर पुन. इस पर बादशाह की कृपा हुई और ३ रे वर्ष रोशनआरा बेगम की सरकार का दीवान तथा बाद को बयूतात का दीवान नियत हुआ। ८ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। इसके दामाद अब्दुर्रहीम खाँ और पुत्र मुहम्मद सादिक को शोक के खिलअत मिले।

सुलतान दाराशिकोह तथा सुल्तान मुरादबख्श के नाम आ गए हैं इसलिए उनके विषय मे कुछ लिख दिया जाता है। प्रथम अजमेर के पास युद्ध में परास्त होकर अहमदाबाद की ओर भागा और वहाँ के आदमियो से मिलता हुआ कच्छ चला गया। वहाँ के आदमियो में मुरौवत न देखकर सिंध प्रांत की सीमा में चला गया। उस प्रांत के अन्तर्गत धांधर का जमींदार मलिक जीवन, जो दाराशिकोह के पूर्व के एहसान से दबा हुआ था, बडी तपाक से मिला और अपने गृह लिवा गया। इसी समय दाराशिकोह की स्त्री की मृत्यु हो गई और उसके ताबूत को लाहौर पहुँचाने के लिए इसने साथ के कुछ आदमियो को विदा कर दिया। इसके बाद इसने ईरान जाने का निश्चय किया। मलिक जीवन ने प्रकट में अपने भाई को कुछ सैनिकों के साथ रक्षार्थ संग कर दिया पर एक दो पडाव के बाद उन सब ने इस पर आक्रमण कर इसे कैद कर लिया। मलिक जीवन ने इस अच्छी सेवा का समाचार राजा जयसिंह तथा बहादुर खाँ कोका को लिखा, जो दारा का पीछा करने पर बादशाह की ओर से नियत थे। वे कैदी दरबार लाए गए और दूसरे वर्ष आज्ञा के अनुसार मार डाले गए। दूसरा (मुरादबख्श) सिधाई से औरंगजेब की मनोहर बातो पर मुग्ध होकर सलतनत की इच्छा को अपने हृदय पर अंकित करता रहा। इसके हितैषियों ने बार-बार मना किया कि थोड़े आदमियों के साथ औरगजेब के यहाँ जाना उचित नही है पर इससे कुछ लाभ न हुआ। अन्त मे ४ शव्वाल सन् १०६८ हि० को मथुरा के पडाव पर औरंगजेब ने इसे बुलवाकर चालाकी से कैद कर लिया। पहले सलीमगढ दुर्ग मे रखा पर कुछ दिन बाद ग्वालियर दुर्ग मे भेज दिया। इसकी प्रार्थना पर इसकी प्रेयसी सरस बाई को इसका एकांत में साथ देने को भेज दिया। पांचवें वर्ष मे अली नकी के खून के अपराध मे मुरादबख्श को प्राण दंड दिया गया, जिसे इसने अहमदाबाद मे बिना सबूत और गुनाह के मारा था तथा जिसके उत्तराधिकारियों ने दावा किया था।

मिसरा—ऐ वाय बहर बहाना कुश्तंद

(ऐ शोक की एक बहानः से मार डाला)।

इससे तारीख निकलती है।

५८२. रहमतखाँ मीर फैजुल्ला

यह शाहजहाँ के समय का एक मनसबदार था। तीसरे वर्ष जब बादशाह दक्षिण गए और खानजहाँ लोदी को दंड देने और निजामुल् मुल्क दक्षिणी को दमन करने के लिए तीन सेनाएँ भेजी गईं तब यह राजा गज सिंह के साथ नियत हुआ। इसके अनन्तर यह दक्षिण प्रान्त में नियत हुआ और महावत खाँ की मृत्यु पर जब साहजी भोसला ने दौलताबाद के पास पहुँचकर उस प्रांत की बस्तियों तथा गाँवों को लूटना आरंभ कर दिया और बुर्हानपुर के सूबेदार खानदौराँ ने उसे दंड देने का निश्चय किया तब इसको माधो सिंह के साथ उक्त नगर मे छोड गया। आठवें वर्ष इसका मनसब बढकर डेढ हजारी १००० सवार का हो गया। इसके बाद खानदौराँ के साथ जुझार सिंह बुन्देला का पीछा करने में बहुत प्रयत्न करने से नवें वर्ष मे पाँच सौ सवार इसके मनसब में बढाए गए और रहमत खाँ की इसे पदवी मिली। दसवें वर्ष में झंडा पाने के अनंतर इसे अपनी जागीर सरकार बीजागढ जाने की छुट्टी मिली। ग्यारहवें वर्ष मे इसका मनसब बढकर दो हजारी १५०० सवार का हो गया। इसी वर्ष सन् १०४७ हि० मे यह मर गया। इसका पुत्र असदुल्ला छ सदी ६०० सवार के मनसब तक पहुँचा था।

●

५८३. राजू बारहा, सैयद

यह सम्राट् अकबर का एक सर्दार था। यह एक हजारी मनसब तक पहुँचकर २१ वें वर्ष में कुँवर मानसिंह के साथ राणा को दमन करने पर नियत हुआ। २६ वे वर्ष मे राणा को दंड देने के लिए यह जगन्नाथ के साथ नियुक्त हुआ और जब उसका सरदार उसे कुछ आदमियो के साथ मंडलगढ़ मे छोडकर राणा के पीछे चला गया और राणा दूसरे मार्ग से निकल कर बादशाही राज्य में उपद्रव करने लगा तब उक्त सैयद उससे युद्ध करने निकल कर निर्बलो के छुटकारे का कारण हुआ। तीसवें वर्ष मे जगन्नाथ के साथ राणा के पीछे-पीछे गया, जिससे वह बाहर चले गए। इसके अनन्तर शाहजादा सुलतान मुराद के अधीन नियत हुआ, जो मालवा का प्रान्ताध्यक्ष नियुक्त हुआ था। जब ३६ वें वर्ष में शाहजादा राजा मधुकर को दंड देने का साहस कर उसके राज्य मे गया और फिर बादशाह की आज्ञा से मालवा लौट गया तब इसको एक सेना के साथ वहीं छोड गया। इसके बाद दक्षिण में नियत होकर ४० वे वर्ष में अहमद नगर दुर्ग के घेरे मे, जब कुछ शत्रु बादशाह के पड़ाव के पास पहुँचकर हानि पहुँचाना चाहते थे, इसने नियम का ध्यान न छोड़कर उनका सामना किया और अपने कुछ भाइयो के साथ सन् १००३ में मारा गया। जागीर इसके पुत्रो को छोड़ दी गई।

●

५८४. रिआयत खाँ जहीरुद्दौला

यह मुहम्मद अमीन खाँ बहादुर का माइन्दरी भाई था। कुलीज खाँ की पुत्री से इसका विवाह हुआ था। परन्तु भाइयों मे जैसा प्रेम होना चाहिए था वैसा न था। जिस समय निजामुल्मुल्क आसफजाह बहादुर को फर्रुखसियर की गिरफ्तारी पर मालवा का शासन मिला तब यह उसके साथ उस प्रांत को गया। दक्षिण जाते समय यह भी साथ में रहा और दिलावर अली खाँ तथा आलम अली के युद्धो मे इसने अच्छे कार्य दिखलाए, जिससे इसका मनसब बढ़ कर पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया और जहीरुद्दौला की पदवी के साथ मालवा का सूबेदार नियुक्त हुआ परन्तु यह नियुक्ति एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीनखाँ की इच्छा के विरुद्ध थी, जो स्थायी मंत्री था, इसलिए आसफजाह ने इसको वहाँ से बुलाकर बरार प्रान्त के अन्तर्गत बालापुर सरकार का जागीरदार नियत कर दिया। मुबारिज खाँ एमादुलमुल्क के युद्ध में वीरता दिखलाकर यह घायल हुआ और दो दिन बाद सन् ११३६ हि०[1] मे इन घावो के कारण मर गया। इसका पुत्र अजीमुल्ला खाँ था, जो कुलीज खाँ की पुत्री से उत्पन्न हुआ था। इसका निकाह एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ की पुत्री के साथ हुआ था। जिस समय निजामुलमुल्क आसफ़जाह ने मन्त्रित्व पाने पर अपने बड़े पुत्र गाजीउद्दीन खाँ बहादुर फीरोजजंग को उज्जैन की सूबेदारी दी तब इसको उसका प्रतिनिधि बनाकर उस प्रान्त में नियत किया। इसके अनन्तर दरबार पहुँचकर यह अपने श्वसुर के यहाँ रहने लगा। यह बड़ा क्रोधी था। तत्कालीन बादशाह और वजीर के साथ इसका अशिष्ट व्यवहार जन-साधारण मे खूब प्रचलित था। नादिरशाह के समय यह धन वसूल करने को वचनबद्ध था, जो शाहजहानाबाद नगर के निवासियो से लेना निश्चित हुआ था। समय आने पर इसकी मृत्यु हो गई।

---

१. सन् १७२३ ई०।

५८५. रिजवी खां सैयद अली

सदरुस्सुदूर मीरान सैयद जलाल बुखारी का यह द्वितीय पुत्र था, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है। जब शाहजहाँ २० वें वर्ष मे राजधानी से काबुल की ओर रवाना हुआ तब सैयद जलाल को, जो उस समय बीमार था, राजधानी में छोड कर रिजवी खाँ[1] को साथ ले लिया, जिसमें वह पिता का प्रतिनिधि होकर ताल्लुके का प्रबन्ध करे। पिता की मृत्यु[2] पर इसका मनसब दो सौ बढ़कर एक हजारी २०० सवार का हो गया। २१ वें वर्ष में जवाहिरखाने तथा जडाऊ बर्तनों का दारोगा नियत हुआ। उसी वर्ष इसके मनसब में पाँच सदी ५० सवार बढाए गए। २४ वें वर्ष में उक्त दारोगा पद से हटाया जाकर किताबखाना और नक्काशखाना का दारोगा मीर सालिह खुशनवीस के स्थान पर नियत हुआ। २५वें वर्ष १५० सवार इसके मंसब में बढाए गए। २८ वे वर्ष में इसका मंसब बढकर ढाई हजारी ५०० सवार का हो गया, रिजवी खाँ की पदवी मिली और दोस्तक म के स्थान पर अहमदाबाद की बख्शीगीरी तथा वाकिआनवीसी और उस प्रान्त की अमीनी भी इसे मिली। ३० वें वर्ष वहाँ से बदला जाकर दरबार मे उपस्थित हुआ और इसे प्रान्तो के अर्जवकाय. का पद मिला। जब औरंगजेब बादशाह हुआ तब सेवा में उपस्थित होकर दूसरे वर्ष बारह सहस्र वार्षिक वृत्ति पाकर एकातवास करने लगा। ५ वें वर्ष पुनः कृपापात्र होने पर इसे ढाई हजारी ४०० सवार का मसब, खिल्अत और मीनाकारी का जमधर मिला। ९ वे वर्ष में रशीदाई खुशनवीस के स्थान पर बेगम साहिबा की सरकार का दीवान नियत हुआ और सौ सवार इसके मंसब में बढाए गए। १० वें वर्ष में सदर आजम के उच्च पद पर आबिद खाँ के स्थान पर नियत हुआ, खिल्अत मिला और इसका मंसब बढकर तीन हजारी ५०० सवार का हो गया। २४ वें वर्ष सन् १०९१ हि०[3] मे यह मर गया।

---

१. इसका नाम सैयद अली था और बाद में इसे रिजवी खाँ की उपाधि मिली थी।

२. २२ मई सन् १६४७ ई० को लाहौर मे मृत्यु हुई।

३. सन् १६८० ई०।

५८६. रुस्तम खाँ दक्खिनी, सैयद

यह शरजा खाँ सैयद इलयास का पुत्र था। इसके पूर्वजों का स्थान बुखारा था। इनमें से एक हिंदुस्तान आकर कुछ दिन अजमेर के पास रहा और वहाँ के निवासियों के सत्संग से इसने वहाबी मत ग्रहण किया। सैयद इल्यास ने दक्षिण जाकर बीजापुर के शासकों के यहाँ नौकरी कर ली तथा शरजा खाँ की पदवी पाई और सरदारी के पद को पहुँचा। औरंगजेब के जुलूस के ९ वें वर्ष में बादशाही नौकरों के हाथ मारा गया, जो मिर्जा राजा जयसिंह की अध्यक्षता में आदिल खाँ को दंड देने और उसके राज्य को लूटने पर नियत होकर कई युद्ध कर चुके थे। रुस्तम खाँ अपने पिता के स्थान पर सेनापति नियुक्त होकर तथा शरजा खाँ की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। जब बीजापुर के शासनकार्य में दृढ़ता, नियम आदि नहीं रह गए तब आराम से कुछ दिन वहीं व्यतीत किए। ३० वें वर्ष जब बीजापुर विजय हो गया और सिकन्दर आदिल खाँ ने राज भार छोड़ दिया तब यह भी बादशाही सेवा में चला आया, खिलअत, तलवार, मोती की माला संयुक्त जड़ाऊ खंजर, सोने के साज का घोड़ा, चाँदी के साज सहित हाथी, छहजारी ६००० सवार का मनसब और रुस्तम खाँ की पदवी इसने पाई। क्रमशः इसका मनसब पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया। इसके अनंतर खाँ फीरोजजंग के साथ तैनात होकर यह हैदराबाद के अन्तर्गत इब्राहिमगढ़ को, जो उस समय शाहनगढ़ नाम से प्रसिद्ध था, विजय करने भेजा गया। इसके बाद दरबार लौटने पर गोलकुंडा पर आक्रमण करने के दिन प्रयत्न कर यह घायल हुआ। इसके बाद यह सितारा के चारों ओर के प्रांत की रक्षा पर नियत हुआ। ३३ वें वर्ष में उस जिला के उपद्रवियों ने इस पर आक्रमण किया और बहुत देर तक युद्ध होता रहा। अंत में हारकर परिवार के साथ यह कैद हो गया। काफी धन देकर इसने छुट्टी पाई। इसके अनंतर फीरोजजंग के साथ नियत होकर बरार में यह उसका नायब सूबेदार हुआ। ४६ वें वर्ष में मराठों ने इस पर धावा कर इसे कैद कर लिया। ४८ वें वर्ष में छुटकारा पाने पर यह खाँ फीरोज जंग के पास पहुँचा और इसके मसब में एक हजारी १००० सवार कम कर दिए गए। ४९ वें वर्ष में यह कमी फिर बहाल हो गयी। बहादुर शाह के राज्य के आरंभ में दक्षिण की रक्षा पर यह नियत हुआ। कुछ दिन बाद यह मर गया। बरार में इसे बालापुर तथा अन्य महाल जागीर में मिले थे। इसके पुत्रों में से सैयद गालिब खाँ पिता के सामने ही से बादशाही नौकरी में था और आसफजाह के युद्ध में आलमअली खाँ के साथ सन् ११३२ हि० (सन् १७१९ ई०) में मारा गया। सैयद फतह खाँ, सैयद इल्हास खाँ और सैयद उसमान खाँ अन्य पुत्र थे और हर एक के वंशज हैं, जो पैतृक जागीर पर बरार प्रांत में रहते हैं।

५८७. रुस्तम खाँ मुकर्रब खाँ

यह चरकिस जाति का और अलबुर्ज पहाड़ के नीचे का रहनेवाला था। यह अधिकतर सेने में रहता था। आरंभ में निजामुल्मुल्क दक्खिनी के यहाँ नौकर होकर इसने सरदारी मे नाम कमाया और मुकर्रब खाँ की पदवी प्राप्त की। शाहजहाँ के राज्य के ३ रे वर्ष जब बादशाह दक्षिण में आए तब यह निजामुल्मुल्क का मीर शमशेर था और इसलिए शाही सेनाओं से इसका सामना हुआ तथा यह लौट आया। जब निजामुल्मुल्क ने मलिक अम्बर के पुत्र फतह खाँ को, जो इसका वकील और सेनापति था, कैद कर दिया तब इसको अपना सेनापति नियत किया और हमीद खाँ हब्शी को वकील बनाया। इसके कुछ दिनो बाद इसने फतह खाँ को कैद से निकाल कर पहले की तरह वकील तथा सेनापति फिर से बना दिया। मुकर्रब खाँ का मन इस अनुचित व्यवहार से उसकी मित्रता से हट गया और बादशाही नौकरी की इच्छा से चौथे वर्ष आजम खाँ से प्रार्थी हुआ। इसके अनंतर जब बादशाह ने इस बात को सुना तब इसपर कृपा हुई और आज्ञापत्र भेज दिया गया। साना जी घोरिया, जो इसका सहकारी था, आजम खाँ के पास आकर तथा सांत्वना पाकर विश्वस्त हो गया। इसके बाद मुकर्रब खाँ अपने कुल साथियों के साथ बादशाही सेना की ओर रवाना हुआ। आजम खाँ ने अवसर समझ कर पड़ाव के किनारे तक आकर इसका स्वागत किया और अपने खेमें में लाया। बादशाह की ओर से खिलअत, जड़ाऊ खंजर, चार घोड़े, दो हाथी नर व मादा और एक लाख रुपया नकद इसको दिया गया और इसके साथियों के लिये दो सौ खिलअत, एक सौ शाल और सत्तर घोड़े मिले। इसके लिये पाँच हजारी ५००० सवार का मनसब और इसके साथियों के लिये, जो सौ से अधिक थे, योग्य मनसब निर्धारित कर दरबार लिख भेजा। बादशाह ने यह मनसब स्वीकार कर खिलअत, खपवह, जड़ाऊ तलवार, झंडा, डंका, सुनहले जीनसहित घोड़ा और हाथी कृपा कर भेज दिया। इसके कुछ दिनो बाद दरबार पहुँचकर जब यह सेवा में उपस्थित हुआ तब इसे खिलअत, फूल कटार सहित जड़ाऊ जमधर, जड़ाऊ तलवार, सुनहले जीन सहित घोड़ा, हाथी और चालीस सहस्र रुपया मिला। ५ वें वर्ष माही व मरातिब पाकर बादशाह के आगरे के पास पहुँचने पर सम्भल जाने की छुट्टी पाई, जो इसकी जागीर नियत हुई थी। ८ वे वर्ष रुस्तम खाँ की पदवी पाकर यह शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ नियत हुआ, जो जुझार सिंह बुंदेला को दंड देने के लिये भेजी गई सेना की सहायता करने को नियुक्त हुआ था। १० वें वर्ष सैयद खानजहाँ बारहा के साथ आदिलशाही राज्य में अधिकार करने जाकर युद्धों में इसने अच्छा कार्य दिखलाया और सेवा में पहुँचने पर दक्षिण से लौटते

समय अपनी जागीर पर जाने की छुट्टी पाई। ११ वें वर्ष में जिस समय बादशाह सोरो की ओर जा रहे थे यह सेवा में उपस्थित होकर तथा कृपाएँ पाकर अपनी जागीर को लौट गया। १३ वें वर्ष में इसके लिये एक हाथी दरबार से भेजा गया। १५ वें वर्ष में जब बादशाह लाहौर मे ठहरे हुए थे तब यह दरबार में पहुँचकर शाहजादा मुराद बख्श के साथ, जो जम्मू के जमीदार जगत सिंह को दंड देने के लिये नियत हुआ था, उस प्रांत को गया और वहाँ के दुर्गो को लेने में बडी वीरता दिखलाई। उक्त शाहजादे के साथ लौटने पर बादशाही सेवा में उपस्थित हुआ और शाहजादा दारा शिकोह की अधीनता में, जो दुर्ग कंधार की सहायता के लिये भेजा जा रहा था, उस ओर जाने की तैयारी की। इसे खिलअत और सोने के साज का घोडा मिला तथा इसके मनसब के एक सहस्र सवार दो अस्पा सेह अस्पा कर दिए गए। इस समय इसका मनसब पाँच हजारी ५००० सवार का था। वहाँ से लौटने पर इसे जागीर पर जाने की छुट्टी मिली। १६ वें वर्ष मे दरबार आकर तथा सेवा मे कुछ दिन रहने के बाद यह अपनी जागीर पर चला गया।

यहाँ से जब बादशाह ने बलख और बदख्शाँ विजय करने का विचार कर काबुल के सूबेदार को इस बारे में आज्ञा भेज दी तब १९ वें वर्ष में यह अमीरुल् उमरा का सहायक नियत होकर काबुल को रवाना हुआ और फिर आज्ञानुसार जाड़ा आरंभ हो जाने के कारण रोहतास मे ठहर गया। बादशाह के कशमीर से लौटते समय लाहौर पहुँचने पर यह सेवा में उपस्थित हुआ और शाहजादा मुराद बख्श के साथ उक्त चढाई पर नियत हुआ। शाहजादे ने बायें भाग की सरदारी पर इसे नियुक्त किया। बलख के विजय के अनंतर शाहजादा ने अनुभव की कमी से अपने सम्मानित पिता की इच्छा के विपरीत उस प्रांत में रहना नही स्वीकार किया तब सादुल्ला खाँ आज्ञा के अनुसार उस प्रांत में गया और इसको कुछ सेना के साथ अन्दखूद व उसके अंतर्गत प्रांत का प्रबंध सौपा। वहाँ तक पहुँचने मे अल-अमानो से दो बार युद्ध कर यह उन मे विजयी हुआ। २० वे वर्ष मे इसके उपलक्ष्य मे इसके मंसब के एक सहस्र सवार और दो अस्पा सेहअस्पा कर दिए गए। जब शाहजादा महम्मद औरंगजेब बहादुर वहाँ पहुँचने पर नजर मुहम्मद खाँ को आज्ञा के अनुसार बलख सौप कर लौटा तब इसने भी दरबार में उपस्थित होकर अपनी जागीर पर जाने की छुट्टी पाई। २१ वें वर्ष मे सुलतानी जलूस के उत्सव मे शाहजहाँनाबाद के नये महलो में उपस्थित होकर तथा खिलअत पाकर इसे अपनी जागीर पर जाने की छुट्टी मिली। इसके अनंतर अमीरुल उमरा की सहायता को यह काबुल गया। २२ वें वर्ष मे जब क़ज़िलबाश सेना के पास आने का समाचार सुनाई पड़ा तब सरदारों के नाम बुलाने का आज्ञा पत्र भेजा गया। तब यह भी काबुल से आकर शाहजादा औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार की ओर भेजा गया

और इसे चन्दावल की सरदारी मिली। उस प्रान्त में पहुँचने पर कुलीजखाँ का सहायक होकर यह बुस्त की ओर गया और कजिलबाशों के युद्ध मे दृढ़ता के साथ जमकर उन्हें पूरा दंड दिया। उन सब के भागने पर तोपखाने के सामान, जिसे वे भागते समय छोड गए थे, घोडे, भाले तथा बहुत से युद्धीय सामान पर अधिकार कर लिया। इस सेवा के पुरस्कार मे २३ वें वर्ष में इसके मनसब के बचे हुए सवार दो अस्पा सेह अस्पा कर दिए गए और फीरोजजंग की पदवी मिली। इसी वर्ष दरबार मे पहुँचकर ग्यारह अदद छोटी तोप, जिन्हें इसने शत्रु से छीन लिया था, बादशाह को भेट किया। इसे खिलअत, जीगा, फूलकटार: सहित जड़ाऊ तलवार, सोने की जीन सहित घोडा, चाँदी के साज सहित हाथी और एक हथिनी मिली और इसका मनसब बढाकर छः हजारी ५००० सवार दो अस्पा सेह अस्पा कर दिया गया, जिससे यह सम्मानित हुआ। २५ वें वर्ष मे फिर उक्त शाहजादे के साथ उसी चढाई पर यह नियत हुआ और मोर्चे बाँधने और दुर्ग तोडने के अन्य कार्यों में इसने बहुत प्रयत्न किया। २६वें वर्ष मे शाहजादा दाराशिकोह के साथ यह उसी चढाई पर फिर गया। जब घेरे का समय पास आया तब शाहजादे के संकेत पर यह आगे बढकर १७वें वर्ष मे चारों ओर निरीक्षण करने लगा। शाहजादे के उस प्रांत के पास पहुँचने पर यह बुस्त की ओर गया और मोर्चे बाँधकर उसके लेने का प्रयत्न करने लगा। जब कंधार का विजय करना रुक गया और आज्ञानुसार शाहजादा लौटा तब शाहजादे के आदेश पर बुस्त दुर्ग को वीरान कर तथा उसमें के बचे हुए सामान को जलाकर यह भी लौट आया। २८ वें वर्ष मे यह जुम्लतुल मुल्क सादुल्लाखाँ के साथ दुर्ग चित्तौड़ तोडने गया। २९ वे वर्ष मे इसका मनसब बढकर छ हजारी ६००० सवार पाँच सहस्र सवार दो अस्पा सेहअस्पा का हो गया और शाहजादा दाराशिकोह की पार्थना पर बहादुर खाँ बाकी बेग के स्थान पर यह काबुल का सूबेदार नियत हुआ और काबुल तथा पेशावर के नगर इसे जागीर मे में मिले। ३१ वे वर्ष के अंत में यह वहाँ से हटाए जाने पर दरबार आया और सामूगढ के पास युद्ध मे, जो दाराशिकोह तथा औरंगजेब के बीच में हुआ था, सिपहर शिकोह के साथ बाएँ भाग मे नियत था और युद्ध मे वीरता दिखा कर सन् १०६८ हि०, सन् १६५६ ई० मे गोली से मारा गया।

५८८. रुस्तम खाँ शिगाली

इसका नाम यूसुफवेग था। शाहजादा शाहजहाँ की कृपा तथा परवरिश मे यह साधारण सैनिक तथा अहदी से ऊँचा सरदारी पद पाकर सेह बीस्ती मनसब से पाँच हजारी मनसब प्राप्त कर झंडा और डंकावाला अमीर हो गया। शाहजादा की ओर से यह उसका प्रतिनिधि होकर गुजरात की सूबेदारी पर नियत हुआ। १८ वे वर्ष जहाँगीरी मे जब बादशाही सेना युवराज शाहजादा का पीछा करते हुए चादा घाटी मे पहुँची, जो मालवा प्रात से होकर जाती हैं, तब शाहजहाँ के भय से वह घाटी को पार करने का साहस न कर चाहती थी कि वर्षाऋतु उक्त घाटी के उसी ओर व्यतीत करे, पर रुस्तमखाँ ने बहाउद्दीन तोपची के साथ, जिसे शाहजहाँ ने कृपा करके बरकंदाज खाँ की पदवी दी थी, नमकहरामी तथा स्वामिद्रोह से बादशाही सेनापति महाबत खाँ को लिखा कि बिना रुके रवाना हो और हम सेना में उपद्रव होते ही उसे अस्तव्यस्त कर आपसे मिल जायेगे। इसपर महाबत खाँ प्रबल होकर चादा की ऊँची घाटी को पार कर गया। शाहजादा शाहजहाँ माडू मे ठहरा हुआ था। उसने रुस्तमखाँ को, जो उसके अच्छे सरदारो का अग्रणी और उसके सरदारो का सरदार था तथा जिसकी वीरता और अनुभव से वह परिचित था, सेना का अध्यक्ष बनाकर अग्गल की चाल पर आगे भेज दिया। दक्षिण की सेना के एक भाग को बर्गीगिरी करने को साथ भेज दिया। इन सबने दो दिन मे बा-शाही सेना मे बडा उपद्रव मचा दिना। तीसरा दिन निश्चित था कि शाहजादा अग्गल सेना में स्वय पहुँचकर शत्रु पर विजय प्राप्त करेगा पर यूसुफ शिगाली ने पालन पोषण करने के स्वत्व और स्वामिभक्ति को भुलाकर निमकहरामी की धूल अपने जीवन पर डाल ली और स्वामीद्रोह का मार्ग पकडकर महाबत खाँ के पास चला गया। इस प्रकार सरदार के चले जाने पर सेना का प्रबन्ध बिगड गया तथा उसे लाचार हो भागना पडा। ऐसी कृतघ्नता तथा द्रोह ऐसे परोपकारी के साथ देखकर दूसरी पर क्या भरोसा या आशा की जा सकती है। शाहजादे को किसी पर विश्वास नही रह गया और उसने दक्षिण को लौट जाना इसी समय उचित समझा। फुर्ती से नर्बदा नदी पार कर बुर्हान पुर में कुछ दिन ठहरा रहा। रुस्तमखाँ महाबत खाँ के द्वरा जहाँगीर बादशाह के सरदारो मे भर्ती हो गया परंतु कृतघ्नता तथा स्वामीद्रोह का स्वभाव उस समय हेय समझा जाता था और वैसा आदमी सर्वत्र शंका की दृष्टि से देखा जाता था। बादशाही सेवा मे कुछ योग्यता न दिखलाने से इस पर विश्वास नही रह गया। जब शाहजहाँ बादशाह हुआ तब यह अपने कर्म से सशकित होकर जागीर तथा मनसब को स्वयं छोडकर बड़ी दरिद्रता तथा परेशानी मे दिन बिताने लगा। कहते हैं कि शाहजहाँ ने इसी बादशाहा सरदार से,

जिसने उससे उदंडता का व्यवहार किया था या बदसलूकी दिखलायी थी, कुछ भी बदला लेने का प्रयत्न नही किया परन्तु रुस्तम खाँ ने जैसा किया था वैसा ही उसने दंड पाया कि सवारी के लिए एक घोड़ा तथा एक सेवक इसके पास नही रह गए। यह गली गली घूमा करता था और अंत में मर गया।

●

५८६. रुस्तमदिल खाँ

यह जान सिपारखाँ बनी मुख्तार का लड़का था। यह मिर्जा खलील खान-जमाँ का नाती था। यह कर्मशील अमीरजादो मे से एक था अपने पिता के यहाँ काम करने तथा मामिलो के समझने मे इसने प्रसिद्धि प्राप्त की। हैदराबाद प्रांत के राजनीतिक कार्यों को यह पूरा करता था, जहाँ का शासन इसके पिता को मिला था। जब ४१ वें वर्ष में इसका पिता मर गया[३] और उस प्रांत का शासन शाह-जादा महम्मद कामबख्श के प्रतिनिधियो को मिला तब वही से रुस्तमदिलखाँ भी प्रतिनिधि नियत किया गया, जो अपने पिता के समय से वहाँ का कार्य कर रहा था और उस प्रांत के थोड़े या कुल भाग पर जिसका अधिकार था। इसी समय पाँच सदी ५०० सवार बढ़ने से इसका मनसब डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। ४८ वें वर्ष मे सलाबत खाँ के स्थान पर यह बीजापुर कर्णाटक का फौज-दार नियत हुआ और पाँच सदी ५०० सवार इसके मनसब में बढ़ाया गया। ४६ वें वर्ष में दाऊदखाँ के स्थान पर फिर से यह हैदराबाद की सूबेदारी का नायब नियत हुआ और इसका मनसब बढ़कर ढाई हजारी २५०० सवार का हो गया। जब आलमगीर बादशाह मृत्यु-मुख में समा गया तब काम करने की इच्छा से इसने बहुत सी सेना एकत्र कर उपद्रवियो को दंड देने मे चारो ओर बहुत प्रयत्न किया। एक वर्ष तथा कई महीने तक स्वच्छन्द था तथा मनमाना कार्य करता रहा। बाद-शाहजादा महम्मद कामबख्श, जो पिता की ओर से बीजापुर का सूबेदार नियत था, साम्राज्य के विपल्लव के समय राज्य जीतने के लिए जब बाहर निकल आया तब अहसनखाँ उर्फ मीर मलंग को, जो उसका मीर बख्शी तथा सिपहसालार था, कर्णाटक भेज कर जो कुछ समय पर हाथ आया, उसे ही गनीमत समझ कर दुर्ग गोलकुण्डा और हैदराबाद को विजय करने के लिए उस ओर चला गया। उक्त खाँ के पास चार पाँच सहस्र सवार चुने हुए थे पर शाहजादा इसका हिसाब न कर मार्ग तै करने लगा। यद्यपि अहसनखाँ की कार्यकुशलता और बातो मे गोलकुंडा का

---

३. सन् १११३ हि०, सन् १७०२ ई०।

दुर्गाध्यक्ष नही आया पर रुस्तमदिलखाँ उसकी चापलूसी और बातो मे आ गया और कुरान की सौगन्ध के साथ प्रतिज्ञा हो जाने पर इसकी शाहजादे की ओर से दिल-जमई हो गई और यह स्वागत करने गया।

कहते हैं कि शाहजादा बडी बेसामानी और परेशानी मे अपने साहसहीन तथा फटेहाल आदमियो के साथ सवार होकर आया और रुस्तम दिलखाँ अपनी सजी हुई सेना के साथ स्वागत को पहुँचा। उस समय यह जो चाहता वह कर सकता था परन्तु अपने वचन का विचार करके सिवाय सेवा के और किसी बात को मन में स्थान न देकर यह उसे नगर मे लिवा गया और स्वामिभक्ति के विचार से दुर्ग को घेरने का राय न दे कर आमिलो,महाल की जब्ती और महसूल व आय की गिरदावरी उसे सौप दी। शाहजादे की सरकार मे अहसनखाँ के सिवा कोई विश्वास योग्य सेनापति और सरदार न था और उसी से इसके काम का संबंध था, इसलिए आपस में साथ-साथ जलसे, भोज और उपहार का आदान प्रदान होता रहा। हकीम मुहसिन तकर्रुब खाँ, जो वजीर था और यहतदाखाँ, जो मुसाहिबी के घमंड में चूर था, दोनो ने द्वेष के कारण, बराबरी के आदमियों में आ जाता है, क्रुद्ध होकर कामबख्श को समझा दिया कि अहसन खाँ और रुस्तमदिलखाँ दोनो मिलकर बादशाह को कैद करना चाहते हैं। उस मूर्ख, पागल तथा मित्र को न पहिचानने वाले ने तुरन्त एक पत्र रुस्तम दिलखाँ को लिखा कि हम बहादुरशाह को उत्तर मे पत्र लिख रहे हैं, तुमसे राय करना है इस लिए जल्दी आओ। जब यह उपस्थित हुआ तब इसको तस्बीहखाने मे बैठाकर स्वयं महल में चला गया। लोगों ने इस पर आक्रमण कर इसे कैद कर लिया। तीन दिन के बाद उस अत्याचार पीडित सैयद को हाथ पैर बाँधकर अपनी सवारी के हाथी के आगे छोडवा दिया। उसने बहुत चाहा कि वह इसको कुचल डाले पर उस स्वत्व के पहचानने वाले पशु ने एक कदम भी आगे न बढ़ाया तब दूसरे हाथी को लिवा लाए और इस प्रकार इसके मारे जाने पर शव को शहर भर मे घुमवाया।[1] प्रसिद्ध आमिली महल के पास गड़वा दिया। इसकी स्त्री अपने घर के चारो ओर प्रबन्ध कर युद्ध के लिए तैयार हो गई। कुछ लोग मारे गए तथा घायल हुए। अन्त मे इसको एक पुत्र के साथ तथा रुस्तमदिल खाँ के भाई मीर हुसैन को कैद कर घर जब्त कर लिया। उक्त स्थान अब तक हैदराबाद के सूबेदारो का निवास स्थान है। इसके पुत्रो मे से जान सिपार खाँ था, जिसे दादा की पदवी मिली थी। इस समय योग्यता रखता है। सरकार मेहकर के अन्तर्गत परगना अमरापुर का आधा भाग इसकी जागीर मे बहुत दिनों से है। यह अब तक आबाद महालो मे से है। यह दो बार आसफजाह की सरकार खानसामा

---

१. सन् १७०७ ई० की घटना है।

रह चुका है। लिखते समय यह सरकार का दीवान है जो बहुत अच्छा पद है परन्तु ये सेवाये इनके सरकार मे स्थाई नही है और उस उच्च पद पर पहुँचकर भी लोग बदल दिए जाते हैं, इस लिए निश्चित समय को किसी प्रकार व्यतीत कर देते हैं।

५६०. मिर्जा रुस्तम सफवी

यह मिर्जा मुजफ्फर हुसेन कंधारी का छोटा भाई था। उसके वृत्तांत मे लिखा जा चुका है कि ईरान के शाह सुल्तान मुहम्मद खुदावदा ने कंधार मिर्जा मुजफ्फर हुसेन को तथा जमीदावर मिर्जा रुस्तम को उसके दो छोटे भाइयो मिर्जा अबू सईद और मिर्जा संजर के साथ दिया था। यह प्रान्त कंधार के विचार से बहुत हेय था और मिर्जा तथा उसके भाइयो के लिए उपयुक्त नही था। इसीलिए इन्होने चाहा कि सीस्तान को मलिक महमूद से लेकर अपना अधिकार बढ़ाएँ, जो वहाँ के पुराने शासको के वंश का था और शाह इस्माइल द्वितीय की मृत्यु पर वहाँ अधिकृत हो गया था मुजफ्फर हुसेन मिर्जा ने मलिक महमूद पर चढाई की और युद्ध के अनंतर उसकी पुत्री से विवाह कर वह प्रांत उसको पूरा छोड़ दिया। इससे दोनो भाइयो मे वैमनस्य हो गया। रुस्तम मिर्जा ने दो बार हमजाबेग लिल्ला की सहायता से कंधार पर चढाई की पर कुछ नही हुआ।

जब खुरासान के बहुत से नगर उजबको द्वारा लूटे गए और वहाँ का कोई खान सर्दार नही रह गया तब मिर्जा जमीदावर से फराह जाकर वहाँ अधिकृत हो हो गया। किरात मे उजबको से युद्ध कर इसने बड़ी वीरता तथा साहस दिखलाया इसके अनंतर सीस्तान विजय करने की धुन मे उस पर चढ़ाई की। मलिक महमूद ने कुछ दिन तक घेरा उठाने के अनंतर भेंट कर सेवा की रस्म पूरी की। मिर्जा ने मस्ती में अदूरदर्शियों के बहकाने से मालिक को कैद कर दिया। उसके पुत्र जलालुद्दीन ने सेना एकत्र कर धावा कर दिया और मिर्जा मलिक महमूद को छुड़ा लिया। जब रुस्तम मिर्जा उसका सामना न कर सका तब जमीदावर की ओर चला और उसने इसका पीछा किया। निरुपाय हो युद्ध के लिये लौटा पर हार गया और लोगो की दृष्टि मे गिर गया। बड़ा भाई अवसर की घात मे था। इसलिये उसने जमीदावर पर भी अधिकार कर लिया। रुस्तम मिर्जा ने फुर्ती से आकर किलात ले लिया। एक दिन यह शिकार को गया था कि बयात जाति ने चाहा कि उस पर अधिकृत हो जायँ। मिर्जा की माँ दुर्ग की रक्षा मे लग गई और गोली से एक

नमकहराम मारा गया, जिसने उस बुड्ढी पर गोली चलाई थी। यद्यपि मिर्जा ने बहुतो को बदले की तलवार से मरवा डाला पर संसार का रुख अपने अनुसार न देखकर तथा उस अशातिमय प्रात पर अधिकार करने के लिये हिंदुस्तान की सेनाओं के आने का शोर सुनकर इसने गजनी के अध्यक्ष शरीफखाँ अतगा से मित्रता कर बादशाही सेवा का प्रार्थी हुआ। इसके इच्छानुसार बुलाने का फर्मान भेजा गया। अकबर के राज्य के ३८ वें वर्ष सन् १००१ हि० मे मिर्जा चिनाव नदी के किनारे पहुँचा। करा बेग के हाथ सरपर्दा, खेमे, कालीन तथा फर्राशखाने के दूसरे समान बादशाही सरकार से भेजे गए। इसीके पास हकीमुल्मुल्क के हाथ जड़ाऊ खजर भेजा गया। जब यह पास पहुँचा तब शरीफखाँ, आसफखाँ, शाहबेग खाँ तथा अन्य सर्दार इसके स्वागत को नियत हुए। लाहौर से चार कोस पर दशहरा के जशन पर खान खानाँ तथा जैन खाँ कोका द्वारा अपने छोटे भाई संजर मिर्जा, चार पुत्र मुराद, शाहरुखाँ हसन व इब्राहिम तथा चार सौ तुर्कमानो के साथ सेवा में उपस्थित हुआ। इसके बडे भाई को प्रसन्न करना था इसलिये पाँच हजारी मनब, एक करोड़ मुरादी तनका पुरस्कार और मुलतान तथा बिलूचिस्तान के बहुत से पर्गने जागीर मे दिए, जो कंधार से बढ़कर थे। कुछ दिन बाद झंडा व डंका भी इसे मिल गया। मिर्जा अबू सईद ने भी जो कंधार में रह गया था, आकर बादशाही सेवा स्वीकार कर ली।

जब मिर्जा के आदमियो ने मुल्तान में बहुत अत्याचार किया तब ४० वे वर्ष मे इसे चित्तौड़ सरकार देकर वहाँ बिदा कर दिया। वह किसी कारण से सर्हिंद लौट गया। जब राजा बासू तथा उत्तरी पर्वतो के कुछ उपद्रवियों ने विद्रोह किया तब ४१ वे वर्ष मे पठान (कोट) तथा वहाँ की भूमि मिर्जा को वेतन में देकर उधर भेज दिया। आसफखाँ सहायता के लिए साथ भेजा गया पर इन दोनो में अनबन हो गई। राजा बासू ने मऊ दृढ कर युद्ध की तैयारी की। बादशाह ने राजा मानसिंह के पुत्र जगतसिंह को वहाँ भेजकर मिर्जा को दरबार बुला लिया। ४३ वें वर्ष में रायसेन तथा उसके अन्तर्गत भूमि जागीर में मिलने पर यह वहाँ गया।

जब अहमद नगर के घेरे मे बहुत देर हुई और सेना परिश्रम से घबड़ा गई तथा बलवाइओ ने उपद्रव खडा किया तब सुलतान दानियाल ने सहायता की प्रार्थना की। बादशाह ने बुर्हानपुर से नई सेना मिर्जा की अधीनता में तथा एक लाख अशर्फी भेजी। इसके बाद मिर्जा दक्षिण के सहायको मे रहा इसने खानखानाँ की पुत्री से अपने पुत्र मिर्जा मुराद की मँगनी की। उस सेनापति की सहायता से बहुत दिनो तक तमुरणी कस्बे मे, जो अब जफरनगर के नाम से प्रसिद्ध हैं, निवास किया। जहाँगीर के ७ वें वर्ष सन् १०२१ हि० मे मिर्जा गाजी तर्खानु के स्थान पर ठट्टा का शासक नियत हुआ और दो लाख रुपए सहायता के लिए पाए।

जहाँगीर ने न्याय तथा प्रबंध के बहुत से उपदेश देकर अर्गूनियों को, जो कुछ वर्षों से उस प्रांत पर अधिकृत थे, खुसरू बेग चारकिन के साथ, जो उस वंश का चार पीढ़ी से मंत्री था, भेजने की ताकीद की कि कहीं विद्रोह की शंका न उठे। मीर अब्दुर्रज्जाक मामूरी सहायता के लिये साथ भेजा गया कि उस देश की आय पहले तथा वर्तमान की आय के अनुसार निश्चित कर मिर्जा तथा उसके अनुयायियों को वेतन में देवे। मिर्जा ने अर्गूनियों से बुरा व्यवहार किया तथा वहाँ के निवासियों के साथ साथ भी उदारता के विरुद्ध इस प्रकार बर्ताव किया जो मुरौवत तथा वीरता के अयोग्य था। अंत में यह उस पद से हटाया गया। जब दरबार आया तब बहुत से लोग न्याय माँगने आए। इसपर मिर्जा अनीराय सिंहदलन को सौंपा गया कि उन सबका जवाब देवे। कुछ दिन बाद जहाँगीर ने अपने पास बुलाकर इसपर कृपा की और मिर्जा की पुत्री की सुलतान पर्वेज के साथ सगाई की गयी। इसके अनंतर इसे छः हजारी मंसब देकर इलाहाबाद का सूबेदार नियत किया।

जब शाहजादा शाहजहाँ ने बंगाल से आगे बढ़कर पटना तथा बिहार पर अधिकार कर लिया तब अब्दुल्लखाँ ने अगाऊ रूप में फुर्ती से पहुँचकर झूसी में, जो इलाहाबाद के सामने गंगा के उस पार है, युद्ध की तैयारी की। मिर्जा दुर्ग में जा बैठा उक्त खाँ के पास नावें तैयार थीं इसलिए तोप बंदूक के साथ नदी पार कर नगर में चला आया। यद्यपि शाहजहाँ के मीर आतिश रूमीखाँ ने वचन दिया कि थोड़े ही समय में दुर्ग विजय हो जाएगा पर अब्दुल्लाखाँ धैर्य से घबड़ाकर झूसी लौट गया। कुछ दिन भी न बीते थे कि बादशाही सेना के आ पहुँचने का शोर मचा। मिर्जा इस कठिनाई से छुट्टी पाकर आराम करने लगा। २१ वें वर्ष में यह बिहार का सूबेदार नियत हुआ। शाहजहाँ के राज्य के १ म वर्ष में बिहार की सूबेदारी से हटाए जाने पर यह दरबार आया। वय अधिक होने के साथ बीमारी के कारण इसे नौकरी से छुट्टी मिल गई तथा एक लाख बीस हजार रुपए की वार्षिक वृत्ति मिली जिसमे राजधानी आगरा में जीवन व्यतीत करे। ६ ठें वर्ष में शाहजादा मुहम्मद शुजाअ का मिर्जा की पुत्री से निकाह हुआ। इसकी तारीख—मिसरा—

मेहदे बिलकीस बसरे मंजिले जमशेद आमद

(बिलकीस का पालना जमशेद के घर पर आया) से निकलती है। ७२ वर्ष की अवस्था पाकर सन् १०५१ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। कहते हैं कि मिर्जा की मृत्यु पर जब आगरा के मुतसद्दियों ने चाहा कि इसके माल को जब्त करलें तब मिर्जा की स्त्री ने लौंडियों को मर्दाना कपड़ा पहिनाकर तथा बंदूकें देकर युद्ध की तैयारी की और कहा कि हमारे साथ अन्य सर्दारों सा व्यवहार नहीं किया जा सकता। उन सबने हाथ खींचकर शाहजहाँ के दरबार में पत्र लिखकर भेज दिया। बादशाह ने प्रसन्न होकर हाथियों के सिवा सब क्षमा कर दिया।

मिर्जा दुनियादार आदमी था और समय की प्रकृति जानता था। अपने बड़े भाई से बढ़कर आराम पसंद तथा नियम का ज्ञाता था। एक दिन शिकारगाह में रायसाल दरबारी के पुत्र का बाज़ा वृक्ष पर बैठा था, जिसे मिर्जा के साथियों ने पकड़ लिया। कुछ राजपूत युद्ध के लिये उठे। मिर्जा आराम के स्थान से उस उपद्रव स्थल पर गया और एकाएक इसे तलवार की चोट हाथ पर लगी। इसने समझदारी से उस कुमार्गी को बँधवाकर रायसाल के पास भेजवा दिया। अकबर ने मिर्जा की वीरता तथा सहनशीलता की प्रशंसा की। यह सहृदय था तथा इसका उपनाम फिदाई था। ये शैर उसके है—अर्थ—

ईमान के बिछावन पर अपने हृदय को चुन दिया।
ईश्वर-ज्ञान की गोटी को टेढ़ा खेला।
बुत की भौं को अपना किबला बना लिया।
मुसलमानी' को ताक पर रख दिया॥

यह हजल (व्यंग्यात्मक कविता) अच्छी लिखता था। इसका बड़ा भाई मिर्जा मुजफ्फर हुसेन, जिससे इसका वैमनस्य था, जब कंधार से आया तब इसने यह रुबाई कहा—अर्थ

वह अंधा जो द्वेष के मार्ग मे पड़ा हुआ है।
दज्जाल न कहें तो दज्जाल का गधा है॥
कहते है कि ईरान मे ठंडक आती है।
ऐ सिमूम की वायु स्वागत का समय है॥

यह प्रसिद्ध किता इसी का है—अर्थ

ऐ मित्रो इससे पहिले तेज पंजेवाले जुर्रः
बाज का उल्लेख हो रहा था।
जिस शिकार पर उसको डालता था।
कभी मैदान न छोड़ता न देर करता।
अब वह बाज पर फटा तथा निर्बल है,
मेरे हाथ मे तसमा और जोड़ा मुर्चे का।

मिर्जा के पुत्रो का वृत्तात अलग दिया गया है, जो सभी प्रसिद्ध थे। इसके दोनो भाई मिर्जा अबू सईद और मिर्जा संजर सन् १००५ हि० मर गए।

५६१. रूहुल्ला खाँ खानःजाद खाँ

यह प्रथम रूहुल्ला खाँ का पुत्र था। आरंभ में योग्य मनसब तथा खानःजाद खाँ की पदवी पाकर २८ वें वर्ष जुलूस औरंगजेब में यह रखेली खास उदैपुरी महल को औरंगाबाद से अहमदनगर लाने को, जहाँ बादशाह थे, नियत हुआ। ३३ वें वर्ष में दुर्ग फीरोजनगर उर्फ रायचूर इसके पिता रूहुल्ला खाँ के घोर प्रयत्न से विजय हो गया था, इसलिये इस पर शाही कृपा हुई और इसका मसंब बढ़कर डेढ़ हजारी ६०० सवार का हो गया। ३५ वें वर्ष मे इसका मंसब बढकर दो हजारी ८०० सवार का हो गया। ३६ वें वर्ष मे इसके पिता की मृत्यु पर इसका मंसब वढकर ढाई हजारी १००० सवार का हो गया और मुखलिस खाँ के स्थान पर यह कोरबेग पद पर नियत हुआ। ३८ वें वर्ष मे जिलो के सेवकों का दारोगा और फिर मुख्तार खाँ के स्थान पर यह मीर आतिश नियुक्त किया गया तथा पाँच सदी मंसब बढाया गया। ३९ वें वर्ष मे सेना के साथ सता घोरपदे को दड देने भेजा गया। दैवयोग मे भारी घटना घटी, जिसका विवरण कासिम खाँ किरमानी[1] के वृत्तांत मे दिया गया है, और जिसस साथ का कुल सामान देने पर इसे मरहठो से छुटकारा मिला था। बादशाह ने यह समाचार सुनकर इसे बीदर प्रांत का प्रवंध सौंपा। ४० वे वर्ष के अंत मे दरबार आकर ४१ वें वर्ष में रूहुल्ला खाँ की पदवी पाई और फाजिल खाँ बुर्हानुद्दीन के स्थान पर, जिसने त्याग पत्र दे दिया था, खानसामाँ का कार्य इसे मिला। इसके अनंतर सयादत खाँ सैयद ओगलाँ के स्थान पर यह दीवान खास का दारोगा भी साथ साथ नियत हुआ। ४३ वे वर्ष में जुल्फिकार खाँ के स्थान पर जिलो का दरोगा नियत हुआ। सितारा दुर्ग तथा परली के लेने में अच्छा प्रयत्न करने से ४४ वें वर्ष मे यह मुखलिस खाँ के स्थान पर द्वितीय बख्शी नियत हुआ और सखरलना गढ़ के विजय पर दो सौ सवार इसके मंसब मे बढाए गए। ४८ वे वर्ष सन् १११५ हि० मे पूर्ण यौवन मे इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्रगण खलीलुल्ला खाँ और एतकाद खाँ को शोक का खिलअत घर पर भेज दिया गया, जिसमें दूसरे को बाद मे रूहुल्ला खाँ की पदवी मिली थी, वे सेवा में उपस्थित होकर सलाम बजा लाए। रूहुल्ला खाँ की पुत्री को पाँच सहस्र के रत्न देकर सांत्वना दिलाई गई।

---

१ ये दोनों दुधेरी दुर्ग मे घिर गए थे और एक महीने के घेरे पर कासिम खाँ विष खाकर मर गया तथा रूहुल्ला खाँ कुल युद्धीय सामान देकर तथा संधि कर चला आया। हिस्ट्री ऑव मराठा पीपुल, पारसनीस किनकेड भाग २ पृष्ठ ८५-६।

५६२. रूहुल्ला खाँ प्रथम

यह खलीलुल्ला खाँ यज्दी का द्वितीय पुत्र था। औरंगजेब के दूसरे वर्ष के अंत में अमीरुल् उमरा शायस्ता खाँ की पुत्री से विवाह निश्चित होने पर इसका मनसब बढकर डेढ हजारी हो गया और खाँ की पदवी मिली। ६ ठे वर्ष में अहदियो के मीर बख्शी का पद शाही कृपा से इसको मिला। १० वे वर्ष मे इसका मनसब दो हजारी हो गया और इसे आख्तावेगी की सेवा मिली। १६ वे वर्ष में यह धामुनी की फौजदारी पर नियत हुआ पर उसी समय किसी कारण से इसका मनसब छिन गया। १८ वर्ष में इसका डेढहजारी ४०० सवार का मनसव वहाल हुआ। १९ वे वर्ष में यह फिर आख्ता बेगी पद पर नियत हुआ। २० वे वर्ष में यह अशरफ खाँ के स्थान पर खानखामाँ के उच्च पद पर नियत किया गया। २२ वे वर्ष मे दाराखाँ के स्थान पर यह मीर आतिश बनाया गया। २४ वे वर्ष मे अकिल खाँ खवाफी के स्थान पर द्वितीय बख्शी नियत किया गया। जिस समय बादशाह दक्षिण की ओर गए यह काम करने की इच्छा रखने तथा स्वामिभक्ति के कारण उपद्रवियो को दंड देने के लिये नियत हुआ। २६ वे वर्ष में इसकी माता हमीदा बानू बेगम जो औरगजेब की मौसी थी, मर गई। नवाब जेबुन्निसा बेगम ने, जो औरगजेब की द्वितीय पुत्री[1] और सब पुत्रियो में पिता को विशेष प्रिय थी, रूहुल्लाखाँ के घर जाकर शोक मनाया और शाहजादा मुहम्मद कामबख्श इसको शोक से उठाकर सेवा में लिवा लाया। बादशाही कृपा प्राप्त करके यह लौट गया। इसी वर्ष यह कोंकण की ओर जाकर लौट आया। २८ वें वर्ष मे इसे डका मिला और बीजापुर के उपद्रवियो को दड देने के लिये इसने छुट्टी पाई, जिसे शाहजादा महम्मद आजम शाह ने घेर रखा था। उसी वर्ष के अंत में जब बादशाही पडाव शोलापुर के पास पडा हुआ था यह बीजापुर से वहाँ पहुँचकर खाँ फीरोज जग के स्थान पर अहमदनगर मे रहने के लिये भेज दिया गया। ३० वें वर्ष के जोकद महीना मे जब कि बीजापुर के विजय को एक सप्ताह भी नही बीते थे, यह अशरफ खाँ के स्थान पर मीरबख्शी नियत हुआ। उसी समय जब बादशाह हैदराबाद विजय करने आये, तब रूहुल्लाखाँ को उसका मनसब बढ़ाकर पाँचहजारी ४००० सवार का करके बीजापुर प्रांत का शासन सौप दिया, जहाँ का प्रबंध बिगड गया

---

१ जेबुन्निसा औरगजेब की प्रथम पुत्री थी और द्वितीय पुत्री जीनतुन्नीसा थी (इलि० डाउ० जि० ११३)। इस समय तक मुहम्मद अकबर के विद्रोह के कारण, जो जेबुन्निसा का सहोदर तथा प्रिय भाई था, वह पिता की कोपदृष्टि में पड चुकी थी इसलिये दूसरी पुत्री जीनतुन्निसा ही भेजी गई होगी। नाम लिखने में भूल हो गई है, ऐसा ज्ञात होता है।

था। इसके अनंतर जब गोलकुंडा के दृढ दुर्ग के घेरे में बहुत समय लगा तब उक्त खाँ बुलाया जाने पर दरबार में उपस्थित हुआ और इस दुर्ग के घेरे पर नियत हुआ। उक्त खाँ ने दूरदर्शिता से कपट तथा धोखे को काम में लाकर रणमस्त खाँ कलाँ की मध्यस्थता में अब्दुल्लाखाँ पन्नी बीजापुरी प्रसिद्ध नाम सरंदाज खाँ को, जो बीजापुर के विजय के पहले बादशाही सेवा मे आकर फिर अबुल् हसन के पास जाकर उसका विश्वासपात्र हो गया था, अपने व्यवहार से उसका अमित्र बनाकर अपने पक्ष मे मिला लिया। उस बेमुरौव्वत कृतघ्न ने २४ जीकद: को अर्धरात्रि के समय बख्शीउल्‌मुक को रणमस्त खाँ तथा मुखतार खाँ के साथ, जो अवसर देखते हुए दुर्ग के चारो ओर फिर रहे थे, खिड़की की राह से, जिस फाटक का प्रबंध उस अविश्वासी के हाथ मे था, दुर्ग के भीतर ले लिया। बख्शीउल्मुल्क एकदम वहाँ के शासक अबुल् हसन के घर मे घुस गया, जो घोर निद्रा में सोया हुआ था, और उसको तथा उसके साथियो को जागने के पहले कैद कर लिया।[1]

कहते हैं कि जब बख्शीउल्‌मुल्क के घर पकड का शोर मचा तब महल के लोगो में रोना पीटना मच गया। अबुल्‌हसन अपने स्थान पर आकर बैठा और नए आए हुए मित्रो तथा अनिमंत्रित मेहमानो से खूब साहेब सलामत की। इस प्रकार क्षुब्ध होते हुए तथा राज्य का सम्मान छोड़ते हुए सुबह की सफेदी दौड़ गई। जब बकावल ने खाना तैयार होने का समाचार दिया तब अबुल् हसन ने कष्ट के साथ भोजन किया। रूहुल्लाखाँ ने आश्चर्य से पूछा कि यह खाने का कौन समय है। अबुल्‌हसन ने मतलब न समझकर या जानबूझकर कहा कि हमारे खाने का यही समय है। रूहुल्ला खाँ ने कहा कि ऐसी घबराहट के समय आपको खाने की कैसे रुचि हुई। उसने उत्तर दिया कि सच कहते हो पर हमारा यह विश्वास है कि खुदा किसी समय अपनी कृपादृष्टि अपने बंदे से नही हटाता। बहुत दिनो तक हमने फकीरी और दरिद्रता मे व्यतीत किया है तथा एक बार बादशाही पद पर भी पहुँच गए, जो कभी हमारे ध्यान मे नही आया था। इस बार कुछ कर्मो के बदले का समय है इसलिये अपने सब अधिकार आलमगीर बादशाह के हाथ में दिए देता हूँ। यहाँ धन्यवाद का समय है, शिकायत का नही।

यह विजय ३१ वें वर्ष सन् १०९८ हि० में प्राप्त हुई थी और 'फतहे किला गोलकुंडा मुबारकबाद' (गोलकुंडा दुर्ग की विजय मुबारक होवे) से इसकी तारीख निकलती है। इसके अनंतर बादशाह बीजापुर के विशाल राज्य के प्रबंध मे दत्तचित्त हुआ और हैदराबाद का शासन, जिसका नाम 'दारुल् जेहाद' रक्खा गया था, रूहुल्लाखाँ को मिला। इसके अनंतर यह दरबार पहुँच कर ३३ वें वर्ष के

---

१. इलि० डाउ० जि० ७ पृ० ३३२-५ पर खफीखाँ के इतिहास से यह वृत्तांत लिया गया है, जिसमें यह सब घटना विस्तार से दी गई है।

आरंभ में रायचूर दुर्ग को काफिरों से लेने के कार्य पर नियत हुआ। उक्त खाँ अपने प्रयत्न से उस दृढ़ दुर्ग को विजय प्रशंसा का पात्र हुआ और उसका नाम फीरोजनगर रक्खा। ३५ वें वर्ष मे यह शक्कर व वाकिन किर: के जमींदार को दड देने के लिए भेजा गया। ३६ वें वर्ष के आरंभ में शाहजादा शाहअलम बहादुर के द्वितीय पुत्र शाहजादा मुहम्मद अजीम के साथ यह अपनी पुत्री आयशा बेगम का निकाह पढाकर सम्मानित हुआ। उसी वर्ष के अन्त मे सन् ११०३ हि० में कुतवा बाद में मर गया। इसकी तारीख 'रूह दर तन मलिक नमांद' (सरदार के प्राण नही रह गया) से निकलती है। जब इसका भाग्य बिगड़ गया और यह मृत्यु की घडियाँ गिनने लगा था तब बादशाह इसे देखने के लिये गए। उसने प्रथा के अनुसार बन्दगी करने मे, क्योकि उस समय यह आखिरी साँस ले रहा था, एक शैर पढा जिसका अर्थ है—उदारता के संसार से दान सिधार गया। क्योकि प्राण छोडने के समय वह सिर में पहुँच गया था। उक्त वृतांत इसके शील का द्योतक था और बुद्धिमानी को प्रगट कर रहा ा। यह नेकचलन और सुव्यवहार कुशल था। उक्त वृतांत इसके शील का द्योतक था और बुद्धिमानी को प्रगट कर रहा था। यह नेकचलन और सुव्यवहार कुशल था तथा बातचीत मे चतुर और मृदुभाषी था। इसके कुल प्रार्थनापत्र दरबार से प्राय. स्वीकृत हो जाते थे। विचित्र यह है कि औरगजेब की प्रकृति धार्मिक थी और इस ओर सासारिक बातो तथा दावपेंच का बाजार गर्म रहना था परंतु इसका विश्वास इस प्रकार जम गया था कि बादशाह के जानने पर भी और न मानने का हठ होते भी यह इस प्रकार समझा बुझाकर प्रार्थना करता कि बादशाह को बाध्य होकर उन्हे स्वीकार करना पड़ता था।

कहते हैं कि राजाओ मे से एक, जो दक्षिण की चढाई के अधिक बढ़ जाने और हिंदुस्तान की जागीर से धन आने मे देर होने से कठिनाई में पड़ा हुआ था, कई बार रूहुल्ला खाँ के द्वारा बादशाही सरकार से रुपया उधार ले चुका था और जब उसने फिर प्रार्थना की तब उक्त खाँ ने स्वीकार नही किया। इस पर राजा ने कहा कि इस बार जो कुछ सरकार से मिलेगा उसमें से एक हिस्सा हमारा होगा और दो हिस्सा प्रयत्न करने के कारण आप ले लीजियेगा। उक्त खाँ ने उचित प्रार्थना कर उस के लिये तीस सहस्र रुपया और ले लिया तथा निश्चय के अनुसार दस सहस्र रुपया उसको दे दिया। ईर्ष्यालु लोगोने यह मामिला ज्यों का त्यों बादशाह से कह दिया। औरंगजेब ने उक्त खाँ से दो तीन दिन बाद पूछा कि राजा ने कोष से रुपया लिया है। उसने तुरंत प्रार्थना की कि ये मनुष्य बिना समझे किसी भी समय अपने यहाँ प्रार्थी होते हैं। हम दास लोग हर समय प्रार्थना करने का साहस नही कर सकते इसलिये इस समय प्रार्थना के अनुसार दस सहस्र दे दिया हैं और बाकी रख छोड़ा है, फिर माँगने पर दे देंगे।

संक्षेपत: यह सरदार अच्छे साहसवाला, उदार तथा दूसरों की भलाई करने वाला था और याचकों की इच्छा पूरी करने के लिए इसने सब द्वार अच्छी प्रकार खोल दिए थे। आलमगीरी सरदारो में यह दान देने तथा प्रसन्न मुख रहने मे एक ही था। इसका बडा पुत्र सैफुल्लाखाँ पिता की मृत्यु के बाद छ महीना जीवित रहा। दूसरा पुत्र खानाजादखाँ था, जिसे पिता की पदवी मिली थी। इसका वृतांत अलग दिया गया है। तीसरा पुत्र बैराम खाँ महम्मद बाकर था, जो महम्मद शाह के समय तक जीवित था और जागीर रखता था।

•

५९३. रौशनुद्दौला बहादुर रुस्तमजंग

इसका नाम ख्वाजा मुजफ्फर था और नकशबंदी ख्वाजाजादा था। इसका दादा ख्वाजा मुहम्मद नासिर शाहजहाँ के समय हिंदुस्तान आकर सुलतान शुजाअ की अधीनता में दिन व्यतीत करने लगा। क्रमश: इसका मसब डेढ़हजारी ५०० सवार का हो गया और मुहम्मद फखरुद्दीन खाँ की पदवी मिली। शाहजादा शुजाअ और औरंगजेब के बीच खजवा युद्ध हो जाने के बाद जब शुजाअ बंगाल की ओर चला तब यह, जो महल मे तैनात था, अपने कुछ संबंधियो के साथ ड्योढी पर मारा गया। इसका एक पुत्र ख्वाजा अब्दुल् कादिर था, जो फकीरी में रहता था। यह महम्मद फर्रुखसियर के राज्यकाल मे मर गया। ख्वाजा मुजफ्फर इसी का पुत्र था। आरंभ मे रफीउश्शान की सेवा में भर्ती होकर डेढ़हजारी ५०० सवार का मंसब तथा जफर खाँ की पदवी पाई और उस शाहजादे के मारे जाने पर सेवा छोडकर शाह भीक की सत्संग में रहने लगा, जो करामात तथा सिद्धता के लिए प्रसिद्ध था और जिस पर यह पूर्ण विश्वास रखता था। इसके अनंतर जब समय पलटा और जहाँदार शाह के साथ युद्ध करने की इच्छा से पटना से फरुखसियर के आने का समाचार सुनाई पड़ा तब यह उक्त दरवेश से छुट्टी लेकर उस ओर चला गया। सैयद हुसेन अली के द्वारा दरबार मे उपस्थित होने पर पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब, झंडा, झालरदार पालकी, जफरखाँ बहादुर रुस्तम जंग की पदवी तथा द्वितीय बख्शी का पद पाकर यह सम्मानित हुआ। जहाँदारशाह के युद्ध के बाद जब फर्रुखसियर बादशाह हुआ तब इसका मंसब बढकर सात हजारी ७००० का हो गया और रोशनुद्दौला की पदवी तथा माही व मरातिब पाकर प्रतिष्ठित हुआ। सैयदों के प्रभुत्व के समय सांसारिक चाल पर उन्ही का साथ दिया। इसके

अनंतर जब मुहम्मदशाह बादशाह हुआ और दैवयोग से बादशाह के धाय भाई ने, जिसकी स्त्री शुद्ध मृदु बोलनेवाली थी, उस राज्यकाल मे अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया तब रौशनुद्दौला भी उस धाय भाई से मित्रता कर लोगो का मामला तै करने लगा। पद के विचार तथा न्याय समझने को दूर कर जो कोई इसके पास आता उससे बादशाह की भेंट, कोका का नजर और अपना घूस सब ले लेता। क्रमश यह बहुत धनी हो गया। उक्त बादशाह के समय इसकी पदवियों मे यार वफादार भी लिखा जाने लगा। सन् ११४९ हि० सन् १७३६ ई० मे यह मर गया।

इसमे प्रकट मे कोई गुण न थे पर मिलनसारी तथा व्यवहार कौशल था। साहनी तथा फकीरो की सेवा में इसका अच्छा नाम था। अपने गुरु के उर्स मे, जिसका पानीपत में मकबरा है, जो खर्च करता तथा दिल्ली से ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के मकबरों तक जो चिराग इसकी ओर से बाले जाते थे, वह जनता मे प्रसिद्ध है। यह अपनी पगडी में कई तुर्रे लगाता था, इस लिए इनके सभी छोटे बड़े सेवकगण तुर्रेबाजखानी के नाम से जनसाधारण मे प्रसिद्ध थे। इसे बहुत संतान थी सबसे बडा पुत्र कायम खाँ था। यह अपनी बहन को देखने के लिए, जो नवाब नासिरजंग शहीद की बीबी थी, दक्षिण आया और कुछ ही समय ठहरकर दिल्ली लौट गया। दूसरा पुत्र इसके कई वर्ष पहले दक्षिण आकर अच्छा मंसब तथा तथा मुजफ्फरुद्दौला की पदवी पाकर वही रहते हुए संसार से उठ गया। रौशनुद्दौला के दो भाई थे—एक फखरुद्दौला बहादुर शुजाअजंग था, जो सात हजारी मंसब तक पहुँच गया था और सैनिक तथा आरम्भ में अहदियों का बख्शी था। मुहम्मदशाह के समय पटना का सूबेदार होकर सात वर्ष वही व्यतीत किया और इसके अनन्तर वहाँ से हटाया जाकर काश्मीर का सूबेदार नियत हुआ। यह तीन वर्ष शासन करने के अनंतर हटाया जाने पर दरबार आया और नादिरशाह के हिन्दुस्तान से चले जाने पर गुजरात प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। उस प्रांत मे मराठों ने जोर पकड़ा, जिससे यह वहाँ शासन न कर सका और युद्ध मे सब समान लुटाकर कैद हो गया। कुछ दिन कैद मे रहने पर इसे छुटकारा मिला और यह दिल्ली की ओर रवाना हुआ। मार्ग मे दोहद गाँव में पहुँचने पर इसकी मृत्यु हो गई। कई पुत्र थे। बडा पुत्र मुहम्मद कबीर खाँ था, जो मृत सलाबतजंग के समय दक्षिण आकर यहाँ के प्रांतो का बख्शी नियत हुआ और आठ हजारी मंसब और खानखानाँ की पदवी पाकर सन् ११९१ हि० में मर गया। वह मित्रवत्सल तथा सत्संगी आदमी था। इसके संतान हैं। दूसरा भाई रौशनुद्दौला मुनौवर अली खाँ था, जिसे मुफतखिरुद्दौला की पदवी मिली थी और फखरुद्दौला के अजीमाबाद की सूबेदारी पर नियत होने पर यह उसके स्थान पर अहदियो का बख्शी नियत हुआ था।

५६४. लश्करखाँ मुहम्मद हुसेन

अकबर के राज्यकाल में मुहम्मदहुसेन खुरासानी को दो हजारी मंसब और मीरबख्शी तथा मीर अर्ज का संयुक्त उच्च पद मिला था। मुजफ्फर खाँ तुरबती के चुगली खाने पर ११वें वर्ष मे यह उक्त पदो से हटाया गया। १६ वें वर्ष मे मूर्खता तथा घमंड से रौशन के दिन शराब मे मस्त होकर यह दरबार मे आया तथा उपद्रव किया। जब बादशाह को यह सूचित किया गया तब उच्चपदस्थ होते और भारी मंसब रखते भी यह घोड़े की दुम में बाँधकर घुमाया गया तथा कुछ दिनो कैद में रखने के बाद छोड़ दिया गया। बिहार तथा बंगाल की चढ़ाई मे यह खानखानाँ मुनइमखाँ के साथ नियत था। दाऊदखाँ किरानी के साथ के युद्ध मे, जिसने उस प्रांत पर अपना स्वत्व प्रगट किया था, यह मध्य भाग मे रहकर सेनापति की सहायता से दृढ़ता दिखलाते हुए बहुत घायल हो गया यद्यपि घाव अच्छे हो गए पर बेपरवाही से तथा इन्हें साधारण समझने से सन् ९८२ हि० में निर्बलता के कारण इसकी मृत्यु हो गई। यह अच्छी सेना का स्वामी था और एक सहस्र सवार इसकी सेवा में रहते थे।

यद्यपि वैसा कड़ा दंड, जो इसे बादशाह की ओर से मिला था, प्रगट मे क्रोध की शक्ति दिखलाती है क्योंकि बुद्धिमान सुलतानो का गुण तथा प्रकृति ही है कि वे दंड देना तथा भय दिखलाना प्रबंध का आवश्यक अंग समझते हैं और इसी कारण मनुष्यों को दंड मिलता है। एक को आँख दिखलाकर तथा पेशानी पर बल डालकर, दूसरे को भर्त्सना कर, तीसरे को झापड़ तथा मुक्कों से पिटवाकर और चौथे को बेंत तथा लाठी से पिटवाकर दंड देते हैं। किसी ने जो यह कहा है वह ठीक कहा है।

रुबाई का अर्थ

यदि दंड देना आवश्यक हो तो एक ओर दोष तथा उसी के अनुसार दंड हर एक को दो।

ए विधि के गायक और न्याय के आश्रय डफ को तमाँचे से और बंशी को साँस से बजा।

इस ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष के व्यक्तित्व पर दृष्टि अवसर पर ही पड़ी है कि ऐसा उच्चपदस्थ होते ऐसी दुर्दशा अप्रतिष्ठा होने पर भी लोभ के फेर में और तृष्णा के आधिक्य से इसने नौकरी तथा सेवा से हाथ नहीं उठाया। नहीं तो बहुत से छोटे पदवालों ने सम्मान तथा विश्वास में कमी हो जाने से उस पर अपने प्राण दे दिए और सम्मान तथा अच्छे नाम को अमर कर दिया।

उपदेश हरएक व्यक्ति का व्यक्तित्व उसी की दृष्टि से दूसरों के समझने में भिन्न हैं पर शरअ की आज्ञाएँ (कि अश मल व अनफअ वारिद शुदः) उस मनुष्य पर न होकर उसके कार्य पर होती हैं। उसी के अनुसार प्रसन्नता तथा प्राप्ति होती है। मिसरा का अर्थ—

हर एक कार्य पुरस्कार तथा हर एक कृति दंड रखती है।

•

५६५. लश्करखाँ अबुल्हसन मशहदी

यह आरंभ में शाहजादा सुलतान मुराद का दीवान था, जिसकी मृत्यु पर दक्षिण से आकर यह शाहजादा सुलतान सलीम की सेवा में भर्ती हो गया और इसने अपनी सेवा को संपत्ति की पूँजी समझा। सलीम के बादशाह होने पर इसे लश्कर खाँ की पदवी और अच्छा मंसब मिला। यह बहुत दिनो तक काबुल का दीवान तथा बख्शी रहा। जब वहाँ के प्रांताध्यक्ष खानदौराँ ने इसका विरोध किया तब यह दरबार बुला लिया गया। इसके अनंतर वह उन अफगानों को दंड देने पर नियत हुआ जो हिंदुस्तान तथा काबुल के आनेजानेवालों को मार्ग में रुकावट थे। इसने यथाशक्ति ठगों तथा डाकुओं को मारने और बाँधने में बहुत प्रयत्न किया जिससे शांति का रास्ता खुल गया। १४ वें वर्ष मे जब पहली बार जहाँगीर ने कश्मीर की सैर की तब इसको झंडा व डंका देकर राजधानी आगरा की अध्यक्षता सौंपी। जब बादशाही सेना शाहजादा पर्वेज के साथ महाबतखाँ के सेनापतित्व में शाहजादा शाहजहाँ का पीछा करने पर नियत हुई तब लश्करखाँ भी सहायक हो साथ गया। बुर्हानपुर पहुँचने पर जब बीजापुर के सुलतान आदिलशाह ने मलिक अंबर के संकेत पर महाबतखाँ से मित्रता स्थापित की और अपने सेनाध्यक्ष मुल्ला-मुहम्मद लारी को चुने हुए पाँच सहस्र सवारों के साथ बुर्हानपुर भेजा तब महाबत खाँ ने राव सरबुलंदराय को उक्त नगर का अध्यक्ष नियत कर वहीं छोड़ा और लश्करखाँ को सेना सहित उसके साथ किया। वहाँ के कार्यों का प्रबंध मुल्ला मुहम्मद को सौंपा और स्वयं शाहजादा पर्वेज के साथ इलाहाबाद की ओर चल दिया। मलिक अंबर ने, जो अवसर देख रहा था, बीजापुर पहुँचकर उसे घेर दिया आदिलशाह ने बुर्ज आदि दृढ़कर मुल्लामुहम्मद को बुलाने के लिये दूत भेजे और महाबत खाँ को लिखा कि राजभक्ति के कारण वह सहायता पाने का स्वत्व रखता है। साथ ही तीन लाख हून, जो बारह लाख रुपये के लगभग होता है, सहायक सेना के व्यय के लिए भी भेजा। इस पर महाबत खाँ के लिखने के अनुसार सर-

बुलंदराय कुछ आदमियों के साथ नगर में रह गया और लश्करखाँ को दक्षिण की सेना के साथ मलिक अंबर को दमन करने के लिए मुल्ला मुहम्मद की सहायता को भेज दिया। मलिक अंबर ने यह सूचना पाकर लश्करखाँ को लिखा कि बादशाही सेवकों का बराबरी करने का मैंने दोष नहीं किया है तब भी क्यों इस चढ़ाई के योग्य हुआ। आदिलशाह से प्राचीन काल से सीमा के कारण झगड़ा रहा है इसलिये हमको शत्रु के साथ छोड़ दो, जो भाग्य में होगा वही होगा परंतु इस बात पर लश्करखाँ ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया और बीजापुर के पास पहुँचा। निरुपाय होकर मलिक अंबर डेरा उठाकर अपने देश चला गया। मुल्ला मुहम्मद ने उसका पीछा किया। यद्यपि उसने बहुत नम्रता दिखलाई पर मुल्ला ने उसकी नम्रता तथा अधीनता पर ध्यान न देकर कड़ाई तथा कठोरता और बढ़ा दी। जब यह तंग आ गया तब घबड़ाकर तथा निरुपाय हो उसने अहमद नगर से पाँच कोस पर भातुरी ग्राम में ठहर कर युद्ध की तैयारी की। दैवयोग से मुल्ला मारा गया और आदिल शाही सेना का प्रबंध अस्तव्यस्त हो गया। बादशाही सर्दारों में जादो राय तथा ऊदाराम ने युद्ध मे योग नहीं दिया और भाग गए। बीजापुर के इखलास खाँ आदि पचीस सर्दार, जिनपर आदिलशाही राज्य को भरोसा था, कैद हो गए। इनमें से फर्हाद खाँ को, जिसके रक्त का वह प्यासा था, मरवा डाला। बादशाही सर्दारों में से लश्कर खाँ मिर्जा मनोचेह्न, अकीदत खाँ आदि चालीस सर्दारों के साथ मलिक अंबर का कैदी हो गया तथा कुछ दिनों तक भाग्य के फेर से दौलताबाद दुर्ग में सभी बेड़ी पहिरे हुए कैद रहे। सुलतान पर्वेज की मृत्यु पर जब दक्षिण के शासन पर खानजहाँ लोदी प्रतिनिधि रूप में आया तब लश्कर खाँ को अन्य सर्दारों के साथ छुट्टी मिली और वे बुर्हानपुर आये।

शाहजहाँ की राजगद्दी के अनंतर लश्करखाँ की पुरानी सेवाओं के विचार से, जबकि शाहजादा की आवश्यकता के समय इसने दस लाख रुपए ऋण रूप मे दिए थे, इसे उक्त धन दे दिया गया और इसके मंसब में दो हजारी २००० सवार बढ़ाकर इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मंसबदार बना दिया। साथ ही इसे ख्वाजा अबुल्हसन तुरबती के स्थान पर काबुल का प्रांताध्यक्ष भी नियत कर दिया। दैवयोग से इसके अपनी नियुक्ति पर पहुँचने के पहले ही बल्ख और बदख्शाँ का शासक नज्र मुहम्मद खाँ अदूरदर्शिता से जहाँगीर की मृत्यु को अनुकूल अवसर समझकर अपनी इच्छा की पूर्ति के विचार से भारी सेना के साथ काबुल घेरने को उक्त नगर के पास पहुँचकर उपद्रव मचाने लगा। लश्करखाँ दरबार से सहायता आने की प्रतीक्षा में, जो महाबतखाँ की अधीनता मे आ रही थी, मार्ग मे न ठहरकर बिना समझे जल्दी से आगे बढ़ा। जब यह बारीक आब पहुँचा, जो काबुल से बारह कोस पर है, तब नज्र मुहम्मदखाँ दुर्ग के घेरे मे हटकर युद्ध के लिये आगे आया। लश्कर खाँ भी आत्मसम्मान तथा कर्मशीलता से फुर्ती से युद्धार्थ

आगे बढा । नज्रमुहम्मद खाँ यह देखकर कि लश्करखाँ बडी वीरता तथा साहस से आरहा है और उसके वेतनभोगी नौकर थोड़े हैं, जो बुरे दिनों मे साथ नही देंगे, उसने इस युद्ध से कोई लाभ न देखकर ९ मुहर्रम सन् १०३८ हि० को लौटना आरंभ किया और जिस मार्ग को उसने एक महीने मे तै किया था, चार दिन मे ऊँचे-नीचे मार्ग को पारकर बल्ख पहुँच गया । लश्करखाँ ने काबुल पहुँचकर वहाँ के निवासियो तथा आसपास की प्रजा को सात्वना दी, जो उजबको द्वारा लूटने तथा अत्याचार से पीडित हो चुके थे । इसने जहाँ जहाँ उचित समझा सेना भेजकर लुटेरो को भगा दिया । काबुल प्रांत के रहनेवाले हनफी सुन्नी थे और धर्म संबधी विरोध के कारण लश्कर खाँ के इस सलूक पर भी प्रसन्न नही थे इसलिये ४थे वर्ष मे यह उस पद से हटा दिया गया । ५ वें वर्ष मे महाबतखाँ के स्थान पर दिल्ली की अध्यक्षता इसे मिली । वार्द्धक्य के कारण यह दी हुई सेवाओ को पूरा नही कर पाता था इसलिये यह ६ठे वर्ष मे 'दुआ' की सेना[1] मे डाल दिया गया । यह अपने पुत्रो के साथ दरबार चला आया ।

यद्यपि बादशाहनामा मे सिवा वार्द्धक्य के एकान्तवास का और कोई कारण नही लिखा गया है परंतु वास्तव मे ज्ञात होता है कि वृद्ध होने के पहले ही यह नौकरी से क्षमा पा चुका था । ऐसा इसकी ओर से हुए किसी कार्य के कारण बादशाह के अप्रसन्न हो जाने से हुआ था । कहते है कि नौकरी त्यागने के बाद यह हज्ज गया और वहाँ की जियारत करने तथा बहुत धन व्यय करने के अनतर यह स्वदेश (मशहद) गया । वहाँ के रोजा के चौखट की सफाई पर यह नियत हुआ । इसने उस नगर में सराय तथा धर्मशाला की नीव डलवाई और बहुत मिलकियत खरीदी । वहीं इसकी मृत्यु भी हो गई । इसकी संतानें हिंदुस्तान ही मे रह गईं । इसका बडा पुत्र सजावारखाँ था, जिसका वृत्तात अलग इसी पुस्तक मे दिया गया है । दूसरा पुत्र मिर्जा लुत्फुल्ला था, जिसने सुन्नी मत स्वीकार कर दक्षिण के बख्शी का पद प्राप्त किया था । रात्रि के समय कूच करते हुए यह पालकी मे बैठा हुआ था कि किसी मनुष्य ने एकाएक पहुँचकर इसे छुरे से मार डाला और भाग गया । यह न ज्ञात हो सका कि वह कौन था । इसके दामाद बाबा मीरक ने जहाँगीर के राज्यकाल मे उन्नति कर कांगडा पर्वत मे अच्छा कार्य किया था । जिस समय शाहजादा शाहजहाँ ने बुर्हानपुर घेरा था उस समय यह रावरत्न के साथ था । एक दिन शाह कुलीखाँ शहर मे घुस आया और यह युद्ध करता हुआ मारा गया । इसका पुत्र लतीफ मीरक दक्षिण के अनकी तनकी की दुर्गाध्यक्षता करते हुए समय व्यतीत करता रहा । बाहर की ओर इसने बाग बनवाकर अपना कब्रिस्तान बनवाया था और वही यह गाडा गया ।

---

१. वृत्ति भोगी, पेंशन प्राप्त ।

५९६. लश्कर खाँ उर्फ जान निसार खाँ

इसका नाम यादगार बेग था और यह शाहजहाँ के वालाशाह जबरदस्त खाँ का पुत्र था। अपने पिता की जीवितावस्था मे ही बादशाह का परिचित हो गया और अच्छे कार्यों पर नियत किया जाने लगा। १९वें वर्ष मे इसका मंसब बढ़कर एक हजारी २०० सवार का हो गया और यह गुर्जबर्दारों तथा नगदी मंसबदारों का दारोगा नियुक्त हुआ। इसी वर्ष इसके मंसब मे पांच सदी ३०० सवार बढ़ाए गए और जाननिसार खाँ की पदवी पाकर वह सम्मानित हुआ। उच्च तैमूरिया राजवंश के बादशाहो तथा सफवी वंश के शाहो के बीच मे मित्रता व एकता का संबंध रहा तथा दोनों ओर से पत्र तथा उपहार आदि आया जाया करते थे पर शाह सफी ने अपने राज्यकाल के अंत मे कंधार को लेकर कुछ आशंका से, जो अप्रसन्नता के कारण थी, मित्रता के सिलसिले को तोड दिया। परंतु जब वह इस नश्वर संसार से उठ गया तब शाहजहाँ ने यह पसंद नही किया कि उस पुराने व्यवहार को एकदम छोड दिया जाय। उसी वर्ष जाननिसार खाँ को, जो राजदूत होने योग्य था, तथा उसके साथियो को भी दो वर्ष का वेतन राजकोष नकद देकर साढे तीन लाख रुपए के उपहार तथा पत्रसहित ईरान भेजा, जिसमें शाह सफी की मृत्यु पर शोक प्रदर्शन और शाह अब्बास की राजगद्दी पर, जो उसका उत्तराधिकारी था, प्रसन्नता प्रकट की गई थी तथा अली मर्दान खाँ के हिंदुस्तान चले आने का उज्र किया गया था, जो ईर्ष्यालु लोगो की दुष्टता से अलग होकर ऐश्वर्य की इच्छा तथा नौकरी पाने के लिए यहाँ चला आया था। उक्त खाँ २१वें वर्ष के अंत मे उस कार्य से लौटकर दरबार मे उपस्थित हुआ और इसका मंसब दोहजारी ७०० सवार का हो गया तथा यह आख्ताबेगी पद पर नियत हुआ। २३वें वर्ष में यह मीर तुजुक बनाया गया। २४वें वर्ष में सयादत खाँ के स्थान पर यह तृतीय बख्शी नियत हुआ। २५ वे वर्ष में पाँच सदी ३०० सवार मंसब में बढाए गए और इसे लश्कर खाँ की पदवी दी गई। २६ वे वर्ष मे तीन हजारी १००० सवार के मंसब के साथ यह शाहजादा दाराशिकोह की सेना का बख्शी नियत हुआ, जो कंधार की चढाई पर भेजी जा रही थी। २७वे वर्ष मे मुलतान से बादशाही आज्ञा के अनुसार दरबार लौटकर इरादत खाँ के स्थान पर पहले की तरह द्वितीय बख्शी नियत हुआ। २९वें वर्ष में भी इससे कुछ ऐसे कार्य हुए जो गबन करना कहे जा सकते हैं। ऐसा प्रगट हुआ कि बख्शीगिरी के समय लोभ में पड़कर इसने अपनी दियानत को खियानत मे बदल दिया जिस पर यह उस पद से हटाया गया और पाँच सदी मंसब में कमी कर दंडित किया गया। इसके अनंतर यह हिसार और बीकानेर के आसपास के उपद्रवियो को दमन करने पर नियत

हुआ। ३१वें वर्ष में अली मर्दान खाँ अमीरुल् उमरा के स्थान पर कश्मीर का सूबेदार हुआ और मंसब में ५०० सवार बढ़ाए गए। इसके अनंतर औरंगजेब के राज्य के १स वर्ष में इसे खिलअत मिला और पाँच सदी ५०० सवार बढ़ने से इसका मंसब तीन हजारी २५०० सवार का हो गया। यह मुलतान का सूबेदार नियत हुआ। ३ रे वर्ष में कुबाद खाँ के स्थान पर यह ठट्टा का प्रांताध्यक्ष हुआ। इसके अनतर यह विहार का प्रांताध्यक्ष बनाया गया। ११वें वर्ष में विहार से हटाया जाकर यह ताहिर खाँ के स्थान पर मुलतान का फिर सूबेदार हुआ। १३वें वर्ष में मुलतान से दरबार आकर दानिशमंद खाँ मीरबख्शी के स्थान पर यह प्रथम बख्शी नियत हुआ और इसका मंसब हजारी १००० सवार बढ़ाए जाने पर पाँच हजारी ३००० सवार का हो गया। उसी वर्ष के अंत मे सन् १०८१ हि०, सन् १६७८ ई० में इसकी मृत्यु होगई। इसके पुत्रो मे से किसीने उन्नति नही की। इसकी पुत्री मृत सादुल्ला खाँ के पुत्र लुत्फुल्ला खाँ को ब्याही गई थी।

•

५६७. लुत्फुल्ला खाँ

यह जुम्लतुल्मुल्क सादुल्ला खाँ का, जिसकी विद्वत्ता तथा गुण पुस्तकों द्वारा बहुत समय तक प्रसिद्ध रहेंगे, बड़ा पुत्र था। जब वह मंत्रित्व को गद्दी पर बैठनेवाला शाहजहाँ के ३१ वें वर्ष के आरंभ में मर गया तब लुत्फुल्लाखाँ ग्यारह वर्ष का था। इसे सात सदी १०० सवार का मंसब दिया गया। इसके अनतर जब हिंदुस्तान का राज्य औरंगजेब के हाथ में आया और इसका मृत पिता अन्य सभी शाहजादो से अधिक बादशाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर से हार्दिक मेल रखता था इसलिये उसने इस पर बहुत कृपाकर इसका मंसब एक हजारी ४०० सवार का कर दिया तथा बराबर इसकी शिक्षा का ध्यान रखते हुए इसका मंसब बढ़ता गया और निजी सेवाओं पर भी नियत करता रहा। दारोगागिरी का ऐसा ही कोई अच्छा पद बच गया होगा, जिस पद पर इसने काम न किया हो। १२ वें वर्ष मे आकिलखाँ के स्थान पर डाक चौकी का कार्य इसे दिया गया। १३ वे वर्ष में हाजी अहमद सईदखाँ के स्थान पर अर्ज मुकर्रर का दारोगा हुआ। १४वें वर्ष मे मीरबख्शी लश्करखाँ की पुत्री से जो इसके पहिले ही मर चुका था, विवाह करने का इसे खिलअत मिला। १९ वें वर्ष में हसन अब्दाल से मुलतान लौटने पर फैजुल्ला खाँ के स्थान पर यह फीलखाने का दरोगा नियत हुआ। २१ वर्ष मे शेख अब्दुल्ल अजीज अकबराबादी के स्थान पर फिर से अर्ज मुकर्रर नियत हुआ। इसी

वर्ष बादशाही कृपा से उक्त खाँ किले में पालकी मे बैठकर आने लगा और अपने बराबर वालो से बढ़कर सम्मानित हुआ। २३ वें वर्ष मे लाहौर की सूबेदारी किवामुद्दीन के स्थान पर बादशाहजादा मुहम्मद आजम को मिली और लुत्फुल्ला खाँ उसका प्रतिनिधि होकर वहाँ भेजा गया। दूसरे वर्ष वहाँ से दरबार लौटकर अब्दुर्रहीम खाँ के स्थान पर गुसलखाने का दारोगा नियत हुआ। २५ वें वर्ष मे कामगार खाँ के स्थान पर बादशाह को घटनाओ का विवरण पढ़कर सुनाने पर नियुक्त हुआ। दूसरे वर्ष खास जिलो तथा खास चौकी का दारोगा बनाया गया।

लुत्फुल्ल खाँ की योग्यता तथा गुणो की ख्याति हो चुकी थी और उसके हृदय की उदारता, बुद्धिमानी तथा दूरदर्शिता भी प्रकट हो चुकी थी। गोल्कुंडा के घेरे में अपना साहस तथा वीरता सब प्रकट करते हुए इसने बहुत प्रयत्न भी किए थे। विशेष कर उस अर्द्धरात्रि को, जब घिरे हुए लोगों ने बादशाही दमदमे पर, जो दुर्ग के कंगूरे तक पहुँच चुकी थी, आक्रमण कर तोप को बेकाम कर दिया था और मीर आतिश सैयद इज्जत खाँ को सरबराह खाँ चला जलाल के साथ बाँध ले गए थे तब लुत्फुल्ला खाँ खास चौकी की सेना के साथ उनका सामना करने को नियत हुआ। यह तीन दिन तक दुर्ग के नीचे की नदी के बीच बड़ी दृढ़ता तथा बहादुरी से डटा रहा जब तक दूसरी सेना ने पहुँचकर शत्रु को भगा दिया और दमदमे को फिर से दृढ नही कर लिया। उक्त खाँ का मंसब इसके उपलक्ष्य मे पाँच सदी बढाया गया। यह बहादुरी की परीक्षा मे भी उत्तीर्ण हो चुका था इसलिए ३४वें वर्ष मे खतावन थाना की ओर विद्रोहियों को दमन करने भेजा गया। दूसरे वर्ष सलाबत खाँ के स्थान पर यह फिर से खास चौकी का दारोगा नियत किया गया। इसी वर्ष दंडित होने पर इसका मंसब छिन गया पर कुछ दिन बाद यह पुनः नौकरी पर बहाल हो गया। ३९वें वर्ष में यह सफशिकन खाँ के स्थान पर आतश बेग और खानःजाद खाँ के स्थान पर खास चौकी का दारोगा नियत हुआ। ४३ वें वर्ष में इसका मंसब बढकर तीन हजारी २००० सवार का हो गया, इसे डका मिला तथा यह बीजापुर का सूबेदार नियत हुआ। ४५ वें वर्ष मे वहाँ से हटाए जाने पर इसका मंसब पाँच सदी बढाया गया और औरंगाबाद का यह शासक नियत किया गया। ४६ वें वर्ष मे खेलना दुर्ग के विजयोपरांत उसकी सूबेदारी पर शाहजादा बेदारबख्त नियत हुआ और खाँ फीरोजजंग बादशाही पडाव की रक्षा के लिये बरार से भेजा गया। उस समय वहाँ की सूबेदारी प्रतिनिधि रूप मे लुत्फुल्ला खाँ को मिली, जो खाँ फीरोजजंग का साला लगता था। लुत्फुल्लाखाँ वहाँ पहुँचने के पहले ही सन् १११४ हि०, सन् १७०२ ई० मे मर गया। यह विद्वत्ता तथा गुण और साहस तथा कर्मठता के लिए प्रसिद्ध था। अनेक बार अच्छे कार्य कर यह बराबर उन्नति करता रहा और ऐश्वर्यपद को अमीरी की सीमा तक पहुँचा दिया। इसकी चाल के कुछ हलकेपन तथा इसके अनुचित आचार, जो इसकी प्रकृति में थे, इसमें बाधक हुए थे।

प्रसिद्ध है कि एक दिन बादशाह किसी का प्रार्थनापत्र, जिसमे कुछ गुप्त बातें लिखी हुई थी, पढ रहे थे। दैवयोग से अभी वे बातें बादशाह की जिह्वा पर नहीं आई थीं कि एक ओर से कुछ कहा गया। इस पर जांच होने लगी कि किस प्रकार ये बातें प्रकट हो गईं। अंत मे बादशाह ने कहा कि सिवा लुत्फुल्ला खां के किसी दूसरे का यह कार्य नहीं हो सकता। बाद को ज्ञात हुआ कि उक्त खां ने प्रार्थनापत्र के पीठ पर से सब मतलब भांपकर लोगो से कह दिया था। इस कारण यह कुछ दिन दरबार मे उपस्थित होने से मना कर दिया गया। मुहावरो तथा वाक्यो मे ऐसे अप्रचलित शब्दो का यह प्रयोग करता था, जिनके लिए कोष टटोलने पडते थे पर उस समय वे प्रयोग मे आते थे। इसके बनाए हुए वाक्य तथा सूक्तियां लोगो के जबान पर रहती थी। इसका पुत्र मुहम्मद खलील इनायत खां, जो कुछ दिन बुर्हान पुर का अध्यक्ष था, सैनिक चाल का तथा उदार हृदय था, हिन्दी के गानो के गुण से यह हीन नहीं था। जाजऊ के युद्ध में, जो शाह आलम तथा मुहम्मद आजम शाह के बीच मे हिन्दुस्तान के साम्राज्य के लिए हुआ था, उक्त खाँ जहांदार शाह मुइज्जुद्दीन की ओर था। जब बारहा के सैयदो ने, जो हरावल मे थे, थोडे मनुष्यो के साथ धावा किया तब इनायत खां भी सहायता को पहुँचा। जब शत्रुओ का जोर बढता हुआ देखा तब यह हाथी पर से उतर पडा। सहनअली खां और हुसेनअलीखां के भाई नुरुद्दीन अली खां ने इसको देखकर अपने भाइयो से कहा कि शोक है कि यह शेखजादा मैदान से गेंद ले गया। यह सुनते ही वे दोनो भी तुरत हाथी से उतर पडे और अमानुल्ला खां, सैयद औलाद मुहम्मद तथा इब्राहीम बेग सर्दारों मुहम्मद आजमशाह के अन्य पुराने सेवकों पर, जिन्होने वर्षों से वीरता तथा साहस के लिए नाम कमाया था, साथही धावा कर दिया। ऐसा घोर मारकाट और विचित्र युद्ध हुआ कि तुर्क रक्तपिपासु बहराम की दृष्टि भी यह दृश्य देखकर धूमिल हो गई। इनायत खां घातक चोटो से मैदान मे गिर पडा। कुछ जान बाकी थी जिससे थोडी देर में मर गया। बहादुर शाह ने इसकी इनायत खां शहीद की पदवी दी और इसके अल्पवयस्क पुत्रो पर बहुत कृपा की। मुहम्मदशाह के राज्यकाल में जब नवाब आसफजाह निजामुल्मुल्क दक्षिण से राजधानी आकर मुहम्मद अमीनखां वजीरुलमुमालिक के स्थान पर वजीर हुआ तब उक्त खां शहीद की पुत्री को, जो उस उच्च सर्दार की ममेरी बहिन थी, विवाह कर उसे साहब बेगम की पदवी दी। इस नए संबंध के कारण इसके पुत्रो को विशेष सम्मान तथा विश्वास प्राप्त हुआ। हफीजुद्दीन और मुहम्मद सईदखां, जो इसके बडे भाई थे, आसफजाह के साथ दक्षिण चले आये और मुबारिजखां के युद्ध के बाद प्रत्येक अच्छी फौजदारी के साथ डंका तथा ऐश्वर्ययुक्त हो गया। इसके अनतर हफीजुद्दीन खां बुर्हानपुर का नायब सूबेदार हो गया। जब सन् ११५० हि मे दूसरी बार आसफजाह दिल्ली की ओर रवाना

हुआ तब दोनो भाई दक्षिण मे न रहकर साथ गए। दिल्ली मे रहना इन्हें अधिक पसंद आया इसलिए उसके लौटते समय ये साथ नही आए और बादशाही सेवा में रह गये। इस संबंध के कारण दरबार मे इन दोनो का अच्छा विश्वास तथा सम्मान था। ये दोनो अपने अच्छे व्यवहार तथा सजीवता के लिए प्रसिद्ध थे। विशेषकर मुहम्मद सईद खाँ बहादुर सच्चा धनवान था। यद्यपि मनसब की अधिकता अपने पिता तथा पितामह से बढ गए थे पर वैसी अच्छी स्थिति नही थी। दो अन्य भाई मुहीउद्दीन कुली खाँ और मुईनुद्दीन कुली खाँ दिल्ली ही मे रहते थे और नादिरशाह के कत्लेआम में मारे गए।

५६८. लुत्फुल्लाखाँ सादिक

यह एक अनसारी शेखजादा तथा पानीपत का निवासी था। बहादुरशाह के समय बादशाही दरबार मे आने जाने मे साधारण स्थिति से अच्छे पद को पहुँच गया। जहाँदारशाह के समय दंडित होने पर इसका घर तक छिन गया। इस कारण यह फर्रुखसियर की शरण मे चला गया। इसके अनंतर जब हिन्दुस्तान का साम्राज्य उसे मिल गया तब जहाँदारशाह पर विजय पाने के बाद यह सैयद अब्दुल्लाखाँ के के साथ राजधानी का प्रबंध देखने पर नियत हुआ। कुतुबुलमुल्क ने खालसा की दीवानी के लिए इसका नाम चुना पर बादशाह ने यह पद छबीले राम नागर को दे चुके थे। इस कारण बादशाह तथा वजीर के बीच मनोमालिन्य आ गया। कुतुबुलमुल्क ने कहा कि यद्यपि अभी वजीर का निर्णय स्वीकृत न हुआ हो पर उसका स्थायित्व प्रकट है। अंत मे वह पद उक्त खाँ को मिला। मुहम्मदशाह के राज्यकाल में इसे खानसामाँ का पद, छ हजारी मसब तथा शम्सुद्दौला बहादुर मुतहौव्वरजंग की पदवी मिली। नादिरशाह के आने के बाद बादशाही इच्छा के विरुद्ध कार्य करने से यह दंडित हुआ। अहमदशाह के समय इसकी मृत्यु हुई। इसकी पदवी मे सादिक शब्द बढने का कारण जनसाधारण मे प्रचलित है। इसका भाई दिलेरदिल खाँ था, जो अमीरुल्उमरा के साथ रहता था और तीन हजारी मंसबदार था। तीसरा भाई शेर अफगन खाँ था, जो इलाहाबाद के अंतर्गत कडा का फौजदार नियत हुआ था। पुत्रो मे से इनायत खाँ रासिख और शाकिर खाँ ने कुछ तरक्की की थी।

५९९. वजीरखाँ मुकीम

अकबर के राज्यकाल के अंत में इसे योग्य मंसब तथा वजीर खाँ की पदवी मिली। इसके अनंतर जब जहाँगीर बादशाह हुआ तब इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी हो गया और वजीरुल्मुल्क जान बेग के साथ, जो उस बादशाह के बालाशाहियों में से था, यह साम्राज्य का वजीर नियत हुआ। इसके अनंतर बंगाल का दीवान नियत होकर यह वहाँ गया और उक्त पद गियास बेग एतमादुद्दौला को मिला। ३ रे वर्ष आज्ञानुसार बंगाल से लौटकर दरबार चला आया। इसके बाद जब शाहजादा सुल्तान पर्वेज दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुआ तब यह उसके साथ गया। इसके अनंतर यह बराबर शाहजादे की सेवा में रहा। ११ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया। १२ वें वर्ष में इसे झंडा मिला और मंसब भी पाँच सदी बढ़ा। इसके बाद इसका हाल नहीं मिला।

•

६००. वजीरखाँ मुहम्मद ताहिर खुरासानी

यह मशहद का निवासी था। यह बादशाह आलमगीर की शाहजादगी के समय के कुल अच्छे विश्वासपात्र सेवकों का मुखिया तथा विश्वासनीय मुसाहिबों का अग्रणी था। यह बहुत दिनों तक शाहजादा के सरकार का दीवान रहा और अच्छे कार्य तथा चढ़ाइयाँ की। शाहजहाँ के १० वें वर्ष में जब शाहजादा अपने निकाह की मजलिस के बाद अपने पिता के यहाँ से दक्षिण की सूबेदारी पर लौटा तब यह बगलाना प्रांत पर अधिकार करने के लिए नियत किया गया, जो गुजरात तथा दक्खिन के बीच अधिक आय के लिए प्रसिद्ध है और फर्मान के द्वारा शाहजादे को मिला था। शाहजादे ने अपने प्रांत में पहुँचते ही मुहम्मद ताहिर को मालोजी दक्खिनी के साथ उस प्रांतपर अधिकार करने भेजा। इसने कार्यदक्षता तथा योग्यता से तीन सेना ठीक कर तीन ओर से मुल्हेर दुर्ग पर चढ़ाई कर अधिकार कर लिया। यह दुर्ग वहाँ के शासक भेरजी का निवास स्थान था। यह उपद्रव करने को पहाड़ पर बने दुर्ग में जा बैठा। इस अनुभवी सर्दार ने अन्न रोकने का प्रबन्ध कर मोर्चे बाँधने तथा लड़ाई का सामान ठीक करने में कमकर कमर बाँधी। इस पर वह जमींदार डरकर ११वें वर्ष में वचन लेकर भेंट करने आया। उस विजित प्रांत का प्रबन्ध तथा उसकी राजधानी मुल्हेर दुर्ग की अध्यक्षता मुहम्मद ताहीर को मिली।

जब सन् १०६२ हि० में दूसरी बार दक्षिण की सूबेदारी शाहजादे को मिली तब तब यह खानदेश प्रांत का नायब नियत हुआ।

जब २५ जमादिउल् आखिर सन् १०६८ हि० को दारशिकोह को दमन करने के लिए बुर्हानपुर से सेना निकली तब इसकी पुरानी सेवा, विश्वास तथा उच्चता की दृष्टि से इसे पहले की तरह खानदेश के शासन पर नियत रखकर झंडा व डंका तथा वजीरखाँ की पदवी दी गई। सफलता मिलने पर जब औरंगजेब राजगद्दी पर बैठा तब खानदेश प्रांत मुअज्जमखाँ मीरजुमला को दिया गया, जो समय के विचार से दौलताबाद दुर्ग में नजरबंद रखा गया था। वजीर खाँ आज्ञानुसार औरंगाबाद शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम के पास चला गया और उसके बाद शाहजादा के साथ दरबार गया। ३ रे वर्ष आगरा का सुबेदार बनाया गया। जब ६ ठें वर्ष अमीरुल्-उमरा शायस्ताखाँ के स्थान पर शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम दक्खिन का सूबेदार नियत हुआ तब वजीर खाँ आगरे से इसके साथ भेजा गया। खानदेश का शासन इसे फिर से मिला। ७ वें वर्ष नजाबतखाँ के स्थान पर यह मालवा का सूबेदार नियत हुआ और पाँचहजारी ४०००सवार के मंसब मे से दो सहस्र सवार दो अस्प: कर दिए गए। यह बहुत दिनो तक उस प्रांत मे रहा। वही १५वें वर्ष सन् १०८३ हि०, सन् १९७२ ई० मे यह मर गया। औरंगाबाद नगर में इसने बाग बनवाया यद्यपि इस समय उसमें विशेष हरियाली नही है पर वह इसके नाम से अभी प्रसिद्ध है। औरंगाबाद नगर के बाहर छोटे तालाब तथा इसलाम खाँ मशहदी के रौजा के बीच महमूद पुरा इसके बड़े भाई मिर्जा महमूद का बसाया है, जिसका पुत्र मुहम्मद तकी खाँ ९ठें वर्ष आलमगीर में औरंगाबाद का बख्शी तथा वाकेआनवीस नियत हुआ था पर १० वे वर्ष मे मर गया। छोटे तालाब पर उसी पुर में इसने भारी हवेली बनवाई, सैरगाह थी और मुहम्मद आजमशाह का पुत्र बेदारबख्त वहाँ उतरा था। इसका पुत्र मिर्जा अब्दुर्रहीम बहुत दिनो तक कम मंसब से वहाँ आराम करता रहा। यह लड़का छोड गया था। अब इनमें से कोई नही है वह मकान अभी भी है। वजीर खाँ के दूसरे भतीजे रफीअ खाँ का बाजल (दानी) उपनाम था, जो बहुत दिनो तक बांस बरेली का फौजदार रहा। फिर्दोसी शाहनामे की चाल पर हजरत नबी की चारो ओर की धार्मिक लडाइयों का हल पद्य मे लिखकर 'हमलये हैदरी" नाम रखा। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि चालीस सहस्त्र शैर हैं।

•

६०१. वजीर खाँ हकीम अलीमुद्दीन

यह पंजाब के चनवत का निवासी था। हकीमी मे अच्छी योग्यता रखता था। यौवन के आरंभ मे शाहजादा शाहजहाँ के सेवको मे भर्ती हुआ। हकीमी के कारण पास रहने तथा प्रकृति पहिचानने से शाहजादा ने बडी कृपा कर इसे अपनी सेना की अदालत का दारोगा नियत कर दिया। इसने झगडो को तै करने में बडी सचाई और समझदारी से काम किया और इस कारण शाहजहाँ के हृदय मे स्थान बना लिया। बयूनात की दीवानी के समय राणा की चढाई मे अच्छी सेवा कर इसने उन्नति की लडाई के समय यह साथ था पर इसने किसी वस्तु की प्रार्थना नही की। प्रत्युत् इसी बीच जो कुछ दस बारह लाख रुपये मिले सब खास शाही कामो मे व्यय कर दिया। जुनेर मे शाहजादा के सरकार की दीवानी करते हुए रहते समय सम्मान प्राप्त किया। उस समय महावतखाँ के बाद इससे बडा सर्दार कोई साथ में न था।

शाहजहाँ की राजगद्दी के समय इसे पाँचहजारी ३००० सवार का मंसब, झंडा, डंका और एक लाख रुपया पुरस्कार मिला। ५ वे वर्ष जब फतहखाँ दौलताबादी ने अधीनता स्वीकार करने पर भेंट देने मे देर की तब शाहजहाँ ने वजीरखाँ को सवार का मसब दिया तथा दस सहस्र सवार के साथ बुर्हानपुर से भेजा कि दौलताबाद को घेर ले और असावधान को जगावे। यह सूचना पाकर फतहखाँ ने डरकर अपने बडे पुत्र को भेंट के साथ दरबार भेजा तब वजीरखाँ आज्ञा के अनुसार मार्ग से लौटकर सेवा मे पहुँचा। दक्षिण की चढाई मे अधिक सेना तैयार रखता था इसलिए बादशाही कृपा बढती गई और इसी वर्ष बुर्हानपुर से लौटते ही पंजाब प्रांत का प्रबंध, जो यमीनुद्दौला की जागीर में था, और वहाँ के खालसा के महालों का इन्त-जाम, जो अन्य प्रातो से इससे अधिक थे और जिनका प्रबन्ध उसके प्रतिनिधि द्वारा उचित रूप से नही हो रहा था, वजीर खाँ को मिला, क्योकि यह पुराना विश्वस-नीय सेवक था, तथा मार्ग से वहाँ भेज दिया गया। सात वर्ष से अधिक यह दृढता से वहाँ की सूबेदारी करता रहा और दरबार मे उचित भेंट भी भेजता रहा। १४ वे वर्ष मे आगरे की सूबेदारी पाकर यह वहाँ दस महीने तक काम करता रहा। सन् १०५० हि, सन् १६४० ई० मे अँतडी की पीडा की बीमारी से मर गया।

कहते हैं कि एक दिन यह नगर के बाहर से दुर्ग के भीतर जा रहा था। जब यह हाथी पोल फाटक मे पहुँचा तब इसका घोडा पाँव फिसलने से गिर पडा। इसका हाल बिगड गया। उसी हालत मे इसने अपनी कुल चल संपत्ति को बिना कम किए इकट्ठा कर दरबार भेज दिया। अपनी उदारता का यह बहुत चिन्ह छोड गया है। इसने लाहौर में हम्माम, बाजार तथा हवेलियाँ बनवाई थी। जामे मसजिद भी इसी

ने बनवाई थी जिससे इसका नाम जनसाधारण में बहुत दिन रहेगा। इसने लाहौर के पास वजीराबाद बस्ती बसाया और चिनवत के मिट्टी के दुर्ग को पक्काकर संगीन तथा पक्की इमारतों से सजा दिया। रास्ते, बाजार, दूकान, मस्जिदें, सराय, पाठशाला, दवाखाना, कुएं और तालाब बनवाकर वहाँ के लोगों को वक्फ कर उनके कष्टों को दूर कर दिया। इस प्रकार इसने अपनी जन्मभूमि को सजाया जैसा किसी सर्दार ने हिंदुस्तान में नहीं किया था पर इसे कभी न देख सका। इसकी इसे बराबर इच्छा बनी रही। कहते हैं कि यह आचारवान तथा निष्पक्ष था। इसने सारी अवस्था सादगी तथा बेतकल्लुफी में बिताया। यह आराम तथा वस्त्र में कम व्यय करता था। लाहौर में खरीद बिक्री जो होती वह इसी के सरकार की होती थी क्योंकि इसमें बहुत रुपया लगाया था। यह शोक है कि दया और क्षमा कम थी तथा जरा सी बात पर इसकी हालत बिगड़ जाती और बहुत क्रुद्ध हो जाता। यह राजभक्ति तथा स्वामिभक्ति से बादशाही काम को ईश्वर की याद के समान समझता था। इसका पुत्र सलाहखाँ बहुत दिनों तक औरंगजेब के समय मीर तुजुक रहा। २९ वें वर्ष में इसे अनवरखाँ की पदवी और खवासों की दारोगागिरी मिली। ३० वें वर्ष में यह मर गया।

०

६०२. वजीर खाँ हरवी

यह आसफखाँ अब्दुलमर्जद का भाई था, जिसके वृत्तांत में पहिले यह घटना लिखी जा चुकी है कि जब ये दोनों भाई खानजमाँ और बहादुर खाँ शैबानी के हाथों से छुटकारा पाकर कड़ा मानिकपुर आए तब वजीरखाँ शीघ्रता से आगरे चला आया। उस समय अकबर पंजाब में था और बड़ा दीवान मुजफ्फर खाँ आज्ञानुसार वहाँ जाने की तैयारी में था इसलिए वजीरखाँ भी दिल्ली में उसके पास पहुँचा। उसने बादशाही कृपा की आशा दिलाकर इसे साथ ले लिया। जब यह बादशाह के सामने उपस्थित हुआ तब दोनों भाइयों के दोष की क्षमा याचना की।[२] क्षमा मिलने पर वजीरखाँ पर नए सिरे से कृपा हुई और आसफखाँ के नाम भी क्षमापत्र भेजा गया। जब गुजरात का नाजिम मिर्जा अजीजकोका दंडित हुआ और २१ वें वर्ष में यद्यपि वहाँ की अध्यक्षता पर नाम को मिर्जा खाँ की नियुक्ति हुई पर वास्तव में वहाँ का कुल प्रबन्ध वजीरखाँ की सम्मति पर होना निश्चय हुआ। इसके अनन्तर

२. इन दोनों के दोष तथा क्षमा का विवरण विस्तार से आसफ खाँ की जीवनी में दिया गया है। यह घटना सन् ९७४ हि०, सन् १५६६ ई० की है।

न हो सका। थोड़े ही समय में यह अयोग्य आवारों के संग से वेहूदा वकवाद करने तथा आवारेपन के मार्ग पर चलने लगा। इसी समय दरबार से मीर मुराद भेजा गया कि वजीर खाँ की सेना को उसके पुत्र सहित लिवा लाने। मुहम्मद सालिह ने मार्ग में हठ किया तब मीर मुराद ने लाचार हो फतह पुर हँसुआ को घेर लिया। दरबार पहुँचने पर अकबर ने इसे कुछ दिन कैद में रखा।

•

६०३. वजीर जमील

अकबर के राज्यकाल का यह एक मंसबदार था। यह सात सदी के मंसब तक पहुँचा था और यात्रा तथा दरबार में सेवा कार्य करता था। अली कुली खाँ खानजमाँ के मारे जाने पर यह पूर्वी प्रांत में जागीर पाकर १९ वें वर्ष में मुनइम वेग खानखानाँ के साथ बंगाल की चढाई पर गया और उस प्रांत में बहुत काम किया। एकाएक दैव ने उपद्रव खडा कर दिया और उस प्रांत के अध्यक्ष मुजफ्फर खाँ तथा काक्शालो में मनोमालिन्य आ गया। इसकी प्रकृति कपट की थी इसलिये २५ वें वर्ष में स्वामिभक्ति भूलकर शत्रुओ से जा मिला। उनमें कुछ दिन व्यतीत किया। यहाँ तक कि २८ वे वर्ष में काक्शाल लोग मासूम खाँ से अलग होकर तथा अधीनता स्वीकार कर सेवा में चले आए। मासूम खाँ इन सब को लूटने के लिए रवाना हुआ। उस प्रांत के अध्यक्ष खान आजम कोका ने तर्सून मुहम्मद खाँ को सेना सहित काक्शालों की सहायता को भेजा। वजीर जमील उक्त खाँ के पास आया। १९ वर्ष में यह दरबार पहुँचने पर सेवाकार्य में लग गया। उस समय से अंत तक नौकरी करता रहा।

•

६०४. वाली, मिर्जा

यह ख्वाजा हसन नक्शबंदी का पुत्र था। ख्वाजा बहुत दिनों से काबुल में रहकर वहीं कालयापन करता रहा। जब बदख्शाँ के मिर्जा सुलेमान ने काबुल के शासक मिर्जा मुहम्मद हकीम के प्रति, जो उस समय अल्पवयस्क था, शाह अबुल् मआली के लूट तथा अधिकार का वृत्तान्त सुनकर उसे दंड दिया तब अपनी पुत्री

का मिर्जा से विवाह कर काबुल के अधिकतर महाल बदख्शियों को वेतन में दे दिया तथा मित्रता के छद्म में शत्रुता का सामना कर यह उपाय किया कि काबुल अपने अधिकार में कर लेवे। इसके अनंतर मिर्जा सुलेमान बदख्शा लौट गया। मिर्जा मुहम्मद हकीम के सर्दारों ने, जिनमें ख्वाजा हसन व बाकी काकशाल अच्छे थे, वास्तविक बातें मिर्जा को समझाकर बदख्शियो के हटाने का प्रबंध किया, जिसका पता पाकर मिर्जा सुलेमान फिर काबुल आया। मुहम्मद हकीम काबुल दुर्ग को बाकी काकशाल की रक्षा में छोड़कर स्वयं पशावर चला आया और सिंध नदी पार कर अकबर से सहायता का प्रार्थी हुआ। अतगा खेल के सर्दारगण ने पंजाब के जागीदारो के साथ बादशाही आदेशानुसार मिर्जा के साथ जाकर उसे फिर मसनद पर बिठा दिया तथा बादशाह की आज्ञा पर मीर मुहम्मद खाँ अतगा काबुल का प्रबन्ध देखने लगा। मिर्जा मुहम्मद हकीम ने अपनी बहिन नजीबुन्निसा बेगम का, जो पहले अपनी माता द्वारा शाह अबुल् मआली को व्याही गई थी, बिना अकबर से आज्ञा लिए और मीर मुहम्मदखाँ से बिना पूछे ख्वाजा हसन से संबंध कर दिया। ऐसा ऊँचा संबंध हो जाने पर ख्वाजा ने मिर्जा के घराऊ कामो का प्रबंध क्रमशः अपने हाथ में ले लिया तथा ऐसे काम करने लगा जो उसके लिए उचित न था और मीर मुहम्मद खाँ से कुछ भी संपर्क न रखता था। उक्त खाँ अपनी ईर्ष्यालु प्रकृति के कारण यह सहन न कर सका और लाहौर चला आया। ख्वाजा स्वतंत्र हो मन्त्रित्व का कुल कार्य अपने हाथ में लेकर कठोरता से प्रभुत्व जमाने लगा। उस समय के भले लोगो ने कहा है—शैर

यदि ख्वाजा हसन हमारा ख्वाजा होता।
हम लोगों का न गून और न रस्सी होती।

जब मिर्जा सुलेमान को निश्चय हुआ कि बादशाही सर्दारों से कोई काबुल में नहीं है तब ११ वें वर्ष इलाही सन् ९७३ हि० मे वहाँ का प्रबंध करने ससैन्य काबुल आया। मुहम्मद हकीम नगर को मासूम कोका को सौंपकर स्वयं ख्वाजा के साथ गोरबंद चला गया। जब मिर्जा सुलेमान शक्ति से काबुल न ले सका तब अपनी स्त्री वली नेअमत बेगम को कराबाग भेजकर, जो काबुल से बारह कोस पर है, अशांति के पर्दः में संधि की बात की। मुहम्मद हकीम ने कपट मे पड़कर बेगम से भेंट करना निश्चय किया और इसके पहिले बेगम के संकेत पर मिर्जा सुलेमान काबुल के पास से फुर्ती से कूचकर घात में आ बैठा। मुहम्मद हकीम यह पता पाकर भाग गया। जब यह हिंदूकोह की घाटी मे पहुँचा तब ख्वाजा हसन ने चाहा मिर्जा को मीर मुहम्मद खाँ के पास बल्ख लिवा जाकर उससे सहायता माँगे पर बाकी काकशाल ने साथ नही दिया। मिर्जा सम्राट् अकबर से सहायता माँगने के लिये जलालाबाद को चला और ख्वाजा अपने साथियो के साथ अलग होकर बल्ख गया। शैर—

हृदय गया, प्राण भागा और धर्म नष्ट हुआ ।
ए हसन इससे बढ़कर क्या चाहेगा ?

इसका विवरण तथा तात्पर्य नहीं ज्ञात होता क्योंकि ख्वाजा इस घटना के बाद बहुत दिनों तक वकील का कार्य करता रहा। यह अकबरनामा तथा तबकाते अकबरी में लिखा है।

जब मुहम्मद हकीम बंगाल के विद्रोहियों के बहकाने तथा उभाड़ने से उपद्रव करने के विचार से लाहौर पहुँचा तब अकबर के लौटने का समाचार पाकर काबुल चला आया। अकबर ने पीछा कर २६ वें वर्ष सन् ९९० हि० मे सिंध नदी पार किया और मिर्जा की क्षमा याचना का उत्तर दिया कि यदि तुम्हारी बातों में सचाई है और लज्जा से सेवा में नही आ सकते तो अपने एक पुत्र को अपनी बहिन के साथ भेज दो और यह भी न कर सको तो ख्वाजा हसन को उस प्रांत के कुछ सर्दारों के साथ भेजकर प्रतिज्ञा तथा शपथ की रसम पूरी करो। मिर्जा ने बहुत चाहा कि बहिन को दरबार भेजकर प्रार्थी हो पर ख्वाजा ने नही स्वीकार किया और अपनी स्त्री को लेकर बदख्शाँ जाने को विचार किया। स्यात् इसी समय इसकी मृत्यु हुई। ख्वाजा को इस राजवंश की स्त्री से दो पुत्र हुए जिससे एक मिर्जा बदीउज्जमाँ बहुत योग्य तथा कुशल था। जब मिर्जा सुलेमान ने हुमायूँपुरा किसी अनजान को देखकर बदख्शाँ के पहाड़ों में अपना शासन जमाया तब बदीउज्जमाँ ने ४६ वें वर्ष इलाही मे कुछ सेना के साथ शादमान दुर्ग मे जाकर उस पर आक्रमण किया और विजय प्राप्त किया। वह विद्रोही युद्ध में नष्ट हो गया। इसने मेवर, सोना चाँदी अकबर के नाम से सजाकर उसके यहाँ प्रार्थनापत्र सहित भेजा। दरबार से इसे बहुत पुरस्कार मिला। दूसरा पुत्र मिर्जा वाली हिंदुस्तान आकर बादशाही कृपापात्र हुआ। अकबर ने शाहजादा दानियाल की पुत्री बुलाकी बेगम का इससे निकाह करा दिया। जहाँगीर के समय इसे डेढ़ हजारी ७५० सवार का मंसब मिला। शाहजहाँ की राजगद्दी के समय इसका मंसब पाँच सदी २५० सवार बढ़ने से दो हजारी १००० सवार का हो गया। अंत में यह मांडू का फौजदार नियत हुआ। २९वें वर्ष सन् १०२८ हि० मे वह मर गया। उज्जैन के अंतर्गत अन्हल परगना निवास स्थान के लिए जागीर मे मिला था। संबंध के अनुसार इसने उन्नति नही की। सहनशीलता मे यह खाली नही था। इसके पुत्र मिर्जा अबुल्मआली मिर्जा खाँ का हाल अलग दिया गया है।

०

६०५. वैस गिलजई, मीर

गिलजई अफगानों की एक कौम है जो जमींदावर के पास रहती है। शाह सुल्तान हुसैन सफवी के समय, जब गुर्जिस्तान का शासक गुर्गीन खाँ कंधार का बेगलर बेग नियत था, तब गुर्जियों ने उसके साथ अफगानों पर अत्याचार करना आरंभ किया। मीर वैस, जो अपनी कौम का एक सर्दार था, शाह के दरबार में इस अत्याचार का फर्याद लेकर गया। शाह की प्रकृति इतनी नम्र हो पड़ी थी कि वह दिन रात विद्वानों के सत्संग के सिवा कुछ करता न था और दंड विभाग के कर्मों से जो राज्य के लिए आवश्यक है, हाथ हटाकर खूनी को मुद्दई को नहीं सौंपता और खून का बदला अपने कोष से दे देता था। इस राजकार्य की सुस्ती से यहाँ तक प्रभाव बिगड़ गया था कि शाही आज्ञाओं को लोग नहीं मानते थे तब दूसरों के न्याय को कौन सुनता ? यह हाल देखकर मीर वैस ने मक्का का मार्ग लिया। वहाँ से लौटने पर तथा अपने देश में पहुँचकर अवसर देखते हुए सन् ११२० हि० मे जब गुर्गीन खाँ काकरी को दंड देने के लिए दहमंज में कंधार के बाहर था तब इसने उस पर आक्रमण कर उसे कैद कर लिया और उसे समाप्त कर दिया। कंधार में दृढ़ता से जमकर इसने सोने की कुंजी के साथ प्रार्थनापत्र बहादुरशाह की सेवा में भेज दिया और अपनी अधीनता प्रकट की ; उक्त बादशाह ईरान के शाह से मित्रता की इच्छा रखता था और औरंगजेब तथा शाह अब्बास द्वितीय के बीच मे हिंदुस्तान के राजदूत तरबियतखाँ के कारण जो मनोमालिन्य आ गया था उसे दूर करना चाहता था इसलिए उसने मीर वैस की प्रार्थना को समयानुकूल समझकर पाँच हजारी मंसब, बादशाह नवाज खाँ की पदवी तथा कंधार दुर्ग की अध्यक्षता की सनद उसके पास भेज दी पर साथ ही ईरान के शाह के पास संदेश भी भेजा कि स्वामिद्रोही अफगान लोग दरबार के साथ अनुचित सलूक कर रहे हैं इसलिए उचित है कि इसका तुरंत ठीक उपाय किया जाय और इधर की सहायता पर विश्वास रखा जाय। शाह ने गुर्गीन खाँ के भतीजे सुल्तान कैखुसरूखाँ को सेना सहित कंधार भेजा, जिसने आते ही घेरा डाला पर उसी प्रयत्न मे मारा गया। इसके अनंतर मुहम्मद जमाँ खाँ शामलू कोर्चीबाशी इस कार्य पर नियुक्त हुआ। दैवयोग से वहाँ तक पहुँचने के पहले ही उसकी मृत्यु हो गई।

मीर वैस आठ वर्ष तक वहाँ का प्रबन्ध करने के अनंतर मर गया। इसके बाद इसका भाई अब्दुल् अजीज वहाँ का शासक हुआ। एक वर्ष बाद मीर वैस का पुत्र महमूद अपने कुछ नौकर के साथ उसे मारकर गद्दी पर बैठ गया। जब हिरात में अब्दाली का उपद्रव हुआ, जो अफगानों मे शीआ थे, तब अब्दुल्ला खाँ अब्दाली ने अपने पुत्र असदुल्ला के साथ, जिनको इसी कारण हिरात के शासक अब्बास कुली खाँ शामलू ने कुछ दिन से कैद मे रखा था और जो कैद से भाग आए

थे, सेना एकत्र कर पहले इसफरार दुर्ग पर अधिकार कर लिया और सन् ११२९ हि० मे हिरात नगर पर भी इनका कब्ज: हो गया। असदुल्ला ने फराह दुर्ग पर, जो गिल्जियों के अधिकार में था, एकाएक आक्रमण कर अधिकार कर लिया। कुछ दिन बाद महमूद गिलजई फराह की रक्षा के लिए शीघ्रता से आया और फराह तथा जमीदावर के बीच असदुल्ला से युद्ध कर उसे मार डाला। इसकी तारीख है—असदरा सगे शाह ईरान दरीद (असद नाम भी है तथा अर्थ शेर है अर्थात् शेर को ईरान के शाह के कुत्ते ने फाड़ डाला)। यह दुर्ग बहुत दृढ़ था इसलिए असदुल्ला के मारने ही पर संतोष कर वह कंधार लौट गया। इमे भारी समझकर शाह सुलतान हुसेन को प्रार्थनापत्र लिखा कि यदि शाह खुरासान की ओर पधारें तो मैं हिरात जाऊँ। राज्य के प्रधान सर्दारो ने इसकी बात ठीक समझकर इसे सूफिए साजी जमीर तथा हुसेन कुली खाँ की पदवियाँ दी और कंधार के स्थायी शासन के साथ खिलयत तथा तलवार भेजा। महमूद हिरात के अब्दाली को दंड देने के बहाने सीस्तान गया। उस समय किरमान पहुँचकर उसने नौ महीने उसे जब्त करने में लगा दिया। इसके अनंतर उपद्रव का यह समाचार सुनकर कि फराह निवासी बैजन सुलतान लकज़ी, जिसे यह अपना नायब बनाकर कंधार में छोड़ गया था, कुछ आदमियो के साथ भीतरी अफगानों को मारकर स्वयं बाद में अफगानो द्वारा मारा जा चुका था, यह कंधार लौट गया। दूसरे वर्ष यह फिर किरमान गया और मारकाट करने लगा। दुर्गवालो ने निरुपाय होकर भेंट देना इस शर्त पर स्वीकार किया कि इसफहान का जो हाल होगा वही वे भी करेंगे। महमूद गिलजी ने यह बात स्वीकार कर इस्फहान का मार्ग लिया। इस्फहान से चार फर्सख की दूरी पर शाही सेना से सामना होने पर उसे इसने हरा दिया और कुल तोपखाना तथा सामान छीन लिया। इसके अनंतर इस्फहान के पास पहुँचकर इसने सन् ११३४ हि० में घेरा आरभ कर दिया और यहाँ तक प्रयत्न किया की बात चली। शाही सर्दारो ने नगर दे देना निश्चय कर ११ मुहर्रम ११३५ हि० को शाह को इसके सामने लाकर शाही ताज अफगान के सिर पर रख दिया। उसी समय राजकोष तथा कारखानो को जब्त करने के लिए आदमी नियत कर यह नगर में गया। अपने नाम खुतबा तथा सिक्का करके इसने सफवी वंश के परिचय सर्दारो तथा कुल वंशवालो को मरवा डाला। शीराज पर भी अधिकार कर दो वर्ष के लगभग यह इस्फहान तथा दूसरे स्थानो पर शासन करता रहा। इसके अनंतर पागलपन तथा लकवे की बीमारियो ने इसे धर दबाया। १२ शाबान सन् ११३७ हि० को इसके चचेरे भाई अशरफ ने कोने से निकलकर महमूद को समाप्त कर दिया और स्वयं गद्दी पर बैठ गया। इसने अपने समय में किर्मान, यज्द, बनार्दे, कुम, कजवीन और तेहरान से पोल करबी तक, जो एराक और खुरासान की सीमा हैं, अधिकार कर लिया। इसके राज्य के ३ रे वर्ष में रूम के सुल्तान का राज-

दूत कठोर संदेश लाया कि यह इस अपने राज्य से दूर हट जाय। इसने इसका उत्तर तलवार दिया कि शाह सुलतान हुसेन के सिर को काटकर, जो इस्फहान में था, राजदुत के पास भेज दिया। इस पर रूम की सेना ने आकर युद्ध आरंभ कर दिया। अंत मे रूमियों ने पराजित होकर इससे संधि कर ली। इसके अनंतर नादिरशाह से इससे तीन बार युद्ध हुआ पर यह हर बार हारा। अत मे यह शीराज गया और वहाँ स्थान न पाकर कंधार के पास पहुँचकर, जहाँ महमूद को मारने के कारण जाने का इसका मुख न था, बिलूचिस्तान जाने का इसने विचार किया। महमूद के भाई हुसेन गिलजी ने यह समाचार पाते ही अपने दास इब्राहीम को ससैन्य इस पर भेजा और वह पहुँच भी गया। सन् ११२२ हि० में यह इब्राहीम की गोली से मारा गया। उक्त हुसेन कुछ दिन कधार मे रहा। अंत मे उक्त दुर्ग नादिरशाह के अधिकार में चला गया।

•

६०६. शमशेर खाँ असंलाँ बे उजबक

यह जहाँगीर के समय का एक सर्दार था। पहले यह कहमर्द का शासक था और तूरान प्रात के राजा बली मुहम्मद खाँ के घनी सेवको में से एक था। इसी के अनंतर इसने कहमर्द बादशाही सरकार को सौप दिया। ३ रे वर्ष यह सेवा में उपस्थित हुआ और इसे योग्य मंसब और खिलअत मिला। इसके बाद ठट्टा प्रात के अंतर्गत सिविस्तान मे जागीर पाकर यह वहाँ का अध्यक्ष नियत हुआ। ५ वें वर्ष मे इसे झंडा मिला। ९ वे वर्ष में जब ठट्टा की सूबेदारी पर मुजफ्फर खाँ मामूरी नियत हुआ तब यह सिवितान से हटाए जाने पर दरबार आया। राणा की चढाई पर शाहजादा सुलतान खुर्रम के साथ यह नियत हुआ। समय आने पर इसकी मृत्यु हो गई। कहते हैं कि यह सादा आदमी था, प्रतिदिन निमाज पढ़ना और ईश्वरी वाक्य का मनन करता। यह अपने साहस से सदा अच्छे काय करता। यह तीन हजारी मंसब तक पहुँचा था।

•

६०७. शमशेर खाँ तरीं आजमशाही

इसका नाम हुसेन था। यह पहले दिलेर खाँ दाऊदजई का नौकर था और फिर दाऊद खाँ कुरेशी का साथी हुआ। जिस समय उक्त खाँ बुर्हानपुर का सूबेदार नियत हुआ तब उसने इसको वहाँ के काम पर नियुक्त किया। यह सामान व संपत्ति का स्वामी हो गया। जब उक्त खाँ की मृत्यु हो गई तब यह शाहजादा मुहम्मद आजमशाह की नौकरी मे भर्ती हो गया, जो उस समय मुलतान का फौजदार था। इसके अनंतर उक्त शाहजादे के जागीरी महाल जम्मू का यह फौजदार नियत हुआ। बीजापुर की चढ़ाई में इसने बहुत परिश्रम किया था इसलिए विजय के उपरांत इसे शमशेर खाँ की पदवी मिली और यह जमींदारी से अमीरी के दर्जे को पहुँच गया। शाहजादे की सेवा में इस पर पूर्ण विश्वास हो गया था। समय आने पर इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र मुहम्मद उमर व मुहम्मद उसमान थे, जो शाही कृपा से पालित होने तथा खानाजादी के कारण घमंडी हो गए थे। जवानी के जोश तथा सैनिक व्यवसाय की मूर्खता से दरबार के कुछ उस्तादों की तबीयत बिगाड़ दिया। साथ ही व्यर्थ अप्रसन्न होकर अपने स्थान को चले गए, जो सरहिंद से तीन कोस पर आबादी मलिक हैदर के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ दिन वहाँ बेकारी मे बिताकर ये बादशाही दरबार में आए, जो उस समय अहमदनगर में था। ये बादशाही पड़ाव के पास की चौकी में, जहाँ बिना आज्ञा के जाना मना है, बहुत दिनों तक रहे। शाहजादा के विचार से, जो अभी गुजरात से आया हुआ था, किसी ने इनके विषय मे कुछ नहीं कहा। काम न मिलने के कारण इन बेचारों का बुरा हाल था। दैवयोग से शत्रु की सेना पड़ाव के पास पहुँच गई और बहुत से सर्दार उन्हें दंड देने को बाहर निकले। ये युद्ध के उत्सुक तलवार लेकर सबके आगे दौड़ पड़े और शत्रु को युद्ध कर भगा दिया। हरकारों से बादशाह को यह वृत्तांत ज्ञात हुआ तब इन पर कृपा कर इन्हें सेवा में ले लिया पर शाहजादा इनकी ओर से ईर्ष्या रखता था और उसके साथ रहने मे अपना व्यय निकलता न देखकर भी ये उसके साथ रहे, जो औरंगाबाद तथा बुर्हानपुर जा रहा था। इस पर भी शाहजादा ने इन पर कृपा न की। दो तीन पड़ाव आगे बढ़े थे कि औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला। तब इन पर कृपा की गई और बहादुर शाह के साथ युद्ध में शाहजादे के हाथी के सामने रहकर छोटे भाई ने बड़ी वीरता दिखलाई तथा स्वामिभक्ति पर प्राण निछावर कर दिया। इसके अनंतर शाहजादा अजीमुश्शान ने उमर खाँ को अपने यहाँ रख लिया। मुहम्मद फर्रुखसियर के राज्य-काल के आरंभ में नवाब निजामुलमुल्क फतहजंग के साथ दक्षिण जाकर यह खालसा के महाल संगमनेर का फौजदार नियत हो औरंगाबाद गया पर दक्षिण के दीवान

हैदर कुली खाँ की जाँचो के मारे वहाँ ठहरने में मन न लगा तब दरबार लौट गया। यहाँ से कालाबारा का फौजदार नियत होकर, जो मालवा प्रांत में विद्रोहियो का एक स्थान है, वहाँ के बहुत से विद्रोहियों को अधीनकर लिया और कुछ को, जो उपद्रव तथा विद्रोह करके भी शांत नही हो रहे थे, मरवा डाला। मुहम्मद शाह बादशाह के समय यह धार का दुर्गाध्यक्ष तथा फौजदार नियत हुआ। जब यह मरा तब इसके पुत्र उस पद पर नियुक्त हुए। जब मालवा मे मराठो का अधिकार हो गया तब वे बादशाह के किसी भी नियुक्त आदमी को उस प्रांत मे रहने देना नही चाहते थे इसलिये मल्हाराव होलकर ने धार दुर्ग को, जो राजा भोज के समय से प्रसिद्ध हैं, घेरने का निश्चय किया। एक दिन घेरे में शत्रु ने कुछ खान दीवार तक पहुँचा दी। इन सबने बहुत कुछ हाथ पैर मारे पर बाहर से कुछ सहायता आने की आशा न रहने पर ये दुर्ग उन उपद्रवियों को देकर राजा जयसिंह के पास पहुँचे।[1] सोहबत ठीक न बैठी तब दरबार चले आए पर किसी ने इनका हाल न पूछा।

•

६०८. शमशेर खाँ हयात तरीं

यह अली खाँ का पुत्र था, जो शाहजहाँ के परिचित सेवको मे से एक था और ठट्ठा के युद्ध मे मारा गया था। इसके अनतर जब शाहजहाँ बादशाह हुए तब इसे १म वर्ष में खिलअत, एक हजारी ४०० सवार का मसब और सात सहस्र रुपये पुरस्कार मे मिले। ३ रे वर्ष में जब बादशाह दक्षिण गए तब यह शायस्ताखाँ के साथ निजामुलमुल्क् के राज्य में लूट मार करने के लिये नियत हुआ। ११ वें वर्ष में सईद खाँ बहादुर के साथ काबुल प्रांत जाकर इसने दुर्ग बुस्त लेने मे बहुत प्रयत्न किया। १४ वें वर्ष में ३०० सवार और १६ वें वर्ष मे २०० सवार बढने से इसके मंसब में सवार जात के बराबर हो गए। इसके बाद यह सुल्तान मुरादबख्श के साथ बलख व बदख्शाँ की चढाई पर गया और वहाँ पहुचने पर इसने बहादुर खाँ

---

१. सन् १७२३ तथा १७२४ ई० मे मल्हारराव होलकर ने मालवा पर चढाई की और ऊदाजी पवार ने धार नगर तथा प्रांत पर अधिकार कर लिया। मालवा का सूबेदार राजा गिरिधर भी मराठो से युद्ध कर मारा गया। मालवा के बादशाही सर्दारो ने जयपुराधीश सवाई राजा जय सिंह से सहायता माँगी पर वह मराठों या बादशाह का पक्ष खुलकर नही ले सकते थे अतः वह शांत रह गए। देखिए 'ए हिस्ट्री ऑव मराठा पीपुल' पारसनीस किनकैड कृत भाग २ पृ० २१३-४।

रुहेला के साथ वल्ख के शासक नज्रमुहम्मद खाँ से युद्ध किया। २० वें वर्ष में इसका मंसव वढकर डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया।

जब शाहजादा मुरादवख्श हठ कर तथा उस प्रात का शासन छोड़कर दरवार रवाना हो गया और सादुल्लाखाँ वहाँ का प्रवध करने के लिए आ पहुँचा तथा इसे खानावाद को ौजदारी पर नियत किया तब उक्त खाँ की प्रार्थना से इसके मंसव में पांच सदी ४०० सवार वढाए गए। इसके बाद सुलतान औरगजेव वहादुर उस प्रांत में वल्ख का शासक नियत हुआ तब २० वें वर्ष में यह झंडा पाकर सम्मानित हुआ और उक्त शाहजादे के साथ कधार प्रात की ओर जाकर तथा किलात पहुँचने पर शाहजादे के संकेत पर वहाँ का अध्यक्ष नियत हुआ। २३ वे वर्ष में इसका मंसव वढकर ढाई हजारी २२०० सवार का हो गया और सआदत खाँ के स्थान पर गजनी का थानेदार नियत हुआ। जव हजारा तथा वहाँ के अफगानों की जब्ती वास्तव मे हुई तव २३ वें वर्ष मे इसका मंसब बढकर ढाई हजारी २५०० सवार का हो गया।

जव औरंगजेव वादशाह हुआ और उसके जलूस के १म वर्ष मे कावुल का अध्यक्ष सआदत खाँ अपने पुत्र शेर जंग के हाथ मारा गया तव यह वहाँ का अध्यक्ष नियत हुआ। ४ थे वर्ष में राजा राजरूप के स्थान पर यह फिर गजनी का अध्यक्ष हुआ। १० वें वर्ष में आज्ञानुसार रूह के अफगानो को दंड देने के लिये नियत होकर उपद्रवियो को बाँधने तथा मा'ने में इसने बहुत प्रयत्न किया और इसके उपलक्ष्य मे इसका मंसव वढकर तीन हजारी २४०० सवार २००० सवार दो अस्प. सेह-अस्प. का हो गया इसके बाद उस प्रांत मे मुहम्मद अमीन खाँ बख्शी के पहुँचने पर उक्त विद्रोहियो के विरुद्ध खूब युद्ध करने पर बादशाही आज्ञा से यह ओहिंद का फौजदार नियत हुआ।[1]

६०९. शम्स, मीर

यह हुसैनी सैयदो में से था। कहते हैं कि बहुत दिनो तक यह संसार से मुख मोडकर भ्रमण करता रहा। इसके अनंतर यह शाहजहाँ की सेवा में चला आया। जहाँगीर की मृत्यु पर जब शाहजहाँ सूरत पहुँचा तव उसने इसे वहाँ का दुर्गाध्यक्ष नियत किया। ७वे वर्ष मे इसका मंसव वढकर ढाई हजारी २००० सवार हो गया।

---

१. इसके अनंतर का इसका वृत्त इस ग्रंथ में नही दिया है।

१०वें वर्ष में इसके मंसब सदी में पांच सदी बढ़ा और गुजरात के अंतर्गत पजोदः पर्गना का फौजदार तथा जागीरदार नियत हुआ । १८वें वर्ष में इसे नक्कारः मिला । १९वें वर्ष में इसका मंसब तीन हजारी ३००० सवार का हो गया और यह बीड़ का फौजदार तथा जागीदार नियत हुआ । २५ वें वर्ष में यह गुजरात के पत्तन का फौजदार तथा जागीरदार नियत हुआ । २८ वें वर्ष मे फिर यह अहमदाबाद के अंतर्गत पचौद. का थानेदार तथा जागीरदार नियुक्त किया गया । ३१वें वर्ष में १९ रमजान सन् १०६७ हि०, १६५७ को यह मर गया ।

•

५१०. शम्सुद्दीन खवाफी, ख्वाजा

इसका पिता ख्वाजा अलाउद्दीन उस प्रांत (खवाफ)[1] का एक बड़ा सरदार था । बादशाह अकबर की सेवा मे इसने अपनी सत्यता तथा कार्यशक्ति के कारण बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी और इसके बात का बड़ा विश्वास था । मुत्सद्दीगिरी के सिलसिले में मुजफ्फर खां के साथ बिहार बंगाल प्रातो में इसने वीरता तथा साहस के कार्य किए थे । उनका वर्णन अकबर के इतिहास मे दिया गया । आल्लामी शेख अबुल् फजल ने ख्वाजा के वृत्तांत में लिखा है कि भारी कामो में, जिनसे तुर्कों का साहस छूट जाता और अग्रणी लोग पीछे हट जाते थे, यह उत्साह तथा सफलता के विश्वास के साथ उन्हें अपने जिम्मे ले लेता था और बड़े नियम के साथ उन्हें पूरा कर देता था । जब बिहार के उपद्रवीगण बगाल के विद्रोहियो के पास पहुँचे तब मुजफ्फर खां का साहस जाता रहा और युद्ध के लिए इसके बहुत कुछ समझाने पर भी कोई लाभ नही हुआ । तब बहुत कहने पर उसने ख्वाजा शम्सुद्दीन की अधीनता में थोड़ी सेना भेजी। जब आज्ञा देनेवालों ही का साहस नही बढ़ता तब आज्ञाकारियो का क्या हाल हो सकता है ? ख्वाजा ने कुछ मार्ग तै किया था कि शत्रु के झुंड झुंड सैनिक पहुँच गए । ख्वाजा युद्ध कर कैद हो गया । जब बंगाल के अध्यक्ष मुजफ्फरखां उस प्रांत के विद्रोहियो के झगड़े मे जीवन समाप्त हो गया तब मासूमखां काबुली ने अधिक धन लेने के लोभ से ख्वाजा को अपनी कैद मे ले लिया । जब मुलायमियत से काम नहीं निकला तब उसने कड़ाई का बर्ताव किया। पास ही था कि यह शिकजे मे अपना प्राण छोड दे कि अरब बहादुर पुरानी मित्रता के विचार से और यह सोचकर कि समझाने से शायद कुछ काम हो इसे अपने साथ

---

१. यह खुरासान प्रात का एक जिला तथा नगर है, जो हिरात से ठीक पश्चिम है ।

लिवा लाया और बेड़ी खुलवा दी। ख्वाजा एक दिन अवसर पाकर कुछ लोगो के साथ किनारे हो गया और खड्ग पुर कस्बा मे राजा संग्राम के पास पहुँचा। यह काफी सेना एकत्र नहीं कर सका इसलिए कुछ लोगो को अपना साथी बनाकर शत्रु की सेना की ओर गया और उस सेना के पशुओं को जो चरने को निकले थे पकड लिया। इसके अनंतर जब शत्रुओ मे गडबड मचा हुआ था, ख्वाजा ने दरबार पहुँच कर बादशाही कृपा से अपना विश्वास बढ़ाया। इसी समय जब २६ वें इलाही वर्ष मे मिर्जा मुहम्मद हकीम को दंड देने के लिए बादशाही सेना सिंधु नदी के किनारे पडी हुई थी तब उस तट पर एक दुर्ग का बनवाना राजीतिक विचार से आवश्यक हो पडा और ख्वाजा के प्रबंध मे थोड़े ही समय मे में वह कार्य पूरा हो गया। इस कारण कि पूर्वीय प्रांतो मे बहुत दूर कटक बनारस नामक एक दुर्ग था, इसलिए इसका नाम अटक-बनारस[1] रखा गया। मानो इस नाम से यह सकेत है कि हिंदुओं के धर्म में इसके उस पर जाना उचित नही है, क्योकि इससे उनके धार्मिक नियम टूटते हैं।

ख्वाजा कुछ दिनो के लिये काबुल प्रात का दीवान नियत हुआ और ३९ वें वर्ष मे जब कासिम खाँ के स्थान पर कुलीज खाँ काबुल का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ तब ख्वाजा उसके स्थान पर दीवान-कुल हुआ। ४० वें वर्ष सन् १००३ हि० मे बारह दीवान निश्चय हुए। हर एक प्रात मे एक दीवान भेजा गया, जिनमे प्रत्येक अपने अपने काम का विवरण ख्वाजा के यहाँ भेजता था क्योकि यह वजी-कुल[2] था। जब ४३ वें वर्ष में बादशाह पंजाब मे चौदह वर्ष ठहरने के अनतर दक्षिण की चढाई के विचार से आगरा की ओर रवाना हुआ हुआ तब बेगमो को सुलतान खुर्रम के साथ लाहौर मे छोड दिया। इन लोगो की रक्षा, उस प्रांत के खलसा का प्रबंध और वहाँ के शाहन का कुल भार ख्वाजा को मिला। ४४ वें वर्ष मे मरियम मकानी महल के लोगो के साथ आगरा बुला ली गई। पंजाब प्रात महल के लोगो के साथ आगरा बुला ली गई। पंजाब प्रांत का कुल काम इसी के प्रबंध मे में रहा। ४५ वें सन्। १००८ हि०, सन् १६०० ई० मे लाहौर मे यह मर गया।

---

१ यह दुर्ग अकबर के २६ वें जलूसी वर्ष सन् १५८१-२ में बनकर तैयार हुआ था और इसी वर्ष वर्ष के आरंभ में ख्वाजा वा शाह के पास पहुँचा। अटक की जो व्युत्पत्ति तथा अर्थ इस ग्रंथ मे दिया गया है वह अबुल् फज्ल के अकबर नामा से लिया गया है।

२. सन् १००३ हि० मे ४० वें जलूसी वर्ष में साम्राज्य के बारह प्रातो में बारह दीवान नियत किए गए थे और ये सब दीवान-कुल या वजीर के निरीक्षण में कार्य करते थे। समसुद्दीन काबुल से हटाए जाने पर वजीर कुल नियत हुआ था।

ख्वाजा सचाई के साथ काम करने, समाचार के संग्रह करने तथा वीरता में अपने समय में अद्वितीय था तथा अनुभव में अच्छी ख्याति रखता था। यह कठिन कार्य से घबडाता नही था और उत्साह के साथ कामो में जुट जाता था। लिखने में भी वह अपना जोड नही रखता था। इसने सचाई को कभी हाथ से नही जाने दिया। विचित्र यह है कि इस सचाई के होते भी इसने कभी धोखा नहीं खाया और न कभी दिक्कत उठाई। यह बहुत अच्छे आचार का था, इस कारण आरंभ से अंत तक इसने प्रतिष्ठा तथा सम्मान के साथ जीवन व्यतीत किया। इसके मरने[1] पर पंजाब के खालसा का प्रबध इसके छोटे भाई ख्वाजा मोमिन को दिया गया, जो योग्यता के लिए प्रसिद्ध था। यद्यपि इसके बहुत से संबन्धी थे पर यह निस्संतान था। इसका भतीजा ख्वाजा अब्दुल खालिक[2] जहाँगीर के समय में आसफ खाँ से विशेष परिचय और मित्रता रखता था। जिस दिन महावत खाँ ने आसफ खाँ को अटक दुर्ग से बाहर निकाल कर कैद कर लिया, उसी दिन इस संबध के कारण इस संबध के कारण इस बेचारे को तलवार के घाल उतार दिया। लाहौर का खवाफी पुरा ख्वाजा का बसाया हुआ है, जहाँ पर यह गाडा गया था। इसको सचाई, स्वामिभक्ति तथा कार्यशक्ति के कारण खवाफ के रहनेवाले इस तैमूरिया राजवंश की दृष्टि मे योग्यता तथा विश्वास के पात्र समझे जाते थे। वास्तव में यह कौम सचाई तथा भलाई में प्रसिद्ध है और इनमे सत्यानिष्ठा तथा स्वामिभक्ति प्रकृत्या पाई जाती है। औरंगजेब के राज्यकाल में जब गुण ग्राहकता तथा सचाई का बाजार गर्म था इस कौम के बहुत से आदमी मुसाहिबी, सरदारी और विश्वास के काम पाते थे।

खवाफ प्रात खुरासान के अतर्गत है। अमीन राजी ने हफ्त इकलीम मे लिखा है कि खवाफ मे सर्वदा न्यायप्रिय तथा धार्मिक सुलतान, योग्य शेख तथा विद्वान और नीतिकुशल मंत्री लोग होफ होते आए हैं। उस प्रात के निवासीगण जहाँ कही गए वही अपने साहस, योग्यकार्य तथा गुणो के लिए सम्मानित हुए। इन सुलतानों मे अल् मुजफ्फर हुआ, जिसके वश के सात सुल्तानो ने फारस तथा शराज मे ५९ वर्ष राज्य किया था। शेखो शाह सुभान हुआ है, जिसने ख्वाजा मौदूद चिश्ती से शिक्षा प्राप्त की थी। उसके सूफियाना रंगत के शैर प्रसिद्ध हैं। दूसरा शेख जैनुल् मिल्लत वाद्दीन खवाफी प्रसिद्ध हो गया है, जिसका पौत्र शेख जैन सदर था। यह अपने समय के बडे विद्वानों में से एक था और बराबर बाबर के पास सम्मान के साथ रहा और हुमायूँ बादशाह के समय यह एक सर्दार हो गया। मन्त्रियों में से ख्वाजा गयासुद्दीन ने चालीस वर्ष तक शाहरुख मिर्जा को वजीरी दृढता के साथ

---

१ यह निस्संतान था इसलिए इसके छोटे भाई को इसकी मृत्यु पर इसका काम मिला।

२. यह ख्वाजा मोमिन का पुत्र था।

की और इसका पुत्र ख्वाजा मजदुद्दीन सुलतान हुसैन मिर्जा के राज्यकाल में मन्त्रित्व करते हुए ऐसे सम्मान को पहुँचा कि राजसिंहासन के आगे बैठकर काम देखता था। शेर (अर्थ)

अपने व्यवहार से एक ऐसा हो गया कि शाह के सामने जब हर कोई पैरो पर खड़ा रहता था तब यह बैठता था।

ख्वाफ के आदमी बुद्धिमान तथा विद्वत्ता में विशेष प्रसिद्ध थे। हिरात के इतिहास में आया है कि जब हसन सब्बाह ख्वाफ के पास पहुँचा तब एक मौजा मे कम पेड़ देखकर एक दासी से परीक्षा लेने के विचार से पूछा कि इस भूमि में पेढ़ कम क्यों हैं? उसने उत्तर दिया कि रजालना आशजारना (मर्द नही, पेड नहीं)। जखीरतुल् खवानीन में लिखा है कि ख्वाफ के आदमी पहले सुन्नी धर्म को माननेवाले थे और बड़े धर्मांध होते थे। कहते हैं कि जब शाह अब्बास सफवी अपने राज्य के आरंभ में ख्वाफ आया तब उसने यहाँ के आदमियो के साथ मित्रता करना चाहा पर उन सबने अस्वीकार कर दिया। इस पर यहाँ के रईसो तथा सरदारो में से सत्तर आदमियो को मसजिद पर से भूमि पर फेंकवा दिया, जिससे हर एक की गर्दन टूट गई। इस पर भी किसी ने भय न मानकर उसका कहा नहीं माना। अब उतना ही शीआ मत पर उत्साह रखते हैं।

●

६११. शम्सुद्दीन खाँ खेशगी

यह नजर बहादुर का बडा पुत्र था। शाहजहाँ के २० वे वर्ष मे पिता के जीवनकाल मे यह मुर्शिदकुली खाँ के स्थान पर कांगडा के नीचे के पहाड़ का फौजदार नियत हुआ। २५ वें वर्ष में पिता की मृत्यु पर बादशाह ने इसका मसब बढ़ाकर डेढ़ हजारी १५०० सवार का कर दिया और मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ यह कंधार की दूसरी चढाई पर नियत हुआ। २७ वे वर्ष में मिर्जा ईसा तर्खान के पुत्र मुहम्मद सालिह के स्थान पर जूनागढ की फौजदारी तथा वहीं के कुछ महालो की जागीरदारी इसे मिली। ३० वे वर्ष मे जब जूनागढ की जागीर-दारी को लेकर इससे तथा इसके भाई कुतुबुद्दीन से झगडा हुआ तब कुतुबुद्दीन को गुजरात प्रात मे पत्तन की फौजदारी और जागीरदारी मिली और इसे आज्ञा मिली कि यह औरंगजेब बहादुर के पास दक्षिण चला जावे, जहाँ शाहजादा इसके योग्य कार्य का प्रबंध कर देगा। इस कारण दक्षिण पहुँचकर ३१ वे वर्ष में दक्खिनियो

के साथ युद्ध मे इसने अच्छा कार्य किया। इसके अनंतर जब घटनाएँ पलट गईं और शाहजादा हिंदुस्तान की ओर चला तब इसका मनसब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया और दक्षिण के सहायकों मे नियत होकर इसने अमीरुल्उमरा शायस्ता खाँ के साथ चाकण दुर्ग विजय करने मे बहुत प्रयत्न किया[1]। धावे के दिन स्वयं दौड़कर इसने दुर्ग विजज किया। समय आने पर इसकी मृत्यु हुई। इसकी संतानो मे से किसी ने योग्यता न प्राप्त की। इसके दौहित्र के पुत्र मुनव्वर खाँ बहादुर का वृत्तान्त अलग इस ग्रंथ मे दिया गया है।

•

६१२. शम्सुद्दीन मुहम्मद खाँ अतगा

यह मीर यार मुहम्मद गजनवी का पुत्र था, जो साधु प्रकृति का था। शम्सुद्दीन ने गजनी में बीस वर्ष की अवस्था में स्वप्न देखा कि उसके बगल में बतौरी निकल आई है। यह बात इसने पिता से कहा, जिसने इसका यह फल निकाला कि तुमको ऐश्वर्य मिलेगा, जो हमारे वंश की उन्नति का कारण होगा। इसी के बाद उक्त खाँ हुमायूँ बादशाह के भाई मिर्जा कामराँ के यहाँ नौकर हो गया। जब हुमायूँ बादशाह दूसरी बार शेर खाँ सूर से युद्ध करने के लिए आगरे से रवानः हुआ तब कामराँ मिर्जा उसका साथ न देकर कुछ सेना छोड़कर स्वयं लाहौर चला गया। और शम्सुद्दीन छोड़ी हुई सेना ही में था। जब १० मुहर्रम सन् ९४७ हि० को कन्नौज के पास घाटी से एक फर्सख पर बादशाही सेना ने कड़ी हार खाई तब सर्दारगण विना युद्ध ही के लौटकर पानी में जा पड़े और बहुत से आदमी जल की धारा मे डूब गए। बादशाह ने बड़े धैर्य के साथ दो बार शत्रु पर धावा किया और अंत में स्वामिभक्तों की प्रार्थना पर उस युद्धस्थल से निकल कर हाथी पर सवार हो नदी पार हुए। किनारे पहुँचने पर हाथी से उतर पड़े और मार्ग देखने लगे। तट ऊँचा था इससे मार्ग नहीं मिला। इसी समय एक सिपाही नदी से बचकर वहाँ पहुँचा और बादशाह का हाथ पकड़कर ऊपर खींच लिया। हुमायूँ के नाम और स्थान पूछने पर उसने कहा कि मेरा नाम शम्सुद्दीन मुहम्मद है और मैं गजनी का रहनेवाला मिर्जा कामराँ का सेवक हूँ। हुमायूँ ने

---

१. सन् १६६२ ई० में शायस्ता खाँ ने चाकण दुर्ग विजय किया था। देखिए किनकेड पारसनीस कृत द हिस्ट्री आव मराठा पीपल भाग १ पृ० १९६–७।

शाही कृपा की उसे आशा दिलाई। लाहौर पहुँचने पर यह सेवा में उपस्थित होकर कृपापात्र हुआ और साथ में रहने लगा।

अकबर के पैदा होने के कुछ पहले हुमायूँ ने कन्नौज की इसकी अच्छी सेवा के उपलक्ष्य में इसकी स्त्री को धाय की सेवा पर नियत करने को वचन देकर इसे प्रसन्न कर दिया। हमीदः बानू बेगम ने बादशाह की इच्छानुसार अकबर के पैदा होने पर इसको उसके पलंग के पास ले लिया, जिसे जीजी अनगा की पदवी मिली थी पर इसे बच्चा नहीं हुआ था इससे दूसरी दाइयाँ दूध पिलाती रहीं। बाद को जीजी अनगा को यह कार्य मिल गया। जब हुमायूँ एराक की ओर रवानः हुआ तब मीर शम्सुद्दीन को शाहजादा मुहम्मद अकबर की सेवा मे कंधार में छोड़ गया। जब बादशाह उस ओर से लौटे तब मिर्जा कामराँ के बुलाने पर यह शाहजादे सहित काबुल गया। जब हुमायूँ की सेना ने कंधार विजय कर लिया तब मिर्जा कामराँ शाहजादे को अपने गृह पर ले गया और मीर को अयोग्य स्थान में कैद कर दिया। भाग्य अच्छा था इससे यह शत्रु के कैदखाने मे सुरक्षित रहा। हिंदुस्तान के विजय के अनंतर जब हिसार शाहजादे को जागीर में मिला तब अतगा खाँ वहाँ का शासक नियत हुआ। जब अकबर ने राजगद्दी सुशोभित किया तब अतगा खाँ अन्य सर्दारों के साथ हमीदा बानू बेगम तथा अन्य बेगमों को काबुल से लिवालाने को भेजा गया। जिस समय अकबर का मन बैराम खाँ की ओर से फिर गया उस समय इसके नाम आज्ञा भेजी गई, जो अपनी जागीर भीरः में था, कि लाहौर को अपने बड़े भाई मीर मुहम्मद को सौंपकर दरबार आवे। सेवा में उपस्थित होने पर बैराम खाँ का डंका, झंडा, तूमान और तोग इसे देकर पंजाब के शासन पर नियुक्त किया।

जब बीकानेर से विद्रोही रूप में बैराम खाँ के पंजाब जाने का समाचार मिला तब अतगा खाँ को अग्गल की चाल पर आगे भेजकर बादशाह भी दिल्ली से बाहर निकले। यद्यपि शम्सुद्दीन खाँ बैराम खाँ से युद्ध करने योग्य न था पर बादशाही इकबाल से साहस बढ़ गया और यह जालंधर के पास दकदार पर्गना के मौजा गूनाचूर में दोनों में घोर युद्ध हुआ। बैराम खाँ की सेना ने बड़ी बहादुरी दिखलाकर अतगा खाँ की सेना की कई कतारें तोड दीं पर शैर का अर्थ—

यदि स्वामी से विद्रोह करे तो आकाश होते भी मुँह के बल गिरे॥

अतगा खाँ ने पीछे से बैराम खाँ पर धावा कर उसे परास्त कर दिया और सरहिंद में बादशाही सेवा मे उपस्थित होने पर आजम खाँ की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। जब मुनइम खाँ को वकील मुतलक (प्रधान अमात्य) का पद मिला तब अतगा खाँ ने क्षुब्ध होकर लाहौर मे बादशाह को लिखा कि जब मैंने बैराम खाँ के विरुद्ध प्राणपण से प्रयत्न किया है तब चाहिए कि उसकी सेवा भी

मुझे मिले। इसपर छठे वर्ष में दरबार पहुँचकर इसने माल विभाग का तथा राजनीतिक कार्य अपने हाथ में ले लिया। परंतु माहम अनगा अपने को स्थायी प्रधान अमात्य समझती थी और मुनइम खाँ नाम मात्र को उक्त पद पर था, इससे वह बहुत क्रुद्ध हो गई। यहाँ तक कि ७ वें वर्ष में १२ रमजान सन् ९६९ हि० को जब अतगा खाँ, मुनइम खाँ और शहाबुद्दीन खाँ बादशाही निवास स्थान मे बैठे हुए साम्राज्य का कार्य देख रहे थे उसी समय माहम अनगा का पुत्र अदहम खाँ वहाँ पहुँचा, जो यौवन के घमंड तथा ऐश्वर्य के अहंकार से निडर और उपद्रव करने को तैयार था। सभी सर्दारों ने उसे अभ्युत्थान दिया पर अतगा खाँ कुछ उठकर रह गया। अदहम खाँ बराबरी के द्वेष के कारण उससे बुरा मानता था इसलिये खजर पर हाथ रखकर उसकी ओर झुका और अपने नौकर खुशमबेग से कहा कि इस स्वामीद्रोही को मारो। उसने खंजर खींचकर अतगा खाँ की छाती पर चलाया और वह घायल हो बादशाही हरमसरा की ओर भागा पर उस अत्याचारी के अन्य नौकरो ने तलवार मारकर सहज ही में उसका काम तमाम कर दिया। इस पर वहाँ बडा शोर मचा। बादशाह ने जागकर इस शोर का कारण पूछा और अद.म खाँ को तत्काल प्राणदण्ड दे दिया, जिसका विवरण उसकी जीवनी में दिया गया है। शैर: —

यदि दूसरे वर्ष वीरगति पावे तो मृत्यु का वर्ष होवे खाने शहीद।'[1]

इस घटना का समाचार पाते ही अतगा खेलवाले सशस्त्र होकर अदहम खाँ को मार्ग में पकडने चले। अदहम खाँ के मारे जाने की बात को बहुत सुना पर माहम अनगा के सम्मान और संबंध के कारण उस बात को झूठ तथा अशुद्ध समझकर वे उपद्रव करने लगे। जब उनमें से कुछ वहाँ से जाकर स्वयं देख आए तब उपद्रव शात हो गया। अकबर ने मृत खाँ के पुत्रो तथा भाइयों को सांत्वना दी और इस खेलवालो के पालन तथा दर्जा बढाने में बडी कृपा की। अतगा खेल बहुत बड़ा था। पाँच हजारी से एक सदी तक के मंसबदारो को देश का कुल स्थान वेतन में मिला। कोई वंश इतनी सेना तथा सामान से संपन्न उस समय न था। बादशाह के दूसरे धायभाई भी बहुत थे और प्रायः बहुत से पाँच हजारी मंसब तक पहुँच गए थे। ज्ञात नही है कि इतने एक साथ दूध पीने वाले बच्चे किसी और बादशाह के समय भी थे और सब इतने ऊँचे पदों पर भी पहुँचे थे।

●

---

१ 'खाने शहीद' से ९७० हि० आता है, जो घटना से दूसरा वर्ष है—अर्थात् यह घटना सन् ९६९ हि० की है। १२ रमजान सन् ९६९ हि०, १६ मई सन् १४६२ ई० को अतगा खाँ मारा गया था।

६१३. शरफुद्दीन हुसेन अहरारी, मिर्जा

यह ख्वाजा खाविंद महमूद के लड़के ख्वाजा मुईन का पुत्र था। यह बड़े ख्वाजा नासिरुद्दीन उबेदुल्ला अहरार के पुत्र ख्वाजा कलाँ प्रसिद्ध नाम ख्वाजगान ख्वाजा का संतान था। ख्वाजा कलाँ बाह्य तथा आंतरिक गुणों से सुशोभित था। अपने पूज्य पिता की आज्ञा से समरकंद के एक महल्ले दरसेन में रहने लगा और शाही बेग खाँ के राज्यकाल में अंदजान में चला आया। सन् ९०५ हि० में यह मर गया। इसके शव को ताशकंद भेजकर इसके पिता के कब्र के पास गाड़ दिया। इसको सैयद नकीरुद्दीन मुहम्मद किरमानी की पुत्री से तीन पुत्र हुए—ख्वाजा निजामुद्दीन अब्दुलहादी, ख्वाजा खाविंद महमूद और ख्वाजा अब्दुल्खालिक। उस स्त्री के मरने पर शेखुल्इस्लाम ख्वाजा एसामुद्दीन के भाई ख्वाजा मुहम्मद निजाम की पुत्री से विवाह किया, जिसकी परंपरा हिदायः फुक्कः के लेखक मौलाना बुर्हानुद्दीन तक पहुँचती थी। इससे भी तीन लड़के हुए—ख्वाजा अबुलअलीम, ख्वाजा अब्दुश्शहीद और ख्वाजा अबुल्फैज। तुर्की लौंडी से भी एक पुत्र ख्वाजा मुहम्मद यूसुफ था। ख्वाजा खाविंद महमूद ने दरवेशी प्रथा के अनुसार हज्ज किया और तब एराक तथा फारस गया। वहाँ बहुत दिनों तक मौलाना जलालुद्दीन मुहम्मद के पास शिक्षा प्राप्त की और मौलाना एमादुद्दीन महमूद हकीम से हकीमी सीखी। कुशाग्र बुद्धि के कारण इसने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और तब समरकंद लौट आया। यहीं यह लोगों को लाभ पहुँचाने लगा। जब यह हिंदुस्तान में आया तब हुमायूँ ने इसका बहुत सम्मान किया तथा इसका मुरीद भी हो गया। परंतु किसी कारण से काबुल जाकर यह वहीं मर गया। ख्वाजा मुईन ने पिता के सामने ही काशगर जाकर वहाँ के शासक अब्दुल्ला खाँ के यहाँ विश्वास पैदा किया और यशब की ऊपजाऊ भूमि की आय इसके लिए निश्चित हुई। यह ख्वाजापुत्र जीविका-उपार्जन की विद्या अच्छी प्रकार जानता था इसलिये इसने इस प्रकार की जब्ती किया कि यशब के किसी मनुष्य ने स्वप्न में भी नहीं देखा था। लोग कोने पकड़ने लगे। इस प्रकार इसने बहुत धन संचित किया पर तबीअत में कंजूसी भरी हुई थी। मिर्जा शरफुद्दीन पिता से दुःखित होकर जीता था।

हुमायूँ ने हिंदुस्तान की चढ़ाई के समय ख्वाजा अब्दुल् हादी के पौत्र ख्वाजा अब्दुल्बारी को काशगर के शासक अबुर्रशीद खाँ के पास भेजा था, जिससे वह बराबर संबंध रखता था और इस संबंध के कारण काशगर के खाँ ने मिर्जा को उसके साथ भेजा कि हुमायूँ की मृत्यु पर शोक प्रकट करे तथा अकबर की राजगद्दी की बधाई देवे। अकबरी जलूस के प्रथम वर्ष में सेना में यह भर्ती होकर माहम अनगा तथा अदहम खाँ के प्रयत्न से थोड़े ही दिनों में सर्दार तथा पाँचहजारी

मंसबदार हो गया और अजमेर तथा नागौर की जागीरदारी भी इसे मिल गई। अपनी वीरता तथा योग्यता से प्रयत्न कर इसने वहाँ के उपद्रवियो और बलवाइयों को दमन कर दिया।

मिर्जा की माँ कोचक बेगम मीर अलाउलमुल्क तमिजी की पुत्री थी, जिसकी माता सुलतान अबू सईद मिर्जा की पुत्री फखजहाँ बेगम थी इसलिये अकबर ने ५ वें वर्ष मे अपनी बहिन बख्शी बानू बेगम से इसका विवाह कर इसका पद बहुत ऊँचा कर दिया। ७ वें वर्ष सन् ९६९ हि० मे बादशाह अजमेर गए और मिर्जा शरफुद्दीन सेवा में उपस्थित हुआ। यह मेड़ता दुर्ग विजय करने पर नियत हुआ, जो राय मालदेव राठौड के अधिकार में था और वह राजो तथा रामो मे हिंदुस्तान के नाम और रस्म से बहुत विश्वसनीय तथा संपत्तिशाली था। राजा के सर्दारों मे से जगमाल तथा देवीदास उस दुर्ग के रक्षक थे और उन्होने फाटक बंद कर लिया। बहुत दिनो के घेरे पर संधि हुई कि सैनिक लोग घोड़ो के सिवा और कुछ न लेकर निकल जायें। जगमाल इसी के अनुसार बाहर चला आया पर देवीदास कुछ सामान जलाकर पाँच सौ सवारो के साथ बाहर निकला। मिर्जा यह सूचना पाकर उससे युद्ध करने आया और घोर युद्ध हुआ। देवीदास मारा गया पर कुछ लोग कहते हैं कि यह घायल होकर निकल गया। इस कारण कोई मनुष्य कुछ दिन बाद अपने को देवीदास कहने लगा। कुछ लोगों ने झूठ समझा और कुछ ने साथ दिया। यहाँ तक कि एक युद्ध में वह मारा गया। ८वें वर्ष मे ख्वाजा मुईन अपने पुत्र के ऐश्वर्य तथा सम्मान को सुनकर हज्ज के बहाने अबुल्खैर खाँ से विदा हो काशगर से हिंद चला आया। मिर्जा नागौर से पिता के स्वागत को जाकर बादशाह की सेवा मे ले आया। अकबर ने भी स्वयं अगवानी की और ख्वाजा को सम्मान सहित आगरे लिवा लाया।

पुरानी चाल है कि जब किसी का भाग्य बिगडता है और समय बदल जाता है तब उसकी बुद्धि का दीपक बुझ जाता है। हानि को लाभ समझता है और अयोग्य को योग्य मानता है। शैर का अर्थ—

जब मर्द का समय तिमिराच्छादित हो जाता है तब जो कुछ भी करता है उसमे काम नही होता।

इसी प्रकार मिर्जा का भी हाल कहा जाता है कि इतनी बादशाही कृपा को न पहिचानकर उसी वर्ष किसी कारण से या व्यर्थ की शंका से अपने कुस्वभाव से उपद्रव करने के विचार से आगरे से अजमेर भाग गया। 'शग सफर' इसकी तारीख है। बादशाह ने इसकी मूर्खता तथा शंका को दूर रखकर हुसेनकुली खाँ को अन्य सर्दारो के साथ पीछा करने पर नियत किया। कहीं भी दृढ़ता से न ठहर कर साम्राज्य के बाहर चला गया। ख्वाजा मुईन ने पुत्र के इस अयोग्य कार्य

से कुछ दिन तक लज्जित होकर तथा बकझक करते हुए कालयापन किया, यद्यपि उसके संमान की रक्षा की गई थी। पर वह हज्ज को चला गया। खंभात के बंदर तक पहुँचकर उसकी मृत्यु हो गई। उसके शव का संदूक फतही जहाज से रवाना किया गया, जो डूब गया।

मिर्जा शरफुद्दीन कुछ दिन टक्कर खाकर चंगेज खाँ गुजराती की शरण में गया और इसके अनंतर विद्रोही मिर्जों के पास पहुँचा। फिर खानदेश के शासक का साथ पकडा और तब पुन. लौटकर मिर्जा मुहम्मद हुसेन के पास चला आया। उसका भाग्य बिगड़ा हुआ था इसलिये यह कही टिक न सका। इसके बाद जब गुजरात बादशाही अधिकार में चला आया तब दक्षिण भागकर बगलाना पहुँचा। वहाँ के जमीदार भेरजी ने इसे कैदकर सूरत विजय होने के समय दरबार में उपस्थित किया। बादशाह ने पहले हाथी को कुछ पास पहुँचाकर, जो आदमी मारनेवाला नही था, कैद में भेज दिया। कुछ दिन बाद बंगाल के सूबेदार मुजफ्फर खाँ के पास भेजा कि यदि उसे पश्चात्ताप करता हुआ पावे तो उसी प्रांत मे जागीर वेतन मे दे और नही तो हज्ज की यात्रा पर भेज दे। उसके मुख पर लज्जा का लेश भी न मिला तो मुजफ्फर खाँ ने ऋतु की प्रतीक्षा में उसे कैद रखा। इसी बीच बिहार प्रांत में मासूम खाँ काबुली विद्रोहकर बाबा खाँ काकशाल आदि के पास पहुँचा, जिन्होने बंगाल मे बलवा कर रखा था। उन सबने मुजफ्फर खाँ को टाडा में घेर लिया और मिर्जा दुर्ग से भागकर उनसे जा मिला। जब मुजफ्फर खाँ पर वे विजयी हुए तब मिर्जा, जो उसके कुछ कोषों का पता पा चुका था, उन पर अधिकार कर अपने काम मे ले आया। यद्यपि सब कार्यभार उसके हाथ मे था पर सर्दारी मिर्जा ही को मिली। बंगाल के सर्दारों मे फूट पड़ गई थी इसलिये मासूम खाँ बिहार चला गया। दरबार से भारी सेना के साथ मिर्जा अजीज कोका और शहबाज खाँ कंबू के आने का समाचार पाकर यह भागा तथा बंगाल लौट गया। मिर्जा और मासूम खाँ के बीच मनोमालिन्य आ गया तथा प्रत्येक दूसरे के घात मे बैठा। यहाँ तक कि मासूम खाँ ने इसके एक पुत्र महमूद को, जो मिर्जा को प्रिय था, धन देकर बहका लिया, जिसने इसके कहने पर पोस्त के पानी मे विष मिलाकर मिर्जा को दे दिया। २५ वें वर्ष सन् ९८८ हि० मे यह मर गया।

⊙

६१४. शरीफ आमुली, मीर

यह विद्या की योग्यता रखता था। इसने बराबर कथा की पुस्तकें ईरान प्रांत मे कही। इसने सूफी विचारो तथा सत्य बातों का विशेष मनन किया और विधर्म तथा पारसीक धर्म को खूब मिलाकर उसको सब अपना बतलाता। इन सबको वह अल्लाह कहता। जब अकबर के समय यह हिंदुस्तान मे आया तब इसने यहाँ शांति तथा धर्म का विशेष प्रचार देखा। सामयिक बादशाह का विचार था कि साम्राज्य ईश्वर की साया है। उसके औदार्य को किसी विशेष झुंड के लिये न रखना चाहिए प्रत्युत् भिन्न भिन्न स्थिति तथा धर्म के सभी प्रजा के लिये लाभदायक बनाना चाहिए। धर्म की भिन्नता उसके विचार मे विघ्न नही डालती थी। मीर शौक व इच्छा से बादशाह के दरबार मे उपस्थित होकर मंसब तथा जागीर पाकर बादशाही कृपापात्र हुआ। दबिस्ताने मोविदी मे लिखा है कि मीर देपाल पुर के पडाव पर बादशाह की सेवा मे पहुँचा और महमूद बसारवानी की ओर से खुल्लमखुल्ला विद्वानो से तर्क कर उनपर दोष लगाया। यह हकीमों से झगड गया इसलिये धोखा खा गया। बादशाही कृपा भी इसपर न रही जिससे इसकी अवस्था खराब हो गई। देपाल पुर के इस पड़ाव से ज्ञात हुआ कि यह स्थान मालवा में है, जहाँ २२ वें वर्ष सन् ९८४ हि० मे राजनीतिक कारणों से बादशाह कुछ दिन तक रहे थे।

यद्यपि अकबरनामे मे मीर की सेवा की तारीख इस ग्रंथ के लेखक की दृष्टि तले नही आई परंतु तब भी मीर की सेवा की तारीख निश्चित है। इसके विरुद्ध भी मिलता है जैसे मुंशी सिकंदर बेग आलमआरा अब्बासी में लिखता है कि सन् १००२ हि० में गत शाह अब्बास के ७ वें वर्ष मे शुभ शकुन विचारने के लिये जलसा हुआ था कि नक्षत्रों की स्थिति देखे। ग्रहस्थिति किसी उच्चपदस्थ राजवंश के पुरुष के मृत्यु की सूचक मानी गई थी तथा इसका प्रभाव ईरान ही मे होने को था। शाही जन्मपत्र पर विचार करने पर ज्ञात हुआ कि पहला (चंद्र तथा अन्य ग्रह का) मेल जन्मगृह मे पडा है। इस पर मौलाना जमालुद्दीन तब्रेजी ज्योतिषी, जो इस विद्या मे अपने समय का एक था, इसका उपाय बतलाया कि दो तीन दिन जब उस ग्रहस्थिति का पूर्ण प्रभाव रहेगा तब शाह राज्य से अलग हो किसी उपयुक्त व्यक्ति को गद्दी पर बिठावे। उतने समय तक कुल भले मनुष्य उसकी आज्ञा माने जिससे सत्यतः उसके द्वारा बादशाही कार्य हो तथा तीन दिन बाद उसे मार डालें। सबके इस सम्मति को निश्चित मानने पर यह अधिकार यूसुफ तरकश सीनेवाले को मिला, जो बेदीन तथा खुसुरू कजवीनी दरवेश का अनुयायी था और नास्तिकता मे अपने मित्रो से आगे बढा हुआ था। शाह ने स्वयं राज्य छोड़कर

ताज उसके सिर पर रखा। सर्दारो तथा पार्श्ववर्तियों ने नियम के अनुसार आते-जाते कुल राजकार्य पूरा किया। उस नास्तिक ने आज्ञानुसार, मिसरा—

एक दिन की भी सल्तनत मिले तो गनीमत है।

तीन दिन बड़े आराम से व्यतीत करने पर वह मारा गया। इसके अनंतर उसी वर्ष जो कोई नास्तिक समझा गया वह मारा गया। खुसरू दरवेश के पूर्वज कूँआ खोदने का काम करते थे और यह कलंदर होकर उस झुंड से मिलकर उनका मुखिया बन बैठा और उस संप्रदाय का होने से उसे फांसी दी गई। मीर सैयद अहमद काशी को, जिससे इन अंधविश्वासियो में बहुतो ने शिक्षा पाई थी, शाह ने अपने हाथ से दो टुकड़े किए थे। इसकी पुस्तको में से कई नुक्त: विद्या पर थी। वह व्याख्या भी, जिसे अकबर की ओर से अबुल्फ़जल ने उसके नाम से लिखा था, उन पुस्तको मे मिली। मीर शरीफ आमुली मौलिक तथा मधुर भाषा का कवि और इस संप्रदाय का एक प्रधान पुरुष था। इसने इस घटना को देखकर अस्तराबाद से हिन्दुस्तान का रास्ता लिया।

इतिहास के अन्वेषको पर प्रकट है कि ऊपर लिखा हुआ विरोध किसी प्रकार से भी मेल नही खाता और आलमआरा की घटनावली किसी के दोष को छिपाने का प्रयत्न मात्र है। मीर हिन्दुस्तान में, ईरान मे नास्तिको के मारे जाने के पहले आया था और उसकी कविता के संबंध में किसी दूसरी पुस्तक में कुछ न मिला तथा न उसके कोई शैर कानो ने सुने। जो कुछ हो, अकबर के दरबार में मीर की सेवा ठीक उतरी जिससे वह बहुत दिन विश्वास तथा सम्मान मे उन्नति करता रहा। ३१ वें वर्ष सन् ९९३ हि० मे अकबर का सौतेला भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम, जिसने काबुल का शासन करते हुए स्वाधीनता की घोषणा की थी, मर गया और वह प्रांत साम्राज्य में मिल गया तब मीर उस प्रांत का सदर तथा अमीन नियुक्त हुआ। ३९वे वर्ष मे यह बंगाल तथा बिहार मे नियत किया गया और वहाँ के चार कार्य पर—खलीफा, अमीन, सदर तथा काजी के—नियुक्त हो सम्मानित हुआ। ४३वें वर्ष अजमेर इसे जागीर मे मिला। लखनऊ के पास मउहान इसकी जागीर मे था। खानदेश के अन्तर्गत असीरगढ के घेरे के समय अपनी जागीर से वहाँ पहुँच कर यह प्रशंसा का पात्र हुआ। कहते हैं कि अंत में तीन हजारी मंसब तक पहुँच कर इसकी मृत्यु हो गई[1]। यह मउहान कस्बे मे दफन किया गया। कहते हैं कि इसके सरकार मे दफ्तर या कागजी सरिश्त. नही

१. जहाँगीर ने अपने आत्मचरित मे (देखिए जहाँगीर का आत्म चरित हिंदी पृ० ९७) लिखा है—'दिल्ली के शरीफ के, जो दो हजारी था, मंसब मे पांच सदी और बढा दिया। यद्यपि यह बहुत विद्वान नही था, पर कभी कभी सूफियो की चाल पर अद्वैत ढंग में कुछ कह लेता था।

था केवल सवार तथा पैदल सिपाहियों की सूची अपने पास रखता था और हर छमाही को प्रत्येक का वेतन लिफाफों में बंद कर उसके घर भेज देता था।

यह छिपा नहीं है कि नुक्तवी लोग, जिन्हें अमना व महमूदिय भी कहते हैं, महमूद बसाख्वानी के अनुयायी तथा माननेवाले थे। बसरवान गीलान में एक गाँव है। यह सन् ८०० हि० में प्रगट हुआ था। यह विद्वान् तथा पारसा था, जिसकी पुस्तकें तथा लेख हैं। कहते हैं कि जब वह अधिक प्रसिद्ध हुआ तब उसके सिर में पैदा हुआ—'गब्बअसक मकासा महमूदा'—इसे सूचित करता है। यह नुक्त. से मिट्टी का अर्थ लेता है और उसे आरंभ करनेवाला प्रथम समझता है। वह इसीसे दूसरे असली वस्तु को उत्पन्न मानता और आसमानों को असली होने से बाहर नहीं समझता था। एकांतवास से मस्तिष्क को लाभ नहीं पहुँचता। स्त्री से दूर रहना तथा पुनर्जन्म का कायल था। यह तायफ वाले विरक्त को वाहिद तथा सोचनेवाले को अमीन मानते हैं। 'अल्लाह-अल्लाह' इनका आपस का अभिवादन है। महमूद अपने को वाहिद कहता तथा कथित मेंहदी मानता था। यह कहता कि मुहम्मद के धर्म का अन्त हो गया और अब महमूद का धर्म रह गया। ईरान प्रांत में इस सप्रदायवाले बहुत हो गए। जब वहाँ के गत शाह अब्बास सफवी ने इनमें से बहुतों को को मरवा डाला और हर एक नगर में जिस पर इस विश्वास का दाग हुआ उसे समाप्त करवा दिया तब बहुतों ने देश त्याग दिया तथा इधर-उधर चले गए। थोड़े लोग, जो देश को नहीं छोड़ सके, छिप कर रहने लगे।

•

६१८. शरीफ खाँ अतगा

यह शम्सुद्दीन खाँ अतगा का छोटा भाई तथा तीन हजारी सर्दार था। बैराम खाँ की घटना के अनन्तर जब पंजाब प्रांत अतगा लोगों को वेतन में जागीर में मिला तब यह भी संपत्तिवान होकर उसी प्रांत में रहने लगा। अपने बड़े भाई मीर मुहम्मद खाँ के साथ यह अच्छी सेवा करने में प्रयत्न करता रहा। १३वें वर्ष में जब अतगा खेल के सर्दार गण पंजाब से बदल दिए गये तब शरीफ खाँ को कन्नौज में जागीर मिली। २१वें वर्ष में यह सेना सहित मुहेर में नियत हुआ कि राणा के हाल से सतर्क रहे और यदि वह उपद्रवी अज्ञात दर्रों से, क्योंकि बादशाह के आने का समाचार निश्चित था, पाँव बाहर निकाले तो उसे दंड दे। इसके अनन्तर कुंभलमेर के विजय में अच्छी सेवा कर यह बादशाही कृपापात्र हुआ। २४वें वर्ष में शाहजादा सुलतान मुराद का अभिभावक नियत होने पर इसकी योग्यता प्रकट हुई और इसने जो जशन

किया था उसकी शोभा बादशाह के आने से बहुत बढ गई। उसी वर्ष शुजाअत खाँ मुकीम के स्थान पर यह मालवा का शासक नियत होकर उस प्रांत को गया और इसके पुत्र बाजबहादुर को आज्ञापत्र भेजा गया कि गुजरात से आकर इसको सहायता करे। उस प्रांत के जागीरदारों को भी आज्ञा हुई कि इसकी आज्ञा के बाहर न जायँ। २८ वें वर्ष मे कुलीज खाँ आदि के साथ मिर्जाखाँ खानखानाँ की सहायता के लिए नियुक्त हुआ। जब यह उसके पास पहुँचा तब बाएँ भाग की अध्यक्षता पाकर इसने युद्ध में गोला-गोली बरसाने मे अच्छा प्रयत्न किया। जब मालवा के सर्दारगण सुल्तान मुजफ्फर गुजराती को दंड देने के अनन्तर सिरोज दुर्ग लेने के लिए नियत हुए तब इसने भी दुर्ग के नीचे पहुँचकर मोर्चा बाँधा। आक्रमण के दिन दुर्गाध्यक्ष नसीरा इसी के मोर्चे से बाहर निकल गया और दुर्ग विजय हो गया। ३० वें वर्ष मे शहाबुद्दीन अहमद खाँ के साथ यह खानआजम की सहायता को भेजा गया, जो दक्षिण की चढाई पर नियत हुआ था। ३४ वें वर्ष मे मालवा से यह दरबार पहुँचा। ३९ वें वर्ष मे गजनी की अध्यक्षता पाकर यह सम्मानित हुआ, जो शरीफ खाँ का देश था और जिसकी अध्यक्षता की उसे बहुत दिनो से प्रबल इच्छा थी। ४७ वें वर्ष तक यह इस पद पर रहा। इसके स्थान पर शाह बेगखाँ उस पद पर नियत हुआ। इसका बचा हुआ हाल नही ज्ञात हुआ। इसका पुत्र बाजबहादुर गुजरात प्रांत के सहायको मे नियत था। २४वें वर्ष में पिता की नियुक्ति पर मालवा में इसे जागीर मिली। ४४वें वर्ष में जब बादशाह अकबर ने असीरगढ लेने की तैयारी की तब यह दूसरे सर्दारो के साथ उस दुर्ग के घेरे पर गया। इसके बाद यह अहमद नगर की ओर नियत हो दक्षिण के सहायको मे भेजा गया। ४६वें वर्ष में तैलिंगाना के मनुष्यो द्वारा युद्ध में पकड़ा गया। जब अल्लामी शेख अबुल्फजल द्वारा संधि हो गई तब दोनो पक्ष के कैदी छोड़े गए और यह भी छुटकारा पाकर बादशाही सेवा मे पहुँचा।

•

६१६. शरीफ खाँ अमीरुल् उमरा

यह ख्वाजा अब्दुस्समद शीरीं-कलम शीराज के शाह शुजाअ का मन्त्री था। जब बादशाह हुमायूँ ईरान के शाह से कंधार आने की छुट्टी पाकर तब्रेज की सैर को चला तब ख्वाजा, जो चित्रकला मे बहुत प्रसिद्ध था, वहीं सेवा मे पहुँचकर बादशाह का कृपापात्र हो गया; परन्तु व्यापारिक बाधाओं के कारण साथ न आ सका। सन् ९५६ हि० मे काबुल में सेवा में उपस्थित होने पर इस पर कृपा हुई। यद्यपि अकबर

के राज्यकाल में इसको केवल चार सदी मंसब था पर मुसाहिबी तथा पार्श्ववर्तिता से बढ़कर सम्मान तथा विश्वास में दिन बिताया। कहते हैं कि ख्वाजा ने एक पोस्त-दाने पर 'सूर:इखलास' लिखा था। मुहम्मद शरीफ को दो सदी मंसब मिला। ३८ वें वर्ष में अकबर के काबुल से लौटते समय जल्क: सफेद संग में एक लुच्चा किसी ग्रामीण स्त्री का पर्दा फाड़ने के कारण दंडित हुआ। जब यह प्रगट हुआ कि मुहम्मद शरीफ भी उसका साथी था तब इसे भी दंड मिला। जब शाहजादा सुल्तान सलीम राणा की चढ़ाई बन्द कर इलाहाबाद चला गया और वहाँ उसने विद्रोह की इच्छा प्रगट की तब पाठशाला का साथी होने के कारण तथा शाहजादे से विशेष मित्रता रखने से बादशाह ने इसको बुर्हानपुर से सलीम को ठीक मार्ग पर लाने के लिए समझा कर भेजा परन्तु इसने शाहजादे को और भड़काया तथा उसकी सरकार का वकील बन गया। शाहजादे के मन में इसने इतना स्थान बना लिया था कि उसने निस्संकोच होकर इसे वचन दिया कि जब वह बादशाह होगा तब इसे आधी बाद-शाही दे देगा। इसके अनन्तर जब शाहजादा विद्रोह त्यागकर दरबार चला तब मुहम्मद शरीफ अपने अनुचित कार्य के कारण अलग होकर पहाड़ों में भटकने लगा। इस प्रकार प्रतिदिन एक न एक घाटी में असफलता से व्यतीत करने लगा। शत्रु से पूर्ण जलवायु के कारण यह आशा छोड़ रहा था कि जहाँगीर की राजगद्दी की घोषणा सुनाई दी। इस प्रसन्नतापूर्ण समाचार को सुनकर राजगद्दी के पन्द्रह दिनों बाद सेवा में पहुँचा और सेवा में ले लिये जाने पर इसे अमीरुल् उमरा की पदवी, वकील का उच्चपद तथा मुहर ओजक मिला और इसे आज्ञा मिली कि हैदराबाद के महालों में से जितना महाल चाहे जागीर में ले ले।

जहाँगीर अपने रोजनामचे[1] में, जिसे अपनी लेखनी से लिखा है, लिखता है कि 'शरीफखाँ की सेवा ऐसी है कि वह भाई, पुत्र, मित्र तथा मुसाहिब सभी हमारा है। जिस दिन वह पहुँचा उस दिन ऐसा ज्ञात हुआ कि नया जीवन मिला और मैं बाद-शाह हुआ। उसके काम के योग्य कोई पदवी नहीं मिलती। यद्यपि इसे अमीरुल् उमरा बनाया और पाँच हजारी मंसब दिया क्योंकि हमारे पिता का यह नियम था कि इससे अधिक न करना चाहिए। जो कुछ मेरा है उसके आगे है।'

अमीरुल् उमरा ने राजनीतिक क्षेत्र में जो कार्य किया वह यह था कि अफगानों को, जो मुगलों के शत्रु थे, निकालने की इसने प्रार्थना की तथा साम्राज्य भर में भेजने के लिए आज्ञापत्र लिखे गए पर आजमखाँ के इस कथन पर रोक दिए गए कि वे संख्या में बहुत हैं और कोने कोने में बसे हुए हैं, जिससे बहुत भारी उपद्रव मचेगा। अमीरुल् उमरा राज्य के सभी सर्दारों से बढ़ चढ़ गया था पर खानआजम

---

1. देखिए जहाँगीर का आत्मचरित (हिंदी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित)। इस ग्रन्थ में शरीफ खाँ के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है।

अपने घमंड तथा ऐश्वर्य के आगे उसे कुछ न समझता था। एक दिन सुलतान खुसरो के पक्षपात को लेकर दरबार ही में इसने कड़ी बातचीत की और बादशाह से निर्भयता से कह डाला कि वह खुसरो का हितैषी है और उसे मार डालना ही समयानुकूल है। इसके अनन्तर जब बादशाह ने मिर्जा को क्षमा कर दिया तब आज्ञा दी कि मिर्जा अमीरुल् उमरा को अतिथि बनाकर लाख रुपया नकद और सामान देवें।

कहते हैं कि खाने के समय सभी सर्दारगण उपस्थित थे। मिर्जा कोका अमीरुल् उमरा की चापलूसी करने लगा कि 'नवाब तुम हम पर कृपा नहीं रखते और तुम्हारे मृत पिता मुल्ला अब्दुस्समद कितना हम पर प्रेम रखते थे। इस एकान्त कमरे में जो सब चित्रकारी आप देखते हैं वह सब उन्हीं ने स्वयं खींची है।' खानजहाँ और महाबत खाँ यौवन के कारण इसे कुछ सहन न कर सके और उठ गए। जब यह बातें बादशाह तक पहुँची तब उसने अमीरुल् उमरा से कहा कि उसकी जबान उसके अधिकार में नहीं है, तुम उससे पार न पाओगे। दूसरे वर्ष बीमारी के कारण बादशाही सेना से अलग होकर जो काबुल की सैर को जा रहे थे, यह लाहौर में रह गया। आसफखाँ जाफर वकील नियत हुआ। इसके अनन्तर यह दक्षिण में नियत हुआ पर खानखानाँ से मन न मिलने पर यह दरबार बुला लिया गया। इसने अच्छी सेना इकट्ठी कर ली थी और उनमें से बहुतों को पेशगी धन दिया था। यह तीन हजार सवार अपने पास तैयार रखता। कहते हैं कि इसे भूलने का रोग हो गया था। जो कुछ कहता उसे भूल जाता। खानजहाँ उसका हालचाल लेने को नियत हुआ और उसकी गिरी हालत का बयान किया। इच्छा हुई कि उसे एकान्तवासी कर दिया जाय पर खानजहाँ ने कहा कि उसने आदमी खूब इकट्ठे किए हैं और बादशाह के काम के हैं, उन्हें निकालना न चाहिए। यह फिर दक्षिण में नियत हुआ और बहुत दिनों तक वहाँ व्यतीत कर अपनी मृत्यु से मर गया। शैर अच्छा कहता था और इसने एक दीवान तैयार किया है। इसने 'फारसी' उपनाम रखा था। उसके शैर ये हैं—

भावार्थ

यमन से प्रेम और दोनों लोक से सन्धि कर ली है।
तू शत्रु हो, मुझसे मित्रता का खेल कर॥

अन्य

मर्यादा की चलनी से रोने-पीटने को छान लेता हूँ।
जिससे तुम्हारे कान तक कहीं कठोर शब्द न पहुँचे॥

अमीरुल्उमरा के पुत्रों में से शहबाज खाँ ने अपने पिता के सामने ही उन्नति की और मर भी गया। इसने लखनऊ से एक कोस पर सराय अपने नाम पर बनाई। मिर्जा गुल और जारुल्ला जहाँगीर के साथ चौगड़ तथा शतरंज खेलते थे और खास

मुसाहिब थे। परन्तु पिता की मृत्यु पर वह हाल तथा सम्मान नहीं रह गया। मिर्जा जारुल्ला के समान किसी शाहजादे ने भी ऐश न किया होगा। आसफखाँ जाफर की पुत्री मिसरी बेगम इसके घर में थी और जिससे विमनसता के कारण समागम नहीं हुआ था। आसफखाँ की मृत्यु पर बादशाही आज्ञानुसार उसका निकाह यूसुफखाँ के पुत्र मिर्जा लश्करी के साथ हो गया। ये दोनो भाई महाबतखाँ के साथ काबुल जाकर यौवन ही मे मर गए।

०

६१७. शरीफुल् मुल्क हैदराबादी

यह वहाँ (हैदराबाद) के शाह कुतुबशाह अबुल्हसन का बहनोई था। शाहजादा बहादुर शाहआलम खानजहाँ के साथ भारी सेना लेकर अबुल् हसन को दंड देने पर नियत हुआ, जो शीया होने के कारण आलमगीर बादशाह के नजदीक दंडनीय हो गया था। इसके अनंतर २९ वें वर्ष में कई बार वीरता तथा साहस से अबुल् हसन की सेना से युद्ध करना पड़ा पर सर्वत्र उन मूर्खों को परास्त कर उनका पीछा करते हुए हैदराबाद की ओर ये बढ़ते रहे। जब ये उसके पास पहुँचे और उसका सर्दार मुहम्मद इब्राहीम शाही सेना में आ मिला तब अबुल् हसन के होश उड़ गए और वह रात्रि की पहली पहर में चार महल से, जो उस समय कारीगरो की कुशलता से ऊँचाई तथा सजावट में बहुत बढ गया था, अपने महल के आदमियो के साथ रत्न, अशर्फी, हुण जो ले सका लेकर गोलकुंडा दुर्ग मे चला गया। यहाँ बड़ा गड़बड़ मचा, बड़े बड़े सर्दार स्त्री बच्चों का हाथ पकडकर पैदल ही दुर्ग को छोड कर जाने लगे। सुबह होते ही नगर के लुटेरे तथा सेना ने गृहों को लूटना आरंभ कर दिया। अबुल्हसन के कारखानो के करोडो नगद सामान तथा व्यापारियो और सर्दारों के माल असबाब लुट गए। रईसो तथा भले आदमियो की प्रतिष्ठा नष्ट हो गई। उसके बहुत से नौकरो ने निरुपाय होकर शाहजादे के पास आकर बादशाही सेवा स्वीकार कर ली। उसी समय या इस घटना के कुछ पहले शरीफुल्मुल्क भी सेवा में चला आया। शोला पुर के पास यह अपने दोनो पुत्रों हिदायतुल्ला व इनायतुल्ला के साथ सेवा में उपस्थित होकर शाहजादा के प्रस्तावानुसार तीन हजारी मंसब, दस सहस्त्र रुपया पुरस्कार और अन्य कृपाएँ पाकर सम्मानित हुआ। गोलकुंडा के घेरे के समय मे ३० वें वर्ष के अंत में २४ शाबान सन् १०९८ हि० को मर गया। पुत्रो को शोक का खिलअत मिला। इसकी मृत्यु के आस पास उसी समय इसके पुत्र इफ्तखार खाँ को, जो

अबुल् हसन का भांजा था, सेवा में उपस्थित होने पर तीन हजारी १००० सवार का मंसब मिला। हिदायतुल्ला, जिसे हिदायत खाँ की पदवी मिली थी, बुद्धि तथा गुण से खाली न था और सहृदय था। मुहम्मद आजम शाह की सरकार मे इसे खानसामाँ का पद मिला। कहते हैं कि नेअमत खाँ मिर्जा मुहम्मद हाजी, जिससे बहुधा सर्दार गण जिह्वा रूपी तलवार से घायल हो चुके थे और उसके खून के प्यासे थे, हजो और व्यंग्य से हाथ न हटाता था पर औरंगजेब के हक मे उचित कहकर नमक का स्वत्व तथा कविता का लावण्य पूरा कर दिया।

शैर अर्थ — इतनी दृढता से बैठ गए कि उसको उठाना किसी दूसरे का काम नही है, खुदा उठावे।

जब हिदायत खाँ की हजो कहा तब उक्त खाँ ने निम्नलिखित मिसरे पर—
मिसरा अर्थ—

ढेला फेंकनेवाले का बदला पत्थर है।

एक रुबाई कहा था, जिसके दूसरे शैर का अर्थ—

पुत्र, स्त्री व कबीला उस आदमी का छीन लो, जिसके समागम के कटहरे पर रंगो की नेअमत हो।

जब यह उसके पास पहुँचा तब चुप हो रहा।

•

६१८. शहदाद खाँ खेशगी

इसका नाम अब्दुर्रहीम था और यह शम्स खाँ का बहनोई था, जिसने दोआबा ठट्टा की फौजदारी के समय सिखो से, जिनसे जो कोई सर्दार उस समय सामना करता लूट मार किया जाता था, कई बार लड़ाई किया। हर बार फीरोज जंग आता और अंत मे उन्हें सर करता। अब्दुर्रहीम बिना पूँजी या व्यापार का मनुष्य तथा अप्रसिद्ध था। बहादुर शाह के समय पाँच सदी मंसब और शहदाद खाँ की पदवी पाकर शम्स खाँ के चाचा कुतुबुद्दीन खाँ के साथ जम्मू की फौजदारी पर नियत हो इसने अच्छा कार्य किया। जब उक्त खाँ अत्याचार पीड़ित किसी कस्यनिवासी के हाथ मारा गया तब इसने दूसरे शासक के पहुँचने तक बहुत प्रयत्न कर अच्छा काम किया और पूँजी इकट्ठी कर ली। उस समय जब लाहौर का प्रांताध्यक्ष अब्दुस्समद खाँ दिलेर जंग नियत हुआ तब वह कम सेना के कारण ईसा खाँ मनज से आशंकित रहता, जिसने मार्ग ही में विद्रोह का विचार कर लिया था। वह कसूर बस्ती से दैवी आज्ञा पाकर तथा सौभाग्य से सेना लेकर

समय पर पहुँच गया और इसके साथ मिलकर सेवा तथा मित्रता का कार्य पूरा किया। इसके अनंतर लक्खी जंगल का फौजदार नियत होकर इसने प्रसिद्धि प्राप्त की।

दिलेर जंग का ईसा खाँ मनज की ओर से, जो सतलज तथा व्यास नदियों के मध्य में समयानुसार रहता था और उसके आसपास की भूमि पर अधिकार बलात् अधिकार किए हुए था, मन भर गया था इसलिये उसने करूए की मुहिम के बाद इसको दोआबे की फौजदारी तथा उस अत्याचारी को दंड देने के लिये भेजा। शहदाद खाँ ने सेना एकत्र करने में इतनी फुर्ती की कि जब धन तथा पूंजी की कमी से काम बिगडने पर आया तब एकत्रित सेना में गडबडी न मचे इसलिये फुर्ती से कूच कर धार के पास युद्ध की तैयारी की। जब वे उपद्रवीगण मैदान मे लडने को आए तब तलवारो की चमक ने दूसरी रौनक दे दी। धन के दास गण जब शहदाद खाँ के चारो ओर पहुँच गए तब यह परास्त हो भागने लगा। ईसा खाँ ने जल्दी में कुछ न सोचकर फुर्ती से पीछा किया। दोनो सरदार एक दूसरे के सामने पड गए। यद्यपि उस विद्रोही की तलवार से, जिसे शहदाद खाँ ने हाथ से पकड लिया था, उसकी उँगलियाँ बेकार हो गईं पर अफगानों के तेज तीरो से, जो उक्त रदीफ खाँ के हाथी की खवासी में थे, उस घमडी के प्राण निकल गए। उसका सिर काट लिया और उसकी सेना को नष्ट कर दिया। अपने घावो तथा घायलो की सुश्रूषा करने के कारण शहदाद खाँ जल्दी न कर सका इसलिये एक सप्ताह के बाद वह कोट की ओर, जो इस जाति का निवासस्थान था तथा इसी नाम से विख्यात था, रवानः हुआ। इस बीच उसी जाति के लुटेरे उसके भंडारो पर आक्रमण कर नगद सब उठा ले गए, केवल जिन्स इसके हाथ लगा। इसमे से इसने कुछ लाहौर भेजा और बाकी अपने घर भेज दिया। दिलेर जंग ने क्षुब्ध होकर इसे बुलवाया और मृत की संपत्ति का वृत्तांत पूछा। इसने लुटजाने का बहाना किया तब यह काम रक्षकों को सौंपा गया। यह हवेली दाराशिकोह के पास उतारा गया। उपास करते और बेसामानी से जो कुछ बक्काल लोगो से इसके हाथ मे पहुँचता वह भी लुट जाता। दिलेर जंग ने बहुत कुछ इसे धमकाया तथा दंड दिया पर इसका साहस ढीला न पडा और दृढता बनी रही। यहाँ तक कि ताल्लुके से अपनी सेना तथा अपने स्वदेश से कुछ आदमी बुलाकर यह कसूर की ओर गया। पहले इसे दिलेर जंग ने दंड देने का विचार किया पर फिर उसके कुप्रबंध का दोष समझकर रुक गया और अत्यंत क्रुद्ध होकर समझाने के विचार से लौट गया।

संयोग से मीर जुमला, जो फर्रुखसियर द्वारा दंडित होकर लाहौर मे भेज दिया गया था, कुछ दिन बाद बुलाया गया और इसने शहदाद खाँ की वीरता तथा

साहस सुन रखा था इसलिये इसे बुलाकर अपने साथ दिल्ली लिवा आया। बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर इसने इसके बारे में जो चाहिए था कहा पर उस बार यह बादशाह की सेवा मे न पहुँच सका और विश्वास तथा सम्मान न पा सका। फतहुल् बावी ने भी उक्त खाँ से रुख नहीं मिलाया। इसके अनंतर कुतुबुल् मुल्क ने इस पर कृपा दृष्टि की और अच्छा मंसब देकर बंगाल से कोष लाने पर नियत किया। इसी समय हुसेन खाँ खेशगी मारा गया। खजानः ले आने पर भी इस पर कृपा नहीं हुई और दरिद्रता ने घर दबाया पर ऐसे समय में भी इसने साथियों को नहीं छुड़ाया। जब असीरुल् उमरा मारा गया तब दुबारा कुतुबुल्मुल्क ने उत्साह तथा धन देकर इसे संपन्न कर दिया। इसके बाद, जब इसका मामला उन्नति पर था, यह खानदौराँ से, जो साम्राज्य का बड़ा सर्दार था, ईसा खाँ को मारने के कारण, जो उसके पक्ष का था, भयभीत था। परंतु बहुत प्रयत्न करने तथा भाग्य से खानदौराँ ने इसे कष्ट देने से हाथ खींच लिया। महम्मदशाह बादशाह के राज्यकाल में इसके मंसब में तरक्की तथा हाँसी हिसार की फौजदारी मिली, जो बहुत प्राचीन काल से उपद्रव का घर रहा है और साम्राज्य के विप्लवों के कारण उसपर वैसा अधिकार नहीं रह गया था। वीर शहदाद खाँ ने विद्रोहियों को दमन करने और उपद्रवियों को दंड देने के लिये कमर बाँधी। प्रसिद्ध है कि इसने तमाम कसूर को हिसार में मरने को भेज दिया। इसके बहुत से संबंधी स्वजातिवाले गढ़ी के युद्ध तथा नित्य की मारकाट में काम आए पर इसका प्रभाव तथा रोब वहाँ लोगों पर इस प्रकार जम गया कि बीते हुए समय मे कम ऐसा हुआ होगा। जब इस प्रांत का अधिकार ठीक हो गया तब दरबार पहुँचकर यह उसी बड़े सर्दार की सहायता से छ हजारी मंसब और झालरदार पालकी पाकर सम्मानित हुआ। नादिरशाह के युद्ध में उसी सर्दार के अधीन युद्ध करते हुए यह मारा गया। इस ग्रंथ के लिखते समय इसके पुत्रगण अच्छे मंसब तथा जागीर पाकर सुखी जीवन व्यतीत कर रहे थे।

•

६१६. शहबाजखाँ कंबू

इसका वंश छ पीढ़ी ऊपर हाजी जमाल तक पहुँचता था, जो मखदूम बहाउद्दीन जिकरयायी मुल्तानी का शिष्य था। कहते हैं कि एक दरवेश ने मखदूम से सवाल किया कि खुदा की राह पर हर पैगम्बर के नाम पर एक अशर्फी हमें दो। मखदूम बहुत चिंतित हुआ। हाजी ने प्रार्थना की कि यह कार्य मुझे सौंप

दीजिए। वह उसे अपने घर लिवा गया और कहा कि एक एक पैगंबर का नाम ले और एक एक अशर्फी ले। उसने दस बीस नाम कहकर अशर्फियां लेली और दूसरा इकरार नम्रता से स्वयं किया। जब मखदूम को यह ज्ञात हुआ तब उसने इसके लिये प्रार्थना की कि तुम्हारे यहां कम बुद्धिवाले न होंगे। इससे इस वंश में प्राय: लोग बुद्धि के लिये हिंदुस्तान में प्रसिद्ध हुए हैं।

शहबाज आरंभ में अपने वंश परपरा के अनुसार फकीरी मे दिन व्यतीत करता था। इसके अनंतर कोतवाल के पद से इसने कार्य इतनी अच्छी प्रकार से आरभ किया कि अकबर इस पर प्रसन्न हो गया और इसे एक सदी से अच्छे मंसब पर पहुँचा दिया तथा मीर तुजुक का पद दिया। १६वें वर्ष मे जब लश्कर खाँ मीरबख्शी दडित हुआ तब उसके मसब शहबाजखाँ को मिले और कुछ दिनो बाद मीरबख्शी का पद भी साथ ही मिल गया। २१वे वर्ष मे विद्रोही राठौड़ो को, विशेषकर राय मालदेव के पौत्र तथा राय राम के पुत्र कल्ला को, दमन करने तथा जोधपुर के अंतर्गत सिवान: आदि दुर्गों को लेने के लिये यह भेजा गया। वहाँ के कुछ विद्रोहियो ने दैकोर दुर्ग मे युद्ध की तैयारी की। इसने पहिले उसे लेने का साहस किया और थोडे ही समय मे वह विजय हो गया। झुंड के झुंड शत्रु उसमें से बाहर निकल गए या मारे गए और इसके अनतर दोतार दुर्ग पर अधिकार कर इसने सिवान. विजय करने की तैयारी की, जो उस प्रांत के प्रसिद्ध दुर्गों मे से है। दुर्गवालो ने रक्षा का वचन माँगकर दुर्ग सौंप दिया। शहबाज खाँ दरबार आकर बादशाही कृपापात्र हुआ।

उसी वर्ष सन् ९८४ हि० मे शहबाजखाँ राजा गजपति पर भेजा गया, जो विहार के अच्छे जमींदारो में से एक है। इसने (राजा गजपति) बराबर बादशाही सेना के साथ रहकर बंगाल के विजय करने मे अच्छी सेवा की थी। व्यर्थ के विचार से छुट्टी लेकर यह अपने देश आया और उपद्रवी स्वभाव के कारण बंगाल मे विद्रोह होने पर, जो मुनइमखाँ की मृत्यु पर हुआ था, कुविचार से डाँकूपन करने लगा। (विहार के) नगरों तथा बस्तियों मे यह लूटमार करने लगा। आरा का जागीरदार फरहतखाँ, उसका पुत्र फहँगखाँ और कराताक खाँ इससे युद्ध करते हुए मारे गए। जब शहबाज खाँ वहाँ पहुँचा तब इसने धैर्य छोड़कर भागने ही में अपनी कुशल समझी। शहबाजखाँ ने इसका पीछा नही छोडा और वह जहाँ जहाँ जाता वह भी पीछे पहुँचता। अन्त मे राजा अपने दृढतम दुर्ग जगदीशपुर मे जा बैठा और कुछ दिन बाद जब उस पर अधिकार हो गया तब वह सपरिवार पकडा गया, जिससे उसका नाम नष्ट हो गया। शहबाज खाँ ने शेरगढ को, जिसमे गजपति का पुत्र श्रीराम घमंड से बैठा हुआ था, घेर कर ले लिया। उस समय रोहतासगढ, जिसको घेरने को भारी सामान की आवश्यकता है, जुनेद किर्रानी के हाथ में था। उसने

सैयद मुहमद नामक अपने विश्वस्त सर्दार को दुर्ग सौंप दिया था। जब उसका काम बि ड़ गया तब मुजफ्फर खाँ ने उस दुर्ग को घेरने की इच्छा की इस पर वह शाहबाज खाँ से प्रार्थी होकर शरण आया और स्वीकृत होने पर दुर्ग की अधीनता मान ली।

शहबाज खाँ इन सब अच्छे कार्यों के अनन्तर दरबार पहुँचने पर तथा असीम कृपाएँ पाकर सम्मानित हुआ। इसके बाद घमण्डी राणा प्रताप को दमन करने पर नियत होकर २३ वें वर्ष सन् ९८६ हि० मे इसने दुर्ग कुंभलमेर को घेर लिया, जिसे उस समय तक कम मनुष्यो ने घेर कर विजय किया था। राणा ने घबड़ाकर तथा सयासियो के वस्त्र पहिरकर अर्द्ध रात्रि मे दुर्ग से निकल पर्वतो का रास्ता लिया और दुर्ग विजय हो गया। गुलकन्द[1] गढ तथा उदयपुर के दुर्ग पर दूसरे दिन अधिकार हो गया और उस प्रात के लूटने तथा नष्ट करने में इसने कोई बात उठा नहीं रखी। इसने पचास थाने पार्वत्य स्थानों में तथा पैंतीस थाने बाहर उदयपुर से पूरमाडल तक बैठाए और राय सुर्जन हाडा के पुत्र दूदा को, जो बराबर विद्रोह किया करता था, समझा बुझाकर अधीन बना अपने साथ दरबार लिवा लाया तथा शाही कृपापात्र बन गया। यह फिर अजमेर प्रांत के विद्रोहियो को दण्ड देने के लिए वहाँ नियत हुआ। राणाप्रताप का राज्य, जिसका कुल ऐश्वर्य अस्तव्यस्त हो गया था, विद्रोहियो से साफ होकर सेना से सुरक्षित हो चुका था। अन्य उपद्रवी लोग भयग्रस्त होकर अपने को हर समय मृत्युमुख मे पहुँचा समझते थे।

जब बगाल और बिहार के स्वामीद्रोही सर्दारो ने विद्रोह किया तब शहबाजखाँ को उस ओर सहायतार्थ भेजा गया। परन्तु उद्दण्डता से यह खानआजम कोका का साथ न देकर, जो इन विद्रोहियो को दण्ड देने के लिए नियत हुआ था, अलग ही बिहार के उपद्रवियो को दमन करने मे प्रयत्न करने लगा। अरब बहादुर को उचित दण्ड देने के अनन्तर यह जगदीशपुर के बल्वाइयो को दमन करने चला। जब ज्ञात हुआ कि मासूमखाँ फरनखूदी कुमार्ग पर जा रहा है और अरब बहादुर तथा नयाबत खाँ उसके पास पहुँचकर उसके साथी हो गए हैं तब यह अवध (अयोध्या फैजाबाद) की ओर शीघ्रता से रवाना हुआ। अवध से पचीस कोस पर सुल्तानपुर बिलहरी के पास दोनों पक्ष का सामना हुआ। मासूमखाँ ने मध्यभाग तक पहुँचकर युद्ध आरम्भ कर दिया। शहबाजखाँ हटकर भागा और युद्धस्थल से तीस कोस जौनपुर पहुँचने तक घोड़े की बाग नहीं खीची। इसी समय दैवयोग मे मासूम खाँ के मरने का झूठा समाचार पाकर शत्रुसेना अस्त व्यस्त हो गई। ऐसे अवसर पर शाही सेना के बाएँ भाग ने युद्ध मे योग दिया और थोडे ही धावे पर मासूम खाँ घायल हो अवध

---

१. प्रसिद्ध नाम गोगूँदा।

की ओर भाग गया। जब शहबाज खाँ को विजय का यह समाचार मिला तब फुर्ती से अवध से सात कोस पर पहुँच युद्ध की तैयारी की। घोर युद्ध पर शत्रु पराजित हो यहाँ से भी भागा और अवध में भी न ठहर सका। हर एक इधर उधर भाग निकला।

इन बलवाइयों के उपद्रव के शांत होने पर शहबाज खाँ राजधानी आगरा पहुँचा और बादशाह की अनुपस्थिति मे, जो मिर्जा मुहम्मद हकीम के उपद्रव को दमन करने के लिए काबुल गया हुआ था, आज्ञानुसार उस स्थान की रक्षा का प्रबंध करता रहा। ६ वें वर्ष में बादशाह के लौटने पर सेवा में उपस्थित हुआ। संसार की वायु मनुष्यो को गिरानेवाली है इससे इस समय इतने अच्छे कार्य कर दिखलाने के कारण यह स्वार्थपर हो गया और सेवा के समय अपने को भूल गया। ठीक इसी समय नगर चीन में अहेर के अवसर पर चौकी की सेवा के लिए बख्शियो ने इसे बैराम खाँ के नीचे सेवा में लगा दिया था, जिस पर उद्दण्डता से यह उस स्थान मे जाकर ओछे शब्द मुख से निकालने लगा। अकबर ने इसे रायसाल दरबारी को शिक्षा देने के लिए सौंपा। २८ वे वर्ष में जब खानआजम ने बंगाल के जलवायु के उसके अनुकूल न होने के कारण दूसरे प्रात मे कार्य पाने की प्रार्थना की तब शहबाज खाँ बहुत से सर्दारो के साथ उस प्रात में भेजा गया। जब यह वहाँ पहुँचा तब मासूम खाँ काबुली से लडने के लिये यह घोडाघाट की ओर रवान हुआ। कडे आक्रमण के अनन्तर वह विद्रोही परास्त हो गया। प्रासाद, हाथी तथा अन्य लूट इसके हाथ आई। शाहबाज खाँ ने उसका पीछा किया, जो भाटी प्रांत मे चला गया था।

यह टाडा के उत्तर नीचा प्रात है, जो चार सौ कोस लंबा और तीन सौ कोस चौडा है। बंगाल इससे अधिक ऊँचा है इसलिए इसका यह नाम रखा गया है। जब यह प्रात बादशाही सेना द्वारा लूट लिया गया, इन उपद्रवियो का स्थान बकतरा पुर नष्ट कर दिया गया तथा सोनारगाँव पर अधिकार हो गया और इस प्रात की बडी नदी ब्रह्मपुत्र के किनारे तक पहुँचकर सेना ने आक्रमण किया तब वहाँ के जमीं-दार ईसा ने बादशाही सेना को परास्त करने को जो प्रयत्न किए वे सब व्यर्थ गए। अन्त मे निरुपाय होकर उसने संधि की बातचीत आरम्भ की। यह तै पाने पर कि सोनारगांव बादशाही थाना हो जायगा और मासूम खाँ हज्ज को भेज दिया जायगा तब शाही सेना लौट जाएगी। जब शहबाज खाँ कई नदियाँ पारकर इस प्रतिज्ञा के पूरे होने की प्रतीक्षा मे था उस समय उस उपद्रवी ने पहले कुछ दिन बहाने कर व्यतीत किए और फिर पलटकर युद्ध की तैयारी की। बहुत से सर्दार शहबाज खाँ की उद्दण्डता घमण्ड से क्षुब्ध हो चुके थे अतः इसका साथ न देकर वे सब चल दिए। निराश हो शहबाज खाँ टांडा लौट आया, लूट नष्ट हो गई और कुछ मनुष्य जान से मारे गए। एक झुण्ड कैद हो गया और शत्रु विजयी हो कई स्थानो पर अधिकृत

हो गया। शहबाज खाँ ने सर्दारों के साथ न देने तथा इनकी दुरंगी चाल के संबंध में बादशाह को लिखा और इस सूचना पर सजावलों के नियत होने पर वे मार्ग से लौटा दिए गए। बिहार के जागीरदार गण भी साथ देने को नियत हुए। शहबाज खाँ ने साहस के साथ बादशाही आज्ञा पूरी करने में प्रयत्न किया और बहुत से स्थानों पर अधिकार कर विद्रोही मासूम को पराजित करते हुए भगा दिया।

३०वें वर्ष में स्वार्थपरता के कारण शहबाज खाँ तथा सादिक खाँ[1] मे ऐक्य नही रह गया। सादिक खाँ ने बादशाही संकेत पर बंगाल का कार्य अपने हाथ में ले लिया। शहबाज खाँ यह समझ कर कि यहाँ का कार्य ठीक चले स्वयं बाहर चला गया। कुछ दिनों बाद शाही आज्ञा पाने पर बिहार से बंगाल जाकर वहाँ का प्रबन्ध देखने लगा। बहुत से विद्रोहियों को इसने दमन किया और भाटी पर सेना भेज कर वहाँ के जमींदार को करद बनाया। उड़ीसा तथा दक्खिन के बीच के बसे हुए प्रांत कोकरा पर सेना भेजकर बहुत लूट इकट्ठी की। वहाँ के सर्दार माधोसिंह से कर भी लिया। ३२ वें वर्ष में जब उस प्रांत में शांति ज्ञात हुई और सईद खाँ बिहार से उस प्रांत में पहुँचा तब शहबाज खाँ दरबार चला गया और ३४ वें वर्ष मे बादशाही उर्दू का कोतवाल नियत हुआ। इसके अनन्तर अफगानों को दंड देने पर नियत हो सवाद गया। वहाँ से यह बिना आज्ञा के लौट आया इसलिए यह कैदखाने भेजा गया, जहाँ से दो वर्ष बाद इसे छुट्टी मिली। यह मिर्जा शाहरुख का अभिभावक नियत हुआ, जो मालवा का शासक बनाया गया था। इसके अनन्तर मिर्जा के साथ शाहजादा मुराद के अधीन दक्षिण के कार्य पर गया। अहमदनगर के घेरे में जब नई बस्ती के निवासी, जिसका नाम बुर्हानाबाद रखा गया था, शाहजादे की शरण में आने को तैयार थे तब शहबाज खाँ धर्मांधता से घूमने फिरने के बहाने सवार होकर उस मुहल्ले में गया, जो बारह इमाम के लंगर के नाम से प्रसिद्ध था और जहाँ के निवासी शीआ थे, तथा इसके संकेत पर सेना के लुटेरों ने उसे लूट लिया। मुगलों के वचन का विश्वास न कर वहाँ के बहुत से दक्षिण के निवासियों ने उस स्थान को त्याग दिया। शाहजादे ने इस पर अप्रसन्नता प्रगट की और इस कारण कि शाहजादे के अभिभावक सादिक खाँ से पहले ही से इससे वैमनस्य तथा शत्रुता थी, यह बिना आज्ञा लिए ही मालवा चला आया। अकबर ने इसकी जागीर, जो मालवा मे थी, लेकर मिर्जा शाहरुख को दे दिया और इसको ४३ वें वर्ष में अजमेर भेज दिया। यह राणा की चढ़ाई पर शाहजादा सुल्तान सलीम का अतालीक नियत हुआ, जो इलाहाबाद से इस कार्य पर आ रहा था। यह पारा खाने का शौकीन

---

१. इसका वृत्तांत इसी भाग मे आगे दिया गया है।

२. शहबाज खाँ सुन्नी था इसलिए वह शीआ मुसलमानो से द्वेष मानता था।

था इससे सत्तर वर्ष के बाद इसके हाथ तथा कमर में दर्द होने लगा। कुछ लाभ हुआ था कि अजमेर पहुँचने पर फिर इसी रोग ने जोर पकड़ा तथा ज्वर बढ़ा। वैद्यों की दवा से कुछ स्वस्थ हुआ। पर ४८ वें वर्ष में सन् १००८ हि० में यह एकाएक मर गया। शाहजादे ने इसका कुल सामान जब्त कर लिया और उस कार्य का कुछ प्रबन्ध न कर इलाहाबाद लौट विद्रोह कर दिया।

कहते हैं कि शहबाज खाँ ने वसीयत किया था कि वह मुईनुद्दीन चिश्ती के मकबरे के हाते में गाड़ा जाय पर जब वहाँ के मुजाविरों ने नहीं भीतर जाने दिया तब बाहर ही गाड़ा गया। रात्रि में ख्वाजा ने मुजाविरो को आज्ञा दी कि वह हमारा प्यारा है इसलिये भीतर गुंबद के उत्तर की ओर गाड़ो। दूसरे दिन मुजाविरो ने उन लोगो से बतलाकर निश्चित स्थान में गड़वा दिया। इसकी सम्मति तथा आचार प्रसिद्ध था और अपनी शरीअत का पक्का माननेवाला था[1]। समय के प्रथानुसार डाढ़ी में कमी न करता था, मदिरा न पीता था और अपने मुहर पर मुरीद शब्द नहीं लिखवाता था। प्रातःकाल से अर्द्ध रात्रि तक की कोई निमाज न छोड़ता, बिना वजू के कभी न रहता तथा सदा माला घुमाया करता था। असर तथा मगरिब की निमाजो के बीच यह सांसारिक बातें नहीं करता था। एक दिन अकबर फतहपुर के तालाब के किनारे हवा खाने गया और शहबाज खाँ का हाथ पकड़कर बात करने लगा। वह हर घड़ी सूर्य की ओर देखता। हकीम अबुल्फतह ने हकीम अली से, जो कुछ दूर पर खड़ा था, कहा कि यदि इसकी आज असर की निमाज न छूटे तब जानूँगा कि यह दीनदार है। जब निमाज का समय पास आया तब शहबाज खाँ ने प्रार्थना की। बादशाह ने कहा कि निमाज छोड़ दे, क्या हमें अकेला छोड़ेगा? शहबाज खाँ ने एकाएक अपना हाथ खींच लिया और दुपट्टा बिछाकर निमाज पढ़ने लगा। इसके अनंतर माला खटखटाने लगा। बादशाह हर मिनट उसके सिर पर हाथ मारकर कहते कि उठ। हाजी अबुल्फतह ने कहा कि यह न्याय नहीं है कि इस प्रिय के कार्य में बाधा पड़े। उसने आगे बढ़कर प्रार्थना की कि इस कृपा का भागी केवल यही मनुष्य नहीं है और दूसरे लोग भी इसकी आशा लगाए हुए हैं। बादशाह उसे छोड़कर इन लोगो की ओर घूमे। अबुल्फजल इसके बारे में ठीक लिखता है कि हर प्रकार के सांसारिक कार्य तथा सेनापतित्व मे इसके समान कम लोग थे। यदि प्रयत्न करने का स्वभाव होता और जिह्वा को नियमित रूप से खोलता तो अधिक उन्नति करता। साहस तथा

---

१. जब अकबर ने इलाही धर्म का प्रचार करना चाहा और अपने सर्दारो को इस धर्म में लाने का प्रयत्न किया तब शहबाज खाँ ने इसका कड़ा विरोध किया था। (आईन अकबरी, ब्लोकमैन का अनुवाद भा. १ पृ. १८८)

उदारता में अपना जोड़ नही रखता था और इसका व्यय देखकर लोग आश्चर्य करते थे। यहाँ तक कि लोग कहते कि इसके पास पारस पत्थर है। यह वह पत्थर है जो गले हुए खान में यदि पहुँच जाय तो सब सोना हो जाय। कहते हैं कि यह मालवा प्रांत मे मिलता है। राजा विक्रमाजीत से पहले समय मे राजा जयसिंह देव के राज्य मे यह मिलता था। मांडू दुर्ग ऐसे ही सोने से बारह वर्ष में बना था। एक दिन नर्मदा के किनारे उत्सव सजाकर उसने चाहा कि अपने ब्राह्मण को बहुत धन देवे। वह संसार से विरक्त हो चला था इसलिये उसने वही पत्थर उसे दे दिया। उस ब्राह्मण ने उस दान को न पहिचानकर उसे नदी में जाकर फेंक दिया। बाद को वह जीवन भर रोता रहा और उस गहरे जल से वह फिर उसे निकाल न सका। इन कहानियों के सिवा आज तक उसका चिह्न कहीं नही मिला।

कहते हैं कि शहबाज खाँ बहुत अच्छे नौकर रखता था। ऐसे दस नौकर इसके यहाँ थे, जो एक लाख रुपये वार्षिक वेतन पाते थे। ब्रह्मपुत्र के युद्ध मे इसने अपने सहस्र सवार तैयार किए थे और प्रत्येक शुक्रवार की रात्रि में सौ अशरफी की मिठाई हजरत गौसुल् सकलीन (अब्दुलकादिर गीलानी) को भेंट कर बाँटता था। कंबो आदमियो को इतना धन देता कि उस जाति का कोई मनुष्य हिंदुस्तान मे दीन तथा दरिद्र न रहा। इस से इसकी मृत्यु के बाद पचास वर्ष तक अशरफी और रुपये गडे हुए या जमा मिलते रहे। आश्चर्य तो यह है कि अकबर के ४०वें वर्ष तक इसका मसब दोहजारी से अधिक न था। लोगों का यह कहना कि इसे पारस पत्थर मिल गया था, ठीक ज्ञात होता है यद्यपि यह अनुमान समझ मे नही आता। इसके पुत्रो ने उन्नति नही की। शाहजहाँ के समय इसका पुत्र इलहामुल्ला बगलाना का वाकेआनवीस होकर वही अंत तक रहा। शहबाज खाँ[१] का भाई करमुल्ला योग्य था। यह १००२ हि० में सिरोज में अपनी मृत्यु से मरा।

---

१. जहाँगीर का आत्मचरित, हिंदी पृष्ठ ५५४ पर तेरहवें जलूमी वर्ष के वृत्तात मे लिखा है कि शहबाज खाँ कंबू का पुत्र रनबाज खाँ दक्षिण से आकर बंगश की सेना का बख्शी तथा वाकेआनवीस नियत किया गया और इसे आठ सदी ४०० सवार का मंसब दिया गया। पृ० ५५८ पर भी इसका उल्लेख है। स्यात् इलहामुल्ला ही की पदवी रनबाज खाँ है या इस नाम का अन्य पुत्र रहा हो।

६२०. शाहबाज खाँ प्रसिद्ध नाम शेरू रुहेला

शाहजहाँ के राज्य के प्रथम वर्ष मे शह्बाज खाँ की पदवी पाकर महाबत खाँ के साथ बल्ख के शासक नज्र मुहम्मद खाँ को दमन करने के लिये, जिसने काबुल के आस पास उपद्रव मचा रखा था, नियुक्त होकर उस प्रांत को गया। इसके बाद अब्दुल्ला खाँ के साथ जुझार सिंह बुंदेला को दमन करने पर नियत हुआ, जिसका यह प्रथम विद्रोह था। ३रे वर्ष में यह राव रत्न हाड़ा के साथ बालम में ठहरने को नियत होकर तथा झंडा पाकर सम्मानित हुआ। इसके अनंतर इसने नसीरी खाँ के साथ दक्षिण के कंधार दुर्ग की ओर जाकर उसे घेरने मे बहुत प्रयत्न किया। इसके बाद आजमखाँ के साथ बीदर के अंतर्गत भालकी तथा चत्कोह : के पास पहुँचकर ४थे वर्ष युद्ध मे सन् १०४० हि० मे अपने पुत्र के साथ यह मारा गया, जिस युद्ध मे बहादुर खाँ रुहेला और यूसुफ मुहम्मदखाँ ताशकंदी अत्याचारी दक्षिणियों के हाथ कैद हो गए थे। यह तीन हजारी २००० सवारों के मनब तक पहुँचा था।

•

६२१. शहाबुद्दीन अहमद खाँ

यह नैशापुर के सैयदों मे से था और अपनी पुरानी सेवा तथा विश्वास के कारण सम्मानित था। राज्य के आरंभ मे यह राजधानी दिल्ली का अध्यक्ष रहा। २० जमादिउल् आखिर सन् ९६७ हि० को अकबर के राज्य के ५वें वर्ष में बैराम खाँ को कार्यवश आगरे मे छोडकर बादशाह शिकार की इच्छा से बाहर निकला और शिकार खेलता हुआ सिकंदराबाद पहुचा।[1] माहम अनगाने मरियम मकानी (हमीदाबानू बेगम) के अस्वस्थ होने का बहाना कर, जो दिल्ली में थी, हाल चाल पूछने के लिए दिल्ली चलने को कहा। बादशाह के मन में भी यही आ गया। शहाबुद्दीन अहमद खाँ, जो माहम अनगा से सम्बन्ध तथा मित्रता रखता था, स्वागत को आया और प्रार्थना की कि यह आना खानखानाँ के विरुद्ध है और जो मनुष्य कि साथ में हैं उन्हें इसमे सिवा प्राणकष्ट तथा लज्जा के और कुछ न मिलेगा। इसलिए हम सेवकों को निराश्रय होकर पवित्र स्थानोमे जाकर प्रार्थना ही करनी पड़ेगी। अकबर ने एक मनुष्य को खानखानाँ के पास भेजा कि हम स्वयं दिल्ली चले आए हैं, इसमें किसी दूसरे का हाथ नहीं है इसलिये इस दल के नाम 'अहदनामा' भेज देने। जब उपद्रि-

१. बैरामखाँ के प्रभुत्व को नष्ट करने का यहीं से सूत्रपात हुआ है।

वियो को बातचीत का अवसर मिला और माहम अनगा तथा शहाबुद्दीन अहमद को खाली मैदान मिला तब वे प्रगट रूप से कहने लगे कि बादशाह बैरामखाँ से विमनस हो गए हैं।

शैर का अर्थ

दूसरों पर कितनी भी कृपादृष्टि रही।
कहता हूँ कि बुरे आदमी पर बात का क्या असर होता है ?

बैराम खाँ बादशाही संदेश पाते ही घबड़ाकर हाजी मुहम्मद खाँ सीस्तानी तथा ख्वाजाजहाँ को प्रार्थना करने के लिये भेजा पर उस समय तक काम हाथ से निकल चुका था कि कोई कुछ प्रार्थना बादशाह के कान तक पहुँचा सके। चगत्ताई सर्दारगण ऐसे ही दिन की प्रतीक्षा मे थे और वे चारों ओर से बादशाही छाया के नीचे एकत्र हो गए। राजनीतिक तथा मालविभाग का कार्य माहम अनगा की राय पर शहाबुद्दीन अहमद खाँ को मिल गया और कुछ दिन तक यह राज्यकार्य करता रहा।

१२ वें वर्ष मे जब बादशाह चित्तौड की ओर चले तब इसको दुर्ग गागरून के पास मालवा प्रांत का अध्यक्ष बनाकर विद्रोही मिर्जाओं को दमन करने के लिये भेजा, जो वहाँ लूटमार मचाए हुए थे। वे उपद्रवीगण युद्ध से धैर्य छोड़कर गुजरात की ओर चल दिए। १३ वें वर्ष मे यह दरबार बुला लिया गया। प्रधान दीवान मुजफ्फरखाँ देशीय तथा माल के कामो की अधिकता से बादशाही खालसा का उचित प्रबंध नही कर पाता था इसलिये इसको उस कार्य पर नियत कर दिया। इसने अपने अध्यवसाय तथा अनुभव से बहुत अच्छा प्रबंध किया। २१वे में इसे पाँच हजारी मं व मिला और यह मालवा का सिपहसालार नियत हुआ। २२वें वर्ष मे वजीर खाँ के गुजरात का प्रबंध ठीक न कर सकने पर यह उस स्थान का अध्यक्ष नियत हुआ। २८वें वर्ष में जब गुजरात का शासन इसके स्थान पर एतमाद खाँ को मिला तब यह दरबार जाने के लिये अहमदाबाद के बाहर निकला। इसके ओछे नौकरों ने विद्रोह कर सुलतान मुजफ्फर को, जो कानथिया की शरण में दिन व्यतीत कर रहा था, बुलाकर उसे अपना सर्दार बनाया। शिहाबुद्दीन अहमद खाँ ने इस आग को बुझाने का साहस कर युद्ध की तैयारी की पर इसके पहले कि आक्रमण करे इसके बचे हुए आदमी भी शत्रु से जा मिले। इसी उपद्रव में एक नौकर ने इसे घायल कर दिया। कुछ स्वामिभक्तों ने खाँ को उस उपद्रव स्थान से निकालकर पत्तन पहुँचा दिया। इसकी पूर्ण पराजय हुई और बहुतों की प्रतिष्ठा धूल मे मिल गई। चारो ओर से शत्रु उमड पड़े। नजदीक था कि पत्तन से निकलकर यह जालौर को चला जावे कि एकाएक आदमी एकत्र हो गए। एतमाद खाँ दूरदर्शिता से शेर खाँ फौलादी पर, जो उस जिले में उपद्रव कर

रहा था, सेना भेजकर उसे परास्त कर दिया। इसी समय अब्दुर्रहीम मिर्जा खाँ ने दरबार से आकर सुलतान मुजफ्फर को परास्त कर भगा दिया। शिहाबुद्दीन अहमद खाँ की जागीर भड़ोंच मे नियत कर इसे कुलीज खाँ की सहायता को भेजा, जो मालवा की सेना के साथ दुर्ग भड़ोंच लेने जा रहा था और जिसपर सुल्तान मुजफ्फर के आदमियों ने अधिकार कर लिया था। २९वें वर्ष मे मुजफ्फर को पकड़कर वहाँ शाति स्थापित की गई। ३४वें वर्ष में आजम खाँ कोका के हटाए जाने पर फिर इसे मालवा की प्रांताध्यक्षता मिली। यही सन् ९९९ हि०, सन् १५९१ ई० मे यह मर गया। यह देशप्रवंध तथा प्रजापालन मे अपने समय के अग्रणी लोगों मे से एक था। इसकी विवाहिता स्त्री बावा आगा, जो मरियममकानी से संबंध रखती थी, सभ्यता से जीवन व्यतीत कर ४२वें वर्ष सन् १००५ हि० सन् १५९७ ई० मे मर गई।

•

६२२. शहामत खाँ सैयद कासिम बारहा

यह आरम्भ में दाराशिकोह का नौकर था और उसकी ओर से इलाहाबाद दुर्ग में रहकर उस प्रांत का शासन करता था। जिस समय दाराशिकोह परास्त होकर पंजाब की ओर रवानः हो गया उसी समय औरंजेब ने खानदौराँ सैयद महमूद को इस प्रात मे इसके सहायतार्थ भेजा कि उक्त दुर्ग को समझाकर या बल से अपने अधिकार में लेले। इसी समय मुहम्मद शुजाअ ने आकर, जैसा औरंगजेब ने सोच रखा था, बिहार प्रात पर अधिकार कर लिया। औरगजेब दाराशिकोह का पीछा करने में पंजाब में फँसा हुआ था इसलिए उसने मैदान खाली पाकर लोभ से आगे बढ़ने का प्रयत्न किया। रोहतास तथा चुनार के दुर्गाध्यक्षो ने, जो दाराशिकोह की ओर से नियत थे और भागते समय जिसकी लिखित आज्ञा इन्हें मिल चुकी थी, उसी की इच्छानुसार उन दुर्गों को शुजाअ को सौप दिया तब सैयद कासिम ने भी यही इच्छा उसे लिख भेजा। शुजाअ के इलाहाबाद ाने पर इसने बाहर निकलकर उससे भेट किया और युद्ध में उसका साथ दिया। शुजाअ के परास्त होने पर उसके आगे

---

१. अपने दिल्ली के प्रबंधकाल मे इसने फीरोजशाह के बनवाए नहर का जो खिज्राबाद से सफेदून तक थी, जीर्णोद्धार कराया था और उसका नाम नहरे शिहाब रखा था। बाद शाहजहाँ के समय में पुनः जीर्णोद्धार होने पर परवेज नहर कहलाई।

ही यह इलाहाबाद पहुँच गया, जिसपर उसने इसीको बहाल रखा था पर शुजाअ के पहुँचने पर इसने कपट से उक्त दुर्ग को उसे नहीं सौंपा। जब शाहजादा मुहम्मद सुलतान और मुअज्जम खाँ के आने का समाचार मिला, जो शुजाअ का पीछा करने पर नियत हुए थे, तब खानदौराँ को बीच में डालकर दुर्ग देने को अपनी क्षमा प्राप्ति का कारण बनाया। इसने आज्ञानुसार १ म वर्ष में दरबार में उपस्थित होकर खिलअत, तीन हजारी ३००० सवार का मंसब और महामत खाँ की पदवी पाई। २ रे वर्ष शमशेर खाँ तरी के स्थान पर यह गजनी का थानेदार नियत हुआ। ४ थे वर्ष में वहाँ से हटाया जाकर यह काबुल के सहायकों में नियत किया गया। ६ ठें वर्ष में यह काबुल के हिसार का अध्यक्ष नियत हुआ और बहुत दिनों तक उस प्रांत में रहा। यह कभी हिसार का अध्यक्ष होता और कभी उस प्रांत के तैनातियों में नियत रहता। २४ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हुई। इसके भतीजा नुसरतयार खाँ ने मुहम्मदशाह के समय बड़ा मंसब पाया पर कुछ प्राप्ति नहीं थी।

•

६२३. शादी खाँ उजबक

यह शाहजहाँ का एक मंसबदार था और कंधार दुर्ग के सहायकों में नियुक्त था। २२वें वर्ष सन् १०५८ हि०, सन् १६४८ ई० में जब ईरान के शाह ने उक्त दुर्ग को लेने के विचार से उसके पास पहुँचकर गंजअली खाँ बाग में पड़ाव डाला तब यह बादशाही दुर्गाध्यक्ष खवास खाँ की ओर से वैस करन फाटक की रक्षा पर नियत हुआ। जब घेरा होने पर मारकाट बहुत दिनों तक चला तब इसने स्वामिभक्ति का त्याग कर निर्लज्जता का मार्ग ग्रहण किया और शत्रुपक्ष के आदमियों से बातचीत कर कवचाक खाँ को, जिसका हाल अलग दिया गया है, इस मार्ग से भीतर ले लिया। इसके अनन्तर कुछ अन्य मंसबदारों के साथ दुर्गाध्यक्ष के पास आकर प्रकट किया कि वर्फ के आधिक्य के कारण सहायता नहीं आ सकती और कजिलबाश सेना के प्रयत्नों से मालूम होता है कि दुर्ग शीघ्र टूट जाएगा। वैसी अवस्था में न हम लोगों के प्राणों की रक्षा होगी और न हम लोगों के बालबच्चों के बचने की आशा रह जायगी। दुर्गाध्यक्ष पहले ही साहस छोड़ चुका था इसलिए जब उसे तलवार लेकर उठ दौड़ना चाहिए था उस समय उसने उपदेश देकर संतोष किया। शैर—

जिस जगह जख्म चाहिए लगना। गर लगे मरहम तो क्या लाभ है ?

इसके बाद यह घर गया और कुछ दिनों बाद किलेदार से कहला भेजा कि ईरान के शाह की ओर से मुहम्मद बेग शरफुद्दीन के साथ, जो बुस्त दुर्ग के इमारत

तथा भंडार का दारोगा है, वह कुछ संदेश लेकर आया है तथा चार लेख लाया है। दुर्गाध्यक्ष ने मीरक हुसेन बख्शी को भेजा कि अभी लेखों को लौटा दे। जब वह फाटक पर आया तब देखा कि शादी खाँ मुहम्मदबेग को फाटक के भीतर बैठाए हुए है और कबचाक खाँ आदि कई मंसबदार भी बैठे हुए हैं। तब उसने लौटकर दुर्गाध्यक्ष को कुल वृत्तांत से अवगत करा दिया। किलेदार ने अपने लश्करनवीस को भेजा कि मुहम्मद बेग को वहीं रक्षा मे रखें और शादी खाँ, कबचाक खाँ आदि को यहाँ भेज दे। उसके आने पर पूछा कि बिना हमारी आज्ञा के शत्रु पक्ष के आदमियों को भीतर बुला लेने का क्या कारण है? उत्तर दिया कि कई लेख आए हुए थे इसलिये बिना देखे हुए लौटा देना उचित नही था। तब दुर्गाध्यक्ष स्वयं फाटक पर आया और उसने वे लेख देखे और बुस्त दुर्ग के हाथ से निकल जाने की सूचना पाकर इसने पाँच दिन का समय लिया। पाँचवें दिन ८ सफर सन् १०५६ हि० (११ फरवरी सन् १६४९ ई०) को शादी खाँ ने बैसकरन फाटक ईरान के शाह के सरदार अली कुली खाँ को सौंप दिया और स्वयं कबचाक खाँ के साथ शाह के पास चला गया।[1]

•

६२४. शायस्ता खाँ अमीरुल् उमरा

यह यमीनुद्दौला आसफ खाँ का पुत्र था और इसका नाम मिर्जा अबू तालिब था। महाबत खाँ के विद्रोह के समय यह भी अपने पिता के साथ कैद हो गया था। जब जमाने ने उस निडर को दरबार से निकाल दिया तब उसने पहले की कृति के लिये इससे क्षमायाचना कर आसफ खाँ को दरबार भेज दिया पर अबूतालिब को इस विचार से कि कहीं वह तुरन्त उसका पीछा करने को सेना न भेज दे से कुछ दिन और अपने यहाँ रख कर विदा किया। जब यह दरबार में उपस्थित हुआ तब उसी वर्ष जहाँगीर के २१ वें साल में इसे शायस्ता खाँ की पदवी मिली। शाहजहाँ के

---

१ यह, कबचाक खाँ आदि फिर दिल्ली दरबार मे नही आए इसलिये इन सभी का आगे का विवरण नही मिलता। कंधार के इस घेरे का तथा उसे पुनः लेने के प्रयत्नों का विस्तृत विवरण ब्रजरत्नदास लिखित 'शाहजहाँ' के सातवें प्रकरण मे देखिए।

२ शायस्ता खाँ का पितामह 'एतमादुद्दौला मिर्जा गियास बेग और पिता अबुल् हसन आसफखाँ आसफ जाही था, जिसे यमीनुद्दौला की पदवी मिली थी।

राज्य के आरम्भ मे यह पिता के साथ लाहौर से आकर दरबार में उपस्थित हुआ तब इसका मंसब बढ़ कर पाँच हजारी ४००० सवार का हो गया। यह जो लोग कहते हैं कि शायस्ता खाँ को पैदा होते ही पाँचहजारी मंसब मिल गया था ठीक नही है। एक जगह देखा गया है कि पिता तथा दादा की रिआयत से इसे बचपन ही मे पहली बार पांच सदी मंसब मिला और इसी प्रकार बढ़ती हुई जवानी को पहुँचते-पहुँचते इसे अच्छा मंसब मिल गया तथा शाहजहाँ के राज्य मे सर्दारी भी मिली। ३रे वर्ष में बुर्हान पुर से जब तीन भारी सेनाएँ खानजहाँ को दमन करने तथा निजामशाह को दंड देने के लिए नियत की गईं तब उनमे से एक सेना की सर्दारी इसे मिली। दक्षिण की कुल सेना का प्रबन्ध दक्षिण के सूबेदार आजम खाँ के हाथ में था और उससे इसकी न बनी तब यह दरबार बुला लिया गया।

जब ९वें वर्ष में शाहजहाँ दौलताबाद दुर्ग में जाकर ठहरा तब शायस्ता खाँ अल्लावर्दी खाँ आदि सर्दारो के साथ संगमनेर तथा उस प्रांत के दुर्गों पर अधिकार करने को भेजा गया, जिन पर साहू भोसला ने अपना अधिकार कर लिया था। शायस्ता खाँ ने संगमनेर पहुँचकर उसके पुत्र शिवाजी तथा अन्य उपद्रवियों से वहाँ के परगने छीनकर उनको भगा दिया और हर एक दुर्ग मे सेना नियत कर दिया। प्राय: सभी प्रसिद्ध दुर्गों पर अधिकार कर और उस प्रांत का प्रबन्ध ठीककर यह जूनेर की ओर रवाना हुआ। शिवाजी ने अपने पिता से विदा हो यहाँ आकर इस दुर्ग को दृढ़कर रखा था इसलिये यह शीघ्र विजय न हो सका और इस कारण यह जुनेर नगर तथा उसके महालो पर अधिकार कर लौट गया। थोड़े ही समय में दो अच्छे सरकार, जिनकी आय दो करोड़ साठ लाख दाम थी और जिनमें सत्रह महाल थे साम्राज्य मे मिल गए। १०वें वर्ष में खानजमाँ, जो शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर का नायब होकर बालाघाट का प्रबंध देखता था, मर गया। ऐसी अवस्था में एक बडा सर्दार खानजमाँ के स्थान पर नियत होना राजनीति की दृष्टि से आवश्यक था, जो शाहजादा की अनुपस्थिति मे उसका नायब होकर दौलताबाद मे काम ठीक रखने को बराबर रहे। उक्त कारण से शायस्ता खाँ इस कार्य पर नियत होकर शाहजादा से विदा हुआ, जो विवाह की मजलिस के लिये दरबार आया था कि यह उसके पहुँचने तक प्रतिनिधि रूप मे उस प्रांत का प्रबन्ध करता रहे। १२वें वर्ष मे अब्दुल्ला खाँ के स्थान पर यह बिहार व पटना का प्रांताध्यक्ष बनाया गया। १५वें वर्ष में शायस्ता खाँ पलामूँ के जमींदार प्रताप पर, जो उस प्रांत के अच्छे सर्दारों मे था, सेना चढ़ा ले गया और उसे अधीन कर लिया। १८वें वर्ष में जब इलाहाबाद प्रांत इसके बदले में दाराशिकोह को जागीर मे मिल गया तब यह मालवा का सूबेदार नियत हुआ। २०वें वर्ष में जब बलख व बदख्शाँ की चढाई पर जाने के लिये शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के नाम

आने का आज्ञापत्र अहमदाबाद गुजरात भेजा गया तब शायस्ता खाँ पाँच हजारी ४००० सवार दो अस्प: सेह अस्प: का मनसबदार था और इसके सिवा पाँच लाख रुपया नगद प्रति वर्ष तीन सहस्र सवारों के व्यय के लिये अलग से उस प्रांत के कोष से इसे मिलता था, तिस पर भी जब यह उस प्रांत के विद्रोहियों को यथोचित दमन न कर सका और इसके प्रार्थनापत्र से यह साफ मालूम हो गया तब २२वें वर्ष के आरंभ में अहमदाबाद प्रांत दाराशिकोह को जागीर मे मिल गया और इसे फिर मालवा प्रांत का अध्यक्ष बनाया गया। २३वें वर्ष में शाहजादा मुराद बख्श के स्थान पर दक्षिण के चार प्रांतों का प्रबंध इसे सौंपा गया। इसके बाद फिर गुजरात का सूबेदार बनाया गया। २७वें वर्ष में जब मुरादबख्श उस प्रांत में भेजा गया तब यह दरबार में उपस्थित होकर फिर से मालवा का सूबेदार नियत हुआ। २९वें वर्ष में जब दक्षिण के सूबेदार शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर ने मीरजुमला की प्रार्थना पर उसके पुत्र तथा अनुगामियों को छुट्टी दिलाने तथा कुतुबशाह को दंड देने के लिये हैदराबाद की चढ़ाई का साहस किया तब शायस्ता खाँ बादशाह की आज्ञा के अनुसार मालवा के सर्दारों के साथ सहायता के लिये जाकर ठीक घेरे के समय शाहजादा की सेवा में पहुँचा। उस कार्य के हो जाने पर ३०वें वर्ष में यह छुट्टी पाकर अपने प्रांत को गया। शाहजादे की प्रार्थना पर इस सेवा के उपलक्ष में इसका मंसब बढ़कर छः हजारी ६००० सवार दो अस्प. सेह अस्प का हो गया और ऊँची पदवी खानजहाँ की इसे मिली। जब इसी वर्ष मुहम्मद औरंगजेब बहादुर दक्षिण की सेना के साथ आदिलशाह को दंड देने पर नियत हुआ तब खानजहाँ को आज्ञा हुई कि यह शीघ्र दौलताबाद पहुँचकर शाहजादे के लौटने तक वहीं ठहरे। जब ३१वें वर्ष सन् १०६७ हि० में शाहजहाँ को मूत्र-कृच्छ्रता के रोग ने पीड़ित किया और इसमें अधिक दिन बीते तथा दाराशिकोह के हाथ में साम्राज्य के सब कार्य तथा आज्ञापत्र देना आया तब उसने (दाराशिकोह) कुमंत्रणा और कपट से दक्षिण के सहायकों को, जब कि बीजापुर का कार्य पूरा नहीं हुआ था, दरबार बुला लिया। शायस्ता खाँ भी मालवा लौट गया। यह प्रांत भी दक्षिण के पास ही स्थित है और ऐसे समय जब दाराशिकोह के मन में अन्य विचार थे तब खानजहाँ का वहाँ रहना, जो औरंगजेब बहादुर के पक्षपात तथा मित्रता के लिये प्रसिद्ध था, उचित न समझा गया और इसे दरबार बुलाकर इसके स्थान पर महाराज यशवंत सिंह उज्जैन के सूबेदार बनाकर भेजे गए। जब औरंगजेब से युद्ध में महाराज परास्त हो गए और उस विजयी शाहजादे के आगरे की ओर आने का विचार सुनाई पड़ा तब शाहजहाँ की दृढ़ इच्छा थी कि वह स्वयं युद्ध के लिये निकले और संभव है कि युद्ध न हो क्योंकि उस ओर भी बहुत से बादशाही सेवकगण हैं तथा वे अपने स्वामी के विरुद्ध शस्त्र न ग्रहण करें।

परंतु दाराशिकोह स्वार्थ से यह चाहता था कि वह अकेला ही युद्ध को जाय और इसके लिये बहुत हठ करके उसने शाहजहाँ को बाहर निकलने से रोका। इस विषय में खानजहाँ से भी सम्मति ली गई। इसने भी दाराशिकोह की खातिर या औरंगजेब के पक्षपात के कारण, जिसकी भलाई की इच्छा इसके वृत्तांत से प्रगट है, शाहजहाँ को जाने से मना किया। दाराशिकोह के पराजय पर प्रकट हुआ कि इसकी यही सम्मति थी और जो कुछ हुआ वह केवल एक उपाय से हुआ। शाहजहाँ ने क्रोध से अपनी छडी का सिरा खानजहाँ की छाती पर मारकर तथा कुसम्मति देने के कारण इसे दंडित कर दाराशिकोह के लिखने के अनुसार और स्वार्थी सर्दारों के बहकाने से कैद कर दिया पर दो दिन बाद इसे छोड दिया। फिर इससे सम्मति ली गई और इसने न जाने की राय दी। प्रकट है कि इस समय इस कार्य से कुछ लाभ न होता यदि शाहजहाँ अपना पेशखाना बाहर निकालते। जो काम हाथ से निकल गया था उस पर यदि वह स्वयं भी जाते तो सफल न होते।

संक्षेपतः शायस्ता खाँ नूरमंजिल बाग मे औरंगजेब की सेवा मे पहुँचा। फाजिल खाँ खानखानाँ के बीच में शाहजहाँ की ओर से विजयी शाहजादा औरंगजेब के यहाँ संदेशे आए गए और इसके बाद अपने प्रिय भाई के यहाँ बेगम साहिबा आईं तथा पिता का यह संदेश लाईं कि पंजाब प्रांत वहाँ की भूमि के साथ दाराशिकोह को दिया जाय, मुराद बख्श पहले की तरह गुजरात मे नियत रहे और दक्षिण का प्रात तुम्हारे बडे पुत्र मुहम्मद सुल्तान को दिया जाय। यौवराज्य का पद, बुलंद इकबाल की पदवी और कुल साम्राज्य का, सिवा विभाजित प्रांतो के, अधिकार तुम्हें सौंपा जाय। तुम्हें चाहिए कि स्वयं उपस्थित होकर पिता की इस इच्छा को पूरी करो। औरंगजेब ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करके कहा कि दाराशिकोह के कार्य के निपटने के पहले वह सेवा मे उपस्थित होने में असमर्थ है। बेगम साहिबा दुखी होकर लौट गईं और यह सब कहकर शाहजहाँ के दुख और कष्ट को बढा दिया। अंत मे तीसरे दिन बहुत कहने सुनने पर औरंगजेब ने अपने पिता की सेवा में उपस्थित होने का विचार किया और इस नीयत से धरा बाग से सवार भी हुआ पर ईश्वरीय इच्छा इसके विरुद्ध थी इसलिये शायस्ता खाँ और शेख मीर पीछे से आकर प्रार्थी हुए कि ऐसा विचार दूरदर्शी बुद्धि से परे है। जब तक दुर्ग को आपकी सरकार के सेवकगण अपने अधिकार में न ले लेवें और शाह-जहाँ का अधिकार उठ न जावे तब तक खतरे की जगह में जाने को क्या आवश्यकता है?

जिस समय औरंगजेब इन सम्मतिदाताओं की बातें सुनकर सोच में पड़ा हुआ था, उसी समय नाहरदिल चेला ने पहुँचकर एक फर्मान इसे दिया जिसे शाहजहाँ ने अपने हाथ से दाराशिकोह को लिखकर इसे विश्वास करके दिया था कि स्वयं फुर्ती

से दिल्ली जाकर दाराशिकोह को दे और उत्तर ले आवे। फर्मान का आशय था कि वह सेना एकत्र कर दिल्ली मे ठहरे और तब तक यहाँ का कार्य हम फैसल किए देते हैं। इस शायस्ता खाँ की सम्मति की प्रशंसा हुई और बादशाह के यहाँ जाना स्थगित हो गया। इसके अनंतर औरंगजेब अवसर समझकर दाराशिकोह का पीछा करने को दिल्ली की ओर रवाना हुआ। मथुरा के पड़ाव पर खानजहाँ शायस्ता खाँ को जो दंडित होने से मंसब तथा जागीर से हटा दिया था, सातहजारी ७००० सवार दो अस्पः सेह अस्प; का मसब और अमीरुल्‌उमरा की पदवी दी गई तथा दो करोड़ दाम की तहसील का महाल पुरस्कार में मिला। दाराशिकोह का बड़ा पुत्र सुलेमान शिकोह पूर्वीय प्रांत से लौटकर तथा अपने पिता के पराजय का समाचार सुनकर गंगाजी उसी पार से हरिद्वार की ओर फुर्ती से बढ़ा और चाहता था कि सहारनपुर से होते हुए पंजाब जाकर पिता से मिल जावे, इसलिए अमीरुल्‌उमरा इस कार्य पर नियत हुआ कि उसे ऐसा करने से रोके। वह (सुलेमान-शिकोह) घटनाचक्र से पीडित इस विजयी सेना के प्रभाव से श्रीनगर के पहाड़ी स्थान में भागकर वहाँ के जमींदार की शरण मे चला गया। अमीरुल्उमरा गंगा नदी के किनारे से हटकर आज्ञानुसार आगरे लौट आया और शाहजादा मुहम्मद सुलतान की सेवा मे रहकर उस प्रांत का प्रबंध देखने लगा। जब सुलतान मुहम्मद अगल की चाल पर शाह शुजाअ की ओर चला तब तब उस विद्रोही को दमन करने का कार्य अमीरुल्उमरा को मिला। शुजा के युद्ध में राजा यशवंत सिंह ने जब कपट तथा धोखे से काम बिगाड़ने के विचार से रात्रि के अंत में, जिसके दूसरे दिन युद्ध हुआ था, कुल राजपूतों के साथ औरंगजेब का साथ छोड़कर आगरे का मार्ग लिया तब इस उपद्रव से सेना मे ऐसा शोरगुल मचा कि पुराने सिपाहियो को, जिन्होने अनेक बार युद्धों में वीरता दिखलाई थी, पैर उखड़ गए और बहुत से साथ छोड़कर भाग गये। चारो ओर यह समाचार फैल गया कि शाह शुजाअ औरंगजेब को कैद कर आगरे की ओर आ रहा है। यह समाचार इतना फैला कि दुष्टो तथा नीचो ने अमीरुल्‌ उमरा को घबड़ा दिया और वह साहस छोड़कर इस विचार में पड़ा कि दक्षिण की ओर चल दे। इसी घबड़ाहट मे इसने फाजिल खाँ खानसामाँ से, जो अब तक भी शाहजहाँ की सेवा में रहता था, अशरफ खाँ के कार्यों का स्मरण दिलाते हुए कहा कि शाहजहाँ से उसके दोषो को क्षमा करा दे। उस बुद्धिमान अनुभवी ने इसे सान्त्वना दिलाते हुए कहा कि कल प्रातःकाल तक संतोष रखना चाहिए। कल तक कुछ न कुछ समाचार विश्वास योग्य आवेगा। इसके अनंतर प्रकट हुआ कि औरंगजेब ने, जो धैर्य का पर्वत तथा वीर केसरी था, थोड़ी सेना के साथ शुजाअ को परास्त कर विजय का झंडा ऊँचा किया है। इस ईश्वरी विजय के उपरांत जब औरंगजेब आगरे पहुँचकर दाराशिकोह से युद्ध करने के लिये अजमेर को रवाना हुआ तब

अमीरुल् उमरा भी साथ गया। दूसरे राज्याभिषेक[1] के बाद सन् १०६९ हि० में औरंगजेब के राज्य के २रे वर्ष में इसे बादशाह के सामने डंका बजाने का स्वत्व मिला, जो इसके पिता तथा दादा को शाहजहाँ और जहाँगीर के समय प्राप्त था। इसी समय शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम के स्थान पर यह दक्षिण का सूबेदार नियत हुआ। उक्त प्रांत में पहुँचने पर अमीरुल् उमरा २५ जमादिउल् अव्वल सन् १०७० हि० को शिवाजी को दमन करने और उसके राज्य के दुर्गों को विजय करने के लिये औरंगाबाद से बाहर निकला। बीजापुर के राज्य मे विप्लव होने के कारण तथा आदिलशाही सर्दार अफजल खाँ को मारने पर शिवाजी ने बहुत से बंदरों तथा दुर्गों पर अधिकृत होकर समुद्र के किनारे तक राज्य फैला लिया था और बादशाही राज्य मे भी लूट मार करने में कुछ उठा न रखता था। इसलिये शायस्ता खाँ ने हर स्थानो मे शत्रु को, जहाँ उन्होने सामना किया, उचित दंड देकर उसके अधीनस्थ महालो में थाने बैठा दिए। यही मराठो के युद्ध का आरंभ है।

वर्षा के आ जाने के कारण शायस्ता खाँ ने कुछ दिन पूना कस्बे मे व्यतीत कर चाकण दुर्ग का, जो निजाम शाही कोंकण का एक दृढ दुर्ग था और आदिल शाही राज्य की गड़बडी मे शिवाजी ने जिस पर अधिकार कर लिया था, लेने का विचार किया क्योंकि वह बादशाही राज्य के पास था और उसके कार्य की सफलता के लिए आवश्यक था। जब यह उस दुर्ग के नीचे पहुँचा तब चारो ओर निरीक्षण कर मोर्चे बाँधे और दमदमा बनाने तथा खान खोदने के योग्य स्थान निश्चित किए। छप्पन दिनो तक बराबर आँधी पानी व बिजली के होते भी अहर्निश तोप और बंदूक से युद्ध जारी रक्खा। अन्त में एक खान अमीरुलउमरा के मोर्चे के सामने के बुर्ज के नीचे पहुँच गई और उसको बारूद से उडा दिया। वह बुर्ज फट गया और उसके टुकडे कबूतरो के झुण्ड के समान हवा में उड़ गए। आक्रमण के लिए तैयार विजयी सेना ईश्वरी ढाल लगाकर एक बार ही दुर्ग पर दौड़ पडी। उस दिन लडते भिडते रात्रि हो गई पर सैनिकों ने भागना पसन्द न कर दुर्ग के नीचे ही रात्रि को दृढता से व्यतीत कर दिया और सुबह होते ही फिर धावा कर नगर की चहारदीवारी के भीतर पहुँच गए। १८ जी हिज्जा को तीसरे वर्ष मे उस पर अधिकार कर लिया। शत्रु की बची सेना नगर दुर्ग मे चली गई पर उसकी रक्षा करना अपनी सामर्थ्य के

---

१. औरंगजेब प्रथम बार १ जीकद : सन् १०६८ हि०, २३ जुलाई सन् १६५८ ई० को मुगल साम्राज्य का स्वामी बना और इसके प्रायः एक वर्ष बाद २४ रमजान सन् ११६९ हि०, ५ जून सन् १६५९ ई० को दूसरा राज्याभिषेकोत्सव कर इसने खिताब, खुतबा तथा सिक्का चलाया था।

चाहर देखकर वह अमान माँगकर बाहर निकल गई। बादशाही आज्ञा से दुर्ग का नाम इस्लामाबाद रखा गया।[1]

इसके अनन्तर शिवाजी के राज्य मे बादशाही सेना ने चढ़ाई की और जब वह कपटी धूर्त दुर्गम घाटियो में चला गया तब अमीरुलउमरा पूना कस्वा मे ठहरना निश्चयकर शिवाजी के बनवाए हुए गृह में उतरा। उस समय उस उपद्रवी ने रात्रि मे आक्रमण करने के विचार से बहुतो को इस कार्य के लिए भेजा। उस समय रात्रि मे बिना आज्ञापत्र के कोई आदमी सेना या नगर मे आ जा नहीं सकता था। इसलिए कि ऐसी वडी कैद थी मराठे घुडसवारों को देखकर भी कोई चिंता न करता था। दैवयोग से ६ठे वर्ष के आरम्भ में कोतवाल से एक विवाह के बहाने दो सौ आदमियो के लिये आज्ञापत्र लेकर रात्रि के समय बाजा बजाते हुए मराठे नगर मे घुस आए। दूसरे दिन एक और झुंड यह प्रसिद्ध करता हुआ कि थाने पर पकड़े गए ये शत्रु हैं, उन्हें हाथ बाँधे हुए तथा थप्पड़ मारते हुए, सब भीतर चले आए। दूसरी रात्रि को ये उपद्रवीगण अर्द्ध रात्रि के समय महलसरा के पीछे बावर्चीखाने मे पहुँचकर जिसे जागते पाया मार डाला और एक खिड़की खोलकर जो मिट्टी रोडे से बन्द की गई थी, भीतर घुस गए। महल के कुछ खवासो ने फाफड़े रंभे की आवाज सुनकर अमीरुलउमरा जो यह समाचार दिया। उसने कहा कि रोजे का दिन है इसलिय बावर्ची खानेवाले ही खाने के समान के लिये कुछ हटा बढ़ा रहे होंगे। जब यह समाचार सत्य ज्ञात हुआ तब यह तीर, कमान, बर्छी हाथ में लेकर उठ बैठा। उपद्रवियों में से एक ने इस पर तलवार चलाई, जो इसके हाथ तक पहुँची और अँगूठे के पासवाली उँगली कट गई। इसका युवा पुत्र इसी झगड़े में मारा गया। महलवालो ने खीचकर अमीरुलउमरा को एक ओर कर दिया। इस शोरगुल से बाहर के आदमियो ने दौड़कर उन उपद्रवियों को समाप्त कर दिया।[2]ऐसा कार्य ऐसे सर्दार की असावधानता तथा असतर्कता प्रकट करता था और समार में ऐसी अमलदारी ओछी तथा असम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी, इसलिये यह बादशाह द्वारा दंडित हुआ और दक्षिण की सूबेदारी पर शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम नियत हुआ।[3] यह बंगाल प्रात का अध्यक्ष बनाया गया, जहाँ

---

१. देखिए 'ए हिस्ट्री आब मराठा पीपुल' किनकेड पारसनीस कृत भा० १ पृ० १९६-७।

२. वही पृ० १९७ ९। शिवाजी के कुछ सैनिक मारे गए थे पर वह स्वय अपने अन्य सैनिको के साथ निकल गए थे। यह लिखना कि सब समाप्त कर दिए गए नितांत अशुद्ध है।

३. शायस्ता खाँ इस रात्रि आक्रमण के बाद ही शिवा जी का पीछा करता हुआ सिंहगढ तक गया पर इसमें भी असफल रहा और बहुत सी, सेना कटाकर लौट आया। पूना में रहने का इसका साहस नही रह गया था अतः औरंगाबाद लौट गया। देखिए पारसनीस किनकेड पृ० १९९-२०० तथा ग्राट डफ पृ० १९७।

का सूबेदार मीर जुमलः उसी समय मर गया था। रखंग प्रांत के उपद्रवियो ने, जो जनसाधारण मे मघ जाति से प्रसिद्ध हैं, इस अवसर को अच्छा पाकर विद्रोह की नीयत से बंगाली सीमा पर पहुँचकर मार्ग के कुछ मौजो के निवासियों को लूट लिया। अमीरुल् उमरा ने चाटग्राम दुर्ग को, जो उस प्रांत की सीमा है, उन विद्रोहियो की लूटमार का गढ़ समझकर इस कार्य को पूरा करने का निश्चय किया और अपने पुत्र बुजुर्ग उम्मेद खाँ को सेना के साथ वहाँ भेजा। उसने बहुत प्रयत्न कर ८वें वर्ष के अंत में उस दृढ़ दुर्ग को विजय कर उसका इस्लामाबाद नाम रखा।

अमीरुल् उमरा बहुत दिनों तक उस विस्तृत प्रांत बंगाल का प्रबंध करता रहा। २०वें वर्ष मे जब उस प्रांत का प्रबंध आजम खाँ कोका[२] को मिला तब अमीरुल् उमरा वहाँ का कार्य पूरा कर २१वें वर्ष में सेवा में पहुँचा और इसने तीस लाख रुपए नगद और चार लाख रुपए के रत्न तथा अन्य सामान भेंट किया। इन सब भेंटो मे एक आईना था जिसके सामने तर्बूज रख देने से वह सूख जाता और उसमे से बूंद बूंद जल टपकता। एक ऐसा संदूक था जिसके एक ओर हाथी तथा एक ओर बकरी बाँध दी गई। हाथी उसे खीच नही सका पर बकरी हाथी सहित उसे खीच ले गई। अमीरुल्उमरा को यशम पत्थर की वह छड़ी, जो बादशाह के हाथ में रहती थी, और अन्य कृपाएँ मिली तथा आज्ञा हुई कि यह उच्चपदस्थ सर्दार गुसलखाने तक पालकी पर चढ़ा हुआ आया करे और शाह आलम बहादुर की नौबत बजती रहे। इसी वर्ष आगरे की सूबेदारी इसे मिली। २२वें वर्ष के अंत मे शाहजादा मुहम्मद आजम के स्थान पर यह बंगाल का सूबेदार हुआ, जो आज्ञानुसार शीघ्रता से दरबार को रवाना हो गया। इसके कुछ वर्ष बाद फिर आगरे का सूबेदार नियुक्त किया गया। इस प्रकार यह अपने जीवन के अंत तक सुख्याति से बिताकर ३८वें वर्ष के आरंभ सन् ११०५ हि० सन् १६९४ ई० में मर गया।

उस राज्यकाल के आसपास इतना व्यवहारकुशल तथा मिलनसार कोई अन्य सर्दार नहीं हुआ। इतनी बड़प्पन सा गुण इसमें इकट्ठे हो गए थे कि यदि उनका एक अंश किसी दूसरे मे होता तो वह घमंड के मारे अपने को सबसे बड़ा समझता, पर यह बड़ी विनम्रता, विनीत भाव, सुव्यवहार तथा अच्छे सुलूक के साथ सभी भले लोगो से मिलता था। अपनी उदारता तथा एहसान को इसने बहुत विस्तार दिया था। सराय, मस्जिद तथा पुल बनवाने मे इसने लाखों रुपए व्यय किए और इसके दान से हिंदुस्तान में चारों ओर स्मारक बन गए, जिससे बहुत से गरीबों तथा दीनो को लाभ पहुँचता था। इसकी मृत्यु पर इसके जो सामान सरकार में जब्त हुए थे, वे ध्यान से परे थे। यहाँ तक कि उनमें के बहुत से अच्छे सामान,

सोने चाँदी के वर्तन, बादशाही काम में आए और अभी दुर्ग आगरा की कोठरियों मे ताले में बद पडे है।

शायस्ता खाँ के सामान के आधिक्य तथा कारखानों के उत्कर्ष की कितनी कहानियाँ विचित्रता से भरी सुनी जाती हैं, जिनमे एक यह विश्वननीय सूत्र से सुना गया है कि एक बार शिकार के समय औरंगजेब को मोम की आवश्यकता पड़ी। खालसा तथा आसपास के आमिलों के नाम 'फर्माइश भेजी गई पर उन सब ने वर्षाकाल का उज्र कर लिखा कि इस समय वह अप्राप्त है। खानमामाँ ने प्रार्थना की कि मोम अन्यत्र कही न मिलेगा पर अमीरुल्उमरा के दिल्ली स्थित कारखाने में मोम जमा है, ऐसा सुना गया है। बादशाह ने आज्ञा दी कि आवश्यकतानुसार उधार ले लें। जब असीरुल् उमरा के मुत्सद्दी का यह आज्ञापत्र मिला और उसके मालिक से पूछने मे देर लगती, जो बंगाल में था, तथा रुकने का साहस न था तब निरुपाय होकर अपनी ओर से उसने दो सौ मन मोम और हजार दो हजार वस्तु मोम की बनी हुई, जो प्रत्येक दो मनी या तीन मनी थी, भेंट की। साथ ही यह उज्र भी किया कि उसके स्वामी हैं नही इसलिए इससे अधिक भेजने का वह साहस नहीं कर सका। ज्ञात हुआ कि मोम के इस भंडार को कुँए खोदकर उसमें सुरक्षित रखते थे और गर्मी में उस पर पानी छोड़ते थे कि पिघल न जाय। इसी प्रकार इसके अन्य सामानों की कल्पना कर लेनी चाहिए। जहाँगीर की आज्ञा से नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानों के पुत्र शाहनवाज खाँ की पुत्री से इसका निकाह हुआ था पर इसकी संतानें रखेलियों तथा लौंडियों ही से थी।

इसके पुत्रों में एक अकीदत खाँ का नाम अबूतालिब था, जो अपने पिता की दक्षिण की सूबेदारी के समय दौलताबाद का अध्यक्ष नियत था। यह शीघ्र मर गया। दूसरा अबुल्फतह था, जो शिवाजी के रात्रि आक्रमण में मारा गया। जिन पुत्रो ने नाम कमाया, उनका वृत्तांत अलग दिया गया है।[१] इसकी पुत्रियो में से एक का निकाह रूहुल्ला खाँ प्रथम[२] से और दूसरी का जुल्फिकार खाँ नुसरतजग[३] से हुआ था।

●

---

१. अबू नसर खाँ, खुदाबन्दा, तथा बुजुर्ग उम्मीद खाँ तीन पुत्रो का विवरण आया है।

२. रूहुल्ला खाँ प्रथम का विवरण इसी भाग में है।

६२५. शाहकुली खाँ नारंजी

यह हुमायूँ के राज्यकाल का एक सर्दार था। उस बादशाह के साथ जाने तथा लौटने के समय यह बराबर सेवा में रहा और अकबर बादशाह के राज्य के प्रथम वर्ष में खिज्र ख्वाजा खाँ[1] के साथ पंजाब प्रांत मे नियत हुआ। बैराम खाँ के प्रभुत्वकाल में उसके शरण में रहकर यह उन्नति करता रहा। जब मेहदी कासिम खाँ गढा से बिना छुट्टी लिये हज्ज चला गया तब ११वें वर्ष में यह सेना के साथ उक्त ताल्लुके का प्रबंध करने भेजा गया। इसके अंतिम समय का हाल ज्ञात नही हुआ।

•

६२६. शाहकुली खाँ महरम बारलू

यह बैराम खाँ का अच्छा सेवक था। हेमू के साथ के युद्ध मे, जो उसकी पहली लड़ाई थी और जो अकबर के राज्य की स्थिरता का कारण हुई थी, इसने अच्छी सेवा की। युद्ध के समय एक तीर खुदा मियाँ के क्रोध के धनुषागार से छूटकर तथा हेमू तक पहुँचकर उसकी एक आँख को फोड़ती हुई सिर के पार निकल गई, जिससे उसके आदमी धैर्य छोड़कर भाग गए। शाहकुली खाँ ने हेमू तक पहुँचकर उसको न जानते हुए हाथीवान पर आक्रमण किया कि हाथी को अपनी लूट मे मिला ले। हाथीवान ने अपने प्राण की रक्षा के लिये अपने स्वामी का पता बतला दिया। शाहकुली खाँ यह सुसमाचार सुनकर अपने भाग्य को सराहता हुआ उस हाथी को युद्धस्थल से बाहर लिवा लाया और हेमू को बाँधकर बादशाह के सामने उपस्थित किया तथा बादशाही कृपा का पात्र हुआ। कबूलखाँ नामक एक लडके को, जो नृत्य जानता था, प्रेम के कारण यह अपने साथ रखता था पर अकबर ऐसे काम को चाहे वह कितने भी शुद्ध विचार से हो पर जिसे लोग नापसंद करते हैं, बहुत अनुचित समझकर ठीक नही मानता था तथा विशेपकर अपने ही सर्दारों मे बहुत अनुचित समझता था इसलिये तीसरे वर्ष मे उसने आज्ञा दी कि लड़के को शाहकुली खाँ से अलग कर दे। भावुक खाँ ने अपनी पदवी तथा प्रतिष्ठा मे आग लगाकर जोगियो का वेश बना लिया और एकांतवासी

---

१ यह बाबर की पुत्री गुल्बदन बेगम का पति था। देखिए बेगम कृत हुमायूँनामा।

हो गया। बैराम खाँ ने बहुत प्रयत्न किया कि बादशाह की कृपा उस पर हो जाने से वह फिर अपनी पहली हालत में आ जावे। बैराम खाँ के ऐश्वर्य के बिगड़ने के दिनों में उन सबने उसका साथ छोड़ दिया, जिन्हें पुत्र तथा भाई कहते हैं पर शाहकुली खाँ ने मित्रता नहीं छोड़ी।

कहते हैं कि जब बैरामखाँ सिवालिक पहाड़ों मे तलवार: में राजा गणेश की शरण में था और अकबर उस पार्वत्यस्थान के पास पहुँचा तब एक दिन मुनइम खाँ बैरामखाँ की प्रार्थना के अनुसार उसे लिवाने गया। शाहकुली खाँ तथा बाबा जंबूर दोनों बैराम खाँ का दामन पकड़कर रोने गाने लगे। मुनइम खाँ ने बहुत समझाया पर कुछ लाभ नहीं हुआ। तब निरुपाय होकर उसने कहा कि आज रात्रि तुम यहीं व्यतीत करो और समाचार की प्रतीक्षा करो। इसके बाद जब सुचित्त हो जाओ तब सेवा में चलो। उस समय यह बैराम खाँ के साथ के कारण बादशाह का विरोधी रहा और इसी से इसे अपने लिये यह आशंका बनी थी। बैराम खाँ की मृत्यु के अनंतर इसने बड़ी उन्नति की और सर्दारी पाई। २०वें वर्ष मे जब पंजाब का प्रांताध्यक्ष खानजहाँ बंगाल का शासक नियत हुआ तब उस प्रांत का अध्यक्ष शाहकुली खाँ बनाया गया। सदा अच्छी सेवा कर यह बराबर बादशाह का कृपापात्र बना रहा।

जब कि अकबर इसे अत्यंत कृपा के कारण महल के भीतर लिवा गया तब घर लौटने पर इसने अपने को अख्ता (नपुंसक) बना लिया। जब बादशाह को इसकी सूचना मिली तब इसका 'महरम' संबोधन' हुआ। जब ३४वें वर्ष के अंत में जाबुलिस्तान से लौटते समय व्यास नदी पार करने पर बादशाही पड़ाव हैलान के पास हुआ तब एक दिन मार्ग में मलूकराय के हाथी की पारी थी, जो बड़ा लड़ाकू तथा मस्त था और बादशाह ने चाहा कि हथिनी पर सवार होकर तब उसके ऊपर जावें। इसके पहले ही कि वह पाँव कलावा पर दृढ़ता से रखें वह मस्त हाथी हथिनी पर दौड़ा। इससे सम्राट् अकबर जमीन पर आ गया। यद्यपि हाथी दूसरी ओर चला गया पर गिरने ही से बादशाह को कुछ बेहोशी आ गई तथा बहुत पीड़ा होने लगी। अपनी ही राय से रक्त निकालने से लाभ हुआ।

विद्रोही उपद्रवियों के प्रांतो में बड़ी कड़ाई करने पर भी दूर दूर के बहुत से परगने उन सबने लूट लिए। शेखावत राजपूत गण, यद्यपि उनके सर्दारगण दरबार में उपस्थित थे, स्वयं तबाह होकर भी बैरात को लूटकर मेवात से रेवाड़ी तक उपद्रव मचाते रहे। इसलिये ३५ वें वर्ष मे शाहकुली खाँ उन अदूरदर्शियो को दंड देने पर नियत हुआ और थोड़े ही समय मे साहस तथा वीरता से उस उपद्रव को दमन कर प्रजा को शांति दिलाई। ४१वे वर्ष के आरंभ मे इसे चार हजारी मंसब मिला। इसके अनंतर यह पचहजारी मंसब, झंडा और डंका पाकर सम्मानित

हुआ। ४६वें वर्ष सन् १०१० हि० में राजधानी आगरा मे पेटचली रोग से मर गया। वृद्ध होते हुए भी यह सजीव था। वीरता तथा सत्यनिष्ठा इसमे अच्छी थी। नारनौल को अपनी संपत्ति कर वहाँ इसने निवास स्थान बनवाया और भारी इमारतो तथा तालाबों की नीव डाली। कहते हैं कि बीमारी में वह सनक गया था कि अब वह न बचेगा। सैनिकों को दो वर्ष का अग्रिम वेतन दान में दे दिया और तब मरा।

•

६२७. शाह कुली खाँ वकास हाजी

यह बल्ख का निवासी था। शाहजहाँ के राज्य के ५वें वर्ष के आरंभ में बल्ख के शासक नज्रमुहम्मद खाँ का राजदूत होकर यह अपने देश से हिंदुस्तान आया। जब यह आगरे के पास पहुँचा तब मोतमिद खाँ बख्शी स्वागत कर इसे बादशाह की सेवा मे लिवा लाया। इसने पत्र तथा उक्त खाँ की भेंट, जो पंद्रह सहस्त्र रुपए मूल्य की थी, पेश की और इसे खिलअत तथा चार सहस्त्र रुपए मूल्य का जडाऊ खंजर और इसके पुत्र मोमिन को अच्छा खिलअत मिला। इसके दो दिन बाद पैंतीस घोड़े और दस ऊँट इसने स्वयं तथा इसके पुत्र ने अठारह घोडे और कुछ ऊँट अपनी ओर से नजर दिए। इसे तीस सहस्त्र रुपए और इसके पुत्र को दस सहस्त्र रुपए पुरस्कार में मिले। इसके कुछ दिन बाद सौर तुलादान के समय इसे बीस सहस्त्र रुपए और इसके पुत्र को पाँच सहस्त्र रुपए मिले। ६ठे वर्ष में इसने खिलअत, सुनहले साज का घोड़ा और हाथी तथा इसके पुत्र ने खिलअत पाकर तरबियत खाँ के साथ जवाबनामा लेकर देश लौटने को छुट्टी पाई।

हिंदुस्तान के ऐश्वर्य को देखकर तथा यहाँ के न्यायादि से परिचित होने पर इसका मन स्वदेश से उचट गया और ६वें वर्ष में यह भाग्य की सहायता से यहाँ आकर सेवा में उपस्थित हुआ। इसे एक हजारी ८०० सवार का मंसब, खिलअत, जडाऊ खंजर, सोने की मीना की हुई तलवार, सोनहले जीन सहित घोड़ा, हाथी और बीस सहस्त्र रुपए देकर सम्मानित किया गया। उसी वर्ष के अंत मे समाचार आया कि कांगडा का फौजदार मिर्जा खाँ मनो चेहर[1] मस्तिष्क बिगड जाने से काम से अलग हो गया है। उस पहाडी महाल पर अधिकार करने के लिये अधिक सेना की आवश्यकता समझकर इसका मंसब बढाकर दो हजारी २००० सवार का

---

१. यह बैराम खाँ का प्रपौत्र, अब्दुर्रहीम खाँ का पौत्र तथा शाह नवाज खाँ का पुत्र था।

कर दिया तथा इसे शाहकुली खाँ की पदवी, झंडा तथा खिलअत देकर उक्त ताल्लुके पर नियत किया और जड़ाऊ खंजर, घोड़ा और हाथी देकर बिदा किया। वहाँ पहुँचने पर उस पर अधिकार कर इसने जम्मू के जमींदार संग्राम के पुत्र भोपत को बुलवाया, जो सदा के लिये उस स्थान के फौजदारों का सहायक नियत था और क्रमशः उसने इस कार्य में कमी कर दी थी। वह भारी सेना के साथ आया। शाह कुली खाँ भी सेना एकत्र कर युद्ध के लिये तैयार हुआ और मारकाट के बाद वह सेना सहित अपने वास्तविक रक्षा स्थान को चला गया। इस कार्य से दरबार में इसकी प्रशंसा हुई और १०वें वर्ष में खिलअत, डंका, तथा हाथी पुरस्कार में मिला। १२वें वर्ष मे जब बादशाह राजधानी को लौटे तब यह मार्ग में सेवा में उपस्थित हुआ और उस ताल्लुके से हटाया जाकर जान निसार खाँ के स्थान पर भक्कर का शासक नियत हुआ। १४वें वर्ष मे इसका मंसब बढकर तीन हजारी २००० सवार का हो गया और कश्मीर की अध्यक्षता की खिलअत के साथ इसे सोने पर मीना किए हुए साज सहित तलवार और पचास सहस्र रुपए नगद भी मिले। यह सन् १०५० हि०, सन् १६४० ई० में हसन अब्दाल के पास पहुँच कर मर गया। पुत्र मुहम्मद अमीन नौ सदी ५०० सवार का मंसब पाकर २५वें वर्ष मे मर गया।

६२८. शाहनवाज खाँ बहादुर, मिर्जा एरिज

यह खानखानाँ मिर्जा अब्दुर्रहीम खाँ का सबसे बड़ा पुत्र था। खानखानाँ की जवानी के आरंभ मे यह युवक हो चुका था और वीरता, साहस, धावे तथा व्यूहरचना में यह प्रसिद्ध तथा अद्वितीय था। ४०वें वर्ष में अकबर के राज्यकाल मे इसे चार सदी मसब मिला। ४७वें वर्ष सन् १०१० ई० मे नानदेर के पास मलिक अंबर हब्शी से जो युद्ध हुआ था उसमे विजय प्राप्त करने के कारण यह बहादुर की पदवी प्राप्त कर सम्मानित हुआ। कहते हैं कि उस युद्ध में दोनो पक्ष की ओर से घोर प्रयत्न तथा प्राण का मोह छोड़ने मे या कोई कमी नहीं की गई थी और मिर्जा ने ऐसी वीरता दिखलाई थी कि रुस्तम और अस्फंदियार के किस्से किस्से रह गए। मलिक अंबर ने, जिसे मैदान से घायल उठा लेगए थे, उसी दिन से नम्र होकर खानखानाँ से भेंट की और मित्रता स्थापित की। जहाँगीर के समय मे यह बरार प्रांत तथा बालाघाट अहमद नगर का अध्यक्ष नियत हुआ। इसकी कार्यावली इतनी अधिक है कि वह इन पृष्ठों मे सक्षेप मे भी आ सके। सिरकी

का युद्ध उन सब युद्धों में सबसे बढ़कर था। जहाँगीर के १०वें वर्ष सन् १०२४ हि० में जब शाहनवाज खाँ बालापुर बरार में रहता था तब दक्षिण की सेना के कुछ सर्दारगण जैसे आदम खाँ, याकूब खाँ तथा मालोजी काँतिया मलिक अंबर से दुखी होकर प्रतिज्ञा करके इसके पास चले आए और इसे अंबर से लड़ाई करने को उभाड़ा। शाहनवाज खाँ वीरता से उनको सांत्वना देते तथा उनके सामान के कष्ट को दूर करते हुए युद्ध को रवानः हुआ। मलिक अंबर की ओर से महलदार खाँ, आतिश खाँ, दिलावर खाँ आदि निजामशाही सर्दारगण ने युद्ध किया और खराब हालत में भागकर मलिक अंबर के पास पहुँचे। इस पर वह भारी सेना, बड़ा तोपखाना और मस्त लड़ाकू हाथियों के साथ तथा आदिलशाही और कुतुबशाही सेनाओं के सहित युद्ध को आया। पाँच छ कोस से अधिक कूच करना नहीं था इसलिये याकूब खाँ बदख्शी ने, जो अनुभवी युद्धकुशल पुराने सैनिकों में से था और जिसे खानखानाँ ने मिर्जा के कुल अधिकार दे रखे थे, मुहम्मद खाँ नियाजी के साथ युद्धस्थल निश्चित किया, जिसके आगे जल से भरा नाला था। उस नाले को धनुर्धर सैनिकों को नियुक्त कर दृढ़ किया। इससे शत्रु के अच्छे सवार, जिन नवयुवकों को मलिक अंबर ने सुशिक्षित किया था, धावा करते हुए नाले के किनारे तक पहुँच गए। इस ओर से धनुर्धारियों ने तीरों की अंधड़ में उन्हें लिया, जिससे बहुत से घोड़े तथा सवार नष्ट हो गए। इसके अनंतर दाराब खाँ ने अपने हरावल के वीरों तथा दूसरे बहादुरों के साथ साहस सहित नाला पार कर उन पर आक्रमण कर दिया। मलिक-अंबर मध्य में स्थित होकर दृढता से डटा रहा इसलिये बहुत समय तक घोर युद्ध होता रहा। यह मारकाट तथा लड़ाई बड़ी आश्चर्यजनक हुई और कटे मरे लोगों के ढेर लग गए। कहते हैं कि शाहनवाज खाँ ने उस दिन घोर युद्ध किया और गर्जते हुए शेर के समान जिस ओर धावा करता शत्रु की सेना लड़ाई छोड़कर तमाशा देखने लगती थी। निरुपाय होकर मलिक अंबर युद्ध से हाथ खींचकर भाग खड़ा हुआ। मिर्जा ने तीन कोस तक पीछा कर भागनेवालों को मारा काटा और फिर रात्रि के अंधकार, थकावट और हरास से साथियों सहित तोपखाना, हाथी और अन्य लूट प्राप्त हुई। दूसरे दिन खिरकी की ओर, जो दौलताबाद से साधारण पाँच कोस पर स्थित है और इसी कारण जिसका औरंगाबाद नाम रखा गया तथा जो मलिक अंबर का निवास स्थान बनाया गया था, रवान. हुआ पर जब वहाँ शत्रु के चिह्न नहीं दिखलाई पड़े तब वहाँ के मकानों और स्थानों को जलाकर तथा ढहाकर बराबर कर दिया। वहाँ से लौटते हुए यह रोहनखेडा घाटी से उतर कर बालापुर पहुँचा। इसके साथ के सभी सर्दारों के मंसबों में तरक्की हुई और शाहनवाज खाँ को पाँच हजारी का ऊँचा मंसब मिला। जब जहाँगीर अजमेर में ठहरा हुआ था तब यह

समाचार पाकर इसने पैदल ही जाकर मुईनुद्दीन के रौजे मे दुआ माँगी और दान दिए।

१२वें वर्ष में शाहजादा शाहजहाँ के प्रयत्नो से मलिक अंबर ने बादशाही साम्राज्य की सीमा के भीतर के अधिकृत प्रांत तथा स्थानों को, जिन पर वह अधिकृत हो चुका था, पहले लौटा दिए और दुर्गों तथा गढियो की कुंजियाँ दे दी। इस प्रकार दक्षिण के कार्यों को निपटाकर जब शाहजादा लौटने लगा तब शाहनवाज खाँ को बारह सहस्र सवारो के साथ विजित प्रात बालाघाट पर अधिकार करने के लिये नियत किया। यौवन के आरंभ में मदिरा पर रीझकर तथा चापलूस घर बिगाड़नेवाले मुसाहिबों की सुहबत से इसने मद्यपान बहुत बढा दिया, जिससे १४वें वर्ष सन् १०२८ हि, सन् १६१९ ई० मे इसकी मृत्यु होगई। मिर्जा एरिज बुद्धिमान तथा सुशील युवक था और वीरता तथा अनुभव से युक्त था। सैन्य संचालन और सर्दारी मे यह एक था तथा इतने गुणों के होते भी कठोर और खराब कपड़े पहिरनेवाला था।

•

६२६. शाहनवाज खाँ सफवी

इसका नाम बदीउज्जमाँ था और मिर्जा दक्खिनी के नाम से प्रसिद्ध था। यह मिर्जा रुस्तम कन्धारी का योग्यतम पुत्र था। जहाँगीर के समय संपत्ति तथा सर्दारी मे बहुत उन्नति कर शाहनवाज खाँ की पदवी पाने से यह सम्मानित हुआ और ठट्टा तथा बिहार प्रांतो में बादशाही सेवा करता हुआ समय व्यतीत करता रहा। जहाँगीर की मृत्यु पर अयोग्य शहरयार की घटना मे आसफजाह का साथ देकर इसने अच्छा कार्य किया। तीसरे वर्ष में शाहजहाँ के यह ख्वाजा अबुल्हसन तुरबती के साथ नासिक तथा त्र्यंबक को खाली कराने गया। ९वें वर्ष में जब दौलताबाद के पास ये चार भारी सेनाएँ अच्छे-अच्छे सर्दारों के अधीन आदिल शाही राज्य को लूटने तथा निजामुल्मुल्क के बचे हुए दुर्गों को विजय करने के लिए भेजी गईं तब शाहनबाजखाँ सैयद खानजहाँ बारहा के साथ नियत होकर बराबर हरावली करता रहा।

एक दिन शत्रु ने इकट्ठे होकर एक साथ धावा किया और पहले चंदावल ही से दक्षिण मे युद्ध आरम्भ होता थ। इसलिए शाहनवाज खाँ ने जानबूझकर चंदावली स्वयं ले ली। एक प्रहर तक दोनो पक्ष में खूब युद्ध होता रहा। जब शत्रु का जोर बढ़ता गया तब सैयद खानजहाँ ने शाहनवाज खाँ के पास पहुँचकर शत्रु को हटा

दिया। उस दिन अच्छे कारनामे हुए। उच्च वंश तथा अच्छे पद पर होने के कारण १०वें वर्ष में २३ जीहिज्जा को शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब वहादुर का निकाह इसकी पुत्री (दिलरस वानू) से पढाया गया। शाहजहाँ रात्रि की मजलिस में इसके गृह पर नाव पर सवार होकर आया और इनके सामने चार लाख रुपया दानमेहर निश्चित हुआ। तालिब कलीम ने तारीख इस घटना की यो कही— दो गौहर वयक अकद दौराँ कशीद: (दो घूमते मोती एक गांठ मे बाँध दिए गए)। उस रात्रि हिंदुस्तान की चाल के अनुसार कि वधू का पिता मजलिस में उपस्थित नही रहता, इसने वादशाह से भेट नही किया पर दूसरे दिन योग्य नजर भेंट की। [1]मुताअ एक लाख रुपया निश्चित किया गया। १५वें वर्ष मे दूसरी पुत्री को शाहजादा मुराद वख्श के लिए माँगा गया परन्तु उस समय शाहनवाज खाँ उड़ीसा प्रांत के प्रवन्ध में लगा था इसलिए आज्ञानुसार इसकी स्त्री नौरस वानू[2] वेगम ने उक्त पुत्री के साथ दरवार पहुँचकर शादी की रसम पूरी कर दी। इसके अनंतर यह जौनपुर का शासक नियत हुआ। `०वें वर्ष मे मालवा का यह प्रांताध्यक्ष नियत हुआ।

जब दक्षिण का सूवेदार इस्लाम खाँ मर गया तब इसके नाम आज्ञापत्र भेजा गया कि पास होने के कारण यह शीघ्र वहाँ पहुँच कर उस प्रांत की रक्षा करे। उसी वर्ष २२वें वर्ष में मुरादवख्श दक्षिण के चार प्रांतों का अध्यक्ष नियत हुआ और शाहनवाज खाँ उसका अभिभावक तथा वकील बनाया गया क्योंकि इसके कार्यों मे बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता, बड़प्पन तथा सर्दारी के चिन्ह स्पष्ट झलक तथा प्रकट हो रहे थे। आरंभ में शाहनवाज खाँ उस प्रात के प्रवन्ध को ठीक करने के बाद देवगढ पर सेना चढा ले गया और काम पूरा कर लौट आया। परन्तु शाहजादे के स्वभाव में नवयौवन तथा अविवेक के कारण उच्छृंखलता भरी थी इसलिए साथ न हो सका और इस मनोमालिन्य के कारण राजनीतिक कार्य बिगडते गए और मुकद्मो के तै होने की कोई सूरत न होती थी। इसलिए २२वे वर्ष में शाहजादा दरवार चला गया और यह फिर मालवा में नियत हो गया। २६ वें वर्ष में पाँच हजारी ५००० सवार दो अस्प: सेह अस्प: मंसव के साथ अवध प्रात तथा गोरखपुर और बहराइच की जागीर पाकर सम्मानित हुआ। शाहजहाँ के राज्य के अन्तिम वर्षों में जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब वहादुर बीजापुर की चढ़ाई पर गया तब शाहनवाज खाँ आदि कई सर्दार भी दरवार से उस कार्य पर भेजे गए। अभी यह कार्य पूरा नहीं होने पाया था कि दाराशिकोह की अदूरदर्शिता से हर ओर विद्रोह तथा विप्लव के दृश्य दिखलाई पड़ने लगे। मुहम्मद औरंगजेब वहादुर ने खूब समझ बूझकर तथा काफी सामान लेकर हिंदुस्तान की ओर कूच किया। शाहनवाजखाँ दूरदर्शिता से

---

१ मुताअ का अर्थ सामान है स्यात् सामान के वदले में नक़द दिया गया हो।

२. पाठा० नवाजिश वानू।

बुर्हानपुर में रुककर साथ नहीं गया। शाहजादे ने उसको हवेली में से निकलवाकर नगर के दुर्ग में नजरबन्द करा दिया। दाराशिकोह के पराजय और औरंगजेब की हिंदुस्तान की राजगद्दी के बाद इसके मंसब में एक हजारी १००० सवार बढ़ाकर छ हजारी ६००० सवार का कर दिया गया और गुजरात की अध्यक्षता का फर्मान भेज दिया गया। अभी यह उस प्रांत में पहुँचा ही था कि दाराशिकोह औरंगजेब का पीछा करनेवाली सेना के कारण मुल्तान से ठट्टार और वहाँ से इस प्रांत की ओर आया। जब यह अहमदाबाद के पास पहुँचा तब शाहनवाज खाँ बुर्हानपुर में किए गए सलूक से उत्पन्न मनोमालिन्य के कारण या युद्धीय सामान की कमी से यह न कर कि वह दक्षिण या दरबार चला जावे बड़ी बुद्धिहीनी दिखलाते हुये साहस छोड़कर उसके स्वागत को गया और उसे नगर में लाकर बादशाही निवास के महलों में ले गया, तथा बहुत हठ करके बादशाही झरोखे में बैठाया, यद्यपि दाराशिकोह अपने पिता के विचार से नीचे बैठना चाहता था। यद्यपि पहले यही विचार उस असफलता की मदिरा से उन्मत्तो के मन में था कि मुलतानपुर तथा बदरबार के मार्ग से दक्षिण पहुँचकर वहाँ राज्य दृढ करें पर शाह शुजाअ के औरंजेब के द्वारा परास्त तथा कैद होने का समाचार सुनकर तथा उन्हें सत्य मानकर आगरे पहुँच शाहजहाँ को छुडाने का सबने साहस किया। शाहनवाजखाँ को अपना मित्र तथा सम्मतिदाता समझकर उसे सेना एकत्र करने को संकेत किया। प्रायः बीस सहस्र सेना इकट्ठी हो गई।

इसी समय बराबर राजा यशवन्तसिंह के पत्र आते रहे कि शाहजहाँ की सेवा का चिन्ह उसके हृदय पर अंकित है। शाहजादा इस ओर शीघ्र आवे, जिससे कुल राजपूत सेवा में आकर सम्मिलित हो प्रयत्न कर सके। निरुपाय होकर दाराशिकोह आगरा जाना रोककर शाहनवाज खाँ के सब पुत्रों तथा संबंधियों के साथ लेकर अजमेर को रवाना हो गया। जब महाराज की पदवी को अपयश देनेवाला प्रतिज्ञा तोड़कर उसके पास नहीं पहुँचा तब दाराशिकोह ने बीठलीगढ से पहाड़ी तक दीवार खिंचकर नियमित मोर्चे बाँधे और औरंगजेब का सामना करने तैयार हुआ। लड़ाई के अनन्तर २९ जमादिउल् आखिर सन् १०६९ हि० को दिलेर खाँ और शेख मीर ने गोकला पहाडी के पास दर्रे पर, जो शहनवाज खाँ के अधीन था, वीरता से आक्रमण कर इसके मनुष्यों को हटा दिया। शाहनवाज खाँ दाराशिकोह के पास था और इस समाचार के मिलते ही वह दौडा हुआ वहाँ पहुँचकर शत्रु को हटाने का प्रयास करने लगा. मोर्चे की ऊँचाई पर खड़े होकर युद्ध का संचालन कर रहा था कि ठीक ऐसे समय एक तीर इसकी नाभि में ऐसी लगी कि इसका काम समाप्त हो गया। दाराशिकोह इसके मारे जाने का समाचार सुनकर साहस छोड भागा। औरंगजेब ने इस बडे सर्दार के पुराने सम्बन्ध का विचार कर इसके शव को प्रतिष्ठा के साथ मुईनुद्दीन के रौजा के आँगन में गड़वा दिया।

यह आरंभ ही से समान, सजावट तथा अच्छे खाने के लिए प्रयत्नशील रहता था। यह मित्रता था। यह मित्रता तथा सौंदर्य का शौकीन था। यह सांसारिक कार्यो तथा राजनीतिक उपायो में बडी योग्यता रखता था और स्वयं थोडा या कुल कार्य करता था। यह शिकार का भी प्रेमी था। गाने बजाने का इसे शौक था, जिससे इसके यहाँ इतने गवैए तथा साजिंदे इकट्ठे हो गये थे, जितने उस समय किसी की सरकार मे न थे। इसके पुत्र मासूम खाँ को पिता की इस घटना के बाद दो हजारी मंसव और मीर मुअज्जम की पदवी और दूसरे पुत्र सयादत खाँ को डेढ़ हजारी मंसब मिला। २६ वे वर्ष सन् १०६४ हि० मे औरगांबाद मे सयादत खाँ की पुत्री आर्जमबानू से शाहजादाहकामबख्श का विवाह हुआ। २७ वे वर्ष में सयादत खाँ मुअज्जम खाँ की पदवी से मुगल खाँ के स्थान पर कोशबेग नियत हुआ। इसके स्वभाव में उदण्डता का अभाव न था।

•

६३०. शाहनवाज खाँ सफवी, मिर्जा

इसका नाम सदरुद्दीन मुहम्मद था और यह मिर्जा सुलतान सफवी का पुत्र था। यह सफवी वंश का यादगार था। सौभाग्य की सहायता से इसने अपनी सर्दारी का उच्च पद अपने पिता तथा पितामह से बढा लिया था पर अपने वश का यह अन्तिम भी था। इसके अनन्तर वर्तमान समय तक इस के वंश के किसी आदमी ने नाम नही कमाया। अपने पिता की मृत्यु पर यह प्रसिद्ध पुरुष हुआ और दूर तथा पास की चढाइयों पर नियत होता रहा। औरंगजेब के समय २६वें वर्ष में इसे खाँ की पदवी तथा रामगिरि की फौजदारी मिली। इसके अनंतर यह आगरा प्रांत के अंतर्गत एरिच खांडेर का फौजदार हुआ और उसके बाद बरार प्रांत के पौनार ताल्लुके का फौजदार नियत हुआ। ४४वें वर्ष मे मोतामिद खाँ के स्थान पर यह खानदेश का प्रांताध्यक्ष नियत किया गया तथा पाँच सदी बढ़ने से इसका मंसब दो हजारी हो गया। इसके अनंतर यह तीसरा बख्शी नियत हुआ और मिर्जा शब्द के साथ सदरुद्दीन मुहम्मद खाँ सफवी कहलाया। जिस समय बादशाह बहादुरगढ से, जहाँ कुछ दिन पड़ाव डाला गया था कोंडाना दुर्ग विजय करने चले उस समय माल व सामान बहादुरगढ ही में छोड़ा था। बख्शीउलमुल्क मिर्जा सदरुद्दीन मुहम्मद खाँ को, जो बादशाही कृपा से ढाई हजारी ८०० सवार के मंसब तक पहुँच चुका था, पाँच सदी २०० सवार बढाकर तीन हजारी १००० सवार का मंसब तथा हाथी देकर उस दुर्ग की रक्षा के लिये भेजा। ४८वें वर्ष में रूहुल्ला खाँ

द्वितीय के स्थान पर एकाएक द्वितीय वख्शी के पद पर नियुक्त हो यह उस दुर्ग से दरबार बुला लिया गया। वाकिनकीरा के विजय के अनंतर दूसरी बार पांच सदी इसके मंसब में बढाया गया।

औरंगजेब की मृत्यु पर यह मुहम्मद आजमशाह के साथ गया। बहादुरशाह के साथ युद्ध में जब आजमशाह मारा गया तब प्रायः सभी औरंगजेबी सरदार तथा वालाशाही बहादुर शाह से जा मिले और कुछ ही अलग हट गए। शाहनवाज खाँ युद्ध मे घायल हो चुका था इसलिये जब यह बहादुरशाह की सेवा में उपस्थित हुआ तब यह पुरानी सेवा पर बहाल हुआ, पाँच हजारी मंसब पाया तथा हिसामुद्दौला मिर्जा शाहनवाजखाँ सफवी की पदवी मिली। यह बड़े प्रतिष्ठा के साथ दिन व्यतीत करता रहा। जब लाहौर के पास विनम्र तथा विद्वान बहादुरशाह मर गया और उसके चारो पुत्रों ने आपस के युद्ध के लिये कमर बाँधी तब हर एक बादशाही सर्दार जिस किसी शाहजादे से अधिक परिचय रखता था उसी के साथ हो गया। शाहनवाज खाँ अजीमुश्शान के साथ हो गया। युद्ध के दो तीन दिन, जब खूब अशांति मची हुई थी यह उक्त शाहजादे के पास से हटकर जहाँशाह के पढाव के पास से आगे बढा ही था कि उसके आदमियों ने एकाएक आक्रमण कर इसे काट डाला। इसकी इच्छा थी कि युद्ध के दिन जब अजीमुश्शान का काम पूरा हो जाय तब यह शाहजादा जहाँशाह के पास पहुँचे पर इसी विचार के कारण लोगो ने इस पर शंका की और यद्यपि इसने बहुत कहा कि मेरा युद्ध का विचार नहीं है पर किसी ने कुछ न सुना। इसके हाथी पर चढकर शस्त्र चलाए गए। यह किसी की लाभ या हानि मे न रहता था और शरीर से बहुत निर्बल था। इसका कम खाना प्रसिद्ध था। कहते हैं कि इसके लिये एक बर्तन मे थोडा मांस, पुलाव और कलिया तैयार कर देते थे। पेट भर खाने मे यदि कुछ माशे बढ जाते थे तो हर्ज न था पर कुछ तोले होते ही भारीपन आ जाता था।

•

६३१. शाहबिदाग खाँ

यह समरकंद के मियाँकाल के कबीलो में से था। यह हुमायूँ बादशाह की सेवा में रहकर अच्छे कार्य तथा स्वामिप्रिय सेवा करने से सर्दार हो गया। जब अकबर बादशाह हुआ तब युद्धों में बडी वीरता से बहुत प्रयत्न करने के कारण शाही कृपा हो जाने मे यह बराबर उन्नति करते हुए बडे सर्दारो में परिगणित हो गया और तीन हजारी मंसब पाकर सम्मानित हुआ। १०वें वर्ष में मीर मुइज्जुलमुल्क मशहदी

के साथ यह बहादुर खाँ शैबानी पर नियत हुआ। जब युद्ध बराबर चल रहा था तब शत्रु ने पीछे से धावा किया। बहुत से अपनी प्रतिष्ठा पर धूल डालकर हट गए पर शाहबिदाग खाँ ने साहस न छोड़कर सामना किया और घोर प्रयत्न के अनंतर घोड़े से अलग हो जाने पर शत्रु द्वारा यह पकड़ा गया। इसका पुत्र अब्दुल् मतलब खाँ दृढ़ न रहकर सर्दार के साथ निकल गया। जब १२वें वर्ष में शहाबुद्दीन अहमद खाँ विद्रोही मिर्जाओं को दमन करने के लिये नियत हुआ कि मालवा के उपद्रव को शांत करे तब शाहबिदाग खाँ भी उसके साथ भेजा गया। इसके अनंतर यह सारंगपुर का फौजदार नियत हुआ और बहुत दिनों तक मांडू का शासक रहा। वहीं इसकी मृत्यु हुई और दुर्ग के भीतर दक्षिण की ओर दुर्ग की दीवाल के पास गाड़ा गया तथा अच्छी इमारत बनाकर उसका नीलकंठ[१] नाम रखा और इस शैर को उस पर लिखवाया। शैर का उर्दू रूपांतर:—

तमामे उम्र को मसरूफ आबो गिल से है रखा।
कि शायद साहिबे दिल एक दम मंजिल करे आकर॥

शाहबिदाग ही इसका लेखक तथा कवि था। उसी के नीचे मीर मासूम भक्करी उपनाम 'नामी' ने अपनी हस्तलिपि से यह रुबाई उसी पत्थर पर खोदी है। रुबाई का अर्थ :—

एक उल्लू को तड़के बैठे हुए देखा,
गरवान शाह के मकबरे के कंगूरे पर।
उपदेश रूप मे फरियाद करते हुए कहते,
वह सब ऐश्वर्य क्या हुआ? वह शान कहाँ गया?

उक्त प्रासाद में बहुत खुलता स्थान था। सन् १०२६ हि० (सन् १६१८ ई०) में यह स्थान जहाँगीर के आने से सुशोभित हुआ। जहाँगीर ने शुक्रवार की कई रात्रि महल के लोगों के साथ मकान में व्यतीत किया। उसी वर्ष मांडू में बादशाह की आज्ञा से मांडू के सुलतानों के निवासस्थान को बढ़ाकर आकर्षक इमारतें तैयार की गईं।

यह दुर्ग पहाड़ के ऊपर स्थित है। जहाँगीर की आज्ञा से नाप करने पर उसका पूरा घेरा दस कोस था, पर अकबरनामा में १२ कोस लिखा हुआ है। स्यात् गज में कमी होने से यह विभिन्नता आ गई है। यह मालवा प्रांत के बड़े नगरों मे से एक है और कुछ दिन वहाँ की राजधानी भी रही थी। अभी भी गोरी तथा खिलजी सुलतानो के चिह्न बचे हुए हैं। सुलतान होशंग गोरी के मकबरा पर का गुंबद पत्थर व मसाले का है और आठ पहल का मीनार पत्थर का बड़ा सुंदर और इमारत के योग्य बना हुआ है। उसकी छत से गर्मी में पानी टपकता है। बहुत पहले से मूर्ख लोग उसकी फेरी देते हैं और सुलतान की

करामात समझते हैं। बुद्धिमान जानते हैं कि बात क्या है? प्रकट में पथरीले तहखानो की हवा सील मे तर ऊपर उठकर जल मे बदल जाती है और टपकती है। दूसरे कब्रिस्तान में खिलजी सुलतान आराम करते हैं। जब जहाँगीर को ज्ञात हुआ कि सुलतान गियासुद्दीन खिलजी के पुत्र सुलतान नसीरुद्दीन ने राज्य के लोभ मे अपने पिता को विष दे दिया था तब उसने आज्ञा दी कि उसकी हड्डियाँ निकालकर नर्मदा मे फेंक दें। मिट्टी मे सिवा हड्डी के टुकडो के कुछ नही मिला[२]।

•

६३२. शाहबेग खाँ अर्गून

यह इब्राहीम बेग चरीक का पुत्र तथा खानदौराँ पदवी मे प्रसिद्ध था। यह आरंभ में मिर्जा मुहम्मद हकीम का नौकर था और पेशावर की अध्यक्षता पर नियत था। मिर्जा की मृत्यु पर जब राजा मानसिंह आज्ञानुसार उस मृत का सामान तथा संपत्ति लाने के लिये सिंध नदी पार उतरा तब शाहबेग काबुल से बाहर निकल मिर्जा के पुत्रो के साथ बादशाही सेवा मे चला आया और इसने खुशाब जागीर में पाया। ठट्टा के विजय मे खानखानाँ के साथ रहकर अच्छे कार्य तथा सुप्रयत्न दिखलाकर इसने ढाई हजारी मंसब पाया। ३९वें वर्ष में जब मिर्जा मुजफ्फर हुसेन कंधारी सफवी ने बादशाही सेवा मे आने की प्रार्थना की तब शाहबेग खाँ बंगश से कंधार के शासन पर नियत हुआ। काफिर जाति पर आक्रमण करने से, जो बहुत समय से डाके डालकर प्रजा को पीडा पहुँचा रहे थे, इसने बडी वीरता दिखलाई जिससे इसका मंसब साढे तीन हजारी हो गया।

जहाँगीर के राज्य के प्रथम वर्ष में हिरात के शासक हुसेन खाँ शामलू ने अकबर की मृत्यु का समाचार पाकर तथा खुरासान की सेना के साथ आकर कंधार को घेर लिया। शाहबेग खाँ दृढ हृदय तथा साहस के साथ प्रतिदिन सेना ठीककर युद्ध के लिए भेजता था। रात्रि में दुर्ग के ऊपर बैठकर जशन करता था। जिस दिन कजिलबाश का राजदूत दुर्ग मे आया उस समय वहाँ के अन्न का भंडार समाप्त हो चला था। इसने अपनी सरकार से मार्ग व बाजार मे ढेर

१ जहाँगीर का आत्मचरित्र (हिंदी) पृ० ४४५ और ४४९ पर इसका नाम नीलकुंड दिया है और यही नाम ठीक ज्ञात होता है। फारसीलिपि मे कुंड तथा कंठ मे विशेष भिन्नता नही होती। जहाँगीर ने इस स्थान की विशेष प्रशंसा की है।

२. जहाँगीर का आत्मचरित्र पृ० ४३०। इस ग्रंथ मे मालवा तथा इसके नगरो का बहुत वर्णन आया है तथा प्राचीन इतिहास एवं दंतकथाएँ भी दी गई है।

लगवा दिए, जिसमें शत्रु अन्दर न जाने पावें। यह घेरा ईरान के शाह अब्बास सफ्वी की बिना आज्ञा के किया गया था इससे हुसेन खाँ शाही दंड के कारण असफल लौट गया। शाहबेग खाँ आज्ञानुसार सन् १०९६ हि० में कंधार से काबुल पहुँचकर जहाँगीर की सेवा में उपस्थित हुआ और पाँच हजारी मंसब, खानदौराँ की पदवी तथा काबुल की प्रांताध्यक्षता के साथ अफगानिस्तान का अधिकार पाकर हसन अब्दाल से अपने प्रांत को चला गया। बहुत दिनों तक यह वहाँ का प्रबन्ध देखता रहा। अवस्था अधिक हो जाने से शरीर से निर्बल होने पर तथा सवारी करने और दौड़ने में (जो काबुल प्रांत मे अनिवार्य है) अयोग्य हो जाने पर यह दरबार बुला लिया गया और ठट्टा का सूबेदार नियत हुआ। १४ वें वर्ष में वार्धक्य तथा अधिक आयु हो जाने से सेवा से त्यागपत्र दे दिया। जहाँगीर ने पुरानी सेवा के विचार से खुशआब पर्गना, जो इसकी पुरानी जागीर थी और जिसकी आय पचहत्तर हजार रुपए थी, इसे व्यय के लिए प्रदान किया।

कहते हैं कि जब यह ठट्टा जाता था तब आसफ खाँ इसे विदा करने आया। उसने अपने मुसाहिब ठट्टा के मुल्ला मुहम्मद के भाइयों के लिए सिफारिश की। शाहबेग खाँ सुन चुका था कि मुल्ला के भाई लोग इसकी संरक्षता के कारण शासकों को कुछ नहीं समझते थे इसलिये इसने उत्तर दिया कि यदि उनका हिसाब ठीक है तो अच्छा है, नहीं तो खाल खिचवा लूँगा। आसफ खाँ यह सुनकर अत्यन्त अप्रसन्न हुआ और अन्त में यही इसके कार्यों के बिगड़ने तथा मंसब और जागीर के छिन जाने का कारण हुआ। शाहबेग खाँ तुर्क था और सादा सैनिक था। अकबर के राज्यकाल में कंधार जाते समय शेख फरीद मीरबख्शी ने इसे खड़ाकर डंका व झंडा की प्राप्ति के लिए तस्लीम करने को कहा तब इसने शेख से कहा कि ये सब किस काम में आवेंगे, अगर मंसब बढ़ावें या जागीर देवें तो बादशाही कार्य के लिये दूसरे और सवार तैयार रखूँ। प्रसिद्ध है कि जहाँगीर बादशाह के सामने दरबार में इसने कहा था कि हजरत आपके पिता के दंगल में कुछ ऐसे जवान खड़े थे कि शाहबेग उसके अंडकोष के बाल के बराबर नहीं था और अब इन खड़े हुए आदमियों में कोई भी शाहबेग के अंडकोष के बराबर नहीं है। मदिरा की हवा मे खतरा है। यह कहता कि सुराही दृष्टि मे हो चाहे संसार न हो। यह शराब मे भंग अफीम तथा पोस्ता का दाना मिलाकर खाता था और इसका नाम चार लगजा रखा था। आदमी लोग भी इसे शाहबेग खाँ अन्धा चार लगजाखोर कहा करते थे। इसके पुत्रों मे से मिर्जा शाह मुहम्मद, जो गजनी खाँ भी कहा जाता था, अपने समय का गुणी तथा विद्वान् था। वह एक हजारी मंसब तक पहुँचकर मर गया। दूसरा याकूब बेग मिर्जा जाफर आसफखाँ का दामाद था। यह ओछों का साथी था। इसने उन्नति नहीं की।

६३३. शाहबेग खाँ उजबक

जहांगीर के समय बादशाही मसब पाकर यह एक हजारी ४०० सवार तक पहुँचा था और शाहजहाँ के १म वर्ष में खाँ की पदवी पाकर जुझार सिंह बुन्देला को दंड देने के लिये अब्दुल्लः खाँ बहादुर के साथ भेजी गई सेना मे नियत था। २ रे वर्ष पांच सदी २०० सवार इसके मंसब मे बढाए गए। ३ रे वर्ष में इसने झंडा पाया और इसका मंसब बढकर दो हजारी १००० सवार का हो गया। इसके बाद २०० सवार और चौथे वर्ष में ३०० सवार बढे तथा ६ ठे वर्ष में इसका मंसब बढकर दो हजारी २००० सवार का हो गया। इसके अनंतर इसे एक हजारी १०१० सवार की तरक्की मिली। ९ वें वर्ष में साहू भोंसला को दंड देने और आदिलशाही राज्य में लूटमार करने के लिए नियुक्त की गई सेना में खानजमाँ के साथ नियत होकर यह बाएँ भाग का सर्दार हुआ। बीजापुर प्रांत रायबाग पहुँचने पर इसने शत्रुओं को मारने बांधने तथा कैद करने में बहुत प्रयत्न किया। १० वें वर्ष में इसका मंसब बढकर चार हजारी ३००० सवार का गया और इसे जुनेर दुर्ग की अध्यक्षता मिली। १५ वें वर्ष में इसे डंका मिला और इसके उपरात यह बिहार प्रात का शासक बनाया गया। १८ वें वर्ष में यह दरबार मे उपस्थित हुआ। इसी वर्ष प्रकट में यह मेवात का फौजदार नियत हुआ, ऐसा बादशाहनामा का लेखक लिखता है। १९ वें वर्ष में यह मेवात से आज्ञानुसार आकर शाहजादा मुरादबख्श के साथ बल्ख व बदख्शाँ विजय करने के लिये नियत हुआ। २० वें वर्ष में इहतमाम खाँ के स्थान पर यह गोर का दुर्गाध्यक्ष हुआ[1] और वहाँ के विद्रोही उजबकों तथा उपद्रवी अलमानों को दंड देने में इसने बड़ी वीरता तथा साहस दिखलाया। २१ वें वर्ष में गोर से लौटकर दरबार आया। मेवात की फौजदारी इसके न रहने के समय दूसरे को देदी गई थी इसलिए इसे बरार प्रांत के कुछ महाल जागीर में देकर इसे दक्षिण में भेज दिया। २८ वे वर्ष में यह वहाँ से हटाया गया। २० वें वर्ष में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ यह हैदराबाद के सुलतान कुतुबुल्मुल्क को दंड देने के लिए गया। वहाँ का कार्य निपटने पर कुछ अन्य मसबदारो के साथ यह तीन सहस्त्र सेना सहित बादशाही राज्य की सीमा पर वर्षा के अन्त तक ठहरने के लिए नियत हुआ। इसके अनन्तर जब समय पलटा और नीले आकाश ने नए रंग दिखलाए, उक्त शाहजादा पिता की बीमारी का बहाना बनाकर दरबार चला तब इसे औरंगाबाद के बाहरी भाग की फौजदारी सौंपा गया। इसके बाद का हाल नही प्राप्त हुआ।

---

१. गोर के निवासियों के साथ इहतमाम खाँ सुव्यवहार नही करता था इसलिए वह उस पद से हटाया गया था।

६३४. शाह मंसूर शीराजी, ख्वाजा

आरंभ मे यह अकबरी सेवको में भर्ती होकर खुशबू खाना का मुशरिफ (हिसाब लेखक) नियत हुआ। दीवान मुजफ्फर खाँ[1] ने मनोमालिन्य आ जाने के कारण इसक कार्य को उलट दिया। एक दिन मुजफ्फर खाँ से मौखिक झगडा करने पर यह स्वयं अपने को कठिनाई में पड़ा हुआ समझकर निराश हो गया। असफलता के साथ यह जौनपुर जाकर अपनी योग्यता से (अली कुली खाँ) खानजमांका दीवान हो गया। इसके अनंतर यह मुनइमखाँ के पास पहुँचा और उसके यहाँ भी कार्य करने लगा। जब उक्त सेनापति का कार्य पूरा हो गया, उस समय राजा टोडरमल ने सरकारी हिसाब के लिये इसे कैद कर लिया। यह खान, खानाँ की दीवानी के समय उसी के कार्य से दरबार आया करता था और इसकी बातचीत तथा गंभीरता से इसकी योग्यता तथा अनुभव बादशाह पर प्रकट हो चुका था, इस कारण जब यह वहाँ से आया तब बिना मध्यस्थता के २१वें वर्ष सन् ९८३ हि० में इस पर कृपा हुई और यह वजीर नियत हुआ। ख्वाजा ने अपनी समझदारी योग्यता तथा अनुभव से कामों को इस प्रकार सुसंगठित किया कि बहुत से पुराने मामिले तै हो गए। इस कारण कि इसका नियम पहले से यह था कि प्रतिवर्ष कुछ योग्य तथा अनुभवी कर्मचारी हर प्रांत और परगने की आय का विवरण लाने को नियत होते थे और प्रतिवर्ष दीवानी कर की रकम उसी के अनुसार अदा करने के लिये निश्चित करते थे, परंतु साम्राज्य के बहुत बढ़ जाने से इस प्रकार काम करने में बडी कठिनाई होने लगी। इस प्रकार ब्योरा लिखे जाने से काम भी वढ़ गया और सेना तथा प्रजा में हानि उठाने पर तथा बाकी पड़ने पर उपद्रव मचा। साथ ही वास्तविक निर्खें भी ठीक समय पर न पहुँच सकी। तब ख्वाजा ने २४वें वर्ष में हर परगने का दससाला विवरण बनवाया और उससे निर्ख आदि जाँचकर तथा उसी से प्रतिवर्ष का हिसाब लगाकर कर निश्चय करने का प्रबंध किया। इसी वर्ष ख्वाजा की संमति से कुल आबाद हिन्दुस्तान बारह भागों में बाँटा गया। उस समय तक उड़ीसा, कशमीर, ठट्टा और दक्षिण विजय नहीं हुआ था। प्रत्येक भाग का सूबा नाम रखकर हर एक के लिये सिपहसालार, दीवान, बख्शी, मीर अदल, सदर, कोतवाल, कीर बहर और वाकिआ नवीस नियत किए गए।

ख्वाजा प्रयत्न, मितव्यय तथा कड़ाई मे बहुत बढ़कर था, इसलिये २५वें वर्ष मे पहले के बाकी हिसाब को लौटाने का इसने प्रयत्न किया। बगाल प्रांत की वायु घोडो के लिये अनुकूल न थी इसलिये वहाँ की सेना मे दस के बदले बीस और बिहार की सेना मे १० के बदले पद्रह घोड़ो के व्यय अधिक दिए जाने लगे थे।

ख्वाजा ने इतने अनुभव तथा योग्यता के रहते हुए भी नासमझी से तथा अवसर का ध्यान न कर शांति के समय तथा युद्धकाल मे कुछ भी भिन्नता न समझी और यह न सोचा कि जिस समय सेना दूर की चढ़ाई मे प्रयत्नशील हो उस समय वह रिआयत तथा उदारता दिखलाने के योग्य है न कि कंजूसी तथा कमी करने के। उसने बंगाल में दस से पंद्रह और बिहार में दस से बारह निश्चय कर बाकी को लौटाने के लिये मुजफ्फर खाँ को आदेश लिख भेजा। वह भी दीवानी से सिपहसालारी के पद पर पहुँचा था इसलिये वर्ष के आरंभ से हिसाब कर उसने बहुत सा धन बाकी निकाल कर माँगा। बिहार तथा बंगाल के सरदार गण इस अनुचित कमी करने तथा अनुचित माँग से एक बार ही बिगड़कर विद्रोह कर बैठे और इससे क्या क्या उपद्रव नही हुआ और क्या क्या मारकाट नहीं हुई। राजा टोडरमल ने, जो इसके समान ही तथा एक व्यवसाय के होये के वैर से अवसर देख रहा था, इस समय प्रार्थना की कि वजीर को चाहिए कि सचाई से मालविभाग के काम, सेवको पर दृष्टि रखते हुए, करे और समय का विचार न छोड़कर देने लेने तथा कडाई नरमी मे मध्य का मार्ग ग्रहण करे। यह नही चाहिए कि पूरा ही वसूल करने का हठ करे, जिससे कठिनाई उठाने पर भी सिवाय बाकी पडने तथा उसके बढ़ने के कुछ काम नही होता।

तबकात (अकबरी) से प्रगट होता है कि राजा टोडरमल ने पूर्वीय प्रांत से एक प्रार्थनापत्र भेजा कि उसने मासूम खाँ फरनखूदी को अनेक उपाय से अपने साथ मिला रखा है और ख्वाजा शाह मंसूर ने उसे कड़े पत्र लिखकर बहुत सा धन उसके जिम्मा निकाला है। इसी प्रकार तरसून महम्मद खाँ को भी लिखा है, जो एक बड़ा सरदार तथा सेना का अध्यक्ष है। ऐसे समय कि जब सैकड़ों आशाएँ दिलानी चाहिए, इस प्रकार की धमकी क्या उचित थी? इस पर बादशाह ने ख्वाजा को हटाकर शाहकुली खाँ महरम को यह पद कुछ दिनो के लिए दे दिया, परंतु जब इसकी हितैषिता तथा परिश्रम को बादशाह ने समझ लिया तब फिर से इसे वजीर के पद पर नियत कर दिया।

दैवयोग से इसी वर्ष मिर्जा मुहम्मद हकीम ने बिहार तथा बंगाल के बल्वाइयों के सरदार मासूम खाँ आसी के बहकाने पर काबुल से आकर पंजाब मे उपद्रव करना आरंभ किया। अकबर ने उस ओर जाने का विचार किया। इसके शत्रुओ ने मिर्जा हकीम के मुंशी के लिखे हुए ख्वाजा के नाम के कुछ परवाने बादशाह को दिखलाकर उसके मन में इसपर शत्रु के प्रति पक्षपात की आशंका उत्पन्न करा दी। संयोग से मिर्जा का एक पुराना सरदार तथा दीवान मलिक सानी, जिसे वजीर खाँ की पदवी मिली थी, इस समय उससे अलग होकर सोनपत के पडाव पर सेवा मे आया और पहले के परिचय के कारण ख्वाजा के पास आकर ठहरा। यह

प्रसिद्ध हो चुका था कि वह जासूसी के लिये आया हुआ है, क्योंकि जब मिर्जा हिन्दुस्तान पर अधिकार करने आया है तब उसका अलग होकर भेजा जाना भेद से खाली नही हैं। इस कारण उक्त पहली शंका पर विश्वास हो गया और पूछने पर ख्वाजा की कुछ बातों से आशंका निश्चय में परिणत हो गई। इसी समय मिर्जा हकीम के ख्वाजा के नाम लिखे हुए जाली पत्र बादशाह को दिखलाए गए और इसके आमिल शरफ बेग का पत्र भी आ पहुँचा। जब वह खोला गया तो उसमें लिखा हुआ था कि मैं खान मिर्जा फरेदूँ खाँ की सेवा में गया, जो मुझे मिर्जा हकीम के पास लिवा गया। कर लगाए हुए कुल परगनो मे से मेरे परगना को माफ रखा है। कहते हैं कि अभी बादशाह इन बातो पर विचार कर रहे थे कि सरदारों तथा दरबारियो के प्रयत्न से यह हुकुम दे दिया कि जब तक ख्वाजा जामिन न दे तब तक उसे कैद में रखो। जब किसी ने जामिन होने का साहस नहीं किया तब सराय कोट खजवा के पास एक पेड से लटकाकर इसे फाँसी दिलवा दी। 'सानी मंसूर हिलाज' से तारीख निकलती है।[१] हिसाब की इसकी कडाई से छुट्टी पाने के कारण तुर्क और ताजिक लोग बड़े प्रसन्न हुए। कहते है कि जब मिर्जा महम्मद हकीम के पराजय पर बादशाह राजधानी काबुल मे गए तब शाह मंसूर के सम्बन्ध में बहुत कुछ जांच करने पर उसके विरुद्ध कुछ पता न चला। कहते हैं कि शहबाज खाँ कम्बू के भाई करमुल्ला ने कुछ लोगो के, विशेष कर राजा टोडरमल[२] के संकेत पर वे परवाने बनाए थे। अकबर ने इस अकारण प्राण-दंड से ऐसे अनुभवी सेवक के उठ जाने पर बहुत शोक किया और कहा कि उस दिन से, जिस दिन ख्वाजा मरा, हिसाब भी मर गया तथा हिसाब किताब का सिलसिला बिगड गया। ऐसा सुलेखक, बुद्धिमान तथा उचित वक्ता कम मिलेगा। यह एक हजारी मंसब तक पहुँचा था। चार वर्ष तक दृढता तथा योग्यता से काम करने पर यह वजीर हो गया था। सूचना—

पुरानी प्रथा है कि कार्यकर्ता कितना ही अधिक काम मे व्यस्त रहता रहा हो पर समझ और अनुभव किसी को होती है। पास बैठनेवाले कितना भी अच्छा बर्ताव करें पर स्वार्थ और अपने काम से खाली नही रहते। वे व्यवहारकुशल सच्चे आदमियो को ईर्ष्या द्वेष से दूसरे प्रकार का प्रकट कर उसके प्राण लेने की घात में रहते हैं। विचित्र तो यह है कि वह सचाई के घमंड मे इधर उधर दृष्टि न डालकर

---

१. सन् ९८९ हि०, सन् १५८१ ई०। तारीख का अर्थ है—मंसूर द्वितीय धुनिया।

२. कट्टर मुल्ला बदायूनी ने टोडरमल के विरुद्ध इस सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है।

निश्चिन्तता तथा बेपरवाही में रह जाता है। शीघ्र ही उसे मालूम होता है कि वैसे मध्यगण संसार के बड़े बड़े काम बिना छिपाए हुए तथा आलस्य से पूरे नहीं कर सकते प्रत्युत् अधिक स्पष्टता तथा गुप्तभेद से बड़े बड़े कार्य बिगड़ जाते हैं। सिराग का उर्दू रूपांतर—

सत्य पकड़े है रहो उन मर्दुमाने सत्य भी।

ऐसे ही अवसर के लिए कहा है कि संसार दो पैर पर स्थिर है—सत्य और झूठ तथा वह एक पैर पर खड़ा नहीं हो सकता। यह हिसाब में गलती निकालना तथा वास्तविकता की कठिनाइयों को बताना है और नहीं तो वह जादू करनेवाली बहुत, जो ऐश्वर्य तथा संपत्ति की इच्छा से संतोष तथा सचाई को दबाकर उन मनुष्यों पर, जो ईश्वर की विचित्र अमानत हैं, कड़ाई करने तथा कष्ट देने में अपने स्वामी की एकमात्र प्रसन्नता का ध्यान रखती है, हर तरह भाग्य से पराजित लोगों को थोड़े ही समय में शत्रुता की ओर आगे बढ़ाकर उनके रोष तथा क्रोध का एकदम उसे पात्र बना देती है। मिरज़—उर्दू रूपांतर—

न हो कारे दुनिया में तू सख्तगीर।
है हर सख्तगीरी बड़ी सख्त 'मीर'॥
गर्म जेरदस्ती उठा मत कभी।
डरा कर जमाने से, है सख्तगीर॥

६३५. शाह मुहम्मद खाँ किलाती

कंधार प्रांत के अंतर्गत हजारजात के बीच में किलात एक दुर्ग है, जिसका कोष में प्रथम अक्षर वास्तव में काफ अर्थात् क से लिखा हुआ है पर साधारणतः वह काफ अर्थात् क से प्रसिद्ध है। शाह मुहम्मद खाँ बैराम खाँ के सेवकों में से एक था और अपनी बुद्धिमानी से उसका कृपापात्र हो गया था। जिस समय हुमायूँ हिंदुस्तान विजय करने के लिये रवाना हुआ तब बैराम खाँ ने कंधार का प्रबंध इसी को सौंपा, जो उसकी जागीर में था। यह भी वहाँ का शासन दृढ़ता से करता रहा। जब जमींदावर का जागीरदार खानजमाँ का भाई बहादुर खाँ शैबानी राजद्रोह से कंधार ले लेने की इच्छा से कपट और धोखे से बहुत आदमियों को मिलाकर घात में बैठा तब शाहमुहम्मद ने इसकी सूचना पाकर उस झुंड को भगा दिया। बहादुर खाँ जब इस बहाने से कार्य पूरा न कर सका तब उसने सभी खबर लाकर सेना इकट्ठी की और लड़ने को तैयार हुआ। शाह मुहम्मद ने यह देखकर

कि हिन्दुस्तान से सहायता का आना कठिन है, इसने ईरान के बादशाह शाह तह्मास्प शाह से प्रार्थना की और लिखा कि हुमायूं बादशाह तथा उस शाह से यह निश्चय हुआ था कि हिंदुस्तान विजय करने पर कंधार उसके सवारों को सौंप दिया जायगा। इसलिये इस समय यही उचित है कि सेना भेजी जावे जिससे वह उस राजद्रोही के विद्रोह को शांत कर सके और कंधार उन्हें सौंप दिया जाय। शाह ने सीस्तान, फराह तथा गर्मसीर के जागीरदारो के तीन सहस्त्र तुर्कमान सवारों को अलीयार बेग अफशार की सरदारी मे भेज दिया। बहादुर खाँ को इस सेना की सूचना न थी और उसने एकाएक इसके ऊपर धावा किया और घोर युद्ध हुआ। अंत मे बहादुर खाँ काम पूरा न कर सका और भागा। वह जमींदावर तथा उसके आसपास भी न रह सका और लज्जित हो हिंदुस्तान की ओर चल दिया। शाहमुहम्मद ने सहायको की खूब आवभगत की तथा दुर्ग न देने के लिये बहुत कुछ कह सुनकर उन्हें कोरे लौटा दिया।

जब ईरान के शाह ने सुना कि शाहमुहम्मद किलाती ने अपना वचन पूरा नहीं किया तब उसने अपने भतीजे सुल्तान हुसेन मिर्जा को, जो बहराम मिर्जा का पुत्र था, और हुसेन बेग एचक उगली इस्तजलूल्लाह तथा वली खलीफा शामलू को कंधार लेने के लिये भेजा। शाहमुहम्मद ने दुर्ग रक्षा का प्रबंध किया। जब दुर्ग का घेरा बहुत दिन चला तब सुल्तान हुसेन मिर्जा दुखी होकर दुर्ग से हट गया। शाह ने क्रुद्ध होकर मिर्जा को शीराज के हाकिम अली सुल्तान के साथ फिर भेजा कि जिस प्रकार हो सके दुर्ग पर अधिकार करें। अली सुलतान इस कार्य के लिये बहुत बहक चुका था इसलिये इसने दुर्ग लेने का बहुत प्रयत्न किया पर तीर व गोली लगने से वह मर गया, जिससे ईरानी सेना मे गड़बड़ी मच गई। मिर्जा को न लौट जाने मे और न रहने मे कोई चारा था इसलिये वह दुर्ग के चारो ओर बैठा हुआ समय व्यतीत करने लगा। जब यह सब वृत्तांत शाहमुहम्मद के लेख से अकबर को मिला तब उत्तर मे यह आज्ञा आई कि शाह हुमायूं कहते थे कि जब हिंदुस्तान विजय कर लूंगा तब कंधार शाह को दे दूंगा। यह अच्छा नहीं हुआ कि इन मनुष्यो से यहां तक लड़ाई हो गई। अब यही उचित है कि दुर्ग को शाह के आदमियो को सौंप दो और प्रार्थना कर हिंदुस्तान चले आओ।

आलमआरा के लेखक[1] का विवरण इस विवरण से कुछ भिन्न है और वह लिखता है कि शाह मुहम्मद किलाती के पहले प्रार्थनापत्र पर ईरान के शाह ने सुल्तान हुसेन मिर्जा को वली खलीफा शामलू के पुत्र शाह वर्दी ने सेना के साथ असावधान बहादुर खाँ पर धावा किया और वह हार गया तब शाह मुहम्मद बहाने से दुर्ग की रक्षा करता रहा। कजिलबाश सर्दारगण ने जमींदावर पर

---

१. मुंशी सिकंदर कृत आलमआराए सिकंदरी से तात्पर्य है।

अधिकृत होकर शाह को यह वृत्तांत लिख भेजा। शाह ने सन् ९६५ हि० में अली सुलतान द्वितीय उगली जुलकद्र को भारी सेना के साथ कंधार लेने को भेजा और इसकी अध्यक्षता पर सुलतान किलाती छ महीने तक लड़ता रहा। जब किसी ओर से कोई सहायता न पहुँची तब इसने शरणप्रार्थी होकर और प्रतिज्ञा लेकर दुर्ग सौंप दिया और हिंदुस्तान की ओर रवानः हो गया।

ज्ञात होता है कि ईरान तथा हिंदुस्तान के इतिहासकारों ने अपना अपना पक्ष लेकर लिखा है। इन दोनों वृत्तांतों में कौन ठीक है यह नहीं कहा जा सकता।

संक्षेप में शाह मुहम्मद किलाती तीसरे वर्ष के अंत में अकबर की सेवा में पहुँचकर बादशाही कृपा का पात्र हुआ और दोहजारी मंसब तथा खाँ की पदवी पाई। १२वें वर्ष में कोठ दुर्ग तथा उसके चारों ओर की भूमि का अध्यक्ष नियत हुआ। १७वें वर्ष में जब खानआजम कोका और मुहम्मद हुसेन मिर्जा से गुजरात की सीमा पर युद्ध हुआ तब यह बादशाही सेना के बाएँ भाग में नियत था, जहाँ घायल होने से यह हट गया। अहमदाबाद पहुँचकर यह वहाँ से भाग गया। इसका पुत्र आदिल खाँ था, जो पहले अदहम खाँ कोका[1] के साथ मालवा की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ था। इसके अनंतर मुहम्मद कुली खाँ बर्लास के साथ इसकंदर खाँ उजबक पर भेजा गया, जिसने अवध में विद्रोह मचा रखा था, और दुर्ग चित्तौड़[2] के घेरे में भी इसने बड़ी वीरता दिखलाई। १३वें साल के आरंभ में एक दिन बादशाह ने शिकार खेलते हुए शेर को बंदूक की गोली से घायल किया। शेर क्रुद्ध होकर आगे आया। बादशाह यह देख रहे थे कि अवसर मिले तो दूसरी गोली मारें पर शेर बादशाह की ओर नहीं आया। तब दस्तम खाँ को आज्ञा हुई कि आगे जाकर शेर को इस ओर मोड़े। आदिल खाँ ने, जो उस समय दंडित था, यह समझकर कि यह आज्ञा आम है तीरधनुष लेकर फुर्ती की। दैवयोग से इसकी चलाई हुई तीर ठीक नहीं लगी और आक्रमण करता हुआ शेर से जा भिड़ा। इसने बायाँ हाथ शेर के मुख में डालकर दूसरे हाथ से खंजर निकालना चाहा पर दैवकोप से उसके मियान का बंद कसकर बैठ गया था। उसके खींचते तक उस शेर ने आदिल का हाथ खा डाला। इसके अनंतर खंजर खींचकर शेर के मुँह पर दो चोटें मारी तब शेर ने उसके दाहिने हाथ को भी मुख में पकड़ लिया। इसी बीच दूसरे मनुष्यों ने पहुँचकर तलवार से उस शेर का काम समाप्त कर दिया। इसी में आदिल को भी चोट लगी। चार महीने तक शैया पर पड़ा रहकर यह मर गया।

---

१ यह छठे वर्ष सन् ९६८ हि० में मालवा के युद्धों में लड़ा था और ९वें वर्ष में अब्दुल्ला खाँ उजबेग के साथ गोंडवाना गया था।

२. यह बादशाह अकबर के साथ चित्तौड़ गया था।

कहते हैं कि इसने दुश्शीलता से अपने पिता के दीवान की स्त्री से सम्बन्ध करना चाहा पर उसने अपना धर्म देना उचित नही समझा। इसके पिता ने इस विषय में इसे मना किया तथा समझाया। इसने इस उपदेश के बदले मे पिता पर तलवार चलाई। कैसा पत्थर सा हृदय तथा कैसी कृतघ्नता थी ! शाखा को तने से काटना अपने पैरो पर कुल्हाडी मारना है और बड़ो के संमान को अपने से छोडना लज्जा के कूएँ मे गिरना है। शेर का अर्थ—

अपने कर्म के बदले से निश्चिंत मत हो।
गेहूँ गेहूँ के साथ जाता तथा जौ जौ के साथ जाता है ॥

शाह मुहम्मद के द्वितीय पुत्र का नाम कियाम खाँ था। जहाँगीर के राज्यकाल मे खाँ की पदवी पाकर यह बहुत दिनो तक करावल के पद रहा।

यह छिपा नही है कि दुर्ग कंधार बहुत समय तक सफवी राजवंश तथा तैमूरिया राजवंश के बीच झगडे में पडा हुआ था। कभी वह इस वंश के अधिकार में रहता था तो कभी उस वंश के। यह निश्चय है कि बाबर अर्गूनो से इसे विजय कर चगत्ताई वश के अधिकार मे लाया था। परन्तु इस कारण कि यह प्राचीन काल से खुरासान के सुलतानो के अधिकार मे था और हुमायूँ ने ईरान के शाह को भेंट कर देने का वचन दिया था, इससे सफवी सुलतान यदि इस पर अपना स्वत्व प्रकट करें तो ठीक है। परन्तु बुद्धिमानो ने काबुल तथा कंधार को हिंदुस्थान का दो फाटक कहा है, जिसमे से एक तूरान का दूसरा ईरान का है तथा ऐसी अवस्था में हिंदुस्तान के इन दोनो फाटको की रक्षा दूसरो के हाथ मे रहना ठीक नही है इसलिए इनका अधिकार गृह के स्वामी के पास ही रहना उचित तथा आवश्यक है विशेषकर जब काबुल के हिंद के बादशाहो के हाथ में है तब कंधार भी इन्ही के हाथ में होना चाहिए। ऐसी अवस्था में जब तक गृहस्वामी अपनी होश में है तब तक ऐसा ही होता है। नही तो असतर्क रहने पर गृह तथा उसकी अधीनस्थ भूमि अपने में कुछ नही है। जैसा कि देखा ही गया कि नादिरशाह इन दोनो को एक कर के दिल्ली चला आया और जो होना था सो हुआ।

यद्यपि कंधार दुर्ग के शासन संबंध मे जितने हेरफेर हुए थे वे ही इन पृष्ठो में लिखे गए हैं पर कुल घटनाएँ यहाँ एकत्र लिख दी जाती है। यह प्रात खुरासान के शासक सुलतान हुसेन मिर्जा और उसके पुत्र बदीउज्जमाँ के समय में अमीर जुन्नून अर्गून तथा उसके पिता शुजाअबेग के अधिकार मे था। मिर्जा की घटना के बाद तथा उस वश के दमन होने पर जब खुरासान शैबानी खाँ उजबक के हाथ मे गया तब शुजाअबेग उसकी सेवा मे पहुँचकर उसका कृपापात्र हुआ। उसी वर्ष बाबर ने कंधार पर चढाई की और युद्ध के अनंतर उसपर अधिकार कर अपने भाई नासिर मिर्जा को दे दिया और स्वय काबुल लौट गया। जब शैबानी खाँ को यह

हाल मालूम हुआ तब वह कंधार पर चढ आया। नासिर मिर्जा कुछ दिन दुर्ग में बैठा रहा पर फिर उस प्रांत को छोडकर चला गया। शैबानी खाँ यह प्रांत पुनः अर्गूनियों के हाथ मे देकर लौट गया। इसके अनंतर जब खुरासान शाह इस्माइल सफवी के अधिकार में चला गया तब शुजाअवेग शाह की सेवा में चला आया। हिरात के वेगलर वेगी के साथ यह लौटकर आ रहा था कि बाबर ने दूसरी बार आकर कंधार घेर लिया। शुजाअवेग हिरात के वेगलरवेगी खान शामलू से प्रार्थी हुआ। उसने बाबर की सेवा मे प्रार्थना कराई कि शुजाअवेग शाह की सेवा मानना कहता है। बीच की सचाई का अभाव उसके ऊपर है। इस पर बाबर काबुल लौट गया। शुजाअ वेग मुल्ला बाकी नामक विश्वासपात्र को कंधार में छोडकर स्वयं खुरासान गया। उस अविश्वासी सरदार ने वह प्रांत बाबर बादशाह को सौंप दिया। बादशाह ने उसे अपने पुत्र कामराँ को दे दिया।

इसके अनंतर शाह तहमास्प के राज्यकाल में सन् ९४१ हि० मे शाह के भाई साम मिर्जा अगरेवाज खाँ[1] शामलू के साथ, जो खुरासान का वेगलरवेगी तथा लल्ला मिर्जा था, बिना शाह की आज्ञा लिए या सूचना दिए कंधार पर चढ आया। बाबर के एक सर्दार ख्वाजा कलाँ बेग ने, जो मिर्जा कामराँ की ओर से कंधार का अध्यक्ष था, दुर्ग को दृढकर आठ महीने उसकी रक्षा की। इसी बीच मिर्जा कामराँ ने बीस सहस्र सवार के साथ लाहौर से पहुँचकर साम मिर्जा से घोर युद्ध किया। अगरेवाज खाँ युद्ध में कैद होकर मारा गया और मिर्जा हारकर भाग गया। मिर्जा कामराँ ख्वाजा कलाँ बेग को पहले की तरह वहीं छोड़कर लाहौर लौट गया। सन् ९४३ हि० मे जब शाह छठी बार उबेद खाँ उजबेग को दमन करने के लिये खुरासान आया तब इस कारण कि कंधार की चढाई पर एक अच्छा कजिलबाश सर्दार भारी सेना के साथ मारा गया था, निजी लज्जा तथा संतोषार्थ कंधार की सीमा पर चढ आया। ख्वाजा कलाँ बेग ने तोपखाना, रिकाबखाना आदि कुल कारखानों को ठीक कर दुर्ग की तालियाँ शाह के पास भेज दी और कहलाया कि दुर्गरक्षा का सामान नहीं है और अपने मे युद्ध की शक्ति नहीं है। स्वयं उपस्थित होना स्वामिभक्ति के नियम तथा स्वामी और सेवक के संबंध के स्वत्वों के विरुद्ध है। निरुपाय होकर घर सजाकर अतिथि को सौंप देना तथा स्वयं अलग हट जाना मैंने उचित समझा है। शाह उस प्रांत की अध्यक्षता बुदाग खाँ काचार को देकर एराक की ओर चला गया। जब ख्वाजा कलाँ ओछः के मार्ग से लाहौर आया तब मिर्जा कामराँ ने एक महीने तक उसे कोर्निश करने की आज्ञा नहीं दी कि तुझसे इतना न हो सका कि हमारे पहुँचने तक दुर्ग की रक्षा करता। फिर यह चढाई की तैयारी कर कंधार की ओर चला। जब इसने दुर्ग घेर लिया तब बुदाग खाँ ने देखा कि शाह की ओर से, जो आजरबईजाँ की ओर

---

1. पाठा०—अगरनेवाज खाँ।

रूम के सुल्तान से युद्ध कर रहा है, सहायता न मिलेगी, इससे वह शरण मे आकर एराक चला गया। मिर्जा नए सिरे से दुर्ग को दृढ कर लाहौर लौट गया।

इसलिये कि अफगानों के उपद्रव से हिंदुस्तान मे चुगत्ताइयो का रहना सभव नही रह गया था, मिर्जा कामराँ काबुल चला गया। मिर्जा हिंदाल हुमायूँ से अलग होकर कधार पर अधिकृत हो गया। मिर्जा कामराँ फिर सेना एकत्र कर छः महीने तक दुर्ग घेरे रहा। मिर्जा हिंदाल ने अन्नकष्ट होने पर वचन लेकर दुर्ग दे दिया। मिर्जा कामराँ कंधार अपने दूसरे भाई मिर्ज़ा अस्करी को देकर काबुल चला गया।

जब हुमायूँ ने सन् ९४१ हि० में ईरान जाकर शाह से सहायता माँगी तब उसने वचन दिया था कि जब उसका अधिकार कंधार पर हो जायगा तब वह उसे शाह के सेवको को सौंप देगा। इस कारण पहले कंधार के विजय होते ही उसे बुदाग खाँ काचार, जो हुमायूँ की सहायक कजिलबाश सेना का सर्दार था, और दूसरे सहायक लल्ला सुलतान मुराद मिर्जा को दे दिया। परतु अभी बादशाही काम का पूरा सामान नही हुआ था और चगताई सर्दारो के लिये कोई रक्षास्थल नही था इसलिये कजिलबासियो से कंधार पुनः लेकर बैराम खाँ को सौंप दिया, जो दोनो ओर का हितैषी था। कई वर्ष तक मिर्जा कामराँ के झगडो के कारण काबुल तथा बदख्शाँ मे हुमायूँ स्वस्थ चित्त नही हो सका और हिंदुस्तान के विजय के अनंतर उसे इतना समय न मिला कि ईरान के शाह से उसने जो प्रतिज्ञा की थी वह पूरा कर सके। अकबर के समय मे एक बहाने से, जो पूर्ण हुई, शाह मुहम्मद खाँ किलाती बादशाह की सेवा में चला आया और दुर्ग कधार बादशाही आज्ञा से सुलतान हुसेन मिर्जा के अधिकार मे दे दिया गया। वह सैंतीस वर्ष तक उसके तथा उसकी संतान के अधिकार मे रहा। उसके बडे पुत्र मुजफ्फर हुसेन मिर्जा ने सन् १००३ हि०, चालीसवें वर्ष अकबरी में दुर्ग बादशाही नौकरो को सौंपकर हिंदुस्तान मे नौकरी कर ली। सन् १०३१ हि० मे जहाँगीर के १७वें वर्ष में शाह अब्बास प्रथम ने चालीस दिन के घेरे पर ख्वाजा अब्दुल् अजीज नक्शबदी से कंधार ले लिया, जिसने दुर्ग की रक्षा मे बडी असमर्थता दिखलाई। फिर शाहजहाँ के ११वें वर्ष सन् १०४७ हि० में अलीमर्दान खाँ ने शाह सफी सफवी के क्रोध तथा अत्याचार से डरकर और ईरान के आदमियो की बेपरवाही से सशंकित होकर शाहजहाँ से प्रार्थना कर उसे दुर्ग दे दिया। इसके बाद शाहअब्बास द्वितीय ने २२वें वर्ष शाहजहानी मे भारी सेना लाकर इसे घेर लिया। दो महीने तक युद्ध होता रहा। अब्दुल् कादिर तूनी ने उसी युद्ध में कहा है—शेर का अर्थ दुर्ग को ऊपर नीचे कर दिया, कजिलबाश आगसा और हिंदी धुआँ सा है।

की छुट्टी पाई तब मिर्जा शाहरुख तथा इसकी माता ने अकबर की सेवा में प्रार्थना-पत्र तथा भेंट भेजकर संबंध को दृढ़ किया। मिर्जा सुलेमान हज्ज से एराक के मार्ग से लौटकर मिर्जा मुहम्मद हकीम की सहायता से बदख्शाँ पर सेना चढ़ा ले गया और मिर्जा इब्राहीम के अधिकृतप्रांत पर मिर्जा सुलेमान की नियुक्ति निश्चित होने पर दोनो मे संधि हो गई। परन्तु कभी कभी दोनो के बीच मनोमालिन्य हो जाता था। जब तक मिर्जा की माँ जीवित रही तब तक शीघ्र विरोध दूर हो जाता था तथा आपस का कार्य ठीक हो जाता था। उसकी मृत्यु पर मिर्जा स्वार्थ मे पड गया और सेना की हालत बिगड़ गई। सर्दारगण एक दूसरे की जागीर पर आक्रमण करने लगे। तूरान के शासक अब्दुल्ला खाँ ने, जो अवसर देख रहा था, यह समाचार पाकर बदख्शाँ पर चढ़ाई की और सेवको ने साथ नही दिया, जिससे निराश होकर मिर्जे अपने पूर्वजो के देश को त्यागकर बड़ी कठिनाई से निकल भागे और जब काबुल की सीमा पर पहुँचे तब मिर्जा सुलेमान पहले की लज्जा के कारण हिंदुस्तान नही आया। मिर्जा शाहरुख तीन पुत्र हसन, हुसेन (जोड़ुआँ) तथा बदीउज्जमाँ के साथ हिंदुस्तान की ओर रवाना हुआ। हजाराजात प्रांत में समाचार मिला कि अब्दुल्ला खाँ कोलाबियो से परास्त हो चुका है इसलिए बदख्शाँ पर अधिकार पाने की आशा से वह उस ओर लौटा। इसके बाद जब ज्ञात हुआ कि अब्दुल्ला खाँ कोलाब में दृढ़ता से जम गया है तब यह और भी बुरी दशा मे लौट आया। मिर्जा सुलेमान भी यही समाचार पा काबुल से निकला था, जिससे मार्ग में भेंट हुई और दोनों एक साथ हो गये। इसी समय उजबक सेना ने पहुँचकर इन्हें लूटना आरंभ किया। इसी घबडाहट में मिर्जा सुलेमान का घोड़ा ठोकर खाने से गिर गया। मिर्जा शाहरुख ने उतरकर अपना घोड़ा उसे दे दिया पर वह भी भाग गया। किसी एक साथी ने मिर्जा सुलेमान को अपने घोड़े पर सवार करा दिया। मिर्जा शाहरुख फुर्ती से उस भागनेवाले को पकड़कर निकल गया। इस भागा भागी में उसका एक पुत्र हसन अलग होकर पिता के हृदय पर नया घाव कर गया। जब मिर्जा शाहरुख हिंदुस्तान को चलते हुए घाटियो से बाहर आया तब वह बिछुडा पुत्र मिल गया। सिंध नदी के पास कुँअर मान सिंह और लाहौर में राजा भगवानदास ने इसका आतिथ्य किया। २९ वें वर्ष मे राजधानी मे शाहजादा दानियाल स्वागत कर इसे बादशाह की सेवा में लिवा गया। बादशाही दरबार में यह विशेष संमानित हुआ और इसे एक लाख रुपया नगद; फर्राश खाने का सामान, पाँच हाथी, नौ घोडे तथा कुछ सेवक मिले। ३८ वें वर्ष सन् १००१ हि० के अन्त मे अकबर ने अपनी पुत्री शुक्रुन्निसा बेगम का इससे विवाह कर दिया तथा इसे मालवा का शासन और पाँच हजारी मंसब दिया। शहबाज खाँ कंबूकी अभिभावकता मे यह अपने प्रांत पर भेजा गया। ४०वें वर्ष मे शाहजादा सुलतान मुराद के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुआ।

जब शहबाजखाँ अहमदनगर से हटाये जाने पर मालवा आया तब उस प्रांत के उज्जैन तथा अन्य बड़े स्थान शहबाजखाँ से लेकर मिर्जा शाहरुख को वेतन में दिया गया। शाहजादा बालपुर बरार मे ठहरा। बादशाही सेना मिर्जा शाहरुख को सर्दारी तथा खानखानाँ के सेनापतित्व में ४१ वें वर्ष में दक्षिण के तीनों सुलतानो की सेनाओ के सामने पहुँची, जो ख्वाजा सुहेलखाँ बीजापुरी की सेनाध्यक्षता मे युद्ध के लिये तैयार थी। घोर युद्ध हुआ और खानदेश का शासक राजा अली खाँ, जो बादशाही सेना के बाएँ भाग का सर्दार था, बहुतो के साथ मारा गया। बहुतो का साहस छूट गया। राजपूत सर्दारगण दूर जाकर खड़े हो गये। मिर्जा शाहरुख तथा खानखानाँ ने सेना को अपने बीच बराबर रखकर घोड़े ही पर रात्रि व्यतीत किया। शत्रु के अधिकतर सरदारो को साथियो के सहित मार डाला और बचे हुए भाग गए। ४३वें वर्ष सन् १० ७ हि० में आज्ञा मिलने पर यह दरबार गया। इसी वर्ष शेख अबुल् फ़जल दक्षिण भेजा गया और मिर्जा को झंडा व डंका प्रदान कर मालवा मे नियत किया गया कि वहाँ जाकर सेना का सामान ठीक करे। जब दक्षिण फिर जाना हुआ तब यह शीघ्र वहाँ पहुँचा और इसने बादशाही सेवा मे कुछ भी प्रयत्न उठा न रखा। जब शाहजादा सुल्तान दानियाल अहमदनगर के विजय पर बुर्हानपुर पिता के पास चला गया तब मिर्जा को वहाँ की रक्षा पर छोड गया। जब खानखानाँ दरबार से अहमदनगर पहुँचा तब मिर्जा सेवा मे चला गया और इसके अनन्तर नर्मदा के किनारे से शाहजादे के साथ फिर दक्षिण मे नियत हुआ। अकबर के राज्य के अन्त में यह सात हजारी मंसब तक पहुँचा था। जहाँगीर के राज्य के २रे वर्ष सन् १०१६ हि० में यह उज्जैन मे मर गया और नगर के बाहर गाडा गया। कहते हैं कि मिर्जा की विवाहिता स्त्री मिर्जा मुहम्मद हकीम की पुत्री काबुली बेगम ने इसके शव को लेकर मदीना में गाड़ने के विचार से हज्ज की यात्रा की। जगलियो के भय से किराये के एक झुंड को शव देकर वहाँ बिदा किया और स्वयं बसरा चली आई तथा यहाँ से शीराज पहुँची। फारस के शासक आल.बर्दी खाँ ने समान के साथ इसे इस्फहान भेजवा दिया। सन् १०२० हि० में ईरान के शाह अब्बास प्रथम ने इसका अपने चाचा मिर्जा सुलतान अली मकहूल (अंधा) के साथ विवाह कर दिया पर इन दोनों मे प्रेम न हो सका।

मिर्जा शाहरुख साहस तथा शुद्धचित्तता में विशेषता रखता था। बादशाह जहाँगीर ने अपने बादशाहनामे (आत्मचरित) में लिखा है कि यद्यपि संसार में बदख्शियो से बढकर ओछा कोई नही होता पर शाहरुख मानो बदख्शी ही नही है। बीस साल होते हैं कि यह हिंदुस्तान आया पर हिंदी भाषा अब तक भी नही जानता।[1] इसके पुत्रो में से मिर्जा मुहम्मद जमाँ बदख्शाँ मे किसी स्थान का शासक

१. देखिए जहाँगीर का आत्मचरित हिंदी पृ० ४८।

था और उजबकों के उपद्रव में मारा गया। बहुत दिनों तक जाली मुहम्मद जमाँ उपद्रवियों का प्रमाण बना रहा। मिर्जा शाह मुहम्मद को मिर्जा मुहम्मद हकीम ने अपने यहाँ रखा था। मिर्जा शाहरुख की मृत्यु के समय उसके छ पुत्र थे। हसन व हुसेन यमज थे। इनमे हसन खुसरो के साथ भागा और दूसरे दिन पकड़े जाने पर कैद हुआ। मिर्जा सुल्तान अल्पावस्था से जहाँगीर की सेवा मे पालित हुआ। बादशाह की इच्छा थी कि अपनी पुत्री का इसके साथ विवाह कर दे पर महल से प्रार्थना हुई कि उसके बहुत सी स्त्रियाँ हैं। जब इससे पूछा गया तब इसने बादशाह के पैरों की शपथ खाई। ख्वाजासरा इसके घर जाकर स्त्रियों को पकड़लाये तब यह नजरों से गिर गया। गाजीपुर जागीर में पाकर यह वहीं मर गया। मिर्जा बदीउज्जमाँ प्रसिद्ध नाम मिर्जा फतहपुरी जहाँगीर के समय दक्षिण का बख्शी रहा। इसके बाद इसे पत्तन गुजरात जागीर मे मिला। यह शरारत तथा उपद्रव से भरा हुआ था। यहाँ तक कि भाइयों ने तंग आकर इसे पत्तन मे मार डाला। इसकी माँ ने दरबार आकर न्याय चाहा पर जैसा चाहिये वैसा खून का दावा नहीं किया। भाई लोग कुछ दिन कैद मे रहे। मिर्जा मुगल ने उन्नति नहीं की। इसका निकाह दाराबखाँ की पुत्री से हुआ था। परगना नीमखार बैसवाड़े की जागीर पर इसने जीवन व्यतीत किया। मिर्जा शुजाअ नजाबतखाँ का हाल अलग दिया गया है।

•

६३७. शाहिमखाँ जलायर

यह अकबर के पुराने सर्दारों मे से एक था। इसके पिता बाबा बेग जलायर ने इस राजवंश की अच्छी सेवा की थी। हुमायूँ ने इसे जौनपुर के शासन पर नियत किया था। उस समय बगाल की जलवायु बादशाह के इतनी अनुकूल पड़ी कि वह वहीं आराम कर रहा था कि जलालखाँ उपनाम सलीम शाह ने अपने पिता शेरशाह के संकेत पर जौनपुर पर आक्रमण कर दिया। बाबा बेग ने उसकी रक्षा में बड़ी वीरता दिखलाई। चौसा उतार के युद्ध मे सन् ९४६ हि० में जब शेरशाह ने एकाएक बादशाही पडाव पर धावा कर उसे परास्त कर दिया और हुमायूँ ने घबड़ाकर आगरे का मार्ग लिया तब इसे दूसरे विश्वासी सर्दारों के साथ हाजी बेगम तथा अन्य हरमों को लाने को पडाव पर भेजा। यह शीलवान बादशाही सरापर्दा के द्वार पर अफगानों द्वारा मारा गया। शाहिमखाँ अपनी सेवाओं के कारण अकबर के समय में सर्दारी को पहुँच गया।[1] जब यह खानखानाँ मुनइमखाँ के साथ बंगाल

1. शाहमखाँ ४ थे वर्ष के आरंभ में कियाखाँ गंग, कमालखाँ गक्खर आदि के

प्रांत पर अधिकार करने भेजा गया और दैवयोग से खानखानाँ की वहाँ मृत्यु हो गई तब सर्दारो ने सीमाओ पर अधिकार करने के लिए इसे अपना नायक बनाया[1]। इसके अनंतर ३२वे वर्ष में इसके तीन हजारी मनसब के अनुसार गढ़ा सरकार मे इसे जागीर मिली। इसके बाद यह दिल्ली का शासक नियत हुआ। ४३वें वर्ष मे जब बादशाह पंजाब में चौदह वर्ष रहने के अनन्तर दिल्ली आए तब उन्हें ज्ञात हुआ कि शाहमखाँ वहाँ का कार्य कुछ लोगो को सौंपकर स्वयं आराम करता रहता था। इस कारण यह कुछ दिन दंडित रहा। दक्षिण मे आसीर की चढाई पर यह आज्ञानुसार सामान ठीक कर चुस्ती से वहाँ पहुंचा, जिससे इस पर पुन: बादशाही कृपा हुई। इसी समय उस प्रसिद्ध दुर्ग के घेरे मे सन् १००९ हि० में इसकी मृत्यु हो गई।

•

६३८. शुजाअतखाँ

इसका प्रसिद्ध नाम मुकीम खाँ अरब था और यह तर्दी बेग खाँ का भांजा तथा दामाद था। हुमायूँ की कृपा से मुकीम खाँ की पदवी पाकर यह अत्यंत संमानित हुआ। अशांति के समय सेवा से लाभान्वित होकर मिर्जा अस्करी के पास पहुँचा और उस बादशाह के एराक से लौटने पर यह मिर्जा के साथ दुर्ग कंधार मे घिर गया। इसने दुर्ग की रक्षा में काफी सहयोग दिया और जब मिर्जा क्षमायाचना कर दुर्ग के बाहर आया तब बहुत से राजद्रोही सर्दारो को तलवार और तीर गर्दन में डालकर बादशाह के शाह के साथ पैर मे बेडी तथा गर्दन मे तरत: डाल कर रक्षा

साथ जौनपुर मे नियत हुआ, जहाँ का अध्यक्ष खानजमाँ अली कुली खाँ था। इससे अकबर रुष्ट हो चुका था अत: इसकी कुछ जागीरे लेकर जलायर सर्दारो को दे दी थी। शाहमखाँ पहले खानजमा के अधीन रहकर अफगानो से लडता रहा और १०वें मे खानजमा के विद्रोह करने पर उसके विरुद्ध करता रहा।

१. यह टुकरोई के युद्ध में उपस्थित था और राजा टोडरमल के साथ इसने भद्रक तक अफगानो का पीछा किया था। मुनइमखाँ की मृत्यु पर यह अस्थायी रूप से उसका स्थानापन्न बनाया गया था। २१वे वर्ष में आग महल के युद्ध मे संमिलित था। २४वे वर्ष मे हाजीपुर का जागीरदार नियत हुआ। सन् ९८८ हि० में मुजफ्फर हुसेन की मृत्यु पर इसने विद्रोही सईदबदख्शी को परास्त कर मार डाला। इसके अनंतर अरब बहादुर का पीछा किया। यह जागीरदार हुआ और अन्य सरदारों के साथ मासूम खाँ फरनखूदी का पीछा किया, जो बहराइच से भगाए जाने पर जौनपुर लूटने आ रहा था।

में रखा गया। हिंदुस्तान विजय करने के लिए हुमायूँ के जाते समय बैराम खाँ के साथ काबुल में रह गया। जब अकबर के समय बैराम खाँ के उपद्रव के कारण मुनइम खाँ दरबार बुलाया गया तब मुकीम खाँ भी उसी के साथ हिंदुस्तान आकर मंसब बढ़ने से कृपापात्र हुआ। ९ वें वर्ष में मालवा की चढ़ाई में, जब माडूका अध्यक्ष अब्दुल्ला खाँ उजबक दुष्ट विचार रखकर विद्रोह करना चाहता था तब इसने अच्छे प्रयत्न कर शुजाअत खाँ की पदवी पाई। १५ वें वर्ष के आरम्भ में इसने अकबर को निमंत्रित किया और उसने निमंत्रण स्वीकार कर एक दिन और रात्रि इसके गृह पर निवास किया। इसने अत्यंत आकर्षक जश्न का प्रबंधकर उसकी सजावट मे बहुत परिश्रम किया। १८वें वर्ष मे जब नौ दिन के धावे मे बादशाह अहमदाबाद गुजरात मे पहुँच गए उस समय शुजाअत खाँ ने बादशाही जलसे मे जातीय मूर्खता के कारण मुनइम खाँ खानखानाँ सिपहसालार के विषय मे कुछ अपशब्द कहे, जो पूर्वीय प्रांत के शासन पर नियत था। अकबर ने इन दो दोषो के बदले मे, प्रथम कि बादशाह के सामने ऐसा न कहना चाहिए था और दूसरे यह कि साम्राज्य के नियमो को भूलकर सिपहसालार के विरुद्ध असभ्य आशंका की, इसे भर्त्सना कर, क्योंकि भले आदमियो को ये तलवार के घावो से अधिक कष्टकर होते हैं, खानखानाँ के पास भेज दिया। उससे कहलाया कि जिस दंड के योग्य वह समझे उसे दे या क्षमा करे। खानखानाँ ने ऐसी कृपा के कारण शांत होकर शुजाअत खाँ के सम्मान मे प्रयत्न किया और इसे क्षमा करने का प्रार्थनापत्र दे दिया। इस प्रार्थना पर यह क्षमा किया गया। २२वें वर्ष में इसे तीन हजारी मंसब, मालवा का शासन तथा उस प्रांत की सिपहसालारी मिली। जब २५ वें वर्ष सन् ९८८ हि० में कुछ उपद्रवी सर्दारो ने बंगाल तथा बिहार में विद्रोह कर दिया तब यह बादशाही आज्ञा से सारंगपुर से एक पडाव बाहर निकल आया था। एवज़ बेग बर्लास एक झुण्ड सहित इसके कुछ सेवको के साथ जो इसकी कड़ाई और कुव्यवहार से तथा सैनिको का बहुत सा हिसाब रोक रखने तथा बुरी गालियाँ भी देने का दोष करने से शील व शांति को छोड़ चुके थे, मिल कर लड़ने की घात मे लगा। यात्रा मे जब अधिकांश अपने सर्दारो के साथ आगे चले गए थे और कुछ को तैयार हो गए। बड़ा शोर मचा। इसका पुत्र कवीम खाँ इस शोर का पता लगाते समय चोट खाकर मर गया। शुजाअत खाँ खेमे से बाहर निकलकर पूछताछ करने लगा परंतु जब इसने अपने को खतरे मे देखा तब भयानक स्थान से खेमे में शीघ्र चला आया। उस समय उपद्रवियो के एक झुण्ड ने इसे कई चोट दिये। अभी कुछ जान बच रही थी कि कुछ स्वामी भक्त पार्श्ववर्तियो ने इसे अमारी मे डालकर सारंगपुर का मार्ग लिया। दृढता तथा दूरदर्शिता से ऐसा मार्ग पकड़ा कि बहुतों ने इसे जीवित समझ लिया और कुछ निर्दोष एक साथ इसके संग हो लिए। थोड़े ही समय मे उस दुर्ग के दीवाल के भीतर पहुँचकर इसके छुटकारे की खुशी की आवाज सबके मुख से निकलने लग

और खुशी का डंका बजने लगा। इस उपाय से विद्रोह का जो गर्द उठा था वह शांत हो बैठ गया और हर एक विद्रोही अलग हो गया। विचित्र यह कि इस कार्य के फल को जानकर सबों ने बड़ी शीघ्रता की थी। बच जाने के समाचार से इन्हें बहुत सहायता मिली, जिससे वे अपने सब कुछ की रक्षा कर सके और उस उपद्रव-स्थल से रक्षास्थान में पहुँच गए। बादशाह ने उस मृत की पुरानी सेवा का विचार कर बलवाइओं को पकड़ मँगाया और उन्हें उचित दंड दिया। दूसरे पुत्र मुकीमखाँ का वृत्तांत तरबियत खाँ अब्दुर्रहीम[1] की जीवनी मे लिखा गया है।

•

६३६. शुजाअत खाँ कबीर शेख

यह रुस्तमे जमाँ चिश्ती फारुकी भी कहलाता था। यह मऊ का निवासी था तथा इस्लाम खाँ चिश्ती[2] से इसका पास का संबंध था। अकबर के राज्यकाल के अच्छे परिचित मंसबदारो मे से यह एक था और जहाँगीर के समय इसने उन्नति विशेष की। जिस समय खानजहाँ लोदी भारी सेना के साथ दक्षिण में नियत हुआ उस समय बादशाही सेना की हरावली, जो सर्वदा बारहा के सैयदों को मिला करती थी, उसने शुजाअत खाँ को देकर कुल सेना का हरावल नियत किया, जिसकी वीरता तथा धीरता पर उसे विश्वास था। इसपर सैयदों ने बहुत रोष प्रकट किया कि यह कार्य उनका पैतृक है पर खानजहाँ ने कुछ न सुना। इसके अनंतर यह बंगाल मे नियत हुआ। यहाँ के प्रांताध्यक्ष इस्लाम खाँ ने ६ठे वर्ष में बहुत से प्रसिद्ध सर्दारों को शुजाअत खाँ की अधीनता मे उसमान खाँ लोहानी के ऊपर भेजा, जिस कार्य को राजा मानसिंह अपने शासनकाल मे युद्धों में अपने बहुत से संबंधियों तथा जातिवालों को कटाकर भी पूरा न कर पाए थे। जब शुजाअत खाँ उसके स्थान की सीमा पर पहुँचा तब उसमान खाँ घमंड से भरकर बड़ी तैयारी के साथ सैनिक व्यूह सजाकर युद्ध को आया। सेना के प्रत्येक भाग ने अपने सामने के भाग पर आक्रमण किया। उसमान ने एक हाथी को, जिसे वह अपनी शक्ति का बढ़ानेवाला समझता था आगे कर हरावल सेना पर धावा किया। बादशाही सेना के बहुत से प्रसिद्ध बहादुर डटकर लड़ते हुए मारे गए। दाएँ भाग का सर्दार इफ्तखार खाँ और बाएँ भाग का सेना नायक किशवर खाँ ने बड़ी वीरता दिखलाकर स्वामिसेवा में अपने अपने प्राण निछावर कर दिए। उस निडर

---

1. इस्लाम खाँ की जीवनी में इसका नाम शेख कबीर दिया है।

साहसी ने, यद्यपि उसके साथियों मे से भारी झुंड मारा जा चुका था, उनका कुछ भी न ध्यान कर दुबारा सेना के मध्य भाग पर धावा किया। शुजाअत खाँ के संबंधी तथा भाई लोग बड़ी वीरता दिखलाकर मारे गए और बहुत से गहरी चोट खाकर काम से हट गए। इसी समय उसमान खाँ, जो बहुत मोटा ताजा था, हाथी पर सवार हो शुजाअतखाँ पर आया। उस प्रसिद्ध वीर ने पहले भाले की चोट हाथी पर की और फिर तलवार की दो चोट बराबर चलाई। इसके बाद जमधर खींचकर दो चोट और किए। हाथी ने मस्ती तथा वीरता से क्रुद्ध होकर और पैर आगे बढ़ाकर शुजाअत खाँ को घोड़े पर से गिरा दिया। यह बड़ी फुर्ती तथा चालाकी से अलग होकर खड़ा हो गया। इसी समय इसके जिलौदार ने तलवार का ऐसा दुहत्था हाथ हाथी को मारा कि वह घुटने के बल हो गया। शुजाअत खाँ ने महावत को खींचकर जमधर से मार डाला। हाथी चिंघाड़ता हुआ कुछ पीछे हटकर गिर पड़ा। इसी बीच उसमान के सिर पर एक गोली आकर लगी, इससे उसने जान लिया कि अब वह न बचेगा और अर्धमृत लौटकर सुरक्षित स्थान मे पहुँचा, जहाँ वह अर्द्धरात्रि को मर गया। उसका भाई वली खाँ और उसका पुत्र ममरेज खाँ खेमा तथा सामान को छोड़कर तथा उसके शव को उठाकर दृढ़ स्थान को चल दिए। विजयी सेना में युद्ध करने की शक्ति नहीं रह गई थी इसलिए शुजाअत खाँ ने मोनकिद खाँ के साथ शत्रु का पीछा किया, जो युद्ध के बाद सहायता को आया था। वली खाँ ने अधीनता स्वीकार करने ही में अपनी रक्षा देखकर संधि कर ली और वचन लेकर अपने संबंधियों तथा भाइयों के साथ आकर भेंट की। उसने उचास हाथी भेंट में दिया। शुजाअत खाँ इन सबको लेकर जहाँगीर नगर में इस्लामखाँ के पास पहुँचा। इस अच्छी सेवा तथा इस प्रकार की बहादुरी दिखलाने के उपलक्ष्य में इसे दरबार से मंसब मे उन्नति तथा रुस्तमजमाँ की पदवी मिली। इस्लाम खाँ ने इसके वचन का ध्यान न रखा, जो उसमान के बचे साथियों से किया गया था, सबको दरबार भेज दिया। आज्ञानुसार अब्दुल्ला खाँ ने वली खाँ को ममरेज खाँ के साथ अहमदाबाद के काली तलावरी में मार डाला तथा दास अयाज को, जिसे उसमान ने गोद लिया था, दूसरों के साथ कूओ में अपरिमित अवधि के लिए कैद कर दि-ा। शुजाअत खाँ इस्लाम खाँ के इस प्रकार वचन तोडने पर दुखी हो बंगाल से चला आया। दैवयोग से मार्ग मे इसी समय इसे बिहार की प्रांताध्यक्षता का आज्ञापत्र मिला। जिस दिन यह पटना नगर मे पहुँचा उस समय यह एक हथिनी पर सवार था। दुर्भाग्य से एक हाथी उस पर दौड़ा। शुजाअत खाँ इतना धीर होते भी घबडा कर नीचे कूद पड़ा, जिससे पैर के टूटने मे इसकी मृत्यु हो गई।[1]

---

१. शुजाअत खाँ इस प्रकार मरा और इसके बाद ही सन् १०२२ हि० में इस्लाम भी मर गया।

६४०. शुजाअतखाँ बहादुर

इसका मुहम्मदशाह नाम था और यह फारूकी शेखजादा था। इसका वंश शेख फरीदुद्दीन शकरगंज तक पहुँचता था। इसका निवास स्थान इलाहाबाद प्रांत के जौनपुर मे था? इसके दादा का नाम गुलाम मुहम्मद खाँ था, जो मंसब तथा खाँ की पदवी पाकर शाहजहाँ के समय में बिहार के हाजीपुर का फौजदार नियत हुआ। शुजाअ के युद्ध में औरंगजेब के साथ रहकर यह मारा गया। इसके बाद इसका पिता शेख अब्दुल्करीम खाँ मंसब पाकर पहले मथुरा का और फिर ग्वालियर का फौजदार नियत हुआ। इसके बाद इलाहाबाद प्रांत में कडा मानिकपुर का फौजदार होकर उस ओर के राजपूतों से युद्ध करते हुए यह मारा गया। जिस समय बादशाह दक्षिण मे ठहरे हुए थे, उस समय इसे अर्थात् मुहम्मद शाह को चार सदी मसब, बख्शीगिरी सूरत बंदर की अदालत के दारोगा का पद और उसी प्रांत मे जागीर मिली। कभी यह सूरत सरकार के अन्तर्गत नयापुरा घातिया की फौजदारी, कभी बैंगाँव की ताल्लुकादारी और कभी सूरत सरकार गुजरात की फौजदारी पर नियत हुआ तथा इसने सात सदी मंसब और शाहअली खाँ की पदवी पाई। जहाँदार शाह के समय इसका मंसब और जागीर इस कारण छिन गई कि यह फर्रुखसियर के यहाँ चला गया था। फर्रुखसियर के राज्य के १ म वर्ष मे इसका मंसब बहाल हो गया और मालवा में मंदसोर का फौजदार नियत हुआ। मुहम्मदशाह के राज्य के २रे वर्ष मे जब निजामुल्मुल्क आसफजाह ने मालवा से दक्षिण जाने का निश्चय किया तब यह उसके समझाने से अपने छोटे भाई शेख नूरुल्ला के साथ उसके संग हो लिया। इसे उस बडे सर्दार के तोपखाने की दारोगागिरी मिली और इसका भाई सेवको का दारोगा हुआ। दिलावर अली खाँ और आलम अली खाँ के युद्धो मे इसने बहुत प्रयत्न किए। दूसरे युद्ध मे जब इसके पक्ष पर कठिनाई पडी तब बहादुरो के समान इसने पैदल होकर मारकाट में कोई बात उठा न रखी। शेख नूरुल्ला इसी युद्ध मे मारा गया। शेख मुहम्मदशाह घायल होकर युद्ध से हट गया। इसके अनंतर इसे तीन हजारी २००० सवार का मंसब, झण्डा, डंका और शुजाअत खाँ की पदवी मिली। परगना बीड, औरंगाबाद प्रांत के धारवर फतेहाबाद के कुछ ग्राम, बरार प्रांत की हवेली पाथरी और खानदेश प्रांत के खरकून बीजागढ सरकार मे नियत होकर यह सम्मानित हुआ। इसके अनंतर जब बीड़ आदि महाल राजा सुल्तान जी को जागीर मे मिले तब यह बरार के बालापुर आदि महलो का जागीरदार हुआ। क्रमशः पाँच हजारी मंसब तक यह पहुँच गया और इसे बहादुर की पदवी मिली। अजदुद्दौला की मृत्यु पर सन् ११४३ हि० मे यह बरार का नायब सूबेदार नियत हुआ। यह प्रबंधकार्य से अच्छी प्रकार परिचित था और हिसाब के लिये मराठा मकासदार रखे थे। इसने अपने दीवान को कैद कर दिया था इसलिये उसके

बहकाने से उपद्रवियों ने झगड़ा प्रारंभ कर दिया और रघूजी भोंसला ने सेना एकत्र कर एलिचपुर पर चढ़ाई कर दी।

कहते हैं कि उक्त खाँ लसानुल्‌गैब दीवान को बराबर अपने सामने रखता और बड़े कार्मों के लिए उस किताब से शकुन निकालता था। इस बार यह फल निकला। मिसरा का अर्थ—ऐ कबूतर सावधान हो कि शाहीन आया।

इसने निश्चय किया कि स्वयं नगर से निकलकर उपद्रवियों पर आक्रमण करना चाहिए जिससे उक्त मिसरे का अर्थ उसकी ओर लगे। नगर से चार कोस आगे जाकर इसने युद्ध किया और मारकाट में घायल होकर यह शत्रु के हाथ पकड़ा गया। इन घावों के कारण यह सन् ११५० हि० में मर गया। इसके खाने में बहुत व्यय होता था। प्रतिदिन अपने खासे की वस्तुओं की थालियाँ जमादारों को पारी पारी से भिजवाता था। उनके सिवा दो सौ मनुष्यों को इसके देश के, जो साथ में रहते थे, दोनों समय पूरब के आदमियों की चाल पर, जिनसे दिल्ली के पूर्वीय प्रांत से तात्पर्य है, भोजन मिलता था। इसके पुत्रों में गुलाम मुहीउद्दीन शुजाअत खाँ को सरवरे जंग की पदवी मिली थी। अन्य पुत्र अशरफ खाँ, आजम खाँ और मुअज्जम खाँ थे। बीड़ महाल के पर्गने से थोड़ी जागीर रिक्बक्रम में पाकर ये सेवा करते थे।

●

६४१. शुजाअत खाँ बहादुर भक्करी, सैयद

यह सैयद लुत्फ अली खाँ[1] भक्करी का पुत्र था। शाहजहाँ के राज्य के ८वें वर्ष में यह मध्य दोआब का फौजदार नियत हुआ। १६वें वर्ष में काँगड़ा दुर्ग का यह अध्यक्ष बनाया गया। २७वें वर्ष में अवस्था के वार्द्धक्य के कारण इसको सेवाकार्य से छुट्टी मिल गई और फरीदाबाद परगना से चार लाख दाम इसे कृपाकर दिया गया। इसके अनंतर शुजाअत खाँ का मंसब बढ़कर एक हजारी ५०० सवार का हो गया। जब औरंगजेब गद्दी पर बैठा तब यह सेवा में उपस्थित होकर शुजाअ के युद्ध तथा दाराशिकोह की दूसरी लड़ाई में बादशाही सेना के साथ रहा। दूसरे वर्ष इसे शुजाअत खाँ की पदवी मिली और इसके बाद चुनार की दुर्गाध्यक्षता पर खवास खाँ के बदले में नियत हुआ। आगे का इसका वृत्तांत नहीं ज्ञात हुआ।

●

---

१. पाठा०—'लतीफ अली' या केवल 'लतीफ'।

६४२. सैयद शुजाअत खाँ बारहा

इसका नाम सैयद जाफर था और इसका पिता सैयद जहाँगीर सैयद महमूद खाँ बारहा का पुत्र था, जो अकबर के राज्यकाल में बारहा के सैयदों का सरदार था और अच्छे अमीरों में गिना जाता था। सैयद जाफर युवराज शाहजादा शाहजहाँ की सेवा में भर्ती होकर साहस तथा वीरता के कारण उसका विश्वास पात्र हो गया। परंतु बनारस के पास टौंस के नाला के युद्ध में, जिसमें शाहजहाँ सुल्तान पर्वेज तथा महाबत खाँ से कड़ी हार खाकर बंगाल लौट गया था, जब ईश्वरी कृपा दूसरे पक्ष की ओर चली गई, जिससे शाहजहाँ नैराश्य के साथ असफलता के वन में भ्रमण करने लगा, तब बहुतों ने साहस छोड़कर कुछ कार्य नहीं किया था। सैयद जाफर मध्य सेना का नायक होकर भी बिना युद्ध किए परास्त हो गया। जब शाहजहाँ दक्षिण से नासिका से ठट्टा की ओर चला और यह प्रसिद्ध हुआ कि शाहजादा शाह अब्बास सफवी के संकेत पर एराक जाने की इच्छा रखता है तब कुछ लोगों ने उसका साथ छोड़ दिया। इन्हीं में सैयद जाफर भी था, जिसने देश जाने की प्रार्थना की और सेवा तथा मित्रता का विचार छोड़ दिया। अपने देश पहुँचने पर तथा जहाँगीर के बुलाने पर यह दरबार गया और उसने एक हजारी मंसब पाया। दैवयोग से शाहजहाँ को ईरान जाने का अवसर न मिला और उसके मन में सैयद की ओर से मालिन्य बना रह गया। इस कारण शाहजहाँ के बादशाह होने पर उस पर कुछ भी कृपा नहीं हुई। यह अपने देश जाकर एकांतवास करता रहा। ५वें वर्ष में शाहजहाँ ने इसकी पुरानी सेवाओं का ध्यान रखकर इसके दोष को कृपाकर क्षमा कर दिया और इसे चार हजारी २००० सवार का मंसब तथा शुजाअत खाँ की पदवी दी। ६ठे वर्ष में यह शाहजादा मुहम्मद शुजाअ के साथ परेंदः दुर्ग की चढ़ाई पर भेजा गया। जब उस कार्य ने दिन खींचे और सेनापति महाबत खाँ की उजडुता से अन्य बड़े सर्दारगण, जैसे खानदौराँ बहादुर, सैयद खानजहाँ आदि ने सहयोग नहीं दिया और नहीं चाहते थे कि यह काम पूरा हो तथा वर्षाकाल भी पास आ गया तब मुसीबतों का आना निश्चित हो गया और दुर्ग का विजय संभव नहीं रह गया। सभी सर्दार शाहजादे को राय लौटने पर ले आए और यह निश्चय हुआ कि इस काम के लिए परामर्श किए जायें। परंतु महाबत खाँ की कठोर तथा कड़वी बातें करने की प्रकृति के भय से किसी का साहस इस कार्य में आगे बढ़ने का न हुआ। शुजाअत खाँ ने इस कार्य में बढ़कर शाहजादे के सामने सेनापति से कहा कि यदि बेहूदः रुकोगे तो मारे जाओगे। वास्तव में बात यही है कि इस वर्ष यह कार्य पूरा न हो सकेगा और वर्षा बीतते बीतते इस प्रांत में बादशाही सेना के रहने पर अन्न का अकाल पड़ जाएगा। हम इसको लिखकर देने को तैयार हैं। यदि आप इस कार्य

के पूरे होने तक की अवधि के लिए लिखकर दें तो हम मुर्दा खाने तक साथ देने को तैयार हैं। महाबत खाँ ने बहुत चाहा कि ठहरने के कारण बतलावें पर शाहज़ादे ने कूच करने का डंका पिटवा दिया। महाबत खाँ ने निधड़क होकर शाहज़ादे से कहा कि यह विजय आप के नाम होने को थी और इन सैयदों के कहने पर शुक्रवार की रात्रि आपने व्यर्थ व्यतीत कर दी। परंतु बादशाहनामा के ग्रन्थ तथा उसके संक्षेप से ज्ञात होता है कि सेनापति ने इस घेरे के लिए इतना अन्न एकत्र कर रखा था कि सेना जब तक वहाँ रहती उसकी कमी न होती पर घास भूँसा बीस कोस के घेरे तक कहीं न था। वर्षाकाल आ पहुँचा था इसलिए उसने स्वयं ठहरना उचित न समझ कर कूच की आज्ञा दे दी थी।

शाहज़ादः इस कार्य पर इसी बात पर नियत हुआ था कि खानखानाँ की सम्मति के सिवा वह कुछ न करे इसलिए छ महीने बाद ७वें वर्ष के शव्वाल महीने के अंत मे वह सेनापति के साथ बुर्हानपुर पहुँच गया। शाहजहाँ ने इस कारण कि बिना दुर्ग लिए उसने शाहजादे को लौटा दिया और उसके साथियों के साथ के अनुचित आचरण से काम पूरा न हो सका, महाबत खाँ को दंडित कर बुला लिया था। १०वें वर्ष में शुजाअत खाँ इलाहाबाद की सूबेदारी पर भेजा गया। इस प्रांत में अशांति थी और बल प्रयोग की आवश्यकता थी इसलिये इसके मंसब मे दो सहस्त्र सवार और बढ़ाकर ५५०० सवार दो अस्पः सेह अस्पः कर दिए गए, जिसमे उस प्रांत का उचित प्रबंध हो सके। १६वें वर्ष में परगनः एरच, भाडेर आदि महाल अब्दुल्ला खाँ फीरोजजंग के स्थान पर, जो इलाहाबाद का सूबेदार नियत हुआ था, इसे जागीर में मिला। शुजाअत खाँ उस प्रांत का प्रबंध ठीक करने और बुंदेलो को दमन करने के लिए काफी सेना एकत्र कर जिस समय एरच पर्गना मे ठहरा हुआ था उसी समय बीमार होकर सन् १०५२ हि० मे मर गया।

कहते हैं कि शुजाअत खाँ भाषा का ज्ञाता मनुष्य था और विद्या भी अच्छी जानता था। उठने, बैठने तथा सवारी मे शाहज़ादा सा बर्ताव करता। दान तथा उदारता में अपने समय में एक था। इस कारण कि शाहजहाँ इसका सम्मान करता तथा इस पर बहुत कृपा रखता था, सैयद शुजाअत खाँ भी बेपरवाही तथा घमंड को नही छोड़ता था। जो कहना होता वह निर्भय चित्त हो कह देता। इसलिए शाहजहाँ इसे चिढ़ाने को सैयद खानजहाँ पर अधिक कृपा रखता और यह इसे बुरा मालूम होता, जिससे शिकायत भी करता। एक दिन शाहजहाँ ने इससे पूछा कि तुम्हारा और सैयद खानजहाँ का वंश कहाँ समाप्त होता है। इसने कहा कि जैसे धोरी खाल आगरा जमुना नदी मे मिल जाती है। इसका पुत्र सैयद मुजफ्फर था, जो शाहजहाँ के २०वें वर्ष में डेढ़ हजारी ८०० सवार के मंसब तक पहुँचा था और हिम्मत खाँ की पदवी पा चुका था। दूसरा पुत्र सैयद नजाबत खाँ एक हजारी ५०० सवार का मंसबदार था।

०

६४३. शुजाअत खाँ मुहम्मद बेग

यह गुजरात में नियत सहायक मंसबदारो मे एक था। जिस समय सुलतान मुराद बख्श उक्त प्रांत का अध्यक्ष था यह उसका साथ देकर शाहजादे का परिचित हो उठा। जब उक्त शाहजादा अपने भाई सुलतान मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के संकेत पर गुजरात से मालवा प्रांत मे आकर उससे मिल गया और महाराज यशवंतसिंह कि युद्ध तथा दाराशिकोह की पहली लड़ाई के बाद अपने दुर्भाग्य से कैद हो गया तब शुआजत खाँ अपने तैनाती प्रांत में चला गया। औरंगजेब के राज्य के २रे वर्ष में गुजरात पहुँचकर दाराशिकोह जब सेना एकत्र करने लगा तब इसको कजिलबाश खाँ की पदवी देकर साथ ले लिया। दाराशिकोह के भागने पर औरंगजेब की सेवा मे पहुँचकर खिलअत तथा पहले की तरह अहमदाबाद प्रांत जाने की छुट्टी इसे मिल गई और यह बहुत दिनों तक वहाँ रहा। जब इसके कार्य से बादशाह प्रसन्न हुआ तब क्रमशः कारतलब खाँ की पदवी और सूरत बंदर की मुत्सद्दीगिरी इसे मिली। २६वें वर्ष में वहाँ से हटाया जाकर यह अहमदाबाद का फौजदार नियत हुआ। इसके अनंतर यह अहमदाबाद का सूबेदार हुआ और शुजाअत खाँ की पदवी पाकर ४०वे वर्ष मे इसका मंसब बढ़कर चार हजारी ४००० सवार का हो गया। ४५वें वर्ष में सन् ११११२ हि० मे इसकी मृत्यु हो गई।

यह बहुत मिलनसार था और इसका भाग्य भी अच्छा था, जिससे साधारण स्थिति से यह अच्छे पद पर पहुँच गया। इसकी सचाई, योग्यता, सैनिक वीरता तथा कार्यशक्ति बादशाह के मन में ऐसी जम गई कि कभी कम नही हुई। इसे पुत्र न था। एक ग्रामीण को इसने अपना पोष्य पुत्र बनाया था, जिसे इसकी खातिर अच्छा मंसब और नजर अली खाँ की पदवी मिली। शुजाअत खाँ की मृत्यु पर यह मराठों से अनियमित युद्ध कर परास्त हुआ। शुजा त खाँ की पुत्री काजिम बेग के पुत्र मासूम बेग के यहाँ थी, जिसने हैदरअली खाँ की पदवी पाई। इसका दूसरा भाई रुस्तम अली खाँ सूरत बंदर का मुत्सद्दी हुआ। तीसरे भाई की पदवी इब्राहीम कुली खाँ थी। तीनो भाई मुइज्जुद्दौला हामिद खाँ बहादुर की सूबेदारी के समय मारे गए।

६४४. शुजाअतखाँ रादअंदाज खाँ

यह औरंगजेब के समय का एक सर्दार था। आरंभ में योग्य मंसब तथा खाँ की पदवी पाकर १ म वर्ष में जब बादशाह सुल्तान शुजाअ का सामना करने जा रहे थे तब इसे जुल्फिकार खाँ के स्थान पर आगरे का दुर्गाध्यक्ष नियत किया। कुछ दिन बाद वहां से हटाया जाकर यह दाराशिकोह के द्वितीय युद्ध में करावल सेना में नियत हुआ और उसके बाद अहदियों का बख्शी बनाया गया। ३रे वर्ष में उस पद से हटाया जाकर कुंअर रामसिंह के साथ श्रीनगर दुर्ग की जमीदारी विजय करने भेजा गया। ४ थे वर्ष में यह दोआबे के मध्य का फौजदार आकिल खाँ के स्थान पर नियुक्त हुआ। ७वें वर्ष में यह एतबार खाँ के स्थान पर आगरा का दुर्गाध्यक्ष नियुक्त हुआ और इसका मंसब बढ़कर दो हजारी ५०० सवार का हो ९वें वर्ष मे यह मुलतफित खाँ के स्थान पर मीरतुजुक और आख्त: बेग नियुक्त हुआ। १०वें वर्ष में फिदाई खाँ के स्थान पर यह तोपखाने का दारोगा हुआ। १२वें वर्ष में दिल्ली के इर्दगिर्द के उपद्रवियों को दंड देने के लिये यह नियत हुआ और सोने के साज सहित घोड़ा मिला। १३वें वर्ष में फिदाई खाँ के साथ इसकी नियुक्ति हुई, जो ग्वालियर भेजा गया था। १५वें वर्ष में सतनामियों के मेवात के पास उपद्रव करने का समाचार मिलने पर यह योग्य सेना तथा सामान के साथ उन्हें दंड देने भेजा गया।

सतनामी से उन आदमियों से तात्पर्य है, जो कमीनो, दुष्टो तथा अनेक प्रकार के नीच जातियों में से एकत्र हो गये थे। उक्त वर्ष नारनौल के पास उस प्रांत मे विद्रोह कर कई कस्बों तथा परगनों को लूट लिया था। कहते हैं कि ये अपने को अमर समझते थे। उक्त खाँ के उस जिले में पहुंचने पर वे युद्ध करने के लिये आये और मारकाट में उनमें से बहुत से मारे गए तथा बचे हुए भागे पर पीछा करने पर भी बहुत से मारे गये। उक्त खाँ दरबार पहुँचने पर प्रशंसित हुआ और शुजाअत खाँ की पदवी के साथ इसका मंसब बढ़ाकर साढ़े तीन हजारी २००० का कर दिया गया। १६ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर चार हजारी २५०० सवार का हो गया और खिलअत, यशम पत्थर से भरा जड़ाऊ जीगा और सोने के साज सहित अरबी घोड़ा पाकर यह विद्रोही अफगानों को दंड देने के लिये काबुल गया। १७वें वर्ष में जब इसने एक उतार से पार होकर खरीय: घाटी पार करने के लिये सेना ठीक की तब घात में बैठे हुए अफगानों ने उस पहाड़ी तंग मार्ग मे इसे घेर लिया और यद्यपि इसने बहुत प्रयत्न तथा धावे किए पर अन्त में उसी मारकाट में सन् १०८४ हि० में यह मारा गया।

●

६४१. शुजाअत खाँ शादी बेग

यह जानश बहादुर का पुत्र था, जिसका वृत्तांत अलग लिखा गया है। यह शाहजहाँ के ७वें वर्ष में उन्नति मिलने पर एक हजारी ८०० सवार का मंसबदार होकर और शादी खाँ की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। १२वें वर्ष में खिलअत, जीग, जड़ाऊ खंजर, सोने की मीना की हुई साज सहित तलवार और चाँदी के जीन सहित घोड़ा पाकर नज्र मुहम्मद खाँ का उत्तर तथा एक लाख मूल्य का उपहार लेकर बलख गया। १४वें वर्ष में वहाँ से लौटकर लाहौर में जहाँ बादशाह कश्मीर से लौटकर ठहरे हुए थे, सेवा मे उपस्थित होकर इसने सत्ताईस घोड़े भेंट दिए। बादशाह ने कृपा कर इसका मंसब डेढ़ हजारी १२०० सवार का कर दिया और इसे शाह कुली के स्थान पर भक्कर का शासक नियत कर घोड़ा दे विदा कर दिया। जब ठट्टा के सूबेदार गैरत खाँ की मृत्यु का समाचार आया तब बादशाह ने इसका मंसब पांच सदी ५००० सवार बढ़ाकर और खिलअत तथा तलवार देकर उक्त प्रांत का सूबेदार नियत कर इसे सम्मानित किया। १५वें वर्ष मे ३०० सवार बढ़ाकर जात के बराबर कर दिया। १९वें वर्ष मे शाहजादा मुरादबख्श के साथ बल्ख व बदख्शाँ पर अधिकार करने पर यह नियत हुआ और जब शाहजादे का वहाँ मन न लगा और जुमलतुलमुल्क सादुल्ला खाँ वहाँ का प्रबंध करने भेजा गया तब इसको मेमनः तथा उसके पासपास की रक्षा सौंपी गई। २१वें वर्ष मे इसे खिलअत, सुनहले जीन सहित घोड़ा तथा काबुल की दुर्गाध्यक्षता शिवराम गौड़ के स्थान पर मिली और आज्ञा हुई कि इसके मेमन: मे वहाँ पहुँचने तक मुलतफित खाँ वहाँ की रक्षा करे। २२वें वर्ष में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार प्रांत मे नियत हुआ और करावल की सेना की अध्यक्षता इसे मिली। वहाँ पहुँचने पर यह कुलीजखाँ के साथ बुस्त लेने गया और इसका मंसब ढाई हजारी २००० सवार का हो गया। कजिलबाशो के युद्ध मे, जो रुस्तम खाँ और कुलीज खाँ से हुई थी, दृढ़ता से लड़ा, जिसमें इसका पुत्र मुहम्मद सईद बहुत सैनिकों के साथ शाही काम मे मारा गया। इस कारण २३वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी २५०० सवार का हो गया और इसे झंडा व डंका भी मिला। २५ वें वर्ष मे दूसरी बार उक्त शाहजादे के साथ उसी चढ़ाई पर गया। उस समय बादशाह भी काबुल आए और यह वहाँ का दुर्गाध्यक्ष था इसलिये सेवा मे उपस्थित होने पर खिलअत, जड़ाऊ जीगः, सोने की जीन का घोड़ा, हाथी और शुजाअत खाँ की पदवी इसे मिली और इसका मंसब बढ़कर साढ़े तीन हजारी २००० सवार का हो गया। २६ वें वर्ष मे शाहजादा दाराशिकोह के साथ कंधार लेने गया और वहाँ से रुस्तम खाँ बहादुर के साथ बुस्त की ओर गया। इसके बाद का वृत्तांत कहीं नहीं मिला कि इसका क्या हुआ।

६४६. शुजाअत खाँ सलामुल्लाह अरब

यह मुबारक अरब का भतीजा था। जहाँगीर के ४ थे वर्ष में चार सदी २०० सवार का मंसब पाकर यह खानजहाँ लोदी के अधीन दक्षिण प्रांत में नियत हुआ। १० वें वर्ष में पांच सदी २२० सवार बढ़े और शुजाअत खाँ की पदवी मिली। गुजरात में इसे जागीर मिली थी और यह वहाँ रहता था। अन्त में मृत्युकाल आ गया। इसका पुत्र रहमानुल्लाह शाहजहाँ के समय में सात सदी ४०० सवार का मंसब पाकर २रे वर्ष में खानजहाँ लोदी के साथ के युद्ध में वीरता दिखलाकर इसने प्राण दे दिए।

०

६४७. शुजाउद्दौला बहादुर

यह अबुल् मंसूरखाँ का पुत्र था और इसका असली नाम मिर्जा जलालुद्दीन हैदर था। पिता की मृत्यु पर अवध तथा इलाहाबाद प्रांतों का अध्यक्ष बहाल रहकर यह यथायोग्य प्रबंध करता रहा। सन् ११७० हि० में एमादुलमुल्क ने इसके प्रांतों पर आक्रमण किया, जिसका वृत्तांत उसकी जीवनी में विस्तार से दिया गया है और शुजाउद्दौला लखनऊ से बाहर निकलकर अवध प्रांत की सीमा के पास सांडी व पाली में सामना करने पहुँचा। साधारण युद्ध के बाद ही अली मुहम्मद खाँ रुहेला के पुत्र सादुल्ला खाँ की मध्यस्थता में पाँच लाख रुपये नकद तथा बाकी के लिये वचन देकर इसने संधि कर ली। इसके अधीन दिल्ली प्रांत के गंगा जी के उस पार के परगने भी थे और मराठे वर्षा के कारण गंगा पार नहीं कर सकते थे। सन् ११७१ हि० में दत्ता सींधिया ने दिल्ली के आसपास का प्रबंध पूरा कर जमुना जी पार उतर नजीब खाँ[1] को सकरताल में घेर लिया और वर्षा के बीतने पर गोविंद पंडित को बीस सहस्र सेना के साथ कोह के पास ठाकुरद्वारा से गंगा पार जाकर लूटने को भेज दिया। सन् ११७३ हि०, सन् १७५० ई० में नजीब खाँ रुहेला तथा दूसरे अफगानों की प्रार्थना पर इसने जाकर उक्त पंडित को कड़ी पराजय दी।[1]

---

१ अहमदशाह अब्दाली लाहौर में अपने पुत्र तैमूरशाह को पंजाब का प्रांताध्यक्ष नियुक्त कर जब लौट गया तब वह नजीबुद्दौला को दिल्लीसम्राट् का वजीर नियत कर गया था। पहले के वजीर गाजीउद्दीन ने रुष्ट होकर रघुनाथराव को मराठा सेना सहित सहायतार्थ बुलवाया, जिस पर वह वजीर बना तथा नजीबुद्दौला भाग

सादुल्ला खाँ, दूंदीखाँ और हाफिज रहमतखाँ, जिन्होने मराठा सेना के भय से कुमायूँ के पर्वतो मे शरण लिया था, आकर साथ हो गए। नजीब खाँ को भी घेरे की कड़ाई से छुट्टी मिली। मराठी सेना संख्या में बढती जा रही थी, इसलिये दूरदर्शिता से यही संधि की बातचीत करने लगे।

इसी समय शाह दुर्रानी के आने का शोर सुन पडा, दत्ता सिंधिया उसके सामने युद्ध करता हुआ मारा गया और शाह दुर्रानी ने सिकदरा के पास छावनी डाला तब शुजाउद्दौला नजीब खाँ के कहने से वचन लेकर दस सहस्त्र सवारो के साथ जाकर शाह से मिला और सदाशिव भाऊ[1] के युद्ध में उचित प्रयत्न कर प्रशसित हुआ। अहमदशाह अपने देश लौटते समय हिंदुस्तान का राज्य सुलतान आली गौहर को और प्रधान मंत्रित्व शुजाउद्दौला को दे गया। उस समय आली गौहर साम्राज्य की गद्दी पर सुशोभित था और शाह आलम बहादुर की पदवी से प्रसिद्ध था। शुजाउद्दौला ने अवध प्रांत पहुँचकर एक प्रार्थनापत्र शाह आलम बहादुर के दरबार मे शीघ्र पहुँचने के निवेदन सहित लिखकर भेज दिया क्योकि अपने पिता आली कद्र अजीजुद्दीन बादशाह आलमगीर द्वितीय की सन् ११७३ हि० में मृत्यु होने के बाद उसने बिहार बंगाल के बीच अपनी राजगद्दी का समारोह किया था। स्वयं कर्मनाशा नदी तक स्वागत कर यह सेवा में उपस्थित हुआ। जब बादशाह ने सन् ११७४ हि० में जाजमऊ के पास पहुँचकर छावनी डाली तब अन्तर्वेद के महाल, जिनसे तात्पर्य गंगा और जमुना के बीच के स्थित बस्तियो से है और जो लगभग दस वर्ष से मराठो के अधिकार मे थे, बादशाह के अधीन हुए। सन् ११७५ हि० मे बादशाही सेना ने जमुना नदी पारकर कालपी के चारो ओर के प्रांत तथा दुर्ग झांसी को मराठों से ले लिया। इसी वर्ष शुजाउद्दौला वजोरी का खिलअत, मोती की माला और जड़ाऊ कलमदान पाकर सम्मानित हुआ। इसके बाद यह बादशाह के साथ बंगाल की ओर गया और फिरंगी सेना से, जिसने वहाँ अधिकार कर लिया था, परास्त हुआ। बादशाह ने टोपी पहिरनेवालो से भेट किया। शुजाउद्दौला इलाहाबाद जाकर सेना एकत्र करने लगा। दूसरी बार बक्सर के पास फिरंगियो से

गया। रघुनाथ राव ने मई सन् १७५८ ई० मे लाहौर पर अधिकार कर लिया और तैमूर शाह को भगा दिया। इसी समय इसने तीस सहस्त्र सेना दत्ताजी सींधिया तथा मल्हार राव होल्कर के अधीन नजीबुद्दौला पर भेजा जिसने इसे शुकरताल मे घेर लिया। तीसरी सेना ने गोविंद पंत बुंदेला के अधीन रुहेल खंड पर चढाई की जिसे शुजाउद्दौला ने परास्त कर भगा दिया और रुहेलों को कुछ समय के लिये शांति मिली।

१. पानीपत का तृतीय युद्ध पौष शुक्ल ८ बुधवार सं० १८१८, १४ जनवरी सन् १७६१ ई० को हुआ था। मराठों का प्रधान सेनापति सदाशिव राव भाऊ था।

युद्ध हुआ और इस वार भी कड़ी पराजय हुई और सामान नष्ट हुआ। निरुपाय होकर यह हाफिज रहमत खाँ की शरण मे गया। उसने अनेक प्रकार का ओछापन दिखलाया और बचे हुए माल पर दृष्टि डाली। अन्त में गंगा नदी तक फर्रुखाबाद के पास पहुँचकर इसने अहमद खाँ बंगश से सहायता माँगी पर उसने भी जान छुड़ाया। अब इसने तीसरी बार एमादुल्मुल्क तथा मल्हार राव होल्कर के साथ उनसे युद्ध करने का निश्चय किया। उन्होंने थोड़ी सेना साथ भेजी और साधारण युद्ध हुआ। होलकर काल्पी की ओर और एमादुलमुल्क जाटो के राज्य में चले गए। तब इसने टोपवालो से संधिकर नाम की वजारत पर संतोष किया। कुछ वर्ष तक फिरंगियों की सहायता से यह अपने प्रांतों का प्रबंध करता रहा और उनको उस प्रांत की आय में साझीदार बनाया। सन् ११७३ हि० मे उन्ही की सहायता से हाफिज रहमत खां पर, जो अली मुहम्मद खां रुहेला का एक मित्र था और उसकी मृत्यु पर उसके अधिकृत महालों के एक भाग पर अधिकार कर सर्दारी कर रहा था, चढ़ाई कर मार डाला। उसी वर्ष कई बीमारियो के बढ़ने से इसकी मृत्यु हो गई। इसका पुत्र, जो इस ग्रन्थ के लिखने के समय उसका स्थानापन्न उस प्रांत में था, मिर्जा अमानी था, जिसकी पदवी आसफुद्दौला थी पर फिरंगी उसके गालिब जागीरदार थे।

शुजाउद्दौला के नाम के साथ अहमदशाह दुर्रानी का भी नाम आ गया है इसलिए उसका भी कुछ वृत्तांत लिख देना उचित जान पड़ता है। कहते हैं कि यह वास्तव मे नादिरशाह का एक मित्र था और उसके वीरो मे भर्ती था। इसके अनंतर अंत में मनकशाही हुआ। नादिरशाह की मृत्यु पर कंधार और काबुल का स्वामी बन गया और सिक्का तथा खुतबा अपने नाम करा लिया। सात बार यह हिंदुस्तान आया। पहली बार यह सन् ११५१ हि० में नादिरशाह के साथ आया। दूसरी बार सन् ११६१ हि० में आया और शाहजादा अहमदशाह सर्दारों के साथ उससे युद्ध करने गया। इसी युद्ध में कमरुद्दीन खाँ गोला लगने से मारा गया और दुर्रानीशाह काबुल तथा कंधार चला गया। तीसरी बार सन् ११६२ हि० में और चौथी बार सन् ११६५ हि० में आया। दोनों ही बार मुईनुल् मुल्क से युद्ध हुआ और अन्तिम बार मुईनुल् मुल्क ने उससे भेंट की तथा उसकी ओर से लाहौर में रहने लगा। पांचवी बार सन् ११७० हि० में दिल्ली तक पहुँचकर इसने आलमगीर द्वितीय से भेंट की और उसके भाई इज्जुद्दीन की पुत्री का अपने पुत्र तैमूरशाह से निकाह पढाया। इसके बाद सूरजमल जाट को दंड देने का साहस किया और फिर लौट आया। इसी समय मुहम्मदशाह की पुत्री से अपना विवाह किया। छठी बार सन्

१. अंग्रेजो से तात्पर्य है।

११७३ हि० में यह आया और इसी समय दत्ता सींधिया को मारा तथा सिकंदरा में मे छावनी डाली। दूसरे वर्ष सदाशिव राव उर्फ भाऊ को बहुत सेना के साथ मार डाला और काबुल लौट गया। सातवीं बार सन् ११७५ हि० में आकर इसने सिक्खों को पूरा दंड दिया। नूरुद्दीन खाँ दुर्रानी को, जो श्रेष्ठ वजीर शाहवलीखाँ के प्रसिद्ध पुत्रों में से है, काश्मीर के सूबेदार सुखजीवन पर नियत किया।

सुखजीवन काबुल का निवासी खत्री था। यह पहले शाह के मंत्री शाह वलीखाँ का मुत्सद्दी था। एक बार दुर्रानी शाह ने इसको काबुल से रुपया वसूल करने को मुईतुल् मुल्क के यहाँ भेजा था। जब सन् ११६७ हि० मे शाह दुर्रानी ने अब्दुल्ला खाँ एशक आकासी को काबुल से काश्मीर पर अधिकार करने को भेजा और उसने आलमगीर द्वितीय की ओर से नियुक्त सूबेदार को काश्मीर से निकालकर अब्दुल्ला खाँ उर्फ कीचक ख्वाजा को अफगान सेना के साथ वहाँ का प्रतिनिधि बनाकर छोडा तथा सुखजीवन को दीवान नियत कर स्वयं लौट गया। कुछ दिन बाद सुखजीवन ने अफगान सर्दार को मार डाला और ख्वाजा कीचक को पहले कैद कर लिया और फिर काश्मीर से बाहर कर दिया। इसने पूरे प्रात के खालसा तथा मसाबदारों की जागीर सभी को जब्त कर लिया। सुखजीवन गुणी तथा सभ्यता के नाते इस्लाम के बहुत पास था। प्रतिदिन दीवान से उठने पर दो सौ मुसलमानों को अच्छे खाने खिलाता था। हर महीने की बारहवीं तथा ग्यारहवीं को पका हुआ भोजन बाँटता था। बाहर से आने वाले फकीर या दूसरों का हर एक का उचित सत्कार करता। प्रति सप्ताह एक बार कविसभा करता था, जिसमे सभी फारसी के काश्मीर के कवि उपस्थित होते। मजलिस के अन्त में भोज दिया जाता।

नूरुद्दीन खाँ के पास पहुँचने पर सुखजीवन ने एक सेना भेजी कि जब्बाल दर्रे को दृढ़कर वहीं रोकने के लिए ठहरे। दुर्रानियों ने घोर युद्ध के बाद इन्हे परास्त कर दिया और कश्मीरियों को जब्बाल दर्रे से हटाकर बहुतों को मार डाला तथा उनके पीछे पीछे कश्मीर नगर पहुँचे। सुखजीवन ने बचे हुए लोगों के साथ सामना किया। इसने शक्ति के अनुसार बहुत हाथ पैर मारा, पर अंत मे कश्मीरी युद्ध न कर हार गए। सुखजीवन परिवार सहित कैद हो गया। दुर्रानी शाह ने विजय के बाद नूरुद्दीन खाँ को काश्मीर का नायब नियत किया।

६४८. शुजाउल्मुल्क, अमीरुल्उमरा

यह निजामुल्मुल्क आसफजाह का पाँचवाँ पुत्र था। इसका वास्तविक नाम मीर मुहम्मद शरीफ[1] था। पिता के सामने ही इसे खाँ और बसालतजंग की पदवी मिल चुकी थी। सलाबत जंग के राज्य मे इसे बीजापुर की सूबेदारी मिली और कुछ दिन बाद अपने भाई सलाबतजंग के पास आने पर यह गृहकार्य के प्रबंध का वकील हुआ। सन् ११७२ हि० मे निजामुद्दौला आसफजाह यौवराज्य के पद के संबंध में, जो पहले ही उसके नाम हो चुकी थी, बरार से सलाबतजग से भेंट करने के लिये पास पहुँचा तब इसने सलाबतजंग के पास अपना रहना उचित न समझ कर अपना कार्य छोड अपने प्रांत की ओर जाने का विचार किया। जब उक्त आसफ जाह सलाबजंग के अनुचित व्यवहार को देखकर उससे अलग हो हैदराबाद के पास राजबंदरी की ओर भेंट वसूल करने के लिए चला गया तब यह पुन. सलाबतजंग के पास पहुँचकर पहले के समान कार्य करने लगा। महलो से आय के कम उतरने और सिपाहियो का वेतन बढते चलने से स्वार्थी मित्रगण, जो केवल लाभ के साथी थे, प्रबंध ठीक न समझकर अलग हो गये। इसके अनन्तर जब दक्षिण की सूबेदारी निजामुद्दौला आसफजाह को मिली तब कुछ दिन तक दिखाव में काम चलता रहा पर शंका बराबर बढती चली गई। जब कार्य उन्नति पर न रहा और बीजापुर प्रांत के कितने महालो पर मराठो तथा हैदरअली खाँ का, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है, अधिकार हो गया तब भी इस ग्रन्थ के लिखने के समय कुछ महालो पर जैसे इम्तियाजगढ अदोनी और फिरोज गढ रायचूर पर संतोष कर यह समय व्यतीत करता रहा।

o

६४६. शेख मीर खवाफी

यह अच्छे वंश का सैयद था। यह औरंगजेब की शाहजादगी के समय से उसका स्वामिभक्त सेवक था और अपनी प्रत्युत्पन्नमति तथा वीरता के लिए प्रसिद्ध था। शाहजहाँ के ३०वें वर्ष मे जब उक्त शाहजादा पिता की आज्ञा से हैदराबाद के सुलतान पर सेना ले गया तब यह भी शाहजादा मुहम्मद सुलतान के साथ हरावल मे था। शत्रु को दंड देने में बहुत प्रयत्न कर यह गोली लगने से घायल हो गया। जिस वर्ष औरंगजेब पिता की बीमारी के बहाने हिंदुस्तान की ओर रवान. हुआ तब यह भी उसके भेद जाननेवालों में से एक था। महाराज यशवन्तसिह के युद्ध में

यह दाएँ भाग मे एक सर्दार था और दाराशिकोह के प्रथम युद्ध में अल्तमश का अध्यक्ष था। युद्ध में इसने बड़ी वीरता दिखलाई और उसके उपलक्ष्य में इसे खास खिलअत मिला। इसके बाद जब सूचना मिली कि सुलेमान शिकोह गंगा और जमुना नदी पार कर चाहता है कि अपने पिता से जाकर मिले, जो लाहौर की ओर चला गया था तब यह दूसरे सर्दारो के साथ उसका मार्ग रोकने पर नियत हुआ। सुलेमान शिकोह के श्रीनगर की ओर चले जाने पर यह दरबार आकर दाराशिकोह का पीछा करने को मुलतान की ओर भेजा गया। यह ठट्टा तक पीछा करता गया पर जब वह गुजरात मे ठट्टा से होकर चला गया तब उसी समय इसे लौटने का आज्ञापत्र मिला, जिससे यह शीघ्रता से लौटकर दरबार पहुँचा। दारा शिकोह के साथ के द्वितीय युद्ध मे यह फिर अल्तमश का सर्दार नियत हुआ। धावे के दिन कुल सेना से आगे बढ़कर इसने शाहनवाज खाँ सफवी के मोर्चे पर आक्रमण कर खूब युद्ध किया। इसी समय सन् १०६८ हि० मे एक गोली इसकी छाती मे लगी, जिससे इसकी मृत्यु हो गई। इसका एक देशवासी मीर हाशिम, जो हौदे पर इसके पीछे बैठा था, अवसर न चूककर इसे पकड़कर बैठा रखा। औरंगजेब ने इस घटना को सुनकर इसकी पुरानी सेवाओ तथा स्वामिभक्ति का ध्यान कर शोक किया और आज्ञानुसार यव शाह मुईनुद्दीन के रौजा मे गाड़ा गया। इसके पुत्र मुहतशिम खाँ मीर इब्राहीम और अकरम खाँ मीर मुहम्मद खाँ मीर मुहम्मद इसहाक थे। इन दोनो का वृत्तांत अलग दिया गया है। तीसरा पुत्र मीर मुहम्मद याकूब था, जो अंत में शमशेर खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपने भाइयों मे यह साहस के लिए प्रसिद्ध था। यह अपने भाई अकरमखाँ के साथ अफगानों को दंड देने के लिए जानूस घाटी की ओर नियत हुआ। १८वें वर्ष में अन्तिम युद्ध में, जिसमें अफगान विजयी हुए, दृढता से डटकर युद्ध करते हुए मारा गया।

•

६५०. शेर अफगन खाँ अलीकुली बेग इस्तजलू

यह ईरान के शाह इस्माइल द्वितीय का सफरची था, जिसकी मृत्यु के बाद यह कंधार के मार्ग से हिंदुस्तान आया और मुलतान मे सेनापति नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ से मिला, जो ठट्टा पर अधिकार करने जा रहा था। उसकी कृपा के द्वारा बादशाही सेवकों में भर्ती होकर इसने अच्छी सेवा तथा वीरता दिखलाई। जब खानखानाँ उस चढाई पर से विजयी होकर लौटा तब उसकी प्रार्थना पर इसे योग्य

मंसब मिला। अकबर ने इसी समय गियास बेग तेहरानी की पुत्री मेह्रुन्निसा[1] का इससे विवाह करा दिया, जो बयूतात का दीवान था।

कहते हैं कि मिर्जा गियास की स्त्री बादशाही महल में बराबर जशन आदि में जाया आया करती थी। मेह्रुन्निसा भी, जो नूरजहाँ नाम से प्रसिद्ध हुई, प्राय: माँ के साथ वहाँ जाती थी। दैवयोग से शाहजादा सलीम, जिसका यौवनकाल था, उस पर रीझ गया। जब इस बीज में फूल खिले तब बादशाह को गुप्त रूप से इसका पता लगा। उसने तुरन्त अलीकुली से इसका निकाह पढवा दिया। जब शाहजादा राणा की चढाई पर नियत हुआ तब अली कुली बेग भी उसके साथ भेजा गया। शाहजादे ने इस पर बहुत कृपा दिखलाई और शेर अफगन खाँ की पदवी दी। जहाँगीर की राजगद्दी पर यह बर्दवान का जागीरदार नियत हो वहाँ गया, जो बंगाल और उड़ीसा के बीच मे स्थित है। यह स्वयं कर्मठ था अत: अपने ताल्लुके में इसने साहस तथा वीरता के काम किए। जहाँगीर ने बंगाल के सूबेदार कुतुबुद्दीन खाँ कोकल्ताश[2] को भेजते समय इसके बारे में दो बातें कही थीं, जिसकी अपने वकील द्वारा लिखित सूचना पाने पर यह कुढ गया और समझ गया कि प्याले के नीचे टूटी तश्तरी है। उस दिन से शस्त्र बाँधना छोड़कर यह वाकेआनवीसो तथा शाही आदमियो से से कहता कि वह अब बादशाही नौकर नहीं है। जब २रे वर्ष में कुतुबुद्दीन खाँ बर्दवान पहुँचा तब शेर अफगन खाँ, जिसने बाहर खेमा लगा रखा था, स्वागत को रवाना हुआ।

कहते हैं विदा करते समय इसकी माता ने इससे कहा था कि इसके पहले कि तेरी माँ रोवे उसकी माँ को रुला देना और इसके अनंतर इसके सिर तथा आँख को चूमकर विदा किया। यद्यपि शेर अफगन को कोकल्तश के कपट और फरेब से शांति न थी पर सात्वनापूर्ण संदेशो को पाकर मृत्युग्रस्त हो यह अपनी सेना बादशाही सेना के बाहर छोड़कर दो सवार के साथ, जिनमें एक ख्वाजासरा था, भेंट करने चला गया। इसके अनंतर कोकल्ताश की चाल से रुष्ट हो तथा उसकी बात से उसे अपना विरोधी समझकर इसने शीघ्रता की तथा कुतुबुद्दीन खाँ का काम समाप्त कर दिया। कोकल्ताश के आदमियो ने इसे चारों ओर से घेर रखा था इसलिये इसे भी न छोडा कि निकल जाय। 'मजलूम' (सन् १०१६ हि०)[3] से इसके मारे जाने की तारीख निकलती है।

---

१ प्रसिद्ध नूरजहाँबेगम।

२. वही।

३. सन् १६०७ ई०।

ऐसा भी कहा जाता है कि शेर अफगन खाँ ने असंख्य घावों को खाकर, जिनमें प्रत्येक घातक था, अपने साहस तथा लज्जा की रक्षा के लिए घर पहुँचकर चाहा कि अपनी स्त्री को मार डाले। उसकी माँ ने रोते गाते आकर कहा कि उसकी स्त्री कुएँ में कूद पड़ी है। शेर अफगन यह सुनकर मर गया। परन्तु यह घटना वर्णन इक़बालनामा जहाँगीरी के विरुद्ध है। इस घटना के बाद कुतुबुद्दीन खाँ के भाजे शेख गियास ने मेहरुन्निसा को उसकी पुत्री तथा पुत्र, जो शेर अफगन से थे, और उसकी सम्पत्ति को साथ लेकर दरबार पहुँचा दिया। यह अपने पति के दोष के कारण, जिसने बादशाह के धायभाई को मार डाला था, दंडित रही। जब जहाँगीर से इसका निकाह हो गया तब इसकी पुत्री का निकाह बादशाह के सबसे छोटे पुत्र सुल्तान शहरयार से हुआ। इसी कारण युवराज शाहजहाँ का शत्रु होकर यह बड़े उपद्रव की जड़ बन गई, जिसका विवरण इस ग्रंथ में स्थान पर दिया हुआ है।

•

६५१. शेर खाँ

यह नाहर खाँ तौनूर नाम से भी प्रसिद्ध था इसके पूर्वज खानदेश के फारूकी वंश के पुराने सेवक थे। यह अभी बच्चा था कि इसका पिता मारा गया। राजा अली खाँ फारूकी ने इसका अनाथावस्था में पालन किया और यह अपनी योग्यता तथा भाग्य से जीविका की खोज में खानजहाँ लोदी के पास पहुँचा। उसने इसकी योग्यता तथा शिक्षा से परिचित होकर थोड़े ही समय में बादशाही मंसब दिलाकर गुजरात में नियत करा दिया। जिस समय युवराज शाहजादा तथा जहाँगीर बादशाह में झगड़ा हो गया उस समय गुजरात की सूबेदारी की नाएबी शाहजहाँ की ओर से अब्दुल्ला खाँ को मिली और उसकी ओर से एक निर्धन ख्वाजासरा अहमदाबाद नगर का अध्यक्ष होकर आया। नाहर खाँ ने मिर्जा सफी सैफ खाँ के व्यवहार तथा मित्रता के कारण, जो उस समय गुजरात का दीवान था, अपनी जागीर के महाल से शीघ्र अहमदाबाद पहुँचकर सैफ खाँ के साथ नगर पर अधिकार कर लिया। अब्दुल्ला खाँ माडू में यह समाचार पाकर फुर्ती से युद्ध के लिए आ पहुँचा। नाहर खाँ स्वयं सैफ खाँ की सेना का हरावल हो गया और शत्रु पर आक्रमण कर दिया। ईश्वरी कृपा से यह विजयी हो गया और इसके उपलक्ष्य में इसे दरबार से तीन हजारी २५०० सवार का मंसब और शेर खाँ की पदवी मिली।

जहाँगीर की मृत्यु के अनंतर जब शाहजहाँ गुजरात की सीमा पर पहुँचा तब शेरखाँ का प्रार्थनापत्र स्वामिभक्ति तथा अधीनता से भरा हुआ और वहाँ के सूबेदार सैफ खाँ के कुविचारों को प्रकट करता हुआ मिला। सैफ खाँ के वैमनस्य का पहले ही से पता था इसलिए शेरखाँ के लेख को सत्य माना गया। शाहजहाँ ने शेरखाँ को बादशाही कृपा से संतुष्ट कर तथा गुजरात की सूबेदारी देने को कहकर अपनी सेवा में दत्तचित्त कर लिया। यह भी संकेत हुआ कि यह अहमदाबाद पर अधिकार कर सैफ खाँ कैद कर ले। जब बादशाह अहमदाबाद से बारह कोस पर महमूदाबाद पहुँचे, तब शेरखाँ निश्चिन सेना के साथ सेवा में उपस्थित हुआ। १७ रबीउस्सानी सन् १०३७ हि० को कांकरिय: तालाब के किनारे, जो नगर के बाहर स्थित है, बादशाही पड़ाव पड़ा और यहीं शेरखाँ का मंसब बढ़कर पाँच हजारी ४००० सवार का हो गया तथा यह गुजरात की सूबेदारी पाकर सम्मानित हुआ। जिस वर्ष शाहजहाँ खानजहाँ लोदी को दमन करने के लिए बुर्हानपुर पहुँचा और ख्वाजा अबुल्हसन तुरबती को नासिक व सङ्गमनेर विजय करने भेजा, उस समय निश्चय हुआ कि गुजरात से शेरखाँ के पहुँचने तक लिलंग दुर्ग के पास यह वर्षा ऋतु व्यतीत करे। ख्वाजा धौलिय: में ठहरा रहा, जिसमें शेरखाँ उसके पास पहुँच जाय। पहुँचते ही यह चाँदोर के आस पास धावा करने पर नियत होकर उस प्रांत में लूट मार करने लगा और बहुत सी लूट बटोर कर लौटा। इसके बाद उस प्रांत के लूटमार की जब्ती में यह ख्वाजा का बराबर सहयोगी रहा। ४ थे वर्ष सन् १०४० हि० में शेरखाँ की मृत्यु हो गई।

यह सैनिक सर्दार था और विनम्र था। यद्यपि इसमें दान देने की शक्ति व उदारता कम थी पर यह सेना के साथ अच्छा सलूक करता था। यह वेतन हर महीने के समय पर दे देता। अनुपस्थित पुरुष की सवारी यह काम में लाता था। महल में यह खूब शराब पीता था। आश्चर्य तो इस बात पर है कि इतना ऐश्वर्य रहते हुए भी यह घोड़ों को अपने सामने दाना खिलाता था। कहता था कि मैं जानता हूँ कि इसमें दिक्कत है पर मन में ऐसा ही आया इसलिये इसे नहीं छोड़ सकता। इसके पुत्रों में से यामीन खाँ ने पिता के सामने ही तरक्की की, पर मृत्यु ने उन्हें नहीं छोड़ा। प्रथम डेढ़ हजारी १००० सवार के मंसब तक पहुँचकर पर्वें वर्ष में मर गया। तीसरे का नाम दिलावर खाँ था।

६५२. शेर खाँ तरी

यह फौशंज का जमींदार था, जो पौशंग का अरबी रूप है। यह कंधार और भक्खर के बीच का एक मौजा है। शेरखाँ के पूर्वज बादशाही सेवा में वहाँ का प्रबंध करते थे। जब इसके पिता का शाह बेग काबुली के साथ, जो अकबर की ओर से कंधार का शासक नियत हुआ था, बर्ताव ठीक न बैठा तब यह जहाँगीर के समय ईरान जाकर शाह अब्बास सफवी की सेवा में रहने लगा। शेरखाँ का उसी प्रांत में पालन पोषण हुआ। इसके अनंतर जब शाह अब्बास ने सन् १०३१ हि० में कंधार आकर उस प्रांत पर अधिकार कर लिया तब उसने शेरखाँ को फौशंज का शासन तथा उस प्रांत की जातियों की अध्यक्षता सौंपी। यह दृढ़ बुद्धि तथा दूरदर्शिता के साथ देखने मे उदार तथा भयानक भी था, इसीलिये जब इसे पैतृक जमींदारी मिल गई तब यह वहाँ दृढ़ता से जम गया और एराक तथा हिंदुस्तान के आने जानेवालों से इच्छानुसार मार्गरक्षा का धन बसूल करने लगा। अवसर पाकर यह लूटमार भी कर लेता था। शाह अब्बास की मृत्यु पर विशेष उपद्रव करने के कारण कंधार के शासक अलीमर्दान खाँ से भी वैमनस्य कर उसकी इसने अधीनता छोड़ दी। यह ईरान के शाह सफी के यहाँ दो बार पहुँच चुका था और इसके उत्पीड़न तथा लूट से काफिलो तथा व्यापारियो का आना जाना आराम से नहीं हो सकता था इसलिये इसके वेतनमद्धे धन भेजा गया। शेरखाँ ने कुछ दिन ढिलाई में व्यतीत किया। अंत में कुछ विचार करके यह शाहजहाँ के यहाँ प्रार्थी तथा शरणागत हुआ। दरबार से कृपा का आदेश पत्र और अच्छा खिलअत कश्मीरी खाँ के हाथ भेजा गया, जो कश्मीर का एक ब्राह्मण था और जिसने शाहजहाँ की शाहजादगी के समय सेवा मे रहते हुए इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था तथा विप्लव के समय अच्छी सेवा की थी। यह ईरानियों की विशेष पैरवी करता था। शेरखाँ ने बर्फ तथा वर्षा का बहाना कर कश्मीरी खाँ को भक्खर में रोक रखा जिससे शाह को इसकी सूचना मिली और उसने दूसरी रकम भी कृपा करके इसके पास भेजी। गुप्त रूप से अलीमर्दान खाँ को संकेत भी किया गया कि उसे दमन करने का अवसर देखता रहे। शेरखाँ ने मर्व मे दूसरी रकम को इच्छानुकूल पाकर कश्मीरी खाँ को बैरंग लौटा दिया।

जब ४थे वर्ष में शेरखाँ वहाँ के पहाड़ी अफगानों को एकत्र कर कुंजाब: की ओर, जो भक्खर के पास है, धावा करने के लिये रवाना हो गया तब अलीमर्दान खाँ अवसर पाकर चार सहस्त्र सवारों के साथ, जो कंधार के नौकर तथा जमींदार थे, धावा कर फौशंज दुर्ग पहुँचा और उसे बड़ी सवारी लेकर शेरखाँ के परिवार को कैद कर लिया। डाँकूपन तथा इसी प्रकार संचय किए हुए बहुत सामान के

साथ उन सब को कंधार भेजकर स्वयं वही ठहर गया। शेरख़ाँ इस होश उडानेवाले समाचार को सुनकर कुंजाब की लूट तथा कैदियो को, जो इसने हथिया लिए थे, लौटा कर बड़ी फुर्ती से इस ओर बढा। अलीमर्दान खाँ ने मार्ग ही में युद्ध की तैयारी की। यद्यपि पहले कजिलबाशो का हरावल पीछे हट गया पर अली मर्दान खाँ मध्य मे डटा रहा। इसी समय बंदूक की गोली उसकी एडी मे लगी, पर उसे छिपाकर और ऐसे बुरे घाव के रहते भी कुछ आगे बढ़कर अपने सैनिको को प्रोत्साहित करते हुए ठहरा रहा कि शत्रु परास्त होकर भाग खडे हुए। अली मर्दान खाँ ने विजयी होकर कंधार लौटने का डंका पिटवा दिया। शेरखाँ ने दौकी जाकर बहुत प्रयत्न किया कि किसी प्रकार काम बने, पर कुछ न हो सका तब निरुपाय होकर स्वदेश छोड़ अहमद बेग खाँ की शरण मे गया, जो मुलतान के शासक यमीनुद्दौला का नायब था, और ५वें वर्ष सन् १०४१ हि० मे शाहजहाँ की सेवा मे भर्ती हो गया। इसे दो हजारी मंसब तथा पंजाब प्रांत मे जैद जागीर वेतन मे मिली और यह पुरस्कार मे बीस सहस्त्र रुपए नकद कई किश्तों में पाकर कृपापात्र हुआ। परतु यह अपने सतानो को कैद तथा परिवार के अस्त व्यस्त हो जाने से बहुत दुखी था और दिन रात उनके लिये रोता रहता था यद्यपि शाह इसके लोगो को सम्मान से रखे हुए था। यह शकल सूरत मे अच्छा था और बुद्धिमानी से पहाडियो मे संमानित भी था इसलिये बादशाह की सेवा मे इसकी प्रतिष्ठा बराबर बढ़ती गई। इसने भी स्वामिभक्ति के लिये दृढता से कमर बाँधकर परेंद: के घेरे में शाहजादा मुहम्मद शुजाअ के साथ और ९वें वर्ष मे सैयद खानजहाँ के साथ आदिलशाह को दंड देने तथा उसके राज्य को लूटने मे बहुत प्रयत्न किया। परंतु यहीं से इसके भाग्य ने फिर पलटा खाया, क्योकि अभी इसके दुष्कर्मों का पूरा फल नही मिल चुका था। प्रकट में लोगो ने शाह सफी सफवी से यह कहा कि शेरखाँ कंधार विजय कराने का वचनबद्ध हुआ है और इस सेवा के लिये उसने साहस बाँधा है। वह जानकार तथा स्वजाति का सर्दार है और तरीं जाति के सिवा आस पास की अन्य जातियाँ भी जैसे काकिर, पन्नी उससे संबंधित हैं, इसलिये वह इस कार्य को स्यात् कर बैठे। शाह ने उचित समझकर एक लेख उसके नाम भेजा, जिसमे उसके प्रार्थनापत्र का उल्लेख था तथा जिसमे इसने अपनी पुरानी सेवा तथा स्वामिभक्ति का और किसी बहाने हिंदुस्तान से लौट आने की इच्छा का विवरण दिया था और यह पत्र बादशाही आदमियो को पकडा दिया गया। जब यह शाहजहाँ को ज्ञात हुआ तब इसका मसब और जागीर छिन गई तथा दरबार मे आने की मनाही हो गई। १२वें वर्ष मे जब बादशाह पंजाब की ओर गए तब इसे साथ न लेकर आगरे में नजरबंद कर एक सहस्त्र रुपया मासिक

बाँध दिया। इसने अपनी निर्दोषिता के लिये बहुत प्रयत्न किया और सफाई के लिये दौड़ धूप की पर कुछ फल न निकला। दो तीन वर्ष आगरे में एकांतवास करने पर बीमार हो जवानी ही में मर गया। शोक कि यह दगा-बाज वक्रगति आकाश ने झूठ को सच्चा बनाकर छोटे बड़े सबके मन में बैठा दिया और सच्चे नियम पालन करनेवालों को नष्ट कर शत्रु को सफल कर दिया। यदि समझदारी से पता न लगावें तो अफसोस, वह इस कुमार्गगमन तथा कपट का आदी है कि बदले तथा कर्मफल के रूप में इसे मिसाल बना दिया है। मिसरा का अर्थ—हमारे कर्मों का रूप है, जो हमें पहुँचता है।

•

६५३. शेरखाँ सैयद शहाब बारहा

यह सैयद इज्जत खाँ जहाँगीरी का पुत्र था। १०वें वर्ष शाहजहानी में इसका मंसब आठ सदी ६०० सवार का था। १२वें वर्ष में २०० सवार बढ़ाए गए। १९वें वर्ष में यह शाहजादा सुलतान मुराद बख्श के साथ बलख व बदख्शाँ में नियत हुआ और विदा के समय इसे घोड़ा तथा खिलअत मिला। २२वें वर्ष में सुलतान मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ यह कंधार की चढ़ाई पर गया और वहाँ पहुँचने पर रुस्तम खाँ के साथ कुलीज खाँ की सहायता को भेजा गया। कजिलबाशों के साथ युद्ध करने में इसने अच्छी वीरता दिखलाई। २३वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी ६०० सवार का हो गया। २५वें वर्ष में खिलअत और चांदी के साज सहित घोड़ा पाकर इसने उक्त शाहजादे के साथ फिर उसी चढ़ाई पर नियत होकर वीरता दिखलाई। २६वें वर्ष में सुलतान दाराशिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर जाकर इसने साहस दिखलाया। २७वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दोहजारी ७०० सवार का हो गया। २८वें वर्ष में उम्दतुल्मुल्क सादुल्ला खाँ के साथ यह दुर्ग चित्तौड़ तोड़ने गया। ३०वें वर्ष में मुअज्जम खाँ के साथ यह सुलतान औरंगजेब के पास दक्षिण गया और वहाँ अच्छी सेवा करता रहा। ३१वें वर्ष में यह आज्ञानुसार दरबार आया तथा इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी १२०० सवार का हो गया। इसे शेर खाँ की पदवी और मंदसोर की फौजदारी भी मिली। सामूगढ़ युद्ध में यह दाराशिकोह के साथ था। जब दाराशिकोह परास्त होकर भागा तब यह औरंगजेब की सेवा में पहुँचकर सुलतान शुजाअ के युद्ध में जुल्फिकार खाँ मुहम्मद बेग के अधीन हरावल के आगे तोपखाने में रहा।

•

६५४. शेर ख्वाजा

यह इटावा का (इटाई) एक सैयद था और मातृपक्ष से नक्शबंदी था। इसका नाम बादशाह ख्वाजा था। इसके वीरतापूर्ण प्रयत्नों से अकबर ने इसका नाम शेर ख्वाजा रख दिया था। ३०वें वर्ष में सईद खाँ चगत्ता के साथ यह यूसुफजई चढ़ाई पर नियत हुआ। इसके अनंतर शाहजादा सुलतान मुराद के अधीन यह दक्षिण की चढ़ाई पर नियुक्त किया गया। ४०वें वर्ष में शाहजादे द्वारा कुछ आदमियों के साथ पट्टन भेजे जाने पर इसने इखलासखाँ की चढ़ाई में बहुत प्रयत्न किया। ४१वें वर्ष में बादशाही सेना का दक्षिण की सेना से युद्ध हुआ और इसमें खानदेश का शासक राजा अली खाँ मारा गया।[1] इस युद्ध में दाएँ भाग के एक टुकडी का नायक रहकर इसने वीरता दिखलाई। इसके बाद शेख अबुल् फजल के साथ दक्षिण ही में रहकर इसने बहुत अच्छी सेवा की। बीड़ कस्बे के पास के युद्ध में इसने अपने सामने की शत्रु सेना को भगा दिया और स्वयं घायल होकर बीड़ में पहुँचा। जब दक्षिण की भारी सेना ने आकर उक्त कस्बे को घेर लिया और रसद की कमी से घिरे हुए लोगों को कष्ट होने लगा तब घोड़ों का मांस खाकर सबने कुछ दिन व्यतीत किए। जब गंगा[2] नदी के बाढ़ के कारण सहायता की आशा नही रह गई तब इसने विचार किया कि युद्ध करते हुए मारे जायँ। इसी समय शेख अबुल्फज्ल यह समाचार पाकर ससैन्य वहाँ आ पहुँचा और घेरावाले वहाँ से हट गए। भेंट होने पर शेख ने चाहा कि अपने पुत्र अब्दुर्रहमान को थाना बीड़ में छोड़ जाय पर ख्वाजा ने स्वीकार नही किया और आप ही रहना चाहा। इस कारण ४६वें वर्ष मे इसे डंका व झंडा मिला। अकबर की मृत्यु पर जहाँगीर ने इसके लिये खिलअत भेजा।[2] यह ज्ञात नहीं हुआ कि यह किस समय दरबार आया। व्यास नदी के किनारे जब महावतखाँ से बड़ी उद्दंडता हुई थी उस समय यह जहाँगीर के साथ था और उसकी मृत्यु पर आसफखाँ के साथ शहरयार के युद्ध में रहा। शाहजहाँ के राज्य के १म वर्ष में यह सेवा में पहुँचा और इसे चार हजारी १००० सवार का मंसब तथा ख्वाजा बाकी खाँ की पदवी मिली। यह ठट्टा का सूबेदार नियत होकर वहाँ भेजा गया, पर मार्ग में सन् १०३७ हि० सन् १६२८ ई० मे यह मर गया। इसके पुत्र ख्वाजा हाशिम को पाँच सदी मंसब मिल चुका था।[3]

---

१ नवाब अब्दुर्रहीमखाँ खानखाना तथा सुहेलखाँ दक्खिनी के बीच जो युद्ध हुआ था उसी से तात्पर्य है।

२. गगा नदी से गोदावरी नदी से तात्पर्य है, जिस पर बीड़ बस्ती है।

३. ज्ञात होता है कि यह बहुत वर्षों तक बीड़ में नियत रहा।

४. इसके एक अन्य पुत्र असदुल्ला का बादशाहनामा भाग दो में उल्लेख है जिसे नौसदी ३०० सवार का मंसब मिल चुका था।

६५५. शेख्य : खाँ

यह कूच वेग के पुत्र शेर अफगन का लडका था। कूच वेग हुमायूं बादशाह के पुराने सेवको में से था। अफगानो से बादशाही सेना के पराजित होने पर जब समय न रह गया तब इसे दूसरों के साथ बादशाह की बेगम मरियम मकानी को लाने के लिये भेजा। यह सरापर्दा के द्वार पर मारा गया। जब बादशाह को एराक की यात्रा करनी पडी तब शेर अफगन कामरां के साथ काबुल में रह गया। हुमायूं के एराक से लौटने पर यह कामरां पर भरोसा न कर बादशाह के पास चला आया और किलात का शासक नियत हुआ। इसके बाद कहमर्द, जुहाक और बामियान इसे जागीर में मिला। मिर्जा कामरां का काबुल पर अधिकार हो जाने से लोभ मे पडकर यह उसके पास पहुँचा। युद्ध के दिन मिर्जा के साथ पकडे जाने पर इसे प्राणदड मिला। इसका पुत्र शेख्य : अकबर की सेवा मे आकर पहले मुनइम खां खानखानां के सहायको में बंगाल में नियत हुआ। उडीसा की सीमा पर दाऊद अफगान से जो युद्ध हुआ था उसमें इसने बड़ी वीरता दिखाई। इसके अनंतर २६वें वर्ष मे यह शाहजादा सुलतान मुराद के साथ काबुल प्रांत मे नियत हुआ। इसके बाद मिर्जा खां खानखानां के साथ गुजरात में नियत होकर ३०वें वर्ष मे यह खान आजम कोका के साथ दक्षिण के काम पर भेजा गया। ३२वें वर्ष में इसे खां की पदवी मिली और यह अजमेर का शासक नियत हुआ। यह एक हजारी मंसबदार था।

•

६५६. सआदत खाँ

यह जैन खां कोका के पुत्र जफर खां का लडका था, जिन दोनो का वृत्तांत अलग अलग इस पुस्तक में दिया जा चुका है। सआदत खां जहाँगीर के राज्यकाल में डेढ हजारी ७०० सवार का मसब पाकर काबुल प्रांत के प्रबंधकार्य में अन्य नियुक्त लोगो के साथ लगा हुआ था। शाहजहाँ के राज्य के ५वें वर्ष मे इसका मंसब बढकर डेढ हजारी १००० सवार का हो गया। ९वे वर्ष में २०० सवार बढने से और १०वें वर्ष में ३०० सवार बढने से इसके मंसब के जात तथा सवार की संख्या बराबर हो गई। १२वें वर्ष मे यह शाहजादा मुराद बख्श के साथ बलख और बदख्शां में नियत हुआ। बलख पर विजय प्राप्त करने के बाद यह तरमिज का

दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ और २०वें में इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी २००० सवार का हो गया तथा डंका भी मिलने से यह सम्मानित हुआ। इसके बाद जुमलतुल्मुल्क सादुल्ला खाँ के प्रस्ताव पर इसका पाँच सदी मंसब बढ़ा। तरमिज की अध्यक्षता के समय एक रात्रि, जब बुखारा के शासक ने उजबकों तथा अलअमानो के झुंड एकत्र कर दुर्ग पर रात्रि में आक्रमण कर दिया था, तब इसने महताबियाँ जलाकर नियुक्त मंसबदारो तथा अधीनस्थों के साथ स्वयं दुर्ग के बाहर निकलकर बड़ी वीरता दिखलाई और सुबह की सफेदी आने तक बराबर युद्ध करते हुए उन सबको भगा दिया। इस कार्य के उपलक्ष में इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी २५०० सवार का हो गया। २१वें वर्ष मे जुल्कद्रखाँ के स्थान पर गजनी और दोनो बंगश का अध्यक्ष नियत हुआ।

२२वें वर्ष में यह शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथनियुक्त किया गया, जो आज्ञानुसार कंधार की चढाई पर जा रहा था। उक्त शाहजादा के संकेत पर कंधार प्रांत के अंतर्गत मर्व दुर्ग में कुछ आदमियों को छोड़कर यह स्वयं सेना के साथ मार्ग की रक्षा के लिये करावाग में ठहरा रहा। जब यह प्रगट हुआ कि वह नियुक्त काम को पूर्णरूपेण नही कर सकता तब २३वें वर्ष में दूसरी दो सेनाएँ एक के बाद दूसरी इसकी सहायता के लिये भेजी गईं। इसी वर्ष यह गजनी की अध्यक्षता से हटाया गया। २५वें वर्ष मे इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी ३००० सवार का हो गया और उक्त शाहजादे के साथ यह द्वितीय बार कंधार की चढ़ाई पर गया। जाते समय इसे खिलअत तथा सुनहले जीन सहित घोड़ा मिला। २६वें वर्ष मे जब काबुल की सूबेदारी सुलेमान शिकोह को मिली, तब यह भी शाहजादे के साथ नियत हुआ। इसके अनंतर यह शाहजादा दाराशिकोह के साथ कंधार की चढाई पर गया। २९वें वर्ष मे यह दोनों बंगश का फौजदार मुबारक खाँ नियाजी के स्थान पर नियत किया गया। ३१वें वर्ष में सईद खाँ के पुत्र फतहुल्ला के स्थान पर यह काबुल दुर्ग का अध्यक्ष हुआ। इसके बाद जब साम्राज्य का कार्य औरंगजेब के हाथ मे आया तब उसके जुलूस के द्वितीय वर्ष सन् १०६९ हि०, सन् १६५९ ई० में इसी के पुत्र शेरुल्ला ने इसे जमधर से मार डाला। वहाँ के सूबेदार महाबत खाँ ने आज्ञानुसार कैदकर इसे दरबार भेज दिया।

६५७ सआदतुल्लाह खाँ

यह नवायत जाति का था। औरंगजेब के समय मे जुल्फिकार खाँ के द्वारा यह कर्णाटक हैदराबाद जिले का मुत्सद्दी नियत होकर वहाँ के कार्य को दृढ़ता से पूरा करता रहा और उस स्थान के छोटों और बड़ों के साथ अच्छा सलूक कर इसने नाम कमाया। जब मुबारिज खाँ के मारे जाने पर निजामुल्मुल्क आसफजाह ने उस जिले को लेने की इच्छा की तब इसने अवसर समझकर दूरदर्शिता से उसका स्वागत कर जो धन तैयार था उसे भेंट किया और संमान तथा विश्वास के साथ अपने ताल्लुके पर जाने की छुट्टी पायी। बहुत दिनो तक वह उस स्थान में सुनाम तथा न्याय के साथ रहकर सन् ११४५ हि०, सन् १९३२-३३ ई० में मर गया।[1] इसके अनंतर इसका भतीजा दोस्त अली खाँ वहाँ का शासक नियत हुआ। जब मरहठो ने उस स्थान में उपद्रव मचाया तब यह उनका सामना कर अपने पुत्र सफदर अली खाँ के साथ मारा गया।[2] सआतुल्ला खाँ का दामाद हुसेन दोस्त खाँ उर्फ चंदा साहिब त्रिचिनापल्ली दुर्ग मे था। रघूजी भोसला ने उस दुर्ग का घेरा कर उस पर अधिकार कर लिया और उसको कैद कर लिया। बहुत दिनो तक यह कारागार में रहा और अंत मे धन देने पर छुट्टी मिली। यह बीजापुर जाकर वहाँ के जमीदार की शरण में रहा।[3]

जिस समय मृत नासिरजंग तथा मुजफ्फरगंज मे वैमनस्य पैदा हो गया उस समय चंदा साहिब ने मुजफ्फरजंग का साथ दिया और अर्काट पर दृष्टि रखकर उसे उस प्रांत की ओर लिवा गया। अर्काट के फौजदार अनवरुद्दीन खाँ के मारे जाने पर यह चिचावर की ओर गया, पर घेरा डालने पर कुछ काम न होने से साथ ही लौट आया। युद्ध के समय ही फरासीसियो के साथ मुजफ्फरजंग से अलग होकर यह फूलचेरी बंदर को चला गया। नासिरजंग के मारे जाने के बाद जब मुजफ्फरजंग शासक हुआ तब यह अर्काट का फौजदार नियत हुआ। कुछ ही

---

१. कर्णाटक की नवाबी का यही संस्थापक था पर यह नवाबी फ्रेंच तथा अंग्रेजो के पारस्परिक युद्धो के कारण अधिक न चल पायी।

२. हिस्ट्री ऑव द मराठा पीपुल्स मे (पारसनीस किनकेट कृत भाग २ पृ० २८७ पर) लिखा है कि सफदर अली २ सितंबर सन् १७४२ ई० को मुर्तजा अली द्वारा मारा गया और निजामुल्मुल्क ने इस परिवार से नवाबी लेकर अनवरुद्दीन खाँ को कर्णाटक का नवाब बना दिया।

३. चांदा साहिब ने धोखे से त्रिचिनापल्ली के दुर्ग पर अधिकार कर लिया था और वहाँ की रानी मीनाक्षी ने इसी धोखे के कारण आत्महत्या कर ली थी।

समय बाद मुहम्मदअली खाँ पुत्र अनवरुद्दीन खाँ[1] टोपवाले अंग्रेजो की सेना को इस पर चढा लाया। चंदा साहिब पकड़ा जाकर मारा गया। इसे दो पुत्र थे, जिसमें एक जैनुद्दीन खाँ आत्मसम्मानी पुरुष था। यह शेर भी कहता था और उपनाम 'बादिल' रखा था। उसके एक का उर्दू रूपांतर इस प्रकार है—

फैजे तबीबों का नही शर्मिंद है मेरा दरद।
जौहरे शमशीर से बखिय है मेरे जख्म का॥

युद्ध मे यह वीरता से लड़कर मारा गया। दूसरा अली रजा खाँ जीवित है।

•

६५८. सईद खाँ चगत्ता

इसके पूर्वजगण तैमूरिया राजवंश की बराबर अच्छी सेवा करते हुए प्रसिद्धि अर्जित करते रहे। इसका दादा इब्राहीम बेग चाबुक (या जांबुक) हुमायूँ बादशाह का एक सर्दार था और बंगाल की चढाई के समय के सेवको मे यह अच्छा तथा समझा जाता था। इसका पुत्र यूसुफ बेग अवध से बंगाल की ओर जा रहा था। जौनपुर के पास जब जलाल खाँ प्रसिद्ध नाम सलीम शाह सूर ने धावाकर इस पर आक्रमण किया तब यह वीरता से लडकर मारा गया। दूसरा पुत्र याकूब बेग भी, जो सईद खाँ का पिता था, उस समय के प्रसिद्ध पुरुषो मे से एक था।[2] सईदखाँ

---

१ मुहम्मद अली अनवरुद्दीन की रक्षिता का पुत्र था और उसके मारे जाने पर यह कर्णाटक की नवाबी का अपने को स्वत्वाधिकारी मानता था और दूसरी ओर चांदा साहिब सआदतुल्ला का दामाद होने से अपने को अधिकारी समझता था। प्रथम का पक्ष अंग्रेजो ने और द्वितीय का फ्रेंच ने लिया। किंतु अंग्रेजो की विजय होने पर सन् १७५२ ई० के आरंभ मे चांदा साहिब ने त्रिचिनापल्ली दुर्ग तंजौर के राजा को सौंप दिया और उसी के आदेश से मारा गया।

२. आईन अकबरी के अनुवादक मि० ब्लौमैन अपने अनुवाद भाग १ पृ० ३३१ पर लिखते हैं कि तबकात के अनुसार यह याकूब बेग जहाँगीर कुली बेग के भाई का पुत्र था पर यह उनका भ्रम मात्र है। एक नाम के अनेक याकूब बेग हो सकते हैं। इस याकूब बेग के पिता तथा पुत्र दोनो के नाम दिए हैं। जहाँगीर बेग्नीजाम कल्माक मशालची का पुत्र था और सन् १६०९ ई० मे मरा था और इस कारण इसके भाई का पुत्र अवश्य ही पंद्रह बीस वर्ष छोटा होना चाहिए, पर सईदखाँ काफी अवस्था पाकर, जैसा इस जीवनी से ज्ञात होता है, सन् १६०८ ई० मे मरा।

अपने अच्छे भाग्य की सहायता तथा बहादुरी और साहस से अकबर के समय अच्छी उन्नति करते हुए ऐश्वर्य, प्रसिद्धि तथा सर्दारी मे अपने पूर्वजो से आगे बढ गया। बहुत दिनों तक यह मुलतान का शासन करता रहा। अपने उच्चवंश, विद्वत्ता, सांसारिक अनुभव तथा अच्छे भाग्य के कारण यह २२वें वर्ष में शाहजादा सुल्तान दानियाल का अभिभावक नियत हुआ। पंजाब के सूबेदार शाह कुली खाँ महरम के विरुद्ध जब वहाँ की प्रजा ने नालिश की तब यह प्रात का शासक नियत हुआ। इसके अनंतर जब पंजाब का शासन तथा सेनापतित्व एक साथ राजा भगवंतदास कछवाहा को दिया गया तब सईद खाँ को सरकार संभल जागीर मे मिला। २८वें वर्ष में दरबार बुलाया जाकर इसका मसब तीन हजारी कर दिया गया और मिर्जा कोका के स्थान पर हाजीपुर तथा उसके अन्तर्गत प्रांत का जागीरदार नियत किए जाने पर इसने वहाँ जाने की छुट्टी पायी। ३२वें वर्ष मे बंगाल मे वजीरखाँ के मर जाने पर सईद खाँ बिहार से उसे प्रात का अध्यक्ष बनाकर वहाँ भेज दिया गया, जहाँ प्रबंध करते हुए इसने एक मुद्दत बिता दिया और पाँच हजारी मंसब तक पहुँच गया। जब उस प्रात की अध्यक्षता राजा मानसिंह को मिली तब सईद खाँ ने ४० वें वर्ष में बगाल से दरबार पहुँचकर सौ हाथी भेंट दिए। ४१ वें वर्ष सन् १००४ हि० मे यह फिर बिहार का प्राताध्यक्ष नियत हुआ। जब सन् १०११ हि० मे मिर्जा जानी बेग की मृत्यु पर उसके पुत्र मिर्जा गाजी ने ठट्टा मे विद्रोह करने का विचार किया तब अकबर ने मुलतान और भक्कर की जागीर सईद खाँ को देकर मिर्जा गाजी पर भेजा। जब सईद खाँ भक्कर पहुँचा तब मिर्जा गाजी ने विद्रोह की इच्छा त्याग दी और खुसरू खाँ की समति के अनुसार, जो उसका वकील तथा प्रधान था, वह खाँ के पास आकर इससे मिला। इसके पुत्र सादुल्लखाँ से, जो गुण से खाली न था, मिर्जा की मित्रता हो गई और सईद खाँ के साथ बादशाह की सेवा मे उपस्थित हुआ।

कहते हैं कि जहाँगीर के राज्यकाल मे सईद खाँ पंजाब का प्राताध्यक्ष नियत हुआ था। यह प्रसिद्ध था कि इसके अत्याचारी ख्वाजासरा अनेक प्रकार के कष्ट प्रजा तथा निर्बल को देते थे, इसलिए जहाँगीर बादशाह ने आज्ञा दी कि इसके बारे

जहाँगीर कुली अकबर की मृत्यु पर दो तीन वर्ष के लिये प्राताध्यक्ष नियत हुआ था और सईदखाँ अकबर ही के राज्यकाल मे बराबर प्राताध्यक्ष रहा तथा प्रथम से बहुत भारी मसबदार था।

१. देखिए 'जहांगीर का आत्मचरित' पृ० २४-५।

२. यह जहांगीर के राज्यकाल के प्रथम वर्ष ही में सरहिंद में मर गया था।

३ बिहार तथा बंगाल दोनो प्रातो के शासनकाल को मिला कर बीस वर्ष होता है।

में मईद खा से मुचलका ले लिया जाय। उमने मुचल्का लिखकर दे दिया कि यदि उनसे किसी को कष्ट पहुँचे तो मेरा सिर नष्ट होवे। इसी समय इसकी मृत्यु हो गई और यह सरहिंद के वाद मे गाडा गया। कहते हैं कि इसने अपने सब कार्य चतुर्भुज नामक एक मनुष्य को सौंप दिया था और यह स्वयं कुछ न करता था। यह ख्वाजासराओ पर मुग्ध रहता था। इसने बारह सौ सुंदर ख्वाजासरा इकट्ठे किए थे और इनमें से तीन को चुनकर सरदार बनाया था कि प्रत्येक चार चार सौ ख्वाजासराओं को खूब सुसज्जित कर रात्रि मे अपनी २ चौरी मे सुरक्षित रखे। इनके सिवा इसके यहां बहुत से अच्छे आदमी नौकर थे। इसने चार चौकी नियत की थी जिनमें हर एक में चार सौ थालियं भोजन की सैनिको के आगे लाई जाती थी। कहते हैं कि यह बंगाल और बिहार से, जो सर्द प्रांत है, बीस वर्ष बाद मुलतान आया। मुत्सद्दियो ने मिलकर दस असर सोना, जो शुद्ध तथा बने हुए नही थे और भांडार मे बहुत थे, लाकर प्रार्थना की कि वगाल की तरी मे सोना का तौल बढ गया था, पर इस प्रांत मे सूर्य की कडी गर्मी तथा ताप के कारण दस 'असर' कम हो गया है। सईद खाँ ने कहा कि बहुत कम फर्क पड़ा है, हम तो एक मन समझते थे।

यहाँ पर लिखा जाता है कि सईद खाँ अकबर के समय मे पालित होकर उच्च पद पर पहुँचा और अपने कार्य कौशल तथा बुद्धिमानी के लिये प्रसिद्ध हुआ। अकबर का राज्यकाल, जो साम्राज्य का संस्थापक था, अन्य सुलतानो के राज्यकाल की तुलना में दोपहर का सूर्य था। वह राज्य गुणियो की तुला और हर पेशे तथा हुनर के बाजार का समय था। यह कठिन था कि ऐसे परीक्षागृह में खोटा सोना चल जाय। इस कारण इसके संबंध मे नादानी या मूर्खता से लोगों को वास्तव में ऐसी जानकारी थी। वास्तव मे किसी के दुर्गुण छिपाने की प्रकृति से ऐसा हुआ हो। उस समय यही उचित था। ऐश्वर्य तथा संपत्ति की अधिकता को देखकर बहुतो का स्वभाव ऐसा हो जाता है, विशेष कर जब यह धनाढ्यता तथा आराम का काल बढ़ जाता है, तब वे उनके दुर्गुण को छिपाए रखते हैं; क्योंकि ऐसे समय की बेपरवाही तथा आलस्य विचित्रता से खाली नही होती, जो उच्चसाहस की, मूर्खता की नही, द्योतक होती है। और नही तो इस बार भी दृढ चित्त होकर जीविका रूपी स्वच्छ जल को कष्ट तथा एकांतवास से गँदला करे तो दूसरी आशा आराम तथा तृप्त होने की किन दिनो के लिये है।

इससे विचित्र यह है कि यह कहानी भी सईद खाँ के संबंध ही मे ख्याति रखती है कि ख्वाजा हिलाल नामक ख्वाजासरा, जो आरंभ में कासिम खाँ नमकीन का दास था और उसके बाद हुमायूँ बादशाह के सेवकों में भर्ती हो गया था,

अकबर के राज्यकाल के आरंभ में मीर तुजुक नियत होकर अपना कार्य बड़ी योग्यता से करता था। आगरे से छः कोस रंगतः नामक कस्बा का, जो इसे जागीर में मिला था, इसने पक्की गढ़ी तथा सराय बनवाकर तथा आबाद कर हिलालाबाद नाम रखा। दैवयोग से आगरे में मदार फाटक की ओर यह एक बड़ा मकान बनवाकर प्रायः बड़े बड़े सर्दारों को निमंत्रण मे बुलाया करता था। सईद खाँ ने भी वहाँ जाकर उस इमारत की बहुत प्रशंसा की। ख्वाजा हिलाल ने तवाजा करते हुऐ कहा यह आपको भेंट है। सईद खाँ ने उठकर तीन 'तसलीम' किया और अपने आदमियो तथा सामान को मँगवा लिया। हिलाल बादशाह की मुमाहिबी के कारण घमंड रखता था, इसलिये वह डटा रहा। सईद खाँ के सेवकों ने उपद्रव किया और लड़ने को तैयार हुए। बादशाह ने यह सुनकर सईद खाँ से कहा कि तुम्हारी यह चाल तुम्हारी सर्दारी की शोभा नहीं बढा रही है। प्रार्थना की कि हजरत सलामत दरबार के बड़े बड़े सर्दारों का मैं अग्रणी होकर एक दाम को तीन सलाम करूँ और वह सब व्यर्थ जावे। मेरा सिर इसमे बँधा है। यदि हुजूर आज्ञा देंगे तो मैं मर जाऊँगा। अंत में इस धूर्तता से इसने उस हवेली को अपने अधिकार में ले लिया।

कहते है कि सईद खाँ को सरकार में दो विश्वासी तथा अच्छे ख्वाजासरा थे। एक अख्तियार खाँ था, जो इसका वकील होकर दरबार में रहता था और जिसने पटना बिहार में पुल तथा सराय बनवाया है। दूसरा एतबार खाँ था, जो इसकी जागीर का फौजदार था। यह बड़ा मर्दाना आदमी था। रबीउल् अव्वल महीने में बारह दिनों तक यह आखिरी पैगंबर के नाम पर लोगों को भो न देता था, जिसमे प्रतिदिन एक सहस्त्र मनुष्य रहते थे। हर एक के आगे नौ रोटी शीरमाल और नौ रिकाबी रखता तथा आधा गज सफेद कपड़े मे रखकर और उस पर मखमल की खोल चढाकर छोड़ देते थे। इस समय यह अपने गृह को खूब सजाकर अच्छी प्रकार सुगंधित करता था। अच्छी आवाजवाले हाफिज लोग दिन रात पढ़ा करते थे। इसके पहिरने का जो सामान था उन्हें इन आदमियो का पायंदाज बनाकर पुण्य लूटता था। तारीफ तो यह है कि इसने यावज्जीवन इसी प्रकार निबाहा।

६५६. सजावार खाँ

यह लश्कर खाँ अवुल हसन का पुत्र था, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है। शाहजहाँ के राज्य के १म वर्ष में सजावार खाँ का मंसब बढ़कर एक हजारी ५०० सवार का हो गया और जब इसका पिता काबुल का शासक नियत हुआ तब यह उसके साथ नियुक्ति पाकर अग्गल के रूप पर सेना सहित आगे भेजा गया। बल्ख के शासक नजर मुहम्मद खाँ के उस प्रांत के उपद्रव के शांत होने पर पाँच सदी १०० सवार की तरक्की मिली और ३रे वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी ७०० सवार का हो गया। इसके अनंतर दक्षिण में सेवा मे उपस्थित होकर ४थे वर्ष मे यह आजम खाँ की सहायता को नियुक्त हुआ, जिसके लिये प्रार्थना की गई थी और इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी १००० सवार का हो गया। ५वें वर्ष मे अपने पिता के साथ, जो दिल्ली का सूबेदार नियत हुआ था, लौट गया। ६ठे वर्ष मे इसे एक सहस्र सवार की उन्नति, झंडा व डंका तथा जाननिसार खाँ के स्थान पर लक्खीजंगल की फौजदारी मिली। ८वें वर्ष में यहाँ से हटाया जाकर ९वें वर्ष में, जब बादशाह दक्षिण गए, यह खानदौराँ के साथ आदिलशाह के राज्य पर अधिकार करने भेजा गया और औसा दुर्ग के घेरे तथा विजय मे इसने बहुत प्रयत्न किया, जिसके उपलक्ष्य मे १०वें वर्ष में इसके मसब में ५०० सवार की उन्नति हुई। १३वें वर्ष मे इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी २५०० सवार का हो जाने पर यह बराबरवालो से आगे बढ गया। १५वे वर्ष मे यह सुल्तान औरंगजेब बहादुर के साथ दक्षिण से दरबार आकर सेवा मे उपस्थित हुआ औरसुलतान दाराशिकोह के साथ, जो ईरान के शाह के साथ युद्ध करने के विचार मे कंधार भेजा जा रहा था, उस प्रांत मे नियत हुआ। १०वें वर्ष में सिपहदार खाँ के स्थान पर यह जूनेर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। स्यात् यह उसी समय सुलतान और नजरबार का भी फौजदार था क्योंकि २२वें वर्ष में यह वहाँ से हटाया गया था। यह बहुत दिनो तक बीमार रहने से मसब से हटा दिया गया था। २९वें वर्ष मे अच्छे होने पर यह दरबार मे आया और तीन हजारी १२०० सवार के मंसब के साथ तिरहुत सरकार की फौजदारी और वहाँ के बहुत से महालों की जागीरदारी इसे अब्दुल्ला खाँ बहादुर के पुत्र अब्दुल्रसूल के स्थान पर मिली। वहाँ पहुँचने पर सन् १०६५ हि०, सन् १६५५ ई० मे इसकी मृत्यु हो गई।

इसका पुत्र शफकतुल्ला शाहजहाँ के राज्य के अंत तक पाँच सदी १५० सवार के मंसब तक पहुँचा था। २८वे वर्ष में वगश का दारोगा नियत हुआ। इसके अनंतर जब औरंगजेब बादशाह हुआ तब १ म वर्ष में इसका मंसब बढकर एक हजारी २५० सवार का हो गया और इसे इसके पिता की पदवी मिली। १६वें

वर्ष में जब शुजाअत खाँ राद अंदाज खाँ खैबर घाटी के पास के अफगानों को दंड देने के लिये उस ओर भेजा गया तब यह तोपखाने का नायब नियत हुआ। १७वें वर्ष में सुल्तान मुहम्मद अकबर की अधीनता में, जो कोहाट के मार्ग से काबुल भेजा गया था, यह भी गया। २१वें वर्ष मे कन्नौज का फौजदार नियत होकर यह वहाँ गया। इसके बाद कुछ दिन दंडित रहने पर २८वे वर्ष में इसका दोष क्षमा हुआ और यह दूसरा मीरतुजुक नियत हुआ। २९वें वर्ष मे यह मर गया। इसके पुत्र रहमतुल्ला को शोक का खिलअत मिला।

•

६६०. सदरा, हकीम

यह मसीहुज्जमाँ की पदवी से प्रसिद्ध था और हकीम फख्रुद्दीन शीराजी का पुत्र था, जो ईरान के शाह तहमास्प के राज्यकाल में मिर्जा महम्मद नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी जाति के तथा संबंध के लोग बहुधा हकीमी का काम करते थे। इसका वंश कसावा के पुत्र हारिस तक पहुँचता था, जिसने पैगम्बर मुहम्मद की सेवा करके उनका आशीर्वाद पाया था कि इसके वंश मे हकीमी की योग्यता प्रलय तक बनी रहेगी। हकीम फख्रुद्दीन योग्य विद्वान तथा सुशील था। यह रोगों की दवा करने में एक था। उस समय के विद्वान इसके वचन पर विश्वास रखते, औषधि करने मे इसकी संमति को मानते तथा उचित समझते थे। तत्कालीन हकीम लोग इसका शिष्य होने मे अपना संमान समझते थे और हकीमी की पुस्तकों के वादविवाद मे इसे निर्णायक मानते थे परंतु धर्म मे उदार होने की प्रसिद्धि के कारण शाह इसके हाल पर कम ध्यान रखता था। हकीम सदरा भी हकीमी के कुल गुणों तथा विद्याओं को सीखकर अपने पिता के समान विद्वत्ता तथा सम्मान मे प्रसिद्ध हो गया। यह जवानी मे अकबर बादशाह के राज्यकाल के ४६ वें वर्ष में हिंदुस्तान आया और जहाँगीर बादशाह के समय मसीहुज्जमाँ की पदवी से हकीमों का प्रधान बन गया और इसे साढ़े तीन हजारी मनसब मिला। शाहजहाँ की राजगद्दी पर पहले से अधिक इसपर बादशाही कृपा हुई और यह अर्ज मोकर्रर नियत हुआ, जो पद विश्वासपात्र तथा बादशाह के स्वभाव से परिचित मनुष्यों के सिवा दूसरों को नहीं दिया जाता था। ४थे वर्ष मे यह हज्ज करने जाने की छुट्टी पाकर तथा दोनों तीर्थ स्थानों की यात्रा कर बसरा के मार्ग से लौट लाहरी बंदर पहुँचा। ८वें वर्ष दरबार में उपस्थित हुआ और चालीस अरबी घोड़े, जिन्हें बसरा तथा आस-पास से भेंट के लिए खरीदकर लाया था, नजर किया, जो स्वीकृत हुए। इनमें से दो घोड़े,

जिनमे एक वूज तथा दूसरा तड़त था, अपने सौंदर्य, अंगो के सुगठन तथा दृढ़ता और तीव्र गति तथा अच्छी चाल के लिए वादशाही घुडसाल मे सवसे वढकर थे। पहले को 'बादशाह-पसंद' और दूसरे को 'तमाम अइयार' नाम दिया गया। हकीम का मनसव वढाकर तथा हाथी और बीस सहस्त्र रुपया पुरस्कार देकर इसे सूरत बंदर तथा उसके परगनो का शासक नियत किया।

हकीम जव इमामिया धर्म पर विश्वास लाया और वडी पवित्रता तथा अनन्यता रखने लगा तव इस कारण सेवाकार्य से त्यागपत्र देकर राजधानी लाहौर चला आया और वड़े संतोप तथा प्रसन्नता से आराम के साथ एकांतवास करने लगा। यह अधिकतर लाहौर मे और गर्मी मे काश्मीर मे जीवन व्यतीत करता था। कभी कभी वादशाह की आज्ञा से दरवार मे भी जाता था। जहाँआरा वेगम की वीमारी के समय, जो जल जाने के कारण हो गई थी, इसने प्रयत्न किया था। इससे १८वें वर्ष मे दस हजार रुपया वार्पिक वृत्ति वढने से इसकी कुल वार्पिक वृत्ति पचास हजार रुपये हो गई और इसे लौटने की छुट्टी मिली। २४वे वर्ष मे सन् १०६१ हि० १६५१ ई० मे यह कश्मीर मे मर गया। यह कवि था और 'मसीहुल्लही' इसका उपनाम था। यह शैर इसका है, जिसका अर्थ है—

कम स्वाद तथा मूल्य होते भी गिनती मे वढकर है। कहा कि अस्तित्व के उद्यान का प्राथमिक फल है।

कहते हैं कि हकीम के यहाँ तीन सौ लौंड़ियाँ थी और हर एक को कार्य पर नियत कर सुवह से शाम तक तथा शाम से दोपहर रात तक काम मे लगाए रहता था। एक क्षण की उन्हें छुट्टी नही देता था। जब इस कैद और कष्ट का कारण पूछा गया तब इसने कहा कि स्त्रियो को जव काम नही रहता तव उनके सिर मे कुविचार पैदा होते हैं। कहते हैं कि इसी कारण इसे सदा तंगी बनी रहती थी।

•

६६१. सनाउल्लाखाँ तथा अमानुल्ला खाँ

ये दोनो इनायतुल्ला खाँ आलमगीरी के पुत्र जिआउल्ला खाँ के लड़के थे। औरंगजेव के राज्य मे जिआउल्ला खाँ वादशाह के परिचितो मे से एक था। ४७वें वर्ष मे यह आगरे का दीवान हुआ। प्रथम एमादुल्मुल्क मुवारिज खाँ से बिरधा नाम से यह सम्बन्ध रखता था। जब एमादुल्मुल्क हैदरावाद का सूबेदार नियत हुआ, तव दोनो इसके साथ उक्त नगर मे गए और वहाँ अपने मन का काम तथा आनंद करने लगे। प्रथम सिकाकोल का फौजदार नियत हुआ और इसके अनंतर

महम्मद शाह के ६ठे वर्ष में एमादुल्मुल्क के मारे जाने पर यह निजामुल्मुल्क आसफ्जाह की सेवा मे पहुँचकर पहले बीजापुर का सूबेदार होकर सम्मानित हुआ। यहाँ ऊदा चौहान के हाथ कड़ी पराजय पाने पर यह परेन्दा दुर्ग का अध्यक्ष बनाया गया। यह बहुत तीव्र प्रकृति का तथा मस्त जीव था। समय आने पर यह मर गया। दूसरा बहुत दिनो तक जीवित रहकर हैदराबाद मे कालयापन करता रहा! अन्त में यह भी मर गया। यह बहुत ऊँचे हृदय का मनुष्य था।

•

६६२. सफदर खाँ ख्वाजा कासिम

यह सैयद इटाई (इटावा का) था। कहते हैं कि यह पहले खाँ बहादुर फीरोजजंग के दंगली सेवकों में नियत हुआ और फिर शाहजहाँ की शाहजादगी के समय उसकी सेवा में पहुँचकर कुछ दिनों में अपने कार्यो से शाहजादे के हृदय में स्थान बना लिया। उसकी राजगद्दी के अनंतर १म वर्ष मे ढाई हजारी १२०० सवार का मंसब, खिलअत, जडाऊ खंजर, चांदी के साज सहित घोड़ा, हाथी और तीस सहस्त्र रुपया पुरस्कार पाकर यह संमानित हुआ। इसके बाद इसे सफदर खाँ की पदवी मिली, जो पदवी जहाँगीर के समय सैयद यूसुफ खाँ रिजवी के पुत्र मिर्जा लश्करी को मिली थी और इस समय उसे सफशिकन खाँ की पदवी थी, और यह सिरोज का फौजदार तथा जागीरदार नियत हुआ। जुझारसिंह के प्रथम विद्रोह के समय यह खानजहाँ लोदी के साथ उस चढाई पर नियत हुआ और उसके बाद पुरस्कार मे इसे झंडा मिला। २रे वर्ष मे ख्वाजा अबुल् हसन तुरबती के साथ यह खानजहाँ लोदी का पीछा करने पर नियत हुआ। ३रे वर्ष मे ५०० सवार की तरक्की तथा डका पाकर यह राव रत्न हाड़ा के साथ नियत हुआ, जो अन्य कई मंसबदारो के साथ विद्रोहियो का मार्ग रोकने के लिये तेलिंगाना के बरार प्रांत के अंतर्गत बालाघाट के पास बासम मे ठहरा हुआ था। इसके अनंतर इसका मंसब बढकर तीन हजारी २००० सवार का हो गया। ४थे वर्ष में यह आगरा का सूबेदार तथा दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। ५वे वर्ष मे इसका मंसब बढकर चार हजारी २५०० सवार का हो गया। दक्षिण से बादशाह के लौटने पर यह सेवा में उपस्थित होकर ईरान का राजदूत नियत हुआ और विदा के समय इसे डेढ़ लाख रुपया व्यय के लिये तथा खिलअत जीगा, जड़ाऊ खंजर, सोने की जीन का घोडा और हाथी मिला। चार लाख रुपए के मूल्य की भेंट इसके साथ

मे गई, जिसमें एक लाख रुपए के जड़ाऊ बर्तन तथा तीन लाख की हिंदुस्तान की बहुमूल्य वस्तुएँ थीं। वहाँ पहुँचने पर इसे प्रतीक्षा में बहुत दिन ठहरना पड़ा, क्योंकि ईरान का शाह सफी रूम देश की सीमा पर एरवाँ की चढ़ाइयों मे व्यस्त था। शाह सफी से भेंट होने पर इसके नियम आदि की जानकारी से वह प्रसन्न हुआ और इसके गृह आया और विदा करने तक इस पर कृपा रखी। इसने शाह को योग्य भेंट दी तथा उसके सर्दारों को भी सौगात दिए। ११वें वर्ष मे यह लौटा और १२वें वर्ष सेवा में उपस्थित होने पर इसने पाँच सौ एराकी घोड़े और ईरान की अच्छी वस्तुएँ भेंट दीं। इसने राजदूत का कार्य अच्छी प्रकार पूरा किया था इसलिये कृपाकर इसका मंसब बढ़कर पाँच हजारी ३००० सवार का कर दिया। इसी वर्ष जब बादशाह आगरे से लाहौर को चले तब मार्ग में इसे आगरे का सूबेदार नियत कर और अच्छी खिलअत, फूलकटारसहित जड़ाऊ जमधर तथा हाथी देकर विदा किया। १४वें वर्ष में वहाँ से हटाया जाने पर यह दरबार आया। इसका मंसब बढ़कर पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया और खिलअत, सोने की जीन सहित घोड़ा तथा हाथी पाकर कुलीज खाँ के स्थान पर यह कंधार का सूबेदार नियत हुआ। १७वें वर्ष में वहाँ से हटाया जाने पर यह दरबार आया। कंधार ही में इसे बीमारी लग गई थी इसलिये सेवाकार्य न कर सका। १८वें वर्ष सन् १०५४ हि०, सन् १६४४ ई० में यह मर गया। इसके पुत्रों को योग्य मंसब मिले। सबसे बड़ा ख्वाजा अब्दुल्हादी था, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है। दूसरा पुत्र ख्वाजा अब्दुलअजीज था, जो २०वें वर्ष में आठ सदी ६०० सवार के मंसब तक पहुँचा था।

●

६६३. सफवी खाँ अली नकी, मिर्जा

सफवी राजवंश से इसका संबंध था। औरंगजेब के राज्यकाल के ४७वें वर्ष में हिंदुस्तान आने पर यह बादशाही सेवा में भर्ती हो गया। इसे तीन हजारी १००० सवार का मंसब, मिर्जा सफवी खाँ की पदवी तथा तीसरे बख्शी का पद मिला। ४९वें वर्ष मे मुअज्जम खाँ की पुत्री से निकाह होने पर सिरपेंच सहित खिलअत और बारह सहस्र रुपया नगद मिला। औरंगजेब की मृत्यु पर मुहम्मद आजम शाह के साथ दक्षिण से हिंदुस्तान आया और बहादुर शाह के साथ युद्ध होते समय यह मध्य में था। आजमशाह के बहुत से विश्वासपात्र साथी इस युद्ध में काम आए और यह भी उसी में मारा गया।

●

६६४. सफसिकन खाँ मिर्जा लश्करी

यह सैयद यूसुफ खाँ रिजवी का पुत्र था, जिसका वृत्तांत ग्रंथ में अलग दिया गया है। पिता की मृत्यु पर अकबर के समय यह दक्षिण में बीड का थानेदार नियत हुआ। जहाँगीर के राज्यारंभ में यह सफदर खाँ की पदवी के साथ बिहार प्रांत के जागीरदारो मे नियत हुआ। ५ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी ७०० सवार का हो गया। ६ठे वर्ष में मीरबहर कासिम खाँ के पुत्र हाशिम खाँ के स्थान पर यह कश्मीर का सूबेदार नियत हुआ। ८वें वर्ष मे यह वहाँ से हटाया गया[1] और २१ वें वर्ष मे जब महाबत खाँ विद्रोह कर दरबार से भागा और यह सुना गया कि उसका कोष बंगाल से आता हुआ दिल्ली के पास पहुँच गया है तब यह उसे जब्त करने के लिए नियत हुआ। इसके पहुँचने पर उसके आदमी सराय को दृढ़ कर युद्ध करने लगे पर सराय के फाटक को जला देने पर वे चले गये और कोष पर इसका अधिकार हो गया। इसके अनंतर जब शाहजहाँ राजगद्दी पर बैठा तब इसका ढाई हजारी २००० सवार का मंसब बहाल हुआ, जो जहाँगीर के समय के अन्त में था। जब सफदर खाँ की पदवी सैयद अताई (इटावी) ख्वाजा कासिम को मिली तब इसे सफशिकन खाँ की पदवी दी गई। उस समय निजामुलमुल्क दक्खिनी के सैनिकों के हाथ मे बीड़ के लिया गया था, इसलिए यह पहले की तरह वहाँ का थानेदार नियुत हुआ और बहुत दिनो तक वहाँ रहा। कारण वश दंडित होने पर यह मनसब तथा जागीर से हटा दिया गया। बारह सहस्र वार्षिक वृत्ति नियत होने पर यह लाहौर मे रहने लगा। १९वें वर्ष सन् १०५५ हि०, सन् १६४६ ई० मे इसकी मृत्यु हो गई।

कहते हैं कि यह अस्थिरचित्त, बेपरवाह तथा मुँहजोर मनुष्य था। जो मन में आता उसे कह डालता। अधिक अवस्था प्राप्त और साम्राज्य के पुराने सेवक होने से दक्षिण के सूबेदार लोग इसपर कृपा रखते थे। कश्मीर के शासनकाल में स्वयं अकेले एक सेवक के साथ किश्तवार के राजा के पास दूत होकर गया था। वहाँ के आदमियो ने इसे पहिचान कर कैद कर लिया। राजा की माता के कहने पर यह छोड दिया गया। कुछ दिनो तक यह काबुल में नियत रहा। वहाँ के मंसबदारों को निमंत्रित कर इसने भेड़िया के गोश्त का कबाब सभी को खाने को दिया। जब यह

---

१. जहाँगीर के आत्मचरित पृ० ३७० पर लिखा है कि 'कश्मीर के प्रांताध्यक्ष सफदर खाँ के सम्बन्ध मे कुछ ऐसे समाचार सुने गए कि हमने उसे वहाँ के शासन से हटा दिया।' यह जुलूस के दसवें वर्ष के वृत्तांत में दिया गया है। इस जीवनी मे जलूस के वर्ष देने में कुछ अशुद्धि है।

बात जहाँगीर ने सुनी तब बुलाकर इससे इसका कारण पूछा। इसने कहा कि शराब और भेड़िए का मांस एक ही सा है। परंतु भेड़िए का मास स्वभावत: मनुष्य के लिये अखाद्य है, इसलिए यह दृष्टि से गिराया जाकर दंडित हुआ। खानजहाँ ने धन की सहायता तथा बीड की थानेदारी दिलवा दी। वह अपनी जातिवालो के पालन करने की आदत रखता था।

●

६६५. सफ़शिकन खाँ मीर सदरुद्दीन

ईरान के मंत्री खलीफा सुलतान के भाई किवामुद्दीन का यह पुत्र था। औरंगजेब के जलूस के १७वें वर्ष में यह पिता के साथ हिंदुस्तान आकर बादशाही सेवा में भर्ती हो गया। यह खिलअत, सोने के सामान सहित तलवार और सातसदी १०० सवार का मंसब पाकर सम्मानित हुआ। २३ वें वर्ष मे पिता की मृत्यु पर इसे शोक का खिलअत मिला और इसके कुछ दिन बाद शुजाअत खाँ की पदवी मिली। इसके बाद यह मीर आतिश के पद पर नियत हुआ। २५ वें में सफशिकन खां की पदवी, खिलअत, जड़ाऊ जीगा, झंडा और तोग पाकर श्रीरंगपत्तन की ओर भेजा गया। २९ वे वर्ष में दरबार में उपस्थित होकर तथा खन्जर और हाथी पाकर इसे बीजापुर जाने की छुट्टी मिली, जहाँ मुहम्मद आजम शाह घेरा डाले हुए था। उसके विजय होने पर यह ३०वें वर्ष मे डंका पाकर फीरोजजग के साथ हैदराबाद के पास इब्राहीम गढ विजय करने गया। गोलकुण्डा के घेरे मे यद्यपि इसने इतना ऊँचा दमदमा बांधा कि वह दुर्ग के कंगूरे तक पहुँच गया और तोप उसपर चढ़ाई गई पर फीरोजजग से वैमनस्य होने के कारण इसने काम से हाथ खीचकर त्यागपत्र दे दिया। इसपर इसका मंसब छिन गया और यह कैद में एकांतवास करने लगा। कुछ दिन बाद इसने यह मुचलका लिखकर दिया कि वह कम समय में दूसरी ओर से दमदमा कंगूरे तक पहुँचा देगा। इस बहाने कैदखाने से छुट्टी पाकर इसने जो कहा था वैसा कर दिखाया। ३९वें वर्ष में खानःजाद खां के साथ वसवंत घोरपरः को दंड देने गया और दैवयोग से परास्त हो गया, जिसका विवरण कासिम खां किरमानी की जीवनी में दिया है। दरबार से धमकी की चाल पर यह धामुनी का फौजदार नियत हुआ। इसका पुत्र मुखलिस खाँ था, जिसका वृत्तांत अलग लिखा गया है।

●

---

१. सन्ता जी घोरपदे से तात्पर्य है। इस लड़ाई का वृत्तात कासिम खां किरमानी की जीवनी मे तथा 'ए हिस्ट्री आव मराठा पीपुल, पारसनीस किनकेड भाग २ पृ० ८५-६ पर देखिए।

६६६. सफशिकन खाँ मुहम्मद ताहिर

शाहजहाँ के राज्य के अंतकाल में यह दक्षिण के तोपखाने का दारोगा था। जब अपने पिता को देखने के लिये औरंगजेब दक्षिण से हिंदुस्तान की ओर रवाना हुआ तब नर्मदा नदी पहुँचने पर इसे सफशिकन खाँ की पदवी मिली और इसने महाराज यशवंतसिंह के युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई। १म वर्ष मे शेख मीर ख्वाफी के साथ सुलेमान शिकोह का मार्ग रोकने के लिये यह जमुना नदी के किनारे गया और फिर पंजाब की ओर दाराशिकोह का पीछा करने के लिये खलीलुल्ला से मिलने गया, जो मिर्जाराजा जयसिंह के साथ इस कार्य पर नियत हुआ था। दाराशिकोह के मुलतान से भागने का समाचार सुनकर यह सेना के साथ उसका पीछा करने पर नियत हुआ पर ठट्टा तक उसका कुछ पता न चला। इसके अनंतर दाराशिकोह गुजरात में चला गया और उसी समय जब बादशाही आज्ञा इसे लौट आने की पहुँची तब यह लौटकर उस समय सेवा में पहुँचा जब औरंगजेब दाराशिकोह के साथ द्वितीय युद्ध करने को अजमेर जाने की इच्छा कर रहा था। ४थे वर्ष मे किसी दोष के कारण इसका मंसब छिन गया, पर कुछ दिन बाद पुनः इस पर कृपा हो गई और इसका दो हजारी १००० सवार का मंसब बहाल हुआ। ५वें वर्ष में २०० सवार की तरक्की हुई और ६ठे वर्ष मे जब बादशाह काश्मीर की सैर को गए तब यह भंभर (भीमबर) घाटी के नीचे ठहरकर उस पार्वत्यस्थान के मुख की रक्षा करने पर नियत हुआ। उसी वर्ष के अंत मे इसका मंसब बढकर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया और यह सुलतान मुअज्जम के यहाँ दक्षिण में सेना सहित नियत हुआ। ९वें वर्ष में यह दरबार मे आया। १०वें वर्ष में फिर उक्त शाहजादे के साथ नियुक्त हुआ, जो दक्षिण का प्रबंध करने पर पुनः नियत हुआ था। ११वें वर्ष मे यह दरबार आकर सेवा मे उपस्थित हुआ और १२वें वर्ष में मथुरा का फौजदार नियत हुआ। १७वें वर्ष में शुजाअत खाँ राद अंदाज खाँ के स्थान पर यह तोपखाने का दारोगा बनाया गया। १८वें वर्ष सन् १०८५ हि० में यह मर गया।

६६७. सफी खाँ

यह इस्लाम खाँ मशहदी का द्वितीय पुत्र था। शाहजहाँ के राज्य के उन्नीसवें वर्ष में, जब इसका पिता दक्षिण प्रांतों का शासक नियुक्त हुआ था, यह योग्य उन्नति पाकर उसी के साथ गया। २०वें वर्ष में यह पिता की भेंट लेकर दरबार आया। २१वे वर्ष में पिता की मृत्यु पर इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी ४०० सवार का हो गया। २२वे वर्ष में यह सुल्तान औरंगजेब के साथ कंधार की चढ़ाई पर गया। २३वे वर्ष मे यह आदिल खाँ के पास बीजापुर राजदूत होकर गया। २५वें वर्ष में यह आदिल खाँ की भेट लेकर सेवा मे उपस्थित हुआ, जो सिक्का तथा वस्तुओं मे चालीस लाख रुपया मूल्य की थी। इसके अनंतर यह औरंगजेब के साथ पुनः कंधार की चढ़ाई पर गया। २६वें वर्ष मे वहाँ से लौटने पर यह दक्षिण के चारो प्रातो का बख्शी तथा वाकिआनवीस नियत हुआ। २७वें वर्ष में इसे खाँ की पदवी मिली। ३०वें वर्ष में किसी दोष के कारण दंडित होने पर इसका मंसब पाँच सदी १०० सवार घट गया और यह उस पद से हटाया जाकर दरबार बुला लिया गया। ३१वें वर्ष मे २०० सवार इसके मंसब मे बढ़ाए गए और यह काँगड़ा का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। इसके अनतर जब औरंगजेब राजगद्दी पर बैठा तब १म वर्ष में जिस समय बादशाह दाराशिकोह से युद्ध करने के लिये अजमेर जा रहे थे यह दिल्ली का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। २रे वर्ष में यह वालाशाही सेना का बख्शी नियत हुआ। ५वें वर्ष मे इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी १२०० सवार का हो गया। ६ठे वर्ष मे होशदारखाँ के स्थान पर दिल्ली की दुर्गाध्यक्षता तथा प्रबंधकार्य इसे मिला। १०वे वर्ष में यह मुहम्मद मुअज्जम के साथ दक्षिण मे नियुक्त किया गया। १२वे वर्ष में यह तरबियत खाँ के स्थान पर उड़ीसा का सूबेदार हुआ और उसके बाद आगरे का शासक होने पर १७वे वर्ष मे दिल्ली के शासन पर नियत हुआ। २१वें वर्ष में यह सुल्तान मुहम्मद अकबर के साथ गया, जो मुल्तान का नाजिम नियुक्त किया गया था। २२वें वर्ष मे वहाँ से लौटकर यह आगरे का सूबेदार हुआ। २७वें वर्ष में यह औरंगाबाद का अध्यक्ष हुआ और २८वें में पुनः आगरा प्रांत का अध्यक्ष बनाया गया। इसका पुत्र मीर अबुलसलाम था, जिसे औरंगजेब के राज्यकाल मे एक हजारी ५०० सवार का मंसब तथा बर्खुरदार खाँ की पदवी मिली और सुल्तान मुअज्जम के तोपखाने का दारोगा बनाया गया। जब उक्त शाहजादा गद्दी पर बैठा तब इसे इसके दादा की पदवी इसलाम खाँ मिली और यह पाँच हजारी मंसब के साथ दीवानखास का दारोगा और प्रथम मीर तुजुक नियत हुआ। फर्रुखसियर के राज्यकाल में यह

कुछ दिन मीर तुजुक और कुछ दिन द्वितीय बख्शी रहा। मुहम्मद शाह के राज्य मे यह सात हजारी मंसबदार हो गया। कहते हैं कि यह बलवान मनुष्य था और खाने में प्रसिद्ध था। इसलामखानी कबूली इसके यहाँ बहुत तैयार होती थी, जिसके बनाने का ढंग इसीने निकाला था।

•

६६८. सामांजी खाँ

यह करगोची था और हुमायूँ का एक सर्दार था। अकबर के राज्यकाल मे यह डेढ हजारी मंसब तक पहुँचा था। अकबर के राज्य के ५वें वर्ष के अंत मे यह अहमदखाँ कोका के साथ मालवा विजय करने पर नियत होकर इसने बहुत प्रयत्न किया और नवें वर्ष में यह महम्मद कासिम खाँ नैंशापुरी के साथ अब्दुल्ला खाँ उजबक का पीछा करने गया। १३ वे वर्ष मे यह मीर मुन्शी अशरफ खाँ के साथ दुर्ग रंतभवर पर और मार्ग मे मिर्जा मुहम्मद हुसैन आदि को दंड देने के लिए, जो मुहम्मद सुलतान मिर्जा के संतान तथा पौत्र थे और गुजरात से लौट आने पर मालवा प्रांत मे उपद्रव मचाए हुए थे, नियत हुआ। इसके बाद अवध प्रांत मे जागीर पाकर यद्यपि यह दाग के मामले मे विद्रोही सर्दारो का साथी हो गया। पर अन्त में उनके फरेब से छुट्टी पाकर बादशाही सेना मे आ मिला। ३९ वें वर्ष मे यह आज्ञानुसार दरबार पहुँचकर सेवा मे उपस्थित हुआ। इसके कुछ वर्ष बाद इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्रगण इसकी मृत्यु पर बादशाही सेवाकार्य में लग गए।

•

६६९. सयादत खाँ सैयद ओगलाँ

तुर्की भाषा मे ओगल का अर्थ पुत्र है और उसका बहुवचन ओगलाँ है। बुखारा राज्य मे उस झुण्ड का यह अल्ल है, जो सैयदो तथा भलमनसहत में प्रतिष्ठित थे और वहाँ के शासक के सामने बैठने का स्वत्व रखते थे। सयादतखाँ फीरोजजग बहादुर के गुरु का पुत्र था और उसके द्वारा औरगजेब का परिचित हो गया तथा इसे योग्य मंसब मिला। औरंगजेब के जलूस के २७ वे वर्ष में मुहम्मद कामबख्श को शिक्षा देने पर नियत होकर यह सम्मानित हुआ। गुप्त रूप से फीरोजजग के द्वारा प्रार्थनापत्र पेश करने के काम पर नियुक्त होने से इसे सामने रहने की भी प्रतिष्ठा

मिल गई। जब एक बार फीरोजजंग दुर्ग राहरी को आग लगाकर काफिरों को मारने व उनके माल को लूटने में सफल हुआ तब २८ वें वर्ष में इस शुभ समाचार के सुनाने के पुरस्कार में इसे हाथी मिला और बाद को सयादत खाँ की पदवी मिली। ३९ वें वर्ष में लुत्फुल्ला खाँ के स्थान पर अर्जमुकर्रर का दारोगा नियत होकर इसने विशेषता प्राप्त की। कृपा कर इसे यशम पत्थर की दावात दी गई। बाद को यद्यपि यह इस कार्य से हटा दिया गया पर इसे दीवान खास का दारोगा नियत किया। ४१ वें वर्ष सन् ११०८ हि०, सन् १६९७ ई० में यह महामारी रोग से मर गया, जो बादशाही सेना में जोर शोर से फैला हुआ था। इसका पुत्र पिता की पदवी पाकर ४३ वें वर्ष में अर्जमुकर्रर के पद नियत हुआ। ४७ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी ७०० सवार का हो गया और पुनः शत्रु पर ससैन्य सर्दार बनाकर भेजा गया। उसी समय भाग्य के वैचित्र्य से इसके दोनों नेत्रों की ज्योति जाती रही, जिस कारण बादशाह के सामने की सेवा से यह वंचित हो गया। अमीरुल्-उमरा हुसेन अली खाँ की सूबेदारी के समय औरंगाबाद प्रांत के अन्तर्गत दुर्ग अहमदनगर की अध्यक्षता पाकर यह एकांतवास करने लगा।

जब दक्षिण की सूबेदारी निजामुल्मुल्क आसफ जाह को मिली और वह इसका बहुत बढ़कर गुणग्राहक था इसलिए उक्त कार्य पर यह नियत रहा। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र मुहम्मद मीर खाँ पैतृक पदवी पाकर तथा उक्त दुर्गाध्यक्षता पर बहाल होकर सम्मानित हुआ। कुछ दिन उक्त सर्दार के पूरे सरकार के सवारों का बख्शी नियत होकर यह कार्य करता रहा। इसके बाद इसका पुत्र सैयद हमीद खाँ सयादत खाँ की पदवी पाकर अपने बहनोई सैयद लश्कर खाँ का नायब होकर बरार का शासक नियत हुआ। कुछ दिन यह बीदर का दुर्गाध्यक्ष रहा। अन्त में इसने हमीदुद्दौला की पदवी पाई। सन् ११८४ हि० में यह मर गया। इसका पुत्र लिखते समय नामवर जंग बहादुर की पदवी के साथ था और रेख्तः कहने में शौक रखता था। सैयद हमीद सयादत खाँ के भाई लोग तथा पितृव्यगण बहुत से थे पर किसी ने भी तरक्की न की।

६७०. सरदार खाँ ख्वाजा यादगार

यह अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग का भाई था। जहाँगीर के राज्यकाल में योग्य मंसब पाकर ५वें वर्ष में इसे झंडा भी मिला। ८ वें वर्ष में गुजरात के अंतर्गत जूनागढ़ की फौजदारी पाने पर इसके मंसब में पाँच सदी ३०० सवार बढ़ाए गए। जब उक्त पद स्थायी रूप में खानआजम कोका के पुत्र खानमिर्जा खुर्रम को मिला तब भी बादशाह ने कृपा कर इसके मन्सब को तरक्की बहाल रखी। इसी वर्ष सुल्तान खुर्रम के साथ राणा अमरसिंह की चढ़ाई पर नियुक्त होकर १०वें वर्ष में अब्दुल्ला खाँ की प्रार्थना पर इसे डंका मिला। जब इसी वर्ष अब्दुल्ला खाँ गुजरात के बख्शी आबिद खाँ के साथ कड़ाई करने के कारण और उसके फरियाद करने पर अहमदाबाद से दरबार बुलाया गया तब आज्ञा हुई कि सरदार खाँ को अपने प्रतिनिधि रूप में वहीं छोड़ आवे। १४वें वर्ष में यह शाहजादा सुल्तान खुर्रम के साथ दक्षिण में नियत हुआ। १५वें वर्ष में वहाँ से लौटने पर जब इसके भाई के साथ काल्पी इनकी जागीर निश्चित हुई तब इसे भी भाई के साथ वहाँ जाने की छुट्टी मिली। निश्चित समय पर इसकी मृत्यु हुई।

•

६७१. सर्दार खाँ शाहजहानी

यह शाहजहाँ की शाहजादगी के समय उसकी सेवा में भर्ती हुआ। जिस समय बादशाह तथा शाहजादे के बीच शत्रुता हो गई, उस समय इसने स्वामिभक्ति तथा स्वत्व को पहिचानकर शाहजादे की सेवा में दृढ़ रहकर यह किसी कारण से भी उससे अलग नहीं हुआ। जब शाहजादा बंगाल से लौटकर बुर्हानपुर के पास पहुँचा तब राजा गोपालसिंह गौड़ को, जिसने शाहजहाँ की अनुपस्थिति में प्रसिद्ध दुर्ग आसीर गढ़ की रक्षा में खूब प्रयत्न किए थे, अपने पास बुलाकर सर्दार खाँ को उस दृढ़ दुर्ग की रक्षा के लिये भेज दिया। गद्दी पर बैठने के अनंतर इसे तीन हजारी २००० सवार का मंसब, झण्डा, डंका और तीस सहस्र रुपये पुरस्कार देकर संमानित किया। जुझारसिंह बुन्देला को दमन करने और उसके राज्य पर अधिकार करने का जब अवसर आया और ९वें वर्ष के आरम्भ में दक्षिण जाने की प्रकट इच्छा से ओड़छा में, जो वहाँ की राजधानी है, शाहजहाँ पहुँचा तब सर्दार खाँ धामुनी दुर्ग का रक्षक नियत हुआ, जिसे जुझारसिंह के पिता ने बनवाया था। वह पर्गना इसे वेतन के रूप में जागीर में मिला और वहाँ का प्रबन्ध भी इसके अधीन

रहा। १४वें वर्ष में दोनों बंगश को अधिकृत करने पर नियत हुआ। १७वें वर्ष में मालवा प्रांत का अध्यक्ष नियत होने पर इसका मन्सब बढ़कर चार हजारी ३००० सवार का हो गया। इसके बाद चौरागढ़ की जागीरदारी पर नियत हुआ पर उस प्रांत का जैसा चाहिए वैसा यह प्रबंध न कर सका इसलिये उस पद से हटाया गया। ३६वें वर्ष में यह ठट्ठा की सूबेदारी पर भेजा गया पर मार्ग ही में सन् १०६३ हि०, सन् १६५३ ई० में इसकी मृत्यु हो गई।

०

६७२. सरदार खाँ सरदार बेग

इसका सरदार बेग नाम था और यह बाकी खाँ कलमाक चेला का पुत्र था, जिसका वृत्तांत अलग लिखा गया है। सौभाग्य से औरंगजेब के समय में बादशाही कृपापात्र हो जाने से इसने योग्य मंसब तथा इहतमाम खाँ की पदवी पाई। जिस समय औरंगजेब हसन अब्दाल प्रांत में गया हुआ था उस समय यह दिल्ली की इमारतों का दारोगा था। इसके अनंतर बादशाही पड़ाव का कोतवाल हुआ और बहुत दिनों तक इस कार्य को, हिंदुस्तान या दक्षिण में, जो बराबर यात्रा पर था, नियमपूर्वक करता हुआ विश्वासपात्र बना रहा। जब बादशाह औरंगाबाद में जाकर ठहरे तब कुछ दिन यह दुर्ग की प्राचीर की नींव डालने का कार्य करता रहा। २८वें वर्ष में सैफुल्लाखाँ के स्थान पर यह निवाड़ा का दारोगा नियत हुआ। इसकी कार्यपटुता तथा स्वामिभक्ति बादशाह अच्छी प्रकार जानते थे इसलिये जुनेर के कुछ कारखानों का प्रबंध भी इसे साथ ही दिया गया। २९वें वर्ष में यह बादशाही हरमसरा का नाजिर खिदमत खाँ के स्थान पर नियत हुआ। कोतवाली के साथ गंज की करोरगी पद पर भी नियत था। गोलकुंडा के घेरे के समय अति वर्षा के कारण मांजरा तथा अन्य नदियों में बाढ़ आ जाने के कारण घरों में रसद पहुँचना बंद हो गया, जिससे अकाल पड़ने लगा। क्या हैदराबाद नगर, क्या उर्दू कैंप सभी मुर्दों से भरे हुए थे। बादशाही निवासस्थान के चारों ओर प्रति दिन शवों का ढेर रहता और सबेरे से संध्या तक लोग उन सब को खींचकर नदी के तट तक ले जाकर उसमें फेंकते थे। फिर रात्रि में वही ढेर हो जाता। उसी समय करोड़ी का पद सरदारखाँ से लेकर सैयद शरीफखाँ कन्नौजी को दिया गया। शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम प्रसिद्ध नाम शाह आलम के शाही आज्ञा न मानने तथा विद्रोह करने का समाचार बादशाह को मिला और इसी समय खाँ फीरोजजंग ने शाहजादे के पत्र हैदराबाद के शासक अबुल्हसन के नाम गोलकुंडा के मोर्चे में

पकड़े तथा बादशाह को दिखलाया। जब शंका सत्य हो गई तब निरुपाय होकर शाहजादे को उसके दो बड़े पुत्रों के सहित, जो साथ में थे, कारागार में बैठा दिया। इहतमाम खाँ को पाँच सदी मंसब बढ़ाकर डेढ़ हजारी का तथा सरदार खाँ की पदवी देकर शाहजादे के निरीक्षण पर नियत किया।

कहते हैं कि कुछ दिन बाद सरदार खाँ को आज्ञा हुई कि शाहजादे को संदेश दे कि अपने दोष की क्षमा याचना कर प्रायश्चित्त करे, जिससे उसे क्षमा किया जाय। शाहजादे ने उत्तर दिया कि ईश्वर तथा पिता के प्रति पूरा दोषी हूँ पर प्रकट में जो दोष प्रायश्चित्तयोग्य कहा जाता है, वह मुझमें नहीं हुआ है। कष्ट पर कष्ट बढ़ता गया और कैद की कड़ाई बढ़ती गई। छ महीने तक बाल कटवाने तथा नाखून बनवाने की आज्ञा नहीं दी गई। खिदमत खाँ नाजिर ने, जो शाहजहाँ का नायब था, अपनी पुरानी सेवा के कारण साहस से बातचीत की और बहुत तर्क वितर्क हुए तथा अंत में आज्ञा ले ली। बहुत दिनों के बाद जब क्रोध कम होने लगा और मन में स्नेह उत्पन्न होने लगा तब सर्दार खाँ को पैगंबर की दुआओं की पुस्तक दी गई कि शाहजादे को दे कि इस फूल का सत्संग रखे जिससे हमारा कृपालु हृदय उसके छुटकारे की ओर झुके और उसको हमारी जुदाई के कष्ट से छुट्टी मिले। इसी बीच एक दिन उक्त खाँ ने प्रार्थना की कि 'छोड़ने का अधिकार हुजूर को है।' उत्तर दिया कि 'हाँ, पर परमेश्वर ने हमको देश का बादशाह बनाया है। जहाँ अत्याचारी से पीड़ित को कष्ट पहुँचे, आशावान होता है कि उस कष्ट को हम तक लावे और न्याय को पहुँचे। इस मनुष्य पर कुछ सांसारिक रोगों के कारण हमारे हाथ से अत्याचार हुआ है और अभी समय नहीं हुआ है कि उसे छोड़ दूँ। उस न्यायी के दरगाह के सिवा और स्थान नहीं है। इसलिये उसे आशावान बनाए रहना चाहिए कि हमसे आशा न तोड़े और खुदा से न रोवे। यदि रोवे तो हमें शरण स्थान कहाँ है ?'

३२वें वर्ष में सरदार खाँ मोतमिद खाँ के स्थान पर हथसाल का दारोगा नियत हुआ और जब ३३वें वर्ष में बदरी माँजा से कुतबाबाद कुलकुला में बादशाह पहुँचे तब सरदार खाँ शाही खेमे के बारह कोस चारों ओर का फौजदार नियत हुआ। ३५वें वर्ष सन् ११०३ हि० में यह मर गया। स्वामी की हितैषिता तथा सर्वसाधारण की सेवा का ध्यान बाहर अंतर दोनों से रखता था। याचकों से सहानुभूति तथा फकीरों की चिंता से खाली नहीं था। इसका पुत्र हमीदुद्दीन खाँ प्रसिद्धि में अपने पिता व पितामह से बढ़कर था, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है। अन्य संतान भी थी।

●

६७३. सर्फराज खां चगता

यह हुमायूं के समय के मुसाहिब बेग का पौत्र था, जिसका वृत्तांत अलग लिखा जा चुका है। अकबर इसको दादा के नाम से पुकारता था। जहाँगीर के राज्य के आरंभ में इसके पूर्वजों की सेवा के विचार से इस पर कृपा हुई और यह योग्य मंसब तथा सर्फराज खाँ की पदवी पाकर गुजरात प्रांत के अंतर्गत पत्तन का फौजदार नियत हुआ। १२वें वर्ष में इसका मंसब दो हजारी १००० सवार का हो गया और उस सम्राट् के राज्य के अंत में तीन हजारी २००० सवार का हो गया। ४थे वर्ष में सेवा में उपस्थित होने पर इसे अपने ताल्लुके पर जाने की छुट्टी मिली। २रे वर्ष सन् १०४३ हि० में यह मर गया। इसके पुत्रों में सर्दार खाँ है, जिसका नाम दिलदोस्त था। शाहजहाँ के जुलूस के २०वें वर्ष में वह एक हजारी ७०० सवार के मंसब तक पहुँचा था और गुजरात प्रांत के सहायकों में नियत था। २८वें वर्ष मे सुल्तान मुरादबख्श की प्रार्थना पर इसका मंसब डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया और यह गुजरात पत्तन के अधीनस्थ बीजापुर का थानेदार नियुक्त किया गया। जब शाहजहाँ की बीमारी के बढ़ने पर उक्त शाहजादा ने जल्दी कर राजगद्दी की तैयारी की। औरंगजेब के बुलाने पर जब उधर को वह रवाना हुआ तब यह भी साथ मे गया। मुराद के कैद किए जाने पर यह औरंगजेब की सेवा मे पहुँचकर सर्दार खाँ की पदवी और पत्तन की फौजदारी पाकर विश्वासपात्र हो गया। इसके अनंतर जब दाराशिकोह अजमेर युद्ध के बाद गुजरात की ओर चला तब इसने सेवा न त्यागकर और दूसरों का साथ देकर सैयद जलाल बुखारी के भाई सैयद हमीद को, जिसे दाराशिकोह ने गुजरात का शासक नियत किया था, कैद कर लिया और नगर तथा दुर्ग को दृढ़ कर शत्रु को दमन करने मे लग गया। इसके उपलक्ष्य मे इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी २५०० सवार का कर दिया गया, जिसमें ५०० सवार दो अस्प: सेह अस्प. थे। ४थे वर्ष बुलाए जाने पर दर्बार पहुँचा और बहराइच की फौजदारी तथा जागीरदारी पर नियत हुआ। ६०वें वर्ष में, जब यह जूनागढ़ का फौजदार था तथा इस्लामाबाद की फौजदारी भी साथ ही मे मिल गई थी, इसका मंसब बढकर तीन हजारी ३००० सवार २००० सवार दो अस्प: सेहअस्प: का हो गया। दूसरे पुत्र का नाम दिलदार था, जिसे शाहजहाँ के राज्य के अंत समय तक आठ सदी ६०० सवार का मंसब मिला था। औरंगजेब के राय के आरंभ में खाँ की पदवी मिली।

६७४. सरफ़राज खाँ दक्खिनी

जाति तथा वंश के लिए यह अपने समय के प्रसिद्ध पुरुषों में से एक था। कहते हैं कि यह कुरैश वंश का था। इसके पूर्वज मदीना से दक्षिण प्रांत में आए और संसार के कष्टों के उठाने के बाद यह निजामशाही सेवा में भर्ती हो गया। यह अपने सौभाग्य से सरफ़राज खाँ की पदवी पाने से सर्दारों में सम्मानित हो गया। मलिक अम्बर के बाद सेनाध्यक्ष हो जाने पर यह तिलिंगाना की सेना का अधिपति हो गया। जब नसीरी खाँ खानदौराँ[1] ने शाहजहाँ के राज्य के ४थे वर्ष में दुर्ग कंधार लेने के लिए, जो दृढ़ता तथा दुर्भेद्यता के लिए उस प्रांत के प्रसिद्ध दुर्गों में से था, तैयारी की और कस्बे के पास पहुँचा तब उक्त खाँ कस्बे तथा दुर्ग के बीच में सेना सजाकर तथा आतिशबाजी का सामान तैयार कर युद्ध के लिये सन्नद्ध हो गया और उसने आक्रमण भी कर दिया। युद्ध में दुर्ग पर के तोपों और बंदूकों से और नीचे की आतिशबाजी से लड़नेवाले वीरों पर आग बरसती रही। खानदौराँ और उसके साथियों ने वीरता और बहादुरी दिखलाकर बहुत से शत्रुओं को नष्ट कर दिया। कुछ लोग, जिनकी मृत्यु का समय नहीं आया था, भागकर प्राण बचा ले गये। सरफ़राज खाँ सामान आदि छोड़कर थोड़े मनुष्यों के साथ निजामशाही सेना में, जो मुकर्रब खाँ तथा बहलोल खाँ और रनदूलहखाँ आदिलशाही के अधीन सहायतार्थ दुर्ग के पास आ चुकी थी, पहुँच गया और कस्बा बादशाही मनुष्यों के अधिकार में आ गया। निजामशाही शासन ढीला पड़ गया था, इसलिए वहाँ का सुप्रबंध उठ गया था। इसी समय मुकर्रब खाँ प्रसिद्ध नाम रुस्तमखाँ दक्खिनी, जो निजामशाही सेना का अधिपति था, अपने भाग्य के जागृत होने से बादशाही सेवा में चला आया तब यह भी क्षमाप्रार्थी होकर बादशाही सेवा स्वीकृत कर चार हजारी ३००० सवार का मनसब पाने से सम्मानित हुआ। शाहजहाँ के साथ दक्षिण से हिंदुस्तान पहुँचकर वहाँ से इसने अपने स्थान जाने की छुट्टी पाई, जहाँ यह अपनी इच्छा के अनुसार ही नियत किया गया था और जहाँ से इसने फिर पैर बाहर न निकाला। नांदेर के अंतर्गत [illegible] में इसे जागीर मिली थी। बिलोली नामक एक मौजा का अपना निवासस्थान निश्चित कर इसने एक बड़ी मस्जिद तथा कई बड़ी इमारतें बनवाईं, जिससे यह कस्बा दूसरों से बहुत आगे बढ़ गया। चालीस वर्ष से अधिक समय तक यह वहीं कालयापन करता रहा। यद्यपि इससे कोई अच्छे कार्य न हुए पर अपने उच्च पद से यह नहीं गिरा। शाहजहाँ के समय से बराबर यह दक्षिण में शाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ बादशाही सेवा बजाता

---

१. इस युद्ध का विस्तृत वर्णन इसकी जीवनी है।

रहा। जब उक्त शाहजादा दाराशिकोह के साथ युद्ध की इच्छा से रवाना हुआ तब इसको पाँच हजारी का उच्च मन्सब देकर उक्त खाँ की इच्छानुसार मित्रता तथा सहायक बनाकर दक्षिण में नियत कर दिया। आलमगीर के राज्य के ६वें वर्ष में जब दक्षिण के शासक मिर्जा जयसिंह ने बीजापुर राज्य में लूटमार करने का प्रयत्न किया तब दुर्ग मंगल पीरा या मंगलसरा पर, जो भीमा नदी के किनारे बीजापुर से सोलह कोस पर है, शिवाजी के सेनापति नेंयर की खोज में जाते हुए अधिकार कर लिया। मिर्जाराजा ने दुर्ग की अध्यक्षता उदयसिंह भदोरिया को दी और सरफराज खाँ को वहाँ के आसपास के प्रांत की फौजदारी सौंप कर आगे बढ़ गये।

इसी बीच एक दिन शरजाखाँ बीजापुरी छः सहस्र सवारों के साथ मंगल पीरा दुर्ग पर आ पहुँचा। यद्यपि राजा जयसिंह ने सतर्कता तथा दूरदर्शिता से इसे बार-बार सतर्क कर दिया था कि यदि शत्रु की भारी सेना उस ओर आ जावे तो यह दुष्ट शत्रुओं से युद्ध करने तथा उन्हें दमन करने का प्रबंध न कर दुर्ग में जा बैठे पर सरफराज खाँ ने उस संमति, उपाय तथा विचार का ध्यान न कर थोड़ी सेना के साथ, जो शत्रु को दमन करने के योग्य न थी, उसका सामना किया और बड़ी वीरता तथा बहादुरी दिखलाते हुए खूब धावे किए जिससे उच्चकोटि का साहस तथा रणकौशल प्रगट होता था। अंत में वह युद्ध में मारा गया। इस घटना के बाद इसके पुत्रगण बचे हुए सैनिकों तथा अपनी हाथियों के साथ भागकर दुर्ग में जा बैठे।

यह चतुर मनुष्य था। संसार चलाने का अच्छा ढंग जानता था। किसी के हानि लाभ से यह दूर रहता था। इसे पाँच पुत्र थे। दो पुत्र हुसेन खाँ और मुहम्मद पुरदिल की संतान थी। सबसे बड़े भाई हुसेन खाँ को पिता के बाद सरफराज खाँ की पदवी मिली और यह दिलेर खाँ के साथ आदिलशाहियों से मलखेड़ युद्ध में वीरता दिखलाकर मारा गया। इसके पुत्र मुरादुल्लाह खाँ तथा बुर्हानुल्लाह थे। द्वितीय औरंगजेब के राज्यकाल के अंत में नुसरताबाद सक्कर की फौजदारी पर नियुक्त हुआ। ४९ वें वर्ष में वहाँ से बदलकर चीनकुलीज खाँ बहादुर की बीजापुर की सूबेदारी में नियत हुआ। अंत में इसने बड़ी परेशानी उठाई। आलम अली खाँ के साथ के युद्ध के अनंतर नवाब आसफजाह ने कुछ दिन के लिये इसे दाग का दारोगा तथा दक्खिन की जाँच पर नियत किया। रंगीन मिजाज का यह आदमी था। लेखक से बहुत साथ था। औरंगाबाद में यह अपनी मृत्यु से मरा। जबतक यह रहा तबतक भाई के कार्यों के कारण बिलोली कस्बा इसे बहाल रहा। अब वह भी उन सबके पास नहीं रहा।

६७५. सरफ़राज खाँ सैयद लतीफ़

पहले यह बीजापुर राज्य में नौकर था। औरंगजेब के जलूस के २० वें वर्ष में दिलेर खाँ दाऊदजई के द्वारा आकर यह बादशाही सेवा में भर्ती हो गया और क्रमशः अच्छे मंसब पर पहुँचा तथा इसने सरफराज खाँ की पदवी पाई। २७ वें वर्ष में मुहम्मद आजम शाह के साथ यह बीजापुर के घेरे पर नियत हुआ। इसके बाद यह मुहम्मद कामबख्श के साथ नियत हुआ, जो पहले सक्कर की ओर और वहाँ से जिंजी दुर्ग को घेरे हुए जुल्फिकार खाँ की सहायता को भेजा गया था। इसके बाद यह सक्कर नुसरताबाद का दुर्गाध्यक्ष तथा फौजदार नियत हुआ। ४० वें वर्ष मे वहाँ से हटाया जाकर ४३ वें वर्ष में मुहम्मद बेदार बख्त के साथ इसने रामा भोसला पर नियत होकर अच्छे प्रयत्न किए। इसके अनंतर यह किसी दोष पर मंसब से अलग कर दिया गया। ४७ वें वर्ष मे मुहम्मद काम बख्श की प्रार्थना पर यह छ. हजारी ५००० सवार के मंसब पर बहाल हो गया। इसके बाद इसने बेद नायक का पीछा करने मे अच्छा कार्य किया, जिसके उपलक्ष्य मे ५० वे वर्ष मे इसको मंसब बढकर छ हजारी ६ ०० सवार का हो गया। औरंगजेब की मृत्यु पर यह किसी मौजे पर आक्रमण करते हुए गोली लगने मे मर गया।

इसका पुत्र सर्फराज खाँ सैयद अमीन था, जो निजामुल्मुल्क आसफजाह के समय मे हैदराबाद का अध्यक्ष नियत हुआ। इसने नगर के बाहर मृत्यु पर इसके पुत्र के पुत्र को थोडी जागीर मिली थी। लिखते समय वह भी मर गया।

•

६७६. सर बुलंद खाँ ख्वाजा रहमतुल्लाह

यह नजाबत खाँ मिर्जा शुजाअत का भांजा था। अपने वंश के कारण यह योग्य मंसब पाकर शाहजहाँ के दरबार मे परिचितो में परिगणित हो गया। २५ वें वर्ष मे यह मीर तुजुक के पद पर नियत हुआ। २६ वें वर्ष मे शाहजादा दाराशिकोह के साथ यह कंधार की चढाई पर नियत हुआ। २७ वें वर्ष मे इसका मंसब बढ़कर एक हजारी २५० सवार का हो गया। २९ वें वर्ष मे १५० सवार बढ़े और ३० वें वर्ष मे इसका मंसब एक हजारी ५०० सवार का हो गया तथा इसे सरबुलंदखाँ की पदवी मिली। ३१ वें वर्ष में असद खाँ के स्थान पर यह आख्तः बेगी नियत हुआ और उसके बाद तोपखाने का दारोगा हुआ तथा एक सौ सवार मंसब में बढ़े। इसके अनंतर जब समय ने पलटा खाया और औरंगजेब विजयी हुआ तब सामूगढ़

के युद्ध के बाद सेवा में यह उपस्थित हुआ। प्रथम राजगद्दी के अनन्तर यह मंदसोर का फौजदार नियत हुआ। ६ ठे वर्ष मे इसका मंसब बढकर ढाई हजारी ५०० सवार का हो गया। ९ वें वर्ष मे यह सुलतान मुहम्मद मुअज्जम के साथ गया, जो ईरान के शाह के काबुल की ओर आने का समाचार सुनकर उधर भेजा गया था। १० वें वर्ष उक्त शाहजादे के साथ, जो दक्षिण के प्रांतो का प्रबंध ठीक करने गया था, यह भी नियुक्त हुआ। १२ वें वर्ष में यह आज्ञानुसार दरबार आया। उक्त शाहजादे से कुछ ऐसे कार्य हो गए थे, जो बादशाह के मन के विरुद्ध थे। इन्हें सुनकर बादशाह के आदेशानुसार इसकी माता नवाब बाई समझाने के लिये उधर रवानः हुई। १३ वें वर्ष मे सर बुलंद खाँ उक्त बाई को पहुँचाने के लिये नियत हुआ। वहाँ से लौटने पर फैजुल्ला खाँ के स्थान पर कोशबेगी के पद पर नियत हुआ। १५ वे वर्ष मे इसे आगरा की सूबेदारी नामदार खाँ के स्थान पर मिली और इसके बाद हिम्मत खाँ के स्थान पर यह द्वितीय बख्शी तथा वालाशाही दफ्तर का निरीक्षक भी नियुक्त किया गया। १७ वें वर्ष मे जब शुजाअत खाँ राद अंदाज खाँ यूसुफजई चढाई पर स्वामी की सेवा मे काम आया तब यह अच्छी सेना के साथ पेशावर से भेजा गया। १८ वे वर्ष मे इसका मंसब बढकर चार हजारी २५०० सवार का हो गया। १९ वे वर्ष मे जब शेख मीर खवाफी का पुत्र शमशेर खाँ याकूब अफगानो के युद्ध मे मारा गया तब यह भारी सेना और काफी सामान के साथ उन्हे दंड देने पर नियुक्त किया गया। कारण वश दंडित होने पर इसका मंसब छिन गया। कुछ दिनो के अनंतर क्षमा मिल गई। २१ वे वर्ष मे जब इसकी माता आई बेगम, जो मिर्जा शाहरुख की पुत्री थी, मर गई तब नामदारखाँ इसे दरबार लिवा लाया और खिलअत पाकर यह शोक से उठा। २२ वें वर्ष मे राठौडो से, जिन्होने विद्रोह कर रखा था, जोधपुर को दमन करने के लिए इसने साहस दिखलाया। २३ वें वर्ष सन् १०९० हि० (सन् १६७८ ई०) मे बीमारी से मर गया।

०

६७७. सर बुलंद खाँ बहादुर दिलावर जंग, मुबारिजुल्मुल्क

इसका नाम मीर मुहम्मद रफीअ और देश तून था। औरंगजेब के समय यह अपने पिता के साथ, जिसका नाम मिर्जा अफजल था और जिसे मुकतदवी खाँ की पदवी मिली थी, ईरान से हिंदुस्तान आया। इसका पिता आगरा प्रांत के अंतर्गत ग्वालिअर का दीवान नियत हुआ था। पिता की मृत्यु पर अपने मामा बशा तखाँ के यहाँ जाकर, जो बरार प्रांत के मलकापुर का फौजदार था, उस परगने के देहात के उपद्रवियो को दंड देने में इसने बड़ी योग्यता दिखलाई और इसके उपलक्ष्य मे योग्य मनसब प्राप्त किया। इसके अनंतर बादशाही सेना में पहुँचकर इसने रूहुल्ला खाँ बख्शी की पुत्री हबीबा बेगम से निकाह किया। उक्त खाँ की दूसरी पुत्री आयशा बेगम सुल्तान अजीमुश्शान के घर मे थी इसलिये शाहजादे के कारण इसका संमान बढ़ा और उसकी प्रार्थना पर बहादुर शाह के समय इसे सर बुलंदखाँ की पदवी मिली तथा यह शाहजादे की सरकार मे काम करने लगा। इसके बाद शाहजादे ने इसे बंगाल प्रांत के प्रबंध मे नियत किया। अजीमुश्शान का पुत्र फर्रुखसियर अपने पिता की ओर से बंगाल का प्रबंध देखता था और उससे इसका साथ ठीक नही बैठा इसलिये अजीमुश्शान ने इसे अपने यहाँ बुला लिया। मार्ग ही मे यह कड़ा प्रांत इलाहाबाद का फौजदार नियत हुआ। जब बहादुरशाह की मृत्यु पर अजीमुश्शान भ्रातृयुद्ध मे मारा गया और फर्रुखसियर जहाँदार शाह से युद्ध करने के लिये चला तब यह पुराने मनोमालिन्य के कारण ताल्लुके की तहसील के साथ जहाँदार शाह के पास चला गया। जब आसफुद्दौला असद खाँ को वकील पद के साथ गुजरात की सूबेदारी मिली तब जुल्फिकार खाँ ने इसको प्रतिनिधि रूप मे उस प्रांत के शासन पर नियत किया। जब मुहम्मद फर्रुखसियर बादशाह हुआ तब सैयद अब्दुल्लाखाँ कुतुबुल्मुल्क के द्वारा इसको क्षमा मिली और यह अवध का सूबेदार नियत हुआ। कुछ दिन बाद वहाँ से हटाए जाने पर दरबार आया और मीर जुमला के स्थान पर अजीमाबाद पटना का सूबेदार हुआ। वहाँ पहुँचते ही यह उस प्रांत के एक विद्रोही जमींदार धर्मा जी को दमन करने गया और बहुत प्रयत्न कर उसे भगा दिया। उसी भागने में घावों के कारण वह मर गया।

सैनिकों के रखने का इसे अनुभव नही था और यह विशेष वेतन देकर नौकर रख लेता था इसलिये वहाँ से हटाए जाने पर दरबार आने के बाद भी बहुत दिनों तक सिपाहियो के वेतन का तकाजा होता रहा। जब बादशाह, वजीर तथा बख्शी का सहयोग बिगड़ गया, तब उन सबने समय पर काम आने के विचार से इसके

पास गुप्त रूप से धन भेजा, जिससे इसे सैनिकों से छुट्टी मिल गई। इसके बाद सुल्तान रफीउद्दर्जात् के समय में यह काबुल का सूबेदार नियत हो वहाँ चला गया। मुहम्मद शाह के राज्यकाल में वहाँ से बदले जाने पर दर्बार आया। सन् ११३८ हि० में निजामुल्मुल्क आसफजाह के स्थान पर गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। इसने शुजाअत खाँ गुजराती के नाम अपना नायब नियत करने का पत्र भेज दिया। आसफजाह का चाचा हामिदखाँ, जो उसकी ओर से अहमदाबाद में नियुक्त था, बिना सामान के बाहर निकला और दोहद में ठहरकर कंथा जी नामक मराठा को सहायतार्थ बुलाया। यह इसके साथ गुजरात पर चढ़ गया और शुजाअत खाँ को युद्ध में मार डाला। शुजाअत खाँ के भाई रुस्तमअली खाँ ने, जो सूरत में था, युद्ध करने का निश्चय किया। इसने पीला जी गायकवाड़ की सहायता से युद्ध की तैयारी की और माही नदी के किनारे लड़ाई हुई। पीला जी गायकवाड़ हृदय से हामिद खाँ का पक्षपाती था, इसलिये रुस्तम अली भी मारा गया। सर बुलंदखाँ यह समाचार पाते ही सन् ११३८ हि० में बादशाही कोष से दादे पर धन लेकर वहाँ गया। हामिदखाँ का बख्शी युद्ध के लिये आकर मारा गया और सर बुलंदखाँ वहाँ अधिकृत हो गया। परंतु स्वभाव की अनुभवहीनता तथा अदूरदर्शिता से इसने इतना अपव्यय कर डाला कि उक्त धन के सिवा बादशाही खालसा के महालों तथा उस प्रांत के जागीरदारों की भूमि की आय भी उड़ गई और यह नौकरों से अत्याचार कर नगर के प्रत्येक निवासी को, जिन्हें ये धनाढ्य समझते थे, अपने घर बैठाकर उनसे बलात् धन वसूल करना आरंभ किया। यह स्वयं भी इस कार्य में कमी न करता था। जब मराठा चौथ का इस प्रांत में जोर देखा तब यह भागा। इस पर ११वें वर्ष में इस प्रांत का प्रबंध अजीत सिंह के पुत्र अभय सिंह उर्फ ओंकार सिंह को सौंपा गया। यह राजधानी लौटकर बहुत दिनों तक अपने घर बैठा रहा। ऋणदाताओं के तकाजे के कारण इसने गृह के बड़े फाटक को पत्थर से बनवाया था। कहते हैं कि बादशाह ने इसको बुलवाया और पालकी तथा कई सजावल साथ आए कि ऋणदाताओं को मार्ग में रोकें। नादिर शाह के आने पर जब दिल्ली के निवासियों से दंड का धन उगाहने का निश्चय हुआ तब बुर्हानुल्मुल्क सआदतखाँ की मृत्यु पर, जो इन बातों का उत्पादक था, यह उस धन को उगाहने पर नियत हुआ। हर गली तथा मार्ग पर लोगों के फरियाद का शोर मचा। इसकी प्रकृति में निडरता भरी थी और व्यय में आगे का विचार नहीं रखता था, जिससे यह कहीं सफल नहीं होता था। सन ११५८ हि०[1] में इसकी मृत्यु हो गई। इसका पुत्र खानःजाद खाँ बहादुर छहजारी मन्सब

---

१. तारीख मुजफ्फरी में सन् ११५० हि० दिया गया है।

तक पहुँच गया था, पर ऐश्वर्य की कमी के साथ दिल्ली में कालयापन करता हुआ अहमदशाह के राज्यकाल के आरंभ में मर गया। इसका पुत्र मेहदी खाँ इनके उनके साथ समय बिताता था।

•

६७८. सलाबत खाँ

इसका नाम ख्वाजा मीर खवाफी है और यह स्वयं हिंदुस्तान ही का पैदा है। इसके पूर्वज बुद्धिमानो के गृह (खवाफ) से इस देश मे आए थे। खवाफ के रहनेवाले स्वभावत: भलाई तथा धार्मिक निष्ठावाले होते हैं इसलिये उक्त खाँ भी अपने कार्यो मे सत्यता तथा औचित्य और स्वामी की प्रसन्नता मे उत्साही था। अपने सौभग्य से यह औरंगजेब बादशाह का कृपापात्र होकर तथा विश्वास प्राप्तकर संमानित हो उठा। अपनी योग्यता तथा कर्मठता के कारण २२वें वर्ष में बहर: मंद खाँ के स्थान पर यह फीलखाने का दारोगा नियत हुआ और शरीर से लंबा-चौडा तथा बलवान होने के कारण इसने अपनी प्रगट भीषणता के लिये सलाबत खाँ की पदवी पाई। २३वे वर्ष मे रूहुल्ला खाँ के स्थान पर यह तोपखाने का दारोगा नियत हुआ। इसके अनंतर यह किसी दोष के कारण नौकरी से हटा दिया गया पर २५वें वर्ष में फिर इसका मंसब बहाल हो गया और यह मीर आतिश के पद पर नियत किया गया। इसके अनतर यह अवध प्रात मे नियत हुआ। जब यह वहाँ से आकर सेवा मे उपस्थित हुआ तब जिलौखाने के सेवको का दारोगा बनाया गया। २८वे वर्ष मे यह कारतलब खाँ मुहम्मदबेग के स्थान पर सूरत बंदर का मुत्सद्दी होकर ३३वें वर्ष मे निजी प्रार्थना के कारण आदेश पाकर दरबार आया और प्रथम मीर तुजुक नियत हुआ। इसके अनंतर खास चौकी का दारोगा नियत हुआ और इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी १२०० सवार का हो गया।

कहते है कि एक दिन गौरीगाँव के पड़ाव पर दरबार मे द्वितीय मीर तुजुक सुहराब खाँ ने प्रबंध करते हुए सेहदस्ती चोब का एक हाथ तोपखाने के एक प्रधान अमले के सिर पर मार दिया। उस विभाग के कुछ सर्दार, जो वहाँ उपस्थित थे, उस अफसर की सहायता करते हुए सुहराब खाँ पर टूट पड़े। सलाबत खाँ ने प्रथम मीर तुजुक होने के कारण चाहा कि उनको धमकावे पर मामला उलटा पड़ गया। एकाएक तोपखानेवालो का इतना जोर बढ़ गया कि बादशाह दीवान से उठ गए और कई बड़े सर्दार इस झगड़े को शांत करने के लिये नियत हुए। उन

सबने सलाबत खाँ को अपनी रक्षा मे लेकर घर पहुँचा दिया। यह उपद्रव दूसरे दिन तक रहा। प्रथम रुहुल्ला खाँ स्वयं सवार होकर उन उपद्रवियो को धमकाने तथा डांटने के लिये गया और सलावतखाँ को घर से दरबार ले आया। कुछ परिचित मनकबाशी तथा यूजबाशी दंडित हुए।

३६वें वर्ष सन् ११०३ हि० के अंत में उक्त खाँ को बीमारी के बढ़ने से कुल्कुला स्थान से दिल्ली लौट जाने की आज्ञा मिल गई, जिसके लिये उसने प्रार्थनापत्र दिया था। कुछ मंजिल यात्रा कर चुका था कि उसकी मृत्यु आ पहुँची। उस समय वह बहुधा एक शैर पढ़ा करता था, जिसका उर्दू रूपांतर निम्नलिखित है—

खुद जारहा हूँ, कोना है पकडा मजार का।
होवे न बारे दोश किसी का हमारे पर॥

कई अखबारों से प्रकट होता है कि उक्त खाँ को दो बार मीर आतिश का पद मिला था। २८वें वर्ष में यह सूरत बंदर का मुत्सद्दी हुआ और निजी प्रार्थना पर ३३वें वर्ष में दरबार आया। ऐसा भी इसके विरुद्ध लिखा मिलता है कि गोलकुंडा के घेरे में २९वें वर्ष में जब सफ शिकन खाँ मीर आतिश ने फीरोजजंग से झगड़ा करके तथा द्वेष मान के काम से हाथ खींचकर त्यागपत्र दे दिया था तब उसके स्थान पर सलावत खाँ ने मीर आतिश का खिलअत पाया था। इसके अनंतर जब यह भी यथायोग्य कार्य न कर सका, तब यह भी उस पद से हटा दिया गया और सैयद इज्जत खाँ इसके स्थान पर नियत हुआ। अर्द्धरात्रि के समय शत्रु ने दमदमे पर आक्रमण कर दिया और इज्जत खाँ, सरबराह खाँ जलाल चेलः तथा उन सबको जो वहाँ मिले बाँधकर दुर्ग मे ले गए। दूसरी बार फिर सलावत खाँ मीर आतिश के पद पर नियत हुआ। नेअमत खाँ हाजी ने, जो अपनी शैली मे एक है; वकायः हैदराबाद में, जिसे व्यंग्यात्मक शैली में लिखा है और आचार्यत्व दिखलाया है, दुबारा मीर आतिशी उक्त खाँ के नाम लिखी है और पुनः प्रयत्न करने का वृत्तांत लिखा है तथा अपनी बुद्धिमत्ता प्रकट की है। ऐसी अवस्था में स्पष्ट है कि सलावत खाँ दो बार सूरत बंदर का मुत्सद्दी होकर गया था। परंतु मआसिरे आलमगीरी में ऐसा नहीं लिखा है।

मृत सलावत खाँ को एक योग्य पुत्र था, जो काम करनेवाला तथा सिपाही था। पिता के जीवन में अच्छे प्रयत्न कई बार करके इसने तहव्वर खाँ की पदवी पाई। प्रयत्नशीलता तथा उदारता में इसका तथा जान निसार खाँ ख्वाजः अबुल्मकारम का सिक्का इस प्रकार बादशाह के हृदय मे बैठ गया था कि खानजहाँ बहादुर की

अध्यक्षता में हुए कार्य के साथ इन दोनों का नाम बादशाह के मुख से निकल गया। इन दोनों की वीरता तथा परिश्रम की बहुत प्रशंसा होने से खानजहाँ बहादुर की ईर्ष्या बढ गई। जब ये दोनो उपद्रवियों को दंड देने पर नियत हुए तब ३७ वे वर्ष कर्णाटक की सीमा पर प्रसिद्ध संताजी से सामना पड गया। युद्ध में सामान तथा तोपखाना लुटवाकर तथा घायल होकर किसी प्रकार जान बचाकर ये निकल आए।[1] ४० वें वर्ष में यह सहारनपुर की फौजदारी पर नियत होने तथा वहाँ से बदले जाने पर दरबार आया तब कौरखाने का दारोगा बनाया गया। ४६ वें वर्ष में इसने फिदाई खाँ की पदवी पाई।

•

६७९. सलाबत खाँ बारहा, सैयद

इसकी पदवी इख्तसास खाँ और नाम सैयद सुलतान था। इसका पिता सैयद बायजीद सैयद हाशिम का पुत्र और प्रसिद्ध सैयद महमूद खाँ कोंदलीवाल का पौत्र था। सलाबत खाँ शाहजादा दाराशिकोह का अच्छा सेवक था और अपने बराबर वालो में इसका विश्वास अधिक था। २४वें वर्ष में यह शाहजादा का प्रतिनिधि होकर पंजाब प्रात का शासक नियत हुआ और इसका मन्सब बढकर दो हजारी ४०० सवार का हो गया तथा सलावत खाँ की पदवी और हाथी पाकर संमानित हुआ। इसी वर्ष शाहजादा की प्रार्थना पर इलाहाबाद प्रांत मे उसका प्रतिनिधि नियत होकर इसको बिदाई का खिलअत मिला। बहुत दिनो तक इस प्रांत का प्रबंध करते हुये इसने वहाँ के उपद्रवियो को शात रखा और विद्रोहियों को कैद किया। २५वें वर्ष में इसे झडा मिला और २७ वें वर्ष में इसका मन्सब दो बार बढने से दो हजारी १५०० सवार का हो गया तथा यह डंका पाकर सम्मानित हुआ। ३०वें वर्ष में बांधव नरेश अनूपसिंह को, जिसके राज्य की सीमा इलाहाबाद प्रात तक पहुँची हुई थी, समझाकर इसने बादशाही अधीनता स्वीकार करने पर राजी कर लिया। उक्त खाँ के मार्ग प्रदर्शन पर उसने अधीनता स्वीकार कर लिया। ३१वें वर्ष के अंत मे दाराशिकोह का प्रथम पुत्र सुलेमान शिकोह भारी सेना के साथ शाह जादा शुजाअ पर नियत किया गया, जो शाहजहाँ की बीमारी का वृत्तांत सुनकर बंगाल से बडी फौज के साथ आगरे की ओर रवाना हो चुका था। यद्यपि उसके वकील

---

१. देखिए 'ए हिस्ट्री ऑव मराठा पीपुल' पारसनीस किनकेड कृत भाग २ पृ० ८२।

ने कई बार लिखा कि बादशाह की तबीअत अब ठीक है पर उसने इसमें अपने बड़े भाई की चाल समझकर उस पर ध्यान नहीं दिया। साम्राज्य के सर्दारों तथा सेनाध्यक्षों के सिवा, जो सहायता के लिए नियत किए गए थे, दाराशिकोह ने उन सब अपने अनुभवी आदमियों को भी जिन्हें बहुत वर्षों से पक्ष लेकर ऐश्वर्यवान् तथा प्रभुत्वशाली बना रखा था और अपने विषय मे जिनकी संमति को वह उचित समझता था, अपने से अलग कर उसके साथ भेज दिया। इस पर भी सैयद सलाबत खाँ को बारहा के कुछ सैयद के साथ, जो उसके अच्छे सर्दार थे और जिनकी बहादुरी तथा सहारा पर पूरा विश्वास था, उसी सेना मे नियुक्त किया। इसके अनंतर विचित्र आकाश के खेल ने दाराशिकोह की सेना तथा ऐश्वर्य रूपी शीशे पर भेद तथा उपद्रव का पत्थर फेंका अर्थात् औरंगजेब की सेना के युद्ध तथा मारकाट करने पर उसकी पराजय हो गई, जिसकी कभी कल्पना मे भी आशा न थी। जब सुलेमानशिकोह, जो शुजाअ के भागने पर लौटकर पिता की सहायता के लिए शीघ्रता कर रहा था, तब यह वृत्तांत सुनकर वह घबड़ा गया और इलाहाबाद लौट आया। अपने सर्दारो तथा विश्वासपात्रो की सभा कर इसने हर एक से संमति ली। परंतु भय के कारण कोई भी सहज से बात न कर सका। यहाँ तक कि बारहा के सैयदो ने, जो सेना के सर्दार तथा मध्य दो आब के निवासी थे, हठ कर कहा कि चाँदपुर मदीना की ओर चलकर वहाँ से पुरनिया तथा सहारपुर जाना चाहिए। वहाँ से पंजाब की ओर रवाना होकर लाहौर में पिता से जा मिलिए। तर्क वितर्क के बाद यही राय ठीक हुई और सब उस ओर चल दिए। लखनऊ से आगे बढ़ने पर सुलेमान शिकोह ने कुछ आदमी मदीना परगना के करोड़ी के पास भेजा, जो बेगम जहाँआरा की जागीर मे थी, कि जो कुछ आय हुई हो उसे देदे। वह अपने गृह मे बैठकर इन्हें रोकने तथा दमन करने का सामान करने लगा। सुलेमान शिकोह के संकेत पर सैनिको ने उसके घर द्वार पर आक्रमण कर दिया और इसको उसके पुत्र तथा अधीनो के साथ कैद कर लिया। इसके अनतर इसके धन और परिवार तथा उस परगने के अन्य निवासियो को लूटना आरंभ कर दिया। सैयद सलावत खाँ इस घटना के बीच मे, जिसने दूरदर्शिता तथा अनुभव मे इसका साथ देने में अपनी भलाई नहीं देखी और इसके चाल चलन के विषय में औचित्य नहीं सुना, इससे साथ छोड़कर औरंगजेब से मिलने के लिए उस ओर चल दिया। जिस समय औरंगजेब की सेना दाराशिकोह का पीछा करती हुई अभी व्यास नदी पार नहीं उतरी थी, उसी समय दरबार मे उपस्थित होने पर यह क्षमा किया गया। उसी समय दो तीन दिनो पर सौभाग्य की सहायता से यह हिसामुद्दीन खाँ के स्थान पर बरार का प्रांताध्यक्ष नियत हो गया और इसने इख्तसास खाँ की पदवी पाई। इसके अनन्तर का वृत्तांत नहीं मिलता कि इसका क्या हाल हुआ।

●

६८०. सलाबत खाँ रोशन जमीर

यह मीर बख्शी सादिक खाँ का द्वितीय पुत्र था। शाहजहाँ के जलूस के ४वें वर्ष मे इसका मन्सब बढकर एक हजारी २०० सवार का हो गया और सर्दार खाँ के स्थान पर यह कोरबेग नियत हुआ। ६ठे वर्ष में जब इसके पिता की मृत्यु हो गई तब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब अपने पिता की आज्ञा से इसके गृह आकर इसके बड़े भाई जाफर खाँ को भाइयो के साथ शोक से उठाकर दरबार लिवा गया। औरङ्गजेब ने खिलअत तथा मन्सब में उन्नति कर इस पर कृपा की। ८वें वर्ष में पाँच सदी १०० सवार बढ़ने से इसका मन्सब दो हजारी ८०० सवार का हो गया। इसके बाद इसे सलाबत खाँ की पदवी मिली। ११वें वर्ष मे पाँच सदी २०० सवार बढ़ने से इसका मन्सब ढाई हजारी १००० सवार का हो गया १२वे वर्ष मे कोरबेगी पद से यह हटाया गया और तरबियत खाँ के स्थान पर द्वितीय बख्शी नियत हुआ तथा इसका मन्सब बढकर तीन हजारी १००० सवार का हो गया। १७वें वर्ष में इसका मन्सब बढकर चार हजारी २००० सवार का हो गया और झण्डा तथा डंका पाकर यह संमानित हुआ।

इसी वर्ष १ जमादिउल् अव्वल सन् १०५४ हि० २५ जुलाई सन् १६४४ ई० को राजा गजसिंह के पुत्र राव अमरसिंह के जमधर की चोट से यह मारा गया। इसका वृत्त यों है कि उक्त राव बीमारी के कारण कुछ दिन दरबार मे उपस्थित न हो सका। इसके अनंतर जब दरबार आया तब सलाबत खाँ सुल्तान दाराशिकोह के यहाँ खिलवत एकांत गृह में लिवा गया, जहाँ बादशाह थे। वह बाईं ओर की पंक्ति में, जहाँ उनका स्थान था, जाकर खड़े हो गये और सलाबत खाँ दाहिनी ओर। संध्या की निमाज के अनंतर जब बादशाह एक सर्दार को अपने हाथ से आज्ञापत्र लिख रहे थे और खाँ किसी कार्य से ऐवान (उच्च मंच) के नीचे आकर किसी से क्रोध से बातें कर रहा था तब राव ने जमधर खींचकर तथा दौडकर इसकी छाती मे असावधानी मे मार दिया। उस ओर हृदय होता है, इसलिए तुरन्त ही वह समाप्त हो गया।[1] यह योग्य कर्मचारी था और सुशिक्षित होने से बादशाहो के भारी कार्यों को करने के लिए सदा तैयार रहता था। बादशाह ने इसकी सेवा, सच्चे विचारो तथा अवस्था के कारण बहुत शोक किया और इसके चार वर्ष के

---

१. लेखक ने धार्मिक पक्षपात से अति संक्षेप मे लिखते हुए सलाबत खाँ को निर्दोष बतलाया है पर ऐसी बात नही है। देखिए राव अमरसिंह की जीवनी—मुगल दरबार भाग १।

लड़के मुहम्मद मुराद को पांच सदी १०० सवार का मन्सब दिया। २०वें वर्ष तक यह एक हजारी १०० सवार के मन्सब तक पहुँचा था। औरङ्गजेब के २रे वर्ष में इसने इल्तफ़ात खां की पदवी पाई और ६ठे वर्ष में इसका डेढ हजारी १५० सवार का मन्सब हो गया। ९वें वर्ष मे १०० सवार बढाए गये।

•

६८१. सादात खाँ जुलिफकारजंग

यह सादात खां उर्फ सैयद हुसेन खां का पुत्र था, जिसकी पुत्री का विवाह मुहम्मद फर्रुखसियर के साथ हुआ था। उक्त खां को इस संबंध के कारण बराबर उन्नति करते हुए पहले सैयद सलावत खां की पदवी, योग्य मंसब तथा तोपखाने के दारोगा की पदवी मिली। जिस दिन बारहा के सैयदो ने फर्रुखसियर को कैद कर लिया उस दिन सादात खां ने पुत्रो के साथ चांदनी चौक तक पहुँचकर घोर युद्ध किया और एक पुत्र के साथ मारा गया। तीन लडके बच गए। एक उक्त सादात खां, दूसरा सैफखां और तीसरा सैयद हुसेन खां था। इन सब की जागीर बारहा के सैयदो ने जब्त कर ली। इसके अनंतर उक्त खाँ कुतुबुल्मुल्क से मिल गया और सुल्तान इब्राहीम से जो युद्ध हुआ था, उसमे यह साथ रहा।

जब सन् ११३३ हि० सन् १७२१ ई० मे मुहमदशाह का निकाह फर्रुखसियर की पुत्री के साथ हुआ, जो इसकी बहिन गौहरुन्निसा बेगम से पैदा हुई थी, तब बड़े समारोह के साथ मजलिस हुई, जिसमे बहुत से सर्दारो ने लाख लाख रुपए भेंट दिए तथा उनमे हर एक को खिलअत, रत्न और तरक्की मिली। इसके सिवा उक्त खां की पुत्री का भी बादशाह से निकाह पढाया गया, जिसे साहिब महल की पदवी मिली। इन कारणो से इस पर विशेष कृपा हुई और इसे पहले चार हजारी मंसब मिला और यह अहदियों का बख्शी नियत हुआ। इसके अनंतर यह हमीदुद्दीन खां आलमगीर शाही के स्थान पर चौथा बख्शी नियत हुआ और इसका मंसब छः हजारी हो गया। मुहम्मदशाह की इन दोनो बेगमो को संतान नही थी इस लिये मिर्जा अहमद बहादुर का इन दोनो बेगमो ने पालन किया, जो गद्दी पर बैठने पर अहमदशाह कहलाया। इसके अनंतर सन् ११६१ हि०, सन् १७४८ ई० में शाह दुर्रानी के हिंदुस्तान मे आने का शोर मचा और बादशाह शूल के रोग के बढने से बाहर निकल नही सकता था, इसलिये उक्त शाहजादे को सैयद सलावत खां की अभिभावकता में वजीर एतमादुद्दौला, मीर आतिश सफदरजंग तथा अन्य सर्दारों के साथ दुर्रानियों का सामना करने भेजा। घोर युद्ध

हुआ और दुर्रानी लोग भागकर अपने देश चले गए। इसी समय मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई और अहमदशाह गद्दी पर बैठा। निजामुलमुल्क आसफजाह के स्थान पर इसे मीरबख्शी का पद मिला और इसका मंसब बढ़कर आठ हजारी ८००० सवार का हो गया तथा यह सैयद सादात खाँ बहादुर जुल्फिकार जंग की पदवी पाकर संमानित हुआ। बादशाह इसे नाना बाबा कहकर पुकारता था। संसार के लोग स्वार्थ के कारण अदूरदर्शिता तथा आशंकाओं से एक दूसरे को गिराना चाहते है। जावेदखाँ ख्वाजासरा जो साम्राज्य के प्रबंध का मुख्तार हो गया था तथा नवाब बहादुर कहलाता था, इससे द्वेष कर सदा बादशाह से इसकी बुराई कहा करता था। यहाँ तक कि सन् ११६४ हि०, सन् १६५१ ई० में बादशाही दुर्ग मे यह कैद रहा और इसका बहुत सा सामान जब्त भी हो गया। इसका बख्शी का पद और अमीरुलउमरा की पदवी इससे लेकर निजामुलमुल्क आसफजाह के बड़े पुत्र फीरोजजंग बहादुर को दे दी गई। सन् ११६६ हि० में फिर सफदरजंग के कहने पर इसे बख्शी का पद मिला पर जब सफदरजंग भी वहाँ ठहर न सका और अवध प्रांत की अपनी सूबेदारी पर चला गया तब यह भी उसके साथ गया और वहीं इसकी मृत्यु हो गई।

•

६८२. सादिक खाँ मीर बख्शी

यह मुहम्मद शरीफ हरवी के पुत्र आका ताहिर उपनाम 'वसली' का लड़का और एततमादुद्दौला तेहरानी का भतीजा और दामाद था। कुछ दिन पिता के साथ पंजाब के आस पास फौजदारी पर व्यतीत कर जहाँगीर के समय में इसने योग्य मंशब पाया। ८वें वर्ष में इसे खाँ की पदवी मिली। ९वें वर्ष में इसे बख्शी का पद मिला और इसका मंसब बढ़कर एक हजारी ५०० सवार बढ़ाए गए और इसी प्रकार बराबर बढ़ते रहने से यह अच्छे मंसब पर पहुँच गया। १८वे वर्ष मे पंजाब प्रांत का शासन भी इसके नाम हो गया और यह उत्तरी पहाड़ी पर अधिकार करने पर नियत हुआ। उस ओर के कार्य को निपटाकर यह अपने सहायकों के साथ दरबार चला आया और जगतसिंह को, जिसने कुछ दिन तक उस सीमा पर विद्रोह किया था, शाही कृपा की आशा दिलाकर दरबार लिवा लाया। नूरजहाँ बेगम द्वारा उसके दोष क्षमा कर दिए गए। जब कश्मीर से लौटते समय जहाँगीर की मृत्यु हो गई और यमीनुद्दौला आसफखाँ ने अवसर समझकर खुसरो के पुत्र

दावबख्श को राजगद्दी पर बिठा दिया तब सादीक खाँ ने जो शाहजहाँ से विरोध कर चुका था, अपने कार्यों से हटकर यमीनुद्दौला से प्रार्थना की। उसने तीनों शाहजादो को नूरजहाँ बेगम से लेकर इसे सौंप दिया कि इनकी सेवा के द्वारा अपना छुटकारा कर ले। शाहजहाँ के प्रथम वर्ष मे इन शाहजादों के साथ आकर यह सेवा में उपस्थित हुआ और पुराना मंसब बहाल होने से कृपापात्र हुआ, जो चार हजारी ४००० सवार का था तथा झंडा व डंका भी इसे प्राप्त था। पहले बख्शी का पद इरादत खाँ को मिला था पर फिर यमीनुद्दौला की प्रार्थना पर जब इरादत खाँ को मंत्री का पद दिया गया तब सादिक खाँ बख्शी के पद पर नियत हुआ और इसे जडाऊ कलमदान मिला। ६ठे वर्ष ९ रबीउल् अव्वल सन् १०४३ हि० को इसकी मृत्यु हो गई। बादशाह ने गुणग्राहकता दिखलाते हुए शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब को इसके पुत्रो को सान्त्वना देने के लिये भेजा। इसके चार पुत्र थे। सबसे बड़ा जाफर खाँ था और दूसरा रोशन खाँ[1] था, जिन दोनो के वृत्तात अलग दिए गए हैं। तीसरे अब्दुर्रहमान को पिता की मृत्यु पर मंसब में तरक्की मिली और उसके बाद अहदियो का बख्शी नियत हुआ। ८वें वर्ष में यह इस पद से हटाया गया। १२वें वर्ष में इसे एक हजारी ४०० सवार का मंसब मिला और इसके बाद मरहमत खाँ की पदवी मिली। १९वें वर्ष मे बलख के शासक नज्रमुहम्मद खाँ के पुत्र खुसरो का आतिथ्य करने पर यह नियत हुआ, जो दरबार मे उपस्थित होने की उस समय इच्छा रखता था, जब बादशाह काबुल में थे। २०वे वर्ष में पाँच सदी ४०० सवार की इसके मंसब मे उन्नति हुई। चौथे पुत्र बहराम का वृत्तांत उसके पुत्र मीर बख्शी बहरमंद खाँ की जीवनी मे दिया गया है।

कहते हैं कि सादिक खाँ मिलनसार और विनम्र था तथा सभी से मेल रखता था। यहाँ तक कि महाबत खाँ, जो इस वंश का शत्रु था, इसकी विनम्रता से इसे अपना ही समझता था। यह अच्छी जाति के घोडों का शौक रखता था और बहुत से एराकी घोडे एकत्र किए थे। परंतु सेना की अनुपस्थिति के लिये अनेक बहाने करता। इस कारण इसके सामने ही लोग व्यंग्य करते थे।

•

---

१. इसी ग्रंथ में दो शीर्षक पहले इसका वृत्तांत देखिए।

६८३. सादिक मुहम्मद खाँ हरवी

यह मुहम्मद बाकर हरवी का पुत्र था। यह गुरगान के शासक करा खाँ तुर्कमान का मंत्री था, जिसने शाह तहमास्प के विरुद्ध विद्रोह किया था। हिंदुस्तान में आने पर यह पहले बैराम खाँ की सेवा में रिकाबदार हुआ। यह अपनी योग्यता से कुछ ही समय में बादशाही मंसब पाकर संमानित हुआ। बैराम खाँ की मृत्यु पर उन्नति कर यह शीघ्र एक सर्दार हो गया। पटना विजय करने के अनंतर जब अकबर नाव पर सवार होकर जौनपुर लौटा, तब उसने सादिक मुहम्मद खाँ को पड़ाव को स्थल मार्ग से योग्य उतारों द्वारा धीरे धीरे लाने पर नियत किया। दैवयोग से लाल खाँ नामक खास हाथी चौसा उतार पर नष्ट हो गया और यह प्रकट हुआ कि सादिक मुहम्मद खाँ ने पार कराने में उचित सतर्कता नहीं रखी। इस कारण इसका मंसब छिन गया और सेवा में उपस्थित न होने की आज्ञा देकर इसे ठट्ठा में भेज दिया कि जब तक उसके समान हाथी न लावेगा तब तक कोरनिश करने की आज्ञा न मिलेगी। यह सेवाकार्य की शिक्षा पाए हुआ था कि बादशाही की सेवा में बड़ा काम होने भी बुद्धि को न त्याग कर पूरे साहस से उसे पूरा करना चाहिए। यह कुछ दिन संसार में भटकने के अनंतर २०वें वर्ष दरबार में उपस्थित हुआ और एक सौ हाथी जुर्माने में देकर कृपापात्र हुआ। इसे राय सुर्जन के स्थान पर गढ़ा प्रांत की अध्यक्षता मिली।

२२वें वर्ष में सादिक मुहम्मद खाँ अन्य सर्दारों के साथ राजा मधुकर बुंदेला को दंड देने पर नियत हुआ, जिसके ऐश्वर्य, प्रछन्न विभूति, अपने स्थान की दुर्गमता तथा विद्रोही सेना के आधिक्य ने उन्मत्त कर अधीनता के मार्ग से उसको हटा दिया था। जब यह नरवर से आगे बढ़ा और युद्ध की तैयारी की, तब वह विद्रोही जंगल काटने के सामान के साथ ओड़छा के पास भारी सेना लेकर युद्ध के लिये आ पहुँचा। घोर युद्ध हुआ और वह अपने पुत्र होरलराय के मारे जाने पर तथा स्वयं घायल होकर चला गया। सादिक मुहम्मद खाँ काम करने की इच्छा से वहीं ठहर गया। निरुपाय हो वह अधीनता स्वीकार कर २३वें वर्ष में उक्त खाँ के साथ अकबर की सेवा में पहुँचा। इसके बाद सादिक मुहम्मद खाँ को पूर्वी प्रांत में जागीर मिली।

जब मुजफ्फर खाँ शत्रुओं के हाथ मारा गया और विद्रोहियों ने बंगाल तथा बिहार के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया तब सादिक मुहम्मद खाँ ने मित्रता बढ़ाकर तथा साहस से उचित आक्रमण कर कुछ अच्छे स्थानों को लूट मार से रक्षा की। २७वें वर्ष में खबीतः से, जो मुगल सेना से छिपकर बदख्शियों की सेना में जीवन व्यतीत कर रहा था और जिसने मासूम खाँ काबुली के साथ

विद्रोह मे अच्छे कार्य कर वीरता मे नाम कमाया था तथा जो बंगाल से बिहार आकर लूटमार कर रहा था, पटना मे युद्ध कर सादिक मुहम्मद ने उसे परास्त कर दिया और उसका सिर काटकर दरबार भेज दिया। वजीर खाँ कतलू किरानी का सामना करने को, जिसने उड़ीसा मे प्रभुत्व प्राप्त कर लिया था, वर्दवान में बैठा हुआ था और उसे कोई सफलता नही मिल रही थी, इसलिये २९वें वर्ष में सादिक मुहम्मद खाँ ने उसके पास पहुँचकर काम अपने हाथ में ले लिया। कतलू को आराम न मिलने से उड़ीसा लौट जाना पड़ा और सर्दारगण उसका पीछा करने लगे। उसने अंत में अधीनता स्वीकार करने का संधि प्रस्ताव किया और अपने भतीजे के हाथ बहुत से हाथी भेंट मे दरबार मे भेजे। सर्दारो ने उड़ीसा उसके लिये छोड़ दिया। सादिक मुहम्मद खाँ अपनी जागीर पटना को लौट आया और बिहार के जागीरदार बंगाल मे सहायक नियुक्त हुए तब इसके और शहबाज खाँ में मित्रता न हो सकी। दो शत्रु सर्दारो को एक काम सौंपना उसके बिगाड़ने का कारण होता है, इसलिये ख्वाजा सुलेमान नामक सर्दार दरबार से वहाँ भेजा गया कि इन दो सर्दारो मे से जो कोई उस प्रांत का कार्यभार अपने ऊपर ले सके ले और दूसरा बिहार लौट आवे। ३०वें वर्ष मे सादिक मुहम्मद खाँ ने यह कार्य स्वयं ले लिया पर उसी वर्ष यह बिना बुलाए फुर्ती से चलकर दरबार पहुँचा, पर सेवा में उपस्थित न हो सका। जब शहबाज खाँ आज्ञानुसार बिहार से बगाल चला गया तब सादिक मुहम्मद खाँ सेवा मे उपस्थित होकर मुलतान का शासक नियत हुआ। जब रूशानियो ने तीराह को, जो पेशावर से पूर्व एक पार्वत्य स्थान है और बत्तीस कोस चौड़ा है और जो अफ्रीदियो तथा उर्कजइओ का गृह है, अपना दृढ़ स्थान बनाकर उपद्रव आरंभ किया तब ३२वे वर्ष मे सादिक मुहम्मद खाँ उन्हें दंड देने पर नियत हुआ। इसने अपनी वीरता तथा चालाकी से उस जाति को एक प्रकार मित्र बना लिया और खैबर के मार्ग को निष्कंटक रखने का वचन देकर उन्होने (जातिवालो) मुल्ला इब्राहीम को; जिसे जलाल: पिता के समान मानता था, कैद कर लिया। इस कारण जलाल: को उन पर विश्वास न रह गया और तब वह तूरान की ओर चला गया। जब जैन खाँ कोका सवाद और बजौर का कुछ प्रबंध कर दरबार चला गया तब सादिक मुहम्मद खाँ उसी वर्ष तीराह से बचे हुए विद्रोहियो को अधीन करने भेजा गया। ३८वें वर्ष मे जब शाहजादा सुल्तान मुराद मालवा से गुजरात का शासक नियत हुआ और इस्माइल कुली खाँ से शाहजादे के वकील का कार्य ठीक तौर से न हो सका तब सादिक मुहम्मद खाँ अभिभावकता करने को भेजा गया। ४०वें वर्ष मे जब शाहजादा दक्षिण को विजय करने पर नियत हुआ और मिर्जा शाहरुख शहबाज खाँ तथा खानखानाँ के साथ सहायतार्थ भेजा गया तब यहाँ सादिक मुहम्मद खाँ तथा शहबाज खाँ के

बीच व्यवहार बढ़ा और पुराना द्वेष भूलकर दोनो मे मित्रता हो गई। यद्यपि सन् १००४ हि० में अहमदनगर घेर लिया गया और दुर्गवाले सामान की कमी और आपस के झगड़े से घेरा सहन नही कर सकते थे पर सर्दारो के मनोमालिन्य तथा बेपरवाही से चांद बीबी ने उसे दृढ़ करने का प्रयत्न पूरा कर लिया। अंत में संधिकर घेरा उठा दिया गया। शाहजादा सर्दारो के साथ बरार चला गया और सादिक मुहम्मद खाँ सीमा की रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर मेहकर में रह गया।

४१वें वर्ष के आरंभ में इसका मंसब पाँच हजारी था। उसी वर्ष और ... पर इसने सेना भेजकर उसे परास्त कर दिया, जिसने उपद्रव किया था, और बहुत लूट पाया। जब खुदावंद खाँ दक्खिनी उस प्रांत के बहुत से सर्दारो को मिलाकर उपद्रव करने लगा तब सादिक मुहम्मद खाँ ने उससे युद्ध कर बड़ी वीरता दिखलाई और वह अपने बहुत से आदमी कटाकर परास्त हो गया। जब शाहजादा बरार की सूबेदारी से कुछ छुट्टी पाकर ४१वें वर्ष सन् १००४ हि० में बालापुर से छ कोस पर आकर ठहरा और उसका नाम शाहपुर रखा तथा खानखानाँ और मिर्जा शाहरुख दरबार बुला लिए गए तब सेना तथा उस प्रांत का कुछ प्रबंध बिना किसी साझे के सादिक मुहम्मद खाँ को मिल गया। ४२वें वर्ष के आरंभ मे सन् १००५ हि० में शाहपुर मे इसकी मृत्यु हो गई। आगरे से बीस कोस पर धौलपुर में इसने अपना निवासस्थान नियत कर वहाँ सराय, इमारत तथा मकबरा बनवाया और आस पास के देहात को बसाया। इसके बड़े पुत्र जाहिद खाँ का अलग वृत्तांत दिया गया है। दूसरे पुत्र दोस्त मुहम्मद और यार मुहम्मद थे, जिन्हें अकबर के समय ही में योग्य मंसब मिले थे। शाहजहाँ के समय तक इनमें से कोई नहीं रह गया। परंतु सादिक मुहम्मद खाँ का ...जी बहुत दिनो तक धौलपुर मे रहा और मर गया।

•

६८४. सादुल्ला खाँ

यह हिदायतुल्ला खाँ नाम से प्रसिद्ध था और यह इनायतुल्ला खाँ का द्वितीय तथा योग्य पुत्र था। पिता के सामने ही सब कार्य इसी पर छोड़ दिए गये थे, क्योंकि यह उसका पुत्र ही था। इसकी योग्यता से ऐश्वर्य की उन्नति तथा प्रभुत्व के बढ़ने के लक्षण स्पष्ट थे। औरंगजेब के जुलूस के ४१ वें वर्ष मे अपने पिता के स्थान पर, जब यह दीवानिए तन में दृढ़ता तथा अनुभव प्राप्त कर चुका था, नवाब

कुदसिया जेबुन्निसा बेगम की खानसामानी के सेवाकार्य पर नियत हो सम्मानित हुआ। उक्त बेगम की कृपा से इसने खाँ की पदवी पाई और फैजुल्ला खाँ कोका के पुत्र मुहम्मद अफ़ज़ल की पुत्री से इसका विवाह हुआ। बहादुर शाह के राज्य में जब खानसामाँ का कार्य इसके पिता को दिया गया तब खालसा और तन की दीवानी इसे मिली, जो एक साथ इसके पिता को औरङ्गजेब के समय से बराबर मिली हुई थी। जब इनायतुल्ला खाँ कश्मीर का शासक नियत हो वहाँ भेजा गया तब खानसामाँ की नायबी भी इसी योग्य तथा दक्ष मनुष्य को दी गई। जब मुनइम खाँ खानखानाँ की मृत्यु हो गई और दीवान आला के पद की नियुक्ति के लिये अमीरुल् उमरा जुल्फिकार खाँ के खड़े हो जाने पर इसके लिए स्थान नहीं रह गया तब निरुपाय हो यह निश्चय आ कि उक्त खाँ बादशाह के द्वितीय पुत्र बादशाहजादा अजीमुश्शान के नैतिक तथा माली कार्यों को अच्छी प्रकार देख रेख करे। इसे जड़ाऊ दावात और झालरदार पालकी मिली।

इसके अच्छे साहस, विद्वत्ता तथा शालीनता के कारण, जिसमें तत्कालीन सम्राट् की स्वाभाविक दया भी मिली थी, कोई कुशब्द और मनाही की बात बादशाह की जबान से कभी नहीं निकली। इसे मन्सबों में से सबसे बड़ा मन्सब तथा उच्चतम पदवी दी जा चुकी थी इसलिए इसको सात हजारी का भारी मन्सब तथा सादुल्ला खाँ की उच्च पदवी दी, जिससे इसके सम्मान का स्तंभ नीचे की धूलि से आकाश के उच्चतम स्तर तक पहुँच गया। इसे डाक तथा सवानिह की दारोगागिरी भी मिली, जो बादशाही सेवा का एक अच्छा कार्य था। संसार उसका सफल हो गया, आधा साम्राज्य पूरी तौर उसके प्रबन्ध में आ गया। जब जहाँदार शाह बादशाह हुआ तब पुरानी सेवा और पहले की मित्रता के कारण खानजहाँ कोकल्ताश ने इसे अपनी हिमायत की आड में ले लिया और उस मित्रवत्सल सर्दार की सहायता के कारण जुल्फिकार खाँ का वैमनस्य किसी प्रकार सफल नहीं हो पाया। यद्यपि हिंदुस्तान का प्रधान अमात्य होकर इसके साहस व ऐश्वर्य का गन्द आकाश के आठवें स्तर को पार कर चुका था पर अब खालसा व तन की दीवानी मिलने पर भी इसका वही हाल रहा, जिस पद के बाद ही अमात्य का पद था और पुरानी ही तरह यह कार्य करता रहा। दैवयोग से धोखेबाज आकाश ने मीर तथा वजीर के पासों को शासन के खेलघर से चुरा लिया और शासन का विभाग बन्द कर दिया। साम्राज्य का कार्य तथा अमात्य का पद दूसरों के हाथ में चला गया। बहुत से लोगों ने इसमें अपने प्राण खोये। उक्त खाँ भी फर्रुखसियर के राजधानी दिल्ली में पहुँचने के बाद खानसामाँ की कचहरी में कैद किया गया। कुछ दिन बाद नवाब जेबुन्निसा बेगम के रुक्के पर, जो उस समय बादशाह बेगम कहलाती थी, इसे छुटकारे की आज्ञा मिली। परिवार तथा कुल सामान भी इसे मिल गया, जिससे

इसके संबंधवाले बहुत आनन्दित हुए। एकाएक उसी रात्रि मे जिससे सहस्त्र आशा का गुमान था, दूसरी प्राणघाती घटना घटी। कुछ मुगलो ने जिन्होने तसमा[1] खीचने मे प्रसिद्धि पाई थी, पहुँचकर इसे मारने की आज्ञा सुनाकर इसका होश उड़ा दिया। इस निर्दोष को हिदायत केश खाँ जदीदुल्इसलाम और दिल्ली के कोतवाल सीदी कासिम के साथ गला घोट कर मार डाला।

इसके प्राणदंड का कोई उचित कारण ज्ञात नही हो सका। लोग कहते हैं कि जब इसके छुटकारा की आज्ञा पूरी हो गई तब सैयदो ने संकेत कर दिया कि उसे समाप्त कर दें। कुछ कहते हैं कि जो लोग इससे द्वेप रख कर इसे नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे थे, उन्होने बेगम साहिब की ओट में जाली रुक्का, जो उसके नाश करने में सहायक हुआ, बादशाह के सामने पेश कर इसे दंड दिलाने का प्रयत्न किया था। इस कथन का समर्थन यह है कि जब बेगम साहब की मुहम्मद फर्रुखसियर से भेट हुई तब उसने बेजा मारे जाने पर उपालंभ दिया, क्योकि वह अपने बड़ो के समय से बेगम के शरण मे रहा था। बादशाह ने रुक्के का उल्लेख किया, जिससे बेगम ने इनकार कर दिया। बादशाह ने यह सुनकर शोक प्रकट किया। अपने पिता के सामने ही सत्यता तथा योग्यता मे यह विख्यात था। इसमे कड़ाई कम थी।

•

६८५. सादुल्ला खाँ अल्लामी

यह लाहौर प्रांत के अन्तर्गत झनवट कस्बे का निवासी और तमीम कुरेश के वंश का था। यह बुद्धिमान तथा विचारशील था ओर इसकी जानकारी इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि इसका कोई जोड न था। यह पहले अनेक प्रकार की विद्याओ को सीखकर कुरान को कंठाग्र करने, बातचीत करने तथा लिखने मे दक्ष हो गया। जब जब इसका वृत्तांत बादशाह शाहजहाँ को ज्ञात हुआ और वह योग्यों का मित्र तथा गुणियो का खोजी था इसलिए १४वें वर्ष मे उसने मूसवी खाँ सदर से कहा कि इसे सेवा मे ले आवे। इसके आने पर इसकी योग्यता तथा कार्यशक्ति समझकर इसे सेवको मे भर्ती कर लिया और खिल्अत, घोड़ा तथा अर्ज मुकर्रर का पद, जिस पर विश्वासपात्र ही रखे जाते थे, मिला। १५वे वर्ष में इसका मन्सब बढ़कर एक हजारी २०० सवार का हो गया और सादुल्ला खाँ की पदवी तथा दौलतखाना खास के दारोगा का पद मिला, जो विश्वास योग्य स्वामिभक्तो ही को दिया जाता है।

---

१. चमड़े की पट्टी। सादुल्ला खाँ अपने पिता के जीवनकाल ही मे मारा गया।

यह जानना चाहिए कि दौलतखाना खास एक मकान है, जो बादशाही अंतःपुर तथा दीवान खास व आम के बीच में बना है और दरबार से उठने पर इसी मकान में कुछ वादों का निर्णय करने के लिये बादशाह बैठते हैं, जिसकी सूचना सिवा खास लोगो के किसी को नही मिलती। यह स्थान हम्माम के पास था इसलिए यह अकबर के राज्यकाल से गुसलखाने के नाम से प्रसिद्ध है। शाहजहाँ ने इसे दौलत-खाना खास नाम दिया था। १६वें वर्ष में इसे पाँच सदी १००० सवार की तरक्की और हाथी मिला। १७वें वर्ष मे दौलत खानाखास के दारोगा के पद से हटाया जाकर इसने खानसामाँ के पद का खिलअत पाया, जिसके बाद ही मंत्रिपद था, और इसका मंसब बढ़कर दो हजारी ५०० सवार का हो गया। १८वें वर्ष में बेगम साहब के अच्छे होने के उपलक्ष्य मे जशन के समय, जिनको दीपक की लपट के पास पहुँच जाने मे जल जाने के कारण कुछ दिन कष्ट रहा, इसे खिलअत तथा झंडा मिला और मंसब बढकर ढाई हजारी ६०० सवार का हो गया। इसके बाद पाँच सदी और फिर उसके बाद पांच सदी २०० सवार की उन्नति हुई। इसके कुछ दिन बाद जब खानदौराँ के स्थान पर इस्लाम खाँ दक्षिण प्रांतों का अध्यक्ष नियत हुआ, तब यह इस्लाम खाँ के स्थान पर खालसा की दीवानी के पद पर नियुक्त किया गया और फर्मानो की पांडुलिपि तैयार करना, मुंशियो को देना और दाराशिकोह शाहजादे के लेख के नीचे, जो अपने हस्ताक्षर से फर्मानो के पीछे लिखता था, अपना मार्फत लिखना यह सब कार्य सौंपा गया। इसे खिलअत तथा जड़ाऊ कलमदान मिला और मंसब बढकर चारहजारी १००० सवार का हो गया। थोड़े ही दिनो बाद वजीर कुल का भी पद इसे मिल गया और खिलअत तथा फूल कटारः सहित जमधर भी इसने पाया। इसका मंसब भी बढकर पाँच हजारी १५०० सवार का हो गया। १९ वर्ष मे इसे ५०० सवार की उन्नति तथा डंका मिला और इसके अनंतर एक हजारी की तरक्की, चाँदी के साज सहित हाथी और हथिनी पाकर यह संमानित हुआ।

शाहजादा मुरादबख्श, जो बलख व बदख्शाँ विजय करने पर नियत हुआ था, काबुल में पहुँचकर तूल मार्ग से बर्फ हटने की प्रतीक्षा कर रहा था, जो सेना के जाने के लिये निश्चित था। इसका एक कारण यह भी था कि इस चढ़ाई के अधिक दिन चढ़ने तथा उसके बाद भी उस प्रांत में ठहरने की बादशाह की आज्ञा हो जाने से ऐसा निश्चय हुआ था कि मंसबदारो, अहदियो, तीरंदाजो, सवार बर्कदाजों, पैदल बंदूकचियों, शागिद पेशेवालो तथा जागीरदारो को जिनकी जागीर के अनुसार दाग निश्चित था, प्रति तीसरे महीने जागीर की आय का चौथाई भाग, जो तीन महीने का हुआ, कोष से दे दिया जाया करे, जिसमे इन्हें व्यय की तंगी न हो और कुछ लोगो को लाहौर में यह नही मिल सका था। इसके सिवा शाहजादे के लड़कपन

तथा चापलूसों के बहकाने का प्रभाव भी था, जो बल्ख के विजय के बाद प्रकट हो गया। इसलिये इसी वर्ष जब बादशाह स्वयं लाहौर से काबुल रवान. होकर बाग सफा पहुँचे तब इसको शाहजादे को कुछ बात समझाने, जो लोग पहुँच नहीं सके थे उसका उक्त कारण बतलाने और बादशाह के पहुँचने के पहिले सेना को इच्छित स्थान पर भेजने के लिये काबुल जाने की छुट्टी मिली। दो दिन में वहाँ पहुँचकर तथा बहुत प्रयत्न कर इसने पाँच दिनो मे, जो इसे स्वयं पहुँचने के बीच मे मिला था, सब कार्य पूरा कर दिया। शाहजादे के रवान: होने का समाचार लेकर नगर के बाहशाह से आ मिला।

जानना चाहिए कि शाहजहाँ बादशाह के समय मे यह नियम था कि जिसकी जागीर उसी प्रात मे हो जिसमें वह नियुक्त है तो उसे तिहाई भाग अपने अधीनस्थ सवार दाग के लिये उपस्थित करना चाहिए, जैसे तीन हजारी ३००० सवार वाले मसबदार का एक सहस्र सवारो का दाग कराना चाहिए। यह हिंदुस्तान के अन्य प्रांत मे काम पर नियत हो तो चौथाई भाग होना चाहिए। बल्ख व बदख्शाँ की चढाई के समय यात्रा के कारण बाद मे निश्चय हुआ कि पांचवें भाग का दाग करावें। २० वें वर्ष में इसका मंसब बढकर छ हजारी ४००० सवार का हो गया। इसके अनंतर जब उक्त शाहजादा ने बल्ख के विजय के बाद वहाँ ठहरना नही चाहा और पिता को लिखा कि दूसरे को वहाँ नियुक्त कर दे तब शाहजहाँ ने सादुल्ला खाँ को, उसके कुल भेद जानने पर भी कार्य के आधिक्य से उसे विदा करने का अवसर न था, वहाँ भेजा कि शाहजादे को समझावे और यदि ज्ञात हो कि वह उक्त प्रात की नियुक्ति से त्यागपत्र देने के लिये वह लज्जित नही है तो उससे भेंट न करे और दूसरो को भी मना करे। सादुल्ला खाँ खंजान के मार्ग से उसके दुर्गम होते भी छोटा होने मे पंद्रह दिन मे बल्ख पहुँच गया।

जब त्यागपत्र देने का शाहजादे का हठ जान लिया तब सादुल्ला खाँ बादशाह की आज्ञा के अनुसार यथाशक्ति कार्य पूरा कर चार दिन में ऊँचाई निचाई तै करता हुआ बल्ख से काबुल पहुँच गया। बादशाह के इच्छानुसार वहाँ का कार्य कर उस प्रांत का प्रबंध इसने ठीक किया था इसलिये इसका मंसब बढाकर छ हजारी ५००० सवार का कर दिया। इसके अनंतर १००० सवार बढाकर दोनो को बराबर कर दिया। कुछ ही दिनो बाद चाद्र तुला के समय इसका मसब बढाकर सात हजारी ७००० सवार का कर दिया और सोने के साज सहित अरबी घोडा देकर इसे संमानित किया। २१ वें वर्ष मे जलूस जशन में, जो शाहजहानाबाद के नवनिर्मित मकानो में हुआ था, इसे नादिरी के साथ खिलअत मिला और मंसब के एक सहस्र सवार दो अस्प: सेह अस्प: कर दिए गए। २२ वें वर्ष मे जब बादशाह झज्झर से तीन कोस पर सफेदून में शिकार खेलने गए और लौटते समय

कंधार के दुर्गाध्यक्ष खवास खाँ और बुस्त के दुर्गाध्यक्ष पुरदिल खाँ के पत्र मिले, जिनमे शाह सफी के पुत्र शाह अब्बास के कंधार की ओर आने का समाचार था, तब सादुल्ला खाँ, जो दीवानी कार्यों के कारण दिल्ली मे रह गया था, आज्ञा के अनुसार बादशाह के पास पहुँचा। इसके मंसब के दो सहस्त्र सवार और दो अस्प: सेह अस्प: कर दिए गए और यह शाहजदा औरंगजेब के साथ कंधार भेजा गया[1]। वहाँ पहुँचने पर घेरा डाला गया, मोर्चे बाँधे गए, खानें दौड़ाई गई और दमदमे बनाए गए तथा कोई कार्य उठा न रखा गया। परतु कंधार दुर्ग की विजय भाग्य में नहीं लिखी थी और गर्मी का ऋतु था इसलिये बादशाह के आदेशानुसार शाह-जादे के साथ यह लौट आया।

२३ वें वर्ष में दो सहस्त्र सवार इसके मसब के और दो अस्प: सेह अस्प: नियत हुए, जिससे इसका मंसब बढ़कर सात हजारी ७००० सवार पाँच सहस्त्र सवार दो अस्प: सेह अस्प: का हो गया। इसके अनंतर इसे एक करोड़ दाम मिला, जिसका कुल वेतन बारह करोड दाम था। २५ वें वर्ष मे जब बादशाह लाहौर से कश्मीर की ओर चले तब इसको वजीराबाद पंजाब प्रात का हाल जानने के लिये छोड़ा, जहाँ पहले वर्षा की कमी तथा बाद को उसके आधिक्य के कारण खेती नष्ट हो गई थी। यह कुछ दिन बाद पहुँचकर बादशाह से मिला। इसी वर्ष दूसरी बार भारी सेना तथा बहुत सामान लेकर शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ वह कंधार विजय करने गया। शाहजादा मुल्तान से सीधे मार्ग से, जिससे तात्पर्य उस मार्ग से है जो सिंध नदी के किनारे जिज्जा चताली, फौसंज होते हुए कंधार गया है और जरीब के हिसाब से एक सौ साठ कोस होता है, रवाना हो गया। यह काबुल और गजनी के मार्ग से गया, जो लाहौर से कंधार तक दो सौ पछत्तर कोस होता है। कंधार पहुँचने पर इसने दुर्ग को घेरने और खान लगाने मे अनेक प्रकार से बहुत परिश्रम किया। जब उसके विजय का कोई उपाय न बैठा, तब २६ वे वर्ष मे यह आज्ञानुसार लौटकर सेवा मे उपस्थित हुआ।

२८वें वर्ष मे बादशाह ने सुना कि राणा जगतसिंह के पुत्र राणा राजसिंह चित्तौड़ दुर्ग में कुछ फाटक तथा बुर्ज बनवा रहे हैं। यद्यपि जहाँगीर की अधीनता स्वीकार करने के समय में इसके दादा राणा कर्ण ने शाहजहाँ की मध्यस्थता में प्रतिज्ञा की थी कि उसके वंशधरो मे कोई भी चित्तौड़ की मरम्मत न करेगा, पर

---

१. शाह अब्बास ने ११ फरवरी सन् १६४९ ई० को कंधार पर अधिकार कर लिया था और उसे पुनः विजय करने के लिये यह सेना पहली बार भेजी गई थी। देखिए ग्रंथकर्ता कृत 'शाहजहाँ' पृ० २१७-२१। इसमें कुल चढ़ाइयों का विस्तार से वर्णन है।

ऐसा किए जाने पर बादशाह ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की जियारत करने की इच्छा से अजमेर चले और सादुल्ला खाँ को योग्य सेना के साथ चित्तौड दुर्ग तोडने भेजा। वहाँ पहुँचकर राणा के राज्य की खेती नष्ट कर और चित्तौड के नए पुराने बुर्ज तथा दीवाल गिरवाकर यह दरबार लौट आया। ३०वें वर्ष में बीमारी ने, जो अंतड़ियो के दर्द के कारण दवा खाने से हो गई थी और जब तक वह न बढ़ी थी यह अपने समय पर दरबार जाता तथा अपना कार्य करता रहा, जोर किया और निर्बल हो जाने पर यह घर बैठा रहा। बादशाह ने देखने के लिए इसके घर जाकर इसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। २२ जमादिउस्सानी सन् १०६६ हि०, (मार्च सन् १६५६) को यह मर गया। बादशाह की आँखें यह समाचार पाकर आँसुओ से भर गईं। इसके बड़े पुत्र लुत्फुल्ला खाँ[1] को ग्यारह वर्ष की अवस्था में खिलअत तथा सात सदी २०० सवार का मंसब दिया और बाकी पुत्रों तथा सम्बन्धियो के लिए रोजाने बाँध दिए। इसके भांजे यार मुहम्मद को तीन सदी ६० सवार का मन्सब दिया और इसके नौकरो मे बाकी को धन तथा योग्य मन्सब बांटे। इनमे से अबुन्नबी नामक एक नौकर इसका अच्छा जागीदार था, जिसे एक हजारी ४०० सवार का मन्सब दिया। यह औरंगजेब के समय मथुरा का फौजदार होकर वहाँ अच्छा प्रबंध करता रहा। यह एक लडाई मे गोली लगने से मर गया। मथुरा की मस्जिद की नीव इसी ने डाला था।

सादुल्ला खाँ विद्या के कारण विनम्रता तथा व्यवहार में विशेषता रखता था। मुआमिलो का न्याय करने में इसने सचाई तथा ईमानदारी का सदा व्यवहार किया। बादशाही सरकार का हितैषी होने के कारण यह ऐसा न करता कि कर्मचारी या प्रजा को कष्ट पहुँचे। इसके मन्त्रित्वकाल मे हिंदुस्तान की शोभा बढी। दाराशिकोह से शत्रुता रहते भी उसकी कोई शिकायत इसका कुछ न कर सकी। नौकरी के आरम्भ से यह बराबर उन्नति करता रहा। इसकी पदवी अल्लामी फहामी जुम्लतुल्मुल्क हुई और पदो की उच्चता के शिखर तक पहुँचकर यह मरा। इसने अपना नाम स्मरणीय कर दिया। इसके सन्तानो मे से जो प्रसिद्ध हुआ उसका वृत्तांत अलग लिखा गया है।

गूढ पवित्र बात—सत्यता प्रशंसनीय कार्य है और निमक का ध्यान रखना अनुकरणीय स्वभाव है पर स्वामी के कार्यों में, जो दीनो के साथ हो, उनका पक्ष लेना आवश्यक स्वामिभक्ति है, क्योकि ऐसी अवस्था मे यदि कुछ हानि भी हो तो उनकी तुलना मे थोड़ा ही होगा। उनकी हालत पर पूरी तरह दृष्टि रखने से थोड़ी हानि पूरी हानि का फल देनेवाली होती है—फतामल। ●

---

१. इसकी जीवनी इसी ग्रंथ में पहले दी जा चुकी है।

६८६. सादुल्ला खाँ बहादुर मुजफ्फरजंग

शाहजहाँ के समय के सादुल्ला खाँ के पुत्र हिफजुल्ला खाँ के पुत्र मुतवस्सिल बहादुर रुस्तमजंग का यह लड़का था। इसी ग्रन्थ में सादुल्ला खाँ की जीवनी लिखी गई है। औरंगजेब के समय में हिफजुल्ला खाँ को ठट्टा प्रांत की सूबेदारी और सिविस्तान की फौजदारी मिली। ४३ वें वर्ष में सुलतान मुइज्जुद्दीन की प्रार्थना पर इसका मन्सब बढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया। ४४वें वर्ष में पांच सदी की तरक्की मिली और ४५ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्रगण योग्यता से खाली न थे। तीन पुत्रो ने नाम कमाया। इनमें एक मुतवस्सिल खाँ था, जिसे खाँ फीरोजजंग ने पाला था। मुहम्मदशाह के राज्य के आरंभ मे जब आसफजाह निजामुलमुल्क ने मालवे से दक्षिण जाने की इच्छा की, तब यह उसके साथ नियत हुआ और इसने दिलावर अली खाँ के युद्ध मे बहुत प्रयत्न किया। आलम अली खाँ के युद्ध मे भी खूब प्रयत्न कर इसने दो घाव खाए और इसके उपलक्ष्य में इसका मन्सब बढकर तीन हजारी २००० सवार का हो गया और बहादुर की पदवी तथा डंका व झण्डा पाकर यह सम्मानित हुआ। यह कुछ दिनों तक औरङ्गाबाद का नायब सूबेदार रहा। इसके अनन्तर यह बगलाना का फौजदार हुआ। अन्त में यह रुस्तमजंग की पदवी के साथ बीजापुर प्रांत का शासक बनाया गया। वहीं इसकी मृत्यु हो गई। दूसरा पुत्र हजुल्ला खाँ बहादुरजग था। जब निजामुलमुल्क आसफजाह अमात्य होने के उपरांत दक्षिण की ओर लौटा तब यह भी उसके साथ आकर मुबारिज खाँ के युद्ध में शरीक हो गया और इसका मन्सब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया तथा यह बहादुर की पदवी झण्डा व डंका पाकर प्रसन्न हुआ। बहुत दिनो तक माहोर और कुर्त की दुर्गाध्यक्षता तथा फौजदारी करने के बाद यह नानदेर की सूबेदारी पाकर सम्मानित हुआ। अन्त में इसे बबरजङ्ग की पदवी और झालरदार पालकी मिली। लकवे की बीमारी के कारण बहुत वर्षो तक यह गृह पर ही रहा। सन् ११६७ हि०, सन् १७५३ ई० मे यह मर गया। इसे सन्तान न थी। तीसरा पुत्र तालिब मुहीउद्दीन खाँ बहादुर था, जो आरंभ में हिंदुस्तान ही मे रहा। लाहौर प्रात के दक्षिणी भाग का यह सूबेदार था, जो इसके पूर्वजों का देश था। अपने भाई हजुल्ला खाँ बहादुर के साथ यह निजामुलमुल्क आसफजाह के संग दक्षिण चला आया। मुबारिज खाँ के मारे जाने पर यह बीजापुर प्रांत के रायचूर तथा मुदकल सरकारी का फौजदार नियत हुआ। यह सैनिक प्रकृति का था। इसने उक्त दोनो सरकारों का ठीक प्रबंध किया, जिसमे इम्तियाज गढ़ उर्फ अदोनी सरकार की फौजदारी और बीजापुर की नायबसूबेदारी भी इसके नाम हो गई। इसने खूब प्रयत्न कर उस प्रांत का जैसा प्रबन्ध करना

चाहिए वैसा किया और स्वयं भी ऐश्वर्यशाली हो गया। उसी समय इसकी मृत्यु हो गई। इसका पुत्र हसन मुहीउद्दीन खाँ था, जिसे अन्त मे पिता की पदवी मिली। कुछ दिन माहोर का फौजदार रहकर यह मर गया। मुजफ्फरजङ्ग का वास्तविक नाम हिदायत मुहीउद्दीन था, और उसकी माँ का नाम खैरुन्निसा वेगम था, जो निजामुल्मुल्क आसफजाह की पुत्री थी। आरंभ ही से अ व सीखने तथा विद्याध्ययन मे प्रयत्न करते हुए इसने नाम पैदा किया। कुछ दिनों बाद इसे खाँ की पदवी मिली और क्रमश. इसका मन्सब बढते तीन हजारी २००० सवार का हो गया। इसे बहादुर की पदवी तथा डंका व झण्डा भी मिल गया। जिस समय इसका पिता बीजापुर का मूवेदार था उस समय यह भी उसके साथ था और उसकी मृत्यु पर एक हजारी मन्सब वढाकर तथा मुजफ्फरजग की पदवी देकर इसे उक्त प्रांत का अध्यक्ष नियत किया गया। इसने बराबर चढ़ाइयाँ कर उस प्रांत के जमीदारो को, जिन्हें वहाँ पालीगर कहते हैं और जिनमें प्रत्येक भारी सेना, सामान की अधिकता तथा दृड गढ़ियों के कारण उपद्रव किया करता था, आज्ञाकारी बना लिया और स्वयं भी भारी सेना तथा भरे कोप का स्वामी बन बैठा। इसके उपलक्ष्य में इसे सादुल्ला खाँ की पदवी मिली। इसके अनन्तर आसफजाह की मृत्यु पर तथा मृत नासिरजङ्ग के दक्षिण का शासक हो जाने पर दोनो में पहले ही से मनोमालिन्य रहने के कारण पारस्परिक आशंकाएँ बढने लगी। मुजफ्फरजंग सेना एकत्र कर कर्णाटक हैदरावाद की ओर वढा और वहाँ का फौजदार अनवरुद्दीन खाँ सन् ११६२ हि०, सन् १७४८ ई० मे युद्ध कर मारा गया। इस घटना का समाचार मिलते ही नासिरजंग भारी सेना और वहुत सा सामान लेकर उसी ओर रवान. हुआ तथा दोनों सेनाओ मे सामना हो गया। ठीक युद्ध के बीच फुलचेरी के टोपवाले, जिन पर पूरा विश्वास था, सशंकित होकर अलग हो गए। नासिरजग को पहले ही से उनके मिल जाने की वातचीत का पता लग चुका था इसलिए इसी समय बुलाकर उनको नजरबन्द कर दिया। भाग्य ने कुछ और लिख दिया था कि नासिरजंग यहाँ से दक्षिण की कुछ रियासतो में पहुँचा। वहादुर खाँ पन्नी ने अपने ही समान कुछ अन्य लोगो के साथ मिलकर टोपवालो से वातचीत आरंभ की। रात्रि में उन सबने आक्रमण किया और उसी उपद्रव मे उक्त अफगान द्वारा नासिरजंग मारा गया। जो मनुष्य उस उपद्रव मे मिले हुए थे उन सबने मुजफ्फरजग को घटाटोप अमारी से बाहर लाकर बधाई दी और वह दक्षिण का शासक वन गया। इसने अपनी माँ तथा अन्य लोगो को फुलचेरी (पोंडी चेरी) वंदर मे ही पहले ही से रख छोडा था, इसलिए यह वहाँ जाकर तथा टोपवालो की सेना साथ लेकर लौटा। मौजा रायचोटी मे पहुँचने पर एक दैवी घटना घटी अर्थात् वहादुरखाँ पन्नी के आदमी, जो पहले दुस्साहस से घमंडी होकर किसी को कुछ नही समझते थे, टोपवालो के

सामान के दो तीन छकड़ों को घसीट कर ले जाने लगे, जिससे झगड़ा हो गया। इसी लड़ाई में मुजफ्फरजंग १७ रबीउल् अव्वल सन् ११६४ हि०, सन् १७५० ई० को तीर लगने से मर गया और उक्त अफगान भी गोली खाकर मर गया।[1]

सादुल्ला खाँ अच्छे गुणोंवाला और व्यवहार कुशल था। यह सैनिक तथा सैनिक वत्सल था। यह उच्च साहसवाला था तथा मित्रों पर कृपा रखता था। इसने कुरान कंठाग्र कर रखा था और विद्वान का सत्संग रखता था। इसके दरबारों में पुस्तकों ही की बातचीत रहती। इसके बाद इसके पुत्र मुहम्मद सादुद्दीन को मुजफ्फरजंग की पदवी तथा बीजापुर की सूबेदारी मिली पर शीघ्र ही चेचक से इसकी मृत्यु हो गई।

•

६८७. सानी खाँ हरवी

यह अकबर के पाँचसदी मनसबदारों में से एक था। यह हेरात का रहनेवाला था और इसका वंश अरलात जाति का था। यह उक्त बादशाह की सेवा में रहता था। यह अपनी बुद्धिमानी और अच्छी तबीयत के लिये प्रसिद्ध था। यदि इसके आगे कोई इस की प्रशंसा करता था तब यह पहले यही कहता कि हमारी मित्रता तथा स्नेह इस नियम की आश्रित है अर्थात् यह कि हमारे विषय में लुच्चों की कही हुई बातें तू न सुने, क्योंकि वे मित्रता के बाधक और झगड़ा करानेवाले होते हैं। इसके अनंतर बादशाही सेना के साथ अली कुलीखाँ खानजमाँ को दंड देने के

---

१ निजामुलमुल्क आसफजाह की २२ मई सन् १७४८ ई० को मृत्यु हुई और इसके पुत्र निजामुद्दौला नासिरजंग निजाम हुए किंतु आसफजाह के दौहित्र हिदायत मुहीउद्दीन खाँ मुजफ्फरजंग उसके प्रतिद्वंदी हो उठे। नासिरजंग ने युद्ध में मुजफ्फरजंग पर विजय पाई। फ्रेंच जाति ने मुजफ्फरजंग का पक्ष लेकर नासिरजंग के कुछ अफगान सर्दारों को मिलाकर १९ नवंबर सन् १७५० ई० को उस पर रात्रि में आक्रमण कर दिया। कड़प्पा के नवाब बहादुर खाँ की गोली से नासिरजंग मारा गया। इसी वर्ष कुछ ही दिनों बाद अर्काट से लौटते हुए कड़प्पा पहुँचने पर मुजफ्फरजंग से तथा इन अफगानों से युद्ध हो गया जिसमें मुजफ्फरजंग तथा कई अफगान सर्दार मारे गए। देखिए इलियट डाउसन जि० ८ पृ० ३९०-२ तथा हिस्ट्री ऑव फ्रेंच इन इंडिया, मैलेसन कृत पृ० २६९-७९।

लिये नियत होने पर इसने बादशाह को जो प्रार्थनापत्र भेजा था, उसमें यह शेर लिखा था—शेर का अर्थ—ऐ शहसवार, युद्ध के दिन व्यूह रचनेवाले ज्योंही-तुमने रिकाब पर पैर रखा, युद्ध हाथ से निकल गया।

इसने पद्य में व्याकरण पर एक पुस्तक लिखा है। यह रुबाई इसी की है, जिसके मिसरों में छ वाक्य एकत्र किए गए हैं और हर दो वाक्य एक दूसरे के विरोधी हैं। अर्थ—

रात्रि में तौबा किया और दिन में वचन तोड़ा।
चतुर बाहर गए और मस्त भीतर आए॥

इस प्रकार आने जाने से शुभ तथा अशुभ प्रकट व अप्रकट रहे। मेरा रंज दूर हुआ और तेरा शोक आ बैठा॥

६८८. सिपहदार खाँ मुहम्मद सालिह

यह ख्वाजा बेग मिर्जा सफवी का भतीजा तथा पोष्य पुत्र था, जो जहाँगीर के समय में अहमदनगर का दुर्गाध्यक्ष था। यह पाँच हजारी मंसब तक पहुँचकर १३ वें वर्ष में मर गया। मुहम्मद सालिह ने उसी बादशाह के ४वें वर्ष में योग्य मंसब तथा खंजर खाँ की पदवी पाई। ख्वाजा बेग मिर्जा की मृत्यु पर इसका मंसब दो हजारी हो गया और यह अहमद नगर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। १४वें वर्ष में जब दक्षिण के आदमियों ने प्रतिज्ञा तथा संधि को तोड़कर उपद्रव आरंभ किया और उक्त दुर्ग को घेर लिया तब इसने यथोचित प्रयत्न कर दुर्ग की रक्षा का काम किया। जब बादशाही सेना सुलतान खुर्रम के अधीन दक्षिण पहुँची तब सुचित हृदय होकर यह बाहर निकला और घेरनेवालों को भगा दिया। इनमें से दो सौ आदमी मारे गए। १९वें वर्ष में जब बादशाही सेना आदिल शाही सर्दार मुहम्मद लारी की सहायता को नियत हुई, जो मलिक अंबर से शत्रुता रखता था, और युद्ध में उक्त सर्दार मारा गया तथा उसके ओर की सेना परास्त हुई तब कुछ बादशाही सर्दार शत्रु के हाथों कैद हो गए पर यह फुर्ती तथा चालाकी से अहमद नगर पहुँचकर उसे दृढ़ करने में लग गया। जहाँगीर की मृत्यु पर जब खानजहाँ लोदी दक्षिण का सूबेदार हुआ और कुमार्ग की ओर जाकर निजामुल्मुल्क का पक्ष लेने लगा तथा बालाघाट के थानेदारों को, जिस प्रांत पर बादशाही अधिकार

हो चुका था, निजामुलमुल्क के आदमियों के हाथ स्थान छोड़ देने को आज्ञापत्र भेजा तब उक्त खां ने उसके आज्ञापत्र को रद्द कर दुर्ग को नहीं छोड़ा। उस राज्यकाल के अंत तक यह पाँच हजारी ४००० सवार का मंसब तथा सिपहदार खाँ की पदवी पाकर सफल हुआ। शाहजहाँ की राजगद्दी के अनंतर बादशाह ससैन्य दक्षिण आए और तीन सेनाएँ तीन बड़े सर्दारों की अधीनता में निजामुलमुल्क के राज्य पर आक्रमण करने और खानजहाँ लोदी को दमन करने, जो विद्रोह कर उसकी शरण मे चला गया था, भेजी गई तब यह शायस्ता खाँ के साथ नियत हुआ। जिस युद्ध में आजमखाँ ने खानजहाँ लोदी पर आक्रमण किया था उसमें इसने बड़ी वीरता दिखलाई। ४थे वर्ष में तिलतोम दुर्ग को, जो पहाड़ पर बना हुआ था पर उस समय खराब हालत मे था, और सितोंद: दुर्ग को घेर कर उनपर अधिकार कर लिया। इसी वर्ष जान निसार खाँ के स्थान पर यह अहमदनगर की दुर्गाध्यक्षता, खिलअत और सुनहले जीन सहित घोड़ा पाकर सम्मानित हुआ। ७वें वर्ष में यह दरबार आया और इसका मन्सब बढ़कर पाँच हजारी ४००० सवार का हो गया, जिसके तीन सहस्र सवार दो अस्प: सेह अस्प: थे तथा यह बाकर खाँ नज़मसानी के स्थान पर अहमदाबाद का किलेदार नियत हुआ। ८वें वर्ष में वहाँ से हटाया जाकर यह एलिच पुर भेजा गया। ९वें वर्ष में जब बादशाह दौलताबाद दुर्ग देखने गये तब यह सेवा मे उपस्थित होकर सैयद खानजहाँ बारहा के साथ आदिल शाही राज्य में लूटमार करने भेजा गया। इस चढ़ाई मे भी इसने अच्छा कार्य किया। १० वे वर्ष मे देवगढ़ दुर्ग के घेरे में यह एक मोर्चे का अध्यक्ष था। एक खान इसके मोर्चे से दौड़ाई गई थी और जब उसमें बारूद भरकर आग लगाई गई और बुर्ज तथा दीवाल कुछ फट गई तब इसने साहस के साथ भीतर घुसकर बहुत से शत्रुओं को मार डाला। इसके अनन्तर दक्षिण प्रांत के अन्तर्गत जूनेर दुर्ग का अध्यक्ष नियत होकर १७ वें वर्ष सन् १०५४ हि० मे वहीं यह मर गया और अहमद नगर के पास ख्वाजा बेग के मकबरे में गाड़ा गया। यह ईश्वर से डरनेवाला था, यह अपनी बुद्धिमानी तथा उचित संमति के लिए प्रसिद्ध था। वह वीर तथा साहसी था। यह ईरानियो से अधिक मित्रता रखता था। इसने अच्छे २ नौकरों को एकत्र किया था। इसे संतान न थी पर इसके संबधियो में बहुत से मसबदार थे।

६८६. सिराजुद्दौला अनवरुद्दीन खाँ बहादुर जफरजंग

यह अनवरुद्दीन खां बहादुर शहामतजंग का पुत्र था, जिसका पिता हाजी अनवर निमाज पढ़ने के समय आगे रहने से औरंगजेब के पहिचाने हुए मनुष्यो में से एक था। इसके पूर्वजो का निवासस्थान अवध प्रांत का गोपामऊ मौजा और शहामत-जग का वास्तविक नाम शेख खानजहां था। कहते हैं कि जब यह मंसब के लिये औरंगजेब के सामने उपस्थित किया गया तब बादशाह ने इसका नाम बदलकर जानजहां निश्चित कर दिया और इसे चहारबीस्ती (चार-बीसी) का मंसब तथा सरकार गुल्बर्गा के जजिया की अमीनी दी। इसके बाद, इसे सगमनेर सरकार के जजिया की अमीनी पर नियत किया। उस समय ख्वाजा मुहम्मद अमानत खां संगमनेर का फौजदार था। दोनों मे बड़ी मित्रता हो गई। इसके अनंतर जब अमानत खां सूरत बंदर का मुतसद्दी हुआ तब इसे सूरत बंदर के जजिया की अमीनी और वहां के दारुलजर्ब की दारोगागिरी मिली। इन कार्यों को करते हुए इसने योग्यता दिखलाई। बहादुरशाह के राज्यकाल में इसका मंसब बढ़ा और इसे अनवरुद्दीन खां की पदवी मिली। जिस समय अमानत खां ने मालवा प्रांत मे आकर राजा मुस्लिम खां के साथ युद्ध किया तब इसमें अच्छा प्रयत्न कर यह उक्त खां का मुख्तार बन गया। जब अमानत खां हैदराबाद प्रांत का नाजिम नियत हुआ तब यह उस प्रात का दीवान बनाया गया। जब एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीन खां बहादुर की मृत्यु पर आसफजाह राजधानी गया तब यह इसका साथ छोड़कर उसकी अधीनता मे दरबार पहुंचा और इलाहाबाद प्रांत के अंतर्गत कोड़ा जहानाबाद सरकार का फौजदार नियत हुआ। इसके अनंतर वहां से हटाए जाने पर यह आसफजाह के पास चला गया जो दक्षिण आकर मुबारिज खां के युद्ध से छुट्टी पा चुका था। पहले यह हैदराबाद का नायब नाजिम, फिर सिकाकुल का फौजदार और तब दुबारा हैदराबाद का नायब नाजिब बनाया गया। उस प्रांत मे आए हुए मरहठो से युद्ध कर इसने उन्हे बाहर निकाल दिया। कुछ वर्षों के बाद हैदराबाद प्रात के कर्णाटक का फौजदार नियुक्त होकर इसने वहां के उपद्रवी जमीदारो का प्रबंध ठीक किया। नासिर जंग के समय इसे शाहामतजंग की पदवी मिली। इसके बाद दैवयोग से मुजफ्फरजंग एकाएक उस प्रात में आया और यह निमक का विचार कर उससे युद्ध करने के लिये बाहर निकला और सन् ११६२ हि०, सन् १७४९ ई० मे युद्ध में वीरता दिखलाकर मारा गया।

यह वीर, भला तथा उदार पुरुष था और सूफीमत का ज्ञाता था। फकीरो पर यह विश्वास रखता था। इसका बड़ा पुत्र सदरुस्सलाम खां अपने देश मे था और वह दक्षिण नही आया। दूसरा पुत्र मुहम्मद महफूज खां बहादुर था, जिसे सलावतजग के समय में शहामत जंग की पदवी मिली और कुछ दिन वह हैदराबाद

के कोहेर स्थान का फौजदार रहा। यह कर्णाट में बहुत दिनो तक रहा। इसका भाई सिराजुद्दौला एक लाख रुपया वार्षिक इसे देता था। हज्ज की यात्रा के बहाने यह श्रीरंगपत्तन के ताल्लुकेदार हैदरअली खाँ के पास चला गया और उससे सहायतार्थ सेना लेकर त्रिचिनापल्ली दुर्ग पर आया, जो सिराजुद्दौला के अधिकार में था, और युद्ध में पकडा गया। यह बहुत दिनों तक उस दुर्ग में कैद रहा। लिखते समय के दो तीन वर्ष पहले यह मर गया। विद्या की बातों से यह प्रेम रखता था। तीसरा उक्त सिराजुद्दौला था, जिसका वास्तविक नाम मुहम्मद अली था।[1] पिता की मृत्यु पर नासिरजंग के समय मे खाँ की पदवी पाकर यह काम की खोज में प्रयत्न करता रहा। नासिरजंग के मारे जाने पर इसने चीनापत्तन के टोपवालो से, जो अंग्रेज थे, मित्रता बढ़ाई और कुछ दिनो के बाद जब फूलचेरी बदर के फरासीसी टोपवालों पर वे विजयी हुए तब इसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ गई। दूरदर्शिता से अंग्रेजो के बादशाह से, जो फिरंग देश में था, पत्र व संदेश व भेंट आदि भेजकर इसने रस्म बढाया। चीनापत्तन बंदर के कर्मचारियो से उनकी आशा से बढ़कर सुव्यवहार दिखलाकर यह पूरे कर्णाटक पर अधिकृत हो गया और इस प्रकार खूब सम्पत्ति भी इकट्ठी की। इन्ही टोपवालो के द्वारा तत्कालीन बादशाह से अमीरुल्हिंद वालाजाह की पदवी पाकर यह संमानित हुआ। यह याचकों पर बहुत कृपा रखता था।

इसका बडा पुत्र, जिसकी पदवी उमदतुल्उमरा थी, यद्यपि पिता से सत्संग न रखता था पर साहसी तथा अच्छे स्वभाववाला था। यह गुणियो का आदर भी करता था। इसका यह शेर, जिसे उर्दू भाषा मे कहा है, हृदय मे स्थान कर लेता है। वह यों है—

हमें जुदा करे तुझसे जमाना या न करे।
किसी के करने न करने से क्या खुदा न करे॥

इसके दूसरे पुत्रों ने मंसब व पदवी पाकर उन्नति की। इसके भाइयो में से एक अब्दुल्वहाब खाँ है, जो लिखते समय कर्णाटक के अंतर्गत नेलोर व सर्वपल्ली का ताल्लुकादार था। दूसरा नजीबुल्ला खाँ मर चुका था।

●

१ आसफजाह द्वारा नियत कर्णाटक के नवाब अनरुद्दीन खाँ के इस पुत्र मुहम्मद अली का पक्ष अंग्रेजो ने लिया और फरासीसियो ने इसके प्रतिद्वंद्वी चांदा साहब का पक्ष लिया, जो पहले नवाब का दामाद था। सन् १७५२ ई० मे चांदा साहब के परास्त हो जाने तथा मारे जाने पर मुहम्मद अली कर्णाटक का निष्कंटक नवाब हो गया, जो सन् १७९५ ई० मे मरा। देखिए विन्सेंट स्मिथ का 'द ऑक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑव इंडिया' पृ० ४०६।

६९०. सुलतान ख्वाजा नक्शबंदी

इसका नाम अब्दुल् अजीम था और यह ख्वाजा खाविंद दोस्त का पुत्र था। यह ख्वाजा अब्दुश्शहीद का शिष्य था, जो ख्वाजा अब्दुल्ला, प्रसिद्ध नाम ख्वाजगान ख्वाजा, का पुत्र और ख्वाजा नासिरुद्दीन अहरार का माना हुआ पुत्र था। जब ख्वाजा अब्दुश्शहीद समरकंद से हिंदुस्तान आया, तब अकबर उससे बड़े संमान के साथ मिला और पंजाब में चमारी परगना उसको भेंट में दिया। ख्वाजा बहुत दिनों तक वहीं रहकर जीवन व्यतीत करता रहा। इसके अठारह वर्ष अर्थात् सन् ९८२ हि० के बाद यह समरकंद लौट गया और सन् ९८४ हि० में वहीं मर गया। सुलतान ख्वाजा यद्यपि विद्या के मर्म को पूरी तौर से नहीं जानता था और विशेष बुद्धिमान भी नहीं था पर व्यवहार कुशल था और सूफी मत को अच्छी प्रकार जानने के कारण इस पर बादशाही कृपा अच्छी तरह हो गई। इसपर बहुत विश्वास था तथा कुछ संबंध स्थापित हो गया। जब २१वें वर्ष सन् ९८४ हि० में बादशाह की इच्छा हज्ज करने की हुई, तब दरबारियों ने प्रार्थना की कि यद्यपि कुछ बुद्धिमान संग्रहकारों ने न्यायप्रिय सुलतानों तथा ऐसे बादशाहों के लिये अर्थात् व ऐश्वर्यशाली सम्राट् जो देश के लिये अच्छे उपायों तथा तलवार की शक्ति से शांति के घर बने हुए हैं, इस प्रकार के कार्य करना धर्म बतलाया है पर तब भी कोई उपाय अवश्य है, जिससे ऐसे काम से आबाद प्रजा पर अशांति की धूल न बैठे। इसपर अकबर ने इस विचार को अपने हृदय से त्याग दिया, पर इस कारण कि ऐसा विचार मन में आ चुका था इससे इसने सुलतान ख्वाजा को अमीर हज्ज नियत किया, जो अपने अच्छे आचार तथा समझदारी के कारण भाग्यशाली था। इसको छः लाख रुपया नगद और बारह सहस्र रुपयों की खिलअत दी गई कि वहाँ के भले आदमियों से मिलकर तथा उन्हें योग्य पुरस्कार देकर अयाचक कर दे और यह भी आज्ञा हुई कि उस प्रांत के विरक्त लोगों को, जो संसार के सभी कार्यों से कुछ संबंध नहीं रखते और सब संतोष करनेवाले फकीरों का वृत्तांत वह लिखकर अपने साथ ले आवे, जिससे प्रति वर्ष एक जानकार मनुष्य उस प्रांत में जाकर वहाँ के उन सब याचकों को दान से सफल करे। इस काफिले के साथ बहुत से अच्छे तथा भले आदमियों ने हज्ज की यात्रा की थी। इतने धूमधाम से बहुत कम काफिले हिंदुस्तान से उस देश को गए होंगे।

ख्वाजा २३वें वर्ष सन् ९८६ हि० में उस यात्रा से लौटकर तथा अकबर की सेवा में उपस्थित होकर पहले से अधिक कृपा का पात्र हुआ और सारे हिंदुस्तान का सदर नियत हुआ तथा इसे एक हजारी मनसब मिला। २९वें वर्ष सन् ९९२ हि०

मे इसकी मृत्यु हुई। दुर्ग फतहपुर के उत्तर की ओर यह गाड़ा गया। इसकी मृत्यु के अनंतर ३०वें वर्ष के आरंभ में इसकी पुत्री का शाहजादा सुलतान दानियाल के साथ निकाह हुआ। इसका पुत्र मीर ख्वाजा ४६वें वर्ष में पाँच सदी मनसब तक पहुँचा था।

दबिस्ताने मोविदी मे लिखा है कि सुलतान ख्वाजा इलाहियो मे से था अर्थात् उस मत को माननेवाला था, जिसे अकबर ने प्रचारित किया था, और जिसका नाम दीनेइलाही रखा था। अपने चलने के समय यह बादशाह से वसीअत कर गया था कि मुझको इस देव आदमी के साथ दफन न करें। लाचार होकर उसको कब्र में एक दीपक के साथ रखकर लोहे की जाली ऊपर की ओर सूर्य की तरफ लगाकर छोड दिया, जिसका प्रकाश दोषो का नष्ट करनेवाला है। यद्यपि ऐसी कहानियो का विश्वसनीय इतिहासो के साक्ष्य के अभाव में लेखको की दृष्टि में कोई महत्व नहीं है और जो कुछ शेखबदायूनी तथा वैसे लोगों ने विस्तार तथा व्यंग से लिखा है वह हठधर्मी तथा कट्टरपन से भरा है। इसके बाद अकबर बादशाह के एक मनसबदार तथा नकशबंदी परपरा के लालवेग कृत समातुलकुद्दस नामक पुस्तक देखने में आई, जिसमें शेखो का विवरण दिया हुआ है। सुलतान ख्वाजा के वृत्तांत से प्रगट होता है कि वह बातों में सुस्त तथा झूठी प्रकृति का था। लिखना है कि उस समय कुछ लोग नया धर्म काम मे लाकर चाहते थे कि महम्मदी धर्म के स्तंभों मे भेद पड़े तथा झगडा हो, इसलिये उन्होने निश्चय किया था कि जो कोई मरे वह सूर्यपूजको के समान सूर्य की ओर अपनी कब्र में मोखा छोडे, जिससे सभी ज्योति निकली हुई है, कब्र में पहुँचे और मुक्ति का मार्ग न पावे। कुछ पवित्र लोग उस हजरत के बारे में यह सोचते हैं कि वह इस वंश का रक्षक था इसलिये किसी का उस पर जोर न हुआ और मुसलमानो के समान कफ्न देकर मिट्टी को सौंप दिया।

यद्यपि इन पृष्ठों मे लेखनी ने सर्वत्र स्थान के अनुकूल इस प्रकार की बातें लिख डाली हैं परंतु भाषा पर सर्वत्र दृष्टि रखी है। यहाँ लेखनी रूपी घोड़ा बिगडकर भागता है और कागजरूपी मैदान में दौडें लगाता है। अकबर यौवन के आरंभ तथा जवानी के कारण हिंदुस्तान के हर एक तौर तरीके पर मुग्ध हो गया था या उनका स्वभाव ही वैसा था या राज्य की नीति के कारण उसके मस्तिष्क में ऐसी बातें आ गई थी। बहुत दिनों के बाद जबकि उसका विचार पवित्र बनने का था, उसने कहा था कि इस कार्य को उचित मानने का कारण हिंदी रचनाएँ थीं पर अब इसे साफ कर देना चाहिये, क्योंकि अब इसकी आवश्यकता नहीं रह गई। यद्यपि वह विद्वानो तथा शेखों का संमान करने और इस्लाम की धार्मिक रीतियों को बढ़ाने का प्रयत्न करता था परंतु शत्रुओं तथा मित्रों के धर्मों से परिचय रखने

के लिये ब्राह्मणो तथा योगियो के साथ बैठता था और इनके जीवन वृत्तांतो का संग्रह करता था। इसके अनंतर जब मूर्तिपूजन तथा अग्निपूजन के साथ इसकी प्रसिद्धि हुई तब जनसाधारण से छिपाने के लिये उसने कुछ धार्मिक कार्य करना उचित समझा। इसी कारण उसने हज्ज जाने का विचार प्रकट किया और प्रति वर्ष मीर हज्ज नियत करता तथा आखिरी पैगंबर का मौलूद जैसा चाहिए वैसा करता था। २३वें वर्ष में नबीयो, योग्य खलीफाओ तथा मुसलमान सुलतानो की प्रथा पर वह स्वयं फतहपुर की जुमा मसजिद मे खुतबा पढने के लिये मेम्बर पर आया। अरबी न जानने के कारण या और किसी वजह से शेख फैजी के निम्नलिखित शैरो को खुतबा की तौर पर पढा। शैरों का अर्थ—ईश्वर ने हमको बादशाही दी, बुद्धिमान हृदय तथा शक्तिमान हाथ दिए। हमारे लिये न्याय का मार्ग प्रदर्शित किया, सिवा न्याय के और सब हमारे विचार से दूर किया। उसकी प्रशंसा समझ के बाहर थी। ऊँची है शान उसकी अल्ला हो अकबर।

यद्यपि कुछ लोग लिखते हैं कि जब अकबर ने मेंबर पर पैर रखा तब अकस्मात् ही यह घटना घटी कि वह काँप कर गिर पड़ा। इसके बाद घबडाहट के साथ इन शैरों को पढकर शुक्रवार की नमाज् अदा की। अकबर स्वभावतः हर एक काम मे नई बात निकालना चाहता था और नए नियम भी बनाना चाहता था, इसलिये धर्म तथा मत मे दखल देना भी उसकी स्वभाव हो गया था। वह इस्लाम धर्म के कामो के विरुद्ध टिप्पणी करना राज्य की शांति के लिये लाभदायक समझता था। इस कारण बादशाह के स्वभाव को जानने वाले कुछ विद्वानो के प्रस्ताव पर, जिनका सरदार गाजी खाँ बदख्शी था, २४ वे वर्ष सन् ९७७ हि० मे सब विद्वानो ने एकमत होकर फतवा दिया कि न्यायप्रिय बादशाह अल्लामियाँ की छाया हैं, मुजतहीद का पद मर्यादा से ऊँचा है और अपने समय का खलीफा और सबसे बडा है। इन सब विद्वानो के मुहर से एक पत्र लिखा गया कि अकबर बादशाह पुराने लोगो की समति के बिरुद्ध भी प्रजा की आसानी के लिये जो कुछ निश्चित करे उसे ईश्वर की आज्ञा समझकर उसकी पैरवी करना सभी उचित समझें। इसका वृत्तांत शेख अब्दुन्नबी सदर की जीवनी में लिखा गया है।

अकबर को संसार के भिन्न-भिन्न मतो तथा विद्याओ को जानने का बहुत शौक था, इसलिये थोडे ही समय मे बादशाही दरबार में हर धर्म और मिल्लत के विद्वानो का जमावडा हो गया और हर एक धर्म के लोग इकट्ठे हो गए। इस प्रकार आपस मे मैत्री तथा प्रेम का मार्ग खुल गया। पहले प्रत्येक पक्ष बिना

हठधर्मी के अपनी बात कह डालना और निस्संकोच अपनी-अपनी भलाइयों की तुलनात्मक विवेचना करता। साथ ही हर एक दूसरे की बुराइयाँ तथा दोष दिखलाने का भी प्रयत्न करना। यहूदी ईसाई से, सुन्नी शिआ से और अग्नि पूजक तथा ब्राह्मण मुसल्मान से वाद-विवाद करता। ईश्वर रक्षा करे, वे लोग बिना किसी भय के अनेक प्रकार की बुरी भली बातें पवित्र तथा बड़े-बड़े नाबियों के बारे में कहते तथा महापुरुषों के संबंध में व्यंग्य कसते, जिससे अच्छा शोरगुल मच जाता था। यह बहस यहाँ तक पहुँच जाती थी कि मुसलमान विद्वान तथा फकीर आपस ही में लड़कर एक दूसरे पर कुफ्र का दोषारोपण करते थे। हकीम फिसलफी कहता है कि हर धर्म में बुद्धिमान मौजूद हैं और अकारण किसी को दूसरे से क्यों बढ़कर माना जाय। हम लोगों को संमाननीय बुद्धिमान अकबर बादशाह के अधीन होना चाहिए जो भलाई बुराई को समझनेवाला तथा शासक है और भूत-प्रेत की कहानियों पर विश्वास न करना चाहिए, जो खराबी का घर है। अकबर ने अर्दशेर नामक एक अग्निपूजक को ईरान से बुलवाया था, जो अपने साथ अग्नि लेता आया। उसको ईश्वरी प्रकाश समझकर उसका प्रबंध शेख अबुल्फजल को सौंपा गया कि फारस के अग्नि मंदिरों की चाल पर उसकी रक्षा करे। ईरान प्रांत के अग्निपूजकों के सरदार अदर कैवान को बुलाने के लिये आज्ञापत्र लिखा गया पर उसने क्षमा माँगी और अपनी रचनाओं में से एक पुस्तक भेजी, जिसमे फरिश्तों तथा नक्षत्रों की प्रशंसा तथा उपदेशों और आदेशों का संग्रह था। इसमें चौदह जुज से अधिक थे और प्रत्येक पंक्ति शुद्ध फारसी मे थी। इसकी व्याख्या अरबी में थी और जब उलट देते थे तब तुर्की हो जाती था। इसका कुछ अंग हिंदी में हुआ था। शेख अबुल्फजल कहता है कि यह ग्रंथ कुरान से अधिक शुद्ध है। ईश्वरीय तथा नकली विद्याओं मे कुछ भी प्रतिष्ठा तथा विश्वास न रहा। मनुष्यों को मत, हिसाब, वैद्यक, ज्योतिष, कविता तथा इतिहास में रुचि हो गई। हर ओर आज्ञापत्र भेजे गए कि नीचों को शिक्षा से दूर रखें और संसार को प्रकाशमान करने वाले सूर्य को प्रतिष्ठा सूर्यपूजकों के समान करने का योग्य प्रबंध करें, जो उसके आसमानी तथा नफसी गुणों को जाँच करने पर उससे प्रेम रखते हैं और उस प्रकाश के पूजन को प्रकट तथा आंतरिक ऐश्वर्य का समूह मानते हैं। अकबर ने राजा बीरबल के बहकाने पर सूर्य के गुणों तथा नामों का हिंदी तथा फारसी भाषाओं मे संग्रह कराया था। एक राशि से दूसरी राशि में संक्रमण करते समय प्रथम दिन को विशेष पवित्र समझकर और विशेष कर मेषसंक्रांत मे तथा इसी प्रकार अन्य ग्रहों को लेकर, जो उसके प्रकाश के पात्र तथा पुण्य को देनेवाले थे, अपने लिये शुभ समझकर और उन समयों को ईश्वर की कृपा का सहायक तथा उन्नायक मानकर

वर्ष में चौदह ईद नियत किए। विद्वद्वर अमीर फतहउल्ला शीराजी की संमति से अरबी तारीख को बदलकर अजम की चाल पर और वर्ष तथा महीना चलाया गया। गोहत्या बंद कर दी गई। जिस प्रकार मुसलमानो के झगड़े निपटाने के लिये काजी नियत होते थे उसी प्रकार हिंदुओ के झगडे निपटाने के लिये विद्वान ब्राह्मण नियत किए गए। प्रत्येक नई बातो को इलाही शब्द के साथ नाम देते थे, इसलिये हर धर्म तथा मत की बातों को मिलाकर दीनईलाही मत नाम दिया। कुछ सासारिक तथा विरक्त लोगों ने मिलकर बहुत सी कहानियां बना लीं और कहने लगे कि यह अधिकार तथा कार्य भी ईश्वर से मिला है। यह मार्ग भूले हुओं का छोटा झुंड अकबर का अल्लाह का खलीफा कहता था तथा इस प्रकार गाते थे कि मानों वह नियुक्त हो गया हो जैसे लाइल्ला अलाल्ल्ला अकबर खलीफतुल्अल्ला कहते थे।

कहते हैं कि जब रविवार ५ रज्जब सन् ९४९ हि० की रात्रि में अकबर अमरकोट मे पैदा हुआ, तब एक मुर्ताज ने यह देखा कि पूर्ण अक्ल पूर्ण नफ्स के साथ नीचे आकर एक शरीर बनाकर, जिसका असली तत्त्व चार गुणो का था, बाशाह हुमायूं को सौंपा। 'किस्सा अल्नक्वा' मे लिखा है कि कुछ लोगों को स्वप्न में ईश्वरी संदेश मिला है कि भक्त लोग, जिन्हे तुर्की मे कशावान कहते हैं, अगोचर संसार मे उसके संमुख हो कर बिना मिले, कि तात्विक विशिष्टता रखता है पवित्र अधिकार प्राप्त करते हैं। इस कारण उसके सब संतानो को जिन्हें 'नैरून' कहते हैं, फिरिश्तों के वंश का समझते हैं।

इस कौम को इलाहिया कहते है क्योकि अकबर को छोडने तथा मिलने का अधिकार था। एक दिन जागते हुए इसकी आत्मा शरीर को छोडकर 'वाहिद अकबर' से जिससे ये खुदा से तात्पर्य लेते हैं, जा मिली। खुदा ने कहा कि मेरे तथा दूसरो के बीच जिब्रईल मध्यस्थ है पर मेरे और तेरे बीच दूसरा कोई नही है तथा नियत हुआ है कि संसार के भेदो को दूर करे। इसने कहाकि बिना कठोरता के यह नही हो सकता और मुझसे वह नही होता। मुरौवत तथा मुलायमियत से जितना हो सकेगा करूँगा। इस पर खुदा ने कहाकि तू मेरी दया प्रकट करनेवाला हो और दूसरे क्रोध के। इस प्रकार की बहुत सी कल्पित कहानियां गढ ली हैं। बहुत से जोगी, संन्यासी तथा मुसलमान, जो उससे मिले हुए थे, मिलकर इसे जगत्गुरु कहते थे। भिन्न मतवाले उसको दलील कहते है, जैसा अकबर से बयान किया था।

अबुल्फज्ल ने अपने इतिहास मे लिखा है कि पैदा होने से आठवें महीने मे एक दिन जीजी अंनगा दूध पिला रही थी और माहम अनगा तथा दूसरो के वैमनस्य से वह सशंकित तथा त्रस्त थी। जिस समय वहां कोई उपस्थित न था उस

समय अकबर ने उसे बोलकर सांत्वना दी और जीजी अनगा ने बहुत प्रसन्न हो यह बात किसी पर प्रकट नही किया। प्रसन्नता का नवेद देकर कहा कि कभी हमारे इस भेद को किसी से न कहना। राज्यकाल मे एक दिन दिल्ली मे पालम कस्बे के पास अकबर शिकार को गया। वहाँ एक भयानक भारी साँप मार्ग मे निकल पड़ा। बादशाह ने निश्शंक हो उसकी दुम पकड़कर उसे मार डाला। युसुफ मुहम्मद खाँ कोका ने आश्चर्य से यह बात अपनी माँ जीजी अनगा से आकर कहा और तब उसने वह भेद बतलाकर कहा कि जब उसने छोटी अवस्था मे वह मसीही कार्य किया तब यदि बड़ी अवस्था मे ऐसा कार्य किया तो क्या आश्चर्य। शेख ने लिखा है कि यद्यपि ये दोनों बातें हमने विश्वस्त पुरुषो से सुनी थी पर तब भी उस स्त्री से पूछ लिया था।

दबिस्तान में लिखा है कि शाह बेग खाँ खानदौराँ के पुत्र मिर्जा शाह मुहम्मद उर्फ गजनी खाँ से सुना है कि वह कहता था कि मैंने मिर्जा अजीज कोका से पूछा कि अकबर के बारे में क्या कहते हैं? उसने उत्तर दिया कि माँ कहती थी कि हक है। अबुल्फज्ल ने भी लिखा है कि बड़प्पन तथा उच्चाशयता का कौन चिन्ह अकबर के प्रकाशमान शीर्ष पर नही प्रकट था, जो उसकी बादशाही तथा ईश्वरीय कृपा को द्योतक हो। यह वही नूर है जो बाबर के विजयो मे परिलक्षित हुआ, वही नूर था जो शाहजहाँ की बादशाही में प्रगट हुआ, वही नूर था जो स्त्रीत्व के समुद्र की सीपी में आबदार मोती के नकाब में पैदा हुआ, और वही नूर था कि आदम से नूर तक योग्यता के अनुसार प्रकाशमान होता रहा। इस नूर के उच्च भेद तथा इसके विचित्र चिह्न विचार के बाहर हैं कि यह संबंध यदि साधारण हो तो सभी लड़को को अपने है। हर एक मनुष्य को इसकी शक्ति की पहिचान नहीं है और न समझाने की शक्ति है। प्रकट है कि वंशजो सहित प्राप्त हो पर उस एक को जानना, जैसा शेख चाहता है, कुछ और बतलाता है।

दबिस्तान में लिखा है कि सन् १००० हि० में इलाहियों ने अकबर से कहा कि हिजरी के एक सहस्त्र वर्ष पूरे हुए अब शाहइस्माइल सफवी से शत्रु को बीच मे से उठा देना चाहिए बादशाह ने उत्तर दिया कि मैं चाहता हूँ कि यह धर्म मुरौवत के साथ लोगो में प्रचलित हो, यह नही कि कठोरता, कष्ट तथा तलवार के भय से लोग इसे स्वीकार करें। मीर शरीफ आमिली ने महमूद खानी पुस्तको से शहादत (साक्ष्य) खोजी है कि सन् ९९० हि० मे वास्तविक धर्म को उत्कर्ष देनेवाला होगा और उस शख्स से अकबर से मेल मिलाया कि नौ से नब्बे है। हकीम फीरोज ने यह रुबाई नासिर खुसरूकी पढ़ी। रुबाई—अर्थ

भूमि की आज्ञा से ९८९ मे दिशाओ से नक्षत्र एक स्थान पर आ गए।
पाँचवे वर्ष ५वें मास तथा ५वें दिन पर्दे से बाहर खुदा का शेर आया॥

और कहा कि जब नासिर को देखा तब पूछा कि खुदा का शेर कौन है तब कहा कि जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर। ख्वाजा मौलाना शीराजी जफरदान मक्का मे कुछ भलेआदमियो का लेख लाया कि हदीसो के अनुसार संसार के सात सहस्त्र वर्ष व्यतीत हो चुके और अब निश्चित मेहदी के प्रकट होने का समय आ गया। साथ ही यह भी कहा कि वास्तव में देखा कि काबे के घर मे खुदा का पैगंबर खड़ा है और जलालुद्दीन बैठा हुआ है। कारण पूछने पर कहा कि अब इसकी पारी हैं और समय का स्वामी जलालुद्दीन अकबर है। दबिस्ताव का लेखक और भी कहता है कि खान आजम के एक अच्छे नौकर अहमद तर्कबाई से सुना है कि जब इच्छुको तथा नए विचारवालो के वचन प्रकाशित हुए और नए कुमार्ग निकले तब मिर्जा कोका धर्मांधता से सन् १००१ हि० मे गुजरात से काबा चला गया और १००२ हि० मे लौटकर लाहौर में सेवा मे उपस्थित हो दीने इलाही ग्रहण कर लिया। कारण यह था कि काबे मे रात्रि मे इसने स्वप्न देखा कि रसूल साहब कहते हैं कि काबा चमड़ा है और अकबर मगज है, यह घर है, वह स्वामी है। पहले यह लौटने की इच्छा न रखता था। दैवयोग से एक रात्रि उसने देखा कि कोई उससे कहता है कि क्या प्रतिष्ठा से तू बाहर नही जाएगा। बड़े लोगों ने उससे बुरा सलूक किया तब वहाँ से लाचार हो लौटा। जैसे भागा था वैसेही लौटा। इसी कारण बदायूनी साहब लिखते है कि मिर्जा का जाना खूब था पर उसका आना वैसा न था। उसका एक लतीफा कहा है कि वह अकबर की मृत्यु के अनंतर ओछे शब्द कहता था जब उससे पूछा गया तब कहा कि उसके बड़प्पन में शक नही है पर मूर्खों का बाप अकबर था।

सक्षेप मे जब इलाहियो ने इस प्रकार कहने मे सीमा पार कर दिया तब अकबर ने कुछ आदमियो को इसकी शिक्षा देने के लिये नियत किया। ईश्वर की एकता से वह निश्चय दृढ था। उसके पार्श्ववर्तियो का संमान, जो एक एक कर बड़े नक्षत्र हैं, और जीवो को कष्ट देने से मनाही जो हर प्रकार से कहा गया है, वह किसी मत मे बुरा नही माना गया है। सभी मार्गों में हठधर्मी न करना ठीक है। इसका अच्छा नियम यह है कि स्वामी से सेवको को इतना प्रेम होना चाहिए कि वे धन, प्राण, स्त्री तथा धर्म चारो को छोड़ना सहज समझें। जुल्फिकार अर्दिस्तानी 'मोबिद' उपनाम ने अपने दबिस्तान मे कुछ आज्ञा तथा नियम लिखे हैं, जो हिंदुओं, यहूदियो तथा मुसलमानो के प्रचलित धर्मो ने विश्वसनीय माने गए हैं। यद्यपि अब कोई इस तरीके पर प्रसिद्ध नही है और यह इसलिये कि उस समय भी खास मुसाहिबो और पूर्ण परिचित लोगों के सिवा दूसरों को वह दीक्षा नही देता था। खानखानाँ मिर्जा अब्दुर्रहीम के प्रार्थी होने पर कि मैं भी इलाही सेवक हूँ बादशाह ने स्वीकार कर मुहर्रम की १०वी रात्रि को उसे शिष्यता का प्याला दिया। एक दिन मीर सदर जहाँ मुफ्ती से कहा कि तेरे मन मे है कि

मुसल्मानी इसी मत में है और बादशाह कहें कि क्यों नहीं इसे ग्रहण करता। वह पैरों पर गिर पड़ा और कहा कि तीन दिनो से इसी विचार में हूँ और किसी अन्य से नही कहा है कि यदि अकबर स्वयं कामिल मुजाहिद है तो वह स्वयं कहेगा। शुक्र है अल्लाह का कि वह हो गया। दो पुत्रो के साथ इसने दीने इलाही स्वीकार कर लिया। यही कारण है कि वह फिर्का उसी समय अस्त व्यस्त हो गया। शुक्र है अल्लाह का। इन सब बातो को शेख अबुल्फज्ल ने बड़ी शान से अकबरनामा में लिखा है, जिनमे मे कुछ यहां दिया गया है। कुछ लोगो ने खुदा के इस अद्वितीय दास पर, जो उस वंश के सभी पुत्र पौत्र से प्रकट हैं, खुदाई के दावे का तोहमत लगा दिया है। इन लोगों का यह झूठा विचार यों उठा कि कुछ पहले के लोगो ने मिलकर, जो इस नसीर पंथ पर थे या हुसेन मंसूर का शौक था, अर्थ के स्वामी को स्वत्व का प्रकट करनेवाला जानकर इस प्रकार कहना शुरु कर दिया और राजगद्दी पर बैठने वाले ने इस प्रकार व्यर्थ तथा झूठा बकनेवाले मूर्खों की कोई भर्त्सना नही की। कुछ लोगों का अनुमान है कि बादशाह को उस न्यायी की मध्यस्थता की बड़ी इच्छा थी। इन लोगों की विचार प्रणाली यह थी कि बादशाह बराबर बड़े नियम बीच में लाता है और पहले लोगो के शंकापूर्ण बातों पर आक्षेप करता है। जब इन दो झुंडो की बेहूदा बातें बादशाह ने सुनी तब कई बार कहा कि सुभान अल्लाह, इन मूर्खों के हृदय मे किस प्रकार यह बात आई कि लाचार नवोत्पन्न शक्ति खुदाई से अपनी निस्बत देवे। उन मार्गप्रदर्शको से, जिन्होंने बहुत बड़े बड़े काम कर नम्रता से नबी होना प्रकट किया है और अच्छे समय तथा काल बीत गए कि यह अर्थ पुष्ट हो तथा मूर्ख उत्कर्ष पावे, अभी तक अस्वीकार का गर्द शांत नहीं हुआ। कैसे वे विचार हमारे मस्तिष्क मे आवेंगे। एक दूसरे झुण्ड का विचार था कि बादशाह इस्लाम धर्म को अप्रगनित समझते थे। इनका प्रमाण यह था कि विद्वान बादशाह स्वमत की विशालता, दया का आधिक्य तथा अपनी छाया से झुण्ड के झुण्ड आदमियो को मित्र बना लेता है। हर धर्म, मत तथा विचार के विद्वानो और गुणियो को एक कर वह उनसे बराबर धार्मिक विषयो या तात्विक बातों पर वाद विवाद करते थे। जब ईसाई दार्शनिकों प्रतिद्वन्द्वियों से तर्क वितर्क 'हुमायूनी' पवित्र मजलिसों में हुए तभी शका आरम्भ हुई। यद्यपि नबी के वंश के लिए इस खानदान में जो पूर्ण आस्था थी वह और बादशाहो मे कम मिलती है। बहुत से सैयदो को ऊँचे मंसब मिले थे और उन्हें आदेश नही दिया था कि इनमे से एक भी अपना सिर पवित्र पैर पर रखेगा या पेशानी इकबाल के चौखट पर लावे। कुछ और लोग उस पवित्र विश्वास करनेवाले पर शीआ होने का धब्बा लगाते हैं। इनके इस कुविचार का प्रमाण यह था कि पवित्र मजलिसो मे इन दोनो पक्ष की दलीलों में दूसरे पक्ष की ही लिखी गई थीं

और विज्ञ बादशाह ने सत्य की खोज तथा न्याय की दृष्टि से निष्पक्षपात होकर उन्हें सुना था। शैर—अर्थ—

प्रभावशाली विवाद से जो बयान हो, अशुभ हो, न सुनने योग्य हो ॥

ईरानियो का विश्वास प्राप्त करना, जो विशेप कर इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करते है, बदगुमानी को बढ़ाता था और तूरानियों के विशेप पैरवी करने पर वह धर्मांधता की दृष्टि से छिपा रहा। एक झुंड ने उस ईश्वर को पहिचानने वालो के सर्दार को ब्राह्मण धर्म से प्रेम रखनेवाला कहा है, अनुचित कार्य है, जिसका कारण यह है कि उस बुद्धिमान बादशाह ने सोत्साह ब्राह्मण विद्वानों को अपने पास स्थान दिया था, हिंदुओं को राजनीतिक तथा न्याय की दृष्टि से अच्छे पद दिए थे और सभ्यता से उनसे सुव्यवहार कर उन पर कृपा की थी। इन सब व्यर्थ के बकवादियो के जोश से तीन बातें ज्ञात होती हैं, प्रथम यह कि बादशाह की गुणग्राहकता से विद्वानों की अच्छी गोष्ठी एकत्र हो गई और जब हर मत में कुछ अच्छाई होती है तब सभी प्रशंसा के पात्र हुए। न्यायतः किसी भी मत के अच्छेपन को पर्दे मे बंद नही किया जा सकता। दूसरे सभी मे शांति होने से दरबार में अच्छा जमघट हो गया और झुंड के झुंड लोग अनेक प्रकार की बातें लेकर उनकी व्याख्या करते थे। तीसरे संसार के दुष्टो का टेढ़ापन।

वर्णन शैली के मर्मज्ञो पर प्रकट है कि जो ऊपर कहा गया है वह सब शेख की बातो से निकलती हैं। उत्कर्ष का तात्पर्य है उस धर्म की विशालता तथा सन में मेल, जो झुंड के झुंड आदमियो की नम्रता तथा कठोरता का मेल करा सका था। सुभान अल्लाह कि इस नश्वर संसार के कार्यों का इस शान से प्रबंध हो सका कि कोई भेद करने मे आगे न बढ़ सका। धर्म संबंधी कार्य में कि इससे कठिन है झूठ तथा आक्षेप आसानी तथा सुगमता के सिवा और कुछ भारीपन नही रखता है।

•

६६१. मिर्जा सुलेमान

यह बदख्शाँ का हाकिम था और इससे पाँच पीढ़ी पर इसका वंश अमीर साहिबकिराँ तैमूर गुर्गान तक पहुँचता था। यह प्रांत बहुत समय से ऐसे लोगों की अध्यक्षता में था, जो अपने को सिकंदर रूमी के वंश का बतलाते थे और चारो ओर के सुलतानों में से कोई उनसे वैमनस्य नही करता था तथा थोड़े ही कर से वे संतुष्ट हो जाते थे। जब सुलतान आबू सईद गुर्गान राजा हुआ तब

उसने सुलतान मुहम्मद को, जो उस वंश का अन्तिम शासक था, पकड़कर उसे उसके सन्तानों तथा संबंधियो के साथ मरवा डाला तथा बदख्शाँ पर अधिकार कर लिया। इसके अनंतर जब अबू सईद का पुत्र सुलतान मुहम्मद मिर्जा समरकंद में पहुँचकर मर गया तब अमीर खुसरो शाह से जिसने यसन में सर्दारी का पद प्राप्त किया था, कुछ दिन उस मृत के पुत्रो मिर्जा बायसंकर और कुछ दिन मिर्जा मसऊद को सलतनत दी और फिर प्रथम को अंधा कर तथा दूसरे को मारकर वह सन् ९०५ हि० में बदख्शाँ की गद्दी पर बैठा। सन् ९१० हि० मे जब बाबर ने मावरुन्नहर में चगत्ता तथा उजबक सुल्तानो से अनेक भारी युद्ध कर देख लिया कि समय के अनुकूल न होने से कोई काम नही होता तब निजी देश से मन हटाकर थोड़े आदमियो के साथ बदख्शाँ की ओर चल दिया। खुसरो शाह के आदमी लोग स्वामिद्रोह कर बाबर के यहाँ चले आए तब वह भी निरुपाय हो सेवा मे आया। इसने बाबर के दोनो चचेरे भाइयों के साथ जो व्यवहार किया था उसे ध्यान रखते उसने इसे थोड़े सामान के साथ खुरासान जाने की छुट्टी दे दी और बदख्शाँ लेकर काबुल आया।[1]

जब सन् ९१२ हि० मे शाह बेग अर्गून से युद्ध कर बाबर ने कंधार ले लिया तब सुलतान मुहम्मद मिर्जा के पुत्र खान मिर्जा को बदख्शाँ भेजा, जो मिर्जा सुलेमान का पिता था। उसने बहुत प्रयत्न कर उस प्रांत मे शांति स्थापित की। सन् ९१७ हि० में वह मर गया। बाबर ने शाहजादा हुमायूँ को बदख्शाँ दिया और उसके सेवकगण बहुत समय तक यह काम करते रहे। हिन्दुस्तान के विजय तथा राणा साँगा के युद्ध के बाद १ रज्जब सन् ९३३ हि० को शाहजादा काबुल व बदख्शाँ के प्रबंध के लिए वहाँ भेजा गया। एक वर्ष बदख्शाँ में रहने पर उसे एक बारगी पिता से मिलने का ऐसा शौक उठा कि एकाएक वह बुद्धिमानी छोड़कर तथा सुलतान उवैस को वहाँ का प्रबंध सौंपकर हिंदुस्तान की ओर चल दिया, जिसका दामाद मिर्जा सुलेमान वहाँ का सब प्रबंध करता था। दैवयोग से इनकी अनुपस्थिति मे काशगर के एक खाँ सुलतान सईद खाँ सुल्तान उवैस तथा अन्य सर्दारो के बुलाने पर बदख्शाँ आया। मिर्जा हिंदाल ने उससे पहले पहुँचकर दुर्ग जफर को दृढ कर लिया। तीन महीने का घेरा कर असफल हो सईद खाँ काशगर लौट गया परतु हिंदुस्तान मे यह प्रसिद्ध हुआ कि काशगरियो ने बदख्शाँ पर अधिकार कर लिया। बाबर ने हुमायूँ को वहाँ जाने को कष्ट उठाने के लिए कहा पर उसने प्रार्थना की कि मैं आपका दास हूँ किंतु नैरश्य मे रहकर कोई सेवाकार्य

1. देखिए 'मेमोयर्स आव बाबर' लीडन असंकीन कृत भा० १ पृ० २१०-१।

करना ठीक नहीं है इसलिए आज्ञा मानने का कोई उपाय नही है। इस कारण बाबर ने मिर्जा सुलेमान को बदख्शाँ विदाकर सुल्तान सईद खाँ को लिख भेजा कि कुछ हकों के रहते भी यह काय अजब नही है। अब मिर्जा हिंदाल को बुला लेता हूँ और मिर्जा सुलेमान को भेजता हूँ। यदि हकों को मानते हो तो बदख्शाँ उसे सौंप दो, जो पुत्र सा संबंध रखता है, और नही तो अपना उत्तरदायित्व छोड़कर उस मीरास को वारिस को सौंप देता हूँ। दूसरे उन्हें जानें। मिर्जा सुलेमान के काबुल पहुँचने के पहले ही बदख्शाँ उपद्रवियों के कष्ट से छूटकर शांति का गृह हो चुका था। मिर्जा उस कुल प्रांत पर अपना अधिकार कर दृढ़ता से काम चलाने लगा। हिंदुस्तान मे शेरखाँ के प्रभुत्व के बाद जब मिर्जा कामराँ ने काबुल मे खुतबा व सिक्का अपने नाम कर लिया तब उसने मिर्जा को संदेश भेजा कि बदख्शाँ मे भी उसके नाम खुतबा व सिक्का हो। मिर्जा के स्वीकार न करने पर वह सेना चढ़ा ले गया। इसके पहुँचने पर सुलेमान ने अपनी निर्बलता देखकर संधि कर ली और खुतबा व सिक्का उनके नाम कर दिया। मिर्जा कामराँ कुछ महाल बदख्शाँ से अलग कर तथा अपने आदमियों को सौंप कर लौट आया। मिर्जा ने प्रतिज्ञा तोड़कर उन महालो पर पुन. अधिकार कर लिया। इस पर मिर्जा कामराँ ने फिर चढ़ाई की और अंदर आब की सीमा पर युद्ध हुआ। मिर्जा सुलेमान परास्त होकर दुर्ग जफर में जा बैठा, परंतु घेरे के तूल खींचने और अपने सैनिकों के द्रोह से दुखित होकर लाचारी से वह बाहर चला आया तथा कामराँ से मिला। तब मिर्जा को उसके पुत्र मिर्जा इब्राहीम के साथ कैदकर काबुल लिवा लाया। यह घटना शुक्रवार १७ जमादिउस्सानी को घटी थी।

जब २५ जमादिउल् आखिर सन् ९४२ हि० को हुमायूँ बादशाह ने एराक से लौटकर दुर्ग कंधार को मिर्जा अस्करी से मिर्जा कामराँ मिर्जा सुलेमान को छोड़ने का विचार करने लगा कि स्यात् वह समय पर काम आवे। इसी समय मिर्जा के हितैषियों ने एकत्र होकर दुर्ग जफर ले लिया और मिर्जा कामराँ के सैनिकों को कैदकर संदेश भेजा कि यदि मिर्जा सुलेमान को छोड़ दो तो यह देश उसे दे देंगे और नही तो तुम्हारे सैनिकों को मारकर मुल्क उजबकों को सौंप देंगे। उक्त दोनो विचारों से मिर्जा कामराँ ने मिर्जा तथा उसके पुत्र मिर्जा इब्राहीम को सांत्वना देकर बदख्शाँ विदा कर दिया। अभी यात्रा पूरी नहीं हुई थी कि इस विदाई से शंकित होकामराँ ने आदमी बुलाने को भेजा। मिर्जा उज्र लिखकर फुर्ती से बदख्शाँ को चल दिया। जब हुमायूँ ने बिना युद्ध ही के मिर्जा कामराँ से काबुल ले लिया तब मिर्जा सुलेमान ने शत्रुता कर खुतबा अपने नाम पढ़वाया। हुमायूँ सन् ९५३ हि० में बदख्शाँ प्रांत की ओर रवानः हुआ और मिर्जा सामना न कर सकने पर भाग गया। वह प्रांत बिना युद्ध बादशाही अधिकार

में चला आया और दुर्ग जफर मे हुमायूं ठहरा। इधर मिर्जा कामराँ, जो सिंध में ठहरा हुआ था, काबुल को खाली देखकर फुर्ती से आ पहुँचा और उस पर अधिकृत हो गया। निरुपाय हो हुमायूं ने मिर्जा सुलेमान को बुलाकर फिर से वह प्रांत उसे सौंप दिया। इसके अनंतर हुमायूं हिंदुस्तान की इच्छा से जब सिंधु नदी पार उतरा तब मिर्जा ने पास के कुछ महालों पर अधिकार कर लिया। उस बादशाह की मृत्यु पर मिर्जा इब्राहीम व अपनी स्त्री खुर्रम बेगम के साथ, जो प्रबंधक होने के कारण वली नेअमत कहलाती थी, मिर्जा ने काबुल आकर उसे घेर लिया। परंतु जब मुनइम खाँ ने दुर्ग व नगर की रक्षा की वास्तव मे तैयारी की तब यह दुखी होकर संधि कर लौट गया। सन् ९६७ हि॰ मे यह सेना एकत्र कर बल्ख की ओर चला। इसके दूरदर्शी हितैषियों ने कहा कि ऐसी सेना के साथ पीर मुहम्मद खाँ का सामना करना दूर है, जिसके साथ कुछ सुलतानो के वंशज हैं और उजबकों की संख्या बहुत है। युद्धकला विशारदों ने कहा है कि जब छोटी सेना बड़ी सेना से सामना करती है तब उसमे सर्दार बहुत होते हैं पर यहाँ दो से अधिक नहीं हैं—एक तुम और दूसरा मिर्जा इब्राहीम। इन बातो को न सुनकर इसने युद्ध निश्चय किया पर जब देखा कि काम नही चलता तब बदख्शाँ को लौटा। मिर्जा इब्राहीम से, जो युद्ध कर रहा था, कहा गया कि यह क्या प्रयत्न का समय है, तुम्हारे पिता निकलकर चले गए। उसने कहा कि निकलना कठिन है, इसी जगह युद्ध करेंगे चाहे जो हो। मुहम्मद कुली खाँ शिगाली ने कड़ाई से कहा कि सिपाहियों का निश्चय होता है कि जब वह शत्रु से एक कमान भी दूर हो जाता है तब दूसरा अवसर हाथ आना कठिन हो जाता है निरुपाय हो मिर्जा बड़ी कठिनाई से निकलकर थोड़े पैदलों के साथ कुछ लडते भिड़ते हुए मौजा पहुँचा। वहाँ के आदमियों ने इसे पहिचानकर पकड़ लिया और पीर मुहम्मद खाँ के पास ले गए। उसने कुछ दिन कैद रखकर मार डाला। मिर्जा सुलेमान ने तारीख निकाला कि 'को नख्ले उम्मीदे पिदर'[1]। इस घटना के पहले मिर्जा इब्राहीम ने एक कसीदा कहा था, जिसका मतलब इस प्रकार है—शेर का अर्थ[2]

हृदय पर लाल: पुष्प के चिह्न के समान हसरत की धूलि में जाता हूँ।
प्रलय से बाहर हृदय पर फूल के सिर के चिह्न सहित आता हूँ ॥
किसी एक विद्वान ने यह रुबाई कहा है—रुबाई का अर्थ—
ऐ बदख्शाँ के लाल, बदख्शाँ से गया तू।
प्रकाशमान सूर्य के साए से गया तू ॥
संसार मे जिस प्रकार सुलेमान अंतिम था।
शोक कि सुलेमान के हाथ से तू गया ॥

---

१. अबजद की गणना से इससे ९६७ हि॰ निकलता है।
२. पहला शेर।

जब ८ वें अकबरी वर्ष में मिर्जा मुहम्मद हकीम का गुप्त प्रार्थनापत्र मिर्जा सुलेमान को मिला, जिसकी माँ कुचक्र शाह अबुल् मआली द्वारा मारी जा चुकी थी, तब यह अपनी स्त्री के साथ काबुल आया और अबुल् मआली को बदले में फाँसी दे दी तथा अपनी पुत्री को मिर्जा मुहम्मद हकीम को निकाह में देकर काबुल प्रांत का दो भाग अपने आदमियों में बाँट दिया। इसके अनन्तर बदख्शाँ के एक बड़े सर्दार उम्मीद अली खाँ को मिर्जा मुहम्मद हकीम का वकील नियत कर यह बदख्शाँ लौट गया। जब मिर्जा मुहम्मद हकीम बदख्शियों के अधिकार से क्षुब्ध हो गया तब उन सबको काबुल से निकाल कर देश अपने आदमियों को सौंप दिया। मिर्जा सुलेमान इस पर सन् ९७१ हि० में काबुल को रवाना हुआ। मिर्जा मुहम्मद हकीम यह समाचार पाते ही नगर को बाकी काकशाल तथा मासूम कोका को सौंपकर बाहर निकला और सिंध नदी पारकर उसने अकबर से सहायता माँगी। मिर्जा सुलेमान ने मुहम्मद हकीम के बाहर जाने का समाचार पाकर फुर्ती से पीछा किया और यह जानकर कि हकीम निकल गया वह लौटकर जलालाबाद पर अधिकार करता हुआ काबुल घेरने आया। इसने सुना कि मिर्जा मुहम्मद हकीम पंजाब के सर्दारों मीर मुहम्मद खाँ अतगा खेलवालों के साथ, जिन्हें अकबर ने सहायता के लिए नियत किया था, पास आ पहुँचा तब यह बदख्शाँ लौट गया। सन् ९७३ हि० में मिर्जा सुलेमान पुनः काबुल को अकबरी सर्दारों से खाली पाकर खुर्रम बेगम के साथ इस ओर आया। मिर्जा हकीम नगर को दृढ़कर गोरबंद चला आया। मिर्जा सुलेमान ने कुछ उपाय किया और फलतः शिकारजाल में फँसने ही को था कि मिर्जा मुहम्मद हकीम सूचना पाकर हिंदुस्तान चल दिया। निरुपाय हो सुलेमान ने काबुल घेर लिया पर कोई प्रयत्न लाभदायक नहीं हुआ तब कुछ कर पर संतोष कर बदख्शाँ लौट गया।

इसके अनंतर ऐसी घटनाएँ हुईं जिनके कारण मिर्जा अपने राज्य का प्रबंध ठीक न कर सकने से स्वयं आराम से कालयापन न कर सका। विवरण इस प्रकार है कि मिर्जा की स्त्री खुर्रम बेगम सुल्तान वैस कोलाबी की पुत्री थी, जो किबचाक जाति का था और इसने राज्य तथा सेना के प्रबंध में इतनी योग्यता दिखलाई और दृढ़ता प्राप्त कर ली कि मिर्जा को कुल प्रबंध उसी को सौंप देना पड़ा क्योंकि वह स्वयं अपने को उसके शासन से नहीं बचा सकता था। बदख्शियों ने अदूरदर्शिता से इसका संबंध दोस्तदार के भाई हैदर अली से लांछन लगाकर कहना शुरू किया। मिर्जा इब्राहीम ने यौवन की उन्मत्तता से इन झूठे कलंकारियों के फेर में पड़कर उसे मार डाला। बेगम ने बदख्शाँ के सरदारों की जड़ खोदने का साहस किया। जब मिर्जा इब्राहीम मारा गया तब बदख्शाँ के कुल सैनिकों ने इसका हृदय फिर गया इसीसे इसने साधारण लोगों से भी शत्रुता कर लिया। शाह मुहम्मद काशगरी की

पुत्री मुहतरिम खानम, जो मिर्जा कामराँ को व्याही थी और काशगर जाने के विचार से काबुल से बदख्शाँ पहुँची तब मिर्जा सुलेमान ने उसे पाने की इच्छा प्रकट की। बेगम ने फुर्ती कर अपने पुत्र मिर्जा इब्राहीम के विवाह का प्रस्ताव भेज दिया और कोई उपाय न छोड़ा कि वह उसकी सौत हो सके। इस कारण मुहतरिम खानम हृदय में द्वेष रखकर बराबर इससे शत्रुता मानती रही। इसी समय मिर्जा इब्राहीम के मारे जाने पर वह इसे बराबर ताने पर ताने देती। सबका विचार है कि वह कुव्यवहार से क्षुब्ध होकर काशगर चली गई और मिर्जा शाहरुख[1] को अपने पास रखकर पालन करने लगी। खानम पुत्र की जुदाई असह्य समझकर कठोर तानों को अनसुनी समझती, यहाँ तक कि मिर्जा शाहरुख युवा होने पर माँ के साथ तथा बदख्शियों के बहकाने से, जो पहले ही से उपद्रव तथा द्रोह के विचार रखते थे, अपने दादा तथा दादी से बिगड़ गया और कभी संधि से तथा कभी शत्रुता से व्यतीत करता रहा। इसी समय बेगम की मृत्यु हो गई। मिर्जा शाहरुख ने पिता के महालों पर अधिकार कर लिया और बहुत से सैनिक मिर्जा से अलग होकर इसके पास चले आए। अन्त में लाचार हो मिर्जा खानम तथा शाहरुख से संधि कर वचनबद्ध हो गया। इसके अनंतर हज्ज जाने के बहाने विदा हुआ। मन में इच्छा थी कि काबुल या हिंदुस्तान से सहायता लाकर बदला लें। जब यह काबुल पहुँचा तब मिर्जा मुहम्मद हकीम उसके विश्वास के विरुद्ध पेश आया। यहाँ तक कि उचित रक्षक तक न दिए कि भयानक यात्रा कुशल से पूरी कर सके। ईश्वर पर भरोसा कर वह हिंदुस्तान चला। २०वें वर्ष सन् ९८३ हि० में यह सिंधु नदी के पार उतरा। अकबर ने पंजाब के सर्दारों को लिखा कि इसके स्वागत की रस्म पूरी करते हुए खानपान आदि का पूरा प्रबंध रखें। राजा भगवंतदास रक्षक होकर इसे दरबार लिवा लावे। ख्वाजा आका खाँ के हाथ पचास सहस्र रुपया नगद तथा सामान, जो ऐसे अतिथि के लिए उपयुक्त था, भेजा। मिर्जा बदख्शाँ के कई वर्ष की आय को एक बार ही देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ।

जब राजधानी के पास पहुँचा तब बड़े बड़े सर्दारगण तथा साम्राज्य के अमीर झुण्ड के झुण्ड उससे मिले। जब राजधानी से तीन कोस पर आकर ठहरा तब अकबर उदार हृदय से उसके स्वागत को सवार हो उससे जाकर मिला। राजमहल से पड़ाव तक विशाल हाथियों को सोने चांदी के सामान तथा सुनहले फूलों से सजाकर दोनों ओर खड़ा किया गया। दो हाथियों के बीच एक एक चीता रत्नों, सुंदर जाल और कारचोबी बानात के चंदवे सहित तथा सुनहले साज सहित

---

१. इसी ग्रंथ में इसका वृत्तांत इसके पहले दिया गया है।

बैल सजाए गए थे, जिन्हे देखनेवाले आश्चर्यचकित हो रहे थे। बादशाह घोड़े से उतरकर उससे गले मिले। जलसे जमाए गए और आतिथ्य तथा संमान में कोई बात उठा न रखी गई। पंजाब के सूबेदार खानजहाँ को आज्ञा भेजी गई कि मिर्जा के साथ बदख्शाँ की चढ़ाई पर जाय। दैवयोग से इसी समय बंगाल के सूबेदार मुनइमखाँ खानखानाँ की मृत्यु हो गई। मिर्जा से उस प्रांत के शासन की बात हुई पर देश-प्रेम के कारण इस विशाल प्रात को इसने नही स्वीकार किया तब खानजहाँ बंगाल का सूबेदार नियत हुआ। मिर्जा ने जाना कि सहायता मे देर है इसलिए हज्ज की यात्रा के लिए विदा हुआ कि स्यात् उस मार्ग से बदख्शाँ पहुँचकर काम फुर्ती से पूरा करे। उस पवित्र स्थान से यह एराक अजमशाह इस्माइल द्वितीय के पास पहुँचा। उसने सम्मान कर सहायता दी। वह हिरात तक पहुँचा था कि शाह मर गया। अन्त में यह निराश होकर कंधार आया और मुज़फ्फर हुसेन मिर्जा से संबंध बनाया पर जब कार्य नही हुआ तब मिर्जा मुहम्मद हकीम के पास काबुल पहुँचा। चाहता था कि पंजाब जाकर वहाँ उपद्रव करे। पर मिर्जा ने उसे इस विचार से दूर रखा और साथ साथ बदख्शाँ की ओर गया। मिर्जा शाहरुख ने युद्ध की तैयारी की तथा थोड़े युद्ध के बाद कुछ बदख्शी लोग द्रोह कर मिर्जा के पास पहुँचे। मिर्जा शाहरुख दूसरो से भी शंकित होकर कोलाब चला गया। अंत में संधि हुई कि तालिकान से हिंदूकोह तक, जो मिर्जा ईब्राहीम के अधीन था, मिर्जा सुलेमान अधिकृत रहे। कुछ समय मेल तथा मित्रता मे बीता और कुछ समय उपद्रवियो के कारण मनोमालिन्य में। जब तक मिर्जा शाहरुख की माँ जीवित थी तब तक झगडे शीघ्र मिट जाते थे। खानम की मृत्यु पर मिर्जा शाहरुख स्वार्थ देखने लगा। मिर्जा सुलेमान तूरान के शासक अब्दुल्ला खाँ उजबक के पास गया कि उसकी सहायता से सफल हो। वह ताशकंद की चढाई पर गया था इस लिये उसके पिता इसकंदर खाँ से मिर्जा का सत्संग रहा। परंतु इसके अनंतर जब ज्ञात हुआ कि अब्दुला खाँ विद्रोह करने पर उतारू है, तब फुर्ती से चला आया। जब बदख्शाँ के पास पहुँचा तब मिर्जा शाहरुख ने नम्रता से व्यवहार कर चाहा कि राज्य दोनो में विभाजित कर लिया जाय। मिर्जा ने कशम पर ही संतोष कर लिया। अब्दुल्ला खाँ ने मिर्जाओ के मनोमालिन्य को देखकर सन् ९९२ हि० मे बदख्शाँ पर चढ़ाई की। मिर्जाओ ने बिना युद्ध ही राज्य देकर रास्ता लिया। मिर्जा शाहरुख हिंदुस्तान चला आया। मिर्जा सुलेमान ने पहले के अपने कार्य से लज्जित होकर हिंदुस्तान जाना स्वीकार नही किया। मिर्जा मुहम्मद हकीम ने लमगानात मे कुछ ग्राम व्यय के लिये नियत कर वहाँ विदाकर दिया। कुछ दिन बाद इसने सेना साथ कर बदख्शाँ भेजा पर फिर परास्त हो यह लौट आया। जब मिर्जा मुहम्मद हकीम मर गया तब

निरुपाय हो हिंदुस्तान आया। काबुल के प्रांताध्यक्ष कुँअर मानसिंह ने स्वागत कर इसे पेशावर तक पहुँचा दिया। ३१ वें वर्ष के अंत मे यह आगरे पहुँचा। शाहजादा सुलतान मुराद स्वागत कर अकबर की सेवा में लिवा लाया। पाँच हजारी मंसब पाकर यह संमान तथा संतोष से कालयापन करने लगा। सन् ९९७ हि० में जब बादशाह कश्मीर की सैर को गए तब मिर्जा को अवस्था के अधिक्य के कारण जो सतहत्तर वर्ष का था तथा जिसके जन्म की तारीख 'बख्शी' थी, लाहौर मे छोड़ दिया गया। उसी समय इसकी मृत्यु हो गई। वीरता तथा युद्धकला मे एक था।

•

६९२. सैफ खाँ

यह शाहजहाँ के बख्शी तरबियत खाँ का पुत्र था और इसका नाम सैफुद्दीन महमूद प्रसिद्ध नाम फकीरुल्ला था। यह बराबर बादशाह की सेवा में रहा और सदा सामने रहने से योग्य कृपा का पात्र बना रहा। ३० वें वर्ष में यह कोरखाना का दारोगा हुआ और उसे सात सदी १०० सवार का मंसब मिला। जब महाराज जसवंत सिंह बड़े समारोह से मालवा में नियत हुआ तब यह भी उचित मंसब पाकर तरक्की के साथ उस सेवा में नियुक्त किया गया। जब राजा जसवंत सिंह ने साहस तथा घमंड से औरंगजेब के मार्ग का साधक बनकर युद्ध किया और अंत मे अपने कुछ प्रसिद्ध सर्दारों को कटाकर भाग गया तब बहुतेरे भाग खड़े हुए। बहुत से लोग अपने भाग्य से विरोधी पक्ष से अलग होकर औरंगजेब की सेवा में चले आए। सैफ खाँ भी इन्हीं में से एक था। इसे बादशाही कृपा से डेढ़ हजारी ७०० सवार का मंसब और सैफ खाँ की पदवी मिली तथा दारा शिकोह के युद्ध मे यह वीरता दिखलाकर कृपापात्र हुआ। इसे जिलौ के दारोगा तथा आख्तः बेगी का पद मिला। शुजाअ के युद्ध में जब राजा जसवंत सिंह, जो औरंगजेब की सेना के बाएँ भाग की सेना का सर्दार था, विद्रोह कर भाग गया और इसलाम खाँ बदख्शी, जो उस भाग का हरावल था, उसके स्थान पर नियत हुआ तब सैफखाँ इकराम खाँ के साथ उसका हरावल बनाया गया। दैवात् ठीक युद्ध के बीच मे इस्लाम खाँ की सवारी का हाथी बान लगने से बिगड़ गया और सेना के व्यूह को उसने बिगाड़ दिया। बहुत से आदमी दृढ न रहकर इधर-उधर हो गए। सैफ खाँ इकराम खाँ के साथ कुछ सेना सहित डटकर वीरतापूर्ण प्रयत्न करता रहा। इस विजय के अनंतर प्रयत्न के अनुसार तथा आज्ञा के अनुकूल

पुरस्कार न पाकर या किसी अन्य कारण से इसने एकांतवास करने का विचार किया। इसके मंसब तथा पद छिन जाने की बातचीत हुई पर कुछ दिन बाद ढाई हजारी मंसब पाकर यह कृपापात्र हुआ।

जब २ रे वर्ष दाराशिकोह अपने पुत्र सिपहरशिकोह के साथ राजधानी दिल्ली पहुँचा तब २१ जीहिज्जा सन् १०६९ हि० (सन् १६५९ ई०) को सैफ खाँ के प्रबंध मे वह मारा गया और दूसरे दिन आज्ञानुसार सिपहरशिकोह को ग्वालियर दुर्ग ले जाकर वहाँ के रक्षको को सौप दिया। यह स्वयं वहाँ से आगरा लौट गया। बादशाही फर्मान के अनुसार मुखलिस खाँ के स्थान पर, जो बंगाल में नियत हुआ था यह आगरा का सूबेदार नियुक्त हुआ। अपने तीव्र स्वभाव, उच्च वंश के ध्यान से बेपरवाही तथा सेनापतित्व की अभिज्ञता मे यह अच्छे सरदारो की शान का विचार न कर के बादशाह की मर्जी के विरुद्ध होने की आशंका नही करता था। किसी दोष के कारण नौकरी से हटाए जाने पर सरहिंद कस्बा में यह दिन व्यतीत करने लगा। ५वें वर्ष मे फिर से कृपापात्र होने पर इसका मन्सब बहाल हो गया। जब छठे वर्ष बादशाह के जाने से रम्यस्थल कश्मीर अधिक सुशोभित हुआ तब सैफ खाँ इस्लाम खाँ के स्थान पर वहाँ का अध्यक्ष नियत हुआ। अपनी कर्मशीलता प्रकट करने तथा सेवा करने के विचार से अपने शासनकाल में समय व्यर्थ तथा बेकारी मे न गँवाकर इसने चढ़ाइयो के अवसर निकाल लिए और साहस तथा वीरता से तर्दू प्रांत को, जो मार्ग की कठिनाई से बिना सीढ़ी के पार नही किया जा सकता, बीस दिन तक युद्ध करते हुए जाकर अधिकृत कर लिया। इसके अनंतर गुलगत तथा बर्पाल प्रांतो पर भी इसने अधिकार कर लिया। इसके बाद इस्लाम के प्रचार तथा मुसलमानी प्रकाश को बड़े तिब्बत मे फैलाने के लिए इसने उपाय किया, जो बहुत प्राचीन काल से कुफ्र के अंधकार से आच्छादित था और जहाँ के शासक कभी किसी मुसलमान शाह के अधीन नही हुए थे। ८वें वर्ष में बादशाही फर्मान वहाँ के जमींदार दलदल बेकहल के नाम पहुँचा, जिसमे ईश्वरीय स्वत्व के पूजन के प्रचार का विवरण था। सैफ खाँ ने अपने साथी मंसबदार मुहम्मद शफीअ को कुछ नौकरो के साथ फर्मान लेकर भेजा। उक्त जमींदार ने अधीनता स्वीकार कर लिया तथा खुतबा बादशाह के नाम पढ़वाया और बहुत सा चाँदी और सोने को सिक्का आलमगीरी बनवाया। उसने मस्जिद बनवाने का संकेत भी किया तथा भेंट और सोने की ताली भी, जिससे तात्पर्य उस प्रांत के सौंपने का था, भेजा।

सैफ खाँ के विचार ठीक उतर गए थे इस लिये दरबार से उसका मन्सब तथा सवार बढ़ाए गए। ९वें वर्ष मे दरबार पहुँचने पर यह मुलतान का नाजिम नियत हुआ। १०वें वर्ष मे वहाँ से हटाए जाने पर यह सेवा मे उपस्थित हुआ। १२वें वर्ष

में पुनः कश्मीर की सूबेदारी इसे मिली। १४वें वर्ष में अपनी प्रकृति के अनुसार अनुचित कार्य करने पर इसका मन्सब छिन गया और यह एकांतवास करने लगा। १५ वर्ष में इसे पुन: कार्य मिल गया और मन्सब भी बहाल हो गया। इसे भाग्य की सहायता से नौकरी विचित्र चाल से ठीक बैठ जाती थी कि यद्यपि आलमगीर बादशाह की मर्जी के विरुद्ध काम करने से इसका मन्सब छिन जाता था तथा इसे दंडित होना पड़ता था पर यह उसी हालत में छोड़ नहीं दिया जाता था। आलमगीरी स्वाभिमान के कारण घमंडियों को पसंद नहीं करता था, चाहे वे पुराने या नए सर्दार हों और वे थोड़ी ही स्वच्छंदता तथा स्वार्थ के लिए पद से गिरकर दरबार के बाहर चले जाते थे। इसे भी औरंगजेब की इच्छा के विरुद्ध कार्य करने से मन्सब छिन जाने पर दण्डित होना पड़ा। आश्चर्य नहीं कि उक्त खाँ यदि इस प्रकार उच्छृंखल चाल न (रखता) तो सर्दारी के उच्चतम पद पर पहुँच जाता।

संक्षेप में कुछ दिनों के बाद पुनः शाही कृपा का पात्र होकर फिर एकांतवासी हो गया। २१वें वर्ष में बिहार की सूबेदारी पाकर यह सम्मानित हुआ और उसके इलाहाबाद का सूबेदार हुआ। यहीं सन् १०९५ हि० में मर गया। यह मस्त-पन्थी तथा स्वच्छन्द प्रकृति का था और योग्यता तथा काव्यमर्मज्ञता भी इसमें अच्छी थी। नासिर अली उस सब स्वतन्त्रता तथा बेपरवाही पर भी बहुत दिनों तक इसके साथ रहकर प्रसन्न था। कहता है—

शैर का उर्दू का रूपांतर—

गुफ्तगूए तूती उठती आइनः से है अली।
गर न होवे सैफ खाँ हमको नहीं दरकार नफ्स ॥

सैफ खाँ राग तथा गायन में भी कुशल था। इसने एक पुस्तक रागों पर लिखी है, जो अधिकतर मानिक मोहल का अनुवाद है, जिसे प्राचीन नायकों ने लिखा है, और उसमें अन्य नियम आदि के लाभ भी दिए हैं। इसने सरहिंद के पास सैफाबाद बस्ती बसाकर अपना निवासस्थान बनाया था जहाँ उसका मकबरा है। इसका पुत्र भी औरंगजेब के राज्यकाल के अन्त में पिता की पदवी के साथ तलकोण की फौजदारी, आजम नगर मलगाँव की दुर्गाध्यक्षता तथा सातगाँव की थानेदारी पर नियत था। जब उक्त सब कार्य बीजापुर की सूबेदारी के साथ चीन कुलीज खाँ बहादुर को मिली तब यह उक्त प्रांत में नायब नियत किया गया। ४९वें वर्ष में चीन कुलीज खाँ के स्थान पर मन्सब में डेढ़ हजारी ३०० सवार बढ़ाकर उसी पद पर यह नियुक्त किया गया। औरंगजेब की मृत्यु के अनंतर शाहजादे मुहम्मद कामबख्श के साथ रहा और अपनी बाण विद्या की उस्तादी के कारण मित्र होने पर इसे डंका व झंडा मिला। जब वह शाहजादा पागलों की चाल पर मूर्खता तथा अनभिज्ञता से स्वार्थी चुगलखोरों के बहकाने से कुछ स्वामिभक्त सर्दारों से,

विशेषकर अहसन खाँ मीर मलंग से, जो सेनापति तथा प्रभावशाली सरदार था, बिगड गया और हर एक को कष्ट व दुख में डाल दिया तब सैफ खाँ भी उसी कारण कैद कर दिया गया। इसके एक पत्र पर, जिसे हैदराबाद आने के समय वहाँ के नाजिम रुस्तमदिल खाँ को इसने लिखा था कि जो कुछ चाल व्यवहार बादशाह के अनुयायियो के साथ होना चाहिए वही अहसन खाँ की भी मर्जी है, शाहजादा ने अपने सामने इसके हाथ काटने की आज्ञा दी। इस बेचारे ने बहुत कुछ प्रार्थना की कि इस पत्र का मजमून हुजूर की भक्ति में ही है पर कोई लाभ नहीं हुआ। हाथ काटे जाने पर वह अत्याचार पीडित निडर हो कहने लगा कि ए अत्याचारी माँ की ओर से कमअसल है तू। जिस हाथ को बिना दोष के तूने काटा है उसी से तुझे बाणविद्या मैंने सिखलाया है। उस कठोर ने तुरत कहा कि इसकी जबान भी काट लो। उन घावो से यह मर गया।

●

६९३. सैफ खाँ कोका

यह जैन खाँ कोका का बडा भाई था। कहते हैं कि इसकी माता को सदा लडकी ही होती थी और इसका पिता इस बात से अत्यंत दुखी था। इस बार, जब कि काबुल मे सैफ खाँ का जन्म हुआ, इसके पिता ने क्रोध मे कहा था कि यदि इस बार भी पुत्री हुई तो गृहस्थी तथा समागम का अन्त है। उस स्त्री ने मरियम मकानी से जाकर यह बात कही और गर्भपात के लिए छुट्टी ली। अकबर ने यह जानकर छोटी अवस्था होते भी कहा कि यदि मेरी इच्छा से चलना चाहो तो ऐसा मत करो। खुदा इस बार तुम्हें पुत्र ही देगा। उस प्रौढा ने शाहजादे की इस बात को भविष्यवाणी समझकर गर्भपात के विचार को त्याग दिया। दैवयोग से सैफ खाँ पैदा हुआ और उसके माता-पिता पुत्र होने से अत्यंत प्रसन्न हुए और शाहजादे को दुआ देने लगे। अकबर उन पर विशेष कृपा करने लगा। गद्दी पर बैठने पर यौवनारंभ ही मे इसे चार हजारी मन्सब तक पहुँचा दिया। उदारता तथा दानशीलता मे अद्वितीय और वीरता तथा साहस मे एक ही था। १७वें वर्ष में सूरत के घेरे के समय एक दिन जब ऊपर से तीर गोली और गोले बरस रहे थे और नीचे मोर्चों से धावे हो रहे थे तब सैफ खाँ ने भी आक्रमण मे अच्छी वीरता तथा बहादुरी दिखलाई। उसी मारकाट मे इसे एक गोली लगी जिससे यह एक महीने तक शैय्या पर पडा रहा पर फिर अच्छा हो गया। एक आदमी ने इससे पूछा कि बादशाह तुमसे प्रसन्न हैं और तुम्हारे समान आदमी भी बहुत नहीं हैं जो

तुम्हारे ऐसे पद को पहुँचे हो तब तुम क्यों जान बूझकर ऐसी घातक घटना में अपने को डालते हो। इसने उत्तर दिया कि सरनाल युद्ध मे हम मार्ग भूल गए और उस युद्ध मे न पहुँच सके। लज्जा से आज तक उस दिन से जिंदगी दूभर है और मैं हलका होना चाहता हूँ। सन् ९८० हि० मे १२वें वर्ष मे जब अकबर ने नौ दिन में धावा करते हुए अहमदाबाद पहुँचकर मुहम्मद हुसेन मिर्जा से युद्ध किया, तब सैफ खाँ ने रुस्तम के समान धावा कर अपने शत्रु को परास्त कर दिया। मुख पर दो चोट खाने पर 'अजमेरी अजमेरी' कहता हुआ बादशाह को ढूंढने लगा। देखा कि मुहम्मद हुसेन मिर्जा कुछ उपद्रवियों के साथ मैदान में डटा हुआ है तब कोका उस पर आक्रमण कर बहादुरी दिखलाता हुआ मारा गया। बादशाह ने ऐसे दृढ़चित्त स्वामिभक्त के मारे जाने पर बहुत शोक मनाया। दिल्ली लौटने पर जब ज्ञात हुआ कि कोका के जिम्मे बहुत सा रुपया बाकी निकलता है तब बादशाह ने बड़ी कृपाकर उस बाकी धन को क्षमा कर दिया। इसके पुत्र शेर अफगन तथा अमानुल्ला को योग्य मनसब देकर संमानित किया।

•

६९४. सैफ खाँ मिर्जा सफी

यह अमानत खाँ पुत्र था। यमीनुद्दौला आसफ खाँ की बड़ी पुत्री मलका बानू इससे ब्याही थी, इसलिये उस संबंध के कारण यह गुजरात प्रांत का दीवान नियत हुआ। जब वह प्रांत युवराज शाहजादा शाहजहाँ को जागीर मे मिला तब उसकी ओर से राजा विक्रमाजीत वहाँ का शासन करने के लिए रहने लगा। जब जहाँगीर शाहजादे से बिगड गया और शाहजादा भी समयानुकूल समझकर उचित योग्य सेना के साथ आगरे तथा दिल्ली की ओर रवानः हुआ तब राजा भी शाहजहाँ के आदेशानुसार अपने भाई कन्हरदास को अहमदाबाद में छोडकर स्वयं शाहजादे के पास पहुँच गया। इसने दिल्ली के पास प्राण निछावर कर दिया। उस युद्ध में बादशाही सेना के हरावल को नष्ट भ्रष्ट करता हुआ अब्दुल्ला खाँ शाहजादे के पास पहुँचा था, इसलिये जब मांडू लौटने का निश्चय हुआ तब मार्ग मे अफजल खाँ और शाहकुली खाँ के द्वारा गुजरात की सूबेदारी के लिये उसने प्रार्थना की, पर वह स्वीकार नहीं हुआ। जिस राजा ने उस प्रांत का समुचित प्रबंध किया था और अपने स्वामी के कार्य मे प्राण दिए थे, उसके कार्यों का यह पुरस्कार नहीं है कि उसके भाई को, जो वहाँ का प्रबंध देख रहा है, हटा दिया जाय। विशेष कर ऐसे विप्लव के समय उस प्रांत की शांति में ऐसा करना मानों

उसके प्रबंध मे खलल डालना है। परंतु जब इस विषय मे उसने अधिक हठ किया तब उसका विचार कर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। अब्दुल्ला खाँ ने अपने ख्वाजासरा वफादार को कुछ सेना के साथ अहमदाबाद का अध्यक्ष नियत किया। मिर्जा सफी ने बादशाह की स्वामी भक्ति को सर्वोपरि समझकर सेना को ठीक करने का निश्चय किया और नगर से निकलकर महमूदाबाद की ओर रवानः हुआ। उसने प्रगट मे यही कहा कि शाहजादे की सेवा मे जा रहा हूँ पर वास्तव में नाहर खाँ, सैयद दिलेर खाँ आदि बादशाही सरदारों से, जो अपनी जागीर मे निवास कर रहे थे, मिलकर स्वामी का कार्य ठीक करने के अवसर की ताक मे बैठा। पीलाद के फौजदार महम्मद सालिह ने दूरदर्शिता से यह शंका कर कि कहीं यह शाहजहानी कोष पर हाथ न बढ़ावे, दस लाख रुपया शाहजादे के पास भेज दिया। कन्हरदास भी जड़ाऊ पर्दे को, जो दो लाख रुपए में तैयार हुआ था, साथ में लेकर रवाना हो गया पर उस तख्त को जो दस लाख रुपया लगाकर बना था, भारी होने के कारण न ले जा सका। मिर्जा सफी मैदान खाली पाकर अपने साथियों को, जिन्हें वह वचन दे चुका था, समाचार भेजकर फुर्ती से अहमदाबाद दुर्ग में जा बैठा। ख्वाजासरा ने इस घटना के हो जाने पर, जो उसके मस्तिष्क में भी नहीं आया था, भागकर शेख वजीहुद्दीन के पौत्र शेख हैदर के गृह मे शरण ली। गृहस्वामी के कह देने पर उसके हाथ और गर्दन को बाँधकर उसे सामने लाए। मिर्जा सफी नगर के प्रबंध को छोड़कर सेना एकत्र करने में लग गया और जड़ाऊ तख्त को, जो कि वर्षों में बना था, तुड़वाकर सोना सेना मे बाँट दिया और रत्न अपने लिये रख लिए।

जब यह समाचार मांडू पहुँचा तब अब्दुल्ला खाँ शाहजादे से छुट्टी लेकर फुर्ती से इस ओर रवान. हुआ और घमंड स मिर्जा सफी को कुछ न समझकर सहायता तथा युद्धीय सामान के आने का तथा सतर्कता की ओर उसने कुछ ध्यान न दिया। मिर्जा सफी ने नाहर खाँ, दिलेर खाँ आदि गुजरात के सहायक सर्दारों के साथ चनवा मौजा के आगे पहुँचकर युद्ध आरंभ कर दिया। जिस स्थान पर अब्दुल्ला खाँ स्थित था वहाँ थूहड़ के वृक्षों के समूह और तंग गलियाँ बहुत थीं। उसकी सेना के आगे के हाथीवान के शब्दों को सुनकर पीछे भागे और इसी की सेना को अस्त व्यस्त कर दिया, जिससे अब्दुल्ला खाँ दुर्भाग्य से परास्त हो गया। मिर्जा सफी, जिसने स्वप्न में भी यह विजय न देखा था, इस अच्छी सेवा के उपलक्ष मे सात सदी ३०० सवार के मंसब से तीन हजारी २००० सवार के मंसब पर पहुँच गया और इसे सैफ खाँ की पदवी, झंडा, डंका और गुजरात की प्रांताध्यक्षता मिली। जिस स्थान पर इसने विजय प्राप्त की थी, वहाँ एक बाग बनवाकर उसका फतह बाड़ी नाम रखा। कहते हैं कि जब इसके स्थान पर खानजहाँ लोदी

नियत होकर अहमदाबाद पहुँचा तब सैफ खाँ ने भोज दिया और उसकी तैयारी में, फर्श तथा भोजन में, बहुत तकल्लुफ दिखलाया। भोजनालय से भांडार तक सभी वर्तन सोने चाँदी के थे। खानजहाँ कहता था कि आसफ खाँ के बाद इसके सिवा कोई दूसरा इतना मंसनिवान नहीं है। जब महाबत खाँ के बदले खानजहाँ लोदी शाहजादा पर्वेज के साथ नियुक्त हुआ, तब पुन. मिर्जा सफी गुजरात का सूबेदार नियत हुआ। जब जहाँगीर की मृत्यु हो गई तब सैफ खाँ मिर्जा सफी अपने कर्मों के कारण सशंकित होकर भय से झूठे विचार कर रहा था, उसी समय शाहजहाँ ने जुनेर से नाहर खाँ शेरवानी को आज्ञा भेजी कि वह अहमदाबाद पर अधिकार कर सैफ खाँ को नजरबंद कर ले। इसकी स्त्री मलका बानू मुमताज महल की सगी बड़ी बहिन थी इसलिये बेगम की खातिर खिदमत परस्त खाँ को नियत किया कि अहमदाबाद जाकर ध्यान रखे कि सैफ खाँ के प्राण पर कोई संकट न आने पावे और उसे रक्षापूर्वक दरबार लिवा आवे। जिस समय शाहजहाँ नर्मदा नदी पारकर अहमदाबाद की ओर चला, उसी समय खिदमत परस्त खाँ सैफ खाँ को, जो बहुत बीमार था, सेवा में लिवा लाया। बेगम के कारण उसके दोष क्षमा कर उसे भय तथा आशंका से निवृत्त किया। राजगद्दी पर बैठने के अनंतर बेगम ही के कहने पर इसे चार हजारी ४००० सवार का मंसब देकर खाने आलम के स्थान पर बिहार का प्रांताध्यक्ष नियत कर दिया। इसने पटने मे कई बड़ी इमारतें बनवाईं। ५वें वर्ष में इलाहाबाद का और ८वें वर्ष मे गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। वहाँ से हटाए जाने पर यह आगरे का अध्यक्ष नियत किया गया। जब १२वें वर्ष में बंगाल का सूबेदार इसलाम खाँ मंत्रिपद पर नियत किए जाने के लिये दरबार बुलाया गया और उस प्रांत की अध्यक्षता शाहजादा मुहम्मद शुजाअ के वकीलो को सौंपी गई, तब सैफखाँ के नाम आज्ञापत्र गया कि वह उस प्रांत में शीघ्रता से पहुँचकर वहाँ का प्रबंध तब तक ठीक रखे जब तक शाहजादा, जो काबुल में है, वहाँ पहुँच न जावें और उसके पहुँचने पर भी उसी की सेवा में, जो अभी युवक है, रहकर उस प्रांत का हिसाब देखता रहे। १३ वें वर्ष सन् १०४९ हि० में बंगाल ही में इसकी मृत्यु हो गई। शाहजहाँ मृत की स्त्री मलका बानू के स्थान पर जाकर, जो आज्ञानुसार बादशाह के साथ थी, उसको सांत्वना दी। इसके प्रत्येक पुत्र मुहम्मद यह्या, मुहम्मद शफी और अबुल्कासिम को शोक के खिलअत देकर शोक से हटाया। १४वें वर्ष मे मलका बानू की मृत्यु हो गई। शाहजहाँ उसका शोक मनाने को यमीनुद्दौला के गृह पर गया। सैफ खाँ का भाई सुल्तान नजर था, जिसे खाकानी और अनवरी के दीवान और मसनवी तथा हदीका कंठाग्र थे। आरम्भ मे यह आगरा का बख्शी और वकाया नवीस नियत हुआ। फिर गुजरात ने भाई से दुखी होकर खानजहाँ लोदी के पास पहुँचा, जो वहाँ का सूबेदार हो गया था। उससे मित्रता कर दक्षिण मे अच्छी जागीर पाई। शाहजहाँ के समय एक हजारी मन्सब तक पहुँचा था।

६६५. सैफ खाँ सैयद अली असगर

यह सैयद महमूद खाँ बारहा का पुत्र था। यह जहाँगीर के यौवराज्यकाल से उसकी शरण में रहते हुए उसके दरबार मे बराबर उपस्थित रहा करता था। इसके अनतर उसके गद्दी पर बैठने के बाद जब १म वर्ष मे खुसरो भागकर युद्ध की तैयारी करने लगा तब शेख फरीद मुर्तजा खाँ उसका पीछा करने भेजा गया और लाहौर के पास उससे युद्ध हुआ। उस युद्ध मे फरीद खाँ के साथ हरावल मे नियुक्त होकर इसने बडी वीरता दिखलाई। इसे सत्रह घाव लगे थे और इस कारण यह दो हजारी १००० सवार का मन्सब पाकर संमानित हुआ। ४थे वर्ष में इसका मन्सब बढकर ढाई हजारी १३५० सवार का हुआ और यह हिसार दुर्ग का फौजदार नियत हुआ। ५वें वर्ष में इसे झंडा मिल गया। ८वें वर्ष में सुलतान खुर्रम के साथ यह राणा अमरसिंह पर भेजा गया। १०-वें वर्ष मे इसे डंका प्रदान किया गया। इसके उपरांत यह शाहजादा पर्वेज के साथ नियत होकर दक्षिण गया। ११वें वर्ष सन् १०२५ ई० मे मह विशूचिका से मर गया।

•

६६६. सैफुद्दौला सैयद शरीफ खाँ बहादुर शुजाअत जंग

इसका नाम मीर अब्दुर्रहीम था और यह मीर सैयद मुहम्मद कन्नौजी[1] के पुत्र सैयद शरीफ खाँ मीर अब्दुल्करीम का पुत्र था। वहाँ के सैयदों में यह रसूलदार कहा जाता था। मीर सैयद मुहम्मद ने अपने जन्मस्थान में विद्याध्ययन कर योग्यता प्राप्त की। जिस समय शाहजहाँ आगरा के दुर्ग मे अवरुद्ध था और वह आरम्भ ही से विद्वानों के साथ सत्संग रखने की रुचि रखता था इसलिए औरंगजेब से उक्त मीर के लिए प्रार्थना की। यह वहाँ आठ वर्ष के लगभग, जब तक वह वहाँ रहा, उसके साथ कालयापन करता रहा। कहते हैं कि एक दिन बादशाह इसकी बातचीत से बहुत प्रसन्न हुए और इसपर बड़ी कृपा प्रकट की। इसने प्रार्थना की कि मेरी एक इच्छा है और आशा करता हूँ कि वह स्वीकृत होगी। पूछने पर इसने कहा कि मुहम्मद औरंगजेब बहादुर को क्षमा किया जाय। बादशाह ने स्वीकार कर औरंगजेब बहादुर को क्षमा का पत्र लिखवा कर इसे दे दिया। इसके कारण औरंगजेब बराबर

---

१ इसकी जीवनी इसी ग्रंथ में कुछ ही आगे दी हुई है।

मीर का हक अपने ऊपर मानता रहा। इसके पुत्रों सैयद अमजद खाँ और सैयद शरीफ खाँ को योग्य मंसब और अच्छे पद दिए। पहले को खाँ की पदवी से संमानित कर १७वें वर्ष में आलमगीरी मे सेना के हिसाव का कार्य काजी मुहम्मद हुसेन के स्थान पर इसे दिया। क्रमशः इसे सदर कुल बना दिया। दूसरे को सैयद शरीफ खाँ की पदवी से संमानित कर ३० वे वर्ष में, जब गोलकुण्डा के घेरे में गल्ला का बहुत काम था, तब इसे सेना के गंज का करोड़ी नियत किया। सस्ती दिखलाने से इसका नाम हुआ। इसके बाद यह दक्षिण के दारो प्रांत के जजिया कर उगाहने के कार्य पर नियत हुआ, जो पहले ही से इसे मिला था पर औरंगजेब के राज्य के अंत में शुजाअत जंग के पास केवल बरार प्रांत ही का यह कार्य रह गया था। इसके अनंतर जहाँदार शाह के राज्यकाल में सेवा में पहुँचकर, जब कुछ शहरों का शासन अप्रसिद्ध लोगों को मिला हुआ था तब, इन्ही में से एक का प्रतिनिधि होकर आगरा का सूबेदार नियत हुआ। मुहम्मदशाह के राज्य के अंत में इसकी हालत अच्छी नहीं रह गई और यह आसफजाह के साथ दक्षिण चला आया। इसे बरार प्रांत में जागीर मिली और यह सवारों का बख्शी नियत हुआ। सन् ११५९ हि०, सन् १७४६ ई०, मे यह बरार प्रांत का नायब नियुक्त होकर संमानित हुआ। विद्रोहियों की दो तीन गढ़ियों को घेर कर इसने लूट लिया, जिससे उस प्रांत मे इसकी धाक खूब जम गई। आसफजाह की मृत्यु पर नासिर जंग ने इसे शुजाअतजंग की पदवी दी। मुजफ्फरजंग के समय में सैफुद्दौला की पदवी पाई। सन् ११६४ हि०, सन् १७५३ ई० में इसकी मृत्यु हो गई। यह प्रसन्नमुख और मिलनसार था। इसकी बातचीत आकर्षक होती थी। उदारता के साथ यह अपना दिन बिताता था। इसकी मजलिस में गान तथा नृत्य को स्थान नहीं था। यह साहस के लिये प्रसिद्ध था। पर बातों के समझने में अनभिज्ञ था। इसका पुत्र सदरुद्दीन मुहम्मद खाँ, जिसे पिता के बाद पैतृक पदवी मिली थी, कुछ दिन दौलताबाद का दुर्गाध्यक्ष रहा। यह सन् ११७७ हि०, सन् १७६६ ई० में मर गया। इससे सादगी टपकती थी। इसके दो पुत्र बचे हैं, जिनमें बड़े को पैतृक पदवी मिली है और दूसरे का नाम सैयद मुहम्मद है। दोनों बरार प्रांत के कोथल परगना की पैतृक जागीरदारी रखते हैं और आय की कमी से कष्ट से कालयापन करते हैं।

●

६९७. सैफुल्लाह् खाँ मीर बह्र

औरंगजेब के समय में यह मीर बह्र तथा निवाड़ के दारोगा के कार्य पर बहुत दिनों तक रहा। बादशाह के दक्षिण मे आने पर इसने खाँ की पदवी पाई। २८वें वर्ष में यह इस पद से हटाया जाकर बाद को मीर तुजुक नियत हुआ। ज्ञात होता है कि २९वें वर्ष में यह मर गया। जिस समय शाह आलम बहादुर अजमेर से महम्मद अकबर का पीछा करने भेजा गया उस समय यह दरबार से कुछ आज्ञाएँ पूरी करने के लिए शाहजादे की सेवा मे नियुक्त किया गया। जब यह लौटा तब प्रगट हुआ कि शाहजादे ने पुरस्कार के रूप मे इस पर कुछ कृपा नही की है। इस पर इसे बादशाह की ओर से पाँच सहस्त्र रुपए पुरस्कार मिले और आज्ञा हुई कि वह रुपया शाहजादे की नकदी से काट लिया जाय। मानो यह इस बात की शिक्षा है कि यह साम्राज्य का नियम है कि संदेश वाहको पर कृपा करना भलाई देनेवाला है क्योंकि ऊँची ओर से यह दान होता है। इसका बड़ा पुत्र मीर अब्दुल्ला बड़ा निर्भय मनुष्य था और उसकी प्रकृति कुछ पागलपन लिए हुए थी परंतु बनावटपन तथा बात बनाने की मात्रा अधिक थी। किसी दोष पर यह बादशाह औरंगजेब द्वारा दंडित हुआ और इसे हज को भेज दिया। वहाँ से लौटने पर यह सेवा में उपस्थित हुआ और इसे पाँच सदी मंसब मिला। दुर्ग खेलना के घेरे मे खूब प्रयत्न कर इसने पड़ावो का अच्छी प्रकार प्रबंध किया, जिससे इस पर शाही कृपादृष्टि हुई और इसे पिता की पदवी और मंसब मे तरक्की मिली तथा यह मीर बह्री कुल के पद पर नियत हुआ। इसके अनंतर यह मीर तुजुक बनाया गया। वाकिनकेरा दुर्ग के विजय के दिन हाथ मे गोली की चोट खाने से इसे एक सौ अशर्फी दवा करने को मिली। बहादुर शाह के समय अपने पागलपन मे यह ओछापन दिखलाकर अमीरुल् उमरा जुल्फिकार खाँ से लड गया। पत्ती का हवा मे पहाड के बराबर ऊँचा होना अपने अस्तित्व को अस्त व्यस्त करना है और पानी के एक बूँद का चौडी नदी से बराबरी करना अपने अस्तित्व को प्रवाह रूपी मृत्यु मे नष्ट कर देना है। इस कारण वहाँ से परास्त हो यह लज्जा के मारे भाग गया। धूर्तता से शाहजादा कामबख्श का, जो हैदराबाद मे साम्राज्य के दावे का डंका बजा रहा था, अपने को वकील प्रकट कर यह राजा जयसिंह और राजा अजीतसिंह के पास पहुँचा, जो दरबार से भागकर विद्रोह मचा रहे थे। उन लोगो से बातचीत तै की कि यदि शाहजादा गोंडवाना के मार्ग से इस ओर आने की इच्छा करे तो पंद्रह सहस्त्र राजपूत नर्मदा नदी तक साथ रहेंगे और बहादुर शाह के दक्षिण से लौट आने पर उतनी ही सेना के साथ जाकर राजधानी मे गद्दी पर बिठावेंगे तथा पचास सहस्त्र सवारो को एकत्र कर युद्ध मे योग देंगे। इस संबंध मे उनके मुहर का पत्र लेकर

अपनी स्वामिभक्ति तथा अच्छी सेवा प्रकट कर कि इतना बडा कार्य पूरा कर दिया है बडी शीघ्रता से देवगढ और चाँदा के मार्ग से हैदराबाद की ओर चल दिया। वास्तव में इसने भारी चक्र चलाकर संसार को विचित्र उपद्रव मे डाल दिया। पर इसका भाग्य तथा इसके पक्षपाती के नक्षत्र ठीक नही पडे थे। इससे यह वहाँ पहुँच न पाया। यही कि शाहजादे ने इनके आने की सूचना पाई। इसकी फरेब से भरी बातों से उसने निश्चय किया कि यह बहादुर शाह का षड्चक्र है इसलिए उसने उत्तर दिया कि आपकी अच्छी सेवा का वृक्ष सिवा दंड तथा सजा के और फल नही देता और प्रयत्न ठंडे लोहे को कूटना है। जब बातचीत सीमा तक पहुँच गई तब इसके योग्य रोजीना बाँध दिया पर इसे सामने नही बुलाया।

उस दयावान बादशाह (बहादुर शाह) की क्षमा तथा उदारता यहाँ तक बढ़ी चढ़ी हुई थी कि कोई भी पहले का बादशाह उसके दान की अधिकता की बराबरी को न पहुँचा। जब उक्त खाँ कामबख्श के युद्ध के बाद खानखानाँ के द्वारा दरबार में उपस्थित हुआ तब इसका दोष क्षमा कर पहले का इसका मंसब बहाल कर दिया और पाँच सहस्र रुपया वार्षिक बाँध दिया। ऐश्वर्य के लोभ मे नौकरी कर तथा फर्रुखसियर के राज्यकाल में अमीरुल् उमरा (हुसेन अली खाँ) के साथ दक्षिण आकर उस प्रांत का नए सिरे से यह मीर बहरी बना। इस कारण कि यह सरदार की मुसाहिबी में था इसलिये किसी प्रकार जीवन व्यतीत करता रहा। इसके अनंतर उस दानी सर्दार की प्रार्थना पर दरबार में दाग का दारोगा तथा रिकाब का जाँचकर्ता नियत हुआ। खाकानेजमाँ के समय भी कुछ दिन उस कार्य पर बहाल रहा। समय आने पर यह मर गया। इसका भाई लियाकत खाँ मीरजा रंगी अच्छे चाल प्रकृति का मनुष्य था। इन्ही सब कार्यों मे यह भाई से विरोध रखता था। धर्म में यह अपने पूर्वजो के समान इमामिया था और सैफुल्ला खाँ अपने को सुन्नी कहता तथा धर्मांधता रखता था।

•

६९८. सैयद मुहम्मद चिश्ती कन्नौजी, मीर

यह दयावान विद्वान् तथा साधुवृत्ति का था। इसके पूर्वज बहुत दिनो से कन्नौज मे रहते थे, जो प्राचीन काल मे भारत के प्रभूत ऐश्वर्यशाली राजाओं की राजधानी तथा विशाल नगर था, जहाँ केवल तमोलियो की तीन सहस्र दूकानें थीं, और जो अब आगरे के पास उसके तथा इलाहाबाद व अवध प्रांतों के मध्य मे है। मीर आरंभ मे अपने वंश के अनुसार फकीरी मे अत्यंत संतोष के साथ तथा वृत्ति के अनु-

सार कालयापन करते हुए प्रार्थियों को लाभ पहुँचाता रहा। शाहजहाँ के राज्यकाल के अन्त मे उस गुणग्राहक बादशाह के विशेष आग्रह तथा इच्छा से यह अपने निवास-स्थान से दरबार मे आया। शाहजहाँ विद्वानो का उनकी विद्या तथा गुण के अनुसार बहुत संमान करता था इसलिए सैयद को, जो बाहरी तथा भीतरी गुणो से भरा हुआ था, बडी प्रतिष्ठा के साथ अपने पास रखा। कुछ दिन नही बीते थे कि भविष्यनाशक आकाश ने दूसरा रंग पकड़ा कि इस बादशाह के प्रभुत्व तथा अधिकार का पासा पलट गया। औरंगजेब की आज्ञा से शाहजहाँ के पास लोगों का आना जाना बंद हो गया। पर मीर बराबर साथ रहने से नही रोका गया। ३२ वें वर्ष के आरंभ से उस बादशाह की मृत्यु तक यह बराबर दरबार में रहकर अपने उपदेश तथा हदीस सुनाकर उसे लाभ पहुँचाता रहा। इसके बाद औरंगजेब ने बडी प्रतिष्ठा तथा संमान से आगरे से अपने पास बुलाकर अपने दरबार मे रख लिया। सप्ताह में तीन दिन सैयद के साथ इमाम मुहम्मद गिजाली की धार्मिक पुस्तको पर, विशेषकर इफादत आयत तथा आलमगीर शाही फतवो पर, जो उस बादशाह के प्रबंध पर नई सम्पादित हुई थी, और अन्य व्यावहारिक पुस्तकों पर तर्क वितर्क करता था। सैयद विद्यार्थियों को बराबर शिक्षा देने में लगा रहता था। अजमेर की यात्रा में यह बादशाह के साथ गया था। २४वें वर्ष में मुहम्मद अकबर के भागने पर यह राजधानी से बादशाह की सेवा मे पहुँचा। सैयद की मृत्यु पर औरंगजेब प्रायः इसके लिये "शाहजहाँ का तथा मेरा मृत्यु से असावधान" संबोधित करता था।

प्रसिद्ध है कि शेख मुहिब्बुल्लाह इलाहाबादी का यह शिष्य था, जो बाह्य तथा आंतरिक विद्याओ का ज्ञाता था। यद्यपि यह स्वर्गीय ख्वाजाओ सा विचार रखता था पर अपनी रचनाओं मे शेख अकबर शेख मुहीउद्दीन अरबी का अनुगत था। इसने फसूसुल् हुक्म पर अखस ख्वास नाम से व्याख्या लिखी। उसके समय में तथा अब तक उपद्रवी लोग कुफ्र से संबंध बतलाकर झगडा करते हैं। शेख का रिसालः तसवीयः प्रसिद्ध है। कहते हैं कि जब औरंगजेब की नजरो में वह आई, उस समय वह मर चुका था और उसके मुरीदों में से दो दिल्ली में प्रसिद्ध हो चुके थे। एक मीर संमानित व्यक्ति था और दूसरा शेख मुहम्मदी फकीरी तथा विरक्ति में दिन बिताता था। बादशाह ने पहले उस पुस्तक की गुत्थियों को सैयद से पूछताछ की, पर मीर ने शेख के शिष्यत्व को अस्वीकार कर दिया, इस पर बादशाह ने शेख मुहम्मदी के यहाँ सन्देश भेजा कि यदि तुम शेख मुहिब्बुल्ला की मुरीदी मानते हो, तो इस पुस्तक की बातो का शरई आज्ञाओ से मिलान करो और नही तो मुरीदी छोडकर इस पुस्तक को आग में डाल दो। उसने उत्तर दिया कि मुझको मुरीदी से इनकार नही है और न उसको छोड़ना उचित है पर शेख ने जो कुछ कहा है उसके समझने की उच्चता अभी तक मैंने प्राप्त नही की है, जब उसे प्राप्त करूँगा तब

प्रार्थनानुसार कठिनाइयो का अर्थ लिखकर दूंगा। यदि उस पुस्तक के जलाने ही का दृढ विचार है तो बादशाही बावर्चीखाने मे फकीरों के घरों से बहुत अधिक आग है। आज्ञा हुई कि जला दो।

मीर महमूद ने मंसब या अमीरी की कभी इच्छा प्रगट नही की और साधारण हैसियतवालो से आगे नही बढा। तब भी अपने देश मे मौजों, इमारतो तथा सामानों का स्वामी था। इसके पुत्रों मे से दो सैयद अमजद खाँ तथा सैयद अब्दुल्करीम शरीफ खाँ[1], जो बादशाह के उस्ताद के पुत्र के नाम से प्रसिद्ध थे, मंसब जागीर तथा पद पा चुके थे। प्रथम ने १३ वें वर्ष में काजी मुहम्मद हुसेन जौनपुरी के स्थान पर उर्दू के मुहतसिब का पद पाकर बहुत दिनो तक उस कार्य को पूरा किया। इसका पुत्र भी पिता की पदवी पाकर राजधानी दिल्ली का सदर हुआ और इसने सम्मान तथा विश्वास प्राप्त किया। इसके अनन्तर यह वही का बख्शी तथा वाके आनवीस नियत हुआ। कहते हैं कि शुक्र की निमाज के लिए मंसबदारो का यह जायजा लेता था। बहादुरशाह के राज्यकाल में इसे सदर कुल का उच्च पद सदरजहाँ की पदवी तथा अच्छा मंसब मिला। जहाँदार शाह के समय यह उस पद से हटाया गया। इसमे वास्तविक सत्यता थी। मुहम्मद फर्रुखसियर के राज्य के आरंभ में भी कुतुबुल् मुल्क के प्रस्ताव पर सदरुस्सुदूर नियत हुआ। पर मीर तथा वजीर के झगडे में यह हटा दिया गया। स्यात् यह किसी समय अजमेर का दीवान और साँभर का फौजदार भी नियत हुआ था। फर्रुखसियर के राज्य के अंत में कुछ खालसे का इजारा (ठीका) लेकर इसने हिसाब किताब में बहुत हानि उठाई।

दूसरा पुत्र सैयद अब्दुल् करीम, जिसने बहुत सी किताबे पढी थी और जिस समय औरंगजेब बुर्हानपुर मे ठहरा हुआ था, उक्त नगर का जजिया कर उगाहनेवाला नियत हुआ और उस कार्य मे बड़ी सचाई तथा कठोरता काम मे लाया। गत वर्ष मे पूरे नगर से जजिया कर छब्बीस सहस्र रुपये वसूल हुए थे पर इसने आधे नगर से केवल तीन महीने में एक लाख बीस हजार रुपये जजिया कर के राजकोष में जमा किए, जिससे इसकी प्रशंसा हुई और मंसब बढ़ा। इसे दक्षिण के चारों प्रांतो की जजिया का अमीन नियत किया। इसके अनंतर इसे शरीफखाँ की पदवी मिली। हैदराबाद के घेरे के समय वर्षा के अधिक होने तथा मानजारा नदी मे बाढ आने से रसद पहुँचने का मार्ग बंद हो गया, अन्न का अकाल पड गया और यहाँ तक हाल पहुँचा कि जीवित लोग मुर्दा खाने से पहेज नहीं करते थे और हर ओर जहाँ तक दृष्टि जाती थी मुर्दो के ढेर के पहाड़ दिखलाई पड़ते थे। उस समय गज की करोड़गिरी सरदार खाँ के स्थान पर, जिसने मिर्जा

---

१. इसका वृत्तांत इसके पहले सैफुद्दौला सैयद शरीफ खाँ शीर्षक से इसी ग्रंथ मे आ चुका है।

यार अली बेग के उन भारी कष्टों के प्रबंध करने से ख्याति बढ़ती, अस्वीकृत करने पर नियुक्त होना स्वीकार नहीं किया, उक्त खाँ को मिली। यह अपनी सचाई तथा कड़ाई के लिये प्रसिद्ध हो चुका था। ऐसे समय ऐसे कामों में सिवा बदनामी तथा गाली के और कुछ नहीं मिलता पर इससे जनसाधारण, जो इसकी कठोरता मे चिल्लाते थे, तथा सरकारी मुतसद्दी लोग, जो हृदय से अलहदगी रखते थे, प्रसन्न रहे। जब वर्षा मे कमी हुई तब कुछ सस्तापन आया। उक्त खाँ को तब छुट्टी मिली कि हर चारो प्रांतो मे पहुँच कर शरअ के आज्ञानुसार जजिया कर वसूल करे।

इसकी मृत्यु के अनतर इसके पुत्र इमामुद्दीन खाँ और मीर अब्दुर्रहीम खाँ शरीफ खाँ, जो सौतेले भाई थे, तथा इसके सगे भाई लोग फसीहुद्दीन खाँ आदि दंडित हुए पर कुछ दिन बाद हस्ताक्षरित आज्ञापत्र इनायतुल्ला को मिला कि उन सबको योग्य मंसब तथा जागीर देकर फकीरी से उठा दो। इसपर इनके मंसब बहाल हुए। इनमें से सैयद अब्दुर्रहीम को बरार प्रांत के जजिया की अमीनी मिली और बहादुर शाह के समय इसे पिता की पदवी मिली। जहाँदार शाह के राज्य-काल में यह आगरा का नाएब होकर यह जौनपुर का फौजदार हुआ। इसके पास अच्छी सेना थी और किसी का पक्ष न लेता था। उस राज्य की अवनति पर अपना पैतृक देश छोड़कर दक्षिण चला गया। नवाब आसफजाह ने गुणग्राहकता से अपने यहाँ रखकर इसे कुछ दिन दक्षिण का नायब दीवान और इसके अनंतर औरगाबाद के महालो का मुतसद्दी नियत किया। नादिर शाह के आने के समय उस उच्चपदस्थ सर्दार के मुतसद्दियों के बारे में कुछ पूछने के लिये इसे आज्ञा हुई। उक्त खाँ उसके सामने, जिसके भय से आकाश का बहराम काँपता था और शेर बबर का पित्ता पानी हो जाता था, साहस न छोडकर उत्तर प्रत्युत्तर करता रहा। आसफजाह के दक्षिण लौटने पर उसकी सरकार का यह बख्शी नियत हुआ और तीन हजारी २००० सवार के मंसब के साथ इसे डंका मिला। सन् ११५९ हि० के सफर महीने के अंत में यह बरार का नायब सूबेदार नियत हुआ। यह सेना तथा सामान रखता था। यह अनुभवी, उदार तथा व्यवहारकुशल था पर कहते हैं कि इसमें दया न थी और सौ प्रतिज्ञा मे से एक भी पूरी नहीं होती थी। मिसरा का अर्थ— खुश है वह शख्स कि जिसकी जुबाँ से हाथ है बड़ा।

औरगजेब आदमी की अच्छी पहिचान रखता था। उसने इनायतुल्ला को लिखा कि, जैसा कलमात तैबात पुस्तक मे उल्लेख है, शरीफ खाँ के पुत्र अब्दुर्रहीम ने सैयद का पुत्र तथा अमीनी विद्या का इच्छुक होते हुए भी दस सहस्त्र रुपए के मोती जौहरी के हाथ बेंच दिए है, उससे पूछो और लेलो। अब ऐसे कार्य लोगों को न दिया करो, जो गेहूँ दिखाकर जौ बेचते हैं और मुलम्मा करते है। सीमा है। जब यौवन काल में इतनी समझदारी थी तो अब इतने वर्ष बीतने पर अनुभव से क्या न हुआ होगा?

६६९. हकीकत खाँ

इसका नाम इसहाक वेग यज्दी था। पहले यह मुमताज महल[1] की सेवा में खानमामाँ था। शाहजहाँ के राज्यकाल के ४ थे वर्ष में जब उक्त वेगम की मृत्यु हो गई तब बादशाह ने इसको बेगम साहिबा[2] की दीवानी की सेवा मे नियुक्त कर दिया क्योंकि यह गृहस्थ मनुष्य था। ९वें वर्ष में विद्रोही जुझार सिंह के गड़े हुए कोषों को खोजने के लिये, जो मारा जा चुका था, मकरम खाँ और बाकी खाँ चेला के साथ दतिया की ओर नियत किया गया। इन लोगों के परिश्रम से अट्ठाईस लाख रुपया उस स्थान के आस पास के कूओं से निकाला जाकर बादशाही कोष में दाखिला हुआ। १०वें वर्ष में इसे एक हजारी १०० सवार का मंसब मिला। १२वें वर्ष में इसे हकीकत खाँ की पदवी मिली और यह आकिल खाँ इनायतुल्ला के स्थान पर अर्जुमुकर्रर नियत हुआ। १३वें वर्ष में १५० सवार, १६वें वर्ष में पाँच सदी और १८वें वर्ष में ५० सवार बढ़ने से इसका मनसब दो हजारी ३०० सवार का हो गया। बादशाहनामा की अंतिम सूची में ऐसा ही लिखा हुआ है। २८वें वर्ष मे जब यह बूढ़ा हो गया तब बादशाह ने इसको कामों से छुट्टी देकर आराम से एकांतवास करने की आज्ञा दी। औरंगजेब के राज्य के ७वें वर्ष में सन् १०७४ हि०, सन् १६६३ ई० में यह मर गया।

•

७००. हकीमुल् मुल्क

इसका नाम मीर मुहम्मद मेहदी था और यह अरबिस्तान का रहनेवाला था। जिस वर्ष मुहम्मद औरंगजेब बहादुर दक्षिण से आगरे की ओर रवाना हुआ, यह उसके साथ होकर एक हजारी मनसबदार हो गया। क्रमश: इसे हकीमुल् मुल्क की पदवी मिली और ११ वें वर्ष मे इसका मनसब बढ़कर दो हजारी ५०० सवार का हो गया। ३७ वें वर्ष में जब मुहम्मद आजमशाह के शरीर फूलने की बीमारी बढने से यहाँ तक हालत पहुँची कि आस्तीन का घेरा चौदह गिरह के पास पहुँच गया और पायजामे का घेरा एक गज छ गिरह हो गया तब हकीमुल् मुल्क उसकी दवा करने पर नियत हुआ। शाहजादे के दरबार मे पहुँचने पर बादशाह ने अपत्य स्नेह के कारण उसके लिये एक खेमा गुलाल बाडी में लगवा दिया और प्रतिदिन वह

---

1. शाहजहाँ की बेगम, जिनका मकबरा आगरा का प्रसिद्ध ताज महल है।

2. शाहजहाँ की सबसे बड़ी पुत्री जहाँ आरा बेगम।

एकबार पुत्र को देखने जाता था। शाहजादा मुहम्मद आजम की सगी बहिन जेबुन्निसा बेगम स्वयं शाहजादे के साथ स्वास्थ्य कर खाना खाती थी और उसी पर उसे भी संतोष करना पडता था। हकीमुल् मुल्क ने, जो शाहजादे को दवा करने पर नियत हुआ था, मार्ग मे तथा दरबार मे पहुंचने पर दवा करने मे बडी कुशलता दिखलाई। जब शाहजादा अच्छा हो गया तब इसका मनसब एक हजारी बढने से बढने से चार हजारी हो गया।

मआसिरे आलमगीरी का लेखक लिखता है कि शाहजादा अपने पिता के आगे कहता था कि एक दिन जब रोग बहुत बढ गया और लोग निराश होकर शरीर के फट जाने की शंका करने लगे तब एकाएक एक प्रकाशमान पुरुप ने उसके सामने प्रगट होकर कहा कि सच्ची तौबा करो तो अच्छे हो जाओगे। इस पर मैंने तौबा किया। इसके बाद तंद्रा मिटने पर पेशाब लगी और दो बड़ी थालियाँ भर गईं, जिससे फूलन का सात हिस्सा मिट गया। दूसरे दिन आजाद वली शेख अब्दुर्रहमान फकीर ने लिखा कि जनाब मुर्तजा ने कहा है कि आज मैंने तौबा दे दिया प्रतिदिन शीघ्र अच्छा होता जायगा।

•

७०१. हब्शखाँ

सीदी मिफ्ताह हब्शी निजाम शाही राज्य के पुराने सेवको मे से एक था और उस वंश का एक संमानित तथा विश्वासपात्र सेवक था। यह बहुत दिनो तक ऊदगिरि दुर्ग का अध्यक्ष रहा, जो पत्थर तथा मसाले का बना हुआ अत्यत दृढ़ दुर्ग था। शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में बादशाही सेनाओ द्वारा रौंदे जाने पर जब क्रमशः निजामशाह के राज्य के सब दुर्ग तथा महल मुगल बादशाह के अधिकार में चले आए और वह राजवंश एक दम नष्ट हो गया तब बीजापुर के मुहम्मद आदिलशाह ने अपने भतीजे इस्माइल को कैद करने के लिये, जो ऊदगिरि दुर्ग में बंद था, बहुत उपाय किया और सीदी मिफ्ताह को घूस देकर मिलाना चाहा पर वह सफल न हुआ।

यह इस्माइल दरवेश मुहम्मद का प्रथम पुत्र था, जो इब्राहीम आदिलशाह का प्रथम पुत्र और मुहम्मद कुली कुतुबुलमुल्क का भांजा था। इब्राहीम आदिलशाह दौलत नामक अपने कलावंत से जो इसकी सेवा मे पूरा विश्वास प्राप्त कर बीजापुर का दुर्गाध्यक्ष हो गया था, मृत्यु के समय यह वसीयत कर गया था कि उसके अनतर उसका द्वितीय पुत्र मुहम्मद राजगद्दी पर बैठे। मुहम्मद ने गद्दी पर बैठते

ही दरवेश मुहम्मद को अंधा कर दिया। स्त्रियों ने इस्माइल को, जो उस समय छ वर्ष का था, छिपाकर निजामशाह के पास भेज दिया, जिसमें शत्रुओं से उसकी रक्षा हो जाय। निजामशाह ने इस भय से कि इस्माइल का आना यदि प्रसिद्ध हो जायगा तब आदिलशाह उससे अप्रसन्न हो जायगा इसलिये उसे बिना देखे ही सीदी मिफ्ताह के पास भेज दिया। इसने १० वर्ष तक इसे कैद में सुरक्षित रखा। इसने आदिलशाह की अधीनता स्वीकार नहीं की और दृढ़ दुर्ग के घमंड पर सिर ऊँचा उठाए रखा।

९वें वर्ष सन् १०४६ हि०, सन् १६३६ ई० के मुहर्रम महीने में खानदौरां बहादुर ने इस दुर्ग को घेर लिया और दोनों ओर से वीरता तथा बहादुरी दिखलाई जाने लगी। जब खाने दुर्ग के पास पहुँची तब दुर्गवालों का साहस छूट गया। सीदी मिफ्ताह ने घबड़ाकर खानदौरां के पास संदेश भेजा कि यदि मुझे बादशाही सेवकों में भर्ती कर ले तो वह दुर्ग सौंप दे। जब खानदौरां ने इसकी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली तब उसने और भी बातें प्रगट की, जो स्वीकार करने योग्य न थीं, इसलिये इसने फिर युद्ध आरंभ कर दिया।

कहते हैं कि घेरे के समय दुर्गवालों का बहुत सा सामान नष्ट हो गया था, इसलिये सीदी मिफ्ताह ने यह उपाय निकाला था कि उसने खानदौरां से अधीनता तथा सेवा स्वीकार करने का प्रस्ताव किया और सेवा आरंभ करने के लिये दिन भी नियत हो गया पर इस बीच इसने दुर्ग के फाटकों को खोल दिया, जिसमें इसके मनुष्यगण बादशाही सेना में आ जाकर जो कुछ सामान ले सकें लेकर चले आवें। निश्चित दिन पर इसने फाटकों को बंद कर फिर युद्ध आरंभ कर दिया। इस पर खानदौरां ने एक खान को, जो शेरहाजी बुर्ज के नीचे तक पहुँची थी, उड़वा दिया। यद्यपि दुर्ग की दृढ़ता को कोई हानि नहीं पहुँची पर सीदी मिफ्ताह ने दूरदर्शिता से जब यह समझ लिया कि बिना अधीनता स्वीकार किए दूसरा कोई उपाय नहीं है तब वह उस सर्दार के पास चला आया। तीन महीने कुछ दिन के घेरे के बाद इसने दुर्ग दे दिया और इब्राहीम आदिलशाह के पौत्र इस्माइल को भी सौंप दिया, जो कैदखाने में था।

सीदी मिफ्ताह को बादशाही दरबार से तीन हजारी १५०० सवार दो अस्पः सेह अस्पः का मनसब और हब्श खाँ की पदवी मिली। जागीर के वेतन से धन एकत्र कर यह बराबर दक्षिण के सहायकों में नियत रहा और वहाँ के सूबेदार ने भी इसके संमान का बराबर ध्यान रखा। यद्यपि यह शकल सूरत में विचित्र था और बलवान था पर सज्जनता से खाली न था। विद्वानों और धार्मिक पुरुषों से यह मित्रता रखता था और उनकी सेवा भी करता था तथा उन लोगों की धन से भी सहायता करता था। यह बादशाही सेवा में बड़ी सतर्कता से काम करता था।

२९वें वर्ष मे दक्षिण के सूबेदार शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर ने इसको दक्षिण के बहुत से सरदारो के साथ बरार के शासक मिर्जा खाँ की अध्यक्षता में देवगढ के जमीदार पर भेजा था। जब शाहजादा ३०वें वर्ष मे गोलकुंडा की ओर रवाना हुआ तब उस कार्य मे इसने भी बहुत प्रयत्न किया। हब्श खाँ बाबा फीरोज पर बहुत विश्वास रखता था, जो पथरी कस्बा का एक फकीर था और इसके खानकाह का व्यय प्रतिवर्ष और प्रति माह बराबर दिया करता था। जब उक्त बाबा मर गया तब हब्शखाँ ने उसी कस्बे मे उसका मकबरा बनवाया, जहाँ आज तक लोग दर्शन करने जाते हैं। इसे नानदेर सरकार के अंतर्गत बकलूर परगना जागीर में मिला था, जिसे इसने अपना निवासस्थान बनाया और अरब के सैयदों को लाकर उसमे बसाया था। उनके साथ यह अनेक प्रकार के अच्छे व्यवहार करता था। अरब से इसने बहुत सी मूल्यवान पुस्तकें मँगवाई थी। यह बहुत उदार था। इसके पुत्र अहमद खाँ ने अच्छा मनसब पाया। वह अच्छा युवा पुरुष था। दक्षिण की सूबेदारी के समय शाह आलम बहादुर इसपर बड़ी कृपा रखता था। इसने उक्त परगना की जमीदारी खरीद कर जागीरदारी में मिला लिया था। औरगजेब के राज्यकाल में इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्रो को छोटे मनसब मिले थे। परगने के गाँव दूसरो को वेतन मे मिले थे और बहुत दिनो तक विद्रोह कर वे उद्दंडता से रहे। मुहम्मदशाह के समय एवजखाँ बहादुर कसूरजंग ने इनके निवासस्थान को घेर लिया और सीदी हुसैन को, जो उनमे सबसे बडा था, कैद कर लिया। इसके अनंतर निजामुल् मुल्क आसफजाह की आज्ञा से छुटकारा पाकर वह अपने सरकार में चला गया। इसके बाद इसके पुत्रो के अधिकार मे यह जमीदारी रही।

●

७०२. हमीदुद्दीन खाँ

यह आलमगीर शाही था। यह सरदार खाँ[1] कोतवाल का पुत्र और बाकी खाँ चेला कलमाक[2] शाहजहानी का पौत्र था। यह औरंगजेब के राज्य के अंत में भाग्य की सहायता से हिन्दुस्तान के साम्राज्य के भीतर बादशाही राज महल मे तथा अच्छे कारखानों मे नियुक्त होता रहा। यह होते हुए भी बादशाह को तूणीर का यह

---

१. इसके छोटे पुत्र बाकी खा हयात बेग का वृत्तात इसी के आगे दिया है।

२. इसका वृत्तांत इसी भाग में पहले दिया जा चुका है।

एक तीर बनकर दुर्गों के मोर्चों में, पड़ाव के आस पास और दूर भेजी गई सेना की टुकड़ियों में नियुक्त होता रहता था, जो उपद्रवियों को दंड देने के लिए भेजी जाती थीं। यह जहाँ जाता था अपनी दृढ़ता तथा शक्ति से शत्रु की मार काट कर कुशल पूर्वक लौट आता था और अनेक प्रकार से इसकी प्रशंसा होती थी। यहाँ तक कि यह जनसाधारण में आलमगीरी नीमचा (एक प्रकार की तलवार) के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसके पिता पर बादशाह की बहुत कृपा थी, इसलिए इसे भी बराबर बादशाह की सेवा में तथा पास रहने का सौभाग्य प्राप्त था। बादशाही कृपा से २८ वें वर्ष में अपने पिता के स्थान पर यह मुहर खाने का दारोगा नियत हुआ। उसी समय जब इसके पिता को इहतमाम खां के बदले में सरदार खां की पदवी मिली तब इसका मनसब दो सदी बढ़ने से चार सदी ५० सवार का हो गया। ३२ वें वर्ष में यह अपने पिता के स्थान पर हयसाल का दारोगा नियत हुआ। बादशाह को इसकी उन्नति वांछित थी इसलिए इसका मनसब बराबर बढ़ता रहा। जब एकलौज[1] स्थान में सम्भाजी को लाने का, जो खानजमां हैदराबादी के प्रयत्नों से अपने पुत्र कलत्र के साथ कैद हो चुका था,[2] निश्चय हुआ तब हमीदुद्दीन खां बादशाह की आज्ञा के अनुसार उस कैदी को बहादुर गढ़ के दो कोस इधर से, जहाँ शाही पडाव था, तख्त पर बैठाकर और उसके साथियो को यथा योग्य कपड़े पहिराकर तथा ऊटों पर सवार कराकर ढोल पीटते तथा बाजा बजाते हुए सारे पड़ाव मे घुमाकर बादशाह के सामने लिवा लाया। ३३ वें वर्ष में इसे खां की पदवी मिली। जब इसका पिता मर गया तब उसके स्थान पर यह कोतवाली तथा अन्य कामो पर नियत हुआ। इसी समय इसने जडाऊ तुर्रा और हाथी पुरस्कार में पाया और शत्रु को दंड देने के लिए भेजा गया। ३७ वें वर्ष में मुईनुद्दीन के कुछ सेवकों ने दैवयोग से इसके सरकार के दीवान अफजल अली खां के साथ कडा व्यवहार किया और दुष्ट प्रकृति के कारण जब लड़ाई की तैयारी हुई तब हमीदुद्दीन खां को आज्ञा हुई कि जाकर उस झुण्ड को दंड देकर अलग कर दे। जब यह उन लोगो के सिर पर पहुँचा। तब हमीदुद्दीन खाँ की सवारी का हाथी शोरगुल के कारण युद्ध से भागकर बादशाह गंज की ओर एक कोस तक चला। दैवयोग से वहाँ बहुत बड़े बड़े गोन दिखलाई दिए, जिनमें अनाज भरा जाता है। जब हाथी उसके बराबर पहुँचा तब यह अपनी अमारी में से निकल कर उसपर जा बैठा। इसके बाद दूसरी

---

१. शोलापुर जिले के अन्तर्गत एक स्थान जहाँ औरंगजेब का पड़ाव था।

२. २८ दिसम्बर सन् १६८८ ई० को शेख निजाम हैदराबादी ने संगमेश्वर पहुँचकर शंभा जी को सपरिवार कैद कर लिया था और सब कैदियो को लेकर बहादुरगढ़ पहुँचा। देखिए पारसनीस-किनकेड कृत 'ए हिस्ट्री आँव मराठा पीपुल' भाग २ पृ०-४०-२।

सवारी पर बैठकर युद्ध स्थल में पहुँचा और उनको दंड दिया। ३९वें वर्ष में इसलामपुरी मे इसका मनसब बढकर दो हजारी हो गया। इसी वर्ष उपद्रवी संता जी कासिम खां खानाजाद खां तथा अन्य शाही सरदारो को नष्ट कर धंदेरी गढी में घिर गया। हमीदुद्दीन खा भारी सेना के साथ सहायता को भेजा गया। अदोनी के पास इसने उन लूटे हुए सरदारों से मिलकर तथा आवश्यक सामान दे हूं देकर उनकी सहायता की। इसी समय वह उपद्रवी हिम्मत खा बहादुर को परास्त कर स्वयं भाग रहा था। हमीदुद्दीन खा ने उसका पीछा कर उसे बादशाही राज्य से बाहर निकाल दिया।[1] जब यह दरबार मे पहुँचा तब इसकी बडी प्रशसा हुई और उसे बहादुर की पदवी मिली। ४२ वें वर्ष मे यह गुसुलखाने का दारोगा नियत हुआ और इसके बाद इस पद के साथ साथ जवाहिरखाने का भी दारोगा बनाया गया। ४३ वें वर्ष में इखलास खा के स्थान पर, जो शत्रु से युद्ध करते हुए मारा जा चुका था, यह आख्तावेगी पद पर नियत हुआ और इसे जडाऊ कमरबंद और पटका मिला। इसी समय रसद लाने और विद्रोहियों को हटाने के लिए बिदा होकर तथा बादशाह की इच्छा के अनुसार काम पूरा कर यह प्रशंसा का पात्र हुआ। इसने बहुत से दुर्गों के तोडने में वीरता तथा अच्छा कार्य दिखलाकर अपने साहस तथा बहादुरी का सिक्का जमा लिया। राजगढ के घेरे में, जिसे आदिलशाहियो से ले लेने पर शिवा जी ने अपने अधिकार काल मे तीन ओर तीन दुर्ग बनवाकर दृढ़ किया था, इसने बहुत प्रयत्न किया और मीर आतिश तरबियत खां के साथ उस दुर्ग के सामने तिकोने पुश्ते पर चढकर, जिसे इस कार्य के जानने वाले सूँड कहते हैं, युद्ध की तैयारी की और चौडे पर्वत पर दमदमा बांधकर उसे सग चीन तक पहुँचा दिया। दुर्गवाले गोली, तीर तथा पत्थर फेंकने मे कमी नही कर रहे थे तब भी सैनिकगण उक्त सूँड पर बँधे हुए बुर्ज पर से निकलकर दीवाल के भीतर चले आए। इस साहस तथा वीरता को देखकर दुर्गवालों की हिम्मत छूट गई और वे शरण में चले आए।[2] ४८ वें वर्ष के आरंभ में सन् १११५ हि० के २१ शव्वाल को इन चारो गढ का बनी शाह गढ नाम रखा गया। हमीदुद्दीन खां को, जिसका मनसब साढे तीन हजारी २००० सवार का था, इसके उपलक्ष्य मे डंका मिला। पुरना (पाठा० तोरण) दुर्ग के घेरे में इसने इसी प्रकार प्रयत्न किया और अपने

१. देखिए पा०—कि० कृत 'ए हिस्ट्री आव मराठा पीपुल, भाग २ पृ० ८६।

२. राजगढ पर मुगलों का सन् १६८९ ई० में अधिकार हो गया पर मराठों ने पुनः उसे सन् १६९२ ई० मे छीन लिया था। औरंगजेब ने सन् १७०५ ई० में फिर उस पर सेना भेजी जिसने उस पर अधिकार कर लिया पर यह पुनः वर्ष भर के भीतर ही मराठो के हाथ मे चला गया।

कमर में डोरी बांधकर यह दुर्ग में घुस गया था। इसके पुरस्कार में बादशाह की इस पर अत्यधिक कृपा हुई।

औरंगजेब के राज्य के अंत मे यह दरबार भर मे सबसे अधिक संमानित सरदार था और विश्वास तथा मुसाहिबी में इसने अपने से किसी को आगे बढ़ने नहीं दिया। यद्यपि अमीर ख़ाँ मुसाहिबी तथा संमान में कम न था पर वह इनके बाद था। इनायतुल्ला खाँ बराबर बादशाह के साथ रहते हुए भी इन दोनो के समान न था पर राज्यकार्य तथा मालविभाग के कार्यों मे वह इन लोगो के बर बर था।[1] जब औरंगजेब अहमद नगर मे २८ जीकदह शुक्रवार को प्रथम प्रहर में ५० वर्ष २ महीना तथा २८ दिन राज्य कर और ९१ वर्ष १३ दिन की अवस्था पाकर मर[2] गया तब इसने मुर्दनी का सामान ठीककर और नमाज पढ़कर शव को शयनगृह में सुरक्षित रखा। दूसरे दिन मुहम्मद आजम शाह ने जिसे मालवा जाने की छुट्टी मिली थी, इस घटना से पड़ाव से २५ कोस की दूरी से लौटकर संस्कार की रसम पूरी की और इसके दूसरे दिन शव को कंधे पर उठाकर अदालत के दीवान के बाहर ले आया। यहां से रौजा नामक पवित्र मजार की ओर रवाना हुआ, जो औरंगाबाद से आठ कोस पर और दौलताबाद से तीन कोस पर इसीका बनवाया हुआ था। हमीदुद्दीन खाँ जिसने बेसब्री तथा घबराहट के होते भी कोई काम उठा नहीं रखा था, रोता हुआ पैदल रथी के साथ गया और मृत बादशाह की इच्छा के अनुसार शेख जैनुद्दीन के मकबरे के आँगन मे शव को गाड़ दिया। यात्रा की तारीख लाभदायक होती है और औरंगजेब की मृत्यु के अनंतर 'खुल्द मकान' (स्वर्ग में गृह है जिसका) पदवी हुई तथा उसे मौजेका नाम खुल्दाबाद रखा गया। हमीदुद्दीन खा ने फकीरी कपडा पहिरकर अपने स्वामी तथा गुरु के मौजे मे रहना निश्चय किया और वहाँ अपने रहने के लिये एक मकान बनवा लिया, जो अब भी उसके नाम से प्रसिद्ध है।

---

१. जब सन् १७०६ ई० के अंत में औरंगजेब दक्षिण से अहमद नगर को लौटा तब उसने अपनी विशाल वाहिनी के पिछले भाग की रक्षा का भार हमीदुद्दीन को दिया पर यह अपनी सुरक्षा के विचार से वह कार्य अधीनस्थ लोगों को सौंपकर अलग हट गया, जिससे पीछा करती हुई मराठा सेना ने उक्त भाग को प्रायः नष्ट कर डाला। देखिए पा० कि० कृत ए हिस्ट्री ऑव द मराठा पीपुल भा० २ पृ० ११७-८।

२. औरंगजेब की मृत्यु मार्च सन् १७०६ ई० को हुई। उस समय उसकी अवस्था ८९ वर्ष की थी। अन्य मृत्यु तिथि २१ फरवरी भी लिखी गई है।

३. यह सुलतान मुअज्जम बहादुर शाह का द्वितीय पुत्र तथा बगाल का प्रांताध्यक्ष था।

जब मुहम्मद आजम शाह अहमदनगर से औरंगाबाद आया तब उसने अपने पिता की कब्र पर जाकर फातिहा पढा और हमीदुद्दीन खाँ का हाथ पकड़कर साथ लिवा लिया। इसे सांत्वना देकर पुराने पद पर नियत किया और हिंदुस्तान की यात्रा में, जो बहादुरशाह के साथ युद्ध करने की इच्छा से आवश्यक हो पड़ी थी, इसे भी साथ लिवा गया। कहते हैं कि जब मार्ग में यह समाचार मिला कि मुहम्मद अजीम पूर्व की ओर से आगरे पहुँच गया है तब मुहम्मद आजमशाह की जबान से निकला कि भारी बला आगरे पहुँच गई। हमीदुद्दीन खाँ ने प्रार्थना की कि इसमे आजम (बड़े नाम) से वह नष्ट हो जायगी। युद्ध के दिन भारी लडाई के अनंतर जब पराजय के चिह्न प्रकट हुए और जुल्फिकार खाँ युद्धस्थल के बाहर चला गया, तब यह भी अलग रह गया। इसी समय इसे एक तीर की चोट पहुँची। इसके अनंतर यह ग्वालियर से आकर बहादुरशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और जडाऊ घड़ी तथा प्रथम मीर तुजुक और गुर्ज बरदारों के दरोगा का पद पाकर संमानित हुआ। इसे बहादुर आलमगीरी की पदवी मिली और यह बहादुरशाह के राज्य में प्रतिष्ठा के साथ कार्य करता रहा।

जब जहाँदार शाह बादशाह हुआ और जुल्फिकार खाँ ने अपनी इच्छा के अनुसार वजीरी तथा प्रभुत्व अपने हाथ मे कर लिया तब पुराने द्वेष के कारण, जो अब तक प्रकट न हुआ था, इसको अनेक प्रकार से लज्जित तथा अपमानित कर कैद कर लिया। अंत में ऐसा ही जुल्फिकार खाँ को भी बदला मिला।[1] यद्यपि उस अत्याचारी के नष्ट होने पर यह कैद से छूट गया पर फर्रुखसियर के दरबार में इसकी पैठ नही हुई। अबुस्समद खाँ जब पंजाब का सूबेदार नियत हुआ, तब वह इसको पहले के विश्वासपूर्ण कार्यों या पुरानी मित्रता के कारण अपने साथ लिवाता गया। जब प्रसिद्ध उपद्रवी को दमन करने के अनतर उक्त सूबेदार बडे ऐश्वर्य और शान के साथ लाहौर मे गया, तब इन पंक्तियों का लेखक भी उसका दर्शक था। सवारी के पिछले भाग मे हमीदुद्दीन खाँ एक पालकी तथा कुछ आदमियों के साथ राह नाप रहा था और उसकी हालत से दुर्भाग्य तथा बेबसी झलक रही थी। इसके बाद दरबार पहुँचने पर फिर से इसपर बादशाही कृपा हुई और औरंगजेब के समय के संमान के कारण उस बादशाह के राज्यकाल में इसने अच्छा मनसब पाया और गुर्ज बरदारों का दारोगा नियत होकर मुद्दत तक आराम से रहा। नियत समय पर यह मर गया। इसे एक पुत्र था, जिसे मनसब तथा पद मिला था, पर उसका वृत्तांत मालूम नहीं हुआ।

●

---

१. सन् १७१३ ई० मे फर्रुखसियर बादशाह हुआ और उसी समय जुल्फिकार खाँ को मरवा डाला।

७०३. हयातखाँ

यह शाहजहाँ के सेवकों का सरदार तथा आबदारखाने का दारोगा था। बराबर बादशाह के साथ रहने से इसका विश्वास बढ़ गया था और यह बहुत दिनों तक दौलतखाने का दारोगा, जो विश्वासपात्रों के सिवा किसी दूसरे को नहीं सौंपा जाता था, तथा चेलों और खवासों का दारोगा नियत रहता। स्यात् यह वही हयातखाँ है, जो जहाँगीर के समय भी आबदार खाने का दारोगा था। शेर के शिकार के दिन, जब अनीराय सिंहदलन ने बहुत प्रयत्न किया था और शाहजादा शाहजहाँ ने उसकी सहायता को जाकर शेर पर तलवार चलाई थी, क्योंकि यह भी बादशाह के साथ था।[1] शाहजहाँ के राज्य के ६ ठे वर्ष इसे आठ सदी २०० सवार का मनसब मिला। १५ वे वर्ष में इसका मंसब एक हजारी २०० सवार का हो गया। १८वें वर्ष मे पाँच सदी २०० सवार और १९वें वर्ष मे भी पाँच सदी २०० सवार बढ़नें से इसका मनसब दो हजारी ६०० सवार का हो गया। इसके बाद यह गुर्ज बरदारों तथा अहदी मनसबदारो का दारोगा नियत हुआ। २० वे वर्ष मे २०० सवार बढ़े। इसके अनन्तर यह साथ के आदमियो का दारोगा नियत हुआ और २०० सवार बढाए जाने से इसका मनसब दो हजारी १००० सवार का हो गया। इसके बाद पाँच सदी जात और २१वें वर्ष मे फिर पाँच सदो बढ़ने से इसका मनसब तीन हजारी १००० सवार का हो गया। २३ वर्ष मे २०० सवार बढे और २४ वें वर्ष मे इसे झंडा और बाद को ३०० सवार की तरक्की मिली, जिससे इसका मनसब तीन हजारी १५०० सवार का हो गया। २९वें वर्ष मे डंका पाकर यह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। ३०वें वर्ष में जब इसकी अवस्था ७० वर्ष की हो गई, तब यह फालिज की बीमारी के कारण सेवाकार्य से दूर हो गया। बादशाह ने कृपा करके इसे बीस लाख दाम के गाँव आगरा ववेली मे से जागीर मे देकर इसके पुत्र और पौत्र का मनसब बढ़ाया। जो सेवाएँ इसे मिली थी उनपर दूसरे नियत किए गए। ३१ वें वर्ष में २७ शाबान सन् १०६७ हि०, सन् १५४७ ई० को यह आगरे में मर गया।

●

---

1. देखिए जहाँगीर का आत्मचरित हिंदी पृ० २५६।

७०४. हसन अली खाँ बहादुर

यह अलावर्दी खाँ का द्वितीय पुत्र था। इसका मुख शेर के समान भयानक और डरावना था, इसलिए लडकपन में इसको मिर्जा बाघ कहते थे। अपने हाथों की शक्ति तथा डीलडौल से यह अच्छा जवान था और अपने सब भाइयो मे से विशेष संमानित था। यह अपनी प्रसन्नता से बराबर पिता के साथ रहता था। शाहजहाँ के राज्य के अन्त मे शाहजादा शुजाअ ने विद्रोह किया और अलावर्दी खाँ को अपने पुत्रो के साथ बाध्य होकर उसका साथ देना पडा। बनारस के अन्तर्गत बहादुर पुर मे जो युद्ध शुजाअ तथा दाराशिकोह के बडे पुत्र सुलेमान शिकोह के बीच में हुआ था। उसके लिए सुलेमान शिकोह बहुत से बादशाही सेवको के साथ भेजा गया था। इस युद्ध में परास्त होकर शुजाअ बंगाल चला गया। हसन अली अपने पिता से अलग होकर बादशाही सेना मे जा मिला। दाराशिकोह के पराजय पर जब सुलेमान शिकोह की सेना में गड़बडी मची और हर एक बादशाही मनसबदार तथा उनके नौकर साथ छोडकर अपनी अपनी राह चले गए तब हसन अली भी राजा जयसिंह की मध्यस्थता में औरगजेब की सेवा मे पहुँच कर पाँच सदी तथा कुछ सवारों की तरक्की होने से डेढ हजारी १००० सवार का मनसब तथा खाँ की पदवी पाकर कृपापात्र हुआ। इसी वर्ष जब औरंगजेब खजवा युद्ध के लिये रवाना हुआ तब इसका मनसब पाँच सदी बढा और इसे कोरबेगी की सेवा मिली। दाराशिकोह के साथ द्वितीय युद्ध के अनतर जब औरंगजेब राजधानी दिल्ली में आया, तब कोरबेगी पद के साथ शाहजहानाबाद के इर्द गिर्द की फौजदारी पर कीर्त्तसिंह के स्थान पर यह नियत हुआ। कोरबेगी पद पर रहने से हसन अली खाँ यात्रा मे या राजधानी में बराबर बादशाह के साथ रहते हुए अच्छी सेवा करने के कारण शाही कृपा का विशिष्ट पात्र हो गया। ९वें वर्ष में यह साथ के सेवकों का दारोगा भी नियत हो गया। १२वें वर्ष में जब बादशाह आगरे से लौटे तब हसन अलीखाँ सफ शिकन खाँ के स्थान पर मथुरा का फौजदार नियत हुआ। इसका मनसब बढकर साढ़े तीन हजारी २५०० सवार का हो गया और यह शाही सेना के साथ उस प्रात के विद्रोहियो को दंड देने भेजा गया। हसन अलीखाँ ने इन उपद्रवियो को मारने तथा पकडने में और उनके स्थानों को लूटने तथा नष्ट करने मे बडी वीरता दिखलाई और उनके नसल को नष्ट करने तथा उनके दृढ दुर्गों को खोद डालने मे कोई उपाय न छोड़कर जमीदारी महालो पर अपने साथियों तथा दूसरो को अधिकार दे दिया। इसने विद्रोही गोकुल जाट को, जो फौजदार अब्दुलनबीखाँ को मार डालने और शादाबाद परगना लूटने का कारण हुआ था, उसके कपटी 'संगी' के साथ कैदकर दरबार भेज दिया। बादशाही क्रोध

के कारण इसके अंग अंग काटकर अलग कर दिए गए। गोकुल के पुत्र और पुत्री जवाहिर खाँ नाजिर को पालने के लिये दे दिए गए। अंत मे वह लड़की शाहकुली चेला को निगाही गई, जिसका अच्छा मनसब था। इसका पुत्र फाजिल हाफिज हुआ, जिसकी याद के आगे औरंगजेब के विचार मे कोई दूसरा विश्वास के योग्य न था और जिसका पढना सुनकर वह बादशाह बड़ा प्रसन्न होता था, क्योंकि वह स्वयं कुरान याद करने में राजगद्दी के बाद दत्त चित्त हुआ। हसन अली को इस प्रयत्न के उपलक्ष्य मे डका मिला था। इसके अनंतर इलाहाबाद प्रात का अध्यक्ष नियत होकर यह २०वें वर्ष मे आगरे का सूबेदार हुआ। २२वें वर्ष मे जब बादशाही सेना पहली बार अजमेर में पहुँची तब यह खानजहाँ बहादुर के साथ मृत राजा जसवंत सिंह के राज्य जोधपुर आदि पर अधिकार करने के लिये भेजा गया। जब २३वें वर्ष मे बादशाह दंड देने की इच्छा से अजमेर उदयपुर की ओर रवाना हुए तब एक भारी सेना हसन अली खाँ की अधीनता मे बहुत अधिक सामान सहित राणा का पीछा व दमन करने को भेजी गई। इस काम में हसनअली खाँ ने बडी वीरता तथा अच्छे कार्य दिखलाए। एक दिन दर्रा पारकर इसने राणा पर आक्रमण कर दिया और वह वहाँ न रुक सकने पर खेमा और सामान छोड़कर बाहर चला गया। बहादुर हसन अली खाँ राणा की हवेली के सामने के देवालय तथा उदयपुर के आस पास के एक सौ बहत्तर मंदिरों को नष्ट भ्रष्ट कर द बार पहुँचा और इसे बहादुर आलमगीरशाही की पदवी मिली। इसके अनंतर जब बादशाही सेना दक्षिण की ओर रवाना हुई तब हसनअली खाँ शाहजादा मुहम्मद आजम के साथ बीजापुर के घेरे पर नियत हुआ। प्रति दिन घेरे मे मारकाट तथा युद्ध जारी रहा और आसपास बराबर सेनाओ के धावे होते रहे इसलिये वहाँ अन्न का बडा अकाल पडा। इस कारण २९वे वर्ष मे शाहजादे के नाम यह आज्ञा भेजी गई कि ऐसी अवस्था मे वह घेरे से अपना हाथ खीच ले और सेना के साथ बादशाह के पास चला आए, जो उस समय शोलापुर के पास पडाव डाले हुए था। शाहजादे ने अपने अनुभवी सरदारो की मत्रणासमिति बुलाई। पहले हसन अली खाँ बहादुर आलमगीर शाही से संमति पूछी गई कि इस घेरे का कुल प्रबंध बादशाही सेवकों पर निर्भर है और बादशाह के यहाँ से ऐसी आज्ञा आई है। अब सधि या युद्ध तथा जल्दी या देरी करने मे तुम्हारी ही संमति विशेष महत्व की है क्योंकि इस प्रकार के बहुत से दु.ख तथा कष्ट तुमने देखा सुना और उठाए हैं। ऐसी अवस्था मे क्या विचार है! हसन अली खाँ ने उत्तर दिया कि सेना की भलाई तथा जनता के आराम के लिये घेरा उठा लेना ही उचित है। जब बलख की चढाई मे शाहजादा मुराद बख्श जाड़े के कारण वहाँ ठहर न सका तब शाहजहाँ की आज्ञा न होने पर भी उसने निरुपाय होकर युद्ध से

हाथ खींच लिया और दरबार चला आया तब वहाँ आदमियों पर जो कुछ बीता था वह सब पर प्रगट है। यहाँ तो बादशाह ने स्वयं आज्ञा भेज दी है। इसके अनंतर दूसरे सरदारों ने भी उक्त खाँ की संमति के अनुसार राय दी। शाहजादे ने कहा कि तुम लोग अपनी अपनी कह चुके अब हमारी सुनो। मुहम्मद आजम अपने दो पुत्र तथा बेगम के साथ जबतक प्राण है इस घेरे को न उठावेगा। उसके अनन्तर बादशाह स्वयं यहाँ आवेंगे और सबों का प्रबन्ध करेंगे। साथियों को रहने का या चले जाने का अधिकार है। स्वामियों की इच्छा देश तथा धर्म का ही नाम है और मृत्यु ईश्वरी है, दूसरे प्रकार नहीं हो सकती। इस प्रकार जब शाहजादा ठहरा हुआ था उसी बीच खाँ फीरोजजंग भारी सेना तथा बहुत से अन्न व रसद के साथ आ पहुँचा, जिससे अवस्था बिलकुल बदल गई। इसी वर्ष एरिजखाँ के स्थान पर हसन अलीखाँ बहादुर बरार का सूबेदार नियत हुआ। इस कारण कि यह बीजापुर के घेरे में लगा हुआ था और वहाँ अच्छे कार्य किए थे, रजीउद्दीन खाँ शेख रजीउद्दीन इसका प्रतिनिधि होकर वहाँ भेजा गया, जो भागलपुर बिहार का एक भला आदमी था और हसन अलीखाँ के गृहकार्य तथा उसके अधीनस्थ बादशाही सेना का प्रबन्ध देखता था।

शेख योग्य विद्वान था और आलमगीरी फतवों के संग्रह का कार्य करता था। यह तीन रुपया रोज पाता था। यह अनेक कार्य जानता था, जैसे सैनिक तथा प्रबंध कार्य, ज्योतिष तथा हर स्थान के समाचार एकत्र करना। इसके सिवा काजी मुहम्मद हुसैन जौनपुरी द्वारा, जो दरबारी मुहतसिब (हिसाब करनेवाला) था, इसके गुणों का औरंगजेब से उल्लेख किए जाने पर इसे एक सदी मनसब मिला। क्रमशः भाग्य के जोर तथा अपने अच्छे व्यवहार के कारण और हसन अलीखाँ की सहायता से यह सरदार और खाँ हो गया। उक्तखाँ की सरकार का पेशकार होकर इसने मथुरा के जाटों के दमन करने और राणा की चढ़ाई में अच्छे कार्य दिखलाए। ३० वें वर्ष के आरम्भ में सिपाहियों के साथ बातचीत करते समय यह मारा गया। उस प्रांत का प्रबंध एरिज खाँ के दामाद मुहम्मद मोमिन को हसन अली खाँ के प्रतिनिधि रूप मे सौंपा गया।

जब बीजापुर का घेरा बहुत दिनों तक चला तब बादशाह के मुख से साहस के उबलने से यह निकला कि हमलोग सभी सुलतान सांसारिक पदों से यही लाभ उठाते है कि नाम पैदा करते हैं। मैं चाहता हूँ कि मेरा एक पुत्र इसे पावे पर वह नहीं मिलता। देखता हूँ कि यह दीवाल किस तरह आगे से नहीं हटती। वह शोलापुर से इस ओर रवाना हुआ। भाग्य प्रबल होता है। २१ शाबान सन् १०९७ हि० को बीजापुर से तीन कोस पर रसूलपुर मे बादशाह ने पड़ाव डाला और उसी वर्ष ४ जीकद. को बीजापुर पर अधिकार हो गया। हसन अली खाँ बहादुर, जो

बहुत बीमार था, इसके एक दिन बाद मर गया। यह साहस तथा वीरता में बराबर-वालों से आगे बढ़ गया था। यह लोगों की भलाई, बातचीत तथा कार्य करने में, आदर्श मनुष्य था। इसके दोनों पुत्र मुहम्मद मुकीम और खैरउल्ला ने उन्नति नहीं की।

•

७०५. हसन बेगखाँ बदख्शी शेख उमरी

यह इस (मुगल) राज्य का वीर तथा परिश्रमी पुराना सेवक था। जब ३४वें वर्ष में अकबर कश्मीर की सैर से छुट्टी पाकर जाबुलिस्तान की ओर जाने के विचार से पखली प्रांत में, जो पैंतीस कोस लंबा और पचीस कोस चौड़ा कश्मीर के पूर्व तक फैला हुआ है; पहुँचा तब सुलतान हुसेन खाँ पखलीवाल मिलने आया, जो कारलूग जाति का था। इस जाति के कुछ लोगों को तैमूरलंग तूरान को लौटते समय इस प्रांत की रक्षा के लिये यहाँ छोड़ गया था। यह कुछ दिन बाद भाग गया। बादशाह ने इस प्रांत को हसनबेग को जागीर में देकर इस पर अधिकार करने भेजा। हसन बेग ने बड़ी वीरता तथा दृढ़ता के साथ धावे कर उस प्रांत को अपने अधिकार में कर लिया। जब ३५वें वर्ष में यह दरबार आया तब पखलीवाल ने फिर से विद्रोह मचाया और नीचता से अपने को सुलतान नसीरुद्दीन नाम देकर हसन बेग के आदमियों से पखली छीन लिया। इस पर हसन बेग ने फिर शाही सेना के साथ नियत होकर उसे उचित दंड देकर हटा दिया। ४६वें वर्ष में बंगश प्रांत में अच्छा कार्य करने के कारण इसका मनसब ढाई हजारी हो गया। अकबर के राज्य के अंत में रोहतास जागीर में पाकर यह काबुल की रक्षा पर नियत हुआ। जहाँगीर के राज्य के १म वर्ष में बुलाए जाने पर जब यह मथुरा पहुँचा तब सुलतान खुसरो से इससे भेंट हुई, जो २० जीहिज्जा सन् १०१४ हि० रविवार की रात्रि को आगरा दुर्ग से भागा था। हसनबेग बादशाह जहाँगीर की ओर से संतुष्ट न था और इस बुलावे से इसे कृपा न रहने की आशंका हो गई थी। वास्तव में बदख्शियों का स्वभाव उपद्रव तथा फिसाद से भरा होता है, इसलिये सुलतान खुसरो के कहने सुनने पर इसने सीधा मार्ग छोड़ उसका साथ देना निश्चय किया और तीन सौ बदख्शी सैनिकों के साथ उसकी ओर हो गया। खुसरो ने इसे खानबाबा संबोधित कर अपना कुल अधिकार इसे सौंप दिया।

जब खुसरो ने व्यास नदी के किनारे अपनी एकत्रित सेना के साथ बादशाही सेना का सामना करने की दृढ़ता दिखलाई तब थोड़े से युद्ध के बाद परास्त होकर वह बुरी दशा में हसन बेग तथा लाहौर के दीवान अब्दुल् रहीम के साथ, जो इसके पास पहुँचकर मलिक अनवर की पदवी पा चुका था, मारा मारा फिरने लगा। तब बहुत से अफगानों ने, जिन्होंने इसका पक्ष ले लिया था, पूर्व की ओर जाने को इसे बहकाया। हसन बेग ने कहा कि यह राय ठीक नहीं है, तुमको काबुल की ओर जाना चाहिए। घोड़े तथा आदमियों की उस प्रांत में कमी नहीं है। जो कोई काबुल में हो वह जितने नौकर चाहे सब मिल सकते हैं। बाबर तथा हुमायूँ ने काबुल पाने पर ही हिंदुस्तान विजय किया था। उन लोगों के पास कोप न था और हमारे पास रोहतास में चार लाख रुपया रखा है, जिसे मैं भेंट कर दूँगा और वहाँ पहुँचते ही बारह सहस्र सवार एकट्ठा कर लूँगा। यदि बादशाह पीछा करेंगे तो हम युद्ध को तैयार हैं और यदि उस प्रांत को छोड़ देंगे तो कुछ दिन ठहरकर अवसर देखेंगे। सुलतान खुसरो अदूरदर्शिता से अपना सब कार्य इसके हाथ में दे चुका था इसलिये इसी के बतलाए हुए मार्ग पर चला। दैवयोग से चिनाब नदी के किनारे वह पकड़ा गया। उस समय जहाँगीर लाहौर के पास मिर्जा कामराँ के बाग में ठहरा हुआ था। ३ सफर १०१५ हि० को खुसरो के हाथ पैर बाँधकर चंगेजी प्रथा के अनुसार बादशाह के सामने ले आए। हसन बेग और अबुल्रहीम को दाहिने और बाएँ रखकर खुसरो बीच में काँपता और रोता हुआ खड़ा था। हसनबेग लाभ के विचार से बेहूदी बातें बकने लगा। जब इसका अर्थ प्रकट हो गया कि यह चुप न रहेगा तब आज्ञा हुई कि खुसरो को बँधे हुए कैद में रखें और हसन बेग को बैल के और अब्दुल्रहीम को गदहे की खाल में कसकर और गदहों पर बैठाकर घुमावें। बैल की खाल गदहे की खाल से जल्दी सूखती है इसलिये हसनबेग चार पहर से अधिक नहीं जीवित रहा, पर दूसरा एक दिन और रात तक जिंदा रहा और तब मुसाहिबों की प्रार्थना पर उसे बादशाही क्रोध से, जो ईश्वरी कोप के समान है, छुट्टी मिली। दूसरों को शिक्षा देने के लिये कामराँ बाग से दुर्ग तक दोनों ओर शूलियाँ गाड़ी गई और खुसरो के साथियों में से बहुतों को उन पर चढ़ा दिया गया। दूसरे दिन जब बादशाह लाहौर में गए तब आज्ञा दी कि खुसरो को हाथी पर बैठाकर इन शूलियों के बीच में घुमावें और आवाज दें कि तुम्हारे मुसाहब और सेवक लोग तुम्हारा मुजरा करते हैं। हसनबेग का पुत्र असफंदियारखाँ शाहजहाँ के राज्य में डेढ़ हजारी मनसब तक पहुँचकर १६वें वर्ष में मर गया।

७०६. हसन सफवी, मिर्जा

यह मिर्जा रुस्तम[1] कंधारी का तृतीय पुत्र था। जहाँगीर के राज्यकाल में इसे डेढ़ हजारी ७०० सवार का मंसब प्राप्त था। शाहजहाँ की राजगद्दी पर यह अपने पिता के साथ बिहार प्रांत से आकर सेवा में उपस्थित हुआ। २रे वर्ष यह बंगाल प्रांत मे नियत होकर वहाँ गया। यह बहुत दिनो तक अपने पुत्र मिर्जा सफशिकन के साथ उस प्रांत के सहायकों मे रहा। कभी कभी बुलाए जाने पर दरबार में जाता था और फिर छुट्टी मिलने पर लौट आता था। यह मंसब मे उन्नति होने से संमानित होता था। १९वें वर्ष में तीन हजारी २००० सवार का मंसब पाकर यह फतेहपुर बयाना का जागीरदार नियत हुआ। २०वें वर्ष में यह अपने छोटे भाई शाहनवाज खाँ सफवी के स्थान पर जौनपुर का फौजदार नियत हुआ। इसके पुत्र सफशिकन को डंका प्रदान किया गया और इसका मंसब बढ़कर दो हजारी २००० सवार होने पर यह पिता के पास नियुक्त किया गया। २१वें वर्ष में मिर्जा पुत्र के साथ जौनपुर से आकर दरबार में उपस्थित हुआ। इसके बाद फिर पिता पुत्र बंगाल में सहायक नियत हो उस प्रांत को गए। २२वें वर्ष मे शाहजादा मुहम्मद शुजाअ की प्रार्थना पर उक्त प्रांत के कूच का यह थानेदार नियत हुआ और इसके मंसब मे एक सहस्त्र सवार बढ़ाए गए। २३वें वर्ष सन् १०५९ हि० के अंत में इसकी मृत्यु हो गई। इसने खाँ की पदवी स्वीकार नहीं की। पिता की मृत्यु पर मिर्जा सफशिकन बंगाल प्रांत के स्थानो की थानेदारी या फौजदारी करता रहा। इसके अनन्तर एकांतवास करते हुए बादशाह को दुआ करता हुआ वृत्ति पाता रहा। सन् १०७३ हि० औरंगजेब के ५ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हुई। मीर मीरान यज्दी की पुत्री तथा नवाजिश खाँ अब्दुल्काफी की, जो खलीलुल्ला खाँ का सौतेला भाई था, बहिन से इसका निकाह हुआ था इसका पुत्र सैफुद्दीन सफवी खलीलुल्ला का दामाद होने के कारण बादशाही कृपापात्र हुआ। ७ वें वर्ष में कामयाब खाँ की पदवी से समानित हुआ। किसी कारण से यह मंसब से हटा दिया गया। १४ वें वर्ष मे इसका मंसब बहाल हुआ और इसे खाँ की पदवी भी मिली।

---

१. इसी ग्रंथ के आरंभ में इसकी जीवनी दी हुई है।

७०७. हाकिम बेग

यह जहाँगीर कालीन एतमादुद्दौला का दामाद था। जहाँगीर के राज्य मे जब एतमादुद्दौला के सम्बन्धी तथा परिरवावाले हर एक मनुष्य को खाँ तथा तरखान की पदवी मिल गई, तब यह भी ऐश्वर्य तथा डंका प्राप्त कर उच्च पदस्थ सरदार हो गया। इसकी स्त्री खदीका बेगम नूरजहाँ बेगम की बहिन होने के नाते बड़ी प्रतिष्ठा के साथ जीवन व्यतीत करती थी। शाहजहाँ के राज्य के अन्त काल तक यह जीवित थी और यमीनुद्दौला के विश्वास के कारण, जो इसका बड़ा भाई था, इसके संमान तथा प्रतिष्ठा में कोई कमी नही हुई। बराबर बादशाही पुरस्कारो से संतुष्ट रही। २४ वें वर्ष में शाहजहाँ ने एक बार बीस सहस्त्र रुपया इसे देने की कृपा की थी। हाकीम बेग योग्यता तथा विद्वत्ता से खाली नही था। पर आलस्य तथा आराम पसंद होने से स्वच्छंदता से जीवन व्यतीत करना चाहता था इसलिए जहाँगीर ने इस संबंध के कारण दरबार के सेवाकार्य से इसे क्षमा कर दिया और केवल बाहर के कामों पर भेजता था। यह कुछ दिनों तक मथुरा का शासक रहा। अन्त मे यह उस पद से हटाया गया। इसका कारण यह है कि जदरूप आश्रम नाम का एक संन्यासी था, जो भक्त तपस्वी था। उज्जैन बस्ती के पास जंगल के एक कोने में मनुष्यों से दूर एक टीला था, जिसमें एक जगह खोदकर उसी में रहता था। उसमें आने जाने का मार्ग साढ़े पांच गिरह लंबा और साढ़े तीन गिरह चौड़ा नापा गया था। वह अपने दोनों हाथ को लंबा कर भीतर डाल देता, फिर सिर और उसके बाद सांप की तरह भीतर चला जाता था। निकलने के समय भी इसी विचित्र प्रकार से बाहर चला आता था। इसके पास न बोरी और न घास था कि ठंढी हवा में नीचे डाल दे। जाड़े में न उसके पास अग्नि रहती और न गर्मी में हवा। आध गज कपड़े की लुंगी थी, जिससे अपने आगे पीछे का अंग छिपा लेता था। प्रति दिन दो बार नदी मे स्नान करने जाता था। तांबे का एक पात्र पीने के लिए जल लाने को हाथ मे रखता था। सारे उज्जैन नगर में ब्राह्मणो के सात घर, जो पुत्र कलत्रवाले तथा संतोषी और साधुओं पर विश्वास रखनेवाले थे, चुन लिए थे। प्रतिदिन एक बार बिना सूचना दिए इन सात में से किन्हीं तीन के यहाँ भिखमंगो की तरह जाकर खडा हो जाता था। वे अपने लिए जो सामान तैयार करते थे उसी में से पांच ग्रास इसकी हथेली पर रख देते थे और यह बिना स्वाद लिए गले के नीचे उतार देता था पर शर्त यह थी कि कोई स्त्री रजस्वला न हो और वहाँ कोई शोक, सूतक या वृद्धि न लगी हो। हिंदू लोग ऐसे स्थान के स्वामी को सर्वनासी कहते हैं।

११ वें वर्ष में जब जहांगीर उज्जैन नगर में आया तब वह उसे देखने को गया। इस कारण कि वह लोगों से मिलने जुलने की इच्छा नहीं रखता था, उसने उसका पूरा सत्संग किया। वह वेदांत का अच्छा ज्ञाता था, जिससे सूफियाना ज्ञान से मतलब है। उसने अपनी तीव्र बुद्धि तथा उच्च विवेचना शक्ति से इसलामी ज्ञान को अपने ज्ञान से मिलाते हुए दिखलाया, जिससे जहाँगीर का उसपर पूर्ण विश्वास हो गया। कुछ दिन बाद वह उज्जैन से हिंदुओं के एक बढ़े तीर्थस्थान मथुरा आकर जमुना नदी के किनारे निजी चाल पर अपने इष्ट देव की पूजा करने लगा। जब १४ वें वर्ष में जहांगीर पहली बार कशमीर को रवाना हुआ तब दोबारा उसके पास जाकर एकांत में उसका सत्संग किया। उसकी बातो ने बादशाह के हृदय पर पूरा प्रभाव डाला। वह जो कहता, वही पूरा होता था। खान आजम कोका सुल्तान खुसरो को कैद से छुड़ाने की बड़ी इच्छा रखता था इसलिए धार्मिक कट्टरता के होते भी वह अकेला उसके पास गया और खुसरों के छुटकारा के लिए प्रार्थना की। उसने बादशाह को समझाकर कृपा करने को वाध्य किया। बादशाह ने शाहजादे के दोषों को क्षमा करके आज्ञा दी कि वह कोरनिश करने आवे। यह कठिन कार्य इस निस्वार्थ साधु को कहने पर सुगम हो गया। तत्कालीन बादशाह उसपर विश्वास रखता था इसलिए बहुत लोग उसके पास आने जाने लगे।

यह किसी से कोई स्वार्थ न रखता था और दुख सुख दोनों में बराबर संतुष्ट रहता था इसलिए वहाँ के शासक के इसलाम के पक्षपात ने एकाएक जोर किया या आदमियों की भीड़ से प्रबंध में खलल आया कि उसने एक दिन इस बेचारे को कोड़ो से पिटवा दिया। बादशाह यह समाचार सुनकर बड़ा क्रुद्ध हुआ। वह बहुत कुछ करना चाहता था पर बेगम के कारण इतना ही कर सका कि उसने हाकिम बेग को अपनी दृष्टि से गिरा दिया और उसका पद, मनसब तथा जागीर छीनकर उसे दंडित किया। हाकिम बेग आगरे में एकांतवासी हो गया और नखास के पास एक बहुत अच्छा बाग, जो कशमीर के बाग से बढ़कर था, बनवाकर उसी मे पठन पाठन करता रहा। समय पर यह मर गया। इसका पुत्र मिर्जा नूरूल दह्र भी बादशाही सेवाकार्य न कर अपनी मां तथा मौसियो के धन से व्यापार करता और अपना जीवन अच्छी प्रकार से व्यतीत करता रहा।

●

७०८. हाजिक, हकीम

यह हकीम गीलानी का पुत्र था। पर फतहपुर सीकरी मे अकबर के राज्यकाल में पैदा हुआ था और जब यह अल्पवयस्क था तभी इसके पिता की मृत्यु हो गई। इसके पूर्वजगण सभी विद्वान होते आये थे इसलिये इसने भी विद्या तथा गुण अर्जित कर कविता तथा गद्यलेखन में प्रसिद्धि प्राप्त की। यद्यपि यह हकीमी में उतना कुशल न था पर तब भी योग्यता मे इसने नाम कमाया था। जहाँगीर के समय योग्यता तथा विश्वास के कारण यह विशेष सफल हुआ।

जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा तब इसे डेढ हजारी ६०० सवार का मनसब मिला। उसी वर्ष यह राजदूत होकर तूरान भेजा गया क्योंकि वहीं के शासक इमाम कुलीखाँ ने सचाई तथा विश्वास के साथ जहाँगीर के पास ख्वाजा अब्दुल् रहीम जूयेबारी को इस लेख के साथ सधिरूप मे भेजा था। उसने कहलाया था कि शाह अब्बास सफवी ने पुरानी मित्रता को न मानकर बादशाही अधिकार से कंधार को छीन लिया है इसलिये यह उचित होगा कि युवराज भारी सेना और सामान के साथ उस दुर्ग को विजय करने को भेजा जाय। वह भी मावरुन्नहर, बल्ख तथा बदख्शा की सेना के साथ उस ओर जाकर जो कुछ राजभक्ति चाहिये उसे दिखलावेगा और विजय के अनंतर खुरासान पर अधिकार कर उस प्रांत का जो भाग चाहे वह साम्राज्य मे मिलाकर बचा हुआ भाग उसे दिया जाय। एकाएक इस बातचीत के मध्य में जहाँगीर बादशाह पर अवश्यभावी घटना घट गई अर्थात् वह मर गया। ख्वाजा शाहजहाँ की राज्यगद्दी के आरंभ मे राजधानी लाहौर से आगरे आकर सेवा मे उपस्थित हुआ और यही रहते हुए अपनी पुरानी बीमारी से मर गया। इस ओर से मित्रता का पत्र और उपहार भेजना आवश्यक हुआ। हकीम हाजिक को, जिसका पिता अकबर के राज्यकाल में अब्दुल्लाखाँ उजबक के पास राजदूत होकर गया था, डेढ लाख रुपये की भेंट तथा हिंदुस्तान की अच्छी वस्तुओं के साथ वहाँ भेजा गया। ४वें वर्ष वहाँ से लौटने पर यह हकीम मसीह जल्जमाँ के स्थान पर अर्ज मोकर्रर नियत हुआ, जिसके लिये सभा-चातुरी तथा स्वभाव पहचानना आवश्यक है। इसके अनंतर इसका मनसब बढते हुए तीन हजारी तक पहुँच गया। इसके बाद कारण वश मनसब छिनजाने पर यह आगरे मे बीस सहस्त्र रुपया वार्षिक वृत्ति पर संतोष कर एकांतवास करने लगा। १८वें वर्ष मे इसकी वार्षिक वृत्ति बढकर चालीस सहस्त्र रुपए हो गई, जिससे वह आराम से रहने लगा। १३वें वर्ष सन् १०६८ हि० मे इसकी मृत्यु हो गई। मीरातुल आलम के ग्रंथकर्ता ने इसकी मृत्यु सन् १०८० हि० में लिखा है।

हकीम बहुत तेज मिजाज, घमंडी तथा उद्दंड था। स्वार्थी होने से अपनी गलती पर विचित्र अकिल लगाता था। मीर अल्लाही हमदानी की यह रुबाई प्रसिद्ध है, जो अच्छी कल्पनावाले कवियो मे से एक था और हकीम तूरान से राजदूत का कार्य पूराकर लौटते समय काबुल मे जिससे मिलने गया पर दोनो में मित्रता न हो सकी। रुबाई का अर्थ—पत्थर तथा ठिलिया से सदा साथ नही हो सकी। रुबाई का अर्थ—पत्थर तथा ठिलिया से सदा साथ नही हो सकता। नेत्र मे बाल का मेल नहीं हो सकता। हकीम हाजिक से सत्संग बुद्धिमानी नही है। सेना के सामने पागलपन नही किया जा सकता।

यद्यपि इसकी हकीमी अच्छी प्रकार नही चली पर इसके नाम तथा विश्वास के कारण सरदार लोग इसकी दवा करते थे। इसने मआसिरे साहेब-किराने सानी (शाहजहाँ का जीवन वृत्त) लिखना आरंभ किया था पर जब दूसरे सुलेखकों को यह कार्य सौंपा गया तब इसने अपना हाथ खींच लिया। इसके शैर साफ और ठीक होते थे। यह पुराने कवियो की शैली में नए कवियो की शैली का मेल कर लेता था, जो माधुर्य से हीन नहीं था परंतु यह अपने को अनवरी से बढ़कर समझता था। इसने अपने दीवान को बडी शान मे सजाया था तथा जड़ाऊ रिकाबी में रखकर जब मजलिश मे लाता तब जो कोई उसका समान करना न चाहता तो यह उससे अप्रसन्न हो जाता, चाहे वह कितना भी बडा आदमी होता। यह उस दीवान को सोने की चौकी पर रखकर पढता था। उसका यह शैर प्रसिद्ध है। शैर उर्दू रूपांतर—

दिल किसी तरह तसल्ली न पारहा हाजिक।
बहारे गुल व खिज़ाँ देख लिया सब हमने॥

•

७०९. हाजी मुहम्मदखाँ सीस्तानी

यह बैरामखाँ का एक अच्छा सेवक था और उक्तखाँ इससे बराबर मुसाहेब की तौर पर संमति लिया करता था। सन् ९६१ हि० में कुछ दुष्टों ने हुमायूँ बादशाह से झूठ ही कह दिया कि बैराम खाँ ने, जो कंधार का शासक था, ऐसी ऐसी बाते कही हैं, जिससे बादशाह काबुल से उस ओर गए। वहाँ पहुँचने पर जब यह निश्चय हो गया कि जो कुछ इसके विषय मे कहा गया है सब झूठ है तब बसंत-बीतने पर कंधार में बैराम खाँ को छोड़कर बादशाह लौट आए पर सतर्कता

से हाजी महम्मद को साथ में लिवाते आए, क्योंकि इससे दुष्टता की आशंका रखते थे। हिंदुस्तान की विजय करने के अनंतर बैरामखाँ के द्वारा इसे खाँ की पदवी और ऊँचे पद मिले। अकबर के राज्य के प्रथम वर्ष में जब बादशाह जालंधर से हेमू को दमन करने के लिये दिल्ली की ओर रवाना हुआ, उस समय खिज ख्वाजा खाँ को हाजी महम्मद खाँ सीस्तानी तथा अन्य सरदारों के साथ सिकंदरशाह सूरी को दमन करने के लिये और पंजाब प्रांत का संबंध करने के लिये लाहौर भेजा। जब दिल्ली के पास तरदी बेग खाँ के पराजय पर उपद्रव मचा तब मुल्ला अबुल्ला मखदूमुल् मुल्क ने, जो कहते हैं कि, प्रकट मे अपने को बादशाही सैनिक कहता था पर हृदय से अफगानों से मिला हुआ था, सिकंदर सूर को सब वृतांत लिखकर सिवालिक पहाडो से बाहर आने की राय दी। ख्वाजा खिज खाँ नगर की रक्षा का भार हाजी महम्मद खाँ सीस्तानी को सौपकर स्वयं उसे दमन करने के लिये बाहर निकला। हाजी महम्मद खाँ को जब मुल्ला की दुष्टता का निश्चय हुआ तब उसको शिकजे में कसकर आधे शरीर तक जमीन मे गड़वा दिया। उसका बहुत सा धन जमीन से निकलवाया, जिसे कंजूसीकर उसने जमीन में गाड़ रखा था। ३रे वर्ष सन् ९६६ हि० मे बैराम खाँ खानखानाँ मुल्ला पीरमहम्मद शरवानी से अप्रसन्न हो गया, जो उसका सहकारी प्रधान मंत्री था और उससे सब सरदारी का सामान छीनकर बयाना दुर्ग में भेज दिया और उसके स्थान पर हाजी महम्मद खाँ को वकील नियत किया। जिस समय अकबर बैराम खाँ से अप्रसन्न होकर शिकार के बहाने आगरे से निकल कर दिल्ली चला आया, उस समय पहिले बैराम खाँ को यह निश्चय नही हो रहा था कि बादशाह का मन उसकी ओर से फिर गया है। पर जब उसे इसका निश्चय हो गया कि अकबर ने वास्तव मे उसे अपनी नजरों से गिरा दिया है तब उसने उपाय सोचकर हाजी महम्मद खाँ को अन्य सरदारों के साथ बादशाह के पास भेज दिया और बादशाह की कृपा तथा अपने दोषो का उल्लेख करते हुए संदेश भेजा। जब हाजी दरबार पहुँचा तब बादशाह को अत्यंत क्रुद्ध देखकर उसने कुछ कहना अपनी शक्ति के बाहर समझा। इसे लौटने की आज्ञा नही मिली। इसके अनंतर जब बैराम खाँ अधीनता स्वीकार कर सिवालिक पहाड से बाहर आया और सेवा मे उपस्थित होकर हज्ज करने के लिये गया तब अकबर ने हाजी महम्मद खाँ सीस्तानी को तरसून महम्मद खाँ के साथ संग कर दिया कि साथ मे रहकर उसे बादशाही प्रांतों के बाहर रक्षापूर्वक पहुँचा दें।

कहते है कि मार्ग में एक दिन बैराम खाँ ने हाजी से कहा कि मुझको किसी के विरोध से उतना कष्ट नहीं पहुँचा जितना तुम्हारी कृतघ्नता से। तुमने हमारी पहिले की सब कृपाओं को भुला दिया। हाजी महम्मद खाँ ने उत्तर मे कहा कि

तुमने हुमायूँ बादशाह की कृपाओं तथा उन्नति देने और अकबर बादशाह के इतने सुव्यवहार तथा स्नेह के होते विद्रोह कर तलवार उठाई पर जो होना था वही हुआ। मैंने यदि तुम्हारा केवल साथ छोड़ दिया तो क्या आश्चर्य है? बैराम खाँ लज्जित होकर चुप हो रहा। हाजी महम्मद खाँ उसे नागौर तक पहुँचा कर दरबार लौटा। इसके अनंतर बराबर बादशाही सेवा में रहते हुए युद्धों में अच्छा काम दिखलाकर यह तीन हजारी मनसब तक पहुँचा गया। १२वें वर्ष जब बादशाही सेना चित्तौड़ विजय के लिये गागरून दुर्ग से लौटी, जो मालवा प्रांत की सीमा पर है तब सुलतान महम्मद मिर्जा के पुत्रों को दमन करने के लिए जो संभल सरकार से भागकर इस प्रांत में विद्रोह मचाए हुए थे, यह शहाबुद्दीन अहमद खां के साथ नियत हुआ तथा इसे मांडू सरकार में जागीर मिली। २० वें वर्ष में बंगाल के सहायकों मे नियत होकर दाऊद खां किर्रानी के युद्ध में, जो साहसी मान लिया गया था, मुनइमखां खानखानां के साथ रहकर घायल हुआ था। जब खानखानां गौड़ नगर में, जो प्राचीन समय में बंगाल की राजधानी थी, बस्ती बसाकर वहाँ रहने लगा तब बहुत से भले आदमी वहाँ की जलवायु से बीमार होकर मर गए। हाजी महम्मद खां भी वही इसी बीमारी से सन् ९८३ हि० सन् १५७६ ई० में मर गया।

•

७१०. हादी दादखाँ

यह रशीद खां अनसारी[1] का भाई था। शाहजहाँ के समय में इसने पांच सदी मन्सब पाया। ८वें वर्ष में यह सैयद खान जहाँ बारहः के साथ जुझारसिंह बुन्देला को दंड देने पर नियत हुआ। ९वें वर्ष मे जब बादशाह दक्षिण गए और तीन सेनाएँ तीन आदमियों की अध्यक्षता में साहु भोसला को दंड देने तथा आदिलशाही राज्य को लूटने के लिए भेजी गईं तब यह खानदौरां के साथ नियत हुआ। ११वें वर्ष में इसका मन्सब बढ़कर एक हजारी १००० सवार का हो गया। २२ वें वर्ष में इसके भाई रशीद खां के मरने पर इसका मंसब बढ़कर दो हजारी २००० सवार का होगया और भाई के स्थान पर यह तेलिंगाना प्रांत पर, जिससे नानदेर आदि विजित महालों से तात्पर्य, अधिकार करने भेजा गया। २४वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर ढ़ाई हजारी १५०० सवार का होगया तथा इसे खां की पदवी मिली। २५

---

१. इसी भाग में इसकी जीवनी दी हुई है।

वें वर्ष में इसे झंडा व डंका भी मिला। इसी वर्ष बादशाही आज्ञा तथा शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब के संकेत पर देवगढ़ के राजा कोकला के पुत्र केसरसिंह से बाकी कर वसूल करने के लिए कुछ मंसबदारों के साथ यह उस प्रांत की ओर गया। एलिचपुर का सूबेदार मिर्जा खाँ भी दूसरी ओर से वहाँ गया, जिससे क्षुब्ध हो एलिचपुर के सूबेदार से बिगडकर यह कर के साथ शाहजादे के पास चल दिया। ३१ वें वर्ष में बादशाही आज्ञा से शाहजादा मुहम्मद सुलतान के साथ यह गोल्कुंडा दुर्ग की ओर गया। शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के पहुँचने पर लड़ाइयों में इसने बहुत प्रयत्न किए और शाहजादे के नानदेर लौटने पर इसे छुट्टी मिली। इसी वर्ष सन् १०६६ हि०, सन् १६५६ ई० में यह मर गया और नानदेर में गाड़ा गया। यद्यपि इसे तीन पुत्र थे पर इसके भाई रशीद खाँ का पुत्र हलहामुल्ला इसका भतीजा ही इसकी सेवा के सँभालने योग्य था। बादशाह ने इसी पर कृपा कर इसका मंसब बढ़ाकर डेढ हजारी १००० सवार का कर दिया। इसके असन्द पुत्र अब्दुर्रहीम को ३१ वें वर्ष तक पांच सदी १२० सवार का मंसब मिला था।

•

७११. हामिद खाँ बहादुर सलावत जंग, मुइज्जुद्दौला

यह मायदरी खाँ फीरोज जंग का भाई था। पिता की जीवितावस्था में औरंगजेब के इसे पहिचानने के कारण सफल होकर इसने योग्य मंसब प्राप्त किया। २९ वें वर्ष में खाँ की पदवी तथा हथिनी पाकर मुहम्मद आजमशाह की सेना तक, जो बीजापुर के घेरे पर नियत था, खजाना पहुँचाने के कार्य पर यह नियुक्त किया गया। उस बादशाह के राज्य के अन्त तक यह ढाई हजारी १५०० सवार का मंसब प्राप्त कर चुका था।

औरंगजेब की मृत्यु पर आजमशाह के साथ हिंदुस्तान जाकर बहादुरशाह के साथ हुए युद्ध में यह बाएँ भाग का सर्दार था। आजमशाह के मारे जाने के अनन्तर यह बहादुरशाह की सेवा में पहुँचा और उसके ३रे वर्ष में बीजापुर का सूबेदार बनाया गया। इसके बाद यहाँ से हटाए जाने पर यह दरबार आया। मुहम्मदशाह के राज्य के आरंभ में जब निजामुल्मुल्क ने मालवा से दक्षिण पहुँचकर सैयदों के आदमियों से युद्ध किया तब यह सैयद अब्दुला खाँ कुतुबुल्मुल्क के साथ दिल्ली जा चुका था और जागीर बदली जाने से यह घर बैठ रहा। इसी बीच हुसेन अली खाँ अमीरुल्उमरा मारा गया और कुतुबुल्मुल्क सलीमगढ में कैद शाहजादों में से एक को बुलाकर सेना एकत्र करने लगा। इसी में इसकी जागीर बहाल की तथा नगद

भी देकर उसने इसे अपने साथ ले लिया। जब कुतुबुल्मुल्क कैद हुआ तब एतमादुद्दौला अमीन खाँ बहादुर ने इसको अपनी हाथी पर बैठाकर बादशाह की सेवा में पहुँचा दिया। इसके अनंतर जब गुजरात प्रांत का प्रबंध मुइज्जुद्दौला हैदर कुली खाँ के स्थान पर निजामुल्मुल्क आसफजाह को मिला तब यह वहाँ उसका नाएब नियत हुआ। इसके लिए मुइज्जुद्दौला सलावतजंग की पदवी देना प्रस्तावित कर दरबार लिख दिया।

सन् ११३६ हि० मे जब गुजरात की सूबेदारी आसफजाह को बदलकर सरबुलंद खाँ को मिली तब मुहम्मद काजिम नामक जमींदार के पुत्र शुजाअत खाँ तथा रुस्तम अली खाँ, जो पहले शुजाअत खा मुहम्मद बेग का नौकर था और उसके ये पुत्रगण अपनी कार्यशक्ति के कारण हैदर कुली खाँ के द्वारा बादशाही मंसब तथा खाँ की पदवी पा चुके थे, सरबुलंद खाँ के नायब होकर गुजरात तथा सूरत मे अधिकृत हुए पर मुइज्जुद्दौला के साथ के युद्ध मे दोनो मारे गये। इसपर सरबुलंद खाँ स्वयं वहाँ पहुँचा और हामिद खाँ का बख्शी मारा गया। सरबुलंद खाँ का उस प्रांत पर अधिकार हो गया। इस कारण निजामुल्मुल्क आसफजाह के बुलाने पर हामिद खाँ दक्षिण चला गया और नानदेर का सूबेदार नियत हुआ। कुछ दिन बाद सन् ११४० हि०, सन् १७२७ ई० मे, जब आसफजाह की सेना कर्णाटक के पास थी, यह गुलबर्गा के पडाव में मर गया। शाहबंद. निवाज के रौजे मे गुम्बद के बाहर गाडा गया। यह शीलवान, विनम्र, सैनिक तथा साहसी था। इसकी बातचीत में उद्दंडता भरी रहती थी। इसके पुत्रगण प्रसिद्ध हुए। खैरुल्ला खाँ, हफीजुल्ला खाँ व मरहमत खाँ प्रत्येक आसफजाह से संबंध रखने के कारण मंसब, जागीर तथा व्यय की सहायता के लिये नगद पाकर सम्मानित हुए। ये सब अपनी कभी कभी की दुश्शीलता के लिये भी प्रसिद्ध हुए। उस सर्दार की कृपा से सेवा मे छुटकारा पाकर ये घर पर कालयापन करते रहे। हर एक के यहाँ हिसाब बाकी था और जागीर का टुकड़ा पाकर किसी तरह दिनरात व्यतीत करते रहे। मरहमत खाँ के पुत्रगण को, जो अपनी सादगी के लिये विख्यात था, सूरत मे शिक्षा प्राप्त करने पर पहले को फतहयाब जंग और दूसरे को जफरयाब जंग की पदवियाँ मिली। मालकंदा पर्गने में इन्हें जागीर मिली। इस पुस्तक के लेखक से इनसे परिचय था।

७१२. हामिद बुखारी सैयद

यह सैयद मुबारक के पुत्र सैयद मीरान का लड़का था। सैयद मुबारक गुजरात के सर्दारों में से एक था। कहते हैं कि यह अपने निवास स्थान ओछा से एक घोड़े के साथ निकलकर गुजरात आया था। एक दिन मार्ग में एक मस्त हाथी इसे मिला, जिससे सैयद ने निरुपाय होकर उसके सिर पर ऐसा एक तीर मारा कि सिवा तीर की नोक के कोई चिह्न नही रह गया। उस दिन से वहाँ के आदमी इसकी तीर की कसम खाने लगे। क्रमशः इसके बाद यह ऊंचे पद पर पहुँच गया। जब एतमाद खाँ गुजराती ने अपने स्वार्थ के लिये नन्हू नामक एक लड़के को, जो उस प्रांत के साधारण आदमी का पुत्र था, सुलतान महमूद का पुत्र होना प्रकट कर मुजफ्फर शाह नाम दिया तथा उसके सर्दारों ने हर एक कोने पर अधिकार कर लिया तब सैयद मुबारक ने पत्तन, दोलका और डंडोका के बहुत से महाल जागीर मे पाया। इनमें से दोलकः और डंडोका उसकी मृत्यु के बाद सैयद मीरान को और उसके बाद सैयद हामिद को जागीर में मिला।

जब १७वें वर्ष में अकबर गुजरात विजय करने की इच्छा से उस ओर रवानः होकर पत्तन पहुँचा तब उक्त सैयद ने अपनी सेना के साथ आकर सेवा स्वीकार कर ली और इसपर कृपा हुई। इसके अनंतर जब गुजरात का शासन खानआजम मिर्जा अजीज कोका को मिला तब उक्त सैयद ने उसके साथ सहायक नियुक्त होकर वहाँ जाने की छुट्टी पाई। मिर्जाओं के साथ खान आजम का जो युद्ध हुआ था उस समय यह अहमदाबाद का अध्यक्ष था। १८वें वर्ष मे दोलका व डंडोका का शासन इसे मिला। इसके बाद कुतुबुद्दीन मुहम्मद खाँ का सहायक होकर यह खम्भात की ओर गया। २२वें वर्ष में मुलतान की अध्यक्षता प्राप्त कर यह बादशाही कृपापात्र हुआ। इसी वर्ष के अंत में मिर्जा युसुफ खाँ रिजवी के साथ यह बिलूचिस्तान प्रांत मे नियत हुआ, जहाँ के सर्दारगण उपद्रवी स्वभाव के कारण तथा भाग्य के फिर जाने से अधीनता छोड़कर सेवाकार्य से विमुख हो रहे थे। २५वें वर्ष में, जब मिर्जा मुहम्मद हकीम ने काबुल से आकर लाहौर को घेर लिया था, तब उक्त सैयद भी उक्त जिले के अन्य सर्दारो के साथ लाहौर में घिर गया था। वहाँ बादशाह के पहुँच जाने पर शाहजादा सुलतान मुराद मिर्जा मुहम्मद हकीम का पीछा करने पर नियत हुआ तब शाहजादे की सेना के बाएँ भाग की अध्यक्षता इसे मिली। जब बादशाह काबुल पहुँचे और वहाँ कुछ दिन रहने का विचार हुआ तब साथ के हाथियों को जलालाबाद रवानः कर उक्त सैयद को कुछ अन्य आदमियो के साथ उनके रक्षार्थ नियत किया। काबुल से लौटते हुए जब बादशाह सरहिंद के पास ठहरे हुए थे तब इसे जागीर पर जाने को छुट्टी मिली।

३०वें वर्ष में कुँवर मानसिंह के साथ यह काबुल में नियत हुआ। जब यह पेशावर पहुँचा, जो इसकी जागीर में था, तब इसकी सेना हिंदुस्तान की ओर लौट गई। यह स्वयं कुछ लोगों के साथ दुर्ग में असावधानी में रहने लगा और सब काम मूसा नामक एक नासमझ पर छोड़ दिया। यहाँ तक कि न्याय तथा आय का कुल प्रबंध इसी को सौंप दिया। इसने महमंद तथा गरीब: खेलों की संपत्ति के लालच से, जो दो सहस्र घर पेशावर में बसे हुए थे, उन्हें तंग कर डाला और उनके धन तथा स्त्रियों पर हाथ साफ करने लगा। उक्त जातियों ने नासमझी तथा उद्दंडता से जलाल: तारीकी को सर्दार बनाकर किराम के पास उपद्रव आरंभ कर दिया। सैयद हामिद आदमियों की कमी से इस फेर में था कि काबुल तथा अटक से सेना के आने तथा भाइयों के पहुँचने तक दुर्ग-स्थित हो पर अदूरदर्शियों की बातों मे पडकर इस आशंका से दूर रहा। एक को भेजकर शत्रु के हाल का पता लगाया। इसने मूर्खता से या बुरा चाहने से थोड़ा तथा खराब वृत्तांत शत्रु का बतलाया। इसने बहुत कुछ सोचने समझने पर भी डेढ़ सौ आदमियों के साथ बाहर आकर युद्ध आरंभ कर दिया। यद्यपि आरंभ ही में इसको एक तीर लगी पर इसने युद्ध से हाथ नहीं रोका। उसी झगड़े में इसका घोड़ा गड्ढे में जा रहा और इसका काम सन् ९९३ हि० में समाप्त हो गया। इसके चालीस संबंधी इसके साथ वीरता दिखलाकर मारे गए। वह दो हजारी मंसब तक पहुँचा था। बाद को अफगानों ने दुर्ग को घेर लिया। इसका छोटा पुत्र सैयद कमाल कुछ लोगों के साथ दृढ़ता से उसकी रक्षा करता रहा।

अकबर के राज्यकाल में इसका मंसब सात सदी था। जहाँगीर के गद्दी पर बैठने पर यह हजारी हो गया और शेख अब्दुल् वहाब बुखारी के स्थान पर दिल्ली का अध्यक्ष नियत हुआ। इसके बाद यह शेख फरीद बुखारी के साथ खुसरो का पीछा करने पर नियत हुआ, जो विद्रोह कर पंजाब की ओर जा रहा था। खुसरो के साथ के युद्ध में बाएँ भाग की सरदारी इसे मिली थी। शेख फरीद के हरावल के बारहा के सैयदों पर जब लड़ाई में दबाव पड़ा तब इसने उचित रीति से सहायता पहुँचा कर बड़ी वीरता दिखलाई और इससे बादशाह की कृपा हुई। सैयद कमाल का पुत्र सैयद याकूब डेढ़ हजारी १००० सवार के मंसब तक पहुँचकर शाहजहाँ के २ रे वर्ष में मर गया।

●

७१३. हाशिम खाँ

यह मीर वह्ल काशिम खाँ का पुत्र था। जब अकबर के राज्य के ३९वें वर्ष में इसका पिता काबुल मे मारा गया और वहाँ की अध्यक्षता कुलीज खाँ को मिली तब यह दरबार आकर कृपापात्र हुआ। ४१वें वर्ष में मिर्जा रुस्तम कंधारी के साथ यह उत्तरी पर्वतों के राजा बासू आदि उपद्रवियों को दंड देने गया। मऊ दुर्ग लेने में इसने बहुत प्रयत्न किया और फिर दरबार आया। ४४वें वर्ष में यह शेख फरीद बख्शी के साथ आसीर दुर्ग विजय करने गया। इसके बाद यह सआदत खाँ के साथ नासिक की ओर भेजा गया, जो दक्षिण के शासकों द्वारा कालना तथा त्रिबंग का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ था और सौभाग्य से दरबार आया। ४७वें वर्ष मे इसने डेढ़ हजारी मंसब पाया। जहाँगीर के १ म जलूसी वर्ष में इसका मंसब दो हजारी १५०० सवार का हो गया और इसे एक घोड़ा भी मिला। २ रे वर्ष में इसे तीन हजारी २००० सवार का मंसब और उड़ीसा की प्रांताध्यक्षता मिली। ५वें वर्ष मे एकाएक इसे कश्मीर का शासन मिला। इसका चाचा ख्वाजगी मुहम्मद हुसेन वहाँ भेजा गया कि इसके पहुँचने तक वहाँ का प्रबंध देखे। उसी वर्ष के अंत मे दरबार आकर यह कश्मीर गया। इसका पुत्र मीर आतिश मुहम्मद कासिम खाँ शाहजहानी था, जिसकी जीवनी अलग दी गई है।

•

७१४. हिजब्र खाँ

यह अल्लाहवर्दी खाँ का पुत्र था। औरंगजेब के राज्यकाल के ७वें वर्ष में यह रोहतास दुर्ग का अध्यक्ष हुआ और फिर अपने भाई के स्थान पर बनारस का फौजदार नियत हुआ। इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी ७०० सवार का हो गया। १८वें वर्ष सन् १०८५ हि० में जगदलक का, जो काबुल के मार्ग में पड़ता है, थानेदार नियुक्त होकर वहीं अफगानों के युद्ध में पुत्र के साथ मारा गया।

•

७१५. हिजब्र खाँ, सैयद

यह बारहा के सैयदों में से था। जहाँगीर के राज्य के ८ वें वर्ष मे शाहजादा सुल्तान खुर्रम के साथ यह राणा अमर सिंह पर भेजा गया। १३ वें वर्ष मे यह एक हजारी ४०० सवार के मन्सब तक पहुँचा था। १८ वें वर्ष मे सुल्तान पर्वेज के अधीन यह शाहजहाँ का पीछा करने पर नियत हुआ। जिस वर्ष जहाँगीर की मृत्यु हुई यह शहरयार के युद्ध मे यमीनुदौला आसफखाँ के साथ था। उस राज्य के अंत समय तक तीन हजारी २००० सवार के मंसब तक पहुँचा था। शाहजहाँ के राज्य १म वर्ष मे सेवा मे पहुँचकर तथा पुराना मंसब बहाल हो जाने पर यह महाबत खाँ के साथ काबुल प्रांत में नियत हुआ, जहाँ बलख का शासक नजर मुहम्मद खाँ उपद्रव का कारण हो रहा था। ३रे वर्ष मे जब बादशाह दक्षिण गये तब यह यमीनुदौला के साथ बालाघाट की ओर गया। ११वें वर्ष में खानदौराँ नसरतगंज के साथ यह काबुल की ओर, जहाँ शाहजादा सुलतान शुजाअ ईरान के नरेश शाहसफी के दुर्ग कंधार को लेने के लिए आने की शंका पर जाकर ठहरा हुआ था, भेजा गया। इसी समय सन् १०४७ हि० सन् १६३७ ई० में यह मर गया। इसका पुत्र सैयद जबर्दस्त ३०वें वर्ष तक आठ सदी ४०० सवार के मन्सब तक पहुँचा था।

७१६. हिदायतुल्ला सदर, सैयद

यह सैयद अहमद कादिरी का पुत्र था, जो जहाँगीर के समय सदर-कुल था। शाहजहाँ के राज्यकाल के २० वें वर्ष में जब सदरुस्सुदूर सैयद जलाल मर गया तब इसका मंसब बढ़ाकर एक हजारी १०० सवार का करके दरबार बुला लिया। सैयद हिदायतुल्ला उस समय कंधार का दीवान था और इसके अच्छे सलूक का वर्णन कई बार बादशाह से किया जा चुका था। २१वें वर्ष मे सदारत का खिलअत तथा मंसब मे पाँच सदी १०० सवार की उन्नति पाकर यह सम्मानित हुआ। २३ वें वर्ष मे पाँच सदी की और तरक्की हुई। २६ वें वर्ष मे इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी २०० सवार का हो गया। सामूगढ़ के युद्ध के बाद जब औरंगजेब आगरे के पास पहुँचा तब यह आज्ञानुसार मीर सामान फाजिल खाँ के साथ दो बार औरंगजेब के पास आया और गया। इसने बादशाही फर्मान और आलमगीर नामक तलवार, जो कृपा कर दी गई थी, पहुँचाकर मौखिक संदेश कह सुनाया। औरंगजेब के राज्य के आरंभ में सदर का पद इसके स्थान पर मीरक शेख हरवी को मिल गया था इसलिये यह कुछ वर्ष तक एकांतवास करता रहा और उसके बाद मर गया।

७१७. हिम्मत खाँ मीर ईसा

यह इस्लाम खाँ बदख्शी का औरस पुत्र था। यह छोटे पन से बड़े होने तक औरंगजेब का कृपापात्र रहा। यह उस बादशाह की कृपा से सुशिक्षित हुआ। यह योग्यता तथा गुणों का समूह, विद्या प्रेम में अद्वितीय, सूक्ष्मदर्शी विद्वानों तथा आलोचक साहित्य मर्मज्ञों का आश्रयदाता, आचारवान, दयाशील तथा लोगों का भला चाहनेवाला था और इसके दरबार में विद्वानों तथा हर प्रकार के गुणियों को आश्रय मिलता था। यह सहृदय भी था। इसका एक शैर का अर्थ है—

सिवा काँटे के जो मजनूँ के हृदय में था।
पागलपन के जंगल में काँटा में नहीं परिगणित है॥

यह अपने पिता के सम्मान तथा विश्वास के कारण, जो उसे शाहजादा औरंगजेब की सरकार में प्राप्त था, स्वयं भी प्रतिष्ठा के साथ समय बिता रहा था। जसवंतसिंह के युद्ध के बाद इसे दो हजारी मंसब तथा हिम्मत खाँ की पदवी मिली, जो इसके पिता को भी कुछ दिन के लिये मिल चुकी थी। ६ ठे वर्ष में इसका पिता राजधानी आगरा का सूबेदार नियत हुआ और यह उसके इर्दगिर्द के प्रांत का फौजदार बनाया गया। इसके मंसब के एक सहस्र सवारों में से पाँच सौ दो अस्पा सेह अस्पा कर दिए गए। पिता की मृत्यु पर सेवा में पहुँचने पर यह कोरबेग नियत हुआ। ९वें वर्ष में दीवान खास का दारोगा नियत हुआ। इसके बाद इसे तीन हजारी मंसब मिला और यह तृतीय बख्शी बनाया गया। १४वें वर्ष में असद खाँ के स्थान पर यह द्वितीय बख्शी नियत हुआ १५वें वर्ष में सर बुलंद खाँ के स्थान पर यह आगरे का सूबेदार नियत किया गया। १७वें वर्ष में बादशाह के हसन अब्दाल की ओर लौटने पर यह गुसलखाने का दारोगा हुआ। १९वें वर्ष में हुसन अलीखाँ के स्थान पर यह इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त किया गया तथा इसे एक लाख रुपया मिला। २३वें वर्ष में अजमेर में सेवा में उपस्थित होने पर इसे उदयपुर से अपने ताल्लुके पर लौटने की छुट्टी मिली। इसी वर्ष मीर बख्शी सर बुलंद खाँ की मृत्यु हो गई और हिम्मत खाँ को बुलाने की आज्ञा भेजी गई। २४वें वर्ष के १० अल्बास को अजमेर नगर में इसे प्रथम बख्शी का उच्च पद मिला और बड़ी कृपा से सुनहले दुपट्टे का खिलअत इसके घर पर भेजा गया। इसी वर्ष अकबर के बलवे तथा उपद्रव के समय, जो घमंडी राठौड़ों तथा बादशाही सेना के कुछ सर्दारों के साथ अयोग्यता और ओछेपन से अपने संमानित पिता से युद्ध करने ऐसे अवसर पर पहुँचा जब बादशाह के साथ दस सहस्र से अधिक सवार नहीं थे। औरंगजेब रोगग्रस्त हिम्मतखाँ को अजमेर के शासन के लिये दुर्ग में छोड़कर नगर से बाहर निकला। ५ मुहर्रम सन् १०९२ हि० सन् १६८१ ई० को हिम्मत खाँ की मृत्यु हो गई।

यह बड़ा उद्योगशील तथा अपने बराबरवालों में अग्रणी था। पद्य तथा गद्य दोनों मे इसने बड़ी योग्यता तथा उत्तम शैली दिखलाई है। हिंदी मे भी यह अच्छा शौक तथा योग्यता रखता था। इसका उपनाम मीरन था। मुहम्मद मसीह मुरीद खां तथा रूहुल्ला नेकनाम खां इसके पुत्र थे। प्रथम २६वें वर्ष मे मीर तुजुक नियत हुआ और इसे बाद में खानःजाद खां की पदवी मिली। २८वें वर्ष मे यह सलावतखां के स्थान पर जिलो के सेवको का दारोगा हुआ। इसके बाद औरंगाबाद दुर्ग का अध्यक्ष और अंत मे सूरत बंदर का दुर्गाध्यक्ष हुआ। द्वितीय को एक हजारी मंसब तथा शाहजादा मुहम्मद बेदारबख्त की सेवा की बख्शीगिरी मिली।

•

७१८. हिम्मतखाँ मुहम्मद हसन और सिपहदारखां मुहम्मदमुहसिन

ये खानजहां बहादुर कोकल्ताश[1] के पुत्र थे। आरंभ में इनको योग्य मंसब और खां की पदवी मिली तथा फिर प्रथम को मुजफ्फर खां तथा दूसरे को नसीरीखां की पदवियां मिली। औरंगजेब के राज्य के २७वें वर्ष मे जब खानजहां का प्रार्थनापत्र बादशाह के सामने आया कि शत्रु कृष्णा नदी के किनारे कुविचार से इकट्ठा हुआ था और उसने तीस कोस धावा कर बहुतो को मारा तथा कैद किया, तब प्रशंसा का पत्र उसके नाम भेजा गया और उसके संबंधीगण मंसब बढ़ने तथा पदवियां पाने से प्रसन्न हुए। इसी सिलसिले मे मुजफ्फर खां को हिम्मत खां की और नसीरीखां को सिपहदारखां की पदवियां मिली। २९वें वर्ष मे प्रथम खिलअत, तलवार तथा हाथी पाकर बीजापुर रवाना हुआ, वहां विजय होने पर ३१वें वर्ष मे इसे जडाऊ साज सहित घोडा, बहादुर की पदवी तथा अस्सी लाख दाम पुरस्कार मिला, इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी २२०० सवार हो गया और यह इलाहाबाद प्रांत पर नियुक्त हुआ। ३३वें वर्ष जब खानजहां कोकल्ताश इलाहाबाद का प्रांताध्यक्ष हुआ तब यह अवध का सूबेदार और गोरखपुर का फौजदार बनाया गया। ३४वें वर्ष मे यह इलाहाबाद का दुर्गाध्यक्ष हुआ और फिर दरबार बुलाया गया। ३७वें वर्ष मे बादशाही सेवा मे पहुँचा। सुलतान मुइजुद्दीन के अनुगामियो के पहुँचने पर यह परनालः दुर्ग मे नियत हुआ। ३९वें वर्ष मे जब रुहुल्लखां आदि बादशाही सरदार खोरपरः में मराठा

सर्दार संता जी से परास्त हो गए, जिसका विवरण कासिम खाँ किर्मानी के वृत्तांत मे दिया गया है, तब यह आज्ञानुसार धावा कर संता के सामने पहुँचा और घोर युद्ध हुआ। यद्यपि इसने शत्रुओं को सामने से हटा दिया था पर दैवयोग से मृत्यु के बंदूक की गोली इसकी छाती मे लगी, जिससे सन् ११०६ हि० स० ११९६ ई० में इसकी मृत्यु हो गई।

दूसरा ३१ वें वर्ष में मकरम खाँ के स्थान पर दक्षिण का सूबेदार हुआ और ३७ वे वर्ष बुजुर्गउम्मीदखाँ के स्थान पर इलाहाबाद का शासक तथा साथ में जौनपुर का फौजदार नियत हुआ और इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी ३००० सवार का हो गया। इसे एक करोड दाम पुरस्कार में मिला। ४१वें वर्ष में उस पद से हटाया गया।

मआसिरे आलमगीरी का लेखक लिखता है कि ४८ वें वर्ष में इलाहबाद के सूबेदार सिपहदार खाँ का जौनपुर के वलवाई महावत का दमन करने के उपलक्ष में मंसब बढ़ाकर चार हजारी ३४०० सवार का कर दिया गया और ४९वें वर्ष में एक हजारी जात और बढ़ाया गया। इससे ज्ञात होता है कि यह दूसरी बार इलाहाबाद का शासक नियुक्त हुआ था। औरंगजेब की मृत्यु पर बहादुरशाह के समय इसे खानजहाँ एज्जुदौला बहादुर की पदवी मिली। स्यात् बहादुरशाह के राज्य के ३रे वर्ष में यह बंगाल का प्रांताध्यक्ष बनाया गया था। इसकी मृत्यु का संवत ज्ञात नही हुआ। औरंगाबाद मे दिल्ली फाटक के पास एक बड़ा प्रसाद इसका स्मारक है, जिसके पास एक बहुत सुथरा हम्माम बना हुआ है। अब यह इमारत गिर पडी है।

•

७१६. हुमाम, हकीम

यह हकीम अबुल फ़त्ह गीलानी का भाई था। इसका नाम हुमायूँ था। जब यह अकबर बादशाह की सेवा मे भर्ती हुआ तब सम्मान के विचार से इसका नाम पहले हुमायूँ कुलीखाँ हुआ और इसके अनंतर यह हकीम हुमाम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह खत (लिपि) पहिचानने मे और कविता समझने में अपने समय का एक था। यह मनोविज्ञान तथा वैद्यक में कुछ गम रखता था। आचारवान, उदार, मीठा बोलने वाला तथा मिलनसार था। यद्यपि इसका मनसब छ सही था और यह बावर्ची खाने के भंडारी-पद पर नियत था पर बादशाह का मुसाहेब तथा

परिचित होने से इसका सम्मान अधिक था। ३१ वें वर्ष में जब इसकी योग्यता और मिलनसारी को अकबर बादशाह ने समझ लिया तब इसको तूरान के बादशाह अब्दुल्ला खाँ के यहाँ सन्देश लेकर तथा कुशल मंगल पूछने को भेजा और उसके पिता सिकन्दर खाँ की मृत्यु पर, जिसे तीन साल हो चुके थे, मातमपुर्सी के लिए मौलन सदर जहाँ मुफ्ती को इसके साथ भेज दिया। विशेष कृपा के कारण हकीम के बारे में उस पत्र मे यह वाक्य लिखा गया था कि हकीमी का विद्वान, राजभक्त पार्श्ववर्ती तथा अच्छा अनुभवी विश्वस्त सेवक हकीम हुमाम को संदेशवाहक बनाकर भेजते हैं, क्योंकि यह सत्य बोलनेवाला तथा आचारवान हैं और सेवा के आरम्भ से पार्श्ववर्ती सेवक होने के कारण इसे अब तक दूर भेजने का विचार नही किया था। हमारी सेवा में इसको यहाँ तक विश्वास है कि बिना मध्यस्थ के कुल दावे हम तक पहुँचा देता है। यदि वहाँ दरबार मे भी ऐसाही व्यवहार हो तो बिना मध्यस्थ के दोनो पक्ष मे सन्धि हो जाया करे। हकीम की अनुपस्थिति में अकबर बादशाह ने कई बार कहा था कि हकीम हुमाम के जाने से भोजन में स्वाद नही आता। हकीम अबुल्फतह से कहा था कि हमारी समझ में नही आता कि भाई होते हुए तुमसे अधिक हमें उसके न रहने पर उसकी प्रतीक्षा रहती है मानो हकीम हुमाम कही पैदा हो जायगा। ३४वें वर्ष में जब काबुल से लौटते हुए बारीक आब में पड़ाव पड़ा हुआ था, वही हकीम हुमाम तूरान से आ पहुँचा जब हकीम अबुल्तह की मृत्यु को एक महीना बीत चुका था। यह जब सेवा मे उपस्थित हुआ तब बादशाह ने इसे सांत्वना देने के लिए यह सन्तोषप्रद बात कही कि तुमको एक भाई था, जो संसार से उठ गया और मुझको दस।

शैर (अर्थ)—एक शरीर के लिए दो नेत्र का हिसाब कम है, और वृद्धि की गिनती में सहस्रों बहुत है।

४० वें वर्ष सन् १००४ हि० सन् १५९६ ई० में तपेदिक से दो महीने बीमार रहकर हकीम हुमाम मर गया। इसके दो लड़के थे। पहला हकीम हाजिक[1] था, जिसका वृतांत अलग लिखा जायगा। दूसरा हकीम खुशहाल था, जो शाहजहाँ के समय एक हजारी मनसब पाकर दक्षिण का बख्शी नियत हुआ था। महाबत खाँ अपनी सूबेदारी के समय इसपर विशेष कृपा रखता था।

●

१. इसकी जीवनी इसी भाग में इसके कुछ पहले दी गई है।

७२०. हुसामुद्दीन खाँ

मिर्जा हुसामुद्दीन हसन मिर्जा गियासुद्दीन अली आसफ खाँ का पौत्र और निजामुद्दीन अली का पुत्र था। यह विलासी तथा वेपरवाह आदमी था। इसने अपना यौवन-काल बडी निर्द्वद्वता से व्यतीत किया था। यह यमीनुद्दौला आसफ जाह के वंश मे होने के सम्बन्ध से शाहजहाँ की राजगद्दी के अनंतर बादशाही सेवा कार्य मे दत्त चित्त होकर दक्षिण मे बहुत दिनो तक विभिन्न पदो पर नियत रहा। १५ वें वर्ष मे एक हजारी ५०० सवार का मनसब पाकर तथा दक्षिण का बख्शी होकर इसने अपनी विश्वास्तता प्रगट की। साथ ही यह अपनी ईमानदारी तथा निस्वार्थता के कारण लोगो से मिलने पर स्वतंत्रता से व्यवहार करता था पर इतना अच्छा वर्ताव सबसे रखता कि लोग इसकी प्रशंसा ही करते थे। दक्षिण के सूबेदार गया इसके साथ सम्मान से व्यवहार करते थे। खानदौराँ नुसरत जंग इसकी कर्मता तथा ईमानदारी को इसके कार्यो के विवरण के साथ शाहजहाँ के मन मे बैठाकर इसकी उन्नति का कारण हुआ। १८ वें वर्ष में इसका मंसब बढकर डेढ़ हजारी ६०० सवार का हो गया और खाँ की पदवी पाकर यह सम्मानित हुआ। २१वें वर्ष मे इसका मंसब दो हजारी १००० सवार का हो गया और दक्षिण की बख्शीगिरी से हटाया जाकर ऊदगिरि दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। यह बुद्धिमानी तथा योग्यता में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था और साहस तथा वीरता में ख्याति प्राप्त करना चाहता था, इसलिये इसने बडी बहादुरी तथा साहस के साथ गोलकुंडा की सीमा तक विद्रोहियों तथा उपद्रवियो को दमन करने मे बहुत प्रयत्न किया। इस पर बादशाह ने इसे मुत्सद्दियो के दर्जे से हटाकर सरदारों में परिगणित कर लिया और इसका मनसब पाँच सदी ५०० सवार बढ़ा दिया। ३०वें वर्ष में यह ऊदगिरि की दुर्गाध्यक्षता से हटाया जाकर डाहीदाद खाँ अनसारी के स्थान पर तेलिंगाना का फौजदार नियत हुआ।

हुसामुद्दीन खाँ किस समय बरार का सूबेदार नियत हुआ था, यह ज्ञात नहीं हुआ। मीरातुल् आलम ने लिखा है कि औरंगजेब की राजगद्दी के प्रथम वर्ष के बाद जब बादशाह दारासिकोह का पीछा करते हुए व्यास नदी के पार गये, तब हुसामुद्दीन खाँ के स्थान पर बरार की सूबेदारी सैयद सलावत खाँ उपनाम इख्तसास खाँ को दी और इसे बीजागढ सरकार की फौजदारी पर नियत किया। इसकी मृत्यु कब हुई इसका पता नही लगा।

हुसामुद्दीन खाँ सांसारिक कार्यो को करते हुए भी अपना जीवन बराबर ऐश आराम के साथ व्यतीत करता रहा और कभी भी समय चिंता या दुःख में नही बिताता था। यह गानविद्या मे बहुत कुशल और ग्रामीण मुहावरों के प्रयोग मे दक्ष

था। यद्यपि यह विशेष पढ़ा नहीं था पर विद्वानों के सत्संग से हर विद्या में इतना गम रखता था कि बातचीत के समय कहीं रुकता न था। इसकी लिपि उस्तादों की लिखावट के समान थी, यह किताब लिखने मे अद्वितीय था। यह अहेर खेल का भी शौकीन था। इसे सन्तान भी बहुत थी। पुत्रगण भी योग्य थे। इसका प्रथम पुत्र मिर्जा अमतुल्ला था, जो सभी पुत्रो से बढ़कर प्रसिद्ध हुआ। जिस समय औरंगजेब साम्राज्य के संघर्ष के लिये तैयार हुआ; उसी समय साथ देकर प्रथम वर्ष जूलूस मे सुहराबखाँ की पदवी पाई तथा मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी ४०० सवार का हो गया और यह बरार के बालपुर का फौजदार नियत होकर दक्षिण भेजा गया। यह वहाँ के अपने अच्छे कार्य से बादशाही कृपा का पात्र हुआ। इसका पुत्र मिर्जा आकबत महमूद सजावार खाँ था, जो अलंद व तिलंग की फौजदारी से हटाया जाकर बीदर दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। महम्मदशाह के राज्य में नेत्रो की दुर्बलता से उस पद से हटा दिया गया और बुर्हानपुर में मर गया। इसका पुत्र मीर निजामुद्दीन अली हुसामुल्ला खाँ बहुत दिनो तक ऊदगिरि का दुर्गाध्यक्ष रहा और उस ओर के विद्रोहियों द्वारा सूबेदारों के हटाए जाने के समय, जो एक जाति थी, जिसे बेडर कहते हैं, युद्ध में इसके युवा पुत्र गण मारे गए। इसकी मृत्यु के अनंतर इसका छोटा पुत्र पिता की पदवी पाकर इस ग्रन्थ के लिखते समय तक वहीं का दुर्गाध्यक्ष था। यह पैतृक वीरता तथा साहस रखता था, इसलिये यद्यपि मरहठों ने इस दुर्ग के चारों अधिकार कर लिया था पर वे उपद्रवी इसे न पा सके। वास्तव में यह इस समय अपने पूर्वजों का नाम रखे हुये हैं। यह सब मृत हुसामुद्दीन की नियत का फल है कि १०० वर्ष बीत जाने पर भी उसका वंश अभी चल रहा है।

•

७२१. हुसामुद्दीन, मीर

इसके पूर्वज बदख्शाँ के निवासी थे पर यह पवित्र हिंदुस्तान मे पैदा हुआ था। इसका पिता काजी निजाम बदख्शी अकबर के समय मे एक अमीर होकर काजी खाँ की पदवी से प्रसिद्ध हुआ। इसके अनंतर धार्मिक युद्धो में बहुत प्रयत्न करने के कारण इसे गाजी खाँ की पदवी मिली। इसका वृत्तांत अन्यत्र दिया गया है। इसने भी अपने गुणों के कारण मंसबदारों के झुण्ड में विश्वास पैदा कर दिया। कहते हैं कि यह अकबरी एक हजारी मंसबदार था। अल्लामी फहामी शेख अबुल फज्ल की बहिन इसके घर में थी। जब यह दक्षिण में नियत था तब खानखानाँ मिर्जा

अबुर्रहीम से इसका खूब सत्संग रहा और यह उसका मुसाहिब हो गया। भाग्य की वैसी अवस्था मे असावधानी के भारी स्वप्न से यह जाग उठा और इसे स्थायी धन की इच्छा हुई। एकाएक यह ईश्वरी प्रेम में मग्न हुआ। ठीक युवावस्था मे ऐश्वर्य तथा इच्छाओ से विरक्त होकर इसने खानखानां से यह प्रकट किया कि उसका ऐसा विचार है, जिससे आसानी से उसका छुटकारा नही है पर मेरी स्त्री का पागलपन मुझको स्यात् इससे हटाले इसके बाद विचार है कि दिल्ली जाकर मुलतानुलमशायख के मजार पर बचा जीवन बिता दूँ। खानखाना ने बहुत कुछ समझाया और उपदेशो के दास्तान के दास्तान सुना डाले पर इस पर कुछ प्रभाव न पडा। दूसरे दिन यह गली व बाजार में घूमने लगा और नंगा हो शरीर पर मिट्टी मल लिया। खानखानां अन्य सर्दारो के साथ जाकर इसे नम्रता से अपने गृह पर लिवा लाया और नये सिरे से पुनः समझाया पर इसने कोई उत्तर नही दिया। जब खानखानां के प्रार्थनापत्र से बादशाह ने सुना कि उसने दिल्ली में एकांतवास करना निश्चय किया है इसकी स्त्री ने अपने भाइयो तथा संबधियो से नाता तोड़कर पति के आदेशानुसार जो कुछ नगद तथा सामान था सब फकीरो में बांट दिया। कहते हैं कि यह तीस वर्ष तक एकांतवास करता रहा और खानखानां की ओर से खानराह के व्यय के लिये बारह सहस्त्र रुपए प्रतिवर्ष आता रहा। दरवेशी लेने पर फिर इसने पुस्तको को नही छूआ। अधिकतर समय ध्यान तथा अल्लाह के वाक्य के रूप में व्यतीत करता रहा। हर महीने पंद्रह बार कुरान का पाठ करता। अंत मे वह ख्वाजा बाकी बिल्लाह समरकंदी के, जो असल मे जन्मभूमि की दृष्टि से काबुली था, अनुयायियो में मुरीद हो गया और उसके उपदेशको तथा धर्मशास्त्रियों के आज्ञानुसार कार्य करते हुए मर गया।[1]

●

७२२. हुसेन अलीखां, अमीरुल् उमरा सैयद

यह कुतुबुल मुल्क अबदुल्ला खां का छोटा भाई था, जिसका विवरण अलग दिया जा चुका है। कुतुबुल्मुल्क महम्मद फर्रुखसियर बादशाह का प्रधान अमात्य था और सैयद हुसेन अलीखां अमीरुल् उमरा के पद पर प्रतिष्ठित था। ये बारहा के बडे सैयदों में से थे और हिंदुस्तान के बड़े सर्दारो मे से। ये दोनों भाई सैयद थे अमीरी के आकाश के सितारे थे और अनेक गुणो से आभूषित थे। ये विशेषकर उदारता तथा साहस मे प्रसिद्ध थे, जो श्रेष्ठ गुण हैं। ये दोनो अपने चिह्न संसार

---

१. इसकी मृत्यु सन् १०५२ हि०, सन् १६३३-४ ई० में हुई थी।

में छोड़ गए। इन्होंने अपने प्रभुत्व को आरंभ से अंत तक बहुत अच्छी तरह तथा नाम के साथ बिताया। इनके न्याय तथा एहसान से सारा हिंद स्वर्ग के लिये ईर्ष्या का वस्तु हो गया। परंतु अंतिम काल में इन लोगों ने कुमार्ग पर पैर रखा, जिससे प्रलय के दिन तक इनकी बदनामी न मिटेगी। न्यायप्रिय लोगों में बादशाह को गद्दी से उतारने की इनकी इच्छा केवल अपना प्राण तथा संमान बचाने के लिये था। वे लोग सारी उम्र प्रयत्न करते रहे और राज्य की भलाई के लिये कुछ उठा नहीं रखा। बादशाह ने इनके सत्वों को भूलकर इन्हें हटाने का अनेक उपाय किया और जब तक वह जीवित रहा यही विचार मन में रखा। अंत में यही विचार साम्राज्य के पतन का कारण हुआ और बादशाह तथा सैयदों दोनों का प्रभुत्व नष्ट हो गया।

काजी शहाबुद्दीन मलिकुल् उलमा अपनी पुस्तक मुनाकिबुल् सादात में लिखते हैं कि इन सैयदों की सर्दारी मुहम्मदी है, दानशीलता हाशिमी है और वीरता हैदरी है चाहिए कि सुवंशजात सैयदों के गुण काफी रक्खें। यदि वे दैवयोग से लोभ में पड़कर कोई पाप करें तो अंत में इस प्रकार कार्य करें कि उसका प्रायश्चित हो जाय। इस बात का इन दोनों भाइयो पर ठीक अर्थ घटता दिखलाई दिया कि पीड़ित जन इस संसार से उठ गए और शहीद होने की प्रतिष्ठा पाई। कुतुबुल् मुल्क का वास्तविक नाम हसन अली और अमीरुल उमरा का हुसेन अली था। पहले की मृत्यु विष से तथा दूसरे की खंजर से हुई। यद्यपि अमीरुल उमरा छोटा था पर दान, वीरता, साहस तथा ऐश्वर्य में अपने बड़े भाई से बढ़कर था। औरंगजेब के समय यह पहले रणथंभौर का शासक और बाद में हिंडून बयाना का फौजदार नियत हुआ। जब इसका भाई औरंगजेब की मृत्यु पर लाहौर में शाहआलम का कृपापात्र हुआ तब हुसेन अलीखाँ अच्छी सेना के साथ दिल्ली के पास बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और मुहम्मद आजमशाह के युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाकर तीन हजारी मंसब और डंका पाकर सम्मानित हुआ और शाहजादा अजीमुश्शान के कहने पर अजीमाबाद पटने का नायब सूबेदार हुआ। औरंगजेब के राज्य के अंत में अजीमुश्शान के स्थान पर सिपहदार खाँ ऐजुद्दौला खानजहाँ बहादुर बंगाल का सूबेदार हुआ। अजीमुश्शान का पुत्र मुहम्मद फर्रुखसियर, जो बंगाल में अपने पिता का प्रतिनिधि था, बुलाये जाने पर पटना पहुँचा। बहुत दिनों तक उच्छृंखलता में व्यतीत करने और दादा तथा पिता के यहाँ अन्य भाइयो से कम संमान रखने के कारण यह दरबार जाना अच्छा न समझकर व्यय आदि का उज्र करता रहा। यहाँ तक कि जब शाह आलम मर गया तब मुहम्मद फर्रुखसियर ने अपने पिता के नाम खुतबा पढ़वाकर और सिक्का ढाल करके सेना एकत्र करने लगा। इसी बीच अजीमुश्शान के मारे जाने

का समाचार मिला।[१] सन् ११११२ हि० के रबीउल अव्वल महीने में यह स्वयं गद्दी पर बैठ गया और पटना के नाजिम सैयद हुसेन अलीखाँ को कृपा करने की प्रतिज्ञाकर अपनी ओर मिला लिया। इस कारण हसन अलीखाँ भी इसके पक्ष में हो गया, जो इलाहाबाद का नाजिम था। थोड़े ही समय में अच्छी सेना इकट्ठी हो गई पर कोष की कमी के कारण आगरा पहुँचने तक बारह सहस्र सवार से अधिक न हो सके। युद्ध के दिन, जो आगरे के पास जहाँदार शाह से हुआ, हुसेन अली खाँ हसन बेग नकाशिकन खाँ, जो उड़ीसा का नायब सूबेदार था, तथा बहादुर खाँ रुहेला के पुत्र जैनुद्दीन खाँ के साथ जुल्फिकार खाँ के घोड़ों पर आक्रमण कर, जो बहुत सी तोपों तथा सैनिकों को अपने आगे सजाकर खड़ा हुआ था, तोपखाने के घेरे में घुस गया। जब घोर युद्ध हो रहा था तब हिंदुस्तान के नाम चाहनेवालों की चाल पर पैदल लड़ते हुए घायल हो भूमि पर गिरा। वे दोनो सर्दार बहुत सी सेना के साथ मारे गए। इस विजय के उपलक्ष्य में हुसेनअली खाँ को अमीरुल उमरा बहादुर फीरोजजंग की पदवी, सातहजारी ७००० सवार का मंसब तथा मीर बख्शी का अच्छा पद मिला। दूसरे वर्ष यह भारी सेना के साथ अजीत सिंह राठौड़ को दमन करने के लिये नियत हुआ, जिसने अपने देश में उपद्रव मचा रखा था। मेड़ता तक उसकी जो भूमि थी उसे लूट कर अस्त व्यस्त कर दिया। राजा भय के कारण बीकानेर की ओर जाकर वहाँ के दृढ़ स्थानों में ठहरा। इस चढ़ाई के विवरण में, जो सब अमीरुल उमरा की आज्ञा में हुआ, यह विचित्र बात लिखी है कि अजीतसिंह और जयसिंह के गाँव एक दूसरे से मिले हुए हैं और पहले के गाँव की प्रजा भय से दूसरे में भाग जाती थी इसलिये लुटेरों को हुक्म हुआ कि इन उजाड़ मौजा को लूटकर जला दें और आबाद मौजों में कोई रोक टोक नहीं करें। अजीतसिंह की प्रजा यह देखकर जयसिंह की प्रजा के द्वार प्रतिज्ञा कराकर आने लगी उसी समय सजावल नियत हुए कि लुटेरों से कहें कि आग बुझा दें और जो कुछ लूटा है उसे लौटा दें। इस आज्ञा में भी कुछ कमी नहीं हुई। सजावलों ने इन सब लूट की वस्तुओं को डीह में जमा किया। कुछ विश्वासी आदमियों ने, जिन्होंने देहात के आदमियों से पूछताछ की थी, एक मत होकर कहा कि जलाने के सिवाय हम लोगों से कुछ हानि नहीं हुई। जब राजा ने अपनी खराबी देखी तब अच्छे विश्वस्त वकीलों को भेजकर भेंट देना, अपने बड़े पुत्र अभयसिंह को दरबार भेजना तथा अपनी पुत्री का डोला देना स्वीकार कर क्षमायाचना की। मीर जुमला बादशाह से हस्ताक्षर कराने के लिये कागज पेश करता था इसलिये जो उसको अपने पक्ष में कर लेता

---

२. सन् १६१२ ई० में बहादुरशाह की मृत्यु होने पर उसके पुत्रों में युद्ध हुआ और इसी में अजीमुश्शान मारा गया तथा जहाँदार शाह बादशाह हुआ।

था उनको मंसब और जागीर हस्ताक्षर कर कर देता था। प्रति दिन यह बादशाह को सैयदों के विरुद्ध उभाड़ता आता था। अमीरुल्उमरा इस संधि से राजी होकर कुँवर को साथ ले फुर्ती से लौटा और डोला पीछे से लाने के लिये एक सेना छोड़ गया। इस यात्रा में विचित्र घटना घटी।

कहते हैं कि जब अमीरुल् उमरा मेड़ता से सोलह कोस पर पहुँचा तब राजा के विश्वासी सर्दार डेढ़ सहस्त्र सेना के साथ संधि करने के लिये आए और ठहरने की प्रार्थना की। जब यह प्रसिद्ध हुआ कि इनकी बातों में सचाई का चिह्न नहीं है और कपट से ये यह चाहते हैं कि तब तक ये दृष्टि रखें जब तक राजा अपने परिवार तथा संपत्ति के साथ बाहर न चला जावे। इस पर हुसेनअली ने कहलाया कि यदि संधि स्थायी है तो कुँवर के पहुँचने तक तुम सब कैद में जंजीर से बँधे रहोगे। उन सबने पहले अप्रतिष्ठा के विचार से इसे स्वीकार नहीं किया पर अंत में मान गए। अमीरुल उमरा ने उनमें से चार विश्वासपात्र मनुष्यों को जंजीर से बँधवाकर अच्छे जमादारों को सौंप दिया। जब जमादार उनको लेकर दीवानखाने से बाहर निकले तो सेना के लुच्चे इनकी हालत देखकर तुरंत इनके खेमों पर दौड़े और युद्ध होने लगा। ौर नियत हुए आदमियों के बहुत मना करने पर भी लुच्चों ने देखते देखते सबके सब जान माल को नष्ट कर दिया। अमीरुल् उमराव ने उन चारो मनुष्यों को कैद से छुड़ाकर क्षमायाचना की और उनसे यह भी निश्चय किया कि वे राजा को लिखे कि यह कार्यवाही बिना समझे होगई है परंतु राजा यह हाल सुनकर पहले ही भाग गया था। निरुपाय होकर अमीरुल् उमरा फिर मेड़ता जाकर ठहरा, जिसमें संधि का कोई मार्ग निकले और दिल्ली पहुँचने पर दक्षिण की सूबेदारी मिलने का उपाय निकले।[1] हुसेन अली चाहता था कि वह स्वयं दरबार में रहे और जुल्फिकार खाँ की चाल पर दाऊद खाँ उसका प्रतिनिधि नियत हो। बादशाह ने अपने संमतिदाताओं के कहने से यह स्वीकार नहीं किया। यहाँ तक कि आपस में आवेश सहित कहा सुनी होगई। अंत में इस वाद विवाद के बाद यह निश्चय हुआ कि मीरजुमला पहले पटने की सूबेदारी पर चला जाय तब उसके अनंतर अमीरुल् उमरा दक्षिण के कुल अधिकारों के साथ सूबेदार नियत होकर वहाँ जाय। इस पर चौथे वर्ष सन्

---

१ सन् १०२४ हि० सन् १७१२ ई० में हुसेन अली खाँ महाराज अजीतसिंह को दमन करने के लिये भेजे गए पर बादशाह फर्रुखसियर ने गुप्तरूप से महाराज के पास लिख भेजा कि वह हुसेन अली को परास्त कर मार डालें। इस कारण ये दोनों मिल गए और हुसेनअली यथाशक्ति शीघ्र संधि कर दिल्ली लौट गया। इस ग्रंथ का उक्त विवरण भी इस बात की पुष्टि करता है।

११२७ हि० में यह दक्षिण रवाना हुआ पर चलते वक्त उसने बादशाह से कह दिया कि यदि मीर जुमला मेरे पीछे लौटकर दरबार मे आवेगा या कुतुबुल् मुल्क के साथ किसी और तरह का वर्ताव किया जावेगा तो उसे २० दिन के भीतर दिल्ली पहुँचा हुआ जानिएगा। जब यह मालवा पहुँचा तब वहाँ के सूबेदार राजा जयसिंह सवाई रास्ते से हट गए, जिसमें उससे भेंट करना न पड़े। अमीरुल् उमरा ने बादशाह को लिखा कि यदि काम बादशाह के संकेत पर हुआ है तो उसे आज्ञा दी जाय कि वह यहीं से लौट आए, नहीं तो कलही दाऊद खाँ भी यही चाल चलेगा। इस कारण कि साम्राज्य के आरंभ में सैयदगण दाऊद खाँ के प्राण की रक्षा के निमित्त हुए थे और इधर अमीरुल् उमरा ने बुर्हानपुर की नायब सूबेदारी पर बादशाह से उसके नाम नियुक्ति करा दी थी, वह गुजरात से इस नियुक्ति पर पहुँचकर वहाँ जम गया था। उत्तर मे यह फर्मान पहुँचा कि जयसिंह की नासमझी से ऐसी झंझट यदि हुई है तो उसे पद से हटाने आदि का अधिकार तुम्हारे हाथ छोडा जाता है और दाऊद खाँ से ऐसे व्यवहार की आशंका क्यों है तथा यदि वह ऐसा कहे तो उसे दरबार भेज दे। परंतु बादशाह ने अपने मनोमालिन्य तथा ओछेपन से खानदौरा के द्वारा गुप्त रूप से दाऊद खाँ को विरोध करने के लिये उभाड़ दिया। जब अमीरुल्उमरा ने नर्मदा पार किया तब प्रगट हुआ कि दाऊद खाँ भी मित्रता का व्यवहार छोड़कर उससे भेंट करने का विचार नही रखता। हुसेन अली खाँ ने इस झगड़े को मिटाने के लिये उसके पास ब्योरेवार कुल बातें लिखकर सदेश भेजा जिसका विवरण दाऊद खाँ की जीवनी में दिया जा चुका है! संक्षेप में मित्रता रखने पर उसे भेंट करना आवश्यक होगा और विरोध करने की अवस्था में उसे दरबार लौट जाना पड़ेगा, जिसमे हमारी ओर से कोई बाधा न डाली जाएगी। दाऊद खाँ ने मूर्खता से युद्ध करना ही निश्चय किया। निरुपाय होकर ११ रमजान को उस नगर के पास युद्ध की तैयारी हुई और खूब युद्ध हुआ। वीरता से आक्रमण करते हुए दाऊद खाँ दूसरी बार अमीरुल् उमरा के पास पहुँच कर गोली लगने से मर गया।[१] अमीरुल् उमरा ने इस विजय के अनंतर, जो दक्षिण के सर्दारो तथा विद्रोहियो पर रोब डालने वाली हो गई, औरंगाबाद में रहना निश्चय कर जुल्फिक़ार बेग बख्शी की अधीनता में एक सेना राजा साहू के सेनापति खडेराव धाबदे को दमन करने के लिये भेजा, जिसने खानदेश प्रांत मे कई दुर्ग बनवाकर थाने स्थापित कर लिये थे और चौथ लगाकर वहाँ उपद्रव किया करता था तथा काफिलों को लूटा करता था। भानीर परगने में उन उपद्रवियो से सामना होने पर इसने उनपर आक्रमण किया।

---

१. यह युद्ध बुर्हानपुर के पास सन् ११२७ हि० सन् १७१५ ई० में हुआ था और दाउदखाँ जबूरक की गोली लगने से मारा गया।

मरहठे थोड़ी ही लड़ाई पर अपनी चाल के अनुसार भागे। शाही सेना दक्षिण का युद्ध न देखने और मराठों की चाल न जानने के कारण बड़ी प्रसन्न हो उनके पीछे दौड़ी। एकाएक वे उपद्रवी इकट्ठे हो गए और इतने वेग से धावा किया कि जुल्फिकार खाँ वीरता से सबके आगे रहते हुए बहुतों के साथ मारा गया और बची हुई सेना भाग गई। यद्यपि सैफुद्दीन अली खाँ और राजा मुहकम सिंह उन उपद्रवियों को दंड देने के लिये नियत हुए और सूरत बंदर तक गए। राजा मुहकम सिंह ने इसके अनंतर साहू के निवास स्थान सितारा तक लूट मार करने में कुछ उठा नहीं रखा। पर अमीरुल् उमरा के ऐश्वर्य के योग्य कोई विजय न प्राप्त हो सकी और न वैसे पराजय का कोई समुचित उत्तर दिया जा सका। हुसेनअली खाँ के पास जैसी कोष की अधिकता, भारी सेना, उच्च आकांक्षा तथा वीरता आदि थी उसे देखते हुए ऐसा होना चाहिए था कि वह मरहठों को पूर्ण रूप से दमन कर देते परंतु बादशाह ने अपने राजद्रोही स्वार्थी संमतिदाताओं के बहकाने से दाऊद खाँ की चाल पर दक्षिण के सर्दारों को यहाँ तक कि राजा साहू भोसला को, जो बलात् दक्षिण का राजा बन बैठा था, अमीरुल् उमरा के विरुद्ध उभाड़ने में कोई कमी नहीं की। दिल्ली में कुतुबुल् मुल्क से प्रति दिन नया स्नेह तथा नया झगड़ा उठाया जाता था, जिससे हर घड़ी मारकाट का शोर सुनाई पड़ता था! उसने अकेलेपन तथा भय से भाई को लौट आने के लिये लिखा इस पर अमीरुल् उमरा ने निरुपाय होकर गृह के शत्रु को बाहरी शत्रु से बढ़कर समझ सन् ११३० हि० में शंकर जी मल्हार तथा मुहम्मद अनवर खाँ बुर्हानपुरी की मध्यस्थता में राजा साहू से संधि कर ली कि साम्राज्य के प्रांतों को वह न लूटेगा और पंद्रह सहस्र सवार रक्षार्थ सूबेदार के लिये तैयार रक्खेगा। इस पर उसे दक्षिण के छहो प्रांतों में चौथ तथा देशमुखी वसूल करने की सनद इसने अपनी मुहर करके दे दी तथा उसके गुमाश्तों को हर स्थान में सहभागी तथा अधिकृत भी बना दिया इसके सिवाय कोंकण आदि की आय उसे वेतन में मिली; जो उसके प्राचीन राज्य का नाम था। यद्यपि यह संधि समय के अनुकूल लाभ तथा भलाई के उपयुक्त समझी गई परंतु फल की दृष्टि से इससे वस्तुतः हानि हुई और इसके मुख पर बदनामी की स्याही फिर गई। यद्यपि इसके इस काम से यह इच्छा नहीं थी कि इससे इस्लाम धर्म का कोई लाभ होगा, पर कुफ्र का अधिकार एक से दस गुना हो गया और प्रतिदिन बढ़ने लगा। दूरदर्शी न्यायप्रिय लोग कहते हैं कि इस काम से जो दुर्दशा और हानि हुई वह किसके द्वारा हुई। मरहठों के साथ संधि व मित्रता की प्रतिज्ञा तथा वचन को पूरा करने और बादशाह की कुतुबुल् मुल्क पर अप्रसन्नता ये सभी अमीरुल् उमरा के कूच करने के कारण हो गए। उसका हिंदुस्तान की ओर पुनः आना सब पर प्रगट हो गया। बादशाह ने अमीरुल् उमरा के मार्ग में

रुकावट डालने के लिये मुहम्मद अमीन खाँ चीन बहादुर को मालवा का प्रबंध ठीक करने के बहाने वहाँ नियत किया, जो दक्षिण के मार्ग में पड़ता है। इसके अनंतर एतकाद खाँ की बातचीत तथा समझाने से बादशाह और वजीर पुन: एक मन हो गए तब बादशाह ने एखलास खाँ को, जो दोनों भाइयों से मिला हुआ कहा जाता था, हुसेन अली खाँ को समझाने तथा दरबार आने की उसकी इच्छा को शांत करने के लिये उसके पास भेजा। अमीरुल उमरा, जो दृढ निश्चय करने पर भी बादशाह तथा वजीर की नई मैत्री सुनकर नया समाचार पाने की प्रतीक्षा कर रहा था, पुन. वैमनस्य का वृतांत सुनकर पहली मुहर्रम सन् ११३१ हि० को दक्षिण तथा मरहठों की सेना के साथ बड़े शान से औरंगाबाद से रवान: हुआ। मुईनुद्दीन नामक एक अज्ञात मनुष्य को शाहजादा अकबर का पुत्र प्रसिद्ध कर बादशाह को अपनी राजभक्ति तथा सेवा दिखलाते हुए लिखा कि उसने राजा साहू के देश में सिर उठाया था इसलिये कैदकर अपने पास बुला लिया है। ऐसे कार्यों में बड़ी सतर्कता की आवश्यकता है इसलिये साम्राज्य की भलाई के लिये इसे स्वयं लेकर दरबार आता हूँ। रबीउल्अव्वल महीने के अंत में यह दिल्ली के पास फीरोज शाह की लाट की ओर ठहरा और नियम के प्रतिकूल बादशाह की उपस्थिति में डंका पीटते हुए अपने खेमे में गया। इसने दो बार ऊँची आवाज में कहा कि मैं बादशाही सेवा से अलग हूँ। इसके अनंतर कुतुबुल् मुल्क के मध्यस्थ होने पर कुछ प्रण और प्रतिज्ञा होने के बाद ५ रबीउल् आखिर को इसने बादशाह के सामने उपस्थित होकर बहुत सा उलाहना दिया और बहुत सी कृपा पाकर विदा हुआ। उक्त महीने की ८वीं को जाली शाहजादे को सौंपने के बहाने सवार होकर शाइस्ताखाँ की हवेली में गया, जो उसे बादशाह की कृपा से मिली थी। कुतुबुल् मुल्क ने महाराज (अजीत सिंह) के साथ शीघ्रता से पहुँचकर दुर्ग का प्रबंध अपने हाथ में ले लिया और किसी अन्य को वहाँ रहने नहीं दिया। उपाय ही से अधिकार नष्ट होता है और ऐसे समय चुप बैठना अपने प्राण और प्रतिष्ठा को खोना है, जिससे बहुत बड़े बड़े काम हो जाते हैं।[1] इसका वृत्तांत कुतुबुल् मुल्क के परिचय में दिया गया है। अभी दो महीने भी नहीं बीते थे कि शाहजादा मुहम्मद अकबर के पुत्र निकोसिअर ने, जो आगरे के दुर्ग में कैद था, वहाँ के मनुष्यों से मिलकर विद्रोह कर दिया। अमीरुल् उमरा उसे दमन करने के लिये

---

१. सन् १७१८ ई० में महाराज अजीतसिंह दिल्ली बुलाए गए पर जब इन्होंने सैयद भुगताओं का पक्ष लिया तब कुछ समय के अनंतर मेल हो गया पर अंत में १७ फरवरी सन् १७१९ ई० को फर्रुखसियर को गद्दी से उतार दिया गया और बाद में मारा गया।

वहाँ पहुँचकर और तीन महीने कुछ दिनों के घेरे पर दुर्ग के हजारी सेवकों को मिलाकर उसपर अधिकार कर लिया तथा दुर्ग के धन धान्य को स्वयं ले लिया। कुतुबुल् मुल्क राजा जयसिंह सवाई को दमन करने के लिये फतहपुर सीकरी पहुँचा। युद्ध करने के लिये आँवेर से बाहर निकला था, तब अमीर उमरा भी उससे जा मिला। राजा संधि होने के अनंतर दोनो भाइयो मे आगरे की लूट पर आपस मे कुछ मनोमालिन्य आ गया और दोनो ओर से कठोर तीव्र संदेश आए गए। किंतु राजा रतनचंद्र के उद्योग तथा अनुभवपूर्ण प्रयत्न से यह झगड़ा अधिक नहीं बढ़ा और बड़ी अप्रसन्नता के साथ उसमे से थोड़ा कुतुबुल्मुल्क के भाग मे आया। ईश्वर की इच्छा इसी प्रकार की थी, जिसे कोई समझ नही सकता कि दोनों भाइयो ने सफलता की मदिरा से अपने ओठो को तर कर के भी असफलता ही का स्वाद पाया और इच्छित फल की ओर कुछ चलकर असफलता की बाधा से रुक गए। अर्थात् यह संबंध इस प्रकार हो गया कि कार्य बडा तथा गलती तुच्छ हुई जिससे ऐसे भारी कार्य के सामने रहते हुए आकाश मे भारी चक्कर दे डाला तथा एक दूसरे के विचार से हिंदुस्तान की गद्दी न पा सके। यदि एक दूसरे को अपने से कम समझकर या कैद कर लेता या अमीरुल उमरा, जो शान शौकत, वीरता, साहस, बुद्धिमानी आदि मे बहुत प्रसिद्ध हो चुका था और जिसका युद्धकौशल तथा वीरता की धाक दूर तथा पास फैल चुकी थी, कुतुबुल्मुल्क को बीच से हटाकर गद्दी पर बैठ जाता तभी संभव था कि वह सफल हो जाता और बहुत दिनो तक साम्राज्य इनके वंश में रहता, जैसा कि पहले के लोगों के वृत्तांत से ज्ञात होता है।

संक्षेप मे छबीले राम और गिरधर बहादुर के हंगामे के कारण अमीरुल् उमरा बादशाह महम्मदशाह और[1] कुतबुल् मुल्क के साथ फतेहपुर से आगरे लौटकर उस झगड़े के निपटाने तक वही ठहरा रहा। छबीले राम के मरने पर गिरधर बहादुर ने विद्रोह किया। तब हैदर कुली खाँ ने महम्मद खाँ बगश के साथ इसपर नियत होकर राजा रतनचंद की मध्यस्थता में सन्धि की बातचीत आरंभ की। इसी बीच आकाश ने संसार मे नया पृष्ठ खींचा। निजामुलमुल्क बहादुर फतेहजग, जो अपने कौशल तथा सौभाग्य के लिए आलमगीरी सर्दारों मे विशेष सम्मानित था, सैयदों के विरुद्ध विद्रोह कर फुर्ती से दक्षिण की ओर चला और थोड़े ही समय मे अमीरुल् उमरा के बख्शी दिलावर अली खाँ को, जो, चुनी हुई सेना के साथ पीछा कर रहा था, और हुसेन अली खाँ के भतीजे तथा दत्तक पुत्र आलम अलीखाँ को, जो दक्षिण

---

१. फर्रुखसियर के मारे जाने पर रफीउद्दजीत तथा रफीउद्दौलाह क्रमश. दो बादशाह हुए। इनके अनंतर मुहम्मदशाह बादशाह हुआ, जो सन् १७४८ तक गद्दी पर रहा।

की सूबेदारी पर उसका प्रतिनिधि था और वहाँ की नियुक्त सेना तथा मरहठी सेना के साथ युद्ध के लिये आगे बढ़ रहा था, धावा पर धावा कर नष्ट कर दिया।[1] हुसेन अली खाँ पर दैवकोप टूट पड़ा और वह न समझ सका कि अब आगे क्या होगा? वह होशहवास खोकर प्रतिदिन उपाय सोचा करता था। कुछ कहते कि नवाब की कबीला दक्षिण ही मे थी इसलिये दक्षिण की सूबेदारी का फर्मान निजामुलमुल्क के नाम इस समय भेज दिया जाय और फिर क्रमशः अवसर पाकर कुछ उपाय किया जाय। इसी बीच समाचार मिला कि सैयद मुबारक खाँ बुखारी ने जो दौलताबाद का वंशपरंपरा का अध्यक्ष था और हुसेन अली खाँ की ओर से जागीर के बदले जाने के कारण दुखित था, सैयदों की प्रतिष्ठा के विचार मे अमीरुल् उमरा के परिवार को सामान आदि के साथ निजामुलमुल्क के पहुँचने के पहले औरंगाबाद दुर्ग में लिवा जाकर उनकी रक्षा शत्रुओं से कर ली है। यह सुनकर इसका होश कुछ ठिकाने हुआ। बहुत सोचविचार तथा संमति के अनंतर बादशाह को अपने साथ लेकर जीकदः को पचास हजार सवारों की सेना सहित दक्षिण जाने के विचार से कूच किया। इस सेना के सिवा चारों ओर धन भेजकर सेना एकत्र करने का आदेश भेजा।

सुभान अल्लाह, इन दोनों भाइयों में विशेषकर अमीरुल् उमरा में, औदार्य, दान, शील तथा संकोच के चिह्न प्रकट थे और उन्होने कभी ईर्ष्या से किसी पर अत्याचार नही किए पर उनके दिन ऐसे फिरे कि उन्ही के बढ़ाए हुए लोग, यह जानते हुए भी कि इनके पत्तन से उनका भी नाश है, आपस में कहते थे कि हे ईश्वर यह नाव डूब जाय। दूसरों के विषय में क्या कहा जाय। एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीन खाँ चीन बहादुर निजामुलमुल्क से पास के संबंध के रहने से सशंकित होकर अमीरुलउमरा के प्रण और प्रतिज्ञा करने पर भी उससे हट गया और उसका साथ न देकर उसका विरोध किया। मीर हैदर काशगरी दोगलात तुर्कों में से था और इसका दादा इतिहास रशीदी का लेखक मीर हैदर बराबर बाबर और हुमायूँ के साथ रहता था तथा कुछ दिन तक काश्मीर का शासक भी रहा था। मीर शमशेर होने के कारण ये लोग मीर कहलाते थे। इसको चीन बहादुर ने अच्छी प्रकार रखा था कि अवसर पाते ही वह अमीरुल्उमरा के जीवन का अंत कर देगा।

---

१. निजामुलमुल्क ने १९ जून सन् १७२० ई० को दिलावर अली खाँ को और १० अगस्त सन् १७२० को बालापुर के पास युद्ध मे आलम अली खाँ परास्त किया था।

कहते हैं कि बादशाह की माँ, सदरुल् निसामहल और सआदत खाँ नैशापुरी को, जो हिन्दुन बयाना की फौजदारी से दरबार आकर महम्मद अमीन खाँ के भेद को जान चुका था, छोड़कर और कोई इस भेद को नही जानता था। यद्यपि जिस रात को यह घटना हुई उसी रात्रि को मीर जुमला ने अपनी हितेच्छा दिखलाने के लिये अमीरुल्उमरा से इस भेद की सूचना दी पर उसने उत्तर दिया कि मैं कोई खरबूजा नहीं हूँ कि जो चाहे उसे काटले। उसने इसपर कुछ ध्यान नही दिया। दैवयोग से जीहिज्जा[1] सन् ११३२ हि० को तोर में पड़ाव डालकर सेना ठहरी, जो फतहपुर से पैंतीस कोस पर है। एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीन खाँ बीमारी तथा हृदय की घबडाहट के कारण हैदरकुली खाँ मीर आतिश के पेशखाने के आगे उतर गया। हुसेन अली खाँ बादशाह के महल में जाने के अनंतर पालकी में बैठकर अपने स्थान की ओर चला। वह गुलालबार के द्वार तक पहुँचा था कि मीर हैदर ने, जिसे कुछ अपनी बात कहनी थी, अपना वृत्तांत लेख रूप में प्रस्तुत कर अमीरुल्उमरा को हाथोंहाथ दिया। पहले उसने मुख से ही कहना आरंभ किया पर जब देखा कि बड़े ध्यान से पढ़ने मे लगा है तब बड़ी चुस्ती और फुर्ती से एक तेज खंजर उस बहादुर के बगल मे ऐसा मारा कि उसका काम समाप्त हो गया। असदुल्ला खाँ उर्फ नवाब औलिया का पुत्र नूरुल्ला खाँ साथ साथ पैदल चल रहा था। उसने तलवार की एक ही चोट मे मीर हैदर को मार डाला। मुगलो ने हर ओर से दौड़कर नूरुल्ला को भी खतम कर दिया और अमीरुल्उमरा के सिर को काटकर बादशाह के पास ले गए। हुसेनअली खाँ के अभी पडाव पर पहुँचने के कारण सब अपना अपना स्थान ठीक करने में लग गए थे और इस षडयंत्र के न जानने के कारण समय पर नहीं पहुँच सके परंतु सैयद गैरत खाँ × यह घटना सुनते ही कुछ आदमियों के साथ वहाँ पहुँचकर मारा गया। दूसरे लोग भी इस प्रकार चलकर असफल रहे। इसके अनंतर अमीरुल्-उमरा का शव, जो बेइज्जती से पड़ा हुआ था, गैरत खाँ और नूरुल्ला खाँ के शवों के साथ बादशाह की आज्ञा के अनुसार मृत्यु की निमाज पढ़कर, ताबूतो में रख तथा

---

१. ६ जीहिज्जा सन् ११३२ हि०, सन् १७२० ई० मंगलवार को घाटकरैया स्थान में यह मारा गया। संयोग से जिस समय हुसेन अली मीर हैदर का प्रार्थनापत्र पढ रहा था उसी समय पालकी की दूसरी ओर हुक्काबरदार हुक्का लेने उधर घूमा त्यो ही मीर हैदर ने खंजर पूरे जोर से भोंक दिया। (मुहम्मद फैजबख्श कृत तारीख फरहबख्श, अ० डा० होई कृत अनुवाद, भाग १ पृ० २४०-२)।

× पाठा०-गौस खाँ।

जरबपत से ढाँककर अजमेर रवाना करना चाहा परंतु कहारों के अभाव में यह भी न हो सका और लुच्चे जरबपत को भी उठा ले गये। इसके बाद अजमेर भेजकर उसके पिता सैयद अब्दुल्ला खाँ के पास गड़वा दिया।

कुछ विश्वसनीय आदमियों से सुनने में आया है कि इस घटना के पहले एक फकीर ने स्वप्न देखा कि सैयदुश्शोहदा ने अमीरुलउमरा को सैयदुश्शोहदा तृतीय की पदवी दी और कहा कि 'बलग बादक (११३२) वो गलब अदक (११३२)। इस घटना के बाद हिसाब लगाने पर ज्ञात हुआ कि दोनों से मृत्यु की तारीख निकलती है, केवल उलटने की क्रिया से। मीरे अब्दुल जलील हुसेनी वासिती बिलग्रामी के एक कसीदा हुसेन अली खाँ के शोक में कहकर इस घटना तक आकर उसे खतम कर दिया।

सूचना—कसीदे में अठारह शेर हैं, जिनका अनुवाद देना आवश्यक नहीं है।

सत्य तो यह है कि इस राज्यकाल के आसपास कम अमीरों ने इतनी अच्छी प्रकार अपने जीवन व्यतीत किए तथा इतने प्रशंसित हुए थे। यह साहस तथा मुरौव्वत में अद्वितीय था। इसके भोजन की अधिकता तथा उसके बहुत प्रकार के होने की प्रसिद्धि थी। इसके भंडार कच्चे तथा पके अन्न से भरे रहते थे। हर महीने दस या ग्यारह मजलिसें दक्षिण के हर एक बड़े नगरों में होती थीं, जिनमें शेखों फकीरों को बड़ी नम्रता दिखलाता हुआ उनकी सेवा करता था। दक्षिण आने के पहले वह चढ़ाई का धन नहीं लेता था। इसके अनंतर मुहकम सिंह तथा अन्य मुत्सद्दियों ने आय की कमी तथा व्यय के बढ़ने का वृत्त कहकर उसके मिजाज को बदल दिया। कहते हैं कि सूरत बंदर के भारी सौदागर मुल्ला अब्दुल गफूर बहरः का माल, जो एक करोड़ से अधिक का था, सूरत बंदर मुत्सद्दी हैदरकुली खाँ ने उत्तराधिकारी के रहते हुए जब्त कर लिया था। इसी समय साम्राज्य में विप्लव उठ खड़ा हुआ। मृत सौदागर के पुत्र अब्दुल हई ने दरबार में प्रार्थनापत्र दिया और माल मिल जाने के लिए अमीरुलउमरा को पंद्रह लाख रुपया देने को लिखा। एक दिन उसको बुलाकर भेंट में माल लौटा दिया और खिलअत देकर देश भेज दिया। कहा कि आज रात्रि में मुझे इस आदमी के माल के सम्बन्ध में अपने मन से लड़ना पड़ा और अंत में लालच पर विजयी हुआ।

•

७२३. हुसेन कुलीबेग, खानजहाँ

यह बैराम खाँ खानखानाँ का भांजा था। इसका पिता वलीबेग जुलकद्र दौलत खाँ के समय अच्छी जागीर पाने तथा अत्यन्त विश्वासपात्र होने से अन्य सभी सरदारों से बढ़कर माना जाता था। जालंधर के अन्तर्गत हुन्दार कस्बे के युद्ध में, जो बैराम खाँ तथा शम्सुद्दीन खाँ अतगा के बीच में हुआ था, यह घायल होकर पकड़ा गया और उसी चोट के कारण मर गया। अकबर यही समझता था कि इसी के बहकाने से बैराम खाँ ने यह विद्रोह तथा उपद्रव किया है इसलिए इसके सिर को कटवाकर उसने पूर्वीय प्रांत को भेज दिया। खानखानाँ को जिस समय बादशाह के अप्रसन्न हो जाने का निश्चय हुआ उसी समय उसने अपनी सरदारी का सब सामान मेवात से दरबार भेज दिया कि इसे कृपा तथा वृद्धि की प्रार्थना समझे जाने पर उसका काम बन जायगा। जब खानखानाँ के पंजाब जाने का समाचार ज्ञात हुआ, जो विद्रोह तथा उपद्रव की सूचना थी। इसलिए समयोचित समझकर इसको (हुसेन कुलीबेग) आसफखाँ अब्दुल मजीद को सौंप दिया, जो दिल्ली का अध्यक्ष था, कि इसे सुरक्षित रखे तथा हानि न पहुँचावे। उस झगड़े के शांत होने पर हुसेन कुलीबेग को छुटकारा मिला और सेवा तथा व्यवहार के अनुसार इसपर बराबर कृपा होती गई। ८वें वर्ष सन् ९७१ हि० मे जब मिर्जा शरफुद्दीन हुसेन अहरारी बिना कारण दरबार से भागा तब अकबर ने हुसेन कुलीबेग को खाँ की पदवी तथा अजमेर और नागौर की जागीरदारी मिर्जा के स्थान पर देकर उसका पीछा करने को नियत किया। जब मिर्जा बिना युद्ध किए उत्तरी भारत से बाहर चला गया तब हुसेन कुली बिना परिश्रम के उस प्रांत पर अधिकृत होकर वहाँ का प्रबंध पहले से अच्छा करने लगा। इसने जोधपुर दुर्ग को थोड़े समय ही में विजय कर लिया, जो राव मालदेव का निवासस्थान था। मालदेव ऐश्वर्य तथा सेवकों की अधिकता के कारण हिंदुस्तान के सभी राजाओं मे अधिक सम्मानित था और उसकी मृत्यु पर उसका छोटा पुत्र चंद्रसेन उत्तराधिकारी हो गया था। इसने चित्तौड़ के घेरे के समय राणा उदयसिंह का पीछा करने मे बहुत प्रयत्न किया था और इसके लिए इसकी प्रशंसा भी हुई थी।

जब १२ वें वर्ष में अतगावाले सब सरदार पंजाब से दरबार बुलाये गये, तब उस प्रांत का, जो बादशाही बड़े प्रांतो मे से एक था, हुसेन कुली खाँ सूबेदार नियत हुआ, पर रणथम्भोर की चढ़ाई के निश्चित हो जाने पर वहाँ जाने की छुट्टी न पाकर यह बादशाही सेना के साथ चला गया। उस दृढ़ दुर्ग के टूटने पर जब बादशाह आगरे आये तब इसे नियत महाल पर जाने की छुट्टी मिल गई। १७वें वर्ष मे नगरकोट दुर्ग को घेरने के विचार से बादशाह की आज्ञा के अनुसार यह उस ओर

तब हुसेन कुली खाँ दरबार पहुँचा और मसऊद हुसेन की आँखें सिलवाकर तथा अन्य कैदियों को बैल के चमड़े, जिनकी सींगें अलग नहीं की गई थीं, पहिराकर बादशाह के सामने ऐसी विचित्र मूर्तों में उपस्थित किया। बादशाह ने कृपा तथा मुरौवत से मिर्जा की आँखें खुलवा दीं और अन्य की जान बख्शी। हुसेन कुली खाँ अच्छा मन्सब तथा खानजहाँ की पदवी, जिससे बढ़कर खानखानाँ के सिवा अन्य कोई पदवी नहीं थी, पाकर सम्मानित हुआ। जब बदख्शाँ का शासक मिर्जा सुलेमान अपने पौत्र मिर्जा शाहरुख के अधिकार से भागकर अकबर की शरण में आया तब हुसेन कुली खाँ को आज्ञा हुई कि पंजाब की भारी सेना लेकर मिर्जा के साथ बदख्शाँ जाय और उस वृद्ध शासक को उस प्रांत की राजगद्दी पर बैठा दें। इसी समय २० वें वर्ष सन् ९८३ हि० में बंगाल का शासक मुनइम खाँ खानखानाँ मर गया और उस प्रांत में बड़ा उपद्रव मचा। सहायक सरदार गण उस प्रांत की खराब हवा से डर कर और दाऊद अफगान के उपद्रव से, जो उन प्रांतों के राज्य का दावा करता था और अधीनता छोड़कर नए सिरे से विद्रोह कर बैठा था, भय खाकर एकबारगी अपने स्थानों को छोड़ उस प्रांत से बाहर चले आये। विशेष कार्य के लिये साधारण कार्य को छोड़ देना अच्छी राजनीति है, इसलिए बादशाह ने खानजहाँ को फुर्ती से पंजाब से बुलाकर बंगाल का सूबेदार नियत किया और राजा टोडरमल को जो वीरता तथा अनुभव में बहुत बढ़ाचढ़ा था और उस प्रांत में अच्छा काम कर चुका था, इसके साथ भेजा। बंगाल के सरदार गण भागलपुर बिहार के पास खानजहाँ से मिले और उनमें से कुछ ने खराब जलवायु के कारण लौटने की राय दी। कुछ धर्म की भावना के कारण विरोधकर बकवाद करने लगे। खानजहाँ वृद्ध तथा स्वभाव पहचाननेवाला सरदार था इसलिये वह वहाँ से न हटा और उन लोगों को सान्त्वना तथा दिलासा देकर इन सबके साथ आगे बढ़ा। इस कारण कि अधिकतर सेना चगत्ताई थी और कजिलबाश की सरदारी से बिगड़ती न थी, इसलिये थोड़े ही प्रयत्न से गढ़ी को, जो बंगाल का फाटक है, खाली कराकर टाँडे तक के प्रांत पर अधिकार कर लिया, जो हाथ से निकल गया था। इसके सिवा जो गड़बड़ी मची थी उसे भी दूर करने का इसने प्रयत्न किया। दाऊद खाँ किर्रानी आक महल को दृढ़कर बादशाही सेना के सामने डट गया। प्रति दिन युद्ध और धावे होते रहते थे। खानजहाँ और राजा टोडरमल कितना भी प्रयत्न करते थे पर सैनिकों के साहस की कमी के कारण कुछ न हो पाता था। एक दिन ख्वाजा अब्दुल्ला नक्शबंदी ने कुछ सेवकों के साथ अपने मोर्चे से आगे बढ़कर युद्ध के लिये शत्रु को ललकारा, जिससे शत्रुओं का एक झुण्ड लड़ने के लिये आगे बढ़ आया। ख्वाजा के साथियों ने इसका साथ नहीं दिया पर वह स्वयं वीरता के साथ डटा रहा और मारा गया। जब यह समाचार अकबर बादशाह को मिला तब उसने शोक प्रकट कर बिहार के सूबेदार

मुजफ्फर खाँ को आज्ञा पत्र भेजा कि शीघ्र उस प्रांत के जागीरदारों के साथ बंगाल की सेना से जा मिले। सन् ९८४ हि० मे मुजफ्फर खाँ विहार प्रांत की कुछ सेना एकत्रकर वहाँ पहुँचा और खानजहाँ सेना का व्यूह रचकर युद्ध करने लगा। दैवयोग से विजय के दिन की पहली रात्रि को तोप का एक गोला बादशाही सेना से उसकी चारपाई पर पहुँचा, जिसपर दाऊद का चाचा जुनहे किर्रानी सोया हुआ था और उससे उसका पैर नष्ट हो गया। इसके अनंतर जब वीरता के साथ कड़े धावे हुए तब शत्रु की मध्य सेना का अध्यक्ष काला पहाड़ घायल होकर भागा। अभी युद्ध मध्य में पहुँचा था कि शत्रु सेना में भगदड़ मच गई। अफगानो ने साहस छोड़कर भागना आरम्भ कर दिया और बहुत से पीछा करनेवाले वीरो द्वारा मारे गये। दाऊद चाहता था कि किसी ओर वह भाग जाय पर कीचड़ के कारण घोड़े के रुक जाने से वह पकड़ा गया। जब वह खानजहाँ के सामने लाया गया तब उससे पूछा गया कि खानखानाँ के साथ वचनबद्ध होना तथा शपथ खाना क्या हुआ? उसने उद्दंडता से उत्तर दिया कि वह मौखिक संधि थी, जिसमे मित्रता का संबंध नये सिरे से हो। खानजहाँ ने आज्ञा दी कि उसके सिर का बोझ जिसमें मस्तिष्क नही है, हलका कर दो। उसका सिर उसी समय सैयद अब्दुल्ला खाँ के हाथ दरबार भेज दिया गया। जिसको बादशाह ने खानजहाँ के पास इसलिए भेजा था कि वह जाकर यह समाचार दे कि गोघूंदा के पास राणा के साथ युद्ध करके राजा मानसिंह कछवाहा ने विजय प्राप्त की है और बादशाही सेना सरदारो के साथ शीघ्र लौट कर पूर्वीय प्रांत मे पहुँचती है। दैवयोग से इसे विदा करते समय बादशाह ने कहा था कि जब वह यह शुभ समाचार ले जाय तो उस ओर से भी बंगाल के विजय का समाचार ले आवे। सैयद अब्दुल्ला खाँ ग्यारहवे दिन, जिस समय बादशाह उस प्रांत पर चढ़ाई करने के विचार से फतहपुर से बाहर निकला था, उसी समय पहुँचकर उस विद्रोही का सिर जिलौखाने में डाल दिया। आक्रमण की आशंका जाती रही और विजय पत्र चारो ओर भेजे गये। इस विजय के अनंतर खानजहाँ राजा टोडरमल को दरबार भेजकर स्वयं सतगाँव की ओर सेना लेकर गया, जहाँ दाऊद का परिवार था। उसका खासखेल जमशेद आक्रमण कर परास्त हुआ और दाऊद की माँ अपने संबंधियो के साथ दरबार आई। वह प्रांत जिसे प्राचीन समय से उपद्रव का घर कहते थे अर्थात् जहाँ की कुछ भी जमीन बलवाइयों के उपद्रव से खाली नही बची थी, खानजहाँ के साहस तथा वीरता से पुनः अधिकृत होकर शांति का घर हो गया। कूच प्रांत के जमींदार राजा माल गोसाईं ने भी अधीनता स्वीकार कर ली। खानजहाँ ने वहाँ की अच्छी वस्तुएँ तथा ५४ हाथी दरबार भेज दिया। भाटी प्रांत में कुछ अफगानो ने उपद्रव मचा रखा था और वहाँ के जमींदार ईसा ने विद्रोह कर दिया था, इसलिये २३वें वर्ष मे खानजहाँ ने उस ओर रवाना

होकर एक सेना आगे भेजी। घोर आक्रमण पर परास्त होकर ईसा भाग गया और अफगान अस्तव्यस्त हो गये। खानजहाँ इस कार्य के निपटने पर लौटकर सहेतपुर पहुँचा. जिस नगर को यह टाँडा के पास वसा रहा था, और वही आराम से रहने लगा। हर एक सुख का अन्त दुःख मे होता है और हर एक पूर्णता का अत नाश मे। शेर का अर्थ—कोई इच्छा पूर्णतः सफल नही होती। ज्योही पृष्ठ पूरा हुआ कि उलट दिया गया। खानजहाँ थोडे ही समय के वाद वीमारी से डेढ़ महीने तक बिछौने पर पडा रहा। हकीम लोग बिना समझे दवा करते रहे। उसी वर्ष सन् ९८६ हि० में यह मर गया। यह पाँचहजारी अकवरी मनसवदार था। इसका पुत्र मिर्जा रजाकुली ४७ वें वर्ष में पाँचसदी ३०० सवार के मनसव तक पहुँचा था।

•

७२४. हुसेन खाँ खेशगी

यह सुल्तान अहमद आजमशाही का वड़ा पुत्र था। जब इसका पिता औरंगजेब वादशाह के बुलाने पर कसूर कसवा से, जो खेशगियो का निवासस्थान था, दरवार को रवाना हुआ, उसी समय उसकी मृत्यु हो गई। इसके दो भाई वाजीद खाँ और पीर खाँ ने वादशाह की सेवा मे पहुँचकर मनसव पाया। यह अपने चौथे भाई के साथ अपने निवास-स्थान को लौट आया और नौकरी की कुछ भी चिंता न की। यद्यपि इसके नाम से मनसव मिला था पर यह कभी अपनी वस्ती से बाहर न गया। जो दूसरो को वड़े परिश्रम और खोज पर मिलता है वह इसको वहुत वहुत घर वैठे मिल जाता था। यह उस स्थान की रियासत पर ही संतोष रखता था और सेना तथा आदमियों की अधिकता से दूसरो से वढ गया था। लाहौर के सूबेदारों को हिसाव की प्रतिलिपि पूरी न देकर कुछ वस्तु हाथ से उठाकर उनकी जागीरों से दे देता था, जो वहाँ पास मे थी। वह अपने को वहुत कुछ दीवाना तथा पागल प्रगट करता था पर कामों में सतर्क रहता था। पवित्र सैयद वंश के नियमो को यथारीति पूरा करता था और सैयदो की दया तथा उदारता के किसी काम मे कमी नही करता था। इसकी एक फकीर से मित्रता थी, जो वट नाम से प्रसिद्ध था। वह जो कुछ कहता वही यह करता था, कभी उसे अस्वीकार न करता। जवतक वैठा रहता तवतक घडी घड़ी समाचार दिया जाता था कि मियाँ साहव अच्छी तरह हैं। यह कहता कि खुदा का शुक्र है। उस फकीर का नाम महम्मद खाँ था और वह वटक जई जाति का था। एकाएक पागलपन उसके सिर में चढ़ गया और वह उपद्रव मचाने लगा। वहुत

दिनों तक इसके पैर में बेड़ी पड़ी रही। अंत मे हुसैन खाँ का उसपर प्रेम, जो पागलपन की अवस्था में जो कुछ वह कहता था उसे यह सच्चा मानता और हुसैन खाँ का विश्वास बढ़ता गया।

बटकजई का शेख बटफ के वंश मे है जो जमहूर के लिखने के अनुसार खेशगी का पुत्र था। कुछ लोग शेखुल इससाम शेख मौदूद चिश्ती का पौत्र जानते हैं। परंतु बत्त शोरयानी का शिष्य होने से बटक बत्तूजई कहलाता था, जिसे उस जाति के बड़े लोग अच्छी तरह जानते है। शोरयान उसके पिता का नाम था, जो खेशगी का पुत्र था। इसे तीन पुत्र थे—बत्तू, हुसैन और खलक। पहले को खुदा की भक्ति की मन मे इच्छा उठी। इसलिये गुरु की खोज मे वह बाहर निकला। जब वह इस प्रयत्न में इधर उधर अधिक न भटककर चिश्त बस्ती मे पहुँचा तब ख्वाजा मौदूद चिश्ती की सेवा में गया, जिसका ख्वाजा मुईनुद्दीन सजरी से संबंध पहुँचता था। यहाँ उसकी इच्छा पूरी हुई और यह बहुत दिनो तक उस वृद्ध पुरुष की सेवा में रहा। सिद्ध होने पर इसने अपने प्रिय देश को लौटने का विचार किया। परंतु वह शेख की मृत्यु पर ही अपने देश लौटा। पहाड़ के बहुत से आदमी, कुल खेशगी लोग तथा जमंद के मनुष्य इनके शिष्य हो गए। उसके शिष्यो में से शेख बटक भी एक था, जो उसका चाचा और अपने समय के सिद्ध पुरुषो में से था। उसने इसके लिये आशीर्वाद दिया कि प्रलय तक तुम्हारे वंशधर भक्ति तथा सिद्धता से कभी खाली न रहेगे। इस कारण इस जाति में बहुधा फकीर होते आए हैं और यह शाखा परिजादगी के नाम से प्रसिद्ध है।

कहते है कि पीर बत्तू का कपडा काला था। जब शेख बटक सिद्धता को पहुँचा तब उसको अपना स्याही वस्त्र दे दिया और स्वयं सुफेद वस्त्र पहनने लगा। इसी कारण बटक जई लोग हर काली वस्तु को पवित्र समझते हैं। इसके विरुद्ध बत्त जुई लोग उनको अवित्र समझते है खेशगी लोगो का झंडा काला तथा श्वेत होता है और इन दोनो बुजुर्गों के शेर उसपर लिखे होते रहते हैं।

हुसेन खाँ कसूर कसबे में और उसके चारो ओर विद्रोह तथा उपद्रव मचाए हुए था और वहाँ के छोटे बडे जागीरदारो को सिवा डंड देने और मार डालने के कोई जवाब न देता था। यहाँ तक कि जब बहादुरशाह लाहौर मे आकर ठहरा और इसके अनंतर शाहजादो में लडाइयाँ हुईं तब इसने कुछ भी प्रयत्न नही किया, जो उसे करना चाहिए था और अपने उसी विद्रोहकार्य मे लगा रहा। जब फर्रुखसियर के राज्य के आरंभ में पंजाब प्रांत का प्रबंध अबुस्समद खाँ दिलेर जंग को सौंपा गया तब उक्त खाँ से मित्रता का संबंध स्थापित कर उससे मिलने के लिये यह लाहौर आया। अबुस्समद खाँ ने इसे लक्खी जंगल की फौजदारी पर नियत कर दिया। यह अन्यायी और भी विशेष अकड़ कर विद्रोह तथा उपद्रव

अधिक करने लगा। जब सूबेदार ने देखा कि यह लक्खी जंगल की आय भी कसूर की जागीर के समान हिसाब समझाकर नही देता तब उसने कुतुबुद्दीन रुहेला को उसकी जागीर पर नियत किया। क्योंकि सिवा परेशानी तथा लज्जा के इस प्रबंध मे और कुछ नही प्राप्त हो सकता था। इससे भी उसने ठीक बर्ताव न कर काम बिगाड़ दिया। सनद न होने के कारण अन्त में इसपर फौज लेकर चढ आया और इसका प्राण और धन नष्ट कर दिया। अब्दुस्समद खाँ कुछ दिन तक ऐसा होने पर भी चुप रहा।

जब इसका उपद्रव सीमा के बाहर हो गया तब अब्दुस्समद खाँ ने उस जिले का प्रबंध ठीक करने को स्वयं साहस किया और सात सहस्त्र सवारों के साथ लाहौर से बाहर निकला। इसने हुसेन खाँ को लिखा कि कसूर तथा उसके प्रांत तुम्हारे लिये बहुत है इसलिये दूसरे महालो से अपना अधिकार हटा लो। इसने न मानकर तीन सहस्त्र सवारों के साथ इसका सामना किया। कुछ लोग कहते हैं कि साम्राज्य के अधिकारी सैयदों ने लाहौर की सूबेदारी का लोभ दिखलाकर इसे अब्दुस्समद खाँ से लड़ने को बाध्य किया था। कुछ लोग कहते है कि कुतुबुल्मुल्क ने लाहौर के सूबेदार सैयद हसन खाँ बारहा के लिखने पर, जो कसूर के मार्ग से जाते हुए हुसेन खाँ के उपद्रव तथा विद्रोह से अवगत हुआ था, अब्दुस्समद खाँ को आज्ञा दी कि उसको दमन करे। साथ ही सेना के लिये लाहौर के कोष से वेतन देने की आज्ञा दी। संक्षेपतः जोहनी कसबा के पास, जो लाहौर से तीन कोस पर और कसूर से अठारह कोस पर है, मुहम्मद शाह के राज्य के २ रे वर्ष में ६ जमादि उल आखिर को दोनों ओर में घोर युद्ध हुआ। उद्दंड अफगान तोपखाने पर धावा कर उस अग्निवर्षा के मार हो गये। अब दोनो ओर के हरावलो ने बडी वीरता दिखलाई। हुसेन खाँ की ओर उसका भतीजा मुस्तफा खाँ अध्यक्ष था, जो अली खाँ का पुत्र और बायजीद खाँ का दामाद था। अब्दुस्समद खाँ की ओर उसकी सेना का बख्शी करीम कुली खाँ अध्यक्ष था। आगर खाँ, जो आरिफ खाँ चेला के साथ सेना की बाईं ओर था, हुसेन खाँ के सामने हुआ और पैंसठ धनुर्धारी सवारो के साथ दृढ़ता से डटकर तीर बरसाने लगा। हुसेन खाँ ने उससे बचकर अब्दुस्समद खाँ पर धावा कर दिया। इसके कडे आक्रमणों से सूबेदार के सैनिकगण युद्ध में न ठहर सके और करीब था कि अब्दुस्समद खाँ घायल हो जाता। जानी खाँ और हफ़ज्जुल्ला खाँ आदि सरदारो ने बहुत प्रयत्न किए और आगर खाँ ने दूसरी बार पहुँचकर तीरो की वर्षा आरंभ की। इसी बीच हुसेन खाँ का महावत मारा गया और वह फकीर जो हाथी पर उसके साथ बैठा हुआ था, तीर खाकर मर गया, जिससे हुसेन खाँ के लिये संसार अंधकारमय हो गया। हुसेन खाँ भी घायल हो चुका था इसलिये मुगलो ने उसके हाथी को तीरों और गोलियो का निशाना बनाकर गिरा दिया।

७२५. हुसैन खाँ टुकरिया

यह मेहद कासिम खाँ का भाजा और दामाद था। इसकी जीवनी की भूमिका के आरंभ मे मुहम्मद बैराम खाँ खानखाना की मित्रता तथा नौकरी बड़े अक्षरो मे लिखी हुई है। दूसरे वर्ष जब अकबर बादशाह ने मानकोट के विजय के अनतर लाहौर राजधानी में चार महीना चौदह दिन ठहर कर उस प्रात का प्रबंध ठीक किया और सन् ९६५ हि० के सफर महीने मे दिल्ली लौटा तब हुसैन खाँ को लाहौर का शासक नियत किया। यहाँ के शासनकाल मे इसने एक दिन लंबी दाढ़ीवाले एक हिंदू को मुसल्मान समझकर अभ्युत्थान दे दिया, तब इस पर इसने यह ताकीद की कि हिंदू लोग अपने कपडे में कधे के पास एक चिन्ह सिलवा रखा करे। यह पहले पीले रंग के कपडे का टुकडा होता था, जिसे यहूदी लोग अपने कंधे पर संमान के लिये सिलवाया करते थे। इसे हिंदी मे टुकडा कहते हैं और इसी से यह टुकडिया नाम से प्रसिद्ध हो गया। जिस समय बादशाह बैराम खाँ से बिगड गया और सेना के लोग उससे अलग होकर झझर कसबा में बादशाह के पास चले गए। तब उसके विश्वासी मित्रो मे से सिवाय हुसैन खाँ टुकड़िया और शाह कुली खाँ महरम के कोई दूसरा साथ नही रहा। उस सरदार के प्रभुत्व के नष्ट हो जाने पर यह बादशाही सेवा मे चला आया। ११वें वर्ष में जब मेहदी कासिम खाँ गढा के शासन से उकताकर दक्षिण के मार्ग से हज्ज को रवाना हुआ तब हुसैन खाँ उसे पहुँचाने के लिये कुछ दूर साथ जाकर लौट आया। जब हुसैन खाँ मालवा मे देवास कसबे में पहुँचा तब विद्रोही मिर्जाओ के आने का शोर मचा। लाचार होकर उसी कसबे में वहाँ के जागीरदार मुकर्रब खाँ के साथ मोर्चा बाँधकर ठहर गया। इसके अनंतर जब मुकर्रब खाँ साहस छोडकर हट गया। तब हुसेन खाँ बाहर निकलकर इब्राहीम हुसेन मिर्जा से मिला। उसने इससे बहुत कुछ मित्रता करना चाहा पर इसने स्वीकार नही किया। १२वे वर्ष मे जब अकबर अली कुली खाँ खानजमां शैबानी को दमन करने में प्रयत्नशील था तब यह सेवा में पहुँचा। वहाँ गुण ग्राहकता का बाजार गर्म था और इसकी वीरता, साहस तथा सेवाकार्य और स्वामिभक्ति बादशाह के मन मे बैठ चुकी थी इसलिये इसपर अनेक प्रकार की कृपाएँ हुई। यह होते हुए कि यह प्रबंधकार्य अच्छी प्रकार नही जानता था तब भी इस आशा से कि अच्छे पद पर पहुँच जायगा इसे तीन हजारी मनसबदार बना दिया। संसारी हवा पुरुषो को गिरानेवाली होती है और कम साहसवाले उसको सहन नही कर सकते, यह भी अपने को उससे न बचा सका। अपनी जागीर के महाल में इसने अत्याचार करना आरंभ कर दिया और अपना पैर राजभक्ति के बाहर रख दिया। जब १९वें वर्ष में बादशाही सेना पूर्वी प्रांतों

का विजय करने के लिये आई तब इसके दुर्भाग्य ने इसे सेवाकार्य से अलग रखा। एक दिन अकबर बादशाह ने इसका वृत्तांत पूछा कि इस चढाई में वह क्यों नहीं उपस्थित हुआ तब लोगो ने प्रार्थना की कि पागलपन ने उसके स्वभाव पर अधिकार कर निर्बलों को मारने तथा प्रजा को लूटने मे उसको लगा रखा है। इस समय बादशाह एक चढाई में व्यस्त थे इसलिये इस पर किसी को दंड देने के लिये नियत नहीं किया, केवल इसे सूचना दी कि उसकी जागीर जब्त कर ली गई है। पटना तथा हाजीपुर के विजय के अनंतर जब बादशाही सेना आगरे लौट रही थी तब यह पागल स्वभाववाला मार्ग मे पडाव पर पहुँचा पर यह दरबार में उपस्थित होने नही पाया। पागलपन ही से सांसारिक सामान को छोड़कर फकीर हो गया। बादशाही कृपा इसपर फिर से होगई और अपनी निजी तूणीर से एक तीर इसे दी कि इसकी सहायता से वह अपनी जागीर पर, जो खालसा कर ली गई थी, अधिकार करले और सेना ठीक करे। इस प्रकार दरबार से इसने छुट्टी पाई पर अपने स्वभाव की खराबी से इसने वही अयोग्य चाल फिर पकड़ी और लूटमार मे फिर मन लगाया। एक दिन लूट मार करता बसंतपुर पहुँचा, जो कमायू सरकार में है और जिसकी खानो और उपजाऊपन की प्रसिद्धि से इसकी बुद्धिमानी में खलल पड गया था। नष्ट दुष्टो की पेशानी पर दुःख का चिह्न बना रहता है इसलिये यह अदूरदर्शी उस प्रदेश मे विना सामान के पहुँचकर युद्ध करने के कारण परास्त हुआ और तीर से घायल होकर लौटा। इस घटना के पहले इसके अत्याचार के दमन करने के लिये दरबार से सादिक खाँ नियत हो चुका था। जब यह चोटो के कारण बेहोशी से कुछ होश मे आ रहा था कि इस भेजी गई सेना का शोर सुनकर इसका होश बिल्कुल ठिकाने आ गया। इसके साथ के नीच उपद्रवी भी इसे छोड़कर भाग गए। अपने हितैषियो के प्रयत्न से इसने इसी मे अपनी भलाई देखी कि गढ मुक्तेश्वर के पास से नाव पर सवार होकर मुनइम खाँ खानखानाँ के पास आने को पहुँचावे, जिससे उस सेनापति की मध्यस्थता से इसके दोष छिपे रह जायँ। परंतु इस बात का पता पाकर शीघ्रगामी लोगों ने चाड़ कसबे में पहुँचकर उसे कैद कर लिया और आज्ञा के अनुसार आगरे लाकर इसके मकान मे इसे रक्षा मे रखा। इसी वर्ष सन् ९८३ हि० मे उन्ही चोटो के कारण यह मर गया। इसका पुत्र यूसफ् खाँ जहाँगीर के राज्य में एक सर्दार था।

७२६. सैयद हुसेन खाँ बारहा

यह बहादुरशाह का एक वालाशाही सवार था। सब साम्राज्य के कामो का प्रबंध बहादुरशाह के अधिकार में आया और राजा जयसिंह सवाई तथा उसके भाई विजयसिंह के बीच में, जो दोनों बादशाह के साथ काबुल मे थे, झगड़ा उठा जिसे दोनों को प्रसन्न रखना था, तब बादशाह ने, झगडा तै करने का कुछ विचार किया और आमेर को बादशाही राज्य में जब्त कर हुसेन खाँ बरहा को वहाँ का फौजदार नियत कर किया। उसी समय बहादुरशाह मुहम्मद कामबख्श से युद्ध करने के विचार से दक्षिण की ओर रवानः हुआ और राजा जयसिंह तथा महाराज अजीतसिंह बादशाह से बिना आज्ञा लिये ही सेना से अलग होकर अपने देश को चल दिए। वहाँ पहुँचने पर सेना एकत्र कर उन दोनो ने बहुत से बादशाही थाने उठा दिए। यह हालत देखकर सैयद हुसेन खाँ ने नई व पुरानी सेनाओं की गिरदावली अपने ऊपर लेकर अपने तीन पुत्र अनूर सईदखाँ, गैरत खाँ और हसन खाँ, अपने बहनोई महाबत खाँ और दो भांजो मुहम्मद जमाँ खाँ और सैयद मसऊद खाँ के साथ आमेर मे युद्ध के लिये तैयारी की। पर राजपूत लोग चीटी तथा टिड्डी की तरह चारो ओर से निकल निकलकर उपद्रव करने लगे तब नौकर सैयद हुसेन खाँ का होश उडाकर भाग गए। निरुपाय हो थोडी सेना के साथ आमेर मे निकलकर दुर्गादास राठौर का काल[illegible]र के मैदान में सामना किया। राजपूत सेना परास्त हो भाग गई पर उक्त बेहीर खाँ मारा गया और इसका पुत्र भी जो उसकी रक्षा मे था मारा गया। हुसेन खाँ लाचार हो सवेरे बेसामानी में नारनौल पहुँचा और फिर से सेना एकत्र कर साँभर कस्बे के पास राजा जयसिंह से सामना किया। यद्यपि पहले उक्तखाँ विजयी हुआ पर एकाएक दो तीन सहस्त्र बंदूकची जो बालू के टीले के पीछे घात मे बैठे थे, निकलकर इसपर आग बरसाने लगे और उक्त खाँ पर, जिसके साथ थोडी सेना थी और वह भी घायल थी, चारो ओर से घेर कर आक्रमण करते हुए सर्दारो को मार डाला। मुहम्मद जमाँ खाँ और सैयद मसऊद खाँ दोनों भांजे पकड़े गए जिनमे प्रथम को मार डाला और दूसरे को जो अवस्था में सोलह वर्ष से अधिक न था, राजा के पास ले गए। राजा ने उसके घावो की पट्टी करने की ताकीद की। सैयद हुसेन खाँ को गंजे शहीदाँ में गाड दिया। यह घटना बहादुरशाह के जलूस के दूसरे वर्ष को सन् ११२० हि० (सन् १७०९ ई०) में घटी। कहते है कि उक्त खाँ की कब्र के ऊपर साँभर तालाब के किनारे राजा ने अच्छा बाग तथा मकबरा बनवाया था उक्त खाँ के मंसब का कुछ पता नही लगा।

•

७२७. हुसेन बेगखाँ जीग

यह प्रसिद्ध अली मर्दान खाँ का भांजा और दामाद था। जब काबुल का सूबेदार सईद खाँ अलीमर्दान खाँ के संकेत पर कंधार पहुँचा तब इसने वहाँ के रहनेवालों को अपनी ओर मिला लिया। इसने यह समझकर कि कजिलबाश सेना से बुस्त के पास ठीक ठीक प्रबंध न हो सकेगा, इसलिये अली मर्दान खाँ को उस सेना के साथ कंधार दुर्ग में छोड़कर तथा उसके तीन सहस्त्र सवारों को हुसेन बेग की सरदारी में साथ लेकर उसने कजिल बाश सेना से युद्ध की तैयारी की। ईरान की सेना अली मर्दान खाँ की सेना पर विजय पाकर उसे भगाने लगी पर सईद खाँ ने समय पर पहुँचकर शत्रुओं को परास्त कर भगा दिया। हुसेन बेग अलीमर्दान खाँ के साथ शाहजहाँ की सेवा मे उपस्थित होकर बादशाही कृपा से पुरस्कृत हुआ। इसके वृत्तांत से योग्यता प्रगट हो रही थी इसलिये उक्त खाँ के साथ यह सेवा मे भर्ती किया गया और इसे आखता बेगी का कार्य सौंपा गया, जिस पद पर सिवा विश्वस्त लोगों के दूसरा नियत नहीं होता था। १८वें वर्ष में उस कार्य के साथ तुजुक की सेवा भी सौंपी गई और इसे जड़ाऊ छड़ी तथा मनसब मे तरक्की मिली। २१वें वर्ष मे बादशाह के पास की सेवा से छुट्टी पाने पर इसे कश्मीर की सूबेदारी, खाँ की पदवी और पाँच सदी ५०० सवार की तरक्की मिली, जिससे इसका मंसब डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। इसे झंडा तथा हाथी पुरस्कार मे देकर उस प्रांत को भेज दिया। २८वे वर्ष मे यह राजनफर खाँ के स्थान पर दोआब का फौजदार नियत हुआ और मुखलिस्टपुर की इमारतों का निरीक्षक नियत किया जाकर वहाँ भेजा गया, जिसकी नीव डालने की साइत १७ मुहर्रम सन् १०६५ हि० को उक्त वर्ष मे निश्चित हुई थी। ३१वें वर्ष मे यह दोबारा मीर तुजुक नियत हुआ और सामूगढ़ के युद्ध मे यह बादशाही तोपखाने का प्रबंधक था। दाराशिकोह ने अपने तोपखाने को मीर आतिश बरकंदाज खाँ की सरदारी मे दाहिनी ओर और बादशाही तोपखाने को बाईं ओर सेना के व्यूह के आगे रखा था और दोनों ही युद्ध मे आग बरसाने तथा लड़ाई जारी रखने मे किसी से कम न रहे परंतु सेनापति के दुर्भाग्य का क्या उपाय है। दाराशिकोह के भागने तथा औरंगजेब के हाथ में राज्यकार्य आने पर यह भी सेवा मे पहुँचकर संमानित हुआ। राज्य के प्रथम वर्ष मे बंगश का फौजदार नियत होकर २रे वर्ष मे यह उस पद से हटा दिया गया। १८वें वर्ष मे यह जौनपुर का फौजदार नियत हुआ। १९वें वर्ष सन् १०८६ हि० के अंत मे यह मर गया। इसके पुत्र मिर्जा अताउल्ला तथा मिर्जा अमान बहुत दिनों तक बादशाही सेवा मे रहे। पहला सात सदी मनसब पाकर मर गया। दूसरा काबुल में नियत होकर वहीं तरक्की पाता हुआ नासिर खाँ की पदवी से प्रसिद्ध हुआ। इस कारण इसका वृत्तांत अलग दिया गया है।

७२८. हैदरअली खाँ बहादुर[1]

कहते हैं कि इसके पूर्वजगण का संबंध मदीना निवासी अब्दुल्ला शेख तक पहुँचता है, जो कुरेशी जाति का एक बडा आदमी था।[2] सन् ११६५ हि० सन् १७५२ ई० के आरंभ में यह पूरा प्रभुत्व प्राप्तकर मैसूर के राज्यकार्य का मुतसद्दी बन गया। इसने बाद को बहुत से नगर तथा दुर्ग विजय किए और स्वतत्रता का झंडा खडा किया। इसके राज्य की आय छह करोड़ रुपए थी। कडप्पा से कोडियाल तक और कालीकोट से धारवार तक का विस्तृत राज्य अपने हाथों के जोर से यह अपने अधिकार मे ले आया था। जब टोपीवाले अंग्रेज इसके राज्य में आए तब इसने सवारों को पाईंघाट करनाटक भेजकर उन्हें दमन कर दिया और उनसे अपनी इच्छानुसार संधि करा ली। इसके अनंतर जब मराठों में आपस मे झगडा होने लगा तब इसने आरंभ में अपने थानों को दृढ करते हुए धीरे-धीरे उनके कुल स्थानों को कृष्णा नदी के किनारे तक ले लिया। इसके बाद इसने चीतल दुर्ग को घेर लिया, जो एक जमींदार का स्थान था और उस पर अधिकार कर लिया। लिखते समय सन् ११९३ हि० सन् १७७९ ई० में इसने कड़प्पा पर धावा कर सीधोट, कुंजीकोट आदि महालों पर अधिकार कर लिया और वहाँ के अध्यक्ष अब्दुल हकीम खाँ मिआना को कैदकर अपने साथ श्रीरंगपत्तन लिवा गया। इसके पास भारी कोष था, आय अधिक थी और रत्न भी इकट्ठे किए थे। इसके यहाँ बहुत सेवक थे पर तब भी धन भेजकर आदमियो को बुलवाता था। जल्दी चलनेवाला तोपखाना एकट्ठा कर इसने यह नियम बना दिया था कि पडाव पड़ने के बाद सेना के चारों ओर बंदूकचियो के पहरे बैठाए जाए, जिससे कोई अजनबी आदमी भीतर न चला आवे।[3]

---

१. इस ग्रथ मे इसकी जीवनी का दिया जाना किसी प्रकार उपयुक्त तथा उचित नही था क्योंकि इससे मुगल दरबार से कुछ भी संबंध कभी नही रहा। इसी कारण परिचय अति संक्षिप्त है और केवल कुछ प्रशंसा मात्र लिखा गया है।

२. इसका एक पूर्वज हसन बगदाद से आकर अजमेर में बस गया। इसका पौत्र अली मुहम्मद मैसूर के [illegible] और [illegible] में आ बसा। इसे चार पुत्र थे जिनमें सबसे छोटा फतेह मुहम्मद सेना मे भर्ती हो गया और कुछ दिनो बाद अपनी वीरता से क्रमश. फौजदार तथा जागीरदार हो गया। इसी का पुत्र हैदरअली खाँ था।

३ मराठो, निजाम तथा अंग्रेजो से यह अनेक बार हारा था और अपने स्वामी को मारकर इसने राज्य हडप लिया था। इन सब का संक्षिप्त विवरण भी इस ग्रंथ में देना अनावश्यक है। इसकी मृत्यु ७ दिसंबर सन् १३८२ ई० को हुई और इसका पुत्र टीपू सुलतान मैसूर की गद्दी पर बैठा।

७२६. हैदरकुली खाँ, मुईज्जुद्दौला

यह इस्फरायनी था और इसका नाम मुहम्मद रजा था। यह आरंभ में सुल्तान अजीमुश्शान की सरकार में भर्ती होकर उस संबंध से प्रसिद्ध हो गया। इसके अनंतर जब हिंदुस्तान का शासन मुहम्मद फर्रुखसियर के हाथ में चला गया तब जुलूस के १म वर्ष में मीर जुम्ला की मध्यस्थता से इसे हैदर कुलीखाँ की पदवी, दक्षिण की दीवानी उसके कुल प्रांतों की दीवानी के साथ तथा खालसा के महालों की अमीनी और दूसरे दारोगाओं के पद मिले। उस प्रांत में जाने के बाद प्रकृत्या कठोर तथा उद्दंड होने के कारण इसकी वहाँ के सूबेदार निजामुल्मुल्क आसफजाह से नहीं पटी, इसलिये दरबार लौटने पर अहमदाबाद प्रांत की दीवानी, सूरत बंदर की मुत्सद्दीगिरी तथा गुजरात के प्रांताध्यक्ष की नायबी, जो उस समय खानदौराँ के नाम था, पाकर यह उस प्रांत को चला गया। वहाँ के कामों का सुप्रबंधकर बंदर तथा खालसा महालों की, जो इसे सौंपी गई, आय बहुत बढ़ाई। सफदर खाँ द्वितीय के युद्ध में, जो भारी सेना के साथ लड़ने आया था और इसके पास कम सेना थी, साहस दिखलाकर विजयी हुआ। परंतु इसके कठोर स्वभाव के कारण वहाँ की प्रजा अप्रसन्न रही और उस प्रांत के जागीरदारों में भी बहुत शिकायतें थीं। इस कारण कुतुबुलमुल्क के मन में इसके प्रति मालिन्य आ गया। वहाँ से हटाए जाने पर यह सुलतान रफीउद्दजीत् के राज्यकाल में दरबार आया। समयोचित समझकर आगरा पहुँचने पर इसने सैयद इज्जतखाँ बारहा के साथ मित्रता की और उसके द्वारा राजा रत्नसेन को मिला लिया। हुसेन अलीखाँ के कहने पर कुतुबुल्मुल्क का मालिन्य मिट गया और यह दोनों के राज्यकार्य के सलाह में शरीक हो गया।

जब सुलतान रफीउद्दौला के राज्यकाल में हुसेन अली खाँ ने औरंगजेब के लड़के सुलतान मुहम्मद अकबर के पुत्र निकोसियर के उपद्रव को दमन करने के लिये आगरा जाने का निश्चय किया तब यह बहादुर की पदवी के साथ ही रावलकी तौर पर आगे भेजा गया। आगरा दुर्ग के घेरे में इसने बहुत प्रयत्न किया। मुहम्मदशाह के राज्यकाल के १म वर्ष में गिरधर बहादुर को जो राजा छबीले राम नागर की मृत्यु पर इलाहाबाद प्रांत में अपने ही से राजद्रोह कर बैठा था, दमन करने के लिये यह अच्छी सेना के साथ नियत हुआ पर जब राजा रत्नचंद की मध्यस्थता से यह कार्य संधि द्वारा समाप्त हो गया तब यह लौटकर दरबार आया और उसी वर्ष सैयद खानजहाँ बारहा के स्थान पर इसे मीर आतिश का पद मिला। हुसेन अली खाँ के मारे जाने पर जब सैयद इज्जत खाँ बारहा तथा उक्त खाँ के अन्य साथी लोग बादशाही सेवा में चले आए तब इसने भी सवार

तथा पैदल अच्छी सेना के साथ इसका मंसब बढ़कर छ हजारी ६००० सवार का हो गया तथा नासिरजंग की पदवी मिली। कुतुबुल्मुल्क सुलतान रफीउश्शान के पुत्र सुलतान इब्राहीम के साथ जब युद्ध को आया तब यह हरावल में नियत हो तोपखाने से आग बरसाने मे बहुत प्रयत्नशील रहा और बाद को तलवार के युद्ध मे शत्रु तक पहुँचकर इसने बहुत साहस दिखलाया। हाथ मे घायल हुए कुतुबुल्मुल्क बहादुर को हाथी पर बिठाकर यह बादशाह के पास लिवा लाया। इस सेवा के पुरस्कार में इसका मंसब बढ़कर सातहजारी ७००० सवार का हो गया और मुइज्जुद्दौला की पदवी मिली। सन् ११३३ हि० मे गुजरात की सूबेदारी अजीतसिंह के स्थान पर तथा सूरत बंदर की मुत्सद्दीगिरी दमरुद्दीन खाँ बहादुर के स्थान पर वजीर नियत हुआ तब यह बोलने तथा वीरता मे प्रसिद्ध होने के कारण मुल्की तथा माली कामो मे बराबर दखल दिया करता था। यह वजीर को गवारा नही होता था इससे बादशाह ने उसकी खातिर से इसे मना कर दिया। यह संतोष न कर सका और विदा हो अहमदाबाद चला गया। वहाँ इसने खालसा के महालो की आय तथा जागीरदारो की भूमि ले ली जिस पर राजधानी के पास इसकी जागीर जब्त कर ली गई। यह समाचार सुनकर इसने दरबार के मुत्सद्दियों को लिखा कि जब हमारी जागीर जब्त हो गई तो हम नौकरी और अधीनता में नही रह गए। इस पर वहाँ की सूबेदारी पर नवाब आसफजाह नियुक्त होकर उस प्रांत को रवाना हुआ। इसने यह समाचार पाते ही अपने को पागल बनाकर जो भारी सेना एकत्र की थी उसके साथ दरबार को चला और वहाँ राजधानी पहुँचने पर अजमेर प्रांत पर अधिकार करने के लिये भेजा गया, जो अजीतसिंह के अधिकार में चला गया था। पुतलीगढ़ विजय करने के अनंतर दरबार आने पर सन् ११३७ हि० में यह अपनी स्त्री के साथ रात्रि मे खसखाने मे सो रहा था कि एकाएक उसमें आग लग गई और यह जल मरा। कामो मे यह बहुत गर्म रखता था और इसी अनुभव से वीरता भी दिखलाता था। परंतु इसकी प्रकृति में कठोरता तथा उद्दंडता भरी थी। कहते हैं कि गर्म खाना खाता था, यहाँ तक कि भोजन के समय भी आग से भरी अंगीठी पर पके हुए खाने के बर्तन रखकर लोग उपस्थित रहते थे।

७३०. हैदर मुहम्मद खाँ आखता बेगी

यह हुमायूँ बादशाह के पुराने सेवको मे से था। एराक की उस यात्रा मे, जिसे करने के लिये उस बादशाह के भाग्य ने उसे विवश किया था, हैदर मुहम्मद भी साथ रहकर कृपापात्र हुआ।[1] बल्ख के पराजय में जब हुमायूँ बादशाह की सवारी का घोडा तीर खाकर गिर पडा तब हैदर ने अपना घोडा भेंट देकर सम्मान की पूँजी संचित की। जिस समय हुमायूँ की सेना मिर्जा कामराँ के विद्रोह को दमन करने के लिये, जो काबुल से परास्त होकर अफगानिस्तान में आशा लगाए हुए था और असफलता मे जीवन बिता रही थी, कूच करके सुर्ख आब पहुँची तब हैदर अन्य विश्वास पात्रो के साथ हरावल मे नियत होकर संमानित हुआ। विजयी सेना के पहुँचने के पहले इसने स्याह आब के किनारे, जो सुर्ख आब तथा गंदमक नदियो के बीच मे है, पहुँचकर पड़ाव डाला। मिर्जा कामराँ ने संमुख युद्ध की अपने में शक्ति न देखकर रात्रि मे इन पर आक्रमण कर दिया। इसने दृढता से डटकर खूब युद्ध किया और काफी घायल होने पर भी अपना स्थान नही छोड़ा। कंधार की विजय तथा हिंदुस्तान की चढाई मे यह बराबर साथ रहा। जब यहाँ बादशाह विजयी हुआ तब उक्त खाँ बयाना का शासक नियत हुआ जब यह वहाँ पहुँचा और ईब्राहीम खाँ का पिता गाजी खाँ सूर उस दुर्ग में बैठा हुआ विद्रोह का विचार कर रहा था तब हैदर मुहम्मद खाँ ने उसे वचन देकर उससे संधि कर ली। जब गाजी खाँ दुर्ग से बाहर निकला तब हैदर ने उसकी संपति के लोभ में अपना वचन तोडकर अन्याय की तलवार से मार डाला। इस प्रकार वचन तोड़ने से सत्यनिष्ठ हुमायूँ बादशाह अप्रसन्न होगया और उसके मुख से यह भविष्य वाणी निकली कि हैदर अब कभी अपनी कमर न बांध सकेगा। कहते हैं कि यह अपनी मृत्यु तक, जैसा बादशाह ने कहा था वैसाही रहा।

अकबर की राजगद्दी के बाद जब हेमू बक्काल ने चढाई की तब हैदर तरदी बेग खाँ के पास पहुँचकर बाएं भाग का सरदार नियत हुआ, पर यहाँ परास्त होने पर यह अकबर की सेना में चला आया और अली कुली खाँ शैबानी के साथ हेमू को दंड देने के लिये भेजा गया। बादशाह के विजय के अनंतर यह किसी बहाने काबुल चला गया। बैराम खाँ का अधिकार छिन जाने के बाद जब मुनइम खाँ आज्ञा के अनुसार दरबार चला तब इसको अपने पुत्र गनी खाँ की सहायता के लिये वही छोडा, जिसे अपने प्रतिनिधि के रूप में काबुल का प्रबंध करने के लिये नियत कर गया था। परंतु इन दोनो में योग्यता की कमी के कारण मेल नही

---

१ गुलबदन बेगम कृत हुमायूँनामा में पृ० १२२ पर इसका नाम उस सूची मे दिया हुआ है, जो हुमायूँ के साथ ईरान गए थे।

आया तब मुनइम खाँ की प्रार्थना पर हैदर खाँ दरबार बुला लिया गया। ८वें वर्ष में जब मुनइम खाँ खानखानाँ काबुल का प्रबंध ठीक करने के लिये भेजा गया तब हैदर महम्मद भी साथ गया। इसके अनंतर जब मुनइम खाँ परास्त होकर दरबार आया तब यह भी साथ लौटकर मुनइम खाँ के अधीन काम करता रहा। १९वें वर्ष मे यह मीर मुहम्मद खाँ खानकलाँ के साथ नियत हुआ, जो गुजरात की ओर अगल्ल की तरह भेजा गया था। इस समय तक हैदर ढाई हजारी मनसब तक पहुँचा था इसके भाई मिर्जाकुली ने उस समय बड़ी वीरता दिखलाई थी जब हुमायूँ बादशाह ने बदख्शाँ पर चढ़ाई की थी और मिर्जा सुलेमान से युद्ध हुआ था। उस युद्ध में, जिसमें मिर्जा कामराँ ने भेंट करने की इच्छा प्रकट कर धोखा दिया था। मुहम्मद कुली घायल होकर घोड़े से जुदा हो गया। इसका पुत्र दोस मुहम्मद वीरता से लड़कर मारा गया। अकबर के राज्य के १९वें वर्ष में ये दोनों भाई मुनइम खाँ खान खानाँ के साथ बंगाल की चढाई पर भेजे गए। जन्नता बाद गौड़ की छावनी मे ये दोनो भाई सन् ९८३ हि०, सन १५७५ ई० मे मर गए। यह गौड़ पहले राजधानी थी पर बाद मे उजड़ गई। यहाँ की जलवायु बहुत खराब थी जिससे यहाँ बहुत से आदमी मरे थे।

•

७३१. होशदार खाँ मीर होशदार

यह मुल्तफित खाँ का पुत्र था और आजम खाँ आलमगीरी की पदवी से प्रसिद्ध था। शाहजहाँ के २७वें वर्ष में यह अपने चाचा मुफ्तखिर खाँ खानजमाँ के स्थान पर दक्षिण के तोपखाने का दारोगा नियत हुआ और इसे नौसदी ४०० सवार का मंसब मिला। उसी राज्यकाल के अंत में इसका मंसब एक हजारी ६०० सवार का हो गया। जब दक्षिण का सूबेदार शाहजाद मुहम्मद औरंगजेब आगरे की ओर सेना सहित चलकर बुर्हानपुर पहुँचा तब इसे खाँ की पदवी मिली और इसका मंसब पाँच सदी १०० बढ़कर डेढ हजारी ७०० सवार का हो गया। यह सभी युद्धो मे बराबर औरंगजेब के साथ रहा। जब दाराशिकोह के युद्ध के दिन विजय के अनंतर इसका पिता मर गया तब गुणग्राहक बादशाह ने कृपा कर इसे शोक से उठाया तथा मंसब बढ़ाकर सान्त्वना दी। इसे गुसलखाने का दारोगा नियत किया, जो पद सिवा अनुभवी तथा विश्वसनीय मनुष्यों के किसी दूसरे को नहीं मिलता। इसने अपनी योग्यता तथा स्वभाव पहिचानने की शक्ति से यह कार्य

बहुत दिनों तक कर बादशाही कृपा प्राप्त की। शुजाअ के युद्ध के अनंतर इसका मंसब तीन हजारी २००० सवार का हो गया। ५वें वर्ष में यह बढ़कर चार हजारी ३००० सवार का हो गया। जब इसी समय बादशाह काबुल जाने के विचार से पंजाब की ओर गए तब यह दिल्ली का सूबेदार नियत हुआ। ६ठे वर्ष में यह फर्मान के द्वारा इस्लाम खाँ बदख्शी के स्थान पर आगरा के शासन पर नियुक्त हो वहाँ का कार्य करने लगा। ८वें वर्ष में यह उसके आस पास के स्थानों का भी साथ ही फौजदार नियत हुआ तथा इसके मंसब में एक सहस्र सवार बढाए गए। इसकी सचाई तथा स्वामिभक्ति के साथ योग्यता और सत्यनिष्ठा औरंगजेब के हृदय मे जम गई थी इसलिये यह मुद्दत तक आगरे की सूबेदारी करता रहा। १४वें वर्ष मे यह खान देश का सूबेदार हुआ। १५वें वर्ष के आरंभ मे सन् १०८२ हि० सन् १६७१ ई० मे यह बुर्हानपुर में मर गया।

उक्त खाँ बंदूक चलाने मे अपने बराबरवालो का अग्रणी था और कुछ दिनों तक इसने शाहजादा मुहम्मद आजम को इसकी शिक्षा दी थी क्योंकि इस गुण को जानना भी सर्दारी के लिये आवश्यक है। इसके पुत्र कामगर तथा जा‍ार पिता की मृत्यु पर सेवा मे पहुँच कृपापात्र हुए। प्रथम उदारता तथा वीरता मे प्रसिद्ध था और सैनिक शिक्षा भी इसने अच्छी प्राप्त की थी। इसने कुछ लोगों को अपना मित्र बना रखा था और दंडित भी होता था। २३वे वर्ष मे, जब बादशाह अजमेर मे थे, तब किसी कारण से मसब से हटाए जाने पर इसने जमधर से अपने पेट पर चार घाव कर लिये, जिससे इस पर फिर कृपा हुई। यह बहुत सशक्त तथा बलवान था और इसकी बहुत सारी कहानियाँ बन गईं। चुनारगढ की अध्यक्षता के समय घडियाल से इसकी लडाई प्रसिद्ध है। मालवा के अंतर्गत रायसेन की दुर्गाध्यक्षता के समय इसकी मृत्यु हुई। इसे कोई संतान नही थी।

अनुक्रमणिका

(नाम के संमुख दी गई संख्या चरित्र क्रमांक है ।)

ख

द

ध

ब

भ

मुइज्जुद्दीन सुल्तान २०५, ३४१, ३६७

र

ल

ह